वैद्यक-शिक्षा।

अर्थात्

चरक, सुश्रुत, वाग्भट, हारीत, भावप्रकाश, चक्रदत्त,
शार्ङ्गधर, रसेन्द्रसार-सग्रह, रसेन्द्रचिन्तामणि,
तथा भैषज्य-रत्नावली, आदि आयुर्वेद-
ग्रन्थोंके अवलम्बन से बनाई

**आयुर्व्वेद-शास्त्रके यावतीय जानने लायक
विषयों की सचित्र पुस्तक।**

चतुर्थ संस्करण।

वर्णमेयट मेडिकेल डिप्लोमाधारी, पेरिस केमिकेल सोसाइटी
लण्डन सर्जिकेल एड् सोसाइटी और लण्डन केमिकल
इण्डष्ट्री के मेम्बर तथा दिल्ली बनवारीलाल
आयुर्वेदीय विद्यालय के परीक्षक

कविराज नगेन्द्रनाथ सेनगुप्त सङ्कलित।

नगेन्द्र स्टीम्-प्रिण्टिंग वर्क्स—कालकाता।

सम्वत्—१९८०।

दाम—२) दो रुपये।

कलकत्ता,

१३ नं० लोवर चितपुर रोड,

नगेन्द्र-स्टीम्-प्रिण्टिंग वर्क्स में

श्रीउपेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय द्वारा मुद्रित

तथा

१८।१ व १९ नं० लोवर चितपुर रोड से

श्रीशक्तिपद सेन वैद्यशास्त्री द्वारा प्रकाशित।



आयुर्व्वेदीय औषधोंके हिन्दी और बङ्गला भाषा का
निघंण्ट।

अ।

अक्ष तेल—हि० बहेडका तेल।

अक्षोट—हि० अखरोट। ब० आखरोट।

अगरु—हि० अगर।

अग्निदमनी—हि० आगी, धमासा।

अग्निजार—हि० अग्निजार।

अग्निमन्थ—हि० अरनी अगेथु, गणियारी।

अजगन्धा—हि० हुरहुर,हुलहुल।

अजमोदा—हि० अजमोदा ब० बनजमानी।

अजकर्ण—हि० बडाशाल। ब० श्वालोशाल।

अर्क—हि० अजमना।

अर्ज्जुन—हि० कोहा, कोह। ब० अर्जुन।

अतसी—हि० अलसी।

अतसी तेल—हि० अलसीका तेल।

अतिवला—हि० कगई, कघई, ककहिया, पेटारी। बं० पीतवेडेला।

अतिविषा—हि० अतीस। ब० आतइच।

अतिमुक्ता—हि० रायनेवारी, रायवेल।

अपवर्दण्ड—हि० रामशर।

अपामार्ग—हि० ओगा, चिरचिरा। ब० अपाग।

अभ्रक—हि० अभ्रक, अबरख।

अम्बष्ठा—हि० अमारी, मोइया। बं० मोचिका।

अमरवल्लरी—हि० अमरवेल, आकाशबवरी।

अमृतश्रवा—(चित्रकूट देशमें प्रसिद्ध है।

अम्लपर्णी—हि० रामचना।

अम्लवेतस—हि०अम्लवेतस,थेकल।

अम्लदाडिम्ब—हि० खट्टा अनार।

अरण्यकुसुम—हि० कुसुम, खस, दाना।

अरण्यकार्पासी—हि० वनकपास।

अरण्यकुलत्थिका—हि० बन कुरथी। बं० बनकुलत्थ।

अरण्यजीरक—हि० बनजीरा।

अरण्यसूरणी—हि० जङ्गली सूरण।

अरिमेद—हि० छिवर।

अर्क—हि० आक, मदार, गा-कडा। ब० आकन्द।

अर्द्रक—हि० आदी, अद्रक। ब० आदा।

अशोक—हि० अशोका। बं० अशोक।

अश्मन्तक—हि० सिरहटा, असि मिलौरा।

अश्वखुरा—हि० सफेद गोकर्णी, सफेद कोयल। ब० अपर माली। श्वेतअपराजिता।

अश्वगन्धा—हि० असगन्ध। बं० अश्वगन्धा।

अश्वकाथरिका—हि० घोडेका घरा।

अश्वकर्णी—हि० छोटाशाल। ब० शाल, शाल।

अश्वत्थ—हि० पिपरवृक्ष।

अश्वत्थी—हि० छोटा पीपल।

असन—हि० असन।

असितजम्बूक—हि० काली दुप-हरिया।

अङ्कोट—हि० ढेरा टेरा। ब० बल आंकडा।

अहिफेन—हि० अफीम, अमल-आफ। ब० अहिफेन।

आ

आकाशमासी—हि० आकाश-जटामासी।

आखुकर्णी—हि० भूमाकर्णी। ब० इन्दूरकाणिपाता, काली दन्ती।

आखुपाषाण—हि० सोमल।

आढकी—हि० अरहर, रहरी।

आदित्यपत्र—हि० आदित्यपत्र।

आदित्यभक्ता—हि० सोचली, हुलहुल।

आमलकी—हि० आमला, आ-मरा। ब० आमलकी।

आम्र—हि० आम।

आम्रातक—हि० अम्बाडा। (कोकण देशमें प्रसिद्ध है।)
आम्रनिशा—हि० आबाहल्दी।
आरग्वध—हि० बडा अमलतास।
आरामशीतिला—हि० लोनी शाक भेद।
आरामशीतला—हि० आरामशीतला।
आरि—हि० वालिखदिर, मछिकाफल।
आरुक—हि० आलुबखारा।
आवर्तकी—हि० बड़ा आम्ल, रक्त आहुली।
आसुरी—हि० राई ब० सरिषा।
आहुली—हि० रग।

इ

इक्षु—हि० गाडा, पौडा, ईख।
इक्षुदर्भा—हि० इक्षुदर्भ।
इङ्गुदी—हि० हिंगोट, गोंदी।
इङ्गुदी तैल—हि० हिंगोटका तैल।
इन्दीवरा—हि० उतरण।
इन्द्रजव—हि० इन्द्रजव।
ईश्वरलिङ्गिका—हि० शिवलिङ्गी।

उ

उत्पल—हि० नील कमल।
उत्पलिनी—हि० चन्द्रविकाशी, कमलिनी।
उदुम्बर—हि० गूलर। ब० यज्ञ डुमुर।
उपकुञ्चिका—हि० कलौंजी, मगरेला। ब० कालौंजी।
उपोदकी—हि० बडी पोई। ब० पुइशाक।
उशीर—हि० खस, कालावाला। ब० व्याणारमूल।
उष्ट्रकाण्डी—हि० उतांटी।

ऊ

ऊखज—हि० उखलवण।

ऋ

ऋषभक—गौड वो काश्मीरमें प्रसिद्ध है।
ऋद्धि—गौड देशमें प्रसिद्ध है।

ए

एकवीर—हि० एकवीर।
एरण्ड तैल—हि० अण्डीका तैल।
एला—हि० इलायची, छोटी लायची। ब० छोट इलाइच।

एलावालुक—हि॰ एलवा। बं॰ लालु।

एर्वारु—हि॰ बडी ककडी।

ऐ

ऐन्द्री—हि॰ इन्द्रायन। बं॰ राखालशशा।

औ

औखर—हि॰ खारी नोन।

औद्भिद—हि॰ सूर्याखार, रेहगवा, रेहगमानोन, रेहका निमक।

क

कटभी—हि॰ कालो कटभो, करही।

कट्फल—हि॰ कायफर। बं॰ कट्फल।

कटुतुम्बी—हि॰ कडुई तोरई तितलौको। बं॰ तितलाउ।

कटुका—हि॰ कुटकी। बं॰ कटकी।

कटुतुण्डिका—हि॰ कडुईकादूरी, कडुई गुलकाख। बं॰ बनकदरकी।

कटुकुंची—हि॰ कडवंचो।

कटुनिष्पाव—हि॰ कडवा निष्पाव।

काटफल—हि॰ काय फर। बं॰ काटफल, कायछाल।

कणगुग्गुल—हि॰ कणगूगल।

कतक—हि॰ निर्मली। बं॰ निर्मला

कत्तृण—हि॰ गोहिस, सौधिया, गधेज घास। बं॰ रामकर्पुर।

कदली—हि॰ केला, केरा।

कदम्ब—हि॰ कदम्ब, कदम।

कपर्दक—हि॰ कौडी।

कपिलशिंशपा—हि॰ पीला सिसव।

कपित्थ—हि॰ कैथ। कवीथवेल।

कमल—हि॰ कमल। बं॰ पद्म।

करमर्द—हि॰ करौंदा, करौंरो। बं॰ करमचा।

करञ्ज—हि॰ कञ्जा, कटकरञ्जा।

करञ्जतैल—हि॰ करञ्जका तेल।

करीर—हि॰ करोल दारेल, करेल।

करुणी—हि॰ करवीरणी (कोंकण देशमें प्रसिद्ध है।)

कर्कट—हि॰ काकड़।
कर्कटो—हि॰—ककडो, ककडी। ब॰ काकुड।
कर्कोटकी—हि॰ खेकसा, ककोडा। ब॰ कांकरोल।
कर्चूर—हि॰ कचूर। ब॰ शठी।
कर्णस्फोटा—हि॰ कानफोडा।
कर्णिकार—हि॰ छोटा अमलतास, धनबहेरा, सोनालु, किरवारी। ब॰ छोटा सोंदाल।
कर्पूर—हि॰ कपूर। ब॰ कर्पूर।
कर्पूर तैल—हि॰ कपूरका तेल।
कर्पूरमणि—हि॰ करपुरनिया।
कलाय—हि॰ मटर, केराव।
कलिकारी—हि॰ कलिहारी करिहारी, कलहिस। ब॰ ईशलागला।
कलिङ्ग—हि॰ तरबूज। ब॰ तरमूज।
कल्हार—हि॰ सफेद कमल चन्द्रविकाशी।
कस्तूरी—हि॰ कस्तूरी। ब॰ मृगनाभि।
कस्तूरीमल्लिका—हि॰ कस्तूरी मोतिया।

काकनासा—हि॰ कौआठोठो। ब॰ काकठूडी।
काकमाचिका—हि॰ मकोय, कवैया। ब॰ काकमाची, गुडकामाई।
काकजंघा—हि॰ काकजम्बा, मसी। ब॰ काकजंघा।
काकजम्बू—हि॰ नदी जामुन। ब॰ नदी जाम।
काकतिन्दुक—हि॰ काकतेंदू।
काकलीद्राक्षा—हि॰ किसमिस।
काकादनी—हि॰ काकमारी। काकफल।
काकोली—हि॰ काकोली।
कामवृद्धि—हि॰ कामजहच।
कारवल्ली—हि॰ करेला। ब॰ करोला।
कारस्कार—हि॰ कुचला।
कासमर्द—हि॰ कसौदी, अगोय।
कारी—हि॰ कारी।
कालाञ्जनी—हि॰ कालीकपास।
कार्पासी—हि॰ लाल कपास।
काश्मरी—हि॰ गभारी, कभारी खुमेर। ब॰ गाम्भारी।
काष्ठकदली—हि॰ काठकेला।

काष्ठधात्री—हि॰ छोटा आमला।
काष्ठदारु—हि॰ काष्ठ देवदार।
काष्ठागरु—हि॰ कष्ठागर।
कासालु—हि॰ कासालु।
कासीस—हि॰ कसीस।
कुटज—हि॰ कूड़। बं॰ कुड़ची।
कुटन्नटी—हि॰ कंधा होली।
कुनन्नर—हि॰ लेस्वा।
कुद्दाल—हि॰ बनको कोदो।
 ब॰ बनकोद्रव।
कुलक—हि॰ कुला।
कुमुद—हि॰ सफेद कमल चन्द्र विकाशी।
कुरी—हि॰ कुरीधान्य।
कुलत्थिका—हि॰ बनकुरथी।
कुलित्थ—हि॰ कुलथी। ब॰ कुलथकलाइ।
कुलञ्जन—हि॰ कुलिजन।
कुष्ठ—हि॰ कूठ। ब॰ कुड।
कुसुम्भ तैल—हि॰ कुसुमके बीजका तैल।
कूष्माण्डी—हि॰ कुम्हडा, कोहडा, पेठा। ब॰ साचिकुमुडा।
कृमीघ्न—हि॰ कृमीघ्न।

कृष्णजीरा—हि॰ शाहजीरा।
कृष्णत्रिवृत्—हि॰ काली निसोथ। ब॰ श्यामतेउडी।
कृष्णकुटज—हि॰ कालाकूडा।
कृष्णकरवीर—हि॰ काली कनेर। ब॰ कृष्णकरवी।
कृष्णधत्तूर—हि॰ काला धतूरा। ब॰ कृष्णधुतूरा।
कृष्णतुलसी—हि॰ कालीतुलसी।
कृष्णमरुवक—हि॰ कालामरुआ।
कृष्णसारिवा—हि॰ कालीसर, कारआसाठ। ब॰ श्यामालता
कृष्णागरु—हि॰ काला अगर।
कृष्णार्जक—हि॰ काला अजवला।
कृष्णोदुम्बरिका—हि॰ कठूमर, कठूम्बर। बं॰ डुमूर।
केतकी—हि॰ केवडा, गगनधूल।
केना—हि॰ केना।
केविका—हि॰ केवा।
कैडर्य—हि॰ कृष्णनिब, वरसंग, महानिम्ब। ब॰ कार्यफली।
कोकनद—हि॰ लाल कमल।
कोकिलाक्ष—हि॰ तालमखाना। ब॰ कुलेखाडा।

कोद्रव—हि॰ कोदो, कोदव। व॰ गोम।
कोलकन्द—हि॰ जङ्गलो प्याज़, कोलिकादा।
कोविदार—हि॰ पोला कच-नार। व॰ पोत काञ्चन।
कोशातकी—हि॰ झिमनोलता, जङ्गलो (गरका) तोरई, श्रड़ूश्रो तोरई।
कोशाम्र—हि॰ कोशाम। व॰ केवड़ाफल।
कोशाम तैल—हि॰ कोशमका तेल।
कौसुम्भशाक—हि॰ कुसुमशाक।
कांङ्कष्ठ—हि॰ कङ्कुष्ठ, ताडिका कङ्कुष्ठ।
कङ्काल—हि॰ कागबचोनो, शो-तलचोनो, घोनोकवाव। व॰ कावाला।
कङ्गुनी—हि॰ कागनो। व॰ कागनो धान्य।
कण्ठकशरपुङ्खा—हि॰ कण्ठपुङ्खा।
कण्टकारी—हि॰ कटेरो, लघु कटाई, भटकटैया, रगनो कटानो। व॰ कण्टकारी।
कंथारी—हि॰ नागफनी, थूहर।
कान्दगुडचो—हि॰ कन्दगिलोय।
काचलवण—हि॰ कचलोन, का-चिया लवण।
काण्डोर—हि॰ चिरचिरा, का-डवेल।
काण्डेक्षु—हि॰ कास। व॰ केरो।
कान्तलौह—हि॰ कान्तलौह।
काम्भोजो—हि॰ सफेद घुंगची, चिरमिटोगुञ्ज, छोटलो। व॰ श्वेतकूच।
कास्य—हि॰ कासा।
किञ्जल्क—हि॰ कमलकेसर।
कुङ्कुम—हि॰ केसर। व॰ कुङ्कम।
कुन्द—हि॰ कुन्द।
कुन्दरु—हिन्द सालईका गोंद, कुन्दरु। व॰ कुदरुखोटो।
कुम्भो—कोकणदेशमें प्रसिद्ध है।

ख

खटिका—हि॰ खड़िया।
खड्गशिङ्गो—हि॰ गोड़ज़ियासेम, सेम। व॰ श्वेतसिम, मोग-लोइसिम।
खदिर—हि॰ खैर।

खदिरसार—हि० खैरसार, कत्था।
खर्परी—हि० खापरिया।
खर्जूरी—हि० जङ्गली खजूर।
खसखस—हि० खसखस। व० पोस्तदाना।
खपुड़—हि० व० चीनी. शक्कर।

ग

गणिकारी—हि० मदनमादनी।
गर्भौटिका—हि० जरणी लवण।
गर्जर—हि० गाजर।
गारुत्मत—हि० पन्ना।
गिरिकदली हि० जंगली केला।
गुग्गुल—हि० गूगल, गूगर। व० गुग्गुल।
गुच्छकन्द—हि० गुच्छकन्द।
गुच्छकरञ्ज—हि० गुच्छकरञ्ज।
गुड़—हि० गुड़।
गुडकन्द—हि० कसेरु, केचुक चिचोड़। व० केसुर।
गुडूची—हि० गिलोय। वं० गुलञ्च।
गुडासिनी—हि० गोदपटेर।
गुण्डाला—हि० गोंडाला।
गृहकन्या—हि० घीकुआर ग्वार-पाठा। व० घृतकुमारी।
गरिम—हि० गेरु।
गोक्षुरक—हि० गोखरू। व० गोक्षुरी।
गोजिह्वा—हि० गोभी। व० गाजिया, दानाशाक।
गोधापदी—हि० गोडालिया।
गोधूम—हि० गेहूँ।
गोपालकर्कटी—हि० गोपाल काकड़ी।
गोमय—हि० गोबर।
गोमूत्र—हि० गोमूत्र।
गोमूत्रिका—हि० गोमूत्रलवण।
गोमेद—हि० गोमेद।
गोरचतुम्बी—हि० गोलतुम्बी।
गोरचदुग्धी—हि० गोरचदूधी।
गोरची—हि० गोरख इमली।
गोरोचन—हि० गोलोचन। वं० गोरोचना।
गोलोमी—हि० गोलोभी। वं० भद्रकेश।
गोस्तनी—हि० कालीदाख।
गौरसुवर्णशाक—चित्रकूट देशमें प्रसिद्ध।
गङ्गापत्री—हि० गङ्गावनी।
गण्डपूर्वा—हि० गाण्डरदूब।
गन्धक—हि० गन्धक।

गन्धपत्रा—हि० कपूरहल्दी, गन्धपलाशा।
गन्धनाकुली—हि० सरहटी, गडिनी, सुगन्ध नकुलगन्ध। व० सर्पकङ्कालिका।
गन्धमासी—हि० गन्धमांसी।
गुण्डाला—हि० गोंडाला।
ग्टञ्जन—हि० लालसुठा।
ग्रन्थिपर्णी—हि० गठिवन, गठोना। व० गेंठेला।

घ

घृत—हि० घी।
घृतकरञ्ज—हि० घीयकरञ्ज, घोकारञ्ज।
घोटी—हि० घांटी।
घोली—हि० नोनिया शाक, लोनो।

च

चणक—हि० चना, छोला। व० छोला।
चणिका—हि० चणहलण।
चतुफला—हि०गुलशकरी, गगेरन, गगिरमा। व० गोरक्षचाकुले।

चक्रमर्द—हि० पवाडर, समाडर, चकवड। व० हाकुच, चाकन्दे।
चव्य—हि० चाभ। व० चव्य।
चाणाक्यमूलक—हि० बडोमूली
चार—हि० चिरौंजी।
चित्रक, हि० चीता, चितरक। व० चिता।
चित्रवल्ली—हि०, बडी इन्द्रकला।
चिर्भिंटा—हि० गोरख ककडी।
चिल्लिका—हि० चिल्ली, बडा बथुआ।
चिविल्लिका—हि० छोटो लोनो।
चीडा—हि० चीढ देवदार।
चीनकपूर—हि० चीनीकपूर।
चुक्र—हि० बडा चूका। व० चुका पालङ्ग।
चूर्ण—हि० चूना।
चोरक—हि० भटेउर।
चक्षु—हि० चक्षु, चेंचुना।
चक्षुक—हि० चक्षु।
चन्दन—हि० सफेद चन्दन।
चन्द्रकान्त—हि०चन्द्रकान्तमणि।
चम्पक—हि० चम्पा।
चण्डालकन्द—हि०चण्डालकान्द।

चाङ्गेरी—हि० अम्ल, भांलि-
लोया।

चिञ्चा—हि० इमली, अम्बली। व० आमरूल, तंतुल।

ज

जपा—हि० औडहुल, गुडहर।

जलुका—हि० पपरी, पनडो, पद्मावती, नाडोहिंग, नाम्ब।

जलमधूक—हि० जलमहुवा। व० जलमौत।

जलब्राह्मी—हि० बाब।

जलवेतस—हि० जलवेत।

जलशुक्ति—हि० नदीकी सीप।

जवादि—हि० जवादी कस्तुरी।

जातिपत्री—हि० जावित्री। व० जईत्री।

जाती—हि० चमेली।

जातीफल—हि० व० जायफल।

जालबब्बूलिका—हि० जाल बब्बूल।

जीवनी—हि० डोडोशाक।

जीरक—हि० जीरा। व० जीरा।

जीर्णफञ्जी—हि० फानी।

जीवक—गौड़ देशमें प्रसिद्ध है।

जीवन्ती—हि० व० लघुजीवन्ती।

जीवशाक—हि० जीवशाक।

जैपाल—हि० जमालगोटा। व० जयपाल।

जम्बीर—हि० जम्भीरी। व० गोंडालेबू।

जम्बू—हि० जामुन, जामन। व० जाम।

ज्योतिष्मती—हि० मालकांगुनी। व० लताफट्की।

ज्योतिष्मती तैल—हि० मालकांगनी तैल।

झ

झिञ्झरीटा—हि० छिरछिटा, झांझरीटा।

झिण्टिक—हि० झिण्डु।

ट

टङ्कण—हि० सोहागा।

ड

डोडी—हि० डोडी।

डङ्करी—हि० मकरिकुमरा, लालपेटा।

त

तक्र—हि॰ छाछ।
तक्राह्वा—हि॰ ताका।
तमाल—हि॰ व॰ तमाल।
तमालपत्र—हि॰ पत्रज, तेज-पात। व॰ तेजपत्र।
तरटो—हि॰ तरटो।
तर्वारी—हि॰ अरनो। (कोंकण देशमें प्रसिद्ध है।)
तरुणी—हि॰ शेवती गुलाब।
तवक्षोर—हि॰ तवाखोर।
ताम्र—हि॰ तावा, तामा।
तारमाक्षिका—हि॰ रूपामक्खी।
ताल—हि॰ ताड।
तालीसपत्र—हि॰ तालीसपत्र।
तिनिश—हि॰ तिरिच्छ, तिन-सुना। व॰ तिनिश।
तिल—हि॰ तिल।
तिलक—हि॰ व॰ तिलक।
तिल तैल—हि॰ तिलका तेल।
तूल—हि॰ पारस पीपल, गज-दण्ड।
तीक्ष्णफला—हि॰ काली राई।
तुत्थ—हि॰ नीला थोथा, नीलो तूतिया।
तुरुष्क—हि॰ शिलारस।
तुलसी—हि॰ व॰ तुलसी।
तृणकुङ्कुम—हि॰ तृणकेसर।
तृणधान्य—हि॰ तृणधान्य।
तेजफल—हि॰ तिरफल।
तेजोवती—हि॰ बडी माल-कागनी।
तैरणी—हि॰ तैरणा।
तैलकन्द—हि॰ तैलकन्द।
तुण्डिका—हि॰ कन्दूरी, कुन्-काख। व॰ कुन्दरुकी।
तण्डुलीयदल—हि॰ चौलाई।
तण्डुलीयक—हि॰ चोलाई, चौराइ व॰ नेटेशाक, चापातृतिया।
तिंदुक—हि॰ तेंदू।
तुम्बक—हि॰ तुम्बरुफल।
त्रपु—हि॰ रांगा, रांगा।
त्रपुसैर्वारुकचारक कूष्माण्ड प्रभृति बीज तैल हि॰ त्रपुसी, काकडी, चागेली, कोंहडोके बीजका तेल।
त्रपुसी—हि॰ खीरा, काकडी।
त्रायमाणा—हि॰ त्रायमाणा।
त्रिधार—हि॰ तिधारा थूहर।
त्रिपर्णीकन्द—हि॰ त्रिपर्णीकंद।

त्रिवृत—हि॰ निसोय सफेद श्वेत पनिलर। बं॰ श्वेत-तेउडी।

त्रिसन्धि—हि॰ साझो।

त्वच—हि॰ तज, दालचीनी व॰ दारुचिनी।

द

दग्धरुहा—कोकण देशमें प्रसिद्ध है।

दधि—हि॰ दही।

दधिपुष्पी—हि॰ सुअरासेम, करियेसेम।

दमनक—हि॰ दौना, दवना।

दारुहरिद्रा—हि॰ दारुहल्दी। ब॰ दारुहरिद्रा।

दाहागरु—हि॰ दाहागरु।

दीर्घरोहिषक—हि॰ बडा रोहिषक।

दुग्ध—हि॰ दूध।

दुग्धपाषाण—हि॰ गिरगोला।

दुग्धफेनी—हि॰ दुग्धफेनी।

दुग्धतुम्बी—हि॰ मोठी तूम्बी। ब॰ लाऊ।

दुरालभा—हि॰ धमासा। ब॰ दुराला।

देवदारु—हि देवदारु।

देवदाली—हि॰ सोनैया, बंदाल, घघरबेल, देवदाली, बिदाल, भिदाली।

द्रवन्ती—हि॰ छोटी मूसाकर्णी। बं॰ इन्दूरकाणिपाना।

द्राक्षा—हि॰ दाख।

द्रोणपुष्पी—हि॰ गोया, गुमा, दणहलो। ब॰ कलघसिया।

द्रोणेय—हि॰ द्रोणीलवण, बरतनका नमक।

ध

धन्वन—हि॰ धामिन। ब॰ धामनि।

धरणीकन्द—अनूप देशमें होता है।

धव—हि॰ धो, धावा। ब॰ धाओया।

धातकी हि॰ धावई, धाय। ब॰ धाई।

धान्य—हि॰ धान्य।

धान्यक—हि॰ धनिया। ब॰ धनिया।

धान्यतैल—हि॰ धान्य तैल।

धाराकदम्ब—हि॰ धाराकदम्ब।

धाराकोशातकी—हि॰ तोरई, तुरैया। ब॰ झिंगा।

धूम्रपत्र—हि॰ कीड़ामार।
धूलिकदम्ब—हि॰ धूलिकदम्ब।
ध्वाङ्क्षनाशिनी—हि॰ छोटी छा-
उवेर।

न

नख—हि॰ नख।
नखनिष्पाविका—हि॰ छोटी
सेंवी।
नदीवट—हि॰ नदीवड़।
नद्योदुम्बरिका—हि॰ नदी गूलर
नल—हि॰ नरसल। ब॰ नल,
कच्छी-शाखी।
नलिका—हि॰ पवारी।
नवनीत—हि॰ मक्खन।
नवमल्लिका—हि॰ नेवारी।
नाकुली—हि॰ नकुलचन्द्र।
नागकेसर—हि॰ नागकेसर।
नागचम्पक—हि॰ नागचम्पा।
नागदन्ती—हि॰ नागाला। ब॰
नागदन्ती।
नागदमनी—हि॰ नागदौन। ब॰
नागदना।
नागबला—हि॰ गुलसकरी, गंगे-
रन, गंगेरुआ। ब॰ गोरक्ष
चाकुले।
नागरमुस्ता—हि॰ नागरमोथा।
नागवल्ली—हि॰ नागरवेल।
नाडीहिङ्गु—हि॰ डिकामाली।
नारिकेल—हि॰ नारियल।
नारङ्ग—हि॰ नारङ्गी।
निकुञ्जिका—हि॰ मोकाकाष्ठ
भेद।
निर्विषा—हि॰ निर्विषी।
निष्पाव—हि॰ भटवासु, निष्पाव।
निष्पावी—हि॰ सेवी।
निश्रेणिका—हि॰ निशेणीतृण।
नील—हि॰ नीलम।
नीलदूर्वा—हि॰ नीली दूब।
नीलधत्तूर—हि॰ नीला धत्तूरा।
ब॰ नील धुतूरा।
नील पलाश—हि॰ नीलपलास।
ब॰ नील पलाश।
नीलबीज—हि॰ काला आसन।
ब॰ नील आसन।
नीलवृक्ष—हि॰ नी[illegible] वृक्ष।
नीलमार्कव—हि॰ पीला भागरा
नील यूथिका—हि॰ नीलीजूही।
नीलसिन्दूक—हि॰ नी[illegible] सम्भालू।
नीलाशस्त्र—हि॰ नीलपलास।
ब॰ नील पलाश।

नीलागिरिकर्णिका—हि० काली गोकर्णी, नीली, कोयल। ब० नील अपराजिता।
नीलापुनर्नवा—हि० नीलीसाठ।
नीलाम्लान—हि० नीला कटसरैया।
नीलाम्ली—हि० काली पिठोडी।
नीलालु—हि० काला आलु, काला धोपा, काडा चिमकुवा।
नीली—हि० नील, लील। ब० नील।
नीलोत्पल—हि० नील कमल, चन्द्रविकाशी।
नीवार—हि० तीनी। ब० उडी धान।
नेपाल—हि० नेपालनिंव, चिरायता।
नन्दीवृच—हि० नन्दीवृच।
निम्ब तैल—हि० नीमके बीजका तैल।
निम्बूक—हि० नीबू। ब० पातिलेंबू।

प

पखौड—हि० पखौड।
पटोल—हि० पलवल, पटोल।
पतङ्ग—हि० पतङ्ग।
पद्मा—हि० भारङ्गी।
पद्मक—हि० पद्माख। ब० पद्मकाष्ठ।
पद्मकन्द—हि० कमलकन्द।
पद्माक्ष—हि० कमलगट्टा।
पद्मिनी—हि० पद्मनी।
पनस—हि० कटहर, चाटैर, फनस। ब० कांठाल।
पर्पट—हि० पीत पापडा, दवन पापडा। ब० चेत पापडा।
परिपेल—हि० कैवटी मोथा। ब० केउटसुथा।
परूपक—हि० फालसे। ब० फलसा।
पलाण्डु—हि० प्याज। ब० पेयाज।
पाची—हि० पाच।
पाठा—हि० पाठ, पाढ। ब० आकनादि।
पाणियालु—हि० पानीका आलु।
पानीय—हि० पानी।
पारन्द—हि० पारा।
पारिभद्र—हि० फरहन, जल नीक ब० पालिदामादार।

पालक्य—हि० पालक। ब० रालेक।
पाषाणभेदो—हि० पाषाणभेदो।
पित्तल—हि० पीतल।
पिप्पली—हि० पीपर, पीपल। ब० पीपुल।
पिप्पलीमूल—हि० पीपरामूल। ब० पीपलमूल।
पीतकरवीर—हि० पीलीकनेर। ब० पीत करवी।
पीतचन्दन—हि० पीला चन्दन।
पीततण्डुला—हि० मोतरेगनी, बृहतीभेद।
पीतधत्तूर—हि० पीला धतूरा। ब० पीत धुतुरा।
पीत पलाश—हि० पीला पलास। ब० पीतपलाश।
पीत पुष्पी—हि० सहदेई। ब० पीतपुष्प, दण्डोत्पल।
पीत बन्धूक—हि० पीली दुपहरिया।
पीतमार्कव—हि० पीला भगरा।
पीतागस्त्य—हि० पीला अगस्तिया। ब० पीत वक।
पीता जगधा—हि० पीली, कुरकुर
पीताम्लान—हि० पीला कटसरैया।
पुत्रजीव—हि० जीयापोता, पुत जीया। ब० पुतञ्जिया।
पुत्रदा—हि० पुत्रदाई, गर्भदात्री
पुन्नाग—हि० पुन्नाग, पुलाक। ब पुन्नाग।
पुष्करमूल—हि० गाठदा, पुष्करमूल।
पुष्पकासीस—हि० पुष्पकासीस।
पुष्पद्रव—हि० पुष्पद्रव।
पुष्पराज—हि० पुखराज।
पुष्पाञ्जन—हि० पुष्पाञ्जन।
पूग—हि० सुपारी। ब० सुपारी।
पूतिकरञ्ज—हि० दुर्गन्धकरञ्ज। ब० नाटा करञ्ज।
पृष्टिपर्णी—हि० पिठवन, पिठोनी। ब० चाकुले, चाकोलिया, शङ्करजटा।
पेऊ—हि० जङ्गली अादा।
पेरोज—हि० फिरोजा।
पोताश—हि० भीमसेन कपूर।
पाण्डुफली—हि० पाटली।
पिण्डखर्जूर—हि० पिण्डखजूर, छुहारा। ब० सोहारा।

म

मदन—हि० मनफल। बं० मयना फल।
मद्य—हि० दारू, यूनानी शराब।
मधु—हि० शहद।
मधुक—हि० महुवा। बं० मौल, महुवा।
मधुकर्कटी—हि० पपई, अरण्ड-माकड़ी। ब० बाताविलेवु।
मधुखर्जूरिका—हि० मोठो ज ङ्गली। खजूर।
मधुजम्बीर—हि० मोठा नेवू। ब० कामलालेवु।
मधुनारिकेल—हि० मधुनारियल
मधुरदाडिम—हिमे—अनार।
मधुयष्टी—हि० मुलहटी भेद।
मज्जर—हि० मज्जरतण।
मल्लिका—हि० वेल मोतिया।
मसूर—हि० मसूर।
मरिच—हि० काली मिरिच।
महाकरञ्ज—हि० करञ्जो, अ-रारि, बड़ा करञ्ज।
महाकन्द—हि० लाल लहसन।
महाजम्बू—हि० राजजामन, फ रेंद। बं० गोलापजाम।

महाद्रोण—हि० बड़ा गोमा।
महानिम्ब—हि० बकाम। बं० घ ड़ानिम।
महापारेवत—हि० बड़ी द्वोपान्तर खजूरी।
महापिण्डीतक—हि० बड़ा मैनफल।
महापिण्डीतरु—पण्डिरा वृक्ष।
महामेदा—गौडदेशमें प्रसिद्ध है।
महानीली—हि० बड़ी नील।
महाराजाम्र—हि० महाराज आम्र।
महाराष्ट्री—हि० मरेटो पनिसगा
महाबला—हि० सहदेई। ब० पीतपुष्प, टखड़ोत्पल।
महाशतावरी—हि० बड़ी सता वर।
महाश्रावणी—हि० बड़ी मुड़ी।
महिषीकन्द—हि० भैसाकन्द।
मनःशिला—हि० मनसिल।
मत्स्याक्षी—हि० मछेछी, मछेद्री, जलपीपर। ब० काचड़ाशाप।
माकन्दी—हि० मायमूड।
माड—हि० माडा।
माधवी—हि० माधवी।

माणिक्य—हि० मानिकलाल।
माष—हि० उरद।
मायाफल—हि० माजूफल।
मार्कव—हि० भागरो। व० भोमराज।
मालाकन्द—हि० मालाकन्द।
माषपर्णी—हि० मखवन, मश वन, बनउर्दी। व० माखानी वनमाष।
मिश्रीमोशी—हि० छोटा काम।
मिश्रेया—हि० सौफ बडी सौंफ। व० मौरी।
मोनाएडी—हि मिसरी, खडो शक्कर।

मुकष्टक—हि० मठ, मोठ।
मुक्ताशुक्ति—हि० मोतीके सीप।
मुचालू—हि० मुचकुन्द। विशेष।
मुचकुन्द—हि० मुचकुन्द।
मुद्र—हि० मूग।
मुद्रपर्णी—हि० मुगौन मुगवन। व० मुगानि।
मुञ्जर—हि० मोतिया।
मुरा—हि० एकाङ्गीमुरा। व० मुरामांसो।

मुष्कक—हि० मोखा, फरवाह।
मुमल्लोकन्द—हि० कालो मुसली।
मूर्वा—हि० चूरोनहार, चूरन हार, मरोरफली। ब० मूर्वा।
मूलपातो—हि० पोई भेद।
मूलक—हि० मूली।
मूषकमारी—हि० उदिरमारी।
मृगाक्षी—हि० सन्धिनी।
मृणाल—हि० कमलको दण्डी।
मेचकयूथिका—हि०मेचक जूही।
मेथिका—हि० व० मेथी।
मेदा—गौड देशमे प्रसिद्ध है।
मेषशृङ्गी—हि० मेढाशिङ्गी। व० मेढाशिंगा।

मोचरस—हि० मोचरस। व० मोचरस।
मोरटा—हि० चोर चूरोनि न हार, मुर्हरी।
मौक्तिक—हि० मोती।
मङ्गलागरु—हि० मङ्गलाहैरु।
मञ्जिष्ठा—हि० मजीठ। मञ्जिष्ठा।
मांसरोहिणी—हि० मांसरोहिणी। व० चमारकशा।

मासो—हि० छड, जटामासो। ब० जटामासी।
मुञ्ज—हि० मूज।

य

यव—हि० जौ।
यवचिचो तल—हि० सत्यनाशी के बीजका तेल।
यवक्षार—हि० जवाखार।
यवानो—हि० अजवान। ब० यमानो, यौयद।
यवासा—हि० जवासा। ब० हवासा।
यष्टीमधु—हि० मुलहटी। ब० यष्टीमधु।
यावनल—हि० ज्वार, जोधरी, पोनरी।
मावनालशर—हि० रामशरभेद।
यूथिका—हि० जूही।

र

रक्त एरण्ड—हि० लाल अरण्ड। ब० लोहित एरण्ड।
रक्तकरवीर—हि० लाल कनेर। ब० रक्तकरवी।
रक्तखदिर—हि० लाल खेर।
रक्तगुञ्जा—हि० लाल घंगची, चिरौमटो गुञ्ज, चोटली। बं० लालकुच।
रक्तचन्दन—हि० लालचन्दन।
रक्तचित्रक—हि० लालचिता।
रक्तधत्तूर—हि० लालधतूरा। ब० रक्त धुतुर।
रक्तपलाश—हि० लालपलास, ढाक, केसु, खाकरिया। ब० रक्तपलास।
रक्त पाटली—हि० लाल पाडरि। ब० रक्त पारुल।
रक्तपादी—हि० लजाल, लज्जावन्ती।
रक्त पिण्डालू—हि० रतालू, रतण्डा, दमणिया।
रक्तबन्धूक—हि० लाल दुपहरिया।

रक्तबोल—हि० बीजेसार।
रक्तरोहितक—हि० रोहिडा रोहेरा।
रक्तशिग्रु—हि० लाल सहजना।
रक्तत्रिवृत—हि० लाल निसोथ।
रक्तागस्त्य—हि० लाल अगस्तिया। ब० रक्तबक।

रक्तापामार्ग—हि॰ लाल औंगा, चिरचिरा। ब॰ लाल आपाग।

रक्तापुनर्नवा—हि॰ साठ, गदह पूर्णा ब॰ लाल पुनर्नवा।

रक्ताम्लान—हि॰ लालकटसरैया, पोहावांसा। ब॰ रक्तांझांटी, झांटी।

रक्तावसु—हि॰ लाल वसु।

रक्तोत्पल—हि॰ लाल कमल, चन्द्रविकाशी।

रसाञ्जन—हि॰ रसाञ्जन, रसोत।

रसोन—हि॰ लहसन, काटा। ब॰ रसुन।

राजखर्जूरी—हि॰ राजपिण्ड खजूर।

राजगिरा—हि॰ कन्नकाघास।

राजतरुणी—हि॰ बड़ा श्वेतो गुलाब।

राजधत्तूर—हि॰ राजधतूरा बं॰ राजधुतुरा।

राजपलाण्डु—हि॰ लाल प्याज।

राजवदर—हि॰ रायवेर।

राजमाष—हि॰ खेसारी भेद।

राजरीति—हि॰ सोन पितल।

राजादनी—हि॰ खिरनी। ब॰ क्षिरनि, खेरखेजूर।

राजाम्र—हि॰ कलमी आम। ब॰ लता आम।

राजार्क—हि॰ लाल मन्दार। ब॰ रक्त मदार।

राजावर्त्त—हि॰ रेवटी।

राजिका तैल—हि॰ राईका तेल।

राजिका पत्र—हि॰ राईकी शाक।

राल—हि॰ रार, राल। ब॰ धुना।

रास्ना—हि॰ रासना, रायसन। ब॰ रास्ना।

रीठाकरञ्ज—हि॰ रीठा।

रुद्रदन्ती—हि॰ रुद्रवन्ती।

रुद्रजटा—हि॰ ईश्वरमूल।

रुद्राक्ष—हि॰ ब॰ रुद्राक्ष।

रेणुका—हि॰ ब॰ रेणुका।

रोमक—हि॰ सूर्य्यखार, रेह गवा, रेहगमानोन, रेहका नमक।

रोहिणी—हि॰ रोहिणी।

रौप्य—हि॰ रुपा, चादी।

रन्ध्रवश—हि॰ पोलेवास।

ल

लकुच—हि० बड़हर। बं० माट।
लघुदन्ती—हि० दती। ब० दन्ती।
लघुपीलु—हि० छोटा पील्‌।
लघुबदरी—हि० छोटी बेर।
लघुशमी—हि० छोटा समी।
लघुशणपुष्पी—हि० छोटी शण-पुष्पी।
लघुलिसातक—हि० गटनी, लभेरा।
लताकरञ्ज—हि० क करञ्जा, करञ्जवा।
लवणक्षार—हि० लोणखार।
लवङ्ग—हि० लौंग। ब लवङ्ग।
लक्ष्मणा—हि० सफेद कटेरी, श्वेतभटकटैया।
लक्ष्मणाकन्द—हि० लक्ष्मणाकंद।
लामज्जक—हि० पोन्नावाला।
लाक्षा—हि० लाख व० लाक्षा।
लोहकिट्ट—हि० मण्डूर, लोह-सिङ्घानिका, किट्टी, सिङ्घान।
लोध्र—हि० लोध।
लांका—हि० खिसारी, कसूर।

व

वचा—हि० वच। ब० वच।
वज्रक्षार—हि० नोसादर।
वट—हि० बड़, बर। बं० वट।
वटपत्री पाषाणभेदी—हि० बड़ पत्ती पाषाणभेदी।
वत्सनाभ—हि० बचनाग, तिलिया विष।
वत्सादनी—हि० छिरेटा, छिरहटा। बं० पातालगरुडी।
वनन्ध्या उपोदकी—हि० जङ्गली पोई।
वनबीजपूर—हि० जङ्गली बि-जौरा।
वनशृङ्गाटक—हि० छोटा गो-खरू।
वन्यदमनक—हि० जङ्गली दवना
वरक—हि० वटी।
वरुण—हि० बरना। वरुण।
वर्बरक—हि० वर्बर चन्दन।
वल्लिदूर्वा—हि० वल्लोदूब।
वर्षामूपाक—हि० विषखोसरा।
वसपत्र—हि० सफेद वसु।
वानीर—हि० जलबेत।

वार्ताकी—हि० बैगन, भटा। व० वेगुन।

वाराही—हि० भेटो, मिश्रीलो कांद।

वार्षिकी—हि० बेल।

वालुकी—हि० वालुकी ककडी।

वासक—हि० अरुसा, अडूसा व० वासक।

वासन्ती—हि० मधुमाधवी।

वास्तुक—हि० बथुवा। व० वेतुया।

व्याघ्रनख—हि० व्याघ्रनख।

विकण्टक—हि० हिंगोटा।

विकङ्कत—हि० कंटाई, किङ्किणी। व० बंइचो।

विटखदिर—हि० दुर्गन्ध खैर।

विडङ्ग—हि० वायविडङ्ग।

विदार कन्द—हि० विदारीकंद, दानी विलियाकन्द।

विमला—हि० बिमला।

विष—हि० व० विष।

विषमुष्टि—हि० विगडोडी, करेंडी।

विष्णुकन्द—कोंकण देशमें प्रसिद्ध है।

विष्णुक्रान्ता—हि० विष्णुक्रान्ता।

वृक्षाम्ल—हि० विषाविल मदाटा। व० मदाटा।

वृत्तमल्लिका—हि० वृषद मोतिया।

वृद्धदारु—हि० विधारा। व० वृद्धदारुक।

वृद्धि—गौड देशमें प्रसिद्ध।

वृश्चिका—हि० विछवा।

वृश्चिकाली—हि० वृश्चिकाली।

वेतस—हि० वेत।

वेत—हि० बडावेत। व० वे त

वे र—हि० वविल।

वैक्रान्त—हि० वैक्रान्त।

वैडूर्य—हि० वैडूर्य।

वपरिया—लज्जालू—हि० बडी लज्जालू।

वन्दाक हि० वन्दा, वन्दाक। व० [illegible]।

वंश—हि० बांस। व० वंश।

वंशाङ्कुर—हि० बांसके अङ्कुर।

वंशपत्री—हि० वंशपत्री तृण।

वंशरोचना—हि० वंसलोचन।

श

शण—हि० सन।

शणपुष्पा—हि० शणहुली, शणई, घुनरू। व० शणवणई।

शतपत्रा—हि० शेवती, गुलदावरी।

शतपुष्पादन—हि० सोआ।

शतावरी—हि० छोटी सतावर। व० शतमूली।

शताह्वा—हि० सोआ। व० शुल्फा।

शबरचन्दर—हि० शबरचन्दन।

शमी—हि० समी, छेकरा सफेद कोकर। व० शाइशावला।

शर—हि० सरपना।

शरपुङ्खा—हि० सरफोका।

शशाण्डुली—हि० एकप्रकारकी ककडी।

शाक—हि० सागवन। व० शेगुन।

शाखोट—हि० सिहोडा। व० श्याओडा।

शालि—हि० शालि।

शालिपर्णी—हि० सरिवन, शालवन। व० शालपानि।

शाल्मली—हि० सेमर। वं० सिमु

शाल्मलीकन्द—हि० सेमलकन्द।

शिनिवार—हि० शिरिआरे सिलवारी। व० शुनिशाक शेमेला।

शिग्रु—हि० पीला सहजना व० पीत सजिना।

शिग्रु तैल—हि० सहजनेका तैल

शिग्रुपत्रशाक—हि० सहजनेके पत्तेकाशाक।

शिरीष—हि० शिरस, झिकणी व० शिरीष।

शिल्पिका—हि० शिल्पिकातृण

शिलाजतु—हि० शिलाजीत।

शुनक चिल्ल—हि० कुत्तरचील

शूकधान्य—हि० शूकधान्य।

शेफालिका—हि० वन निर्गुण्डी

शैलेय—हि० पत्थरफूल, छर रा, भूरिछला। व० शैलज

शैवाल—हि० काई, जलकुम्भी व० पाना।

शोभाञ्जन—हि० काला सहज

शोभो—हि० सालानामकजग हल्दी।

शङ्ख—हि० शङ्ख।

शङ्खपुष्पो—हि० शङ्खाहुली, कौडोयाला। ब० चोरकांचको।

शङ्खिनो—हि० शङ्खवेल।

शिंशपा—हि० शोशम, सिसव। ब० शिशु।

शिम्बोधान्य—हि० शिवोधान्य।

शुण्ठी—हि० सोंठ, सुंठ। ब० सुंठ।

शृङ्गाटक—हि० सिङ्घाडा।

शृङ्गी—हि० काकडासिङ्गो। ब० काकडासृङ्गो।

श्यामाक—हि० सावा, समा। ब० श्यामाघास।

श्योनाक—हि० सोनापाठा, अरलू, टेटू। ब० सोना।

श्रावणी—हि० छोटी मुण्डो। ब० मुडुरो, भुंइकदम, यलकुडो।

श्रीताल—हि० श्रीताड।

श्रवमी—हि० मोक्षाकाई।

श्रीवेष्ठ—हि० विशेषधूप।

श्लेष्मान्तक—हि० लिहसोडा, निसोरे, बहुवार।

श्वेत अगस्त्य—हि० सफेद अगस्तिया, हथिया। बं० श्वेत वक।

श्वेत एरण्ड—हि० सफेद एरंड, अरण्डा।

श्वेत करवीर—हि० सफेद कनेर। ब० श्वेत करवी।

श्वेत खदिर—हि० सफेद खैर।

श्वेतचिल्ली—हि० श्वेतचिल्ली।

श्वेत जीरक—हि० सफेद जीरा। बं० शुक्लजीरा।

श्वेत टङ्कण—हि० सफेद सोहागा।

श्वेत तुलसी—हि० सफेद तुलसी।

श्वेतदूर्वा—हि० सफेद दूब।

श्वेत धत्तूर—हि० सफेद धतूरा। ब० श्वेत धुतुरा।

श्वेत पाटली—हि० सफेद पाडोर। ब० शतपारुल।

श्वेतपाषाणभेद—सफेद पाषाणभेद।

श्वेतबृहती—हि० सफेद बडी कटाई।

श्वेत बन्धूक—हि० सफेद दुपहरिया।

श्वेतमरिच—हि० सफेद मिरच।

श्वेत मवरुवा—हि० सफेद मरुआ।
श्वेतमन्दार—हि० सफेद मंदार। व० श्वेतमदार।
श्वेत रोहितक—हि० सफेद रोहिडा।
श्वेत लोघ्र—हि० पडानो लोध।
श्वेत वचा—हि० सफेद बच।
श्वेत वणपुष्पो—हि० सफेद शणपुष्पो।
श्वेत शरपुङ्ख—हि० सफेद सरफोका।
श्वेत शिग्रु—हि० सफेद सहजना।
श्वेतशिंशपा—हि० पिला सिसव।
श्वेतकटभो—हि० सफेद कटभी, करही।
श्वेतपुनर्नवा—हि० विषखोपडा। व० श्वेतपुनर्नवा।
श्वेताम्लो—हि० पनसोखा, पटकोवा।
श्वेतार्क—हि० सफेद आक। व० श्वेत आकन्द।
श्वेतार्जक—हि० सफेद अजवला।
श्वेतावसु—हि० सफेद वसु।
श्वेतोत्पल—हि० सफेद कमल, चन्द्रिकाश्री।

ष

षड्भुजा—हि० खरबूजा। व० खरमूंजा।
पारेवर—हि० वानेवत।

स

सप्तपर्ण—हि० छितवन, सतवन, व० छातिम।
सप्तष्टिल—हि० नवास्त्र, के सुश्राहह।
समुद्रफल—हि० कैयफल।
समुद्रजलफेन—हि० व० समुद्रफेन
समुद्रलवण—हि० ममक, सा समुद्रनोन। व० करकचलवण।
सरल—हि० धूप सरल। व० सरलकाष्ठ।
सर्ज—हि० बडा शाल। व० भाजी राल।
सर्पाक्षो—हि० सरहंधी गण्डिनी, सुगन्ध नकुलकान्द। संसर्य कङ्कालिका।
सर्पिणो—हि० सर्पिणी।
सर्वक्षार—हि० साबू।

सल्लकी—हि॰ शालई।
सह्री (सलैहो) पिप्पली—हि॰ सिंहली पिप्पली।
सहचर—हि॰ सफेद कसेरैया।
सहदेवी—हि॰ सहदेई। व॰ पीतपुष्प, दण्डत्पल।
साखण्ड—हि॰ पडवांस, बडी माई, छोटो माई।
सातेला—हि॰ शातला, थूहरका भेज। व॰ मिजविशेष।
सारिवा—हि॰ गोरीसर, गोरिआवाज। व॰ अनन्तमूल।
सार्षपपत्र—हि॰ सरसों का शाक।
सार्षप तैल—हि॰ सरसोंकातेल।
सिकता—हि॰ बालू रेती।
सिक्थक—हि॰ मोम।
सिगुडी—हि॰ गेगुडी।
सितदर्भ—हि॰ कुशदाभ—डाभ, डाभडो।
सितपलाश—हि॰ सफेद पलास व॰ श्वेत पलाश।
सिद्धार्थ—हि॰ सफेद सरसों।
सीसक—हि॰ सीसा।
सुगन्धभूस्तृण—हि॰ सुगन्धतृण।
सुरपुन्नाग—हि॰ सुरपुन्नाग, कमल। व॰ क्वियान-फुल।
सुवर्णकदली—हि॰ सोनकेला।
सुवर्णकेतकी—हि॰ सुवर्णकेतकी।
सुवर्णगैरिक—हि॰ सुवर्ण गेरु।
सुवर्णमाक्षिक—हि॰ सोना माखी।
सूक्ष्मथोलिका—हि॰ छोटीलोनी।
सूरण—हि॰ सूरन, जमीकन्द। व॰ ओल।
सूर्यकान्त—हि॰ अगिवो कांचि।
सौराष्ट्री—हि॰ वोपीचन्दन।
सौवर्चल—हि॰ सोचर, नोन, कालानमक, छोहा रकोडा। व॰ सचललवण।
सौवीर—हि॰ काला सुरमा।
साम्भर—हि॰ साम्भरलोण।
सिन्दूर—हि॰ सिन्दूर।
सिन्दूरी—हि॰ सिन्दुरिया, जाफर लटकन।
सिन्दुवार—हि॰ श्वेत सम्भालु, गिर्गुण्डी, गेउडी सेंदुआरि। व॰ निसिन्दा।
सैन्धव—हि॰ सैन्धानमक, लाहोरी निमक।

चतुर्थ संस्करणका विज्ञापन।

बड़े आनन्दका विषय है, कि फिर "वैद्यक शिक्षा"का चतुर्थ संस्करण भी छप गया। तृतीय संस्करण को दो हजार प्रति जितनी जल्दी बिकी उतनी आशा हमें न थी। अवश्य यह ईश्वर की कृपा व ग्राहक अनुग्राहक गणोंके सहायताका फल है। इस बार नये उत्साहसे "वैद्यक-शिक्षा"के चतुर्थ संस्करण की ५ हजार प्रतियां हमने छपवाई हैं। तृतीय संस्करणमें बहुत कुछ त्रुटियां रह गई थी इस बार उन त्रुटियों का सुधार कर दिया गया है। इसके सिवाय आयुर्वेदीय संस्कृत नामावलीका हिन्दी और बङ्गला भाषाका सर्व्वसाधारणके समझने लायक पुस्तकके अन्तमें एक निघण्ट दिया गया है।

अन्तमें पाठकोंसे सविनय निवेदन है कि यदि कोई त्रुटि या भूल रह गई हो तो कृपाकर सूचित करें जिसे हम पञ्चम संस्करण में सन्निवेशित करेंगे।

कलकत्ता,
सम्वत् १९८०।

भवदीय—
श्रीशक्तिपद सेन वैद्यराज।

श्रीगणेशाय नमः ।

वैद्यक-शिक्षा ।

प्रथम खण्ड ।



स्वास्थ्यविधि ।

"स्वस्थ वृत्त यथोद्दिष्ट य सम्यगनुतिष्ठति ।
स समा शतमव्याधिरायुषा न वियुज्यते ।"—चरकसंहिता ।

चिकित्सा शास्त्रका उद्देश्य ।—स्वास्थ्य सम्पादन करनाही चिकित्सा शास्त्रका मुख्य उद्देश्य है। रोग उत्पन्न होनेसे चिकित्सा द्वारा उसका निवारण करना जैसा आवश्यक है, वैसही रोग आक्रमणके पहिले जो सब उपायों के अवलम्बन करने से रोग उत्पन्न न हो, उसका प्रतिपालन करना उससेभी अधिक आवश्यकीय है। स्वास्थ्य रक्षाही रोगोत्पत्तिके निवारण का एकमात्र उपाय है। यथोपयुक्त बल वर्णादि सम्पन्न निरोग शरीर से निर्दिष्ट आयुके उपभोगका नाम स्वास्थ्य है तथा जिस रीति के आहार विहारादि से स्वास्थ्यकी रक्षा होतीहै उसको स्वास्थ्यविधि कहते हैं। शरीरीमात्रको स्वास्थ्य एकान्त प्रार्थनीयहै, कारण ऐहिक, पारत्रिक जितने कामहैं सबका मूल स्वास्थ्यहीहै। शरीर निरोग न रहनेसे ऐहिक सुखजनक विद्या, धन यश, अभीष्ट लाभ, अथवा व्रत यज्ञादि पारलौकिक धर्ममूलक कार्य्य सम्पादन, ये दोमें कोई

कार्य्यभी सम्पन्न नही हो सक्ता। वस्तुत एक मनुष्य स्व गुणयुक्त अनुकूल पुत्र कलत्रादि-परिवार परिवृत नष्ट स्वास्थ्य होनेसे जैसा दुःखित होताहै, दूसरा मनुष्य सम्पूर्ण निरोग पर ये सब सुखोसे वंचित रहने परभी वैसा दुःखित नही होता। यही सब कारणोको विचार करके आर्य्य मनोषिगण जो सब उपायोके अवलम्बन करनेसे, मनुष्यगण जराव्याधि प्रभृतिसे छुटकारा पा सके वही सब उपदेशोका उल्लेख चिकित्सा शास्त्रमें पहिले कियाहै। हमभी उसी रीतिसे इस पुस्तकके आरम्भमे प्रथम स्वास्थ्यरक्षाके विषयमें कई एक संक्षिप्त नियम सन्निवेशित करते है।

शारीरिक स्वास्थ्य लक्षण।—स्वस्थ व्यक्ति अर्थात् जिनके शरीरमे वात, पित्त और कफ यह तीन दोष, रस, रक्त मास, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र और ओज यह अष्टधातु और मूत्र, पुरीष, स्वेदादि मल समूह उपयुक्त मात्रामे है, उनको ब्राह्म मुहूर्त्तमे अर्थात् चार दंड रात रहते बिछौनेसे उठ कर मल मूत्रादि त्याग कर दन्तधावनसे मुख धोना चाहिये। पूर्व या उत्तर मुख बैठकर करञ्ज, करवीर, आकन्द, मालती, अर्ज्जुन, खैर अथवा कटु-तिक्त और कषाय रसयुक्त कोई काठकी कूची बनाकर दन्तमासको छोडकर दातको साफ करना, तथा सोना, चादी, ताम्बा सीसा या पीतलकी बनाई जीभीसे जिह्वा साफ करना इस रीतिसे दन्त प्रभृति साफ और मुखकी दुर्गन्धि नाश होनेसे अन्नादिमे रुचि होतीहै। अजीर्ण, वमन, श्वास, कास, ज्वर, तृष्णा, मुखपाक और हृद्रोग, नेत्ररोग, शिरोरोग तथा कर्णरोगसे पीडित मनुष्योको दतुवनसे दात साफ करना उचित नहीहै, सफेद मिट्टी, कोयलेकाचूर्ण, कडेकी राख आदिसे उनको दात साफ करना चाहिये। प्रातःकालकी तरह तीसरे पहरकी भी दतुवनसे मुख साफ करना चाहिये।

व्यायाम।—इसके बाद व्यायाम (कसरत) करना उचित है। अर्द्ध शान्ति बोध व्यायामकी मात्रा निर्दिष्ट है, अर्थात् ललाटमे पसीना आना और ईषत् दीर्घ निःश्वासादि लक्षणसे अर्द्धशान्ति अनुभव कर व्यायाम बंद करना। शीत और वसन्तके सिवाय और ऋतुयोंमें व्यायाम कुछ कम करना चाहिये। कारण, अधिक व्यायाम इस ऋतुमें करनेसे, तृष्णा, क्षय, प्रमतक (श्वास विशेष) रक्तपित्त कास, ज्वर और वमन प्रभृति उत्कट रोग होनेका डर है। उचित मात्रामें व्यायाम करनेसे, शरीरकी लघुता, कष्ट सहिष्णुता, अग्निकी दीप्ति, मेदक्षय और अङ्गका सुगठन आदि उपकार होता है। बालक वृद्ध और वातपित्त तथा अजीर्ण रोगीको व्यायाम करना निषेध है।

तैलाभ्यङ्ग।—व्यायामके बाद सब शरीर को थोडी देरतक मर्द्दन करना आवश्यक है, इससे व्यायाम जनित श्रम दूर होने पर सर्वाङ्गमें विशेषकर मस्तक, पैरका तलवा और कानके छेदोंमें तैल मर्द्दनकर स्नान करना। शरीरमें तैल मर्द्दन करनेसे शरीर दृढ, पुष्ट, कोमल, सुखस्पर्श, और सुन्दर त्वकयुक्त होताहै, तथा इससे जरा, शान्ति और विकृत वायु दूरहो आयुकी वृद्धि होताहै। मस्तकमें तैल मर्द्दन करनेसे, खालित्य (टाक), केशकी अकाल पकता और केशका झडना आदि रोग दूरहो मस्तक और कपालक बलकी वृद्धि, केशके मूलकी दृढता, दीर्घत्व और कृष्णत्व, इन्द्रिय समूहोंकी प्रसन्नता और सुनिद्रा होतीहै। पैरके तलवोंमें तैल मालिश करनेसे पदद्वयकी कर्कशता, रूक्षता और स्पर्शानभिज्ञता आदि दोष दूर हो, स्थैर्य्य और बलवृद्धि, सुकुमारता और आंखकी ज्योति बढतीहै, औरभी पैरका फटना गृध्रसी वात और स्नायु सङ्कोचका आशङ्का नही रहतीहै। कानके छेदमें तैल

डालनेसे ऊंची आवाज सुनना और बहिरापन आदि वायुजनित कर्णरोग तथा मन्याग्रह और हनुग्रह प्रभृति वातज पीड़ा उत्पन्न नहीं होती। वस्तुतः तैलाभ्यङ्ग सर्व्वतोभावसे करना उचित है। चर्म, कलस और गाडीके चक्रमें तेल देनेसे जैसे बहुत दिन तक स्थायी रहता है, मनुष्य शरीरभी वैसही तैलाभ्यङ्गसे बहुत दिन तक सबल और कार्य्यक्षम बना रहता है। वमन विरेचनादिके बाद, कफ रोगी और अजीर्ण रोगीको तैलाभ्यङ्ग करना उचित नहीं है।

स्नानविधि।—तैल मर्द्दनके बाद साफ और बहते पानीसे स्नान करना, अभाव में साफ पानी गरम कर ठंढा होने पर स्नान करना हो तो, मस्तकमें गरम पानी न देकर ठंढा पानी देना चाहिये, कारण गरम पानी शारीरिक बलप्रद होने परभी मस्तकमें देनेसे केश और चक्षुके बलको नष्ट करताहै। स्नान करनेसे शरीरकी दुर्गन्ध, मैल, दाह, पसीना, वीभत्सता भारीपन, तन्द्रा, और खजुली आदिका नाश होताहै तथा शारीरिक बलवृद्धि और अग्निकी दीप्ति होतीहै। स्नानके बाद पहिले गीले अंगोछेसे बदन पोंछना, फिर सूखे वस्त्रसे बदन पोंछकर, साफ सूखा वस्त्र पहिरना और चन्दन आदि सुगन्धित द्रव्यका अनुलेपन करना चाहिये। अर्द्दित रोग, नेत्र, कर्ण और मुखरोगमें, अतिसार रोगमें, पीनस रोगमें, अजीर्ण रोगमें और आहारके बाद स्नान करनेसे अनिष्ट होता है।

आहार।—स्नानके बाद परिष्कृत स्थानमें ऋजु भावसे बैठकर उपयुक्त मात्रासे ईषत् उष्ण, स्निग्ध मधुरादि छ रस सम्पन्न, बलकर रुचि जनक, और विश्वस्त प्रियजनका दिया भोज्य पदार्थ न बहुत जलदी और न बहुत देरसे मौनावलम्बन पूर्व्वक भोजन करना। जितना भोजन करनेसे कुक्षि, हृदय या पार्श्वद्वयमें दर्द

और शरीर भारी मालूम न हो अथवा उदर और इन्द्रिय समूहोंकी प्रसन्नता मालूम हो, क्षुधा पिपासाकी शान्ति हो और शयन उपवेशन, गमन, निश्वास, प्रश्वास और कथोपकथनमें कष्ट न हो वही आहारकी मात्रा है। किन्तु भोज्यवस्तुकी गुरुता और लघुतासे उसकी मात्रा स्थिर करना उचित है,—गुरुपाक अर्थात् देरमें हजम होनेवाला पदार्थ अर्द्ध तृप्ति अर्थात् आधा पेट और लघुपाक द्रव्य पेटभर खाना उचितहै। उपयुक्त मात्रा आहार न कर अल्प मात्रा या अधिक मात्रा भोजन करनेसे विशेष अनिष्ट होनेकी आशङ्का है। अल्पाहारसे तृप्ति नहीं होती, तथा उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है, बल, वर्ण, आयु, रस रक्तादि धातु समूह और ओज क्षीण होता है, तथा मन, बुद्धि और इन्द्रिय समुदाय उत्तम और यावतीय वायु रोग उत्पन्न होते हैं। अधिक मात्रा आहार करनेसे युगपत् समुदाय दोष कुपित हो अजीर्ण, अग्निमान्द्य, विसूचिका (हैजा) अलसक प्रभृति दुरारोग्य रोग समूह उत्पन्न होते हैं। अपरिष्कृत स्थान, शत्रुघर, नीच जातीका घर, प्रात सन्ध्या और सायमन्ध्या प्रभृति समयमें उत्तर मुख बैठकर, पहिलेका आहार अच्छी तरह जीर्ण न होनेपर, अन्यमनस्क भावमें अथवा ज्वरादि आहार निषिद्ध रोगसे पीड़ित होनेपर आहार करना उचित नहीं है। इसके सिवाय शीतल द्रव्य, पर्य्युषित (वासी) और सूखी वस्तु, विरुद्ध वीर्य्य और चीर मत्स्यादिके तरह सयोग विरुद्ध द्रव्यभी आहार करना अनुचित है।

आहारान्ते कर्त्तव्य।—भोजनके बाद जायफल लताकस्तुरीका फल, शीतलचीनी लौंग, छोटी इलायची, कपुर, और सुपारी आदि मसालायुक्त पान खाना चाहिये, इससे खायाहुआ द्रव्य समूह लारमें मिलकर हजम होता है, और मुखकी विरसता

दूरही सुगन्धयुक्त होता है। इसके बाद थोडी देर बायें तरफ लेटना चाहिये। दिनको भोजनके बाद सोना उचित नही है। कारण दिनको सोनेसे कफ-पित्त प्रकुपित हो हलीमक, शिर-शूल, स्तैमित्य, गात्रगौरव, अङ्गमर्द, अग्निमान्द्य, हृदय उपलेप, शोथ, अरोचक, हृल्लास, पीनस, अर्द्धावभेदक, कोठ, व्रणपिडिका, कण्डु, तन्द्रा, कास, गलरोग प्रभृति और बुद्धिनाश, स्रोतो रोध, और इन्द्रिय समूह दुर्ब्बल आदि रोग होनेकी आशङ्का रहती है। पर जिनको सङ्गीत अध्ययन, मद्यपान, अधिक रात्रि जागरण, मैथुन, भारवहन, पथ पर्य्यटन आदि कामोमे क्लान्ति हुई है और अजीर्ण, क्षत, तृष्णा, अतिसार, शूल, श्वास, हिक्का, उन्माद, पतन या आघातादिसे पीडित तथा क्रोधी, शोकार्त्त, भीरू, वृद्ध, बालक, क्षय या दुर्ब्बल है उनके हकमे दिवा निद्रा उपकारी है। साधारणत दिवा निद्रा मना रहने परभी ग्रीष्म ऋतुमे स्वभावत रुक्ष और इस ऋतुमे सूर्य्यकिरण तेज और रात्रि मान अति अल्प होनेके कारण दिवा निद्रा अनिष्टजनक नही है। किन्तु मेदस्वी, कफ प्रकृति या कफ रोग पीडित और दुषित विषादिसे पीडित ऐसे मनुष्यको ग्रीष्म ऋतुमेभी दिवा निद्रा अनिष्ट कारक है।

भोजनके बाद शारीरिक परिश्रम जनक कार्य्य, तेज चलनेवाली सवारीमे चढना और आंच तथा धूपमे बैठना उचित नही है। दो पहरके पहिले या तीसरे पहर को भोजन करना अनुचित है।

तीसरे पहरको जब सूर्य्यकी किरण ठढी हो तब थोडी देर बगीचा आदि खुलासे स्थानमे टहलना चाहिये, इससे अग्निकी दीप्ति, शारीरिक फूर्त्ती और मन प्रफुल्लित होता है। टहलती समय जुता पैरमे रहना चाहिये, इससे पटदयमे किसी तरहका कष्ट नही होता और आखके हकमे उपकारी है। धूप, वृष्टि या

शिशिरके समय कहीं जाना होतो छाता शिरपर लगाना अवश्य उचित है।

रातको एक पहरके भीतर उपर कहे अनुसार उपयुक्त मात्रामें आहार करना चाहिये। रातको दधि भोजन करना कदापि उचित नहीं है। आहारके बाद सूखा-साफ और हवादार घरमें अवस्थानुसार पलंग, चोकी, चारपाई आदि पर ऋतु भेदानुसार कोमल सुखस्पर्श बिछौनेपर सोना चाहिये। रातको ६ घंटेसे ८ आठ घंटे तक सोना उचित है। इससे कम या अधिक देर तक सोनेसे शारीरिक कृशता, दौर्ब्बल्य, और कई कठिन रोग अथवा मृत्युतक होनेका डर है। इसमें मनुष्य मात्रको स्वास्थ्य रक्षाके विषयमें आहारादिके भांति उपयुक्त मात्रा निद्रा करनाभी एकान्त आवश्यक है।

स्त्री-सहवास।—शरीर रक्षाके लिये सहवास अर्थात् मैथुनभी नितान्त उपयोगी है। ऋतु भेदसे उपयुक्त कालमें अनुरागिनी और अनुकूला स्त्रीमें उपगत होना चाहिये। रजस्वला, कुष्ठादि रोग पीड़िता, स्वकीय अनभिमतरूपा या अनाचार विशिष्टा, अन्यासक्ता स्त्री, परस्त्री, दुष्टयोनि, पश्वादि योनि, योनि भिन्न गुह्यद्वारादि अन्य छिद्रमें अथवा हस्तमैथुन नहीं करना। तथा प्रातःसन्ध्या या सायसन्ध्या, पूर्णिमा, अष्टमी, चतुर्द्दशी, अमावस्या, सक्रान्ति और श्राद्ध दिन प्रभृति निषिद्ध दिनको, देवालय, चतुष्पथ श्मशान, जलाशय गुरु ब्राह्मण आदिका मकान शराबकी दुकान आदि स्थानमें अथवा जहां बहुत मनुष्य रहें ऐसे स्थानमें मैथुन करना उचित नहीं है। यावतीय रोगसे पीड़ित मनुष्यको मैथुन करना नहीं चाहिये।

ऋतुचर्य्या शीत और हेमन्तमें।—यह सब निर्द्दिष्ट

नित्य कर्म्मके सिवाय ऋतुभेदानुसार कोई विशेष नियम प्रतिपालन करना चाहिये। हेमन्त और शीत ऋतुमें शीतल वायुस्पर्शादिसे पेटके भीतरकी अग्नि रुद्ध होती है इससे अग्निबल उसवक्त बढता है तथा उपयुक्त मात्रा आहार न मिलनेमें रसादि धातु समूहको परिपाक करता है, इससे इस ऋतुमें अधिक गोधूमादि निर्म्मित अम्ल और लवण रसयुक्त स्निग्ध पिष्टकादि भोज्य, जलज और आनूप प्रभृति माम अभ्यास रहनेमें मद्य, दूध, और दूधकी बनाई वस्तु और मिष्टान्न प्रभृति खाना चाहिये। स्नान, पान, आचमन, और शौचादि कार्य्यमें गरम पानी व्यवहार करना। रेशम, कपास, और पशुलोम निर्म्मित वस्त्रसे बदन ढाकना, उष्णगृह, और उष्ण शय्यामें शयन करना, इस ऋतुमें रोज मैथुन करनेसेभी शरीरमें किसी प्रकारकी हानिकी आशङ्का नहीं है। कटुतिक्त और कषाय रसयुक्त द्रव्य, लघु द्रव्य, और वायुवर्द्धक द्रव्य भोजन, वायु सेवन, और दिवा निद्रा आदि हेमन्त और शीतमें परित्याग करना चाहिये। हेमन्त और शीतके आचरण प्राय एकही तरहहै, इसलिये दोनोकी ऋतुचर्य्या एक साथ लिखी गयी है, पर शीतके न्युनाधिकसे पूर्व्वोक्त आचरण समूहमें किंचित हेर फेर करना आवश्यक है।

वसन्तमें।—हेमन्तका सञ्चित कफ, वसन्त कालके सूर्य्यके प्रखर किरणसे कुपितहो पाचकाग्निको दूषित करता है, इससे बहुतेरे रोग होनेकी सम्भावना है। अतएव वसन्त ऋतुमें वमनादिसे कफको निकालना उचित है। इस ऋतुमें लघुपाक, रुक्ष-वीर्य्य, कटु, तिक्त, कषाय और लवणयुक्त अन्नादि, शश, आदिके मासका आहार और स्नान पान आचमन और शौचादि कार्य्यमें थोडा गरम पानी व्यवहार करना चाहिये। पोशाक और बिछौना

हेमन्त ऋतुकी तरह व्यवहार करना। युवती स्त्रीका सङ्ग प्रशस्त है। गुरु स्निग्ध द्रव्य और अम्ल, मधुर रस भोजन, दिवा निद्रा आदि वसन्त कालमें अनिष्ट कारक है।

ग्रीष्ममें।—ग्रीष्मकालमें मधुर रसयुक्त शीतल और स्निग्ध द्रव्य आहार और पान करना चाहिये। इस ऋतुमें जंगली पशु पक्षीका मांस, घृत, दूध, शालि धान्यका भात, आदि भोजन, शीतल स्थानमें रहना दिवा निद्रा, रातको शीतल स्थानमें और शीतल बिछौने पर शयन, सुशीतल उपवन और जलाशयके तीर आदि स्थानमें विचरण हितकर है। कपास निर्मित हलका पोशाक इस समयमें व्यवहार करना। लवण, अम्ल और कटुरसयुक्त तथा उष्ण वीर्य्य द्रव्य भोजन, मैथुन और मद्यपान ग्रीष्म ऋतुमें निषिद्ध है। मद्यपानका विशेष अभ्यास हो तो अधिक पानी मिलाकर थोडा मद्यपान करसकते हैं।

वर्षामें।—वर्षामें ग्रीष्मसञ्चित वायु कुपित होता है, इससे अनुवासन कर्म्म (स्नेहपिचकारी) से वायुको शान्त करना चाहिये। इस ऋतुमें अग्निबल लोप होनेके कारण आहार हलका करना चाहिये। वर्षाऋतुमें पानी बरसनेसे किसी वक्त शीतकालकी तरह, किसी वक्त पानी न बरसनेसे ग्रीष्मकालकी तरह अनुभव होता है। इससे इस ऋतुका पान, आहार, शय्या, और पोषाक आदि विचार कर शीत, ग्रीष्म, वसन्त आदिके तरह समय समय पर परिवर्त्तन करना आवश्यक है। खाने पीनेकी चीजमें थोडा मधु मिलाकर खाना पीना चाहिये। जंगली मांस, पुराना यव, गोधूम वा धान्यादि अन्न और अधिक खट्टा, लवण और स्निग्ध द्रव्य भोजन करना उचित है। वृष्टि, धूप या सर्दी

वरका पानी गरम कर ठंढा होने पर पान और स्नान करना चाहिये। मद्यपान करना हो तो ग्रीष्मकालकी तरह पुराना मद्य बहुत पानी तथा थोडा सहत मिलाकर पीना। इसवक्त रूईका साफ कपडा पहिरना उचित है। वृष्टि और वृष्टिजन्य भूवाष्प (माटीके भीतरसे एक प्रकारका गैस उठता है उसको भूवाष्प कहते है) शरीरमें न लगने पावे। दिनको सोना, और धूप आदिमें फिरना, नदीके पानीसे स्नान, व्यायाम और मैथुन इस समय में बहुत अनिष्टकारक है।

शरत्में।—शरत कालमें वर्षा ऋतुका सञ्चित पित्त सहसा अधिकतर सूर्य्य किरण प्राप्त हो कुपित हो उठता है। इससे इसवक्त विरेचनसे पित्तको शान्त और जलौकादिसे रक्त मोक्षन करनेकी विधि है। लघुपाक, शीतल, मधुर और तिक्त-रस संयुक्त अन्नपान हितकारी है यव गोधूम और धान्यादिका अन्न, लाव, चटक, हरिण, शश, मेष प्रभृतिके मास, नदीमें स्नान और पान, निर्म्मल और हलका वस्त्र परिधान, सुकोमल और सुखस्पर्श शय्या तथा चन्द्रकिरण सेवन करना उचित है। क्षार द्रव्य, दही, जलज और आनूपमास भोजन, तेल मर्द्दन शिशिर और पूर्व्वदिशा की वायु स्पर्श शरत् कालमें अनिष्ट कारक है।

साधारणत वसन्तकालमें वमन, शरत कालमें विरेचन और वर्षाकालमें अनुवासन विधिका उपदेश रहनेपर भी मास भेदसे इसकी विशेष विधि कहते है,—जैसे—चैत्रमासमें वमन, श्रावणमें अनुवासन और अगहनमें विरेचन कराना उचित है।

ऋतुभेदसे ऋतुचर्य्या।—ऋतु भेदमें जो सब स्वास्थ्य विधि उपर कह आये है, अपने अपने प्रकृति अनुसार उसका थोडा परिवर्त्तन करना आवश्यक है। वायु प्रकृतिके मनुष्यका वायु

जिसमें शान्त रहे, सब ऋतुमे वैसाही आहार विहारादिका आचरण करना। उसही पित्त प्रकृतिके मनुष्यको पित्तनाशक और श्लेष्म प्रकृतिवालेको श्लेष्म नाशक आहार विहार करना चाहिये। स्निग्ध, उष्ण, मधुर, अम्ल और लवण रसयुक्त द्रव्य भोजन, शीतल पानीमे स्नान, शीतल जल पान, सम्वाहन (हाथ पैर दबाना) सर्व्वदा सुखजनक कार्य्य, घृत तैलादि स्नेह द्रव्य व्यवहार, अनुवासन (स्नेह पिचकारी) अग्निदीपक और पाचक औषधादि सेवनसे वात प्रकृतिके व्यक्तिका वायु शान्त रहता है। मधुर तिक्त और कषाय रस संयुक्त शीतल द्रव्य पान भोजन, घृत पान, सुगन्धित द्रव्य सूंघना, मोती हीरा और पुष्पादिको माला धारण, गीत वाद्य आदि श्रुति सुखकर शब्द सुनना, प्रियजनोंके साथ बात चीत, ठंढी हवा और चन्द्रकिरणमे फिरना, मनोरम उपवन, नदीतीर या पर्व्वत शिखर प्रभृति मनोहर स्थानमे विचरण और विरेचन तथा तिक्त घृतादि औषध सेवनसे पित्त प्रकृतिके मनुष्यका पित्त शान्त रहता है। कटु तिक्त और कषाय रसयुक्त तथा तीक्ष्ण उष्णवीर्य्य द्रव्य पान भोजन, सन्तरण, अश्वारोहण, व्यायाम, रात्रि जागरण, रुक्ष द्रव्य समूहद्वारा गात्र मर्द्दन, धूमपान, उपवास, उष्ण वस्त्र परिधान, और वमनादि क्रियासे श्लेष्म प्रकृतिके मनुष्यका श्लेष्म प्रशमित होता है। अतएव अपनी अपनी प्रकृति विचार कर उपर लिखे उपदेशोंको जहांतक बने पालन करना चाहिये।

स्वास्थ्यान्वेषीका कर्त्तव्य।—यह सब दैनिक कार्य्य और ऋतुचर्य्याके सिवाय औरभी कई एक सदाचार स्वास्थ्यान्वेषी मनुष्यगणोंको अवश्य पालन करना उचित है। इससे संक्षेपमें उसकोभी यहा लिखते हैं। सवेरे स्नानके बाद और शामको ईश्वर

चिन्ता प्रभृति धर्म्म कार्य्यका अनुष्ठान करना। देवता ब्राह्मण गुरु और पूज्योंकी सर्व्वदा भक्ति करना। यथासाध्य गरीबको खबर लेना और अतिथिकी सेवा करना। जितेन्द्रिय, निश्चिन्त, अनुव्रत, निर्भीक, लज्जाशील, क्षमाशील, प्रियभाषी, धार्म्मिक, अध्यवसायी और विनयी होना। सर्व्वदा परिष्कार वस्त्रादि परिधान और भद्रजनोचित वेश रखना। सब प्राणियोंपर आत्मावता प्रकाश करना। परस्त्री और पर सम्पत्ति पर लोभ नहीं करना। कभीभी किसी तरहके पापका अनुष्ठान या पापीके सगमें नहीं रहना, दूसरका दोष और गुप्त बात किसीके पास प्रकाश नहीं करना। बड़े आदमी या भले आदमीसे विरोध नहीं करना। किसी तरह की खराब सवारी, वृक्ष या पर्व्वत शिखर पर न चढ़ना, जोरसे हसना विकट भावसे बैठना, असम स्थान या सङ्कीर्ण स्थानमे सोना, मुह बन्दकर जम्हाई लेना, हसना या छीकना, विना कारण नासिका मर्द्दन, दात कटकटाना, नाखून घिसना, हाडसे हाडपर मारना, ज्योतिष्क पदार्थ देखना, अकेला शून्य घरमे रहना, जगल-मे फिरना, स्नान करने पर पहिरे हुए वस्त्रसे बदन पोछना, मल मूत्रका वेग रोकना, शामको आहार निद्रा और मैथुन, रातको अपरिचित स्थानमे जाना आदि कामोको त्यागना उचित है। रातको किसी जगह जानेकी आवश्यकता होने पर सिरमे उष्णीक, पैरमे जता, हाथमें छड़ी और सगमें आदमी तथा रोशनी अवश्य लेना चाहिये। रातको अपरिचित स्थानमे जाना उचित नही है। स्वास्थ्यविधि सम्बन्धमे इतनाही कहना यथेष्ट होगा कि जिस कामसे शारीरिक या मानसिक किसी प्रकारके अनिष्टकी सम्भावना हो वैसा काम कभी नही करना चाहिये।

नियम पालनका फल।—उपरोक्त स्वास्थ्यविधि प्रति-

पालन करनेसे सर्व्वदा मनुष्य निरोग रहकर निर्दिष्ट आयु उपभोग कर सकता है सुतरां ऐहिक और पारत्रिक सब कार्य्य निर्व्विघ्न सम्पादन कर इहकालमें उत्तम गति पानेको समर्थ होता है। अतएव मनुष्यमात्रको स्वास्थ्य रक्षाके विषयमें यत्नवान होना उचित है।

नियम अपालनका फल।—स्वास्थ्यविधि पालन न करनेसे शरीरमें नानाप्रकारके रोगोंका प्रादुर्भाव होता है। कभी सम्पूर्ण रूपसे स्वास्थ्यरक्षा करने परभी अभिघातादि आकस्मिक कारणसे भी रोग होता है। चाहे जिस कारणसे हो, रोग उत्पन्न होते ही उसके उपशमनका उपाय करना चाहिये। किसी रोगको सामान्य समझकर छोड़ना नहीं चाहिये, कारण सामान्य रोगभी प्रथम अवस्थामें उपेक्षित होनेसे वही क्रमशः असाध्य हो जानका गालकमें जाता है। अतएव रोग होतेही चिकित्सकसे परामर्श लेकर उसका प्रतिकार करना चाहिये। कोई रोग असाध्य होने परभी चिकित्सामें त्रुटि नहीं करना, कारण बहुतेर असाध्य रोगभी आराम होते देखा गया है। रोग होनेपर डरना नहीं, तथा उसका प्रगाढ़त्तान्त चिकित्सकसे कहना, और चिकित्सकके परामर्श अनुसार सब काम करना। रोग असाध्य या उत्कट होनेसे चिकित्सक या आत्मीयगण रोगीसे न कह कर रोगीको सर्वदा सामान्य रोग कहकर आश्वास देना चाहिये कारण रोगी हताश या असन्तुष्ट होनेसे साध्य रोगभी असाध्य हो जाता है। रोगीके अनुगत, निरस्त और प्रिय २।१ आदमी सर्वदा पासमें रहकर आश्वासपूर्ण प्रिय वाक्यसे उसको सन्तुष्ट रखें। रोगीके पास बहुत आदमीके निश्वासादिसे घरकी वायु दूषित होकर रोगीका अनिष्ट होनेका डर है। जो घर सूखा, परीष्कृत और प्रवात अर्थात् जिसमें

वायु अच्छीतरह खेलती रहे ऐसे सुन्दर घरमें रोगीको रखना। पहिरनेका कपड़ा सूखा और साफ होना चाहिये, दिनभरमें कमसे कम दोबार पहिरनेका कपड़ा बदलना तथा उसका बिछौना सूखा नरम और साफ रहना चाहिये। किसी कारणसे बिछौना खराब होनेसे अथवा साधारणतः दो तीन दिन पर बदलना उचित है। सेवा करनेवाले सर्वदा सतर्क रहकर चिकित्सकके आदेशानुसार काम करे और आहार विहारादि कार्य्यसे रोगी किसीतरहका कु-नियम करने न पावे, इस विषयमें विशेष सावधान रहे। चिकि-त्साके लिये उपयुक्त चिकित्सक निर्व्वाचन करना चाहिये। चिकित्सा शास्त्रमें व्युत्पन्न, दृढ़कर्म्मा और कृतकर्म्मा, औषधादि सब उपकरण विशिष्ट और दयावान, इन सब गुणयुक्त चिकित्सकको चिकित्साका भार देना चाहिये। अज्ञ चिकित्सकसे कभी चिकित्सा नही कराना। उपयुक्त चिकित्सकके चिकित्सासे मृत्युभी अच्छी है तथापि अज्ञ चिकित्सकसे आरोग्य लाभकी आशा करना उचित नही है। आयुर्वेदका प्रधान ग्रन्थ चरकसंहितामें इस विषयमें बहुत दोष लिखा है,—

कुर्य्यान्निपतितो मूर्ध्नि सशेषं वासवाशनिः ।
सशेषमातुरं कुर्य्यान्नत्वज्ञमतमौषधम् ॥

मस्तकमें वज्राघात होनेसे कदाचित् जीनेकी आशा कर सकते है तथापि अज्ञ चिकित्सकको दी हुई औषधसे जीवन रक्षाकी आशा नही करना चाहिये।

जो सब स्वास्थ्यविधि प्रतिदिन आवश्यक है, वही सब यहां लिखी गयी है। अब पर रोग परीक्षाके विषयमें कतिपय नियमोंका लिखना आवश्यक है।

—o—

रोग-परीक्षा।

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्।
ततः कर्म भिषक् पश्चात् ज्ञानपूर्वं समाचरेत्॥

चरकसंहिता।

पहिले रोगको परीक्षाकर, फिर उसका औषध विचार कर चिकित्सा करना, यही चिकित्सा शास्त्रका उपदेश है।

रोग परीक्षाकी आवश्यकता।—वस्तुत चिकित्साका प्रधान अङ्ग रोग परीक्षा है। उचित रीतिसे रोग निश्चय न होने पर उसकी औषधभी निश्चय नही हो सकती। कारण जिसका जो नाम है उस नामसे न पुकारनेसे जैसे जवाब नही मिलताहै तथा किसी समय वही आहूत व्यक्ति क्रुद्ध होता है वैसेही अनिश्चित रोगमे किसी प्रकारके औषधसे प्रतिकारकी आशाभी वृथा है, तथा उससे अकसर रोगकी वृद्धि और जीवन नाश होते देखा गया है। अतएव पहिले रोगकी परीक्षा करना आवश्यक है।

परीक्षाका उपाय।—सक्षेपमे रोग परीक्षाका तीन उपाय है,—शास्त्रोपदेश, प्रत्यक्ष और अनुमान। प्रथमत रोगीसे सब अवस्था अवगत हो, शास्त्रोपदिष्ट लक्षणसे मिलाना, फिर अनुमानसे रोगका आरम्भ या दोष और बलाबल निश्चय करना।

रोगोसे अवस्था अवगत होते समय सब इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष करना आवश्यक है। रोगोका वर्ण, आकृति परिमाण, (क्षीनता और पुष्टता) और कान्ति, तथा मल, मूत्र, नेत्र प्रभृति यावतीय देखनेके विषयको देखकर, रोगोके मुखसे उसकी सब अवस्था सुनकर, अङ्गकूजन, सन्धिस्थान या अङ्गुली पर्व समूहोका स्फुटन आदि शरीरके सब लक्षण देखकर, शारीरिक गन्ध प्रकृत है या विकृत हुआहै उसकी परोक्षाके लिये सब शरीरगत गन्ध मल मूत्र शुक्र और वान्त पदार्थ आदि सूंघकर तथा सन्ताप और नाडोकी गति आदि स्पर्शकर मालूम करना। केवल अपने रसनेन्द्रियसे कोई विषय जानना असम्भव है, इससे मधु मेहादिमे मूत्रादिकी मिष्टता, रोग विशेषमें सब शरीरकी विरसता और रक्त पित्तमे रक्तका स्वाद जानना हो तो दूसरे जोवसे परोक्षा कराना। शरीरमें कीडे उत्पन्न होनेसे शरीरको विरसता और मक्खो बैठनेसे मिष्टता अनुमान करना चाहिये। मूत्र मोठा होनेसे, उसमें चींटो लगतो है। रक्त पित्तमे प्राण रक्त वमन हुआ है वा नहो सन्देह होनेसे, काक कुक्कुर आदि जन्तुको चटाना, यदि वे चाट जाय तो प्राण रक्त और न चाटेतो रक्तपित्त का रक्त निश्चय करना। अग्निवल, शारीरिक वल, ज्ञान और स्वभाव प्रभृति विषयोंको कार्य्य विशेषसे अनुमान कर लेना। भूख, प्यास, रुचि, अरुचि, ग्लानि, और सपना देखना प्रभृति रोगोको पूछकर मालूम करना। अति सामान्य भेदके दो तीन रोगोंमें किसो रोगका निर्णय न होनेसे साधारण कोई औषध देकर उसके उपकार और अनुपकारसे रोगका निश्चय करना। लक्षण विशेषसे रोगको साध्यता याप्यता और असाध्यता जानना। अरिष्ट लक्षणसे रोगोका मृत्युमालूम करना।

उक्त विषयोंमें नाडोपरोचा, मूत्रपरोचा, नेत्र परोचा, जिह्वा परोचा प्रभृति तथा अरिष्ट लचण सहजमें मालूम नहो होताहै, इससे क्रमश प्रत्येक विषयोका विवरण लिखतेहै।

—०—

नाड़ो परोचा।

नाडोपरोचा।—हाथका मणिवन्ध (पहुचा) और अगुलोके जडमें एक गाठहै, उस गाठ को अगुलोसे दबाकर नाडोको गतिमालूम करनेको नाडी परोचा कहते है। नाडी परोचामें पुरुषका दचिण हाथ और स्त्रीके बाये हाथकी नाडोकी परोचा करना, कारण स्त्री पुरुषके शरीर भेदकी साथ नाडी आदि-काभी मूल विपरीतहै, सुतरा पुरुषके दचिण हाथमें जो नाडी मालूम होतीहे वही नाडी स्त्रीके बायें हाथसे अनुभूत होतीहै। इसके सिवाय दोनो पैरके गुल्फ ग्रथिके नीचे, कठ, नासिका और उपस्थमेंभी नाडी मालूम होतीहै। मुमुर्षुअवस्थामें जब हाथकी नाडी साफ मालूम न हो तब उक्त नाडोयोंसे परोचा करनेकी विधिहै।

परीक्षाकी नियम।—रोगीकी नाड़ीके उपर परोचा करनेवालेके दचिण हाथकी तर्ज्जनी, मध्यमा और अनामिका अगुली स्थापन पूर्व्वक बाये हाथसे रोगीका वही हाथ थोडा टेढा-कर केहुनोमें जो नाडी है उसको थोडा दबाना चाहिये, मणिवधमें तर्ज्जनी अगुलीके नीचेवाली नाडी वायु, दूसरी पित्त और तीसरी कफकी जानना। किसी किसीका मतहै, कि तर्ज्जनीके नीचे

वायु मध्यमाके नीचे पित्त और अनामिकाके नीचे कफकी नाडी अनुमान करना चाहिये।

परीचाका निषिद्धकाल।—तैल मर्द्दनके बाद, निद्रित अवस्थामें, भोजनके वक्त या भोजनके बाद भूख प्यास लगी रहने पर, या धूपसे गरम रहने पर और व्यायामादि श्रमजनक कार्य्यके बाद नाडी परीचा करना उचित नही है, कारण उस वक्त नाडीकी गति विकृत रहतीहै, इससे परीचणीय विषयका अच्छी तरह अनुभव नही होताहै।

स्वस्थ मनुष्यके नाडीकी गति।—स्वस्थ मनुष्यकी नाडी केंचुएके गतिकी तरह, अर्थात् धीरे धीरे चलतीहै अथच उसमें किसी तरहका भारीपन मालूम नही होता। किन्तु किसी किसी वक्त स्वस्थ मनुष्यकीभी नाड़ी अन्य रूप हो जाया करतीहै, जैसे,—सवेरे नाडी स्निग्ध, दोपहरको गरम और तिसरे पहरको तेज अनुभूत होतीहै।

अस्वस्थ व्यक्तिके नाडीकी गति से प्रकोप भेद जानना।—अस्वस्थ अवस्थामें वायुके आधिक्यसे टेढो, पित्तके आधिक्यसे चचल और कफके आधिक्यसे नाडी स्थिर चलतीहै। साधारणत इसी रीतिसे औरभी कईप्रकार विशेष गतिकी कल्पना करना चाहिये जैसे वायुमें टेढो याने सर्प, जलौका (जोंक) आदिके गतिकी तरह। पित्तमें चचल गति काक, वटेर और भेक आदिके तरह और कफके आधिक्यमें स्थिर भाव राजहंस, मोर, कबूतर, घुघु, और मूर्गा आदिके गतिकी तरह अनुमान करना। दो दोषके आधिक्य में, वायु और पित्त यह दो दोष प्रबल रहनेसे नाडीकी गति कभी सर्पकी तरह कभी भेकको तरह लचित होती

है, वायु और कफ यह दो दोष प्रवल रहनेसे नाडीकी गति कभी सर्पकी तरह कभी राजहंसकी तरह होती है, पित्त और कफ यह दो दोषके प्रवलतामें नाडीकी गति कभी भेकके तरह और कभी मोर आदिके तरह मालूम होतीहै। तीन दोषके आधिक्यमें, पृथक पृथक दोष भेदसे सर्प, बटेर, हंस आदि जीवोंकी गति लक्षित होतीहै। यही त्रिविध गति अनुभवमें यदि पहिलेही वायु लक्षण सर्पादिकी गति फिर पित्त लक्षण बटेर प्रभृति और उसके बाद कफ लक्षण हंस आदिकी गति मालूम हो तो पीडा साध्य जानना, और उसके विपरीत होनेसे अर्थात् सर्प गतिके बाद हंस गति अथवा हंस गतिके बाद बटेर गति ऐसा अनुभव होनेसे रोग असाध्य जानना।

ज्वरके पहिले नाडीकी गति।—नाडीकी गति दो तीन बार भेक आदि जीवके गतिकी तरह मंथर होती है। पर वह धारावाहिक रूपसे रहने पर दाह ज्वर होता है। सान्निपात ज्वरके पहिले नाडीकी गति पहिले बटेर पक्षीकी तरह टेडी, फिर तित्तिर पक्षिकी तरह उंची और अन्तमें वार्तीक पक्षीकी तरह मन्थर भावसे चलती है।

ज्वरमें नाडीकी गति।—ज्वरमें नाडी उष्ण स्पर्श और वेगगामी होती है। अतिशय अन्न भोजन करने पर, मैथुनके बाद अर्थात् जिस रातको मैथुन हो उस रातको अथवा उसकी दूसरे दिन सवेरेभी नाडी गरम रहती है, किन्तु तेज नहीं रहती, इसी लक्षणसे ज्वरके नाडीकी गतिकी विभिन्नता अनुमान करना चाहिये।

वात ज्वर।—साधारणतः वात ज्वरमें वायुके आधिक्यसे नाडीके गतिका लक्षण जो कह आयेहै वही मालूम होता है, वायु

सञ्चित होनेके समय अर्थात् ग्रीष्म ऋतुमें आहार परिपाकके समय और दोपहर तथा मध्य रात्रिको वात ज्वर होनेसे नाडी मृदु, कृश और धीमी चलती है। वायुका प्रकोप अर्थात् वर्षा ऋतुमें आहार परिपाकके बाद और शेष रातको वात ज्वर होनेसे नाडी भारी, कठिन और शीघ्र गामी होती है।

पित्त ज्वर।—पित्त ज्वरको नाडीमें ग्रन्थिलता (गठीलापन) और जडता मालूम नहीं होता पर तर्ज्जनी, मध्यमा और अनामिका यह तीन अगुलीके नीचे स्पष्ट मालूम होताहै और गतिका वेगभी अधिक होताहै। पित्तका सचयकाल अर्थात् वर्षा ऋतुमें, आहारके बाद, सवेरे और शामको पित्तज्वर होनेसे वही सब लक्षणोंके सिवाय दूसरा कोई लक्षण दिखाई नही देता। पित्तके प्रकोपमें अर्थात् शरत् ऋतुमें आहार परिपाकके समय और दोपहर तथा मध्य रात्रिको पित्त ज्वर होनेसे, नाडी कठिन हो इतनी तेज चलती है कि मानो नाडी मासको भेद कर बाहर निकल आवेगी।

कफ ज्वर।—कफके आधिक्यमें नाडीकी गति जैसी निर्द्दिष्ट है, साधारण कफ ज्वरमें वैसीही गतिके सिवाय और कोई लक्षण नही मालूम होता। कफका सचयकाल अर्थात् हेमन्त और शीत ऋतुमें भोजनके समय शामको और शेष रातको अथवा कफका प्रकोप काल अर्थात् वसन्त ऋतुमें आहारके बाद सवेरे और शामको कफ ज्वर होनेसे नाडी तन्तुकी तरह कृश और गरम पानीमें भीगे रस्सीमें जैसी शीतलता मालूम होतीहै वैसीही शीतल अनुभव होती है। कफके सचय और प्रकोप कालमें कफके नाडीकी गतिमें कोई विभिन्नता मालूम नही होता है।

द्विदोषमें।—वायु पित्त यह दो दोषज ज्वरमें नाडी चञ्चल स्थूल और कठिन मानो झूम झूम कर चलना मालूम होता है। वात कफ ज्वरमें नाडी मन्द और थोडी गरम मालूम होती है। इस ज्वरमें कफका भाग कम और वायुका अधिक रहनेसे नाडी रुक्ष और धारावाहिक अर्थात् लगातार तेज चलती रहती है।

पित्त कफमें नाडी क्षय, कभी अधिक शीतल, कभी थोडी शीतल और मृदुगामी होती है।

त्रिदोषमें।—त्रिदोषके आधिक्यमें नाडीकी गति जैसी ऊपर कह आये है, त्रिदोष सन्निपात् ज्वरमेंभी वैसीही गति मालूम होतीहै। इसके सिवाय, औरभी इसके नियम निर्दिष्ट है उसी नियमोंके अनुसार इस ज्वरकी साध्यता आदिका ज्ञान होता है।

कई विशेष लक्षण।—त्रिदोष जन्य प्राय सभी रोग भयानक होतेहै, विशेषत ज्वर रोग त्रिदोष जन्य होनेसे, अति अल्पकालमें उसमें मृत्युके लक्षण दिखाइ देने लगतेहै। इस से सन्निपात ज्वरमें औरभी कई प्रकार नाडी परीक्षा सम्बन्धीय उपदेश जानना आवश्यक है। त्रिदोषज ज्वरके नाडीमें तीनों दोषोंके लक्षण अच्छी तरह मालूम होने परभी यदि तीसरे पहर नाडीकी परीक्षामें पहिले वायुकी स्वाभाविक वक्र गति फिर पित्तकी स्वाभाविक चञ्चल गति और उसके बाद कफको स्वाभाविक स्थिर गति मालूम हो तो रोग साध्य है, इससे विपरीत भाव अनुभूत होनेसे रोग कष्टसाध्य या असाध्य जानना। इसके सिवाय सन्निपात ज्वरकी असाध्यता जाननेके लिये औरभी कई विशेष नियम निर्दिष्टहै, जैसे नाडीकी गति कभी धीर, कभी शिथिल, कभी स्खलित, कभी व्याकुल अर्थात् त्रास्तव्यक्तिकी तरह इधर उधर

घूमना, कभी सूक्ष्म, कभी बेमालूम होना अथवा अंगुष्ठ मूलमें विच्युत होना अर्थात् अंगुष्ठके नीचे नाडीकी गति मालूम न होना फिर थोड़ेही देर बाद गति मालूम होनेहीसे असाध्य लक्षण जानना। किन्तु भारवहन, मूर्च्छा, भय और शोक आदि में नाडीकी गति ऐसेही लक्षणयुक्त होती है, वह असाध्य लक्षण नहीं है। फलत यावतीय असाध्य लक्षण प्रकाश होने परभी जबतक नाडी अंगुष्ठ मूलसे विच्युत न हो तबतक वह असाध्यका परीचायक नहीं है। इसही सब रोगोंमें अंगुष्ठ मूलसे नाडी विच्युत न होने तक उसको असाध्य नहीं कहना।

ऐकाहिक विषम ज्वर।—ऐकाहिक विषम ज्वरकी नाडी कभी अंगुष्ठ मूलके पास कभी अंगुष्ठ मूलमें रहती है। तृतीयक (तिजारी) और चतुर्थक (चौथइया) ज्वरमें नाडी उष्ण स्पर्श और घूमते हुए पानीकी तरह गति अवलम्बन कर क्रमश दूर होती रहती है। अन्यान्य पीडाके असाध्य अवस्थामेंभी नाडीकी गति ऐसही मालूम होती है, पर उसमें सन्ताप नहीं रहता।

भूतज ज्वरमें।—भूतज ज्वरकी नाडी अत्यन्त वेगवती और उष्णस्पर्श होती है। क्रोधज ज्वरकी नाडी मानो दूसरी नाडीको अवलम्बन कर थोडी टेढी चलती है। कारण ज्वरकी नाडीमानो दूसरी नाडीके साथ मिलकर चलती है, पर इसमें ज्वरका प्रकोप अधिक होनेसे उष्ण स्पर्श और द्रुतगति होती है।

कामज ज्वरमें।—मनुष्य इच्छित वस्तु न पानेसे जैसे इधर उधर घूमता है, वैसही ज्वरमे कामातुर होनेसे नाडीकी गतिभी चचल होती है। ज्वरमें स्त्रीसगकरनेसे नाडी क्षीण और धीमी चलती है। ज्वरमें दही खानेसे ज्वर का वेग और गरमी अधिक होता है।

अम्ल भोजन ज्वरमे।—अधिक खट्टा खानेसे, ज्वर किम्वा दूसरे रोग उत्पन्न होनेमे नाडी अधिकतर सन्तप्त रहती है। काजी पीनेसे ज्वरादि पीडाके नाडीकी गतिकी तरह धीमी चलती है।

अजीर्णमे।—अजीर्ण रोगकी नाडी कठिन और उभय पार्श्वमे जडित भाव मे मन्द मन्द चलती है, इसमे आमाजीर्ण की नाडी स्थूल, भारी और थोडी कठिन, पक्वाजीर्ण में नाडी दुर्व्वल, मन्दगामी और वाताजीर्ण मे नाडी अधिक चलती है।

विसुचिकामे।—विसुचिका (हैजा) रोग मे नाडीकी गति भेकके गतिकी तरह, और किसी किसी वक्त इस रोगमे नाडी का चलना मालूम नही होता तथापि अगुष्ठ मूलसे विच्युत न होनेतक इस रोगको असाध्य न। जानना। विलम्बिका रोगमे भी नाडी भेककी गतिकी तरह चलती है। अग्निमान्द्य और धातुक्षीण रोगमे नाडी क्षीण, शीतल और अत्यन्त मृदु होती है। अग्निप्रदीप्त रहनेसे नाडी लघु और वलवती होती है।

अतिसारमे।—अतिसार रोगमे भेद (दस्त) के बाद नाडी वेदम होजाती है, आमातिसार में नाडी स्थूल और जडवत् होती है। ग्रहणी रोगमे हाथके नाडी की गति भेकके गतिकी तरह और पैरकी नाडी हंसगतिसे चलती है।

मलमूत्रके रोधमे।—मलमूत्र दोनोका एक सङ्ग अवरोध अथवा दोनोका पृथक भावसे अवरोध होनेपर, मल-मूत्रका वेग धारण से और विसुचिका, अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र तथा ज्वर प्रभृति रोगमे मलमूत्र बन्द होकर नाडी सुक्ष्म भेकगतिकी तरह स्पन्दित होती है। साधारणत आनाह और मूत्रकृच्छ्र रोगमे नाडी कठिन और भारी चलती है।

शूलरोगमें।—शूलरोग समूहोमे वायुजन्य शूलरोग मे नाडी सर्व्वदा वक्रगति, पित्तजन्य शूलमे नाडीकी गति अतिशय उष्ण और आमशूल अथवा क्रिमिशूलमें नाडी पुष्ट मालूम होती है।

प्रमेह में।—प्रमेह की नाडी बीच बीच मे ग्रन्थिविशिष्ट बोध होती है। इसके साथ आमदोष रहनेसे नाडी उष्ण होती है।

विष्टम्भ और गुल्म में।—विष्टम्भ और गुल्म रोगमें नाडीकी वक्रगति होती है। किन्तु यह रोग सम्पूर्ण रूपसे प्रकाश पानेके पहिलेही नाडी लताकी तरह उपर को चढती है। विशे-षत गुल्म रोगमें नाडी चञ्चल और पारावत की तरह प्रबल वेगसे घूमती हुई मालूम होती है। उन्माद प्रभृतिकी नाडी भी वैसही चलती हैं।

व्रणादि रोग में।—व्रणादि रोगमें व्रणके अपक्व अवस्था में नाडी की गति पित्तप्रकोप के नाडी की तरह होती है। भगन्दर और नाडी व्रण रोगमे नाडी वायुप्रकोप के नाडी की तरह और अतिशय उष्ण चलती है।

विषभक्ष में।—विष खानेसे, अथवा सर्पादि विषैले प्राणीके काटनेसे, शरीर मे जब विष फैल जाता है, तब नाडी अत्यन्त अस्थिर भावसे चलती है।

रोग परीक्षा के सिवाय नाडी की गतिसे रोगी के मृत्युका काल भी जाना जाता है, यह भी नाडी परीक्षा के अन्तर्गत है, सुतरा वह सब उपदेश भी यहा लिखते है।

मृत्यु नाड़ी के लक्षण।—जिस रोगीकी नाडी थोडी

देर तेज चलकर फिर धीमी हो, तथा शरीर मे शोथ नहो, तो उस रोगीकी मृत्यु सातवें या आठवें दिन जानना।

जिसकी नाडी कभी केंचुवेकी तरह पतली और चिकनी हो और केचुवेकी तरह टेढी गति हो, कभी अतिकृश किंवा एकाएकी बेमालूम हो, अथवा शारीरिक कृशता और शोथादिसे नाडी भी कृश और स्थूल हो तो उसकी मृत्यु एक महीने के बाद होती है।

जिसकी नाडी स्वस्थान (अगुष्ठमूल) से अहेयव स्थान स्खलित हो, तो उसकी मृत्यु तीन दिनमे निश्चय जानना।

यदि किसीकी मध्यमा और अनामिका अङ्गुली के नीचे नाडी मालूम न होकर, केवल तर्ज्जनी के नीचे मालूम हो तो जानना कि उसकी आयु चारदिन और है।

सन्निपात ज्वरमे जिसका शरीर बहुत गरम पर नाडी अत्यन्त शीतल हो तो उसकी मृत्यु तीन दिन बाद होगी।

भ्रमर की तरह नाडी की गति होनेसे अतिद्रुत गतिसे दो तीन बार चलकर फिर थोडी देर अदृश्य और फिर वैमही चलकर अदृश्य, ऐसही बार बार मालूम होनेसे एक दिनमे मृत्यु जानना। यदि किसी की नाडी तर्ज्जनी अङ्गुलीके नीचे मालूम नहो, तथा कभी कभी मालूम हो, तो उसकी मृत्यु १२ पहरसे निश्चय होगी।

जिसकी नाडी तर्ज्जनीके उपर बिजलीके चमकको तरह थोडी थोडी देरपर चलती हो तो उसका जीवन एक दिन और है, अर्थात् ऐसी चालके आरम्भसे लेकर २४ घण्टेके भीतर मृत्यु होती है।

जिसकी नाडी स्वस्थान (अङ्गुष्ठ स्थन्न) मे स्खलित हो कर थोडी

थोडी देर पर चलती हो तथा उसके हृदयमे, यदि जलन अधिक हो तो उस जलनके शान्ति तक उसका जीवन है, अर्थात् जलन शान्तिके साथ साथ उसका प्राण वायु भी निकल जाता है।

नाड़ी स्पन्दन परीक्षा।—नाडीकी गति मालूम कर उसका भेद जानना, अथवा उससे रोगका निश्चय करना और रोगकी साध्यासाध्य अवस्था जानना अतिशय कष्टसाध्य है। केवल शास्त्रोपदेशसे उसका अनुभव नही हो सकता है, अकसर रोगीके नाडी की गति देखते देखते रोगका ज्ञान क्रमश: उत्पन्न होता है। इसीसे आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सकगणोंने घडीके मिनिटमे मिलाकर एक प्रकारके नाडीका ज्ञान आविष्कार किया है। अल्पबुद्धि या साधारण चिकित्सकोंके हकमे यह उपदेश विशेष आवश्यक जानकर, इस ग्रन्थमे उसकोभी लिखते है।

वयोभेदसे स्पन्दन विभिन्नता।—अधिकाश स्वस्थ व्यक्तिकी नाडी हरेक मिनिटमे ६०से ७५ बार तक चलती है। किसी किसी नाडी न्यून सख्या ५० और ऊर्द्ध सख्या ९० बार तक एक मिनिटमे चलती है। उमरके तारतम्यसे नाडीकी गतिभी विभिन्न है। पेटके भीतरके बच्चोकी नाडी हरेक मिनिटमे १६० बार, भूमिष्ठ होनेसे १४० से १३० बार, एक वर्षके उमरतक १३० से ११५ बार, दो वर्षके उमर तक ११५से १००, तीन वर्षके उमरमें १००से ९८ बार, फिर सात वर्षके उमर तक ९०से ९५ बार सातसे चोदह वर्षके उमर तक ८५से ८० बार, यौवन और प्रौढावस्थामे ८० बार, बुढापेमे ६५से ५० बार तक नाडी चलती है।

विभिन्न अवस्थामे स्पन्दनगति।— पानाहारके समय हृत्पिण्डकी क्रिया वृद्धि होती है, इससे नाडीका वेगभी

उसवक्त बढताहै। स्वभावत स्त्री जातिकी नाडी पुरुषकी अपेक्षा १०।१५ वार अधिक चलती है। नाडीकी गति स्वाभाविकके अपेक्षा मन्दगति होनेसे, दुर्व्वलता या मस्तिष्कमे रक्तका आधिक्य हुआ है समझना। ज्वरमे नाडीकी गति स्वाभाविक गतिकी अपेक्षा तेज और उष्ण स्पर्श होती है, स्नायविक दौर्व्वल्यमे नाडी मृदुगति और पुष्ट मालूम होती है, ज्वर संयुक्त सब रोगोमे नाडीकी गति द्रुत और ज्वरके क्राम वृद्धिसे न्यूनाधिक्य होती है। पूरी उमरमे और प्रदाह जनित रोगमे नाडी एक मिनिटमे ७० वारसे भी अधिक नही चलती इससे अधिक गति होनेसे रोग क्रमश कठिन और १५० वारसे अधिक चलनेसे उसी रोगमे रोगीके मृत्युकी आशङ्का है।

—o—

तापमान यन्त्र ।

—'०'—

(थर्म्मो-मिटर ।)

थर्म्मामिटर या तापमान यन्त्र — नाडीज्ञानसे रोग परीक्षा करना साधारण चिकित्सकगणोंके लिये दु साध्य है, इससे पाश्चात्य चिकित्सकोंने शरीरके गरमीकी परीक्षा कर रोग निर्णय करनेका एक यन्त्र आविष्कार किया है। इस यन्त्रको अङ्ग-रेजीमें "थर्म्मामिटर" कहते है। इससे शरीरके गरमीका परिमाण जाना जाता है, इसको हिन्दीमें तापमान यन्त्र कहते है। इस यन्त्रसे गरमीकी परीक्षा करना हो तो, रोगीको करवट सुलाओ तथा नीचेके बगल में यन्त्रका मूलभाग अर्थात् जिस तरफ पारा रहता है उस भागको बगलमें दबाकर रखना। यन्त्र लगा-नेसे पहिले बगलमें पसीना हो तो सूखे कपडेसे पोछ-कर यन्त्र लगाना। यन्त्र दबाती वक्त पारेका भाग बाहर न निकला रहे इसका



१०७ महासङ्कट
तेज ज्वर
१०२ अधिक ताप
१ ० ज्वर
९८ स्वाभाविक ज्वर
तापकी कमी
९५ मन्द
कोलाप्स

ख्याल रखना चाहिये। शारीरिक सन्तापके गरमीसे यन्त्रका पारा क्रमश उपरको उठता है। यन्त्रके उपरी-भागमें कई अङ्क और दाग है, उस दाग और अङ्कके प्रत्येक चिह्नको डिग्री कहते हैं। पारा जितनी डिग्री उपरको उठे, उसी हिसावसे शरीरका सन्ताप निश्चय करना। तापमान यन्त्र बगलमें रखकर परीक्षा करनाही साधारण नियम है। इसके सिवाय, उरू, मुख, सरलयन्त्रमेंभी तापमान यन्त्र देकर परीक्षा करनेकी रीति है। सरलयन्त्रमें ताप निर्णय करना हो तो रोगीको बायें बगल सुलाकर यन्त्र लगाना, मुखमें व्यवहार करना हो तो यन्त्र जीभके नीचे रख मुख बन्द करना। अत्यन्त शीर्ण, अचैतन्य या अस्थिर शिशु रोगीका ताप निर्णय करनेमें सुवीताके अनुसार उक्त स्थानोमें तापमान यन्त्र व्यवहार करना। तापमान यन्त्र व्यवहार करती वक्त ५से १० मिनिट तक रखना। पारा उपरको जैसे उठता है अर्थात् द्रुतगति या मृदुगतिसे उठता है यहभी ख्याल रखना। अधिकांश रोगमें सवेरे और शामको तापका निर्णय करना चाहिये। ताप निर्णय करनेके एक घण्टा पहिलेसे रोगीको स्थिर भावसे रखना उचित है। कठिन रोग समूहोंमें दो दो घण्टेके अन्तरमें ताप निर्णय करना चाहिये।

स्वस्थ शरीरमें स्वाभाविक सन्ताप ९८ डिग्री दशमल् ४ फारन् हीट, २६ वर्षसे कम उमर वालेका स्वाभाविक सन्ताप ९८ डिग्री दशमल् ४ फारन् हीट होता है। व्यायामादि कार्य्यमें अङ्ग चाल्-नासे आग या धूपका बाहरी उत्ताप लगनेसे, ग्रीष्म प्रधान देशमें वास करनेसे और आहारके बाद, सन्ताप इससेभी अधिक होता है। दिवा निद्राके बाद, विश्राममें, परिश्रम करनेमें स्वाभाविक सन्तापकी अपेक्षा डेढ फारन् डिग्री सन्ताप कम होता है। अच्छे

शरीरमे स्वाभाविक सन्ताप रात दोपहरको सबसे कम और प्रात कालसे क्रमश, बढते बढते दिनके दोपरको सबसे अधिक होता है।

साधारण ज्वरमे शरीरका सन्ताप १०१॥ डिग्री फारन् हीटसे अधिक नही होता। प्रवल ज्वरमे १०४ डिग्रीसे अधिक सन्ताप नही होता। १०६॥ डिग्री होनेसे ज्वर साघातिक और १०८॥ डिग्री होनेसे रोगीको मृत्यु होती है। ज्वर या और कोई प्रदाहयुक्त पीडा से कोइ उपसर्ग उपस्थित होनेसे, निर्दिष्ट उत्ताप परिमाणसे उत्ताप अधिक होता है। मुखमण्डलका विसर्प मस्तिष्क आवरक झिल्लीमे दाह, फुम्फुस दाह, अभिन्यास ज्वर, और वसन्त रोगका सन्ताप १०६ या १०७ डिग्री फारन् हीट तक होता है। इसके सिवाय दूसरे ज्वरयुक्त रोगोमे, कदाचित् १०४ या १०१ डिग्री हो तो रोग सामान्य किन्तु यदि १०० या १०५ डिग्री हो और यह सन्ताप सर्व्वदा रहे, तब रोग कष्टसाध्य समझना। १०६ या १०७ डिग्री तक सन्ताप भयजनक और १०८ या ११० डिग्री सन्तापसे मृत्यु निश्चय जानना। उर क्षत या राजयक्ष्मा रोगमे फुसफुस या शरीरके भीतरके और किसी यन्त्रमे घाव होनेसे सन्ताप १०२ १०३ डिग्री और कभी कभी इससे भी अधिक होता है। जैसे घाव बढता है वैसही सन्तापभी बढता रहता है। घाव पककर सामान्य पीप होनेसे शारीरिक सन्ताप १०१ डिग्री होता है। भीतरके घावका अन्यान्य लक्षण प्रकाश होनेके बहुत पहिलेसे शारीरिक सन्ताप क्रमश वृद्धि होता है।

अन्यान्य रक्तस्राव, अनाहार, पुराना रोग, मस्तिष्क और मज्जामे आघात अथवा हृदय, फुमफुस या मूल यन्त्रका कोई रोग पुराना होनेसे शारीरिक सन्ताप दिनको जितना रहता है रातको उससे कम देखा गया है।

यावतीय रोगोंमे शारीरिक सन्ताप १०४से १०५ डिग्री होकर लगातार एक अवस्थामें रहे तो उससे कोई दूसरा उपसर्ग होनेकी सम्भावना है। रोग उपशमके समय शरीरका सन्तापभी क्रमश ह्रास होने लगे तो फिर रोगके आक्रमणका डर नही रहता है। विषम ज्वरमे पुराना चयकारक रोग और तरुण ज्वरमे मृत्युपास आनेसे शरीरका सन्ताप स्वाभाविक उत्तापसे कम होता है। विसूचिका रोगमे मृत्यु उपस्थित होनेसे सन्ताप ७७से ७८ डिग्री फारन हीट तक कम होते देखा गया है।

मूत्र-परीक्षा।



परीक्षाका उपयुक्त मूत्र।—रोग समूहोंका या वातादि दोषोंके निरुपण करनेमें मूत्र-परीक्षाभी विशेष उपयोगी है। निर्दिष्ट लक्षणानुसार मूत्रका वर्ण और अन्यान्य विकृत दोषोंके निश्चय करनेको मूत्र परीक्षा कहते हैं। चार दण्ड रात रहते बिछौनेसे उठकर मूत्रत्याग करती वक्त प्रथम मूत्रधार छोडकर मध्यको मूत्रधार एक कांचके पात्रमे धर रखना, यही मूत्र परीक्षाके लायक है। मूत्र-परीक्षाके समय उसको बार बार हिलाकर बिन्दु बिन्दु तेल डालना।

प्रकृतिभेदसे मूत्रवर्ण।—वात प्रकृति मनुष्यका स्वाभाविक मूत्र श्वेतवर्ण, पित्त प्रकृति और पित्तश्लेष्म प्रकृतिका तैलके तरह, कफ प्रकृतिका आविल अर्थात् गदला, वात कफ प्रकृतिका गाढा और सफेद रङ्ग, रक्त वात प्रकृतिका लाल और रक्तपित्त

प्रकृतिका कुसुम फूलकी तरह मूत्र होता है। रोग विशेष के अन्यान्य लक्षण न होनेसे केवल इसी प्रकारके मूत्र परीक्षासे कोई पीडाकी आशङ्का नहीं है।

दूषित मूत्रके लक्षण।—वायुसे बिगडा मूत्र-चिकना, पीला, किम्वा काला अर्थात् कृष्णपीत वर्ण अथवा अरुण वर्ण होता है। इस मूत्रमे तैल डालनेसे तैल मिला विन्दु विन्दु मूत्रविम्ब ऊपरको उठता है। पित्तमे बिगडा मूत्र लाल तैलविन्दु डालनेसे उसमे बुद बुद उत्पन्न होता है। कफसे बिगडा मूत्र फेनिला और क्षुद्र जलाशयकी तरह गदला होता है। आमपित्त दूषित मूत्र सफेद सरसोके तैलकी तरह मालूम होता है। वात पित्तके मूत्रमे तैल डालनेसे उसमे काले रङ्गका बुद बुद उत्पन्न होता है। वायु और कफ दूषित मूत्रमे तैल डालनेसे मूत्र तैलके साथ मिलकर काजीकी तरह दिखाई देता है। कफ और पित्तका मूत्र पाण्डुवर्ण होता है। सन्निपातिक दोष अर्थात् वात पित्त और कफ ये तीन दोषका मूत्र रक्त या कृष्णवर्ण होता है। पित्त प्रधान सन्निपात रोगीका मूत्र रख छोडनेसे उपरका हिस्सा पीला और नीचेका हिस्सा लाल मालूम होता है। ऐसही वात प्रधान सन्निपातमे मध्यभाग काला और कफाधिक्य सन्निपातमे मध्यभाग सफेद मालूम होता है।

विशेष लक्षण।—प्राय सब रोगीमे यही सब लक्षणोका विचार कर रोगीके दोषका भेद अनुमान करना चाहिये। कई एक रोगमे मूत्र लक्षणका किञ्चित विशेष लक्षण निर्दिष्ट है। जैसे—ज्वरादि रोगमे रस अधिक रहनेसे मूत्र उखके रसकी तरह। जीर्ण ज्वरमे मूत्र छाग मूत्रकी तरह। जलोदर रोगमे घीके दानेकी तरह मूत्रमें एक पदार्थ दिखाई देता है। मूत्रातिसार

रोगमें मूत्र अधिक परिमाण रख छोड़नेसे नीचे लाल रंग मालूम होता है। आहार जीर्ण होनेसे मूत्र चिकना और तैलकी तरह आभायुक्त होता है सुतरां अजीर्ण रोगमें मूत्र विपरीत लक्षणयुक्त होता है। क्षय रोगमें मूत्र कृष्णवर्ण, और इसी रोगमें मूत्र सफेद होनेसे रोग असाध्य जानना।

इसके सिवाय प्रमेह रोगमें मूत्रभेद जैसा होता है, वह प्रमेह रोगमें विस्तृत रूपमें लिखा गया है।

नेत्र-परीक्षा।

प्रकोपभेदसे भिन्न भिन्न लक्षण।—वायु प्रकोपसे दोनो आंखे तीव्र, रूक्ष, धुवाके आभाकी तरह, मध्यभाग धोला या अरुण वर्ण और पुतली चञ्चल होती है, अर्थात् दोनो पुतली सर्व्वदा घुमती रहती है। पित्त प्रकोपसे आंखे उष्ण और पीत, लाल, या हरे रंगकी होती है। इसमें चक्षुदाह और रोगी दियेकी रोशनी सह नही सकता है। कफ प्रकोपसे दोनो आंखे चिकनी अश्रुपूर्ण पीतवर्ण, ज्योतिहीन, भारी और स्थिर दृष्टियुक्त होती है। दो दोषके आधिक्यमें दोनो दोषके लक्षण मालूम होते है। त्रिदोषके प्रकोपसे, अर्थात् सन्निपात रोगमें आंखे काली या लाल रंग, टेढी दृष्टि, भीतरको धसी, विक्षत और तीव्र पुतली, तन्द्राच्छन्न, और थोडी थोडी देरमें बन्द और खुलती रहती है। तथा इस रोगमें आंखे कभी अदृश्य और कभी कई प्रकारके वर्णकी होती है।

रोग आराम होने पर आंखमें क्रमश स्वाभाविक सौन्दर्य्ययुक्त प्रसन्नता और शान्त दृष्टि प्रभृति लक्षण दिखाई देने लगते है।

जिह्वा-परीक्षा ।



वायुके आधिक्यसे जिह्वा शाक पत्रके वर्णकी तरह या पीली, रूक्ष, गोजिह्वाकी तरह कर्कश और फटी होती है। पित्ताधिक्यसे जिह्वा लाल या काली, कफाधिक्यसे सफेद, रसीली, घनी और लिप्त, दो दोषके आधिक्यसे दो लक्षणयुक्त और सन्निपात अर्थात् तीन दोषके आधिक्यसे काली, कर्कश, सूखी, स्फोटकयुक्त और दग्धवत् होती

रक्तका आधिक्य और दाह रहनेसे जिह्वा उष्ण स्पर्श और लाल। ज्वर और दाह रोगमें नीरस। नये ज्वरमें प्रबल दाह, आमाजीर्ण और आमवातके प्रथम अवस्थामें जिह्वा सफेद और चटचटी मालूम होती है। सान्निपातिक ज्वरमें जिह्वा स्थूल, शुष्क, चटचटी, रूक्ष और निर्व्वापित अङ्गारकी तरह काली होती है। यकृत क्रियाके वैषम्यमें और मल या पित्तके अवरुद्ध होनेसे, जिह्वा पाण्डुवर्ण और मयलसे लिप्त रहती है। यकृत प्लीहा आदि पीड़ाकी शेष अवस्थामें और क्षय रोगके बाद जिह्वामें घाव होता है। हैजा, मूर्च्छा, और श्वासमें जिह्वा शीतल स्पर्श होती है। अत्यन्तदौर्बल्य और दाहमें जिह्वा बड़ी होती है। नीरोग मनुष्यकी जिह्वा सर्व्वदा आर्द्र और मद्यपाईकी जिह्वा फटी रहती है।



मुखरस-परीक्षा।

वायु प्रकोपमें मुखरस लवण, पित्त प्रकोपमें तिक्त, कफ प्रकोपमें मधुर, कोई दो दोषके प्रकोपमें दो रसयुक्त और सन्निपात अर्थात् त्रिदोषके प्रकोपमें तीन रसयुक्त होता है।

अरिष्ट-लक्षण।

क्रियापथमतिक्रान्ता केवल देहमाप्लुता ।
दोषा यत् कुर्व्वते चिह्न तदरिष्ट मिहच्यते ॥

अरिष्ट लक्षण और चिह्न।—रोगोत्पादक दोष सब शरीरमें व्याप्त होनेसे जो सब मृत्युके लक्षण प्रकाश होते है उसको अरिष्ट लक्षण कहते है। वस्तुत जिस लक्षणसे भावी मृत्यु अनुभव हो उसीका नाम "अरिष्ट चिह्न" है। चिकित्सा कार्य्यमें अरिष्ट लक्षण पर विशेष लक्ष रखना आवश्यक है, नहीतो किसी वक्त अरिष्ट लक्षणयुक्त रोगकी चिकित्सा कर वैद्यको अपदस्थ होना पडता है अथवा रोगीकी एकाएकी मृत्युसे उसके आत्मीय स्वजनोंको अतिशय दुःख और कष्ट होता है। चाहे जिस कारणसे मृत्यु हो, मृत्युके पहिले अरिष्ट लक्षण निश्चय प्रकाश होता है, पर किसी वक्त अच्छी तरह विचार न करनेसे अरिष्ट लक्षण स्पष्ट अनुभव नही होता है। पृथक पृथक रोग भेदसे जो सब अरिष्ट लक्षण प्रकाश होते है वह प्रत्येक रोग निर्देशके समय लिखूगा। यहा केवल कई साधारण अरिष्ट लक्षण सक्षेपमें लिखते है।

प्रकारभेद।—कई स्वाभाविकविषयका सहसा अस्वाभाविक परिवर्त्तनको अरिष्ट लक्षण कहते है, जैसे शारीरिक कोई शुक्लवर्णकी कृष्णता, कृष्णवर्णकी शुक्लता, रक्तवर्णकी अन्य वर्णता कठिनावयवमें कोमलत्व, कोमल स्थानमें मृदुता, चञ्चल स्थानकी निश्चलता, अचञ्चल स्थानकी चञ्चलता, विस्तृत स्थानकी सङ्कीर्णता, सङ्कीर्णकी विस्तृति, दीर्घकी सूक्ष्मता, सूक्ष्मकी दीर्घता, पतन शीलका अपतन, अपतन शीलका पतन, उष्णका शीतल, शीतलका उष्ण, स्निग्धकी रुक्षता, रुक्षकी स्निग्धता आदि आदि अनुभव होते है। ऐसही भी आदि स्थान का नीचे झुक जाना अथवा उपरको चढना, आंखे घूमना, मस्तक और ग्रीवा आदि अङ्गोंका गिरना, बोली बदलना, शिरमे सूखे गोबरके चूर्णकीतरह पदार्थका निकलना, सबेरे ललाटमे पसीना दिखाई देना, नाकके छेदका लाल होना और फुनसी दिखाई देना, अथवा सर्व्वांगमें फुमरी या तिलका एकाएकी पदा होनेसेभी अरिष्ट लक्षण समझना। जिसके शरीरका आधा भाग- अथवा केवल मुखमण्डलके अर्धभागमें एक रंग और दूसरे भागमे दूसरा रंग मालूम हो तो अरिष्ट लक्षण जानना। रोगीके दोनो ओष्ठ पके जामुनकी तरह काला होनेसे, दांत काला, लाल या नीला अथवा मैला होनेसे रोगीकी मृत्यु स्थिर है। जिह्वा पुरानी, कांटो और कर्कश होनाभी अरिष्ट लक्षण है। दोनो आंखोंका सङ्कोच, परस्पर असमान, स्तब्ध, शिथिल, लाल और आंसू जानाभी अरिष्ट लक्षण है। पर किसीको नेत्ररोगके सबब आंसू जानेसे उसको अरिष्ट नही कहना। शिरके बाल और भौ कङ्गीसे झाडनेको तरह मालूम होना अथवा तेल न लगाने पर भी चिकना मालूम होना, आंखके दोनो पलकोंके बालका गिरना, अथवा एकसे एक मिल जाना,

नाकका छेद बडा होना, शोथ रोग न रहने परभी शोथ रोगकी तरह, मलीन, टेढा, सूखा, फटा, औरछेद बडा होनेसे भी अरिष्ट लक्षण जानना। रोगीका हाथ पैर और सास ठण्ढी हो और जो रोगी मुख पसार कर निश्वास त्याग करे अथवा टूटी सास ले, कोई बात कहते कहते बेहोश हो पडे और अकसर चित्त सोकर दोनो पैर इधर उधर पटके तो मृत्यु पासही बैठी है जानना।

इसके सिवाय औरभी बहुतसे अरिष्ट लक्षण आयुर्व्वेद शास्त्रमें लिखे हैं यहा उसका उल्लेख करना अनावश्यक जान नही लिखा गया।

—o—

रोग-विज्ञान ।



निदान पूर्व्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा ।
सम्प्राप्तिश्चेति विज्ञान रोगाणा पञ्चधा स्मृतम ॥

निदान ।—निदान, पूर्व्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति यही पाच रोगके ज्ञानका उपाय है। जिससे दोष कुपित हो रोग उत्पन्न होता है उसको निदान कहते हैं। विप्रकृष्ट और सन्निकृष्ट भेदसे निदान दो प्रकारका है, विरुद्ध आहार विहारादिको विप्रकृष्ट अर्थात् दूरका निदान और कुपित वातादि दोषको सन्निकृष्ट अर्थात् पासका निदान कहते हे। रोग होनेसे पहिले जो सब लक्षणोंसे भावी रोगका अनुमान होता है उसको पूर्व्वरूप कहते है। पूर्व्वरूप दो प्रकार, सामान्य और विशेष। जिस पूर्वरूपसे वायु पित्त या कफ ये तीन दोषोंकि कोई लक्षण मालूम न होकर केवल भावी रोगका अनुमान हो, उसको

सामान्य पूर्वरुप कहतेहै, और जिस पूर्वरूपसे भावी रोगका दोष भेदतक अनुमान हो उसको विशेष पूर्वरुप कहते है। यही विशेष पूर्वरुप स्पष्ट मालूम होनेसे:उसको रुप कहते है, वस्तुत जिन सब लक्षणोंसे उत्पन्न रोग मालुम हो उसको रुप कहते है। निदान विपरीत या रोग विपरीत अथवा दोनोके विपरीत अव स्थामें औषध सेवन और वैसही आहार विहारादिसे रोग उपशम होनेसे उसको उपशय कहतेहे इसके विपरीतका नाम अनुपशय है। यही उपशय और अनुपशयसे रोगका गूढ लक्षण निश्चय करना चाहिये। दोष समूह कुपित होकर शारीरिक अवयवोंमें अवस्थान या विचरण कर रोग उत्पन्न करता है उसको सम्प्राप्ति कहते है। सख्या, विकल्प प्राधान्य, बल, अबल और कालानुसारसे सम्प्राप्तिके कई प्रकार है। आठ प्रकारका ज्वर, पाच प्रकारका गुल्म और अठारह प्रकारका कुष्ठ प्रभृतिके भेदको सख्या कहते है। दो दोष या तीन दोषके रोगके कुपित दोष समूहोंमें कौन दोष कितना कुपित हुआहे जाननेके लिये प्रत्येक दोषका लक्षण विचार कर जिस अशाशसे विभाग किया जाता है उसको विकल्प कहते है। ऐसही रोगसे मिलित दोष समूहोंमें जो दोष अपने निदानसे दूषित हो वही प्रधान और उसी कुपित दोषके सङ्ग बाकी दो दोष कुपित होनेसे उसको अप्रधान कहते है। जो रोग निदानसे उत्पन्न होता है और उसका पूर्वरुप और रुप सम्पूर्ण प्रकाशित हो वही रोग बलवान और जो अल्प निदानसे उत्पन्न होकर अल्प पूर्वरुप और रुपसे प्रकाश हो उस रोगको हीनबल जानना। नाडी परीक्षा प्रसगमेंकफादि दोष त्रयका प्रकोप काल लिखा गया है, वही काल उन सब रोगोंके आक्रमण और प्रकोपका है।

दोषज और आगन्तुक रोग।—रोग दो प्रकार,

दोषज और आगन्तुक। जिस रोगमें वात पित्त और कफ ये तीन दोष, एक एक कर या दो तीन दोष एक साथ मिलकर उत्पन्न हो उसको दोषज कहते हैं। एक दोष कुपित होनेसे बाकी दो दोषकोभी कुपित करता है इसीसे कोई रोग एक दोषसे नहो होता यही साधारण नियम है। जैसे रोग उत्पादक एक दोष या तीन दोष होता है वैसही नामभी एक दोषज द्विदोषज या त्रिदोषज होताहै। जो सब रोग अभिघात् अभिचार, अभिशाप, और भूतावेश प्रभृति कारणोंसे उत्पन्न होताहै उसको आगन्तुक कहते है। अपने अपने निदानके अनुसार दोष कुपित न होनेसे रोग उत्पन्न नहो होता, किन्तु आगन्तुक रोगमें पहिले यातना प्रकाशहो फिर दोष कुपित होता है यही दोनोमे प्रभेद है।

प्रकुपित वायु, पित्त और कफ यह त्रिदोष रोगोत्पत्तिका सन्निकृष्ट निदानहै, विविध अहित कारक आहार विहारादिके निदानसे तीन दोष कुपित हो रोग उत्पन्न होता है। इसके सिवाय कई रोगका आरम्भभी रोग विशेषका निदान है। जैसे ज्वर सन्तापसे रक्तपित्त रक्तपित्तसे ज्वर, ज्वर और रक्तपित्त यह दो रोगसे राजयक्ष्मा, प्लीहा वृद्धिसे उदर रोग, उदर रोगसे शोथ, अर्शसे उदर रोग या गुल्म, प्रतिश्यायसे खासी, खासोसे क्षयरोग और क्षयरोगसे धातुशोष प्रभृति उत्पन्न होते देखा गया है। उक्त रोगोत्पादक रोगोंमें कोई कोई अन्य रोग उत्पादन कर आपभी रहता है।

यही पाच निदान यावतीय रोगोंके ज्ञानका उपाय है। यहा केवल सक्षेप मात्र लिखा गया है। अत पर प्रत्येक रोगका पृथक पृथक निदानादिके लक्षण लिखते है।

ज्वर।

—०—

ज्वरका प्राधान्य।—जीवमात्रके जन्म और मृत्युके समय ज्वर होना नियत नियम है। शरीरके उत्पत्ति कालहीसे ज्वर होता है इससे पहिले ज्वरहीका उल्लेख करते है। तथा अन्यान्य रोगोंकी अपेक्षा ज्वर अधिक भयङ्कर और ज्वरहीसे यावतीय रोग उत्पन्न होनेकी सम्भावना आदि विचार करने परभी ज्वर सब रोगोंमें श्रेष्ठ लक्षित होता है सुतरां पुराने जमानेसे रोगाध्यायोंमें पहिले ज्वरहीके विषयमें लिखनेकी रीति चली आती है इससे हमभी यहां पहिले ज्वरके विषयमें लिखते हैं।

ज्वरका साधारण लक्षण।—ज्वरका साधारण लक्षण शारीरिक और मानसिक सन्ताप, कारण सन्ताप लक्षण भिन्न ज्वर देखनेमें नहीं आता है। इसके सिवाय पसीना बंद होना और सर्वाङ्गमे पीडा आदि और कई एक ज्वरके साधारण लक्षण है। वस्तुत जिस रोगमें सन्ताप, पसीना बन्द हो और सर्वाङ्गमें दर्द लक्षित हो उसीको ज्वर कहते है। पर पसीना न आना यह नियत नियम नहीं है, कारण पित्त ज्वरमें कभी कभी पसीना होतेभी देखा गया है। लक्षण भेदसे ज्वर बहुत प्रकारके हैं, पर चिकित्सा कार्य्यके सुबीतेके लिये शास्त्रमें ज्वर केवल आठ प्रकारमे विभक्त है, हमभी उसको यहां लिखते है। ज्वर आठ प्रकार जैसे—वातज, पित्तज, श्लेष्मज, वातपित्तज, वातश्लेष्मज, पित्त-श्लेष्मज, सन्निपातज और आगन्तुक, क्रमश इसी आठ प्रकारके ज्वरके लक्षणादि कहते हैं।

साधारण पूर्व्वरूप।—प्राय सब ज्वरमें साधारण पूर्व्वरूप एकही प्रकारका होताहै—जैसे मुखका विरसता, शरीरका भारीपन, पान भोजनकी अनिच्छा, चक्षुद्वयकी आकुलता और अश्रुपूर्णता, अधिक निद्रा, अनवस्थित चित्तता जृम्भा अर्थात् जम्हाइ आना, शरीर सङ्कुचित करनेकी इच्छा श्रम, आन्तिबोध, भ्रान्ति, प्रलाप, रातको नीद न आना, लोमहर्ष दांतका घिसना वायु प्रभृति शीतल द्रव्यपर और आतपादि उष्ण द्रव्य पर थोडी थोडी देरपर इच्छा और अनिच्छा, अरुचि, अजीर्ण, दुर्व्वलता, शरीरमें दर्द, शारीरिक अवसन्नता, दीर्घसूत्रता अर्थात् प्रत्येक कामसे देर लगाना, आलस्य, हितका बात कहनेसे भी बुरा लगना, तथा उष्ण, लवण, कटु और अम्ल वस्तु खानेकी इच्छा। यही सब पूर्व्वरूपको सामान्य पूर्व्वरूप कहते है। इसके सिवाय वातादि दोष भेदसे औरभी कइ विशेष पूर्व्वरूप लक्षित होते हैं, वातज ज्वरके पहिले बार बार जम्हाइ आना पित्तज ज्वरके पहिले दोनो आखोंका जलना और कफ ज्वरके पहिले अतिशय अरुचि होता है। द्विदोषज ज्वरमें पूर्व्वोक्त सामान्य पूर्व्वरूपके साथ कोइ दो दोष विशिष्ट पूर्व्वरूप और त्रिदोषज ज्वरमें वैसही तीन दोष विशिष्ट पूर्व्वरूप प्रकाश होता है। यही सब पूर्व्वरूप सभी ज्वरमें प्रकाश होगे यह निर्द्दिष्ट नियम नही है। दोष प्रकोपक न्यूनाधिक्यसे पूर्व्वरूप लक्षण भी कभी कम और कभी अधिक प्रकाश होता है।

साधारण सम्प्राप्ति।—अनियमित आहारादिसे वायु प्रभृति दोष कुपित हो आमाशयमे जाकर आमाशयको दूषित कर कोष्ठका सन्ताप बाहर निकाल ज्वर उत्पन्न करता है। यही सन्ताप बाहर आनेसे सब शरीर गरम हो जाता है, इसीको ज्वर रोगको साधारण सम्प्राप्ति कहते हैं।

वातज ज्वर लक्षण।—वातज ज्वर,—इस ज्वरमें कम्प, विषम वेग अर्थात् ज्वरागमन और ज्वरके वृद्धिमें विषमता, उष्णादिका वैषम्य अर्थात् त्वक आदि कभी अधिक गरम कभी कम गरम, कण्ठ और ओठका सूखना, अनिद्रा, क्षवस्तम्भ (छीक न आना) शरीरको रूक्षता, मलकी कठिनता, सब अङ्ग विशेष कर मस्तक और छातीमें दर्द, मुखकी विरसता, पेटमें शूलकी तरह दर्द, आध्मान अर्थात् पेट फूलना और जम्हाई आना आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

पित्तज ज्वर लक्षण।—पित्तज ज्वर,—इसमें ज्वरका तीक्ष्ण वेग, अतिसार रोगकी तरह पतला दस्त होना, अल्प निद्रा, वमन, पसीना होना, प्रलापवाक्य, मुखकी तिक्तता, (कड़ुवा होना) मूर्च्छाकी तरह बेहोश होना, दाह, मत्तता, पिपासा, गात्र घूर्णन, कण्ठ, ओष्ठ, नासिका आदि स्थानोंका पाक अर्थात् इन सब स्थानोंमें घाव होना, तथा मलमूत्र और नेत्रादिका पीला होना आदि लक्षण दिखाई देते हैं।

कफज ज्वर लक्षण।—कफज ज्वर,—इसमें ज्वरका वेग मन्द, आलस्य, मुखका स्वाद मीठा होना, शरीरमें स्तब्धता अर्थात् भार बोध खान भोजनमें अनिच्छा, शीत बोध, हृल्लास अर्थात् जी मचलाना, रोमाञ्च, अति निद्रा, प्रतिश्याय अर्थात् मुख नासिकासे पानी बहना, अरुचि, कास, मल मूत्र, नेत्रका सफेद होना और स्तैमित्य अर्थात् शरीर गीले वस्त्रसे अच्छादितकी तरह मालूम होना आदि लक्षण लक्षित होते है।

वातपित्तज ज्वर लक्षण।—वातपित्तज ज्वर,—इस ज्वरमें तृष्णा, मूर्च्छा, गात्र घूर्णन, अनिद्रा, मस्तकमें दर्द, कंठ

और मुख सूखना वमन, अरुचि, रोमाच, जम्हाई आना, सब गाठोंमें दर्द और आखके सामने अधियाला मालूम होना आदि।

वातश्लेष्मज ज्वर लक्षण।—वातश्लेष्मज ज्वर, इस ज्वरमे स्तैमित्य अर्थात् सब शरीरमे आर्द्र वस्त्र आच्छादनकी तरह अनुभव, सब गाठो में दर्द, अधिक निद्रा, शिरमें दर्द, प्रतिश्याय अर्थात् मुख नाकसे पानी बहना, कास, सर्व्वाङ्गमे पसीना और सन्ताप आदि लक्षण प्रकाशित होते है। इसमें ज्वरका वेग अधिक तीक्ष्ण या अधिक मृदु नही होता।

पित्तश्लेष्मज ज्वर लक्षण।—पित्तश्लेष्मज ज्वर, इस ज्वरमे, मुख कफसे लिप्त और पित्तसे कडुवा रहता है, तथा तन्द्रा, मूर्च्छा, कास अरुचि, तृष्णा और बारम्बार दाह और बारम्बार शीत बोध आदि लक्षण प्रकाश होते है।

सन्निपात लक्षण।—त्रिदोषज या सन्निपातज ज्वरको चलित भाषामे विकार कहते है। इसमें कभी दाह, फिर थोडे ही देर बाद शीतबोध, अस्थि समूह, सन्धिस्थल और मस्तकमें दर्द, आखे डबडबी, मैली, लाल, विस्तारित या अतिकुटिल, कानमे कइ प्रकारके शब्द सुनाई देना, कण्ठ मानो धानके छिकलेसे भरा, तन्द्रा, मूर्च्छा, प्रलाप बकना, कास, श्वास, अरुचि, भ्रम, तृष्णा, निद्रा नाश, जीभ कोयलेकी तरह काली और गौकी जीभकी तरह कर्कश, सर्व्वाङ्गमे शिथिल भाव, कफमिश्रित रक्त वा पित्तका निकलना, शिरका इधर उधर फिराना, मल, मूत्र और पसीना बन्द होना, दोषके पूर्णताके सबब शरीरकी कृशता, कण्ठसे बार बार अव्यक्त शब्द निकलना, मुख और नासिका प्रभृति स्थानोमे घाव होना, पेटका भारी होना, रस पूर्णताके सबब वातादि दोष समूहोंका देरसे परिपाक और शरीरमें काला तथा लाल कोठ

अर्थात् बरें काटनेकी तरह शोथकी उत्पत्ति आदि लक्षण प्रकाशित होते है।

निउमोनिया।—सन्निपात ज्वरकी अवस्था विशेषको "निउमोनिया" कहते है। सन्निपात ज्वरमें साधारण लक्षणके सिवाय औरभी कई विशेष लक्षण दिखाई देते हैं। यह पोडा प्रकाश होनेके पहिले अत्यन्त दुर्व्वलता और क्षुधा मन्द होती है। पीडाकी प्रथम अवस्थामें कम्पज्वर, वमन, छातीमे दर्द शिर पीडा, प्रलाप, अस्थिरता और आक्षेप अर्थात् हाथ पैरका पटकना आदि लक्षण दिखाई देते हैं, सम्पूर्ण रूपसे पीडा प्रकाश होनेके बादभी यह सब लक्षण अधिक होनेके सिवाय और भी कई लक्षण अधिक प्रकाश होते है। जैसे छाती छूनेसे दर्द मालूम होना निश्वास प्रश्वासमें कष्टबोध, अत्यन्त काम, लोहेके मोरचेकी तरह मैला और गाढा लसलसा कफ निकलना, वह कफ किसी बरतनमें रखनेसे फिर उलटो नही छूटता। कभी उसी कफके साथ थोडा खूनका निकलना। सातवें दिन मूत्र और पसीना अधिक आना, प्रत्येक मिनिटमें ८० से १२० बार तक नाडोका चलना शरीरका उत्ताप थर्म्मामिटरमें १०३से १०४ डिग्री होना। (किसी किसीको १०७ डिग्री तक उत्ताप होने परभी आराम होते देखा गया है) मुखमण्डल मलिन और चिन्तायुक्त होना, गाल लाल और काला होना और फटना, जीभ सूखी और मैली, क्षुधामन्द आहारमें कष्ट, उदरामय, अनिद्रा, उजियाला देखनेसे कष्टबोध और पीडा प्रकाशके दूसरे तीसरे दिन मुखमण्डल पर छोटो २ फुडियोंका होना। फुसफुसका दूषित होना इस पीडाका प्रधान लक्षण है, कहीं कहीं वह सडभी जाता है। फुसफुस दूषित होनेसे दपत् लाल और मैले रंगका पतला कफ निकालता रहता है। सड

जानेपर दुर्गन्धयुक्त दूधको मलाईको तरह अथवा पीपका तर
कफ निकलता है। इस प्रकार फुसफुस दूषित होने पर पोड
अत्यन्त कष्टसाध्य होती है। फुसफुसमें दाह रहनेसे, वहभी ए
कष्टसाध्यका लक्षण है। शिशु, वृद्ध, स्त्री, विशेषत गर्भिणी स्त्र
और मद्यपायी व्यक्तिको यह रोग होनेसे साधारणत वह दु साध
होजाता है।

सन्निपातके भोगका काल।—सन्निपात ज्वर कभ
भी साध्य नहीं होता। यदि मल और वातादि दोष विबद्ध होय
अग्नि नष्ट हो जाय और सब लक्षण सम्पूर्ण रूपसे प्रकाश होय तो
असाध्य जानना। इसके विपरीत होनेसे कष्टसाध्य होता है
७ दिन ८ दिन, १० दिन, ११ दिन, १२ दिन, १४ दिन, १८ दिन
२० दिन, या २४ दिन तक इस ज्वरसे मुक्ति पानेकी या मृत्यु
होनेकी अवधि निर्दिष्ट है, अर्थात् इस ज्वरमें यदि क्रमश ज्वर
और वातादि त्रिदोषकी लघुता, इन्द्रिय समूहोंकी प्रसन्नता,
सुनिद्रा, हृदय परिष्कार, उदर और शरीरकी लघुता, मनकी
स्थिरता और अन्न लाभ प्रभृति लक्षण प्रकाश हो तथा उक्त अवधि
यदि पूरीहो जाय तो वह रोगी आराम होता है, और यदि दिन
पर दिन निद्रानाश, हृदयकी स्तब्धता, पेट और देहका भारी
होना, अरुचि, मनमें अस्थिरता और बलहानि आदि लक्षण
प्रकाश होय, तो उसी निर्दिष्ट अवधिके भीतरही रोगीकी मृत्यु
होती है। सन्निपात ज्वरके शेष अवस्थामें यदि कानके जड़में
कष्टदायक शोथ हो तो ऐसही कोई रोगी बचता है, पर वह शोथ
यदि प्रथम अवस्थामें हो तो साध्य और मध्य अवस्थामें होनेसे
कष्टसाध्य जानना।

अभिन्यास ज्वर।—अभिन्यास ज्वरमें वातादि दोषत्रय

थोड़ाभी कुपित होकर यदि वक्षःस्थलके श्रोतसमूहोंमें प्रविष्ट होय और आमरसके साथ मिलकर ज्ञानेन्द्रिय और मनको विकृत करे तो अति भयङ्कर कष्टसाध्य अभिन्यास नामक ज्वर उत्पन्न होता है। इस ज्वरमें रोगी निश्चेष्ट और दर्शण, स्पर्शण, श्रवण और घ्राणशक्ति रहित हो जाता है, पासके बैठनेवालोंको रोगी पहचान नहीं सकता है, किसीको कोई बात या शब्द कुछ नहीं समझता, खानेको नहीं मांगता, निरन्तर सूचिका विद्धवत् (सूई गड़ानेकी तरह) यातना अनुभव करना, कोई बात न कहना, सर्व्वदा शिर इधर उधर फिराना, काखना और करवट न लेना, ऐसा ज्वर सर्व्वदा असाध्य है, पर कदाचित् कोई दैव अनुग्रहसे मुक्तिलाभभी पाता है, यहभी एक प्रकारका सन्निपात ज्वरहै।

आगन्तुकके कारण और लक्षण।—आगन्तुक ज्वर शस्त्र, ढेला या डण्डा आदिसे आघात, अभिचार अर्थात् निरपराध मनुष्यको मारनेके लिये मन्त्रादि उच्चारण पूर्व्वक क्रियाविशेष, अभिसङ्ग अर्थात् भूत ग्रहादि या कामादि रिपु सम्बन्ध और ब्राह्मणादिका अभिशाप, यही सब कारणोंसे आगन्तुक ज्वर होता है। अभिघातादि कारण विशेषमें वातादि जिस दोषके प्रकोपकी सम्भावना है, उन सब कारणोंसे आगन्तुक ज्वर उत्पन्न होनेसे, उसमें वही दोष अनुबन्ध रहता है।

विषज लक्षण।—विषज ज्वरमें मुख काला होना, अतिसार, अरुचि, पिपासा, सूचीविद्धवत् वेदना और मूर्च्छा होती है।

औषधी घ्राणज ज्वर।—औषधि विशेषके सूंघनेसे ज्वर होनेपर मूर्च्छा, शिरमें दर्द और वमन आदि लक्षण प्रकाशित होते है।

कामज लक्षण।—अभिलषित रमणी न मिलनेसे कामज ज्वर होता है, इसमें मनकी अस्थिरता, तन्द्रा, आलस्य और अरुचि आदि लक्षण दिखाई देते है। भय, शोक या क्रोधसे ज्वर उत्पन्न होनेसे उसमें भी प्रलाप और कम्प होता है।

अभिचारादि लक्षण।—अभिचार और अभिशाप जनित ज्वरमें मोह और तृष्णा तथा भूताभिषङ्गज ज्वरमें चित्तका उद्वेग, हास्य रोदन और कम्प प्रभृति लक्षण दिखाई देते है।

कामज, शोकज, और भयज ज्वरमें वायुका प्रकोप, क्रोधज ज्वरमें पित्तका प्रकोप और भूताभिषङ्गज ज्वरमें वात पित्त और कफ यह तीन दोषका प्रकोप होता है। और जो ज्वर भूतादिके संसर्गसे उत्पन्न होता है उसमें भूतके आवेशकी तरह हसना रोना आदि रुप होता है।

विषम ज्वर।—विषम ज्वर जिस ज्वरके आगमन या वृद्धिका नियम नही है और जिस ज्वरमें उष्णता या ज्वरके वेगकी भी समता नही है, उसको विषम ज्वर कहते है। इस ज्वरका प्रधान लक्षण भुक्तानुबन्धित्व, अर्थात् छूट छूट कर ज्वर आता है।

नये ज्वरको यथाविधि चिकित्सा न कर, यदि उग्रवीर्य्य औषधादिसे निवृत्त किया जाय तो ज्वरोत्पादक कुपित वातादि दोष अच्छी तरह शान्त न हो होनवल होता है, और रस रक्तादि कोई धातुके आश्रयसे विषम ज्वर उत्पन्न होता है। इसके सिवाय कभी कभी पहिलेहोसे विषम ज्वर उत्पन्न होता है।

अवस्था भेद।—विषम ज्वरके लक्षणके अनुसार सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थकादि नामसे अभिहित है। दोष रसस्थ होनेसे सन्तत, रक्तस्थ होनेसे सतत, मांसाश्रित होनेसे अन्येद्युष्क, मेदोगत होनेसे तृतीयक और अस्थि मज्जागत

होनेसे चातुर्थक ज्वर उत्पन्न होता है। यह पाच प्रकारके ज्वरमे चातुर्थक ज्वरको अधिक भयङ्कर है।

सन्तत ज्वर लक्षण।—सन्तत ज्वर लगातार सात दिन, दश दिन या द्वादश दिन तक बराबर भोगकर छूट जाता है।

द्वैकालीन ज्वरमे।—जो ज्वर दिन रातमें दो या चार बार अर्थात् दिनको एकबार और रातको एकबार, अथवा दिनको दो बार या रातको दो बार हो उसको सततक या द्वैकालीन ज्वर कहते हैं।

अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थक लक्षण।—दिन रातमे एकबार ज्वर हो उसको अन्येद्युष्क कहते है। जो ज्वर तीसरे दिन अर्थात् एक दिन अन्तर देकर आता है उसको तृतीयक (तिजारो) और जो चौथे दिन अर्थात् दो दिन अन्तर पर आता है उसको चातुर्थक (चोथइया) ज्वर कहते है तृतीयक (तिजारो) ज्वरमे पित्त और कफका आधिक्य रहनेसे ज्वरके आरम्भ होनेके वक्त त्रिक स्थान अर्थात् कमर पोठ मेरुदण्डके सन्धिमें दर्द, वायु और कफके आधिक्यसे पोठमें तथा वायु और पित्तके आधिक्यसे मस्तकमे दर्द होता है। चातुर्थक (चोथइया) ज्वरमे कफके आधिक्यसे पहिले दोनो जङ्घामें और वायुके आधिक्यसे पहिले मस्तकमें दर्द होता है, फिर सर्व्वाङ्गमे ज्वर होता है। जो ज्वर बोचका दो दिन नियत भोगकर आदि और अन्त यह दो दिन विरत रहता है उसको चातुर्थक विपर्य्यय कहते है। यहभी एक प्रकारका विषम ज्वर है। कोइ कोई भूताभिपन्न ज्वरकोभी विषम ज्वर कहते हे।

वातश्लासक और प्रलेपक ज्वर लक्षण।—जिस ज्वरमें कफका आधिक्य मालूम हो, तथा रोगोका शरीर रूखा,

शोथ विशिष्ट, अवसन्न, और जड पदार्थकी तरह हो, तथा जो ज्वर नित्य मन्द मन्द होता रहे उसको वातवलासक ज्वर कहते हैं, और जिस ज्वरमें शरीर भार बोध, सर्व्वदा, शरीर पसीनेसे लिप्त मालूम हो, उसको प्रलेपक ज्वर कहते हैं, यह ज्वरभी मन्द मन्द भावसे होता है। यक्ष्मा रोगमें प्राय इसी भांतिका ज्वर दिखाई देता है।

दूषित रस परीक्षा।—यदि आहारका रस परिपाक न होकर दूषित हो और यदि दुष्ट पित्त और दुष्ट कफ शरीरके उर्द्ध, अध अथवा वाम दक्षिण विभागके अनुसार अर्धाई भागमें अवस्थित करे, तो शरीरके जिस भागमें पित्त रहता है उस भागमें उष्ण और जिस भागमें कफ रहता है वह भाग शीतल होता है। इसके विपरीत होनेसे अर्थात् कोठमें कफ और हात पैरमें पित्त रहनेसे शरीर शीतल और हात पैर गरम रहता है।

शीतपूर्व्व और दाहपूर्व्व लक्षण।—यदि दुष्ट कफ और दुष्ट वायु त्वकमें अथवा त्वक गत रसमें अवस्थित करे तो पहिले जाडा देकर ज्वर आता है, फिर वायु और कफका वेग कम हो जानेपर पित्त दाह उत्पादन करता है, इसको शीतपूर्व्व ज्वर कहते हे। यदि दुष्टपित्त त्वक गत हो तो पहिले दाह होकर ज्वर होता हे, फिर पित्तका वेग कम होने पर कफ और वायु शीत उत्पादन करता है, इसको दाह पूर्व्व ज्वर कहते हे। यह दोनो ज्वर वातादि दो दोष या तीन दोषके संसर्गसे उत्पन्न होता है। इसमें दाहपूर्व्व ज्वर कष्टसाध्य और कष्टप्रद है।

ज्वर पूर्णरूपसे रसादि सात धातुओंमें से कोई एकका आश्रय ले तो उसको धातुगत ज्वर कहते हैं।

रक्त और मांसगत ज्वर लक्षण।—रस धातुगत

ज्वरमें शरीर भारबोध, वमनेच्छा, वमन, शारीरिक अवसन्नता, अरुचि, और चित्तमें क्लान्ति आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। रक्तगत ज्वरमें अल्प रक्त वमन, दाह, मोह, वमन, भ्रान्ति, प्रलाप पिडिका अर्थात् व्रण विशेषकी उत्पत्ति और तृष्णा आदि लक्षण दिखाई देता है। मांसगत ज्वरमें जङ्घोमें डण्डा मारनेकी तरह दर्द, तृष्णा, अधिक परिमाण मलमूत्र निकलना, बाहर सन्ताप, भीतर दाह, हाथ पैरका पटकना, और शारीरिक ग्लानि आदि लक्षण होते हैं। मेदोगत ज्वरमें बहुत पसीना आना, पिपासा, मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, शरीरमें दुर्गन्ध, अरुचि, और ग्लानि तथा असहिष्णुता आदि लक्षण दिखाई देते हैं। अस्थिगत ज्वरमें अस्थि समूहोंमें अस्थि भङ्गवत् दर्द, कुन्थन, श्वास, अधिक मल निकलना, हाथ पैरका पटकना आदि लक्षण होता है। मज्जागत ज्वर में आंखके सामने अंधियाला होना, हुचकी, कास, शीत, वमन, भीतर दाह, महाश्वास और हृदय काटनेकी तरह दर्द आदि लक्षण दिखाई देते हैं। शुक्रगत ज्वरमें लिङ्ग जडवत् स्तब्ध होजाता है तथापि शुक्र बराबर गिरता है। इस ज्वरमें रोगीको मृत्यु निश्चय जानना।

अन्तर्वेग और बहिर्वेग लक्षण।—जिस ज्वरमें अधिक अन्तर्दाह, अधिक तृष्णा, प्रलाप, श्वास, भ्रम, सन्धिस्थान अस्थि समूहोंमें दर्द पसीना बन्द और वातादि दोष तथा मलकी बद्धता आदि लक्षण हो तो उसको अन्तर्वेग ज्वर कहते हैं। तथा जिस ज्वरमें बाहर अधिक सन्ताप, किन्तु तृष्णा आदि उपद्रव अल्प होतो उसको बहिर्वेग ज्वर कहते हैं।

प्राकृत और वैकृत।—वर्षा, शरत् और वसन्तकालमें क्रमश: वातादि दोषप्रकोपसे जो ज्वर उत्पन्न होता है उसको प्राकृत

ज्वर कहते हैं, अर्थात् वर्षाकालमें वातिक, शरत्‌मे पैत्तिक वसन्त-कालमे श्लैष्मिक ज्वर होनेसे उसको प्राकृत ज्वर कहते हैं। इसके विपरीत होनेसे अर्थात् वर्षामें श्लैष्मिक या पैत्तिक, शरत्‌मे वातिक अथवा श्लैष्मिक, वसन्तमे वातिक या पैत्तिक ज्वर होनेसे उसको वैकृत ज्वर कहते हैं। प्राकृत ज्वरमें वातिक ज्वरके सिवाय और सब ज्वर साध्य हैं। वैकृत ज्वरमात्र दुःसाध्य हैं। प्राकृत ज्वरमे ऋतु विशेषके अनुसार एक एक दोष आरम्भक होनेपरभी बाकी दो दोष अनुबन्ध रहता है।

अपक्व।—अपक्व या तरुण ज्वर—जिस ज्वरमें मुहसे लार बहे, वमनेच्छा हृदयकी अशुद्धि, अरुचि, तन्द्रा, आलस्य, अपरिपाक, मुखकी विरसता, शरीरका भारी पन, स्तब्धता, क्षुधानाश, अधिक पिशाब होना और ज्वरके प्रबलताका लक्षण दिखाई दे तो उसको अपक्व या आमज्वर कहते हैं।

पच्यमान ज्वर,—ज्वरके वेगका आधिक्य, तृष्णा, प्रलाप, श्वास भ्रम, प्रभृति और वमनेच्छा आदि लक्षण समूह पच्यमान ज्वरमें अर्थात् ज्वरके परिपाक अवस्थामे प्रकाशित होता है।

पक्वज्वर,—भूख लगना, देहकी लघुता, ज्वरको न्यूनता, वायु, पित्त, कफ और मलका निकलना, तथा इसी रीतिसे आठ दिन अतिवाहित होना, यही सब पक्व ज्वरके लक्षण है।

ज्वरके उपद्रव।—ज्वरके उपद्रव,—कास, मूर्च्छा, अरुचि, कै, तृष्णा, अतिसार, मलबद्धता, हुचकी, श्वास और अङ्गवेदना, इसी दस को उपद्रव कहते हे।

साध्य ज्वर,—जो ज्वर अल्प दोषसे हो, तथा उपद्रव शून्य ज्वरमें यदि बलको हानि न होयतो साध्य जानना।

साध्य और असाध्य ज्वर लक्षण।—जो ज्वर धातुगत पुराना अथवा अति बलवान और जिस ज्वरसे रोगी क्षीण हो शोथ उत्पन्न होता है, तथा जिस ज्वरमें रोगीका केश आपसे आप साफ सुथरे हो जाय यह असाध्य ज्वर लक्षण है। कई प्रबल कारणोंसे ज्वर होकर कई लक्षणयुक्त हो और जिस ज्वरमें इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट हो जाय उस ज्वरको घातक जानना। अन्तर्दाह, तृष्णा, मल बद्धता, कास और श्वासयुक्त प्रबल ज्वरको गम्भीर ज्वर कहते हैं। यह ज्वरभी असाध्य है, विशेषत गम्भीर ज्वर होकर रोगी का देह क्षीण या रूक्ष होनेसे उसका प्राण नाश होता है। जो ज्वर पहिलेहीसे विषम या दीर्घकाल स्थायी हो, वहभी असाध्य है। बाहर शीत और भीतर दाहयुक्त ज्वर प्राण नाशक है। जिस ज्वरमें शरीर रोमाञ्चित, आंखे लाल या चञ्चल, मूर्च्छा, तृष्णा, हिक्का, श्वास, छातीमें साङ्घातिक शूलकी भांति दर्द और केवल मुखसे श्वास, प्रश्वास निकलता रहेता। इससे भी रोगीकी मृत्यु होती है। जिस ज्वरमें रोगी की कान्ति और इन्द्रिय समूहोंकी शक्ति नष्ट हो, बल और मांस क्षीण होजाता है तथा अरुचि और ज्वर वेगमें गाम्भीर्य्य अथवा तीक्ष्णता मालूम हो वहभी असाध्य है।

त्याग लक्षण।—सान्निपातिक ज्वर, अन्तर्वेग ज्वर और धातुगत ज्वर परित्याग होनेसे पहिले दाह, पसीना, भ्रम, तृष्णा, कम्प, मलभेद, सञ्ज्ञानाश, कुन्थन और मुखमें दुर्गन्ध आदि लक्षण प्रकाश होता है।

चिकित्सा।—नये ज्वरमें पहिले उपवास कराना चाहिये, इससे वात पित्त और कफका परिपाक, अग्निकी दीप्ति, शरीर की लघुता, ज्वरका उपशम और भोजनकी इच्छा होती

है। वातज ज्वरमें, भय, क्रोध, शोक, काम और परिश्रम जनित ज्वरमें, धातुक्षय जनित ज्वरमे और राजयक्ष्मा जनित ज्वरमे उपवास नहो कराना। वायु प्रधान मनुष्य, क्षुधार्त्त, तृष्णार्त्त, मुखशोषयुक्त, या भ्रमयुक्त और बालक, वृद्ध, गर्भिणो या दुर्व्वल इनको भो उपवास उचित नहो है। उपवास विहित ज्वरमे भो अधिक उपवास दकर रोगोको दुर्व्वल करना उचित नहो है। अधिक उपवास करानेसे अनिष्ट होता है, इससे सब गाठे और शरोरम दर्द, काश, मुखशोथ, क्षुधानाश, अरुचि, तृष्णा, श्रवणेन्द्रिय और दर्शनेन्द्रियको दुर्व्वलता, मनकी चञ्चलता या भ्रान्ति, अधिक उद्गार, मोह और अग्निमान्द्य होता है। उपयुक्त परिमाणसे यथा-रोति उपवास करानेसे अच्छी तरह मल, मूत्र और वायुका निक-लना, शरोरका लघुता, पसीना आना, मुख और कण्ठ साफ, तन्द्रा और क्लान्ति नाश, आहारमे रुचि, एक साथ भूख प्यास लगना, अन्त करण प्रसन्न और साफ डकार आना आदि उपकार होता है।

दोष परिपाक व्यवस्था।—ज्वर होनेके पहिले दिनसे आठ दिन तक अपक्कावस्था रहती है इतने दिन तक ज्वरनाशक कोई काढा या औषध देना उचित नहो है। पर षडङ्ग पानो या दोष परिपाकके लिये धनिया १ तोला और परवलका पत्ता १ तोलाका काढा अथवा शोठ, देवदारु, धनिया, वृहतो और कटेलो इन सबका काढा दे सकते है। ८ दिनके बाद ज्वर नाशक काढा और औषध देना चाहिये। पर आज कलके समयमें जैसे ज्वर आतेहो भयानक होजाता हे, उसमे ८ दिनको प्रतीक्षा न कर विचार पूर्व्वक उक्त समयके भीतर हो काढा आदि औषध देना आवश्यक हे।

अविच्छेद ज्वर।—अविच्छेद ज्वरमें इन्द्रयव, परवरका

पत्ता और कुटकी यह तीन औषधिका काढा पिलानेसे २।३ बार दस्त हो ज्वर छूट जाता है। पित्तके आधिक्यमे इन्द्रयव के बदले धनिया या पितपापडा देना उचित है। रोगी दुर्वल हो तो यह दस्तावर काढा न देकर ज्वराङ्कुश, स्वच्छन्द भैरव, हिंगुलेश्वर, अग्निकुमार और मृत्युञ्जय (लाल) आदि औषध सहतमे मिलाकर तुलसीके पत्तेका रस अथवा पानके रसके साथ देना। यह ज्वर विच्छेदके बादभी दिया जा सकता है।

वातज ज्वर।—वातज ज्वरमे सतावर और गुडिचका रस गुड मिलाकर पिलाना और पिपला मूल, गुरिच और सोंठ, इस तीन द्रव्यका काढा, अथवा विल्वादि पञ्चमूल, किरातादि, रास्नादि, पिप्पल्यादि, गुडूच्यादि और द्राक्षादि प्रभृति काढा देना।

पित्तज।—पित्तज ज्वरमे खेतपापडाका काढा अथवा खेतपापडा, वाला और लाल चन्दन यह तीन द्रव्यका काढा पिलाना। इसके सिवाय कलिङ्गादि, लोध्रादि, पटोलादि, दुरालभादि और त्रायमाणादि काढा देना चाहिये।

श्लेष्मज।—श्लेष्मज ज्वरमे निगुण्डी पत्तेका काढेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पिलाना। दशमूल और अडूसेका जडका काढा अथवा पिप्पल्यादिगण का काढा, कटुकादि और निम्बादि काढाभी इस ज्वरमें उपकारी है।

द्विदोषज।—द्विदोषज ज्वरमे जो दो दोष ज्वरका आरम्भक हो, उसका उपशम कारक द्रव्य विचार कर काढा स्थिर करना उचित है। इसके सिवाय वातपित्त ज्वरमे नवाङ्ग, पञ्चभद्र, त्रिफलादि, निदिग्धिकादि और मधुकादि काढा प्रयोग करना। वातश्लेष्मज ज्वरमे अडूसेका पत्ता और फूलके रसमे सहत और

चीनी मिलाकर पिलाना, रक्तपित्त और कामला ज्वरमें भी यह विशेष उपकारी है। गुडच्यादि, मुस्तादि दार्व्वादि, चातुर्भद्रक, पाठासप्तक और कण्टकार्य्यादि काढा वातश्लेष्मज ज्वरमे देना। इसमे बालुका स्वेद विशेष उपकारी है। मिट्टीकी हांडीमे बालू गरम करना, फिर एक टुकडा कपडेमें रेंडका पत्ता, अकवनका पत्ता, या पानका पत्ता रख उपर वही गरम बालू रखना, फिर उसमें थोडी कांजी मिलाकर पोटली बांधना, इस पोटलीसे सर्वाङ्ग (छातीको छोडकर) सेकना। इसीको बालुका स्वेद कहते है, बालुका स्वेदसे वातश्लेष्मज ज्वर और तज्जन्य शिर शूल और अङ्ग वेदना प्रभृति शान्त होता है।

पित्तश्लेष्मज।—पित्तश्लेष्मज ज्वरमे पटोलादि, अमृताष्टक और पञ्चतिक्त प्रभृति काढा देना।

भग्नावस्थामे औषध।—उक्त नये ज्वरकी भग्नावस्थामे सर्व्वज्वराङ्कुशवटी, चण्डेश्वर रस, चन्द्रशेखर रस, वैद्यनाथ वटी, नवज्वरेभसिंह, मृत्युञ्जय रस, (काला) प्रचण्डेश्वर, त्रिपुरभैरव रस, शीतारिरस, कफकेतु प्रताप मार्त्तण्ड रस प्रभृति औषध दोषानुसार अनुपान विचार कर देना। अतीसका चूर्ण ६ रत्ती माला २।३ घण्टेके अन्तरसे ३।४ बार सेवन कराना, अथवा २ रत्ती पीपलके चूर्णके साथ ४ रत्ती नाटा बीजका चूर्ण सेवन करानेसे विशेष उपकार होता है।

सन्निपातमे प्रथम कर्त्तव्य।—सन्निपातमे पहिले आमदोष और कफको चिकित्सा करना चाहिये, फिर पित्त और वायुका उपशम करना। आमदोषके शान्तिके लिये पञ्चकोल और आरग्वधादि काढा सेवन कराना। कफ शान्तिके लिये सेंधानमक, सोंठ, पीपल और गोलमरिचका चूर्ण आदीके रसमें मिलाकर

आकण्ठ मुखमे रखना तथा बार बार थूकना। दिन भरमें ऐसही ३।४ बार करनेसे हृदय, पार्श्व, मस्तक और गलेका सूखा गाढा कफ निकल जाता है। बडे नीबूका रस और अदरखसे रसके साथ सेंधा, काला और सोचलनमक मिलाकर बार बार नास लेनेसेभी कफ पतला हो निकलता है। रोगी बेहोश हो तो पीपलामूल, सैन्धव, पीपल और महुये का फूल समान भाग चूर्ण करना, फिर उसके बराबर गोलमरिचका चूर्ण मिलाना, यह चूर्ण गरम पानीमें मिलाकर नास देनेसे रोगी चैतन्य होता है और तन्द्रा, प्रलाप, मस्तक भार आदि दूर होता है। तन्द्रा दूर करनेके लिये सेंधा नमक, सैजनको बीज, सफेद सरसो और कूठ समान भाग बकरीके मूत्रमे पीसकर नास्य देना। शिरिष बीज, पीपल, गोलमिरिच, सैन्धव, लहसुन, मैनसिल और बच, समान भाग गोमूत्रमें पीसकर आखमें अञ्जन करनेसे चैतन्य होता है। मस्तक अत्यन्त उष्ण, आखे लाल और प्रबल शिरोवेदना होनेसे आधा तोला सोरा और आधा तोला नौसादर एक सेर पानीमें भिगोवें, गल जानेपर उसमे उनी कपडेका एक टुकडा भिगोकर कनपटी और तालुमें पट्टी रखना, शिर पीडा आदि आराम न होने तक इस पट्टीको उसी पानीसे तर रखना। फिर रोगकी तकलीफ शान्त होने पर पट्टी निकाल डाल इस ज्वरमें क्षुद्रादि, चातुर्भद्रक, पञ्चमूल, दशमूल, नागरादि, चतुर्दशाङ्ग, त्रिविध अष्टादशाङ्ग, भार्ग्यादि, शठ्यादि, बृहत्यादि, व्योष्यादि और बिल्वाद्यादि प्रभृति काढा, स्वल्प और बृहत् कस्तुरीभैरव, शेष कालानल रस, कालानल रस, सन्निपातभैरव और बैताल रस आदि औषध देना।

नाड़ीके क्षीणावस्थामें कर्त्तव्य।—सन्निपात ज्वर में देह शीतल और नाडी क्षीण होने पर मकरध्वज १ रत्ती,

कस्तुरी १ रत्ती और कपूर १ रत्ती एकत्र मकतमें मिलाना, फिर २ तोला पानका रस या २ तोला अदरखका रस मिलाकर लगातार ३।४ वार पिलाना। मृगमदासव, मृतसञ्जीवनी सुरा और हमारा "कस्तुरीकल्प रसायन" इस अवस्थामें विचार कर दिया जा सकता है, और जब दर्शण, श्रवण और वाकशक्ति आदि क्रमश लोप होने लगे, नाडी बैठ जाय तथा मज्ञानाश हो, तब सूचिकाभरण, घोर नृसिंह, चक्री और ब्रह्मरन्ध्र रस आदि उत्कट औषध प्रयोग करना चाहिये।

निउमोनियामें कर्त्तव्य—सन्निपात ज्वर जिसको डाक्तर लोग "निउमोनिया" कहते हैं उसमें सन्निपात ज्वरोक्त काढा, लक्ष्मीविलास, कस्तुरी भैरव, कफकेतु और कास रोगोक्त कई औषध दोष आदि विचार कर देना चाहिये।

अभिन्यास ज्वरमें कारव्यादि और शृङ्गादि काढा तथा स्वच्छन्द नायक और पूर्व्वोक्त सन्निपात ज्वरकी औषधोंमें विचार कर देना आवश्यक है।

उपद्रव चिकित्सा।—नये ज्वरमें विशेषत सन्निपात ज्वरमें दोष समूहोंका आधिक्य और कठकारिताके लिये प्राय नाना प्रकारके उपद्रव प्रकाश होते हैं। मूल रोग की अपेक्षा यह सब उपद्रव अधिक भयङ्कर है, कारण इससे हठात् प्राण नाशकी सम्भावना है, इस लिये वही सब उपद्रवके चिकित्सामें विशेष मनोयोग देना उचित है।

सान्निपातिक शोथ चिकित्सा।—सान्निपातिक ज्वरमें किसी किसीके कर्णमूलमें शोथ होता है, इस शोथसे अकसर मृत्यु होता है। पर सान्निपात ज्वरके प्रथम अवस्थाका शोथ साध्य और मध्य अवस्थाका कष्टसाध्य है। शोथके प्रथम अवस्थामें

जोंक लगाना, गेरुमिट्टी, पागा नमक, शोठ, बच, और राई सम-भाग काञ्जीमे पीसना, अथवा कुरथी, कटफल, शोठ और काला जीरा समान भाग पानीमे पीसकर, गरम लेप करनेसे आराम होता है। इससे यदि आराम न होकर क्रमश: बढताही जायतो उसको पकाना चाहिये। पानीमे अलसीको पीस थोडा घी मिला गरम करना, यह गरम पट्टी बार बार लगानेसे शोथ पक जानेपर नस्तर करना। घाव सूखनेके लिये लहसुनका तेल अथवा हमारा "क्षतारि तेल" व्यवहार करना चाहिये।

ज्वरमे तृष्णा निवारण।—कफके ज्वरमे प्यास अधिक हो तो, बार बार पानी देना उचित नही है। गरम पानी ठण्ढा कर उसम सफेद चन्दन घिसकर मिलाना फिर उसी पानीमे सौफकी एक पोटली भिगोना तथा वही पुटली बार बार चूसनेको देना अथवा थोडा बरफका पानी देना इससे प्यास क्रमश: शान्त होता है। षडङ्ग पानी पिलाना इस अवस्थामे अच्छा है।

ज्वरमे दाह निवारण।—अत्यन्त दाह होय तो कुकुरमोंकाका रस बदनमे लगाना, अथवा सेहुडके पत्तेके रसमे अजवाईन पीसकर सर्व्वांगसे मालिश करना। कांजी से वस्त्र भिगो निचोड लेना तथा उसी वस्त्रसे थोडी देर बदन आच्छादन करना, बैरका पत्ता कांजीमे पीस थोडी कांजी मिलाकर आगपर रखना जब उसमेसे फेन निकलने लगे तब वही फेन सर्व्वाङ्गमे मालिश करना। इसी प्रकारसे नीमका फेनभी मालिश कर सकते है। कालिया काठ, लाल चन्दन, अनन्तमूल, जेठीमधु, और बरके बीजकी गूदी, समान भाग कांजीसे पीसकर शिरके तालूमे लेप करनेसे दाह, तृष्णा दोनोकी शान्ति होती है।

घर्म्म निवारण।—पसीना अतिरिक्त हो तो भृङ्गो

कुरथोका चूर्ण अथवा अबीर सर्व्वाङ्गमें घिसना, चुल्हेको जली हुई मिट्टीका चूर्णभी मालिश करनेसे पसीना बन्द होता है।

वमन उपद्रव निवारण।—ज्वरमे वमनका उपद्रव हो तो गुरिचका काढा ठण्ढा कर उसमे महत मिलाकर पिलाना। खूब महीन पीसा खस १ तोला तथा सफेद चन्दन घिसा आधा तोला, आध पाव बतासेके शर्व्वतमे मिलाकर, १ तोला मात्रा बार-बार पिलाना, अथवा खेतपापडा २ तोला आधा सेर पानीमे औटाना आधा पाव पानी रहे तब उतार कर २।३ बार थोडा थोडा कर यह काढा पिलाना। महत, चन्दन अथवा चीनीके साथ मक्खीको विष्ठा चाटनेसे, किम्वा तेलचट्टाकी विष्ठा ३।४ दाना ठण्ढे पानीमे भिगोकर पीनेसे वमन दूर होता है। बरफका टुकडा मुहमे रखनेसे वमन हिक्का दोनो आराम होता है। कहीं रोगोक्त एलादि भी वमन हिक्का दोनोमे प्रयोग किया जाता है। अतिसारका उपद्रव हो तो ज्वरातिसारकी तरह चिकित्सा करना चाहिये।

ज्वरमे मलबद्ध होनेसे कर्त्तव्य।—मलबद्ध होनेसे रेंडीका तेल २ तोला २॥ तोला गरम पानी या गरम दूधमें मिलाकर पिलाना, अथवा पूर्व्वोक्त इन्द्रयव, पटोल पत्र और कुटकी यह तीन द्रव्यका काढा पिलाना। इसके सिवाय ज्वरकेशरी, ज्वर मुरारि, इच्छाभेदी रस भी दे सकते हैं। हमारी बनाई "मलभेदी वटिका" खिलानेसे सुन्दर मृदु विरेचन होता है।

ज्वरसे मूत्ररोधमें कर्त्तव्य।—मूत्र रोध होनेसे वज्रक्षार २ रत्तीसे ६ रत्ती तक ठण्ढे पानीके साथ मिलाकर दो दो घण्टा अन्तर पर पिलाना। वज्रक्षारके अभावमे सोराका चूर्णभी दे सकते हैं। खसकी जड, गोखरू, जवासा, खीरेको बीज, ककडीकी बीज, कबाबचीनी, और वरुणछाल, प्रत्येक चार २ आने भर आधा पाव

पानीमे २ घण्टा भिगोना फिर वही पानी थोडा थोडा एक एक घण्टेके अन्तर पर पिलाना, इसमे मूत्रका रोध और जलन दूर होता है। आधा तोला मोरा एक पाव पानीमे भिङ्गोना फिर थोडो चोनी मिलाकर वही पानी थोडा २ पीनेको देना। इमसे क्रमश पिशाब साफ, नाडी स्वस्थ शरीरको गर्मी कम होकर ज्वरका ह्रास होता है।

हिक्का निवारण।—हुचकोको शान्तिके लिये निर्धूम अङ्गारे पर हीग, गोलमरिच, उरद, या घोडेकी सूखी लीद जलाकर धूआ सघाना। राईका चूर्ण आधा तोला, आधा सेर पानीमे मिलाकर थोडी देर रख छोडना, फिर वही थिरा हुआ पानी आधी छटाक दो तोन घण्टेके अन्तर पर पिलाना। पेटके ऊपर तेल मर्द्दन कर गरम पानीसे सेकना। पानीके साथ सैंधा निमक मिलाकर अथवा चीनीके साथ सोठका चूर्ण मिलाकर नास लेना। पीपलकी सूखी छाल जलाकर पानीमे डुबोकर बुताना, फिर वही पानी छानकर पीनेमे हुचकी और कै दोनो बन्द होता है। तेल-चट्टा अर्द्धभाग और उसका आधा भाग गोलमरिच एकत्र पीसना, मात्रा चौथाई रत्ती ठण्ढे पानीके साथ २।३ बार सेवन करानेसे प्रबल हिकाभी शान्त होता है।

श्वास उपद्रव निवारण।—श्वास उपद्रव शान्तिके लिये (वृहती) वनभटा (कण्टकारी) रेंगनी (दुरालभा) जवासा, पटोली, काकडाशिङ्गी बभनेटी, कूठ, कुटकी और शठी इन सब द्रव्योका काढा पिलाना। अथवा पीपल, कटफल और काकडाशिङ्गी सहतमें मिलाकर सेवन करना, अन्तर्धूममे भस्म कियाहुआ मयूरपख २ रत्ती और पीपलका चूर्ण २ रत्ती अथवा वहेडाकी गूदी किम्वा वैरके वीजकी गूदी २ रत्ती सहतमें मिलाकर चटाना, वनकण्डेकी

आगमें कुलक्षाडी गरम कर उसके अग्रभागसे पाजरमें दागनेसे अति उग्र श्वासभी आराम होता है।

कास उपद्रव निवारण।—कास उपद्रवमें २।३ घण्टा अम्लरसें पोपला मूल, बहेडा, खेतपापडा और शोठ इन सबका चूर्ण महतके साथ चटाना। अडूसेके रसमे सहत मिलाकर पिलाना। बहेडेमे घी लगाकर गोबरके गोलेम रख आगमे सिजालेना। यह मुखमे रखनेमे काम बहुत जल्दी आराम होता है।

अरुचि।—अरुचिमे सेंधा नमक और आदीका रस, सेधा नमक बडे नोबूका जोरा, घी और सेधा नमकके साथ बडे नीबूका रस, अथवा आवला और सुनक्केका काल्क मुखमें धारण करना।

जीर्ण और विषम ज्वरमे घुसडा प्रस्तुत विधि।—साधारण जीर्ण ज्वर और विषम ज्वरमे हरसिंघारके पत्तेका रस सहतमे मिलाकर पिलाना। खेतपापडा, हरसिंघारका पत्ता और गुरिच, यह तीन द्रव्य अथवा गुडिच, खेतपापडा, भेकपर्णी, हिलमाचिका, (हुरहुच) और पत्थरका पत्ता, यह पाच द्रव्यका "घुसडा" बनाकर सेवन कराना। पाचो द्रव्य एक साथ थोडा कूटकर केलेके पत्तेसे लपेटना फिर माटोसे लेपकर आगमे उसको जलाकर रस निचोड कर निकालनेमे "घुसडा" कहते हैं। झाड-याकडाका मूल, छाल, पत्ता, फूल और फल कूटकर पैसही जलाना, उसका रस २ तोले दो आने भर शोठके चूर्णके साथ सेवन करानेसे जोर्ण ज्वर आराम होता है। भडभैया की जडका ७ टूकडा कर एक एक टूकडा अदरखके टूकडेके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका जोर्ण ज्वर आराम होता है। गुग्गुल, नीमका पत्ता, वच, कूठ, बडोहर्र, यव, सफेद सरसो, और घी एकत्र

मिलाना, फिर इसका धूवा रोगीके शरीरमे देनेसे विषम ज्वर प्रशमित होता है, इसका नाम अष्टाङ्गधूप है। बिल्लीके विष्ठाका धूप देनेसे कम्पज्वर दूर होता है। गुग्गुलु, गन्धतृण अभावमे खस, वच, धूना, नीमका पत्ता, अकवनका जड, अगरु, चन्दन और देवदारु, इन सब द्रव्योंका धूप देनेसे सब प्रकारका ज्वर दूर होता है, इसको अपराजिका धूप कहते हैं। निदिग्धिकादि, गुडच्यादि, द्राक्षादि, महौषधादि, पटोलादि, विषम ज्वरघ्न, भार्ग्यादि, वृहत् भार्ग्यादि, मधुकादि, दार्व्यादि और दार्व्यादि प्रभृति काढेको सब प्रकारके जीर्ण और विषम ज्वरमे दोष विचार कर देना। कारण विषम ज्वरमे तीन हो दोष आरम्भक है, इससे दोष विशेषकी आधिक्यता और न्यूनता विचार कर औषध स्थिर करना चाहिये।

तृतीयक और चातुर्थक ज्वर चिकित्सा।—

तृतीयक (तिजारी) ज्वरमे महौषधादि, उशीरादि और पटोलादि, तथा चातुर्थक (चौथइया) ज्वरमे वासादि, मुस्तादि और पथ्यादि काढा देना उचित है। काकजङ्घा, वरियारा, श्यामालता, वन-जेठी, लज्जावती लता, चाकुला, चिरचिरी, या भङ्गरैया इसमे से कोई एक वृक्षका मूल पुष्य नक्षत्रमे उखाडकर लाल सूतमे लपेट हाथमे बाधनेसे, किम्बा उलूके दहिने डैनेका एक पर सफेद सूतमे बाध बाये कानमे धारण करनेसे तृतीयक अर्थात् तिजारी ज्वर आराम होता है। शिरीष फूलके रसमे हरिद्रा और दारु हरिद्रा पीसना फिर घी मिलाकर नास लेनेसे अथवा बकफूलके पत्तेके रसका नास लेनेसे चातुर्थक (चोथाइया) ज्वर दूर होता है। अश्विनीनक्षत्रमें सफेद अकवन या कनैलको जड उखाड कर

६ रत्ती माला अथवा चावलके धोवनमें पीसकर पोनेसे चातुर्थक ज्वर आराम होता है।

रात्रिज्वर।—काकमाची (कवैया कवड़) की जड़ कानमें बांधनेसे रात्रिज्वर दूर होता है। निदिग्धिकादि काढ़ा शामको पिलानेसे रात्रिज्वरमें विशेष उपकार होता है।

शीतपूर्व्व ज्वर।—शीतपूर्व्व ज्वरमें भद्रादि और घनादि काढ़ा और दाह पूर्व्व ज्वरमें विभीतकादि और मज्ञावल्यादि कषाय प्रयोग करना चाहिये।

जीर्ण और विषम ज्वरको महौषध।—उक्त जीर्ण ज्वर विषम ज्वरके दोष और बलावल विचार कर अनुपान विशेषसे सुदर्शन चूर्ण, ज्वरभैरव चूर्ण, चन्दनादि लौह, सर्व्वज्वरहर लौह, वृहत् सर्व्वज्वरहर लौह, पञ्चानन रस, ज्वराशनि रस, ज्वरकुञ्जर-पारीन्द्र रस, जयमङ्गल रस, विषमज्वरान्तक लौह, पुटपक्व विषम ज्वरान्तक लौह, कल्पतरु रस, वाहिकारी रस, चातुर्थकारी रस, मकरध्वज और अमृतारिष्ट आदि औषध देना।

हमारा बनाया "पञ्चतिक्त वटिका" सब प्रकारके नये और पुराने ज्वरकी अकसीर दवा है।

जीर्ण ज्वरमें कफका संयोग न रहनेसे अंगारक तेल वृहत् अङ्गारक तैल, लाक्षादि तैल, महालाक्षादि तैल, किराताादि तैल, वृहत् किरातादि तैल सर्व्वाङ्ग में मालिश करना। इस ज्वरमें दशमूल षटपलक घृत, वासादि घृत और पिप्पल्यादि घृत सेवन करा सकते हैं।

ज्वरमें दूध पान।—ज्वरमें कई प्रकार संस्कृत दूधभी अमृतको तरह उपकार करता है। पर नये ज्वरमें वही दूध विषको भांति अनिष्टकारक है।

सरिवन, चाकुल्ला, वृहती, कटैली और गोक्षुर यह स्वल्प पञ्च-मूलके साथ दूध पाक कर पोनेसे कास, श्वास, शिरशूल और पोनस संयुक्त जोर्ण ज्वर आराम होता है। गोक्षुर, वरियारा बेलको छाल और शोठ; यह सब द्रव्यके साथ दूध पाक कर पोनेसे मल और पिसाब साफ हो शोथसंयुक्त जोर्ण ज्वर आराम होता है। सफेद गदहपुन्ना, बेलको छाल और लाल गदहपुन्ना दूधमें पाक कर पोनेसे सब प्रकारका जीर्ण ज्वर आराम होता है। ज्वर रोगीके गुदामें काटनेकी तरह पीडा हो तो एरण्डमूलके साथ दूध पाककर पिलाना।

ज्वरमें दुग्ध पाक विधि।—उक्त दूध पाक करनेको विधि,—जितनो दवायोंके साथ दूध पाक करना हो, उन सबका समान भाग मिलाकर २ तोला होना चाहिये, मिलो हुई दवा-योंका आठ गूना अर्थात् १६ तोला दूध और पानी दूधका चौगूना अर्थात् ६४ तोले लेना चाहिये। सब दवा एकत्र कर आंच पर रखना, जब सब पानी जल कर केवल दूध रहजाय तब उतारकर थोड़ा गरम रहते ही सेवन करना।

आजकाल प्राय सब जगह नये ज्वरको अपक्व अवस्थामें ज्वरको कुनेनसे बन्द करनेको रोति है, इससे जोर्ण ज्वरमें भी कफका सम्बन्ध बना रहता है; इस लिये घृत या तैल प्रयोगका उपयुक्त अवसर नहो मिलता।

आगन्तुक ज्वरादि चिकित्सा।—आगन्तुक ज्वरमें वातादि जिस दोषके लक्षण प्रकाश हो उसी दोषको चिकित्सा करना। इसके सिवाय और भो कई विशेष नियम है, जैसे—अभिघातज आगन्तुक ज्वरमें उष्ण वर्जित क्रिया और कषाय मधुर रसयुक्त स्निग्ध द्रव्यका पान भोजन कराना चाहिये। अभिचार और

अभिशाप जनित आगन्तुक ज्वरमें होम, पूजा और प्रायश्चित्त कराना। उत्पात और ग्रहवैगुण्य जनित आगन्तुक ज्वरमें दान, स्वस्त्ययन और अतिथि सत्कार करना चाहिये। औषधिगन्ध और विषभक्ष जनित आगन्तुक ज्वरमें विष तथा पित्तदोष नाशक औषधसे चिकित्सा करना और दालचीनी, इलायची, नागकेशर, तेजपत्ता, कपूर, शीतलचीनी, अगर, केशर, और लौंग इसका काढा पिलाना, इन सब द्रव्यको सर्व्वगन्ध कहते हैं। क्रोधज ज्वरमें अभिलषित द्रव्य देना और हितवाक्य कहना, तथा काम, शोक और भयजनित ज्वरमें आश्वास वाक्य, अभीष्ट वस्तु प्रदान, हर्षोत्पादन और वायुको शान्त करना चाहिये। क्रोध उदय होनेसे काम ज्वर, और काम तथा क्रोध उदय होनेसे, भयज और शोकज ज्वर प्रशमित होता है। भूतावेश जनित ज्वरमें बन्धन ताडनादि और मानसिक ज्वरमें रोगीका मन प्रसन्न रखना चाहिये।

आरोग्यके बादकी अवस्था।—ऐसेही विविध चिकित्सासे ज्वर आरोग्य होने पर २।३ सप्ताह तक लौह भस्म २ रत्ती, बडोश्वरका चूर्ण २ रत्ती और शोठका चूर्ण २ रत्ती चिरायता भिगोया पानीमें मिलाकर पिलानेसे शरीर सबल और रक्तकी वृद्धि होती है। इस अवस्थामें चिरायताके पानीके साथ मकरध्वज सेवन करनेसे भी उपकार होता है।

नये ज्वरमें पथ्यापथ्य।—नये ज्वरमें दोषका परिपाक न होने तक उपवास, फिर दोषका परिपाक और क्षुधाका परिमाण विचार कर मिस्री, बतासा, अनार, कसेरु, मुनक्का, सिंघाडा, इक्षु, धानका लावा, धानके लावाका मण्ड, पानीका साबुदाना, अराकट और बार्लि आदि हलका भोजन कराना। पीनेको पानी गरम कर ठण्ढा होनेपर देना। कफज, वातश्लेष्मज,

और सन्निपात ज्वरमें पानी ठण्ढा नही करना। ज्वर त्यागके दो तीन दिन बाद यदि शरीरमें ग्लानि न रहे, तो पुराने चावलका भात, मूग मसूरकी दाल, कटु तिक्त रसयुक्त तरकारी, छोटी मछली आदि भोजनको देना। नये ज्वरमें पेट साफ रखना नितान्त आवश्यक है।

सन्निपात ज्वरमें भी पथ्यादि ऐसही जानना, पर रोगी अत्यन्त दुर्बल हो जाय तो, एक उफानका दूध और मूग, मसूर या लघु-पाक मास रसके साथ थोडी मृतसञ्जीवनी सुरा मिलाकर वार वार देना चाहिये।

उक्त ज्वरमें ज्वर त्यागके पहिले भात खाना, सब प्रकार गुरुपाक और कफवर्द्धक द्रव्य भोजन, तैल मर्दन, व्यायाम, परिश्रम, मैथुन, स्नान, दिवानिद्रा, अति क्रोध, शीतल जल पान और हवामें फिरना आदि अनिष्टकारक है, अतएव इन सब कामोंको नही करना।

जीर्ण और विषम ज्वरमें।—जीर्ण और विषम ज्वरमें ज्वर अधिक रहनेसे धानके लावाका मण्ड, साबूदाना, बार्लि, अरारुट और रोटी आदि विचार कर देना। ज्वरका आधिक्य न रहनेसे दिनको पुराने चावलका भात, मूंग और मसूरकी दाल, परवर, वैगन, गुल्लर, मूली आदिकी तर-कारी, कवई, मागूर, शिङ्गी आदि छोटी मछलीका रस्सा और एक उफानका थोडा दूध आहार कराना। गरमपानी ठण्ढा कर पीनेको देना। रोगी अधिक दुर्बल हो तो कबूतर, मुरगा और खस्सीके मासका रस देना चाहिये। रातको, क्षुधाके अवस्थानुसार साबुदाना आदि या रोटी खाना उचित है। खट्टेमें पाती या कागजी नीबूका रस थोडा देना चाहिये।

निषिद्ध कर्म्म।—घृतपक्व आदि गुरुपाक द्रव्य भोजन,

दिनको सोना, रातको जागना, अधिक परिश्रम, ठण्ढी हवामें फिरना, मैथुन और स्नान आदि अनिष्ट कारक है। पर जिस रोगीको वाताधिक्य या पित्ताधिक्य का ज्वर हो और स्नान न करनेसे तकलीफ मालूम हो तो उसको गरम पानी ठण्ढा कर थोडे पानीसे स्नान कराना, अथवा उसी पानीमें अंगाछा भिगोकर बदन पोछना चाहिये।



प्लीहा।



प्लीहाका कारण।—ज्वर अधिक दिन तक शरीरमें रहनेसे, मलेरिया ज्वरमें, अथवा मलेरिया दूषित स्थानमें वास करनेसे, किम्वा मधुर स्निग्धादि आहारसे रक्त बढकर प्लीहाको बढाता है। इसके सिवाय अतिरिक्त भोजनके वाद तेज चलनेवाली सवारी में चढना या व्यायामादि श्रमजनक कार्य्य करनेसे भी प्लीहा स्वस्थानसें च्युत हो बढ जाती है। पेटके बाये तरफ उपरको प्लीहाका स्थान है, अविकृत अवस्थामें हाथसे मालूम नही होता, पर बडा होनेसे कुक्षिके बाये तरफ हाथ लगाते ही मालूम होती है। इस रोगमे सर्वदा मृदु ज्वर रहता है, और रोज किसी न किसी वक्त ज्वर बढता है अथवा एक दिनका अन्तर देकर कम्प-

ज्वर होता है, तथा प्लीहा स्थानमें दर्द, जलन, कोष्ठ बद्धता, अल्प लाल मूत्र, श्वास, कास, अग्निमान्द्य, शरीर को अवसन्नता, कृशता, दुर्बलता, विवर्णता, पिपासा, वमन, मुखका बेस्वाद, चक्षु और हाथके अङ्गुलियोंका पीला होना, आखने सामने अन्धियाला मालूम होना, मूर्च्छा प्रभृति लक्षण प्रकाश होता है।

कष्टसाध्य प्लीहाके लक्षण।—प्लीहा अधिक बढनेसे रोग कष्टसाध्य होता है तथा नाक और दातसे खून गिरता है तथा रक्तवमन, रक्तभेद, उदरामय, दातके जडमें घाव, पैर, आख और सर्व्वाङ्गमें शोथ होता है, तथा पाण्डु और कामला आदिके लक्षण भी दिखाई देता है। यह सब लक्षण दिखाई देनेसे प्लीहा आराम होनेकी आशा नहीं रहती।

प्लीहाका दोष निर्णय।—प्लीहा रोगमें मलबद्धता, वायुका उर्द्धगमन और दर्द, अधिक हो तो वायुका आधिक्य जानना, पिपासा ज्वर और मूर्च्छा हो तो पित्तका आधिक्य और प्लीहा अधिक कठिन, शरीर भारी और अरुचि हो तो कफका आधिक्य जानना। रक्तके आधिक्यमें पित्ताधिक्यकेही लक्षण मालूम होते है, पर प्यास उससेभी अधिक होती है। तीन दोषके आधिक्य में उक्त लक्षण सब मिले हुए मालूम होते है।

चिकित्सा।—प्लीहा रोगमें रोगीका पेट जिसमें साफ रहे पहिले इसका उपाय करना आवश्यक है। पुराना गुड और बडी हर्रका चूर्ण समान भाग अथवा काला नमक और बडी हर्रका चूर्ण समान भाग रोगी और रोगको अवस्था विचार कर गरम पानीके साथ फाकनेसे प्लीहा और यकृत् दोनो रोगको शान्ति होती है। पीपल प्लीहा रोगकी एक उत्तम औषध है, २।३ पीपल पानीमें पीसकर पिलानेसे अथवा गुडके साथ मिलाकर खानेसे

प्लीहामें विशेष उपकार होता है। तालकूट (ताडको जटा) एक हाडीमें रख मुख बन्द कर आगमें भस्म करना, यह भस्म पुराने गुडके साथ उपयुक्त मात्रा सेवन करानेसे प्लीहा प्रशमित होता है। हींग, शोठ, पोपल, गोलमरिच, कूट जवाखार और सैंधा नमक सबका सम भाग चूर्ण नीबूके रसमें खलकर दो आनेसे चार आने भर मात्रा रोज खिलाना। अजवाईन, चीतामूल, जवाखार, पीपला मूल, पीपल, और दन्ती सबका सम भाग चूर्ण आधा तोला मात्रा गरम पानी, दहीका पानी, सुरा या आसवके साथ पिलाना। चीतामूल पीसकर १ रत्ती बराबर गोली बनाना तथा वही गोली तोन पके केलेमें भरकर खिलाना। चीतामूल, हरदी, अकवनका पका पत्ता, अथवा धाईफूलका चूर्णकर पुराने गुडके साथ खिलाना। लहसन, पिपला मूल, और हर्रे खाने और गोमूत्र पीनेसे प्लीहा आराम होता है। शरफोका पीसकर आधा तोला मात्रा दहीके माठेके साथ पीनेसे प्लीहा उपशम होता है। शङ्खनाभिका चूर्ण आधा तोला वडे नीबूके रससे मिलाकर चाटनेसे कछुवेके समान प्लीहाभी आराम होतो है। समुद्रको सीप भस्म प्लीहा नाशक है। देवदारु, सैधानमक और गन्धक का सम भाग भस्मकर सेवन करनेसे प्लीहा, यकृत् और अग्रमास रोग आराम होता है रोहीतक और बडी हर्रके काढेके साथ २ आनेभर पीपलका चूर्ण मिलाकर पीना। सरिवन पिठवन, बनभण्टा, कटैली, गोखुर, हरीतकी और रोहीतककी छालका काढा देना। निदिग्ध-कादि काढाभी इसमें देना चाहिये। इसके सिवाय माणिकादि गुडिका, हनुमानकादि गुडिका, गुडपिप्पली, अभया लवण, महामृत्युञ्जय लौह, हृदशोकनाथ रस आदि औषध विचार कर प्रयोग करना। प्लीहाके साथ शेष सस्पष्ट ज्वर न रहनेसे चित्रक

घृत आदि सेवन कराना चाहिये। रोहितकारिष्टभी प्लीहाकी एक अकसीर दवा है।

प्लीहा ज्वरमे हमारी पञ्चतिक्त वटिका।— ज्वर प्रवल रहे या अकस्मात् प्रवल होनेसे उक्त औषधोंमे जो औषध ज्वरमें भी उपकारी हो वही औषध तथा ज्वरको औषध दोनो मिलाकर प्रयोग करना। आवश्यक होनेसे प्लीहाका औषध बन्द कर केवल ज्वरहीको चिकित्सा उस समय करना। हमारी "पञ्चतिक्त वटिका" प्लीहा ज्वरको अति उत्कृष्ट औषध है। चिकित्सासे ज्वर कम होनेपर फिर प्लीहाका औषध प्रयोग करना उचित है।

जीर्ण प्लीहा रोगमे कर्त्तव्य।—पुराने प्लीहा रोगमें विरेचक औषध प्रयोग नही करना, कारण अकस्मात् उदरामय होनेसे उसका आराम होना कठिन होजाता है, उदरामय हो तो पुटपक्व विषम ज्वरान्तक लौह आदि ग्राही औषध देना। रक्तामाशय, शोथ या पाण्डू कामला आदि थोडा मिलित रहनेसे उन रोगोकी औषधभी इसके साथ प्रयोग करना। प्लीहा रोग ग्रहणी रोगके साथ मिला रहनेसे आराम होना कठिन है। इस अवस्थामें चित्रकादि घृत और ग्रहणी रोगोक्त कनकारिष्ट और अभयारिष्ट प्रभृति औषध प्रयोग करना आवश्यक है।

प्लीहामे मुखक्षत चिकित्सा।—मुखमे घाव होनेसे खदिरादि वटिका पानीमें घिसकर घावमे लगाना। बकुलकी छाल, जामुनकी छाल, गावछाल और अमरूतका पत्ता पानीमें औटाकर थोडी फिटकिरीका चूर्ण मिलाकर गरम रहते कुल्ला करनेसे मुख क्षतमें विशेष उपकार होता है।

वेदना चिकित्सा।—प्लीहामे दर्द हो तो बन आदा

पोसकर लेप अथवा गरम पानीका स्वेद देना। तथा कसकर फलालेन पेटमें बांधनेसेभो उपकार होता है।

पथ्यापथ्य।—जोर्ण ज्वरमें जो पथ्यापथ्य विधि लिखो गई हैं, प्लीहा रोगमें भो वही सब पालन करना उचित है। इसमें साधारण दूध न देकर उसके साथ २।४ पीपल औटाकर वही दूध पान करनेको देना। इससे प्लीहाको शान्ति होती हैं, सब प्रकारको भुञ्जो वस्तु गुरुपाक वस्तु, तोक्ष्णवीर्य्य द्रव्य भोजन और परिश्रम, रातका जागना दिनका सोना और मैथुन आदि निषिद्ध है।



यकृत्।



निदान।—प्लीहा रोगके कारण जो उपर कह आये हैं, यकृत् रोगभी वही सब कारणोंसे उत्पन्न होता है। इसके सिवाय मद्यपान और अर्श आदि रोगोंमें रक्तस्राव बन्द होना आदि कारणोंसे भी यकृत् वर्धित या सङ्कुचित होनेसे यकृत् विकृत होता है, अविकृत अवस्थामें हाथ लगानेसे मालूम नही होता, परन्तु वर्धित होनेसे दबाने पर मालूम होता है। विकृत अवस्थाके यकृत्में दर्द, मलरोध या कर्दमवत् अल्प मलस्राव, सब शरीर विशेष कर दोनो आंखे पीली, खासी, दहिने तरफके पसुलियोंके नीचेका भाग कसा मालूम होना और सूई गडानेको तरह दर्द, दहिना कन्धा या दहिने सब अङ्गमें दर्द, मुखका स्वाद तीता, जीमचलाना

घृत आदि सेवन कराना चाहिये। रोहितकारिष्टभी प्लीहाकी एक अकसीर दवा है।

प्लीहा ज्वरमे हमारी पञ्चतिक्त वटिका।—ज्वर प्रवल रहे या अकस्मात् प्रवल होनेसे उक्त औषधोंमे जो औषध ज्वरमें भी उपकारी हो वही औषध तथा ज्वरको औषध दोनो मिलाकर प्रयोग करना। आवश्यक होनेसे प्लीहाका औषध बन्द कर केवल ज्वरहीको चिकित्सा उस समय करना। हमारी "पञ्चतिक्त वटिका" प्लीहा ज्वरको अति उत्कृष्ट औषध है। चिकित्सासे ज्वर कम होनेपर फिर प्लीहाका औषध प्रयोग करना उचित है।

जीर्ण प्लीहा रोगमे कर्त्तव्य।—पुराने प्लीहा रोगमें विरेचक औषध प्रयोग नही करना, कारण अकस्मात् उदरामय होनेसे उसका आराम होना कठिन होजाता है, उदरामय हो तो पुटपक्व विषम ज्वरान्तक लौह आदि ग्राही औषध देना। रक्तामाशय, शोथ या पाण्डु कामला आदि पोडा मिलित रहनेसे उन रोगोंकी औषधभी इसके साथ प्रयोग करना। प्लीहा रोग ग्रहणी रोगके साथ मिला रहनेसे आराम होना कठिन है। इस अवस्थामें चित्रकादि घृत और ग्रहणी रोगोक्त कनकारिष्ट और अभयारिष्ट प्रभृति औषध प्रयोग करना आवश्यक है।

प्लीहामे मुखक्षत चिकित्सा।—मुखमें घाव होनेसे खदिरादि वटिका पानीमें घिसकर घावमे लगाना। बकुलकी छाल, जामुनकी छाल, गाबछाल और अमरूतका पत्ता पानीमे औटाकर थोडी फिटकिरीका चूर्ण मिलाकर गरम रहते कुल्ला करनेसे मुख क्षतमें विशेष उपकार होता है।

वेदना चिकित्सा।—प्लीहामे दर्द हो तो वन आदा

पोसकर लेप अथवा गरम पानीका स्वेद देना। तथा कसकर फलालेन पेटमे बाधनेसेभी उपकार होता है।

पथ्यापथ्य ।—जोर्ण ज्वरमे जो पथ्यापथ्य विधि लिखो गई है, प्लीहा रोगमें भी वही सब पालन करना उचित है। इसमें साधारण दूध न देकर उसके साथ २।४ पीपल औटाकर वही दूध पान करनेको देना। इससे प्लीहाकी शान्ति होती है, सब प्रकारको भुञ्जी वस्तु गुरुपाक वस्तु, तोक्ष्णवीर्य्य द्रव्य भोजन और परिश्रम, रातका जागना दिनका सोना और मैथुन आदि निषिद्ध है।

यकृत् ।

निदान ।—प्लीहा रोगके कारण जो उपर कह आये है, यकृत् रोगभी वही सब कारणोंसे उत्पन्न होता है। इसके सिवाय मद्यपान और अर्श आदि रोगोंमें रक्तस्राव बन्द होना आदि कारणोंसे भी यकृत् वर्द्धित या सङ्कुचित होनेसे यकृत् विकृत होता है, अविकृत अवस्थामें हाथ लगानेसे मालूम नही होता, परन्तु वर्द्धित होनेसे दबाने पर मालूम होता है। विकृत अवस्थाके यकृत्मे दर्द, मलरोध या कर्द्दमवत् अल्प मलस्राव, सब शरीर विशेष कर दोनो आखे पीली, खासी, दहिने तरफके पसुलियोंके नीचेका भाग कामा मालूम होना और सूई गडानेको तरह दर्द, दहिना कन्धा या दहिने सब अङ्गमें दर्द, मुखका स्वाद तीता, जीमचलाना

या कै होना, नाडो कठिन, सर्व्वदा ज्वरबोध, और प्लीहा रोगके अन्यान्य लक्षण समूह भी दिखाई देते है। इस रोगमे रोगी दहिने करवट सो नही सकता है। प्लीहा रोगोक्त लक्षणोंकी तरह इसमेंभी वातादि दोषोको वृद्धिका अनुभव करना चाहिये। यकृत रोग भी बहुत दिन तक बिना चिकित्साके रहने पर पाण्डु कामला, शोथ, आदि अनेक उत्कट रोग उत्पन्न होता है।

यकृदुदर रोग।—यकृत् अधिक वर्द्धित हो उदर तक बढनेपर उसको यकृदुदर रोग कहते है। उदर रोगमें इसका लक्षण लिखेंगे।

चिकित्सा।—यकृत रोगको चिकित्सा प्लीहा रोगकी तरह करना, इसमें सर्व्वदा पेटसाफ रखना आवश्यक है। प्लीहा रोगको सब औषधें इस रोगमें प्रयोग कर सक्ते है। इसके सिवाय यकृदरि लौह, यकृत्प्लीहारिलौह, यकृत् प्लीहोदरहरलौह, वज्र-क्षार, महाद्रावक, और महाशङ्खद्रावक आदि औषध विचार कर देना। यकृत्में दर्द हो तो तार्पिनका तेल मालिश कर गरम पानीसे सेंकना, अथवा गोमूत्र गरम कर बोतलमें भर किम्बा फलालेन भिगोकर सेकना चाहिये। राईका लेप चढानेसेभी यकृतमें विशेष उपकार होता है।

पथ्यापथ्य प्लीहा रोगकी तरह पालन करना।

—o—

ज्वरातिसार।

संज्ञा और कारण।—ज्वर और अतिसार यह दोनो रोग एक साथ होनेसे उसको ज्वरातिसार कहते हैं। यह एक स्वतन्त्र रोग नहो है, पर इसको चिकित्सा विधि स्वतन्त्र है इससे अलग मालूम होता है। ज्वर और अतिसारके जो सब उत्पत्ति कारण निर्दिष्ट है, वह सब कारण एक साथ सङ्घटित होनेसे ज्वरातिसार उत्पन्न होता है। ज्वरमे कुपथ्य करना, पित्तकारक द्रव्य भोजन, दुषित जल पान, दुषित वायु सेवन और तेज विरेचन आदि कारणोंसेभो ज्वरातिसार रोग उत्पन्न होता है। जिस ज्वरमें पित्तका प्रकोप अधिक रहता है, उसमें ज्वरातिसार रोग होनेको सम्भावना है।

चिकित्सा।—ज्वर और अतिसार यह दो रोगको चिकित्सा एक साथ होनेका उपाय नहो हैं, कारण ज्वरको प्राय' सब औषधें दस्तावर और अतिसारको औषधें सब मलरोधक है, इस लिये ज्वर नाशक औषध अतिसारका विरोधो और अतिसार निवारक औषध ज्वरका विरोधी है। इससे इसको चिकित्साविधिभो स्वतन्त्र निर्दिष्ट है, इस रोगमे पहिले दस्त बन्द करना उचित नहो है, कारण इससे कोष्ठका सञ्चित मल रुद्ध हो, अन्यान्य उत्कट रोग उत्पन्न होता है, पर जहा अतिशय अतिसारसे रोगीके अनिष्टको सम्भावना मालूम हो वहा मल रोधक औषध प्रयोग करनाहो उचित है। साधारणत इस रोगके प्रथम अवस्थामे

पाचक और अग्निदीपक औषध प्रयोग करना। धनिया १ तोला और शोंठ एक तोला, एकत्र ३२ तोला पानीमें औटाना ८ तोला पानी रहने पर छानकर दिनको २।३ बार पिलाना। अथवा ह्रीवेरादि, पाठादि, नागरादि, गुडूच्यादि, उशीरादि, पञ्चमूलादि, कलिङ्गादि, मुस्तकादि, धनादि, बिल्वपञ्चक, और कुटजादि क्वाथ विचार कर व्यवस्था करना। इससेभी पीड़ाका उपशम नहीं हो, तो विचार कर अनुपान विशेषके साथ व्योषादि चूर्ण, कलिङ्गादि गुडिका, मध्यम गङ्गाधर चूर्ण, वृहत् कुटजावलेह, मृतसञ्जीवनी बटी, सिद्ध प्राणेश्वर रस, कनकसुन्दर रस, गगन सुन्दर रस, आनन्द भैरव और मृतसञ्जीवन रस आदि औषध प्रयोग करना आवश्यक है।

पथ्यापथ्य।—रोगी सबल हो तो पहिले उपवास, फिर उत्पलषटकके साथ यवागू पाक कर थोड़ा अनारका रस मिलाकर पिलाना। अथवा धानके लावाका मण्ड, जौका मण्ड, सिंघाड़ेकी लपसी, एरारूट और बार्लि खानेको देना, इस अवस्थामें हमारा सञ्जीवन खाद्य विशेष उपकारी पथ्य है। रोगी दुर्व्वल हो तो उपवास न देकर उक्त हलका भोजन देना। पीड़ाका ह्रास और रोगीके परीपाक शक्तिके अनुसार क्रमशः पुराने चावलका भात, मसूरकी दाल, बैंगन, गुल्लर और केलेकी तरकारी, मागुर, सिंगी, कवई आदि छोटी मछलीका रसा, अवस्था विचार कर कोमल मांसका रस, बकरीका दूध, अनार और कच्चा बेल भून कर खानेको दे सकते है। *गरम पानी ठंढा होनेपर पीनेको देना।*

निषिद्ध कार्य्य।—गुरुपाक और तीक्ष्णवीर्य्य द्रव्य, गेहूं, जौ, उरद, चना, अरहर, मूंग, शाक, इक्षु, गुड़, मुनक्का, दस्तावर द्रव्य मात्र, अधिक लवण, लाल मिरचा, अधिक पानी या अन्यान्य

तरल द्रव्य पान, हिम, धूप, अग्निसन्ताप, तैल मर्द्दन, स्नान, व्यायाम, रात्रिजागरण और मैथुन आदि इस रोगमें अनिष्टकारक है।

अतिसार।

अतिसार संज्ञा।—जिस रोगमें शरीरका दूषित रस, रक्त, पानी स्वेद, (पसीना) मेद, मूत्र, कफ पित्त और रक्त आदि धातु समूह अग्निको मन्द और मलके साथ मिलकर तथा वायुसे अधोभागमें प्रेरित हो थोड़ा थोड़ा निकलता है, उसको अतिसार कहते है।

निदान।—गुरुपाक, अति स्निग्ध, अति रुक्ष, अति उष्ण, अति शीतल, अति तरल और अति कठिन द्रव्य भोजन, क्षीर मत्स्यादिकी तरह संयोग विरुद्ध भोजन, पहिलेका खाया हुआ अन्न न पचनेपर भोजन, कच्चा अन्न भोजन, कोई दिन कम, कोई दिन अधिक या अनिर्दिष्ट समयमें भोजन वमन, विरेचन, पिचकारो, निरुहण, या स्नेहादि क्रियाका अतियोग, अल्प योग, अथवा मिथ्या योग, स्थावर विष खाना, दुष्ट मद्य या दुष्ट पानीका अधिक पीना, बिना अभ्यास और अनिष्ट कारक आहार विहारादि, ऋतुका व्यतिक्रम करना, भय, शोक, अधिक जलक्रीड़ा, मल मूत्रका वेग रोकना और क्रिमिदोष, इन्ही सब कारणोंसे अतिसार रोग उत्पन्न होता है। यह रोग ६ भागमें विभक्त है,

जैसे—वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, शोकज और अपक्व रस-जात, द्विदोषज अतिसारमें दो दोष मिलित लक्षणके सिवाय और कोई लक्षण मालूम होनेसे वह स्वतन्त्र रूप निर्दिष्ट नही होता।

प्रकाश पूर्व्व लक्षण।—सब प्रकारके अतिसारमें विशेष लक्षण प्रकाश होनेसे पहिले हृदय, नाभि, गुदा, उदर और कोख में सूई गडानेकी तरह दर्द, शरीर अवसन्न, वायु और मलका रोध, पेटका फूलना और अपरिपाक आदि लक्षण पहिले मालूम होते है।

वातज लक्षण।—वातज अतिसारमें लाल या काला फेनयुक्त, रूखा और कच्चा मल थोडा थोडा बार बार निकलता है, और गुदामें दर्द मालूम होता है।

पित्तज लक्षण।—पित्तज अतिसारमें मलपीला या हरा अथवा लाल रंगका होता है, तथा इसमें तृष्णा, मूर्च्छा, दाह और गुदामें जलन और घाव होता है।

कफज लक्षण।—कफज अतिसारमें सादा, गाढा, कफ मिला, आमगन्धयुक्त शीतल मल निकलता है। इस अतिसारमें रोगीका शरीर प्राय रोमाञ्चित होता रहता है।

सन्निपातज लक्षण।—त्रिदोषज अर्थात् सन्निपातज अतिसारमें उक्त वातजादि त्रिविध अतिसारके लक्षण प्रकाशित होते है, विशेष कर इसमें शूकरकी चर्बी अथवा मासधोत पानीकी तरह मल होता है। यही त्रिदोषज अतिसार अत्यन्त कष्ट-साध्य है।

शोकज लक्षण।—कोई दुर्घटनाके कारण अत्यन्त शोक हो अल्पाहारी होनेसे शोकज वाष्प और ऊष्मा कोष्ठमें प्रवेश

कर जब जठराग्निको मन्दकर रक्तको स्वस्थानसे हटा देता है, तब शोकज अतिसार उत्पन्न होता है। इसमें घुघुचीको तरह लाल रक्त मिश्रित मल अथवा खाली रक्त गुदासे निकलता है। मल मिश्रित होनेसे रक्त अतिशय दुर्गन्ध युक्त, और मल शून्य होनेसे निर्गन्ध होता है। शोक त्याग न कर देनेसे यह अतिसारभी दुसाध्य और कष्टप्रद होते देखा गया है।

आमातिसार लक्षण।—भुक्त द्रव्य न पचनेसे वातादि दोषत्रय विपथगामी हो, मल और रक्तादि धातु समूहोंको दूषित कर नाना प्रकारके वर्णका मल बार बार निकलता रहता है। इसीको आमातिसार अर्थात् अपक्व रसजात अतिसार कहते हैं, इसमें पेटमें बहुत दर्द होता रहता है।

अतिसारके मलकी परीक्षा।—सब प्रकारके अतिसारमें जबतक मल अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त और चिकना हो तथा पानीमें फेंकनेसे डूब जाय, तब तक उसको आम अर्थात् अपक्व अतिसार कहते हैं, और जब मल दुर्गन्धयुक्त रूखा और पानीमें नहीं डूबे तो उसको पक्वातिसार कहते हैं। इस अवस्थामें देह और शरीर हलका मालूम होता है।

असाध्य और सांघातिक लक्षण।—जिस अतिसारमें रोगीका मल स्निग्ध, काला अथवा यकृत् खण्डकी तरह काला लाल रंग, साफ और घृत, तैल, चर्ब्बी, मज्जा, बिना हड्डीका मांस, दूध, दही अथवा मांस धोये पानीकी तरह, चास नामक पक्षीके भांति रङ्ग नीलारुण वर्ण, अथवा ईषत् कृष्ण लालवर्ण, चिकना नानावर्णयुक्त, किम्वा मयूरपुच्छकी तरह विविध वर्णयुक्त, तथा, शवगन्धकी तरह दुर्गन्धयुक्त, मस्तिष्कको तरह गन्ध अथवा सड़ी बदबू, या परिमाणमें अधिक हो तो उस रोगीकी

निवृत्त होनेपर पहिले ऊपर कहे हुए पक्वातिसारके लक्षण प्रकाशित हुआ है यानही इस विषयमें लक्ष्य रखना चाहिये। पक्वातिसारके लक्षण प्रकाशित होतेही वातादि दोषानुसार भेदका अनुमान कर चिकित्सा करना।

विभिन्न दोषज अतिसार चिकित्सा।—वातज अतिसारमे पूतिकादि, पथ्यादि और वचादि काढा देना। पित्तज अतिसारमें मधुकादि, बिल्वादि, कटफलादि, कंचटादि, किराततिक्तादि, और अतिविषादि काढा देना। कफज अतिसारमें पथ्यादि, क्रमिघ्नत्वादि और चव्यादि काढा तथा पाठादि चूर्ण, हिङ्गादि चूर्ण, वर्व्वूलादि योग और पथ्यादि चूर्ण सेवन कराना। त्रिदोषज अतिसारमे समङ्गादि और पञ्चमूलीवलादि काढा देना। शोकज और भयजनित अतिसारमें वातज अतिसारकी तरह चिकित्सा करना, इसके सिवाय पृश्निपर्ण्यादि काढाभी शोकज अतिसारमे प्रयोग करना चाहिये। पित्त कफातिसारमे मुस्तादि, समङ्गादि और कुटजादि, वात कफातिसारमे चित्रकादि काढा और वातपित्तातिसारमें कलिङ्गादि कल्क प्रयोग करना चाहिये।

रक्तातिसारकी चिकित्सा।—रक्तातिसारमें आमशूल और मलभेद होनेसे भूना कच्चा बेल गुडके साथ मिलाकर दो तोले मात्रा खानेको देना। शल्लकी मूलकी छाल, बैरकी छाल, जामुनकी छाल, पियालकी छाल, आमकी छाल अथवा अर्जुनकी छाल पीसकर दूध और सहतके साथ सेवन कराना। मधा नमक अनारके फलकी छाल, कुरैयाकी छाल प्रत्येक १ तोला, ३२ तोला पानीमें औटाना ८ तोले रहने पर छानकर दो आने भर सहत मिलाकर पिलाना। आम, जामुन और आंवलेका नरम पत्ता कूटकर उसका रस दो तोले, सहत और बकरीके दूधके साथ पिलाना। ज्येष्ठा

का मूल २ मासे, चावलके धोवनके साथ पीसना फिर उसमें चीनी और मद्दत मिलाकर पिलाना। काली तिल पीसकर उसके चार भागका एक भाग चीनी मिलाकर बकरीके दूधके साथ देना। बडको सोर चावलके धोवनमें पीसकर माठेके साथ मिलाकर पिलाना।

कुकुरसोंका के ३।४ पत्तेका काढा पिलाना। कुरैयाकी छालके काढेको गाढा औटाकर अतीसका चूर्ण २ आने भर मिलाकर पिलानेसे प्रबल रक्तातिसार और अन्यान्य अतिसारभी आराम होता है। कुरैयाको छाल ८ तोले, ६४ तोले पानीमें औटाना ८ तोले रहते उतार कर छान लेना, ऐसही अनारके फलकी छालका काढा तयार करना। फिर दोनो काढा एकत्र मिलाकर औटाना, गाढा होनेपर १ तोला मात्रा दहीके माठेके साथ पिलाना। गुदामें दर्द हो तो अफीम ४ रत्ती, खैर ४ रत्ती और मैदा ८ रत्ती एकत्र मिलाकर घीसे बत्ती बनाना फिर वही बत्ती एक एक कर दो घण्टेके अन्तर पर अङ्गुलीसे गुदामें प्रवेश करना। घाघा घीमें भूनकर सेंकनेसेभी दर्द आराम होता है।

जीर्णावस्थाकी चिकित्सा।—सब अतिसारके जीर्ण अवस्थामें अर्थात् जब आमदोष परिपाक होकर दर्द आराम हो जठराग्निको दीप्ति होती है, तथापि नानाप्रकारका मल निकलता रहता है, उस वक्त वत्सकादि काढा, कुटज पुटपाक, कुटज लेह, कुटजाष्टक, और षडङ्गघृत आदि प्रयोग करना। इस अवस्थामें कुरैयाकी छाल, मोथा, सोंठ, बेलकी गूदी, गोंद, सोहागेका लावा, खैर और मोचरस प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला, अफीम आधा तोला एकत्र मिलाकर एक आना भर मात्रा, कुकुरसोंकेका काढा

या ठंढे पानीके साथ दिन भरमें ३ बार सेवन करानेमें विशेष उपव
होता है।

प्रवल अतिसारमे मलभेद चिकित्सा।—प्र
अतिसारमें मलभेद बन्द करनेके लिये आवला पानीमें पीस
नाभिके चारो तरफ गोल मेंडी बनाना और बीचमें शुद्ध अदरख
रस भर देना, इसमें प्रवल अतिसारका वेग और दर्द शान्त हो
है। जायफल पीसकर उसका लेप अथवा आमकी छाल काञ्जी
पीसकर लेप करनेसे भी वैसही उपकार होता है। माजूफल च
५ रत्ती, अफीम चोथाई रत्ती और गोंदका चूर्ण पाच रत्ती एक
मिलाना, फिर प्रत्येक दस्तके बाद ठंढे पानीसे सेवन करना। द
बन्द होनेपर दिनको केवल एकबार सेवन कराना। अतिसा
साथ वमनका उपद्रव हो तो विल्वादि और पटोलादि काढा देन
वमन, तृष्णा और ज्वर आदि कई उपद्रवमें प्रियङ्ग्वादि, जम्बा
ह्रीवेरादि और दशमूल शुण्ठी आदि व्यवस्था करना। गुद
दाह या घाव होनेसे पटोलपत्र और जेठोमध औटाये पानी
अथवा वकरीके गरम दूधसे गुदा सेकना तथा पटोल पत्र औ
जेठोमध वकरीके दूधमें पीसकर गुदामे लेप करना।

शास्त्रीय औषध।—उपर कहे सब अतिसारका दो
रोगोका वल और अनुपान विचार कर नारायण चूर्ण, अतिसा
वारण रस, जातीफलादि वटिका, प्राणेश्वर रस, अमृतार्ण
भुवनेश्वर रस, जातीफल रस, अभय नृसिंह, आनन्दभैरव, कर्पू
रस, कुटजारिष्ट और अहिफेनासव आदि औषध प्रयो
करना। इसके सिवाय ग्रहणी रोगोक्त कई औषध भी विचार क
दिया जा सकता है।

पथ्यापथ्य।—अपक्व अतिसारमें उपवासको प्रशस्त है। अतिसार रोगी दुर्व्वल हो तो उपवास न देकर हल्का पथ्य देना उचित है। धानके लावाका सत्तू पानीमें पतलाकर, अथवा पानीका साबूदाना, एरारूट, बार्लि, सिङ्घाडेके आटेकी लपसी, किम्वा भातका मण्ड और यवका मण्ड देना, यह सब बहुत हल्का पथ्य है। उक्त पथ्यकी अपेक्षा औषधके साथ यवागू सिद्धकर पिलानेसे विशेष उपकार होता है। सरिवन, पिठवन, बनभण्टा, कटेली, बरियारा, गोखरू, बेलकी गूदी, आकनादि, सोंठ और धनिया, यह सब द्रव्यके काढ़ेके साथ यवागू बनाकर सब अतिसार रोगमें पथ्य दिया जा सकता है। इसके सिवाय पित्तश्लेष्मातिसारमें सरिवन, बरियारा, बेलकी गूदी और पिठवनका काढा, वात-श्लेष्मातिसारमें धनिया, सोंठ, मोथा, बाला और बेलकी गूदीका काढा अथवा केवल धनिया और सोंठका काढा, वातपित्तातिसार में, बेल, अरलु, गाम्भारी, पाटला, गनियारीके जडका काढा, और कफातिसारमें पीपल, पीपलामूल, चाभ, चितामूल और सोंठके काढेके साथ यवागू बनाकर पथ्य देना। गरम पानी ठण्ढा कर वही पानी पीनेको देना। प्यास अधिक होने पर बार बार पानी मांगेतो धनिया और बाला दोनोंको पानीमें औटाकर वही पानी पीनेको देना, इससे प्यास, दाह और अतिसार शान्त होता है। पक्वातिसारमें पुराने महीन चावलका भात, मसूरकी दाल, परवर, बैगन, गुल्लर, केला आदिकी तरकारी, कवई, मागूर, सिङ्गी, आदि छोटी मछलीका रस्सा। चूनेके पानीके साथ मिलाकर अथवा अतिसार नाशक औषधके साथ औटाकर दूध आदि पथ्य देना चाहिये। अति जीर्ण अतिसारमें केवल दूधही उपकारी है। रक्तातिसारमें गो दूधके बदले बकरीका दूध विशेष उपकारी है।

भूजा कच्चा बेल या बेलका, मुरब्बा, अनार, कसेरु और सिङ्घा आदि पुराने अतिसारमें खानेको देना चाहिये।

निषिद्ध।—ज्वरातिसारके पथ्यापथ्यमें जो सब आहार विहार मना किया गया है अतिसार रोगमें भी वही सब मना है पर रोगी बलवान हो तो २।३ दिन अन्तर पर गरम पानी ठण्ढा कर स्नान करा सकते हैं।

—०—

प्रवाहिका (आमाशय रोग)।

—०—

निदान।—दूषित, शीतल, आर्द्र, वायु सेवन, आर्द्र स्थानमें वास, अपरिष्कृत जलपान, गुरुपाक, उग्रवीर्य्य और वायु जनक द्रव्य भोजन, अधिक भोजन, अतिरिक्त परिश्रम और अधिक मद्य पान आदि कारणोंमें प्रवाहिका रोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें कुपित वायुसे बारबार मलके साथ थोड़ा थोड़ा कफ निकलता है। पहिले इसमें कफलिपटा अत्यन्त दुर्गन्ध और चिपकता हुआ मल निकलता है, फिर उसके साथ रक्तभी जारी होता है। तथा ज्वर, क्षुधामान्द्य, पिपासाधिक्य, पेटका ऐंठना, जीभ मैल से लिपटी, जीभचलाना, मूत्र थोड़ा और लाल, पिशाब करती वक्त दर्द, मुख-मण्डल मलीन और उदास, जीभ सूखी, लाल, पिङ्गल और काली, नाड़ीकी गति कभी तेज कभी क्षीण आदि लक्षणभी प्रकाशित होता है। दस्तके वक्त प्रवाहन अर्थात् कांखना पड़ता है इससे इसका नाम प्रवाहिका है। चलित भाषामें इसको "आमाशय" और रक्त मिला रहनेसे "आमरक्त" कहते हैं।

दोषभेद लक्षण।—विरुद्ध आहार विहारादिके पार्थक्यानुसार तीन दोष और रक्त कुपित हो यह रोग उत्पन्न होता है। स्नेह पदार्थ सेवन करनेसे कफज, रूक्ष द्रव्य भोजन करनेसे वातज और उष्ण तीक्ष्ण द्रव्य सेवनसे पित्तज तथा रक्तज प्रवाहका उत्पन्न होता है। वायुजनित प्रवाहिकामे पेटमें अत्यन्त दर्द, पित्तजनितमे शरीर और गुह्यमे जलन, कफ जनितमें अधिक कफ मिश्रित मल आना और रक्तजनितमे रक्त मिला मल निकालता है। पोडाके प्रबल अवस्थामे अतिसार के लक्षण समूहभी प्रकाश होते है। इसको अपक्क और पक्कावस्था अतिसारोक्त लक्षणके अनुसार स्थिर करना।

चिकित्सा।—साधारणत इस रोगकी चिकित्साविधि प्राय अतिसार रोगकी तरह जानना। विचार कर वही सब काढा और औषध इस रोगमे भी देना, तथा औरभी कई विशेष औषध इसमे दे सकते है। एक बरससे कम दिनके रोगोको इमलोके पौधेको जड दो आनेसे चार आनेभर माता दहोके माठेमे पीसकर दिनको ३।४ बार पिलाना। इमलोके पौधेका नरम पत्ता २ तोले पानीसे औटाना ८ तोले रहते छानकर पिलाना। अनारका कच्चा फल या पत्तेका रस और कुरैयाके छालका रस या काढा इस रोगमे विशेष उपकारी हैं। किन्तु रोगके प्रथम अवस्थामे कुरैयाको छाल देना उचित नही है। पीपलका चूर्ण आधा तोला अथवा गोलमरिचका चूर्ण चार आने भर आधा पाव दूधके साथ पीनेसे पुराना प्रवाहिका रोगभी आराम होता है। बहुत छोटा कच्चा बेल भूनेको गूदी और सफेद तिल सम भाग दहोके साथ सेवन कराना, कच्चा बेल भूनेको गूदो २ तोले, उसका गुड एक तोला, पीपल और शोठका चूर्ण चार आनेभर थोडे तिलके तेलके

साथ मिलाकर सेवन कराना। अकवनके जडकी छालका चूर्ण ५।६ रत्ती माला सेवन करानेसे विशेष उपकार होता है। कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव, मोथा, बाला, मोचरस, वेलकी गूदी, अतीस और अनारकी छाल, प्रत्येक चार आनेभर ३२ तोले पानीमें औटाना ८ तोले रहते छानकर पिलाना। आमाशयके प्रथम अवस्थामें रेंडीका तेल आधा छटाक, अहिफेनासव १० बुंद १ छटाक पानीमें मिलाकर रोज एकदफे पिलाना तथा थोडे दिन तक सोंठका चूर्ण २ रत्ती, कुरैयाका चूर्ण ८ रत्ती, गोंदका चूर्ण ४ रत्ती और अफीम आधी रत्ती एकत्र मिलाकर दिनभरमें ३ बार सेवन करानेसे आमाशय रोग आराम होता है। सफेद राल्चूर्ण और चीनी सम भाग दो आनेभर माला खिलानेसे आमाशय रोग बहुत जल्दी आराम होता है। पेटका दर्द आराम करनेके लिये तार्पिनका तेल पेटपर मालिश करना, अथवा सेउडा पत्ता दो तोले, नरम कटहरिया केलेका दो टुकडा, अथवा चावल २ तोले और पानी एक पाव एकत्र एक पत्थरके बरतनमें मलकर छान लेना फिर उस पानीका चौथा भाग एक पीतलके बरतनमें औटाना आधा पानी जल जानेपर सेवन कराना। ऐसही ३ घण्टे अन्तर पर दिनभरमें ४ बार सेवन करानेसे पेटका दर्द आराम होता है। रोग और रोगीकी अवस्था विचार कर अतिसार और ग्रहणी रोगोक्त अन्यान्य औषधभी इस रोगमें प्रयोग कर सकते हैं।

पथ्यापथ्य।—पथ्यापथ्य अतिसार रोगको तरह पालन करना। पुराने रक्तामाशयमें ज्वरादिका सम्बव न रहनेसे भैंसकी दही या उसका मट्ठा दे सकते है, इससे विशेष उपकार होता है।

ग्रहणी रोग।

निदान।—अतिसार रोग आराम होनेपर अग्नि, बल अच्छी तरह वृद्धि होनेके पहिलेही किसी तरहका कुपथ्य पदार्थ खा लेनेसे जठराग्नि अत्यन्त दुर्व्वल हो ग्रहणी नामक नाडीको दूषित करता है। फिर अग्निमान्द्य आदि कारणोंसे वातादि दोष कुपित हो वही दूषित ग्रहणी नाडीको अधिक दूषित करता है। इस अवस्थामें कभी अपक्व युक्त द्रव्य मलद्वारसे बार बार निकलता है, कभी पचकर अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त मल बार बार निकलता है, तथा कभी मल बन्द होजाता है। सब अवस्थामें पेटमें दर्द मालूम होता है। इसी रोगको ग्रहणी रोग कहते है। ग्रहणीको नाडी अर्थात् पक्वाशय दूषित होकर यह रोग उत्पन्न होता है, इसीसे ग्रहणी रोग कहते है। अतिसार रोग रहते अथवा अतिसार रोग न रहनेपरभी अकस्मात् ग्रहणी रोग उत्पन्न होता है।

पूर्व्वरूप।—ग्रहणी रोग प्रकाश होनेसे पहिले प्यास, आलस्य, शरीरका भारीपन, और अग्निमान्द्यसे खाया हुआ पदार्थका खट्टा होना अथवा देरसे पचना आदि पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है।

वातज ग्रहणी।—अतिशय कटु, तिक्त, कषाय और रुक्ष द्रव्य भोजन, संयोगादि विरुद्ध द्रव्य भोजन, अथवा अल्प भोजन, उपवास, पैदल अधिक चलना, मलमूत्रका वेग रोकना और अतिरिक्त मैथुन आदि कारणोंसे वायु कुपित हो पाचकाग्नि दूषित

होकर वातज ग्रहणी उत्पन्न होती है। यही वातज ग्रहणीमें खाया हुआ पदार्थ देरसे पचनेके सबब खट्टा हो जाता है, शरीर रूखा, कण्ठ सूखा, भूख, प्यास, आंखकी ज्योति कम कानमें भी भी शब्द बोध, पार्श्व, ऊरू, दोनो पट्टा, गरदन आदिमें दर्द, विसूचिका अर्थात् कै दस्त दोनो एक साथ होना, अथवा कभी पतला, कभी सूखा थोड़ा फेनीला कच्चा मल बार बार तेज और कष्टसे होना, छातीमें दर्द, शरीर क्षश और दुर्व्वल, मुख वेस्वाद, गूदामें काटनेकी तरह दर्द मधुर (मीठा) आदि रसयुक्त भोजनकी इच्छा, मन अवसन्न और कास, श्वास आदि लक्षण प्रकाशित होते है। इस रोगमें खाया हुआ पदार्थ पचनेके वक्त अथवा पच जाने-पर पेट फूलता है, पर आहार करनेके बाद शान्ति मालूम होती है। तथा इस रोगमें सर्व्वदा वातगुल्म, हृद्रोग अथवा प्लीहा रोग हुआ है ऐसी आशङ्का रोगीको बनी रहती है।

पित्तज-ग्रहणी।—अम्ल, लवण, कटु रसयुक्त, अपक्व विदाही अर्थात् जो द्रव्य पचने पर खट्टा होता है वही सब द्रव्य और तीक्ष्ण उष्णवीर्य्य द्रव्यके भोजनसे पित्त विगड़कर जठराग्नि बन्द होनेसे पित्तग्रहणी उत्पन्न होता है। इसमें बदबू लिये खट्टी डकार आना, गला और छातीमें दर्द, अरुचि, प्यास, नीले या पीले रंगका दस्त आना, तथा रोगीका शरीर पीला होजाता है।

श्लेष्मज ग्रहणी।—अतिशय गुरुपाक, स्निग्ध, शीतल, लसेदार और मधुरादि रसयुक्त द्रव्य भोजन, अधिक भोजन, तथा दिनको भोजनके बादही सोना आदि कारणोंसे कफ प्रकुपित हो जठराग्निको खराब करता है, इससे श्लेष्मज ग्रहणी उत्पन्न होता है। इस ग्रहणीमें खाया हुआ पदार्थ कष्टसे पचता है, मुख कफसे

लिपटा और बेस्वाद मालूम होता है, किसी प्रकारके गाढे द्रव्यसे हृदय पूर्ण मालूम होना, दुर्ब्बलता आलस्य, जी मचलाना, वमन, अरुचि, कास, पीनस, पेट स्तब्ध और भारी मालूम होना, डकार में मीठा स्वाद, अवसन्नता, मैथुनमें अनिच्छा, आम और कफयुक्त मलभेद आदि लक्षण प्रकाशित होते है।

सन्निपातज ग्रहणी।—तीन दोष मिले हुये प्रकोप कारक द्रव्य सेवन करनेमें दो या तीन दोष प्रकुपित हो दो दोषज या सन्निपातज ग्रहणी रोग उत्पन्न होता है। इसमें उक्त सब लक्षण मिले हुये मालूम होते है।

संग्रह ग्रहणी।—ग्रहणी रोगके सिवाय संग्रह ग्रहणी नामक एक प्रकार और ग्रहणी रोग है इसमें किसीको रोज, किसी को १० या १५ दिन अथवा १ मास अन्तर पर पतला या गाढा, शीतल, चिकना और अधिक मल जोरसे निकलता है। दस्तके समय आवाज, कमर और पेटमें दर्द, पेट बोलना, आलस्य, दुर्ब्ब-लता, अंग प्रभृतिमें अवसन्नता आदि लक्षण प्रकाशित होते है। दिनको यह दोष बढता है और रातको कम होजाता है। आम और वायु इसका रोगका आरम्भक है। यह लक्षण अतिशय दुर्बोध और दुःसाध्य है।

अतिसार रोगके अपक्व और पक्व लक्षणकी भांति ग्रहणी रोगमें भी अपक्व और पक्व लक्षणका विचार करना चाहिये। वृद्धको ग्रहणी रोग होनेमें उसकी मृत्यु निश्चय जानना।

चिकित्सा।—अतिसार रोगकी तरह ग्रहणी रोगमेंभी अपक्वावस्थामें मल रोधक न देकर पाचक औषध देना चाहिये। शोठ, मोथा, इलायची और गुरिच, इन चार द्रव्योंका काढा अथवा धनिया, अतीस, वाला, अजवाईन, मोथा, शोठ बरियारा, सरिवन,

पीठवन और वेलको गूदी, इस सब द्रव्योंका काढा पिलानेसे आम-दोषका परिपाक और अग्निकी दीप्ति होती है। चित्रकगुडिका नामक औषध इस अपक्वावस्थामें दिया जाता है।

दोषभेदसे व्यवस्था।—अतिसारोक्त पक्व लक्षणोंके अनुसार इसकाभी पक्व लक्षण विचार कर वातादि दोषोंका बलाबल विवेचना पूर्व्वक रोगनाशक औषध स्थिर करना चाहिये। साधारणत वातज ग्रहणी रोगमें बालपर्ण्यादि कषाय, पित्तज ग्रहणीमें तिक्तादि कषाय, श्रीफलादि कल्क, नागरादि चूर्ण, रसाञ्जनादि चूर्ण, श्लेष्मज ग्रहणीमें चातुर्भद्र कषाय, शठ्यादि चूर्ण, रास्नादि चूर्ण और पिप्पली मूलादि चूर्ण. वातपित्तज ग्रहणीमें मुस्तादि गुडिका, वातश्लेष्मज ग्रहणीमें कर्पूरादि चूर्ण और तालिशादि वटी, कुटजावलेह, खेतपापडाका रस और सहत चटाना, फिर हींग, जीरा, शोंठ, पीपल और गोलमरिचका चूर्ण समभाग दो आनेभर मात्रा मट्ठेके साथ मिलाना। पित्तश्लेष्मज ग्रहणी रोगमें सूपलादि योग व्यवस्था करना उचित है। इसके सिवाय एक दोषज द्विदोषज, त्रिदोषज या संग्रह ग्रहणी रोगमें रोगी और रोगकी अवस्था दोष और बलाबल विचार कर श्रीफलादि कल्क, पञ्चपल्लव, नागराद्य चूर्ण, भूनिम्बाद्य चूर्ण, पाठाद्य चूर्ण, स्वल्प गङ्गाधर चूर्ण, वृहत् गङ्गाधर चूर्ण, स्वल्प और वृहत् लवङ्गादि चूर्ण, नायिका चूर्ण, जातिफलादि चूर्ण, जीरकादि चूर्ण, कपित्थाष्टक चूर्ण, दाडिम्बाष्टक चूर्ण, अजाज्यादि चूर्ण, कञ्चनावलेह, दशमूल गुड, सुस्तकाद्य मोदक, कामेश्वर मोदक, मदन मोदक, जीरकादि और वृहत् जीरकादि मोदक, मेथी और वृहन्मेथी मोदक, अग्निकुमार मोदक, ग्रहणीकपाट रस, संग्रह ग्रहणी कपाट रस, ग्रहणीशार्दूल वटिका, ग्रहणी गजेन्द्र वटिका, अग्निकुमार रस, जातीफलाद्य वटी, महा

गन्धक, महाभ्र वटिका, पीयूषवल्ली रस, श्रीनृपतिवल्लभ, बृहत् नृपति वल्लभ, ग्रहणीवज्र कपाट, राजवल्लभ रस आदि औषध प्रयोग करना।

पुराने ग्रहणीकी चिकित्सा।—पुराने ग्रहणी रोगमें चाङ्गेरी घृत, मरिचाद्य घृत, महाषट पलक घृत, सेवन और विल्व तेल, ग्रहणी मिहिर तैल, बृहत् ग्रहणी मिहिर तैल और दाडिमाद्य तैल मालिश करना।

पुराने ग्रहणी रोगमें शोथादि उपद्रव उपस्थित होनेसे दुग्धवटी, लौह पर्पटी, स्वर्ण पर्पटी, पञ्चामृत पर्पटी, रस पर्पटी आदि औषध प्रयोग करना चाहिये। सग्रह ग्रहणी और किसी ग्रहणी रोगमें मल बन्द रहनेसे अजवाईन और काला नमक समभाग चार आने भर मात्रा गरम पानीके साथ सेवन कराना। गौ का घी सधा नमकके साथ मिलाकर सेवन करानेसे भी बद्ध मल पतला हो निकलता है।

पथ्यापथ्य।—ग्रहणी रोगके अपक्व या पक्व अवस्थामें अतिसार रोगको भांति पथ्यापथ्य प्रतिपालन करना। कईथकी गूदी, वेलकी गूदी और अनारके फलकी छाल प्रत्येक २ तोले और उपयुक्त परिमाण दहीके माठेमें यवागू बनाकर पिलाना। वातज ग्रहणीमें स्वल्प पञ्चमूलीके काढेके साथ यवागू मिलाकर पिलाना। सब प्रकारके ग्रहणी रोगमें तक्र अर्थात् दहीका मट्ठा विशेष उपकारी है।

—०—

अर्शोरोग (ववासीर)।

—○—

वलिके समावेशका स्थान।—गुह्यद्वारके भीतरकी तरफ ४॥ अङ्गुल परिमित स्थानमें शङ्खावर्त्तकी तरह जो तीन आवर्त्त है, उसको वलि कहते हैं। भीतरकी तरफ १॥ डेढ अङ्गुल परिमित पहिले वलिका नाम प्रवाहणी, उसके नीचे १॥ डेढ अङ्गुल परिमित दूसरी वलिका नाम विसर्ज्जणी तथा उसके नीचे १ अङ्गुल परिमित तीसरी वलिका नाम सम्वरणी। बाकी आधो अङ्गुल परिमित गुह्यद्वार के अंशको गुदौष्ठ कहते हैं। वायु पित्त और कफ यह दोषत्रय, त्वक्, मास और मेद धातुको दुषित कर पूर्व्वोक्त वलित्रयमें नाना प्रकार आकृति विशिष्ट मासाङ्कुर उत्पन्न होते है, इसी मासाङ्कुरको अर्श कहते है, मलद्वारके वाहर जो सब मासाङ्कुर उत्पन्न होते हैं उसको बाह्यार्श और भीतरके मासाङ्कुरको अभ्यन्तरार्श कहते हैं। गुह्यद्वारके सिवाय लिङ्ग, नाभि, नासिका और कर्ण आदि स्थानोंमें भो अर्शोरोग उत्पन्न होता है।

साधारण लक्षण।—इस रोगका साधारण लक्षण कोष्ठकाठिन्यता, अजोर्ण, कठिन मल निकलते वक्त दर्द और रक्त-स्राव। रक्त २।४ बूंदसे आध सेर तक स्राव होते देखा गया है। पीडाकी प्रवल अवस्थामें पिशावके समय या उत्कट भावसे बैठने-परभी रक्त निकलता है।

प्रकार भेद।—साधारणत अर्शोरोग ६ प्रकार —वातज, पित्तज, श्लेष्मज, त्रिदोषज, रक्तज और सहज। दो दोषके

मिलित लक्षण और मिलित चिकित्साके सिवाय द्विदोषज अर्श रोगका स्वतन्त्र कोई लक्षणादि रहनेसे पृथक् भावसे गिना नही जाता।

वातज अर्श —वातज अर्श—कषाय, कटु, तिक्त रस और रुक्ष, शीतल और लघु द्रव्य भोजन, अति अल्प भोजन, तीक्ष्ण मद्य पान अतिरिक्त मैथुन, उपवास, शीतल देशमे वास, व्यायाम, शोक, प्रवल वायु और आतप सेवन आदि कारणोसे वातज अर्श उत्पन्न होता है। हेमन्तादि शीत काल इस अर्शके उत्पन्नका समय है। इस अर्श रोगमे किसी तरहका स्राव नही होता पर टप् टप् दर्द होता है। मासांकुर समूहोमें किसीको आकृति खजुरको तरह, किसीको बैरको तरह, किसीकी बनकपासके फूलकी तरह, कोई कदम्ब फूलको तरह, कोई सफेद सरसोको तरह होता है। सब प्रकारके मासांकुर म्लान, धूम्रवर्ण, कठिन, धूलेको तरह रूखा स्पर्श और गौ जोभको तरह कर्कश स्पर्श, कटहरके छोटे फलकी तरह छोटा छोटा काटा और हरेक काटा भिन्न भिन्न आकृति और टेढा तथा अग्रभाग सूक्ष्म और फटा होता है। इस रोगमे रोगीका मस्तक, पार्श्व, कन्धा, कमर, ऊरू और पट्टा आदि स्थानोंमे दर्द; छीक, डकार, पेट भारी मालूम होना, छातीमे दर्द, अरुचि, कास, श्वास, अग्निकी विषमता, कानमे साय साय आवाजका होना, भ्रम, अत्यन्त यातना, शब्दयुक्त चिकना और फेनयुक्त गठीला, थोडा थोडा मल आना, तथा त्वक, नख, मल, मूत्र, आंख, मुखका रङ्ग काला हो जाता है।

पित्तज अर्श. ।—पित्तज अर्श—कटु, अम्ल, लवण, उष्ण स्पर्श या उष्णवीर्य्य, अम्लपाक, और तीक्ष्ण द्रव्य भोजन, मद्य पान, अग्नि और धूपका सन्ताप, व्यायाम, क्रोध, असूया, उष्ण

देश और, उष्ण कालमें पित्तज अर्श रोग उत्पन्न होता है। अर्श रोगमें मासाकुर समूह लाल, पीला या काले रग पर अग्र नीले रङ्गका होता है, इसकी आकृति शुककी जीभ, यकृत् या जोंकके मुखकी तरह होती है पर मध्य भाग स्थूल, लम्बा अल्प परिमाण, उष्ण स्पर्श और कोमल, आमगन्ध अर्थात् मछ बदबूकी तरह. मासाकुरसे पतला रक्त स्राव, जलन और कभी वह पकभी जाता है तथा इस रोगमें ज्वर, पसीना आना, प मूर्च्छा, अरुचि, मोह और नीला पीला या लाल रङ्गका पतला मल भेद होता है। रोगीका त्वक, नख, मल, नेत्र मुख हरा, पीला अथवा हलदीके रङ्गका होता है।

श्लेष्मज अर्श:।—श्लेष्मज अर्श—मधुर, स्निग्ध, शीत लवण, अम्ल और गुरु द्रव्य भोजन, शारीरिक परिश्रम, शून्य दिवानिद्रा, सुखकर बिछौनेमें शयन, सुखकर आसन पर बैठ पूर्व वायु या सम्मुख वायु सेवन, शीतल देश, शीतकाल चिन्ता शून्यता आदि कारणोंसे श्लेष्मज अर्श उत्पन्न होता है। इ मासाकुर महामूल अर्थात् बहुत दूर तक गहिरा, घना, अ वेदनायुक्त, श्वेतवर्ण, दीर्घाकृति, स्थुल, चिकना, कडा, (दबा दबता नही) गुरु अर्थात् भारी, निश्चल, पिच्छिल, मसृण, अल्प कण्डु और सुखस्पर्श होता है। इसकी आकृति वंशाकुर, कटहर बीज और गो स्तनकी तरह होती है। इस अकुरसे क्ले रक्तादि स्राव और कठिन मल आनेपरभी मासाकुर विदीर्ण नह होता। इस अर्श रोग मे दोनो पट्टा बाधनेकी तरह पीडा, गुह्य देश, वस्ति और नाभि खींचनेकी तरह वेदना, श्वास, कास, वमन वेग, मुख और गुह्यस्राव, अरुचि, पीनस, मोह, मूलकृच्छ्र, शिरका भारीपन, शीतज्वर, रतिशक्ति हीनता, अग्निमान्द्य, अतिसार

और ग्रहणी आदि आमबहुल पीडाकी उत्पत्ति और प्रवाहिकाके लक्षणयुक्त, कफमिश्रित और चर्बीकी तरह वहुत मलका आना, आदि लक्षण प्रकाशित होते है। रोगीका त्वक, नख, मल, मूत्र और नेत्र आदि चिकना, स्निग्ध और पाण्डुवर्ण होता है।

वातज, पित्तज और श्लेष्मज अर्शरोग में जो सब निदान लक्षणादि पृथक भावसे निर्दिष्ट है, मिलित भावसे वह सब निदान सेवित होनेसे, द्विदोषज, अर्थात् वातपित्तज, वातश्लेष्मज और पित्तश्लेष्मज अर्शो रोग उत्पन्न होनेसे वह सब लक्षण मिले हुये मालूम होते है।

त्रिदोषज अर्थात् सन्निपातज अर्शोरोगका वही सब मिलित निदानसे उत्पन्न होनेसे तीन दोष मिले हुये लक्षण प्रकाशित होता है।

रक्तज अर्श. ।—रक्तज अर्श—पित्तज अर्शोरोगमें जो सब निदान है, रक्तज अर्शभी वही सब निदानसे उत्पन्न होता है। इसमें मासाङ्कुर समूह वडेके अङ्कुरकी तरह और घुघुची या मूंगेकी तरह लालरंगका होता है। मल कठिन आनेसे वह अङ्कुर सब दव जानेपर उसमेंसे खराब और गरम खून निकलता है। इसमे खून अधिक जानेपर रोगी मेढककी भांति पीला, रक्तक्षय जनित रोगसे पीडित, विवर्ण, क्षय, उत्साह हीन, दुर्व्वल और विक्षतेन्द्रिय हो जाता है। इसमे मल काला, कठिन और रुखा आता है तथा अधोवायु नही खुलती। इसके सिवाय पित्तज अर्शरोगके लक्षण समूहभी विद्यमान रहते है।

सहज अर्श ।—सहज अर्श—पिता या माताको अर्शो रोग रहनेसे जन्मकालमें पिता माता कर्त्तृक अर्शोरोग कारक निदान सेवित होनेसे पुत्रकोभी अर्शोरोग होता है, इसीको सहज

अर्श कहते हैं। इस रोगमें मांसांकुर गदाकार, कर्कश अरु
वर्ण या पाण्डुवर्ण और मुंह भीतरके तरफ होता है। इस रोग
पीडित रोगी कृश, अल्पाहारी, धीमी आवाज, क्रोधित, शिराव्या
देह, अल्पप्रजा तथा आंख, कान, नाक और शिरोरोगसे पीडि
रहता है। तथा पेटमें गुड गुड शब्द, अन्त्रकुजन, हृदयमें उ
लेप और अरुचि आदि उपद्रवभी दिखाई देते है। रोगीके शरीर
वातादि दोषके आधिक्यानुसार वातजादि अर्शोरोगोक्त लक्षण
इसमें प्रकाशित होते है।

रक्तज अर्शोरोगके साथ पित्तज अर्शके लक्षण प्रकाशित होने
उसको पित्तानुबन्ध रक्तार्श कहते है। वातानुबन्ध रक्तार्श अधिक
रूक्षताके कारणसे उत्पन्न होता है और उसमें अरुणवर्ण फेनयुक्त
पतला रक्तस्राव, कमर, ऊरु, गूदामें दर्द और शारीरिक दौर्ब्बल
आदि लक्षण मालूम होते हैं। श्लेषानुबन्ध रक्तार्श गुरु और स्निग्ध
से उत्पन्न होता है, तथा उससे स्निग्ध गुरु, शीतल, श्वेत या पीले
रंगका पतला मलभेद, गाढा खून या तन्तुविशिष्ट चिकना और
पाण्डुवर्ण रक्तस्राव, गूदा चटचटो और गीला कपडा आच्छादनकी
तरह अनुभव आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं।

दुसाध्य रोगका कारण।—अर्शोरोग मात्रही प्राण,
अपान, समान, उदान और व्यान यह पांच प्रकार वायु, आलोचक,
रञ्जक, साधक, पाचक और भ्राजक यह पांच प्रकारका पित्त,
अवलम्बक, क्लेदक, रोधक, और श्लेषक, यह पांच प्रकार कफ
तथा प्रवाहनी, विसर्ज्जनी और सम्वरणी गुह्य देशकी त्रिविध वलि,
यह सब कुपित होनेसे उत्पन्न होता है। इससे स्वभावत ही यह
रोग दुसाध्य, अति कष्टदायक, बहुरोगजनक और सर्व्व देहका
पीडाकारक है।

सुखसाध्य अर्श:।—जो अर्श वाह्यवलि अर्थात् सम्व-रणी वलि या एक दोष से उत्पन्न होता है और एक वर्षसे कम दिनका पुराना अर्श सुखसाध्य जानना।

कष्टसाध्य अर्श:।—इसके सिवाय जो अर्श मध्यवलि अर्थात् विसर्जनोसे उत्पन्न हो, दो दोषज और एक वर्षसे अधिक दिनका पुराना कष्टसाध्य तथा जो सब अर्श सहज, अथवा त्रिदोषजात और अभ्यन्तर वलि अर्थात् प्रवाहनो वलिसे उत्पन्न होता है उस अर्शको असाध्य जानना।

सांघातिक अर्श.।—जिस अर्शमें रोगीका हाथ, पैर, मुख, नाभि, गुदा और अण्डकोषमें शोथ, हृदय और पार्श्वमें शूल हो, अथवा जिस अर्शरोगसे रोगीका हृदय और पार्श्वमें शूल, मूर्च्छा, कै, सर्व्वाङ्गमें दर्द, ज्वर, तृष्णा, और गुदामें घाव आदि उपद्रव उपस्थित हो उससे उसको मृत्यु होती है, केवल तृष्णा, अरुचि, शूल, अत्यन्त रक्तस्राव, शोथ और अतिसार आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे भी रोगीकी मृत्यु होती है। लिङ्गप्रभृति स्थानोंमें जो सब मांसाङ्कुर उत्पन्न होता है उसका आकार केंचुयेके मुखकी तरह चिकना और कोमल होता है। गुह्यदेशके अर्शोरोगकी तरह इसमें भी वातादि दोष भेदसे पृथक पृथक लक्षण लक्षित होते है।

फुन्सी।—"फुन्सी" नामक जो एक प्रकारका रोग देखने में आता है, वहभी अर्श जातीय है। संस्कृतमें इसको चर्मकील कहते है। व्यान वायु कफका आश्रय लेकर चमडेके उपर यह रोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें वायुका आधिक्य रहनेसे उसमें सूई गडानेकी तरह दर्द और कर्कश स्पर्श होता है। पित्तका आधिक्य रहनेसे स्निग्ध, गठीला और चमडेके समान वर्णविशिष्ट होता है।

चिकित्सा।—जिस कार्य्यसे वायुका अनुलोम हो और अग्निबलकी वृद्धि हो, अर्श रोग शान्तिके लिये पहिले वही सब उपाय अवलम्बन करना चाहिये। रोज सबेरे सफेद तिल १ तोला, मिश्री १ तोला, मक्खन १ तोला मिलाकर खिलानेसे वायुका अनुलोम हो अर्शोरोग उपशम होता है। केवल सफेद तिल ४।५ तोले खाकर थोडा ठण्ढा पानी पिलानेसेभी उपकार होता है। इस रोगमें पतला दस्त होनेसे वातातिसारकी तरह और मलबद्ध होनेसे उदावर्त्तकी तरह चिकित्सा करना चाहिये। मलबद्ध होनेसे अजवाईनका चूर्ण और काला नमक मट्ठेके साथ पिलाना। एक सीसेकेनलमें घी और सेंधा नमक लगाकर गुदामें रोज देनेसे मलरोध दूर होता है। चीतामूलकी छाल पीसकर एक घडेके भीतर लेप करना, लेप सूख जानेपर उसी घडेमें दही जमाना तथा उस दहीका माठा पिलानेसे अर्शोरोग शान्त होता है। थोडा पीपल चूर्ण अथवा तेवडीके मूलका चूर्ण और दन्तीमूलके चूर्णके साथ बडी हर्रका चूर्ण मिला कर सेवन करनेसे भी अर्श आराम होता है। काली तिल एक तोला भिलावाकेमूटीका चूर्ण २ रत्ती एकत्र मिलाकर सेवन करानेसे अग्नि वृद्धि हो अर्शोरोग आराम होता हैं। हरीतकी, बिना छिकलेकी काली तिल, आवला, किसमिस और जेठीमधका चूर्ण समभाग फाल्सेके छालके रसके साथ सेवन कराना। १ या २ दिन गोमूत्रमें हरीतकी भिङ्गोकर वही हरीतकी खिलानेसे अर्शोरोगमे उपकार होता है। जङ्गली-शूरण अभावमें ग्राम्य शूरणके उपर माटी लपेटकर पुट पाकसे भूञ्जा शूरण तेल और नमक मिलाकर खाना। सेंधा नमक, चीतामूल, इन्द्रयव, यवका चावल, डहरकरञ्जका बीज और थोडी नीमकी छाल सबका समभाग चूर्ण एकमें मिलाकर

आनेसे ।) आने तक मात्रा रोज ठण्डे पानीसे सेवन कराना। तोरईका चार ६ गूना पानीमें मिलाकर २१ बार धोराकर छान लेना, फिर उस चार पानीमें बैगन उबालकर घीमें भुज थोड़े गुडके साथ भर पेट खाना और उपरसे मठा पीना। इसी तरह सात दिन खानेसे बहुत बढा हुआ अर्श और सहज अर्श भी आराम होता है।

अर्शमे रक्तस्राव।—अर्शमें रक्तस्राव होनेसे एक दम बन्द करना उचित नही है, कारण खराब रक्त रुद्ध होनेसे मलद्वारमे दर्द, आनाह और रक्त विकृति आदि रोग उत्पन्न होनेकी सम्भावना है। पर जब अतिरिक्त स्रावसे रोगीके प्राण नाशकी आशङ्का हो तब तुरन्त बन्द करना चाहिये। बिना छिलकेकी तिल १ तोला आधा तोला चीनी एकत्र पीसकर एक छटाक बकरीके दूधके साथ सेवन करानेसे तुरन्त रक्तस्राव बन्द होता है तथा पद्मका नरम पत्ता पीसकर चीनीके साथ खाना अथवा सबेरे बकरीका दूध पीना। पद्मकेशर, सहत्, टटका मक्खन, चीनी और नागकेशर एकत्र मिलाकर खाना। आमरुल शाक, नागकेशर और नीलोत्पल इस तीन द्रव्यके साथ अथवा बरियारा और सरिवन इस दो द्रव्यके साथ धानके लावाका मण्ड बनाकर सेवन कराना। रोज सबेरे मक्खन बिना छिकलेकी तिल प्रत्येक दो दो तोला अथवा मक्खन १ तोला नागकेशर या पद्मकेशरका चूर्ण चार आनेभर और चीनी चार आने भर एकत्र, किम्वा दहीकी मलाई मिला मट्ठा पीना। पीसी काली तिल १ तोला, चीनी आधा तोला और बकरीका दूध १ छटाक एकत्र मिलाकर पीना। वराह-क्रान्ता, नीलोत्पल, मोचरस, लोध और लालचन्दन, सम भाग २ तोले, बकरीका दूध १६ तोले और पानी ६४ तोलेमें औटाना,

दूध बाको रहने पर छानकर पिलाना, अनारका नरम पत्ता, गेंदाका पत्ता, किम्वा कुकुरमोंकाके पत्तेका रस १ तोला और चीनी आधा तोला मिलाकर पीना, उपर लिखी सब दवायें रक्त रोधक है। कुरैयाकी छाल अथवा बेलके गुटोका काढा सोंठकाचूर्ण मिलाकर पीना। कुरैयाको छाल आधा तोला पीसकर माठेके साथ, अथवा सतावरका रस २ तोले, बकरीके दूधके साथ पीना। यह सब योग रक्तार्श निवारक है तथा रक्त-पित्त रोगोक्त योग और औषध समूहभी विचार कर रक्तार्श रोगमें प्रयोग कर सकते है।

शास्त्रीय औषध।—उक्त योगोंके सिवाय चन्दनादि काढा, आर मरिचादि चूर्ण, समशर्कर चूर्ण, कर्पूराद्य चूर्ण, विजय चूर्ण, करञ्जादि चूर्ण, भल्लातकामृत योग, दशमूल गुड़, नागराद्य मोदक, स्वल्प शूरण मोदक, वृहच्छूरण मोदक, कुटजलेह, प्राणदा गुडिका, चन्द्रप्रभा गुडिका, जातिफलादि वटी, पञ्चानन वटी, नित्योदित रस, दन्त्यरिष्ट, अभयारिष्ट, चव्यादि घृत और कुटजाद्य घृत आदि औषध दोषका बलाबल विचार कर सब अर्शो रोगमें प्रयोग करनेसे आश्चर्यजनक उपकार होता है।

मासांकुर गिरानेका उपाय।—दृश्यमान मासांकुर अर्थात् जो सब मस्सागुदाके बाहर दिखाई देता हो उसमें सेहुंडके दूधके साथ हल्दीचूर्ण मिलाकर एक बिन्दु लगाना। तोरईका चूर्ण मस्सेपर घिसना। अकवनका दूध सेहुंडका दूध, तित-लौकोका पत्ता और डहरकरञ्जकी छाल समभाग बकरीके मूत्रमें पीसकर मस्सेपर लेप करना। अथवा इसकी बत्ती तिल तेलमें भगोकर गूदामें रखना, इससे मस्सा बेमालूम गिर पडता है। पुराना गुड थोडे पानीमें मिलाना फिर तोरईका चर्ण

मिलाकर श्रौटाना गाढा होनेपर उसको बत्ती बना वही बत्ती गूदामें रखना। तोरईको जड पीसकर लेप करना। शूरण, हलदी, चीताको जड और सोहागेके लावाका चूर्ण पुराने गुडके साथ अथवा काजीमें पीसकर लेप करना। बीज संयुक्त तितलौकी काजीमें पीसकर गुड मिला प्रलेप देना। सेहुंढ या अकवनके दूधमें पीपल, सेंधा नमक, कूठ और शिरीष फलका चूर्ण मिला अथवा हलदी और तोरई चूर्ण सरसोंके तेलके साथ मिलाकर लेप करना। कपासके सूतमें हलदी का चूर्ण मिला सेहुंडका दूध बार बार लगाकर उसी सूतसे मस्सा बाँध रखना। इन सब उपायोंमें मस्सा गिरकर अर्शोरोग आराम होता है। कसीस तेल और वृहत् कसीसतैल मार्साकुर निवारणका उत्कृष्ट औषध है।

पथ्यापथ्य।—पुराने चावलका भात, मूंग, चना या कुरथीको दाल, परवर, गुल्लर, शूरण, छोटी मूली, कच्चा पपीता केलेका फूल, सैजनका डण्ठा आदिको तरकारी, दूध, घी, मक्खन, घृतपक्क पदार्थ, मिश्री, किसमिस, अङ्गूर, पक्का पपीता, मट्ठा और छोटो इलायची पथ्य है। नदी या प्रशस्त तालाबमें सहने पर स्नान और साफ हवामें टहलना आदि उपकारी है।

इसके सिवाय जो सब आहार विहारादिसे वायुका अनुलोम हो वही सब आहार विहारादि अर्शोरोगमें करना उचित है। अर्शोरोगमें अधिक रक्तस्राव हो तो रक्तपित्त रोगको तरह पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये।

निषिद्ध कर्म।—भूना, सेंका पदार्थ, गुरुपाक द्रव्य, दही, पिष्टक, उर्द, सेम, लौकी, आदि द्रव्य भोजन, धूप या अग्निका सन्ताप, पूर्व दिशाको वायुका सेवन मलमूत्रादिका

वेग धारण, मैथुन, घोड़ा आदि सवारीमें चढना, कड़े आसनपर बैठना और जिस कार्य्यसे वायुप्रकुपित हो उसका अनुशीलन अर्शो रोगमें अनिष्टकारक है।

अग्निमान्द्य और अजीर्ण।

अग्निमान्द्यका निदान।—अधिक जल पान, अपरिमित आहार, सर्वदा गुरुपाक द्रव्य भोजन, अश्रद्धा पूर्वक आहार, मलमूत्रादिका वेग रोकना, दिनको सोना, रातको जागना, दुश्चिन्ता, अच्छी तरह चिबाकर न खाना, परिपाक यन्त्रका दोष, क्रिमि रोग, अधिक शीतल या आग धूप सेवन, अधिक जलक्रीड़ा और अधिक पान खाना आदि कारणोंसे अग्निमान्द्य रोग, उत्पन्न होता है। उक्त कारण और विषम भोजन अर्थात् कोई दिन थोड़ा, कोई दिन अधिक, अनिर्दिष्ट समयमें भोजन, सूखा या सड़ा द्रव्य भोजन, अनिच्छा या घृणासे भोजन, भोजनके वक्त भय, क्रोध, लोभ, शोक या और कोई कारणसे मानसिक तकलीफ और भोजनके बाद अतिरिक्त मानसिक परिश्रम आदि कारणोंसे भी अजीर्ण रोग उत्पन्न होता है। साधारणतः अजीर्णरोग चार प्रकार,—आमाजीर्ण, विदग्धाजीर्ण विष्टब्धाजीर्ण और रसशेषाजीर्ण। कफ प्रकोपसे आमाजीर्ण, पित्त प्रकोपसे विदग्धाजीर्ण और खाये हुये पदार्थका पहिला रस रक्तादि रसमें परिणत न होनेसे रसशेषाजीर्ण उत्पन्न होता है।

प्रकारभेदसे लक्षण।—आमाजीर्णमें शरीर भारी, जी मचलाना, गाल और आंखके चारो तरफ शोथ, खाये हुए पदार्थके स्वादका डकार आना आदि लक्षण होता है। विदग्धाजीर्णमें भ्रम, मूर्च्छा, प्यास खट्टी वा धुंयेली डकार और पित्तजन्य अन्यान्य उपद्रव प्रकाशित होता है। विष्टब्धाजीर्णमें पेटका फूलना, दर्द, मल और अधोवायुका अनिर्गम, स्तब्धता, मूर्च्छा, सर्व्वाङ्गमें दर्द तथा वायु जन्य अन्यान्य कष्ट भी दिखाई देता है। रस शेषाजीर्णमे अन्न भोजनको अनिच्छा, हृदय की अशुद्धि और शरीर भारी मालूम होता है।

साधारण लक्षण।—सब प्रकारके अजीर्णमे ग्लानि, शरीर और पेटका भारीपन, पेटमे दर्द और वायु सञ्चय, कभी मलरोध, कभी अजीर्ण मलभेद और आहारके बाद वमन, यही कई एक साधारण लक्षण दिखाई देता है।

उपद्रव।—अजीर्ण रोगसे मूर्च्छा, प्रलाप, वमन, मुखसे स्राव, अवसन्नता और भ्रम, यही सब उपद्रव उत्पन्न होता है।

अग्निमान्द्य चिकित्सा।—सुपथ्य भोजन करना ही अग्निमान्द्य को साधारण चिकित्सा हैं। समभाग बड़ी हर्रे और शोंठका चूर्ण गुड़ या सेंधा नमकके साथ रोज खानेसे अग्निमान्द्य रोग आराम होता है। रोज सवेरे जवाक्षार और शोंठका चूर्ण समभाग खानेमे अथवा शोंठका चूर्ण घीके साथ चाटकर थोड़ा गरम पानी पोनेसे भूख बढ़ती है। रोज भोजनके पहिले अदरख और नमक खानेसे अग्निमान्द्य दूर हो जीभ और कण्ठ साफ होता है। इसके सिवाय बाड़वानल चूर्ण, सैन्धवादि चूर्ण, सैन्धवाद्य चूर्ण, हिङ्गाष्टक चूर्ण, स्वल्पाग्निमुख चूर्ण, वृहदग्नि मुख चूर्ण, भास्कर लवण, अग्निमुख लवण, वड़वानल रस, हुताशन रस

और अग्नितुण्डो वटो आदि औषध सेवन करनेसे अग्निमान्द्य आराम होता है। अजीर्ण रोगोक्त औषध समूह भी अग्निमान्द्य में दे सकते हैं।

अजीर्णकी साधारण चिकित्सा।—आमाजीर्णमें वमन, विदग्धाजीर्णमें लङ्घन अर्थात् उपवास, विष्टब्धाजीर्णमें स्वेद कार्य्य और रसशेषाजीर्णमें आहारके पहिले दिवा निद्रा, यही सब अजीर्ण रोगकी साधारण चिकित्सा है।

विशेष चिकित्सा।—आमाजीर्णमें वच १ तोला सेंधा नमक १ तोला १ सेर गरमपानीमें मिलाकर कै कराना, पीपल सेंधा नमक, और वच समभाग ठण्ढेपानीमें पीसकर पिलाना। धनिया १ तोला और शोंठ १ तोलाका काढा पिलाना, इससे पेटका दर्द तुरन्त आराम होता है। गुडके साथ शोंठ, पीपल, बडी हर्रे अथवा अनार इसमें कोई एक द्रव्यका चूर्ण सेवन करनेसे आमाजीर्ण, मलबद्धता और अर्शोरोग शान्त होता है सवेरे अजीर्ण मालूम होनेसे बडी हर्रे, शोंठ, और सेंधा नमक प्रत्येकका समभाग चूर्ण ठण्टे पानीके साथ सेवन कर आहार करनेसे किसी तरहके अनिष्टकी आशङ्का नहीं रहती है।

विदग्धाजीर्णमें ठण्ढा पानी पीनेको देना, इससे विदग्ध अन्न जलदी परिपाक होता है और पानीका ठण्ढापन तथा पतलेपनसे पित्त प्रशमित हो नीचे उतरता है। भोजन करतेही यदि अन्न विदग्ध हो हृदय, कोष्ठ और गलेमें जलन मालूम हो तो उपयुक्त मात्रा बडीहर्रे और किसमिस समभाग एकत्र पीसकर चीनी और सहतके साथ चाटना। बडीहर्रे १ तोला, पीपल एक तोला, ३२ तोले काञ्जीमें औटाना ८ तोले रहते उतार कर एक आना भर

सेंधा नमक मिलाकर पोनेसे धुम्बैली डकार और प्रबल अजीर्ण आराम हो तुरन्त भूख लगती है।

विष्टब्धाजीर्णमें स्वेदक्रिया और लवन मिला कर पानी पिलाना चाहिये। रस शेषाजोर्णमें उपवास, दिवा निद्रा और प्रबल वायु युक्त स्थानमें बैठना आदि साधारण चिकित्सा है। हींङ्ग, शोंठ, पोपल, गोलमरिच और सेंधा नमक, पानीमें पीसकर पेटपर लेप करना तथा भोजनके पहिले लेप लगाकर दिनको सोनेसे सब प्रकारका अजीर्ण रोग आराम होता है। बड़ीहर्र, पीपल और सोचल नमक, सबका समभाग चूर्ण दोषानुसार दहीका पानी या गरम पानोके साथ सेवन करनेसे चार प्रकारका अजीर्ण, अग्निमान्द्य, अरुचि, पेटका फूलना, वातज गुल्म और शूल रोगभो जल्दी आराम होता है। शोंठ, पीपल, गोलमिरच, दन्तीबोज, निशोथको जड, चीतामूल और पीपला मूल, इन सबका समभाग चूर्ण पुराने गुडके साथ सवेरे खानेसे सब प्रकारका अजीर्ण, अग्निमान्द्य, उदावर्त्त, शूल, प्लोहा, शोथ और पाण्डु रोगमें भो उपकार दिखाई देता है। उदराधान निवृत्तिके लिये गोलमिरच भिङ्गोया पानो अथवा गोलमिरच पानीमें पीसकर पोनेसे विशेष उपकार होता है।

सब प्रकारके अजीर्णमें अग्निमान्द्य नाशक औषध समूह और लवङ्गाद्य मोदक, सुकुमार मोदक, त्रिवृत्तादि मोदक, मुस्तकारिष्ट क्षुधासार रस, शङ्खवटो, महाशङ्ख वटी, भास्कर रस, चिन्तामणि रस और अग्निघृत प्रभृति औषध अवस्थानुसार प्रयोग करना। ग्रहणी रोगोक्त कई प्रकारके औषध भी दिया जाता हैं।

पथ्यापथ्य ।—अजीर्णके प्रथम अवस्थामें उपवास कराना चाहिये, फिर वार्लि, आरारुट, जौका मण्ड, सिंघाडेकी लपसी

आदि इनका पथ्य देना। क्रमशः अजीर्णका उपशम और अग्नि-वलको वृद्धि होनेसे, दिनको पुराने चावलका भात, मसूरको दाल, मागुर, शिङ्गी, कवई आदि मछलीका रसा, परवल, बैंगन, कच्चा केला आदिकी तरकारी, मट्ठा और कागजी या पाती नीबू आहार करनेको देना। रातको वार्लि आदि हलकी वस्तु खानेको देना। भूख अधिक होनेसे और दोनो वक्त परिपाक की शक्ति बढ़ने पर रातको भी दिनको तरह अन्न खानेको देना। भूना कच्चा वेलका मुरब्बा, अनार, मिश्री आदि द्रव्य उपकारी है। अजीर्ण या अग्निमान्द्य रोगमें भोजनके २।३ घण्टा बाद पानी पीना चाहिये। सवेरे बिछौनेसे उठतेही थोडा ठण्ढा पानी पीना इस रोगमें सुपथ्य है चलित भाषामें इसको "उषापान" कहते है।

निषिद्ध कार्य्य।—घृतपक्व द्रव्य, मांस पिष्टक आदि गुरुपाक द्रव्य, तीक्ष्णवीर्य्य द्रव्य, भूजा सेंका द्रव्य, अधिक जल या तरल पदार्थ पीना, यव, गोधूम, उरद, शाक, इक्षु, गुड, दूध, दही, घी, खोवा, मलाई, नारियल, मुनक्का, दस्तावर वस्तु मात्र, अधिक लवण, लाल मिरचा आदि भोजन, तैल मर्द्दन, रातको जागना, मैथुन, स्नान इस रोगमें अनिष्टकारक है। वस्तुत जो द्रव्य जलदी हजम नही होता अथवा जिस द्रव्यके पचनेमें देर लगता है वैसा पदार्थ परित्याग करना चाहिये।



विसूचिका।

विसूचिका या हैजेका निदान।—आयुर्व्वेद शास्त्र में विसूचिकाभी अजीर्ण रोगके अन्तर्गत निर्दिष्ट है। इसकी संक्रामकताशक्ति इतनी अधिक है कि एक आदमीको अजीर्णके सबब विसूचिका रोग उत्पन्न हो क्रमश उस देशके अधिकांश मनुष्यको आक्रमण करता है। रोगभी अति भयङ्कर और जलदी प्राण नाशक है। इन्ही सब कारणोंसे इसको स्वतन्त्र रोगमें गिनना उचित जानकर अलग लिखते है। चलित भाषामें इसको "हैजा" और अङ्गरेजीमें "कलेरा" कहते है। अतिवृष्टि, वायुकी आर्द्रता या स्थिरता, अतिशय उष्ण वायु, अपरिष्कृत जल वायु, अतिरिक्त परिश्रम, आहारका अनियम, भय, शोक या दुःख आदि मानसिक पीडा, अधिक जनतापूर्ण स्थानमे वास, रातका जागना और शारीरिक दौर्व्बल्य आदिको इस रोगका निदान कहते है। जिस आदमी को बिना पेटकी बिमारीके हैजा होता है, उसको पहिले शारीरिक दुर्व्बलता, बदन कापना, मुखश्रीकी विवर्णता, पेटके उपरी भागमे दर्द, कानमें कई तरहके शब्द सुनाई देना, शिर पीडा और शिर घूमना आदि पूर्व्वरूप प्रकाश होतर हैं।

साधारण लक्षण।—इसका साधारण लक्षण लगातार दस्त और वमन है। पहिले २।१ वार उदरामयकी तरह दस्त और खाया हुआ पदार्थ वमन हो, फिर पानीकी तरह और जौ या चावलके काढेकी तरह अथवा सडा सफेद कोंहडेके पानीकी तरह दस्त और पानी वमन होता है। कभी कभी लाल रङ्गका

दस्त होते भी दिखाई देता है। पेटमें दर्द, सड़ी मछलीकी तरह दुर्गन्ध और पिशाव बन्द होता है। फिर क्रमश आखोंका बैठ जाना, दोनो ओष्ठका नीला होना, नाक ऊंची, हाथ पैर ठढा सिकुडन और ऐठन, अङ्गुलीके अग्रभाग सूख जाना, शरीर रक्तशून्य और पसोना होना, नाडी क्षीन, शीतल और क्रमशः लुप्त, हुचकी, अत्यन्त प्यास, मोह, भ्रम, प्रलाप ज्वर, अन्तर्दाह, स्वरभङ्ग, बेचैनी, अनिद्रा, शिरका घूमना, शिरमें दर्द, कानमें विविध शब्द सुनाई देना, आखसे नाना प्रकार मिथ्यारूप दिखाई देना, जीभ ठढी, श्वास शीतल और दातोका बाहर निकल आना आदि लक्षण प्रकाशित होता है।

दोष प्रकोपके लक्षण।— इस रोगमें वायुका प्रकोप अधिक रहनेसे दस्त वमनकी अल्पता पेटमें दर्द, अङ्गमें दर्द, मुख-शोष, मूर्च्छा, भ्रम और शिरा सकोच आदि लक्षण प्रकाशित होता है। पित्तके आधिक्यमें अधिक दस्त, ज्वर, अन्तर्दाह प्यास, मोह और प्रलाप आदि लक्षण और कफके आधिक्यमें अधिक वमन, आलस्य, शरीर भारी, शीतज्वर और अरुचि आदि लक्षण विशेष रूपसे लक्षित होता है।

शारीरिक सन्ताप।—इस अवस्थामें शारीरिक सन्ताप बहुत कम हो जाता है। तापमान यन्त्रसे परीक्षा करने पर ८६ डिग्री तक सन्ताप रहता है। किसीको मृत्युके दो एक घण्टा पहिले कपाल, गाल और छातीमें सन्ताप अधिक होता है। उपर कहे लक्षणोंमें मूर्च्छा, गात्रदाह, निद्रानाश, शारीरिक विवर्णता, उदर, मस्तक और हृदयमें अत्यन्त दर्द, भ्रान्ति, प्रलाप, स्वरभङ्ग, कम्प और बेचैनी आदि लक्षण प्रकाश होनेसे रोगीके जीवनकी आशा नही करना। यदि क्रमश भेद वमनकी अल्पता,

पित्त मिला मलभेद, शारीरिक सन्ताप वृद्धि, पेटके दर्दका नाश, नियमित नि:श्वास प्रश्वास, प्यास काम, निद्रा स्वाभाविक, वर्ण प्रकाश और पिशाव होना आदि लक्षण दिखाई दे तो आराम होनेको आशा है। इस रोगका हमला अकसर सवेरे और रातको होता है। पर कभी कभी और वक्त भी इसका हमला देखनेमें आता है। इसके मृत्युका काल नियम नहीं है, किसोको तो २।४ घण्टे हो में मृतुय होती है और बहुतेरोंको २।४ दिन तक कष्टभोगकर मृतुरमुखमें पतित होना पडता है।

चिकित्सा।—यह रोग उपस्थित होते ही चिकित्सा (इलाज) करना चाहिये। पर पहिले ही तेज धारक औषध देना उचित नहीं है, इससे दस्त बन्द होनेपर भी वमन वृद्धि और पेटका फुलना आदि उपसर्ग उत्पन्न होता है। तथा थोडी देरके लिये दस्त बन्द हो फिर अधिक परिमाणसे दस्त होनेकी आशङ्का बनी रहती है। इसमें प्रथम अवस्थामें धारक औषध अल्प मात्रासे थोडी थोडी देना चाहिये। अजीर्णमें रोग उत्पन्न होनेपर पहिले पाचक और अल्प धारक औषध देनाही सद्व्यवस्था है। अजीर्णके विसूचिकामें नृपवल्लभ आदि औषध विशेष उपकारी है। दूसरे विसूचिका रोगमें पहिले दालचिनी ॥) आनेभर, जाफरान ॥) आनेभर, हींग।≠) आनेभर और छोटी इलायचीका दाना।) आनेभर अलग अलग अच्छी तरह पीसकर फिर २५ तोले चीनीमें मिलाना, सब मिलाकर जितना वजन हो उसके तीन भागका एक भाग सफेद मिट्टीका चूर्ण उसके साथ मिलाना तथा रोग रोगीके बलानुसार १० रत्तीसे ३० रत्ती तक मात्रा बार बार देना। २० वर्षके जवानसे लेकर ५० वर्षके बूढेतकको २० रत्ती चूर्णके साथ आधी रत्ती अफीम मिलाकर देना, इससे कम

उमरवालेको खालीचूर्ण देना। रोगीके उमरके हिसाबसे दवाकी मात्राभी आधी या चौथाई करना चाहिये अथवा अफीम आधी रत्ती, गोल मरिचका चूर्ण चौथाई रत्ती हींग चौथाई रत्ती और कपूर १ रत्ती एक सङ्ग मिलाकर एक आनाभर मात्रा प्रत्येक दस्तके बाद देना, दस्त बन्द हो जानेपर २।३ दिन तक दिन भरमें तीन बार देना, अफीम आदि ४ द्रव्य समभाग ले २ रत्ती वजनकी गोली बनाकर देना अथवा हमारा कर्पूरारिष्ट १०।१२ बूंद थोड़ी चीनीमें मिलाकर आधा घण्टाके अन्तर पर देना। अहिफेनासव भी इस रोगका प्रशस्त औषध है ५से १० बिन्दु मात्रा विचार कर ठण्ढे पानीके साथ देना। मुस्ताद्य वटी, कर्पूर रस, ग्रहणी कपाट रस और प्रवल अतिसार नाशक, अतिसार और ग्रहणी रोगोक्त अन्यान्य औषधभी इस रोगमें दे सकते हैं। यह सब औषध व्यवहार करनेके साथ साथ थोड़ी मृतसञ्जीवनी सुरा पानीमें मिलाकर देनेसे विशेष उपकार होता है, पर के और हुचकीका वेग रहनेसे सुरा न देकर सीधू अर्थात् सिर्का पानीमें मिलाकर देना चाहिये इससे हुचकी कै, प्यास और पेटका फूलना आराम होता है। एक छटाक इन्द्रयव १ सेर पानीमें औटाना एक पाव रहते उतार कर १ तोला मात्रा आधा घण्टा अन्तर पर देनेसे विशेष उपकार होता है।

अपामार्ग (चिरचिरा) की जड़ पानीमें पीसकर सेवन करानेसे हैजा आराम होता है, छोटी करेलीके पत्तेके काढ़ेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे हैजा आराम होता है और भूख बढ़ती है। बेलकी गूदी और सोंठका काढा, अथवा बेलकी गूदी, सोंठ और जायफल इस तीन चीजका काढा पीनेसेभी हैजा आराम होता है।

वमन और मूत्ररोध निवारक उपाय।—एक अञ्जली

धानका लावा और १ तोला चीनी डेढ पाव पानीमें थोड़ी देर भिगोकर छान लेना, फिर उसमें खस १ तोला, छोटी इलायची आधा तोला, सौंफ एक तोला पीसकर और सफेद चन्दन घिसा १ तोला मिलाना। यह पानी आधा तोला माता आधा घण्टा अन्तर पर पिलानेसे कै (वमन) बन्द होता है। सरसों पीसकर पेटपर लेप करनेसेभी कै बन्द होता है। तथा अन्यान्य औषधभी वमन बन्द करनेके लिये विचार कर देना चाहिये। पिशाब करानेके लिये पत्थरचूर, हिमसागर या लोहाचूर नामक पत्तेका रस १ तोला पिलाना। अथवा गोक्षुर बीज, ककड़ीकी बीज और जवासा, इसके काढ़े के साथ दो आनेभर सोरा चूर्ण मिलाकर पिलाना, किम्वा कुश, काश, शर, खस और काला जख यह तृणपञ्चमूलका काढा पिलाना। रामतरोई उबाला पानी आधा छटाक ३।४ बार पिलानेसे अथवा स्थलपद्मके पत्तेका रस १ तोला थोड़ी चीनी मिलाकर पिलानेसे पिशाव उतरता है। पत्थरचूरका पत्ता और सोरा एकत्र पीसकर वस्तिपर लेप करने से भी पिशाब होता है। हाथ पैरका गोला आराम करनेके लिये तार्पिनका तेल और सुरा एकत्र मिलाकर मालिश करना। केवल सोंठका चूर्ण मालिश करनेसेभी उपकार होता है। कूठ और सेंधा नमक काञ्जी और तिलके तेलमें पीसकर थोडा गरम कर मालिश करना। दालचिनी, तेजपत्ता, रास्ना, अगरु, सैजनकी छाल, कूठ, बच और सोवा यह सब द्रव्य काञ्जीमें पीसकर थोडा गरम कर मालिश करनेसे भी गोला आना बन्द होता है। हुचकीके लिये सन्निपात ज्वरोक्त हिक्का नामक औषध समूहोंकी व्यवस्था करना, अथवा केलेके जड़के रसका नास लेना। राई पीसकर गरदन और मेरुदण्ड पर लेप करना। पेटका दर्द शान्तिके लिये जौका चूर्ण और जवाखार

मट्ठेके साथ पीस कर थोडा गरम कर पेटपर लेप करना, अथवा तार्पिनका तेल पेटपर मालिश कर सेंकना। गरम पानीमें उनी वस्त्र भिगो निचोड कर सेकनेसे भी उपकार होता है। प्याससे जी व्याकुल हो तो कपूर मिला पानी अथवा बरफका पानी पीनेको देना। कबाबचीनीका चूर्ण ३ तोला, जेठीमधका चूर्ण आधा तोला और कल्मलो चार आनेभर सहतके साथ थोडा थोडा चटानेसे पिपासा शान्त होती है। लौंग, जायफल या मोथेका काढा पिलानेसे प्यास और वमन बन्द होता है। पसीना अधिक हो तो अबीर मालिश करना, अथवा मूंगेका भस्म सहतके साथ चटाना। शिर-शूलके लिये ठण्ढे पानीकी पट्टी शिरपर रखना, बेहोशी हो तो हाथ पेर सेकना।

सूचिकाभरण रस और हमारा कस्तुरीकल्प रसायन प्रयोग।—जीवनकी आशा कम होनेसे और सन्निपातकी तरह दोनो आंखे लाल, प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम आदि उपसर्ग उपस्थित होनेसे सूचिकाभरण रस प्रयोग करना उचित है। कच्चे नारियलके पानीके साथ २।३ गोली अवस्था विशेषमें २।३ बार तक सेवन करा सकते हैं। इससे उपकार नहो हो तो फिर सेवन कराना वृथा है। अन्तकालके हिमाङ्ग अवस्थामें हमारा "कस्तुरी-कल्प रसायन" देनेसे विशेष उपकार होता।

इस रोगकी चिकित्सामें हर वक्त सतर्क रहना चाहिये, कारण-किसवक्त कौन आफत आवेगी इसका ठिकाना नहो है और न अनुमानसे जानने लायक इसका कोई उपाय है। रोगीका घर, बिछौना और पहिरनेका कपडा आदि हरवक्त साफ रखना चाहिये कपूर, धूना और गन्धकका धूआ घरमें देना। मल आदि दूर फेंकना चाहिये।

पथ्यापथ्य और हमारा सञ्जीवन खाद्य ।—पीडाकी प्रबल अवस्थामें उपवासके सिवाय कोई पथ्य नही देना। पीडा कम हो रोगीको भूख लगे तो सिङ्घाडेकी लपसी, एरारुट या साबूदाना पानीमें औटाकर खानेको देना। अतिसारोक्त यवागूभी इस अवस्थामें विशेष उपकारी है। हमारा "सञ्जीवन खाद्य" भो इस अवस्थामे सुपथ्य है। उक्त पथ्यके साथ कागजी या पाती नीबूका रसभो मिलाकर दे सकते हे। पीडा अच्छो तरह आराम हो अधिक भूख बढनेसे पुराने चावलका मण्ड, कवई, मागुर आदि छोटो मछलीका शुरुवा और नरम मासका शुरुवा पीनेको देना। फिर अन्न परिपाकका उपयुक्त बल होनेसे पुराने चावलका भात, मसरको दालका जूम, पूर्व्वोक्त मछली और मांसका रस, गुल्लर, नरम परवल आदिकी तरकारी थोडा खानेको देना, मिश्री बतासाके सिवाय दूसरी मिठाई नही देना। शारीरिक बलकी वृद्धि होनेसे ३।४ दिनके अन्तर पर गरम पानीसे स्नान कराना।

निषिद्ध कर्म्म ।—सम्पूर्ण स्वास्थ्य लाभ न होने तक गुरुपाक द्रव्य घी या घीसे बनाई वस्तु, भूना, सेका पदार्थ भोजन, स्नान, मैथुन, आग और धूपका सन्ताप व्यायाम या अन्यान्य श्रमजनक कार्य्य नही करना। पहिलेही कह आये है, कि साधारणत अजीर्णही इस रोगका मूल कारण है, अतएव जो सब कारणोसे अजीर्णको आशङ्का हो उसको सर्व्वदा परित्याग करना चाहिये। शहर या गावमें अथवा अपने परिवारमें किसीको यह रोग उपस्थित हो तो किसो तरहसे डरना नही, कारण भयसे अजीर्णसे हैजा उत्पन्न होनेको सम्पूर्ण सम्भावना रहती है।

अलसक और विलम्बिका।

रोगका कारण।—यह दो प्रकारका रोग अजीर्ण रोगका भेदमात्र है। दुर्ब्बल, अल्पाग्नि, बहु श्लेषायुक्त, मल-मूत्र वात वेगका रोकना और जो मनुष्य गुरु, कठिन, अधिक रुखा, शीतल, सूखा द्रव्य भोजन करता है उसका वायु कुपित और कफसे रुद्ध-गति होनेसे उक्त दो प्रकारका रोग उत्पन्न होता है।

अलसक रोगमें अतिशय कष्टदायक उदराधान होता है, रोगी तकलीफसे छटपट करते करते मुर्च्छित हो जाता है, और अजीर्णसे उसके कोखको वायुका अधोगति बन्द हो वही वायु हृदय और कण्ठ आदि उपरको तरफ चढता है, सुतरा हुचको और डकार इस रोगमें अधिक होता है। दस्त कै के सिवाय विसूचिका रोगके अन्यान्य लक्षणभी इसरोगमें दिखाई देता है। खाया हुआ पदार्थ नीचे या उपर न जाकर अपक्वावस्थाहीमें आमाशयमें अलस भावसे रहता है इससे इस रोगको अलसक कहते है। विलम्बिका रोगका लक्षण पृथक भावसे निर्दिष्ट नही है पर उक्त लक्षण सब अधिक प्रकाशित होनेसे उसको विलम्बिका कहते है। अलसकको अपेक्षा विलम्बिका रोग अधिक कष्टसाध्य है।

चिकित्सा।—अलसक और विलम्बिका दोनो रोगको चिकित्सा एकही प्रकार है, दोनो रोगमे पहिले नमक मिला गरम पानीसे वमन कराना। अथवा कूरकरञ्जका फल, नीमकी छाल, आपामार्गको बीज, गुरिच, सफेद तुलसी और इन्द्रयव, इन सब द्रव्य का काढा आकण्ठ पिलाना, इससे वमन होतेही अलसक

और विलम्बिका राग आराम होता है उदराध्मान और पेटका दर्द शान्तिके लिये देवदारु, सफेद जौ, कूठ, सोवा, हींग, और सेंधा नमक काञ्जीमें पीसकर पेटपर लेप करना। जौका चूर्ण और जवाखार मट्ठामें पीसकर लेप करनेसे भी उपकार होता है। गरम काञ्जी बोतलमें भर अथवा उसमें उनी वस्त्र भिङ्गो निचोड़कर सकनेसेभी उदराध्मान और पेटका दर्द आराम होता है। हुचका-के लिये केलाके जड़के रसको नास लेना। अथवा राई पीसकर गरदन और रीढ़पर लेप करना। अग्नि वर्द्धक और अजीर्ण नाशक औषध इस रोगमें विवेचना पूर्व्वक प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—इस रोगके प्रथमावस्थामें उपवास कराना चाहिये। फिर क्षुधा और अग्नि बलके अनुसार लघु पथ्य देना। अन्यान्य सब नियम विसूचिका रोगको तरह पालन करना चाहिये।

—०—

क्रिमिरोग।

—०—

प्रकार भेद।—क्रिमि दो प्रकार, आभ्यन्तर दोषजात और वहिर्म्मल जात। आभ्यन्तर क्रिमि तीन भागमें विभक्त है, पुरीषज, कफज, और रक्तज। अजीर्ण रहने पर भोजन, सर्व्वदा मधुर और अम्ल रस भोजन, अतिशय पतला पदार्थ पीना, अपरिष्कृत जल पान, गुड़, पिष्टक, मांस, उरद और दही आदि द्रव्य अधिक भोजन, क्षीर मत्स्यादि संयोग विरुद्ध द्रव्य भोजन, व्यायाम शून्यता, दिवा निद्रा आदि कारणोंसे आभ्यन्तर क्रिमि उत्पन्न होता है। यह क्रिमि उत्पन्न होनेसे ज्वर, विवर्णता, शूल, हृद्रोग,

अवसन्नता, भ्रम, आहारमें अनिच्छा, जीमचलाना, कै, मुहसे थूक अधिक आना, अजीर्ण, अरुचि, नासिका कण्डू, नींदमें दांत पीसना, छींक आना आदि लक्षण प्रकाशित होता है।

पुरीषज क्रिमि लक्षण।—पुरीषज क्रिमि पक्वाशयमें जन्मती है, यह अकसर नीचेही रहती है। कभी कभी आमाशय-की तरफ भी उठती है। उपर उठने पर रोगीके निश्वासमें विष्ठाकी तरह बदबू आती है। पुरीषज क्रिमि नाना प्रकारकी होती है। सूक्ष्म, स्थूल, दीर्घ, गोल और श्याम, पोली, सफेद या काली आदि नाना प्रकार आकृतिगत विभिन्नता मालूम होता है। बहुतेरो धानके अङ्कुरकी तरह सूक्ष्म, बहुतेरी केचुवेकी तरह लम्बी और स्थूल कई गोल, कितनी चर्मलताकी तरह आकृतियुक्त नाना प्रकार पुरीषज क्रिमि होती हैं। तूम्बी बीजकी तरह और एक प्रकार क्रिमि है वह १२ हाथ तक लम्बी होती है। अतिरिक्त मास भोजन, अथवा कच्चा मास भोजन और अधिक शूकर मास भोजन करनेसे प्राय ऐसही क्रिमि उत्पन्न होती है। इसको बाहर निकालती वक्त खींचना पडता है। यही सब क्रिमि विमार्गगामी होनेसे मलभेद, शूल, पेटकी स्तब्धता, शारीरिक कृशता, कर्कशता, पाण्डुवर्णता, रोमाञ्च, अग्निमान्द्य और गुदामें कण्डु आदि लक्षण प्रकाशित होता है।

कफज क्रिमि लक्षण।—कफज क्रिमि आमाशयमें उत्पन्न हो, पेटके चारो तरफ फिरती है, इसकी भी आकृति पुरीषज क्रिमिकी भांति नाना प्रकार, और वर्ण भी वैसही विभिन्न दिखाई देता है। कफज क्रिमि उत्पन्न होनेसे, जीमचलाना मुखसे पानी जाना, अजीर्ण अरुचि, मूर्च्छा, वमन, ज्वर, मलमूत्र रोध, कृशता, छींक, पीनस आदि लक्षण अधिक प्रकाशित होता है।

रक्तज क्रिमि।—रक्तज क्रिमि रक्तवाहिनी शिरायोंमें रहती है। क्षीर मत्स्यादि संयोग विरुद्ध द्रव्य भोजन, अजीर्णमें भोजन और शाकादि द्रव्य अधिक भोजन करनेसे रक्तज क्रिमि उत्पन्न होती है। यह सब क्रिमि अतिशय सूक्ष्म, पदशून्य, गोल और ताम्रवर्ण होती हे।

वाह्य मलजात क्रिमि लक्षण।—वाह्य मलजात क्रिमि गात्रमल और पसीनेसे उत्पन्न होती है, अतएव अपरिच्छन्नता ही इसका मुख्य कारण है। इसकी आकृति और परिमाण तिलकी तरह, वाह्यक्रिमि यूका और लिक्ष्य भेदसे दो प्रकार, यूका अर्थात् जू नामक क्रिमि बहुपदयुक्त, कृष्णवर्ण और केश बहुल स्थानमें उत्पन्न होता है लिक्ष्य सूक्ष्म श्वेतवर्ण और यह कपडेमें उत्पन्न होती है।

चिकित्सा।—आभ्यन्तर क्रिमि नाशके लिये घेटूका पत्ता अथवा अनारसके नरम पत्तेका रस थोडा सहत मिलाकर पीना। विडङ्ग चूर्ण एक आनाभर पानी के साथ अथवा विडङ्गका काढा २ तोले पिलाना, विडङ्ग क्रिमि नाश करनेके हकमें अति श्रेष्ठ औषध है, खजूरके पत्तेका रस बासी कर पीनेसे अथवा खजूरके जडको नरम गूदो खानेसे क्रिमि नष्ट होती है। पालिधा पत्रका रस, केउपत्रका रस, पालिधा शाक का रस, पलाश बीजका रस, अनारके जडका काढा आदि द्रव्य भी क्रिमिनाशक है। खुरासानी अजवाईन, सेंधा नमकके साथ सबेरे खानेसे क्रिमि रोग अजीर्ण और आमवात आराम होताहै। तितलोकीको बीजका चूर्ण मट्ठा या कच्चे नारियलके पानीके साथ अथवा कामलागुडि चार आनेभर गुडके साथ सेवन करना। सोमराजी बीज आधा तोला एक छटाक पानीमें ५।६ घण्टा भिगोकर वह पानी पीना। विडङ्ग,

सधा नमक, जवाखार कमलागुडो और दर्ई मट्टेमें पीसकर पिलाना। आधा पानी और आधी दहीके मट्टेमें विडङ्ग, पीपला-मूल, सैजन को बीज और गोल मिरचका यवागू बनाना फिर जवाखार मिलाकर पीना। उक्त औषध सब क्रिमिनाश करनेमें उत्तम है। इसके सिवाय पारसीयादि चूर्ण, मुस्तादि कषाय, क्रिमि-मुद्गर रस, क्रिमिघ्न रस, विडङ्ग लौह, क्रिमिघातिनी वटिका, त्रिफलाद्य घृत, विडङ्ग घृतादि औषध प्रयोग करना। हमारी बनाई "क्रिमिघातिनी वटिका" सेवन करनेसे सब प्रकारका क्रिमिरोग आराम होता है।

वाह्य क्रिमि विनाशके लिये धतूरेका पत्ता या पानके पत्तेके रसमें कपूर मिलाकर लेप करना, नालिताको बीज काजीमें पीस कर शिरमें लगानेसे केशकी क्रिमि दूर होती है। विडङ्ग तैल और धुस्तुर तैल वाह्य क्रिमिका उत्कृष्ट औषध है।

पथ्यापथ्य।—पुराने चावलका भात, छोटी मछलीका शुरवा, परवर, करेला गुल्लर आदिको तरकारी, काजी, बकरीका दूध, तिक्त, कषाय और कटुरसयुक्त द्रव्य और पाती या कागजी नीबूका रस इस रोगमें उपकारी है। दोनो वक्त भात न खाकर रातको साबूदाना, बार्लि एरारूट आदि हलका भोजन करना। कारण क्रिमि रोगमें जिसमें अजीर्ण न हो उसका ख्याल विशेष रखना चाहिये।

पिष्टक आदि गुरुपाक द्रव्य, मिष्ट द्रव्य, गुड, उरद, दही, अधिक घृत, अधिक पतला पदार्थ और मासादि द्रव्य भोजन तथा दिवा-निद्रा और मलमूत्रका वेग रोकना विशेष अनिष्टकारक है।

पाण्डु और कामला।

निदान।—अतिरिक्त व्यायाम, मैथुन, अथवा अधिक अम्ल, लवण, मद्य, लाल मिरचा, राई आदि तीक्ष्णवीर्य्य और मिट्टी आदि द्रव्य खानेसे वातादि दोषत्रय रक्तको दूषित कर पाण्डु रोग उत्पन्न होता है। यह रोग प्रकाशित होनेसे पहिले त्वक फटा, मुखसे पानी गिरना, शरीर अवसन्न, मिट्टी खानेकी इच्छा, आखके चारो तरफ शोथ, मल मूत्रका पीला होना और अपरिपाक आदि पूर्व्व-रूप प्रकाशित होता है। पाण्डु रोग पाच प्रकार। जैसे—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और मृत्तिकाभक्षण जात।

वातज, पित्तज और कफज पाण्डुरोग।—वातज पाण्डु रोगमें त्वक, मूत्र, चक्षु, काला या अरुण वर्ण और रुखा। शारीरिक कम्प, सूची विद्धवत् पीड़ा, आनाह और भ्रम आदि लक्षण होता है। पित्तज पाण्डु रोगमें सब देह विशेष कर मल, मूत्र, नख पीला और दाह, प्यास, ज्वर तथा थोड़ा थोड़ा मल आना आदि लक्षण होता है। कफज पाण्डु रोगमें त्वक, मूत्र, आख और मुख सफेद, मुख और नाकसे रक्त-स्राव, शोथ, तन्द्रा, आलस्य, देहकी अत्यन्त गुरुता आदि लक्षण प्रकाशित होता है। सन्निपातज पाण्डु रोगमें उक्त वातादि पाण्डु रोगके लक्षण सब मिले हुये मालूम होता है। सन्निपातज पाण्डु रोगमें ज्वर, अरुचि, जीमचलाना, वमन, प्यास, क्लान्ति और इन्द्रिय शक्तिका नाश आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे असाध्य जानना। मृत्तिका भक्षण जात पाण्डु रोगमें खाई हुई मिट्टीके

गुणानुसार कोई एक दोष कुपित हो वही आरम्भक होता है। कषाय रसयुक्त मिट्टी खानेसे वायु, क्षारयुक्त मिट्टीसे पित्त और मधुर रसयुक्त मिट्टीसे कफ कुपित हो पूर्व्वोक्त लक्षण समूहोंमे अपना अपना लक्षण प्रकाश करता है। जली हुई मिट्टी खानेसे उस मिट्टीके रुक्ष गुणके कारण रसादि धातु समूह और भुक्त अन्नभो रुक्ष होता है। तथा खाई हुई जलो मिट्टो अजीर्ण अवस्थाहीमें रस वहादि स्रोत समूहोंको पूर्ण और रुद्धकर इन्द्रिय शक्ति, दीप्ति, वीर्य्य और ओज पदार्थका विनाशकर सहसा वल, वर्ण और अग्नि विनष्ट कर पाण्डु रोग उत्पन्न होता है। पाण्डु रोगीके पेटमें क्रिमि पैदा होनेसे, आखके चारो तरफ, गाल, भौ, पैर, नाभि, और लिङ्गमें शोथ तथा रक्त और कफमिश्रित दस्त होता है।

साध्यासाध्य लक्षण।—पाण्डुरोग बहुत दिन तक बिना चिकित्साके रहनेसे असाध्य हो जाता है। तथा जो पाण्डु रोगी शोथयुक्त हो, सब वस्तु पीली देखता हो तो वह पाण्डु रोग भी असाध्य जानना, अथवा पाण्डु रोगीका मल कठिन, थोडा, हरा और कफयुक्त होनेसे भी असाध्य समझना।

सांघातिक लक्षण।—पाण्डु रोगीका शरीर यदि किसी सफेद पदार्थसे लिपटा हुआ मालूम हो और शारीरिक ग्लानि, वमन, मूर्च्छा, पिपासा आदि उपद्रव लक्षित हो तो उसकी मृत्यु होती है। रक्तक्षयके कारण जिसका शरीर एक दम सफेद हो गया हो उसके भी जीवनको आशा कम है। अथवा जिस पाण्डु रोगीका दांत, नख, आख पाण्डुवर्ण तथा सब वस्तु उसको पाण्डुवर्ण दिखाई दे तो उसको भी मृत्यु निश्चय जानना। पाण्डु रोगी का हाथ, पैर, मुख फूला और मध्यभाग क्षीण होनेसे अथवा मध्यभाग फूला और हाथ पैर क्षीण होनेसे उसको मृत्यु होती है।

जिस पाण्डु रोगोका गुदा, लिङ्ग और अण्डकोषमें शोथ तथा मूर्च्छा, ज्ञान नाश, अतिसार और ज्वर आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे उसकी भी मृत्यु होती है।

कामला रोगका निदान।—पाण्डु रोग उत्पन्न होनेके बाद अधिक पित्तकर द्रव्य भोजन करनेसे पित्त अधिकातर कुपित हो रक्त और मासको दूषित करता है, इसोसे कामला रोग उत्पन्न होता है। यकृत् रोग पैदा होकर क्रमश यह रोग उत्पन्न होते दिखाई देता है। पाण्डु रोगके जो सब निदान कह आये है, वही सब निदान और अतिरिक्त दिना निद्रा आदि कारणोंसे कामला रोग उत्पन्न होता है। यकृत्से पित्त बाहर हो सब पाकस्थलोमें न आकर थोडा अंश रक्तके साथ मिलता है। इसी रीतिसे कामला रोग सञ्चारित होता है।

लक्षण।—इस रोगमें पहिले केवल दोनो आंख पीली हो फिर त्वक, नख, मुख, मल, मूत्र प्रभृति समस्त शरीर बर्सातके मेडकके तरह पीला होता है। किसीका मल मूत्र लाल रगकाभी दिखाई देता है। इस रोगमें मल सफेद, कठिन, बदनमें खुजली, जीमचलाना, इन्द्रिय शक्तिका नाश, दाह, अपरिपाक, दुर्ब्बलता, अरुचि और अवसाद आदि लक्षण लक्षित होते है।

साधातिक लक्षण।—कामला रोगमे अत्यन्त शोथ, मूर्च्छा, मुख और दोनों आंखे लाल, मल मूत्र काला, पीला या लाल और दाह, अरुचि, पिपासा, आनाह, तन्द्रा, मूर्च्छा, अग्निमान्द्य और सज्ञानाश आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे रोगीकी मृत्यु होती है।

कुम्भकामला।—कामला रोग बहुत दिन तक शरीरमे रहनेसे पूर्व्वोक्त लक्षण समूह अधिकतर प्रकाश होनेपर उसको

कुम्भकामला कहते हैं। यह अवस्था स्वभावत कष्टसाध्य है। विशेषत' इसमें अरुचि, वमन वेग, ज्वर, दोषज ग्लानि, श्वास, कास और मलभेद आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे रोगीके जीनेकी आशा नहो रहती है।

हलीमक ।—पाण्डु या कामला रोग उत्पन्न होनेके बाद क्रमश शरीरका रग हरा, श्याम और पीला होनेमे तथा साथही बल और उत्साहका ह्रास, तन्द्रा अग्निमान्द्य, मृदु ज्वर, स्त्री सहवासमे अनिच्छा, अङ्ग वेदना, दाह, तृष्णा, अरुचि और भ्रम आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे उसको हलीमक रोग कहते हैं।

चिकित्सा और हमारी सरलभेदी वटिका ।—जिस कार्य्यमे यकृत्की क्रिया सम्पूर्ण रूपसे होती रहे वैसही कार्य्य करना ही इस रोगकी चिकित्सा है। हमारी "सरलभेदी वटिका" रोज रातको सोती वक्त उचित मात्रासे खानेपर दस्त साफ यकृत्की क्रिया अच्छी तरह होती है और पाण्डु कामला आदिमे भी विशेष उपकार होता है। पाण्डु रोगमें हलदीका काढा या कल्कके साथ औटाया हुआ घी, अथवा आवला, बडी हर्रे और बहेडा इस तीन द्रव्यका काढा या कल्कके साथ पकाया घी किम्वा वातव्याधि प्रसङ्गका तिन्दुक घृत सेवन कराना उचित है। कोष्ठ बद्ध हो तो घीके साथ रेचक ओषध मिलाकर सेवन कराना चाहिये। वातज पाण्डुरोगमे घी और चीनीके साथ त्रिफलाका काढा पिलाना। पित्तज पाण्डुरोगमे २ तोले ५ मासे ४ रत्ती चीनीके साथ १० मासा ८ रत्ती त्रिवृत्का चूर्ण मिलाकर सेवन कराना। कफज पाण्डुरोगमें बडी हर्रे गोमूत्रमे भिगोना फिर गोमूत्रमें मिलाकर सेवन कराना। अथवा गोमूत्रके साथ सोठका चूर्ण ॥ मासे और लौहभस्म १ मासा, किम्वा गोमूत्रके साथ

पीपलका चूर्ण ४ मासे और शोठका चूर्ण ४ मासे, अथवा गोमूत्र-के साथ शोधित शिलाजीत ३ मासे, किम्बा घृतपिष्ट गुग्गुलु ८ मासे सेवन कराना। लौहचूर्णको ७ दिन गोमूत्रको भावना दे फिर दूधके साथ सेवन करानेसे भी कफज पाण्डुरोगमें विशेष उपकार होता है।

पाण्डुरोगमें शोथ चिकित्सा।—गुडके साथ बडी हर्र रोज खानेसे सब प्रकारका पाण्डुरोग आराम होता है। लौह-चूर्ण, काली तिल, शोठ, पीपल, गोलमरिच और बैरकी गूठो हरिकाका चूर्ण समभाग और सब चूर्णके समान स्वर्णमाक्षिक चूर्ण मिला सहतके साथ मोदक बनाना। यह मोदक मट्टेके साथ सेवन करानेसे अति कठिन पाण्डुरोग भी आराम होता है। पाण्डु-रोगीको शोथ हो तो मण्डुर सात बार आगमें गरमकर गोमूत्रमें बुताना, फिर वही शोधित मण्डुर का चूर्ण घी और सहतके साथ मिलाकर अन्नके साथ सेवन करानेसे पाण्डु और शोथ आराम हो भूख बढती है।

कामला चिकित्सा।—कामला रोगमें गुरिचका पत्ता पीसकर मट्टेके साथ पीना। गोदूधमें शोठका चूर्ण मिलाकर पीना। हलदीका चूर्ण १ तोला ८ तोले दहीके साथ सवेरे सेवन कराना। त्रिफला, गुरिच, दारुहलदी और नीमकी छालका रस सहतके साथ रोज सवेरे पीना। लौहचूर्ण, शोठ, पीपल, गुरिच और विडङ्ग चूर्ण, अथवा हलदी, आवला, बडी हर्र और बहेडेका चूर्ण सेवन कराना। सहस्रपुटित या पाच सौ बार पुटित लौहचूर्ण सहत और घीके साथ सेवन कराना। वही लौहचूर्ण हरीतकी और हलदीका चूर्ण, घी और सहतके साथ अथवा हरीतकी चूर्ण गुड और सहतके साथ सेवन कराना। लौहचूर्ण, आवला, शोठ पीपल, गोलमरिच

और हलदीका चूर्ण घी, महत और चीनीके साथ सेवन करानेसे भी कामला रोग आराम होता है।

कुम्भकामला और हलीमक चिकित्सा।—

कुम्भ कामला और हलीमक रोगमें पाण्डु और कामला रोगकी तरह चिकित्सा करना। विशेषत कुम्भकामलामें बहेडाके लकडीकी आंचमें मण्डूर गरम कर क्रमश. ८ बार गोमूत्रमें बुताना, फिर मण्डूर चूर्ण सहतके साथ चटाना, और हलीमक रोगमें जारित लौहचूर्ण, खैरका काढा और मोथेके चूर्णके साथ चटाना। कुटकी, बरियारा, जेठीमध, आवला, बहेडा, हलदी और दारहलदीका समभाग चूर्ण सहत और चीनीके साथ चटानेसे भी हलीमक रोग आराम होता है। फलत्रिकादिकषाय, वासादि कषाय, नवायस लौह, त्रिकलयाद्य लौह, धात्रीलौह, अष्टादशाङ्ग लौह, पुनर्नवादि मण्डूर, पञ्चानन रस और हरिद्राद्य घृत, व्योषाद्य घृत तथा पुनर्नवा तैल विवेचना पूर्व्वक पाण्डु, कामला, कुम्भकामला और हलीमक रोगमें प्रयोग करना।

चक्षुद्वयका पीलापन दूर करनेके लिये द्रोणपुष्पके पत्तेका रस आंखमें देना, अथवा हलदी गेरूमिट्टी और आंवलेका चूर्ण सहतके साथ मिलाकर आंखमें लगाना। काकरोलके जडका रस या घृतकुमारीका रस, अथवा पीत घोषाफल पानीमें घिसकर नास लेनेसे भी आंखे साफ होती है।

पथ्यापथ्य।—उक्त रोगोंमें जीर्ण ज्वर और यकृत् रोगकी तरह पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये। किसी प्रकारका उत्तेजक पानाहार सेवन नहीं करना।

रक्त-पित्त।



निदान।—अग्नि और आतप आदि सेवन, व्यायाम, शोक, पथ पर्य्यटन, मैथुन और गोलमिरच आदि तीक्ष्ण वीर्य्य द्रव्य, क्षाहार, लवण और कटुरसयुक्त द्रव्य अधिक भोजन करनेसे पित्त, कुपित हो यह रोग उत्पन्न होता। स्त्रियोंका रजो रोध होनेसे भी यह रोग उत्पन्न होनेकी सम्भावनाहै। इस रोगमें मुख, नासिका, चक्षु और कान यह ऊर्द्धमार्ग और गुदा, योनि और लिङ्ग अधोमार्गसे रक्तस्राव होता है। पीड़ाकी वृद्धिमें समस्त रोमकूपसे भी रक्तस्राव दिखाई देता है।

दोषभेदसे पूर्व्व लक्षण।—रक्तपित्त रोग उत्पन्न होनेसे पहिले शारीरिक अवसन्नता, शीतल द्रव्यपर अभिलाष, कण्ठसे धूमनिकलनेकी तरह अनुभव, वमन और निश्वासमें रक्त या लोहेके गन्धकी तरह गन्ध आदि पूर्व्वरूप प्रकाश होता है। रोग उत्पन्न होनेपर वातादि दोषके आधिक्यानुसार पृथक पृथक लक्षण प्रकाश होता है। रक्तपित्तमें वायुका आधिक्य रहनेसे रक्त श्याम या अरुणवर्ण फेनिला पतला और रूखा होता है और इसी रक्तपित्त रोगमें गुदा, योनि या लिङ्ग इन्ही सब अधोभागोंसे रक्त निकलता है। पित्तके आधिक्यमें रक्तवटादि छालके काढ़ेकी तरह रङ्ग, काला, गोमूत्रकी तरह चिकना, कृष्णवर्ण, जालेके रङ्गकी तरह अथवा सौवीराञ्जनकी तरह वर्णविशिष्ट होता है। कफके आधिक्यसे खून गाढ़ा, थोड़ा पाण्डुवर्ण, थोड़ा चिकना और

पिच्छिल होता है तथा मुख, नाक, आंख और कान इन सब ऊर्द्ध मार्गोंसे रक्तस्राव होता है। केवल इसी दोषका या तीनों दोषका आधिक्य रहनेसे, उसी दो दोष या तीन दोषके लक्षण मिले हुये मालूम होते हैं। द्विदोषज रक्तपित्तमें वात कफके रक्तपित्तसे ऊर्द्ध और अध उभय मार्गोंमें रक्त निकलता है।

साध्यासाध्य।—उक्त रक्तपित्तमें जो रक्तपित्त ऊर्द्ध मार्गगत अर्थात् मुख, नासिका आदिसे निकलता है या वेग कम, उपद्रव शून्य, तथा हेमन्त और शीतकालमें प्रकाशित हो उसको साध्य जानना। जो रक्तपित्त अधो मार्गगत अर्थात् गुदा, योनि, और लिङ्गसे रक्तस्राव तथा दो दोषसे उत्पन्न होता है, वह याप्य और जिस रक्तपित्तमें ऊर्द्ध और अधो दोनो मार्गसे रक्तस्राव होता है अथवा तीनों दोषका रक्तपित्त असाध्य है। रोगी वृद्ध, मन्दाग्नि आहार-शक्तिहीन या अन्यान्य व्याधियुक्त होनेसे भी रक्तपित्त असाध्य जानना।

उपसर्ग।—दुर्व्वलता, श्वास, काम, ज्वर, वमन, मत्तता, पाण्डुता, दाह, मूर्च्छा, खाया हुआ पदार्थका अम्लपाक, सव्वदा अधैर्य्य, हृदय वेदना, प्यास, मल भेद, मस्तकमें दाह शरीरसे सड़ी दुर्गन्ध आना, आहारसे अनिच्छा, अजीर्ण और रक्तमें सड़ी बदबू, रक्तका रङ्ग मांसधोये पानीकी तरह, या कर्द्दमवत, मेद, पीप, यकृत् खण्ड, पका जामुनकी तरह काला किम्बा इन्द्रधनुकी तरह नाना रङ्ग होना, यही रक्तपित्तका उपसर्ग है। इन सब उपसर्गयुक्त रक्तपित्तसे रोगीको मृत्यु होता है। जिस रक्तपित्तमें रोगीकी आंखें लाल और जो रोगी अपने उद्गारमें लाल देखता है अथवा सब पदार्थ लाल दिखाई देता है, किम्बा अधिक परिमाण रक्त वमन होतो उसको मृत्यु निश्चय जानना।

अवस्था भेदसे चिकित्सा।—रोगी बलवान हो तो रक्तस्राव बन्द करना उचित नहीं है। कारण वही दूषित रक्त देह में रुद्ध हो रहनेसे पाण्डुरोग, हृद्रोग, ग्रहणी, प्लोहा, गुल्म और ज्वर आदि नाना प्रकारकी पीड़ा उत्पन्न होनेकी सम्भावना है। किन्तु रोगी दुर्ब्बल, अथवा अतिरिक्त रक्तस्रावसे जिसके अनिष्टकी आशङ्का है, उसका रक्त बन्द करनाही उचित है। दूबका रस, अनारके फूलका रस, गोबर या घोड़ेकी लीदका रस, चीनी मिलाकर पीनेसे रक्तस्राव बन्द होता है। अड़ूसेके पत्तेका रस, गुल्लरके फलका रस और लाह भिगोया पानी पीनेसेभी रक्तस्राव बन्द होता है। एक आनाभर फिटकिरीका चूर्ण दूधमें मिलाकर पीनेसे रक्तस्राव तुरन्त बन्द होता है। रक्तातिसार और रक्तार्श निवारक अन्यान्य योग समूह भी इस रोगमें विचार कर प्रयोग कर सकते हैं। नाकसे रक्तस्राव हो तो, आवला घीमें भूजकर काञ्जीसे पीस मस्तक पर लेप करना। चीनी मिलाया दूधका नास अथवा दूर्व्वाका रस, अनारके फूलका रस, पियाजका रस, गोबर या घोड़की लीदका रस, मञ्जावरका पानी या हरीतकी भिगोया पानीका नास लेना। कानमें रक्तस्राव हो तो यही सब औषध कानमें छोड़ना। मूत्र मार्गमें रक्तस्राव हो तो काश, शर, काला ऊख और कशड़की जड़ सब मिलाकर २ तोले, बकरीका दूध १६ तोले १ सेर पानीके साथ औटाना, दूध शेष रहने पर नीचे उतार कर पीना। शतमूली और गोखुरके साथ अथवा शालिवन, पिठवन, मुगानि और माषानिके साथ दूध पकाकर पिलाना। योनिमें रक्तस्राव हो तो यही सब औषध और प्रदर रोगोक्त अन्यान्य औषधभी विचार कर देना। लाल चन्दन, बेलकी गूदी, अतीस, कुरैयाकी छाल और बबूलका गोंद सब २ तोले बकरीका दूध १६ तोले, एक सेर पानीमें औटाना

दूध बाकी रहने पर उतार छानकर पोनेसे गुदा, योनि और लिङ्गसे रक्तस्राव जलदी आराम होता है। किसमिस, लाल चन्दन, लोध और प्रियङ्गु, सबका चूर्ण अडूसेके पत्तेका रस और महतके साथ पोनेसे मुख नासिका गुदा, योनि और लिङ्गसे निकलता हुआ खून तुरन्त बन्द होता है। रक्तकी गाठ गिरनेसे कबूतरका बीट अति अल्प मात्रा महतके साथ चाटना। इसके सिवाय धान्यकादि हिम, ह्रीवेरादि क्वाथ, आटरूषकादिक्वाथ, एलादि गुडिका, कुष्माण्ड खण्ड, वासाकुष्माण्ड, खण्डकाद्य लौह, रक्तपित्तान्तक लौह, वासा-घृत, सप्तप्रस्थ घृत और ह्रीवेराद्य तैल विवेचना पूर्व्वक प्रयोग करना।

रक्तपित्तज ज्वर चिकित्सा।—रक्तपित्तमें ज्वर रहनेसे लाल निहत, काला निहत, आवला, बडी हर्र, बहेडा और पोपलका चूर्ण प्रत्येकके समभागको दूनी चोनी और महत मिला मोदक बनाना, इस मोदकसे रक्तपित्त और ज्वर दोनोकी शान्ति होती है। इसके सिवाय रक्तपित्त नाशक और ज्वर नाशक यह दोनो औषध मिलित भावसे इस अवस्थामें प्रयोग करना। श्वास, कास, स्वरभङ्ग आदि अन्यान्य उपद्रव उपस्थित होनेसे राजयक्ष्मा की तरह चिकित्सा करना। अडूसेके पत्तेके रसमें तालीश पत्रका चूर्ण और महत मिलाकर पोनेसे श्वास कास और स्वरभङ्गमें उपकार होता है।

पथ्यापथ्य।—उर्द्धग रक्तपित्तमें रोगीका बल, मास और अग्निबल क्षीण न होनेसे पहिले उपवास कराना उचित है। किम्वा बलादि क्षीण होनेसे लंघिकर आहारादि देना चाहिये। घी महत और धानके लावाका खाद्य बनाकर खानेको देना। अथवा पिण्ड खर्जूर, किसमिस, जेठीमध और फालसा इसका काढा ठण्ढाकर

चोनी मिलाकर पिलाना। अधोगत रक्तपित्तमें ल्लाकर पेयादि पोनेको देना। शरिवन, पिठवन, वृहती, कण्टकारी और गोक्षुर यह स्वल्प पञ्चमूलके काढेके साथ पेया बनाकर पोनेसे रक्तपित्तमें विशेष उपकार होता है। अतिरिक्त रक्तस्राव बन्द होनेसे और अन्नादि पचानेको ताकत होनेपर दिनको पुराने चावलका भात, मूग मसूर और चनेको दालका जूस, परवल, गुल्लर, पक्का सफेद कोहडा और करैलेकी तरकारी, छाग, हरिण, खरगोश, कबूतर, बटेर और बगुलेके मासका रस, बकरीका दूध, खजूर अनार सिङ्घाडा, किसमिस, आवला मिशरी नारियल, तिल तैल या घृत पक्व वस्तु इस रोगमें आहार कराना। रातको गेहूं या जौके आटेकी रोटी या पूरी और पूर्व्वोक्त तरकारी। सूजी, चनेका बेसन, घी और कम मीठेका बनाया पदार्थ खानेको देना। गरम पानी ठण्ढाकर पिलाना।

निषिद्ध कार्य्य।—गुरुपाक तीक्ष्णवीर्य्य और रूक्ष द्रव्य मन्मूत, दही, मछली, अधिक पदार्थ, सरसोका तैल, लाल मिरचा, अधिक नमक, सेम, आल, शाक, खट्टा, उरद की दाल और पान आदि खाना, मल मूत्रका वेग धारण, दतुवनसे मुह धोना, व्यायाम, पथ पर्य्यटन, धूमपान, धलि और धूपमे बैठना, ओस लगाना, रातका जागना, स्नान, सङ्गीत या जोरसे बोलना, मैथुन, अश्वादि सवारोमें चढना आदि इस रोगमें विशेष अनिष्टकारक है। स्नान न करनेसे विशेष कष्ट हो तो गरम पानी ठढा होनेपर किसी किसी दिन स्नान करना उचित है।

—०—

राजयक्ष्मा और क्षतक्षीण।

निदान।—मल मूत्रादिका वेग धारण, अतिरिक्त उपवास, अति मैथुन आदि धातुक्षय कारक कार्य्योंसे तथा बलवान मनुष्यसे कुश्ती लड़ना और किसी दिन कम किसी दिन अधिक या अनिर्दिष्ट समयमें भोजन करना आदि कारणोंसे राजयक्ष्मा रोग उत्पन्न होता है। रक्तपित्त पीड़ा बहुत दिनतक बिना चिकित्साके रहनेसे भी क्रमश राजयक्ष्मा रोगमें परिणत होते दिखाई देता है। वायु, पित्त, कफ, यह तीन दोष जब कुपित हो रसवाही शिराओंको रुद्ध करता है, तब उससे क्रमश रक्त, मास, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र क्षीण होता है। कारण रसही सब धातुओंका सृष्टिकर्त्ता है। उसी रसकी गति रुद्ध होनेसे किसी धातुका पोषण नहीं हो सकता। अथवा अतिरिक्त मैथुनसे शुक्र क्षय होनेपर उसकी क्षीणता पूर्ण करनेके लिये भी अन्यान्य धातु क्रमश क्षयको प्राप्त होता है। इसीको क्षयरोग या राजयक्ष्मा कहते है।

पूर्व्वलक्षण।—यह रोग उत्पन्न होनेसे पहिले, श्वास अङ्गमें दर्द, कफ निष्ठीवन, तालुशोष, कै, अग्निमान्द्य, मत्तता, पीनस, कास, निद्राधिक्य, आखोंका सफेद होना, मास भक्षण और मैथुनकी इच्छा आदि पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है, तथा इस रोगमें रोगी यही स्वप्न देखता है कि मानो पक्षी, पतङ्ग और श्वापद जन्तु उसको आक्रमण कर रहे है। केश, भस्म और हड्डी (अस्थि), स्तूपके उपर वह खड़ा है, जलाशय सूख गया है, पर्व्वत टूट पड़ाहै और आकाशके तारे सब गिर रहे है।

पर लक्षण।—रोग प्रकाशित होनेपर प्रतिश्याय, कास, स्वरभेद, अरुचि, पार्श्वद्वयका सङ्कोच और दर्द, रक्त वमन, और मलभेद यही सब लक्षण लक्षित होता है। वाताधिक्यसे इसमें स्वर-भङ्ग, कन्धा और दोनो पसुलियोंका सङ्कोच या दर्द होता है। पित्ताधिक्यसे ज्वर, सन्ताप, अतिसार और निष्ठीवन तथा सिरो वेदना, अरुचि, कास, प्रतिश्याय और अङ्गमर्द कफाधिक्यका लक्षण है। जिसको जिस दोषका आधिक्य रहता है, उसको उन्ही सब लक्षणोंमें उसी दोषका लक्षण अधिक प्रकाशित होता है।

साध्यासाध्य निर्णय।—क्षय, यक्ष्मारोग साधारणतः दुःसाध्य हैं, रोगीका बल और मांसक्षीण न होनेसे, उक्त प्रतिश्याय आदि एकादश रूप प्रकाशित होने पर भी आरोग्य होनेकी आशा कर सकते हैं, पर यदि बल मांस क्षीण हो जाय और उक्त एकादशरूप प्रकाशित न हो, कास, अतिसार, पार्श्ववेदना, स्वरभङ्ग, अरुचि और ज्वर यह छः लक्षण दिखाई दे अथवा श्वास, कास, और रक्त निष्ठीवन यही तीन दोष प्रकाशित होयतो रोग असाध्य जानना।

सांघातिक लक्षण।—यक्ष्मा रोगी प्रचुर आहार करने परभी क्षीण होता जाय अथवा अतिसार उपद्रवयुक्त हो किम्वा अण्डकोष और पेटमें शोथ हो तो उसको असाध्य समझना। दोनो आंखे सफेद, अन्नसे द्वेष, ऊर्द्ध श्वास, कष्टसे शुक्र जाना इसमें कोई एक उपद्रव यक्ष्मा रोगीको होनेसे मृत्यु लक्षण जानना।

उरःक्षत निदान।—गुरुभार वहन, बलवानसे कुश्ती लड़ना, ऊंचे स्थानसे गिरना, गौ, अश्वादि जन्तु दौड़ते वक्त उसके गतिको जोरसे रोकना, पत्थर आदि पदार्थको जोरसे दूर फेंकना, तेजीसे बहुत दूर तक चलना, ऊंची आवाजसे पढ़ना, अधिक

तैरना और कूदना आदि कठोर कार्य्योंसे और अतिरिक्त स्त्री सह वाससे भी छातीमें घाव होता है। उक्त कार्य्योंके साथ सर्व्वदा अधिक और कम आहार करनेवालेको भी छातीमें घाव होनेकी अधिक सम्भावना है। इन्ही सब कारणोंसे छातीमें घाव होनेसे उसको उर क्षत रोग कहते हैं। इस रोगमे वक्षस्थल विदीर्ण या टूटकर गिर पडनेकी तरह मालूम होना तथा दोनो पसुलियोंमें दर्द, अङ्गशोष और कम्प होता है। फिर क्रमश बल, वीर्य्य, वर्ण, रुचि, अग्निहीनता, ज्वर, कष्ट, मन उदास, मलभेद, खांसीके साथ सडी दुर्गन्ध, श्याम या पीला, गठीला और रक्तमिला कफ सर्व्वदा बहुत निकलता रहता है। अतिरिक्त कफ और रक्त वमनसे भी क्रमश शुक्र और ओज क्षीण हो रक्तस्राव और पार्श्व, पृष्ठ कमरमे दर्द होता है। उर.क्षत रोगभी राजयक्ष्माका अन्तर्मूल है। जबतक इसके सब लक्षण प्रकाशित न हो तथा रोगीका बल, वर्ण सम्यक् वर्त्तमान रहे और रोग पुराना न हो तभीतक यह साध्य है। एक वर्षका पुराना रोग याप्य, और समस्त रूप प्रकाश होनेसे असाध्य होता है।

क्षीणरोग लक्षण।—यही उर क्षत रोग और अतिरिक्त मैथुन, शोक, व्यायाम और पैदल चलना आदि कारणोंसे शुक्र, ओज और बल वर्णादि क्षीण होनेसे उसको क्षीणरोग कहते हैं। राज यक्ष्माके साथ इसकी चिकित्सामें कोई प्रभेद नही है इसमें एक साथही सन्निवेशित किया गया है।

चिकित्सा।—राजयक्ष्माकी चिकित्सा करना अत्यन्त कठिन है। बल और मलको इस रोगमे सर्व्वदा रक्षा करना चाहिये। इसीसे विरेचनादि इस रोगमे न करानाही उचित है। पर मल एक दम बन्द होनेसे मृदु विरेचन देना। छाग मांस भक्षण,

छाग दूध पान, चीनीके साथ छाग घृत पान, छाग और हरिण गोदमें लेना और बिछौनेके पास छाग या हरिण रखना यक्ष्मा रोगीके हकमें विशेष उपकारी है। रोगी दुर्ब्बल होनेसे चीनी और सहतके साथ मक्खन खानेको देना। मस्तक, पार्श्व या कधेमें दर्द हो तो सोवा, जेठीमध, कूठ, तगरपादुका और सफेद चन्दन एकत्र पीसकर घी मिला गरम कर लेप करनेसे दर्द शान्त होता है। अथवा बरियारा, रास्ना, तिल, जेठीमध, नीला कमल और घृत, अथवा गुग्गुलु, देवदारु, सफेद चन्दन, नागकेशर और घृत किम्बा क्षीरकाकोली, बरियारा, बिदारीकन्द, एलबालुका और पुनर्नवा यह पांचों द्रव्य किम्बा शतमूली, क्षीरकाकोली, गन्धतृण, जेठीमध और घृत यह सब द्रव्य पीसकर गरम लेप करनेसे मस्तक पार्श्व और कन्धेका दर्द आराम होता है। रक्त वमनके लिये महावरका पानी २ तोले आधा तोला सहतके साथ या कुकुरसोंकेका रस २ तोले पिलाना। रक्तपित्तमें जो सब योग और औषध रक्त वमन निवारणके लिये कह आये है, उसमें जो सब क्रिया ज्वरादिको अविरोधी है वह भी प्रयोग कर सकते है। पार्श्वशूल, ज्वर, श्वास और पीनस आदि उपद्रवमें धनिया, पीपल, सोंठ, सरिवन, कण्टकारी, वृहती, गोक्षुर, बेलकी छाल, श्योनाक छाल, गाम्भारी, पाटला छाल, और गनियारीकी छाल, इन सब द्रव्योंका काढा पिलाना। ज्वर, कास, स्वरभङ्ग और रक्तपित्त आदि रोग समूहोंकी औषधे लक्षणानुसार विचार कर इस रोगमें मिलित भावसे प्रयोग कर सकते है। इसके सिवाय लवङ्गादि चूर्ण, सितोपलादि लेह, वृहद्वासावलेह, च्यवनप्राश, द्राक्षारिष्ट, वृहत् चन्द्रामृत रस, क्षयकेसरी, मृगाङ्क रस, महा मृगाङ्क रस, हेमगर्भपोटली रस, राजमृगाङ्क रस, काञ्चनाभ्र, वृहत्

काञ्चनाभ्र, रसेन्द्र और वृहत रसेन्द्र गुडिका, रत्नगर्भ पोट्टली रस, सर्व्वाङ्गसुन्दर रस, अजापञ्चक घृत, वलागर्भ घृत, जीवन्त्याद्य घृत और महाचन्दनादि तैल यक्ष्मा रोगके प्रशस्त औषध है हमारा "वासकारिष्ट" सेवन करानेसे कास, श्वास और छातीका दर्द आदि उपद्रव जलदी आराम होता है। रक्त वमन हो तो कस्तुरी सयुक्त कोई औषध प्रयोग करना उचित नही है। ज्वर हो तो घृत और तैल प्रयोग नही करना चाहिये।

उरःक्षत रोगमें यही सब औषध विचार कर प्रयोग करना। क्षीण रोगमें जिस धातुकी क्षीणता अनुभवहो, उसी धातुका पुष्टिकारक पान भोजन और औषध व्यवहार करना चाहिये। अमृतप्राश और श्वदंष्ट्रादि घृत आदि पुष्टिकारक औषध क्षीण रोगमें प्रयोग करना।

पथ्यापथ्य।—रोगीका अग्निबल क्षीण न हो तो दिनको पुराने चावलका भात, मूगकी दाल, छाग, हरिण, कबूतर और मासभोजी जीवका मास, परवर, बैगन, गुल्लर, सैजनका डण्टा, पुराना सफेद कोहडा आदिकी तरकारी खानेको देना। तरकारी आदि घृत और सेधा नमकसे सिद्धकर देना चाहिये। रातको जौ या गोहूके आटेको रोटी, मोहनभोग, और उपर कही तरकारी, छाग दूध अथवा थोडा गोदूध देना। कफके प्रकोपमें दिनको भात न दे रोटी खानेको देना। अग्नि बल क्षीण होनेसे दिनको भात या रोटी और रातको थोडा दूध मिला सागु, एरारुट और बार्लि आदि खानेको देना। यहभी अच्छी तरह जीर्ण न होनेसे दोनो वक्त सागु आदि हलका पथ्य देना। इस अवस्थामें जौ दो तोले, कुलथी २ तोले छाग मास ८ तोले, पानी ९६ तोले एकत्र औटाना २४ तोले रहते उतार कर छान लेना।

फिर ३ तोले गरम घोसे उस काढेको छौक कर थोडा हीग, पोपलका चूर्ण और शोठका चूर्ण मिलाकर थोडो देर औटालेना, फिर अनारका रस थोडा मिलाकर पिलाना। यह जूस यक्ष्मा रोगमे विशेष हितजनक और पुष्टिकारक है। गरम पानो ठण्ढाकर पिलाना। इस रोगमे शरीर सर्व्वदा कपडेसे ढका रखना चाहिये।

निषिद्ध कर्म्म।—ओसमें बैठना, आग तापना, रातको जागना, सङ्गीत, चिल्लाकर बोलना, घोडा आदिकी सवारो पर चढना, मैथुन, मलमूत्रका वेग रोकना, कसरत, पैदल चलना, श्रमजनक कार्य्य करना, धूमपान, स्नान और मछली, दही, लाल मिरचा, अधिक लवण, सेम, मूली, आलु, उरद, शाक, अधिक हीग, पिआज, लहसन, आदि द्रव्य भोजन इस रोगमें अनिष्ट कारक है। शुक्र क्षयसे हुई पीडामें विशेष सावधान रहना चाहिये। जिस कामसे मनमे कामवेग उपस्थित होनेको सम्भावना हो, उससे दूर वक्त अलग रहना।



कासरोग।

निदान और लक्षण।—मुख या नाकसे धूम या धूलि प्रवेश, वायुसे अपक रसको ऊर्द्ध गति, अति द्रुत भोजन करना आदिसे श्वासनालोमे भुक्तद्रव्यका प्रवेश, मल, मूत्र और छीकका

वेग रोकना आदि कारणोंसे वायु कुपित हो, पित्त कफको कुपित करनेसे कास रोग उत्पन्न होता है। कांसेके वरतनमे चोट लगनेसे जैसी आवाज होतीहै मुखसे वैसही शब्द निकलना कास रोगका साधारण लक्षण है। कासरोग उत्पन्न होनेसे पहिले मुख और कण्ठनाली जौ आदिके छिकलेसे भरा मालूम होना, गलेके भीतर खुजलाहट और कोई पदार्थ निगलती वक्त कण्ठमें दर्द मालूम होता है। कासरोग पाच प्रकार।—जैसे—वातज, पित्तज, कफज, उर क्षतज और क्षयजात।

वात, पित्त और कफज कास लक्षण।—वातज काससे हृदय, ललाट, पार्श्वद्वय, उदर और मस्तकमे शूलवत् वेदना, मुख सूखना, बलक्षय, सर्व्वदा कास वेग, स्वरभङ्ग और कफादि शून्य शुष्क कास, यही सब लक्षण लक्षित होता है। पित्तज कासमें छातीमें दाह, ज्वर, मुख शोष, मुखका स्वाद कडवा होना, पिपासा, पीतवर्ण और कटुस्वादयुक्त वमन, देहकी पाण्डुवर्णता और कासके वक्त कण्ठमे दाह यह सब लक्षण प्रकाशित होता है। कफज कासमें रोगीका मुख कफसे लिटपा, देह अवसन्न, शिरोवेदना, सर्व्व शरीरमे कफ पूर्णता, आहारमें अनिच्छा, देहका भारीपन, कण्डु, निरन्तर कास वेग और कासके साथ गाढा कफ निकलना, यही सब लक्षण दिखाई देता है।

क्षयज कास निदान और लक्षण।—उर क्षत रोगमें जो सब कारण लिख आये है, क्षयज कासभी उन्ही सब कारणोंसे उत्पन्न होता है। इसमे पहिले कफहीन शुष्क कास होता है, फिर कास वेगमे क्षतस्थान विदीर्ण हो खून जाना, कण्ठमें अत्यन्त दर्द, छाती तोडनेकी तरह दर्द, तीक्ष्ण सूची विद्धवत् कष्ट और असह्य क्लेश, पार्श्व द्वय भङ्गवत् शूलवेदना, सन्धिस्थान

समूहोंमें दर्द, ज्वर, श्वास, तृष्णा, स्वरभङ्ग और खोखनेके समय कबूतरके शब्दकी तरह कण्ठस्वर होना आदि लक्षण प्रकाशित होता है।

क्षयज कासका निदान और लक्षण।—अपथ्य भोजन, विषम अर्थात् किसी दिन कम, किसी दिन अधिक अथवा अनिर्दिष्ट समयमें भोजन, अति मैथुन, मल मूत्रादिकावेग धारण और आहारके अभावसे अपनेको धिक्कार देना वा तज्जन्य शोकाभिभूत होना आदि कारणोंसे पाचकाग्नि दूषित होनेसे वातादि दोषत्रय कुपित हो क्षयज कास उत्पन्न होता है। इससे बदनमें दर्द, दाह, मूर्च्छा, क्रमश देहकी शुष्कता दुर्व्वलता, बलक्षीण मासक्षीण और खासीके साथ पीप रक्तका निकलना आदि लक्षण दिखाई देता है।

प्रतिश्यायज कास।—उक्त कारणोंके सिवाय प्रतिश्याय अर्थात् "सर्दी" से भी अकसर कास रोग उत्पन्न होते देखा गया है। नासारोगाधिकारमें प्रतिश्यायके लक्षण और चिकित्सा लिखेंगे। तथापि यहां इतना अवश्य कहना चाहिये कि सामान्य सर्दी खासीकी भी उपेक्षा न कर उसकी चिकित्सा करना उचित है।

कासरोगकी साध्यासाध्यता।—क्षतज और क्षयज कास स्वभावत ही असाध्य है। पर रोगीका बल, और मास क्षीण न होनेसे तथा रोग थोडे दिनका होतो आराम होनेकी आशा है। बुढापेमें जो कास उत्पन्न होता है वह भी असाध्य है, पर औषधादि व्यवहारसे याप्य होजाता है। दूसरा कोई कास साध्य नहीं है, सुतरा रोग उत्पन्न होते ही चिकित्सामें मनोयोगी होना चाहिये।

चिकित्सा।—वातज कासमें वेलकी छाल, श्योनाककी छाल, गाम्भारी छाल, पाटला छाल और गनियारीको छाल, इन सब द्रव्योंका काढा पीपलका चूर्ण मिलाकर पिलाना। शठी, काकड़ाशिङ्गी, पीपल, वमनेठी मोथा, जवासा और पुराना गुड़, अथवा शोठ, जवासा, काकड़ाशिङ्गी, मुनक्का, शठी और चीनी किम्वा वमनेठी, शठी, काकड़ाशिङ्गी, पीपल, शोंठ और पुराना गुड़, यह तीन प्रकारके योगोंमेंसे कोई एक योग तिलके तेलमें मिलाकर चाटनेमे वातज काम आराम होता है। पित्तज कासमें वृहती, कण्टकारी, किसमिस, अड़ूसा, कपूर, बाला, शोंठ और पीपल इन सबका काढा चीनी और सहत मिलाकर पिलाना। वृहती, बाला, कण्टकारी, अड़ूसा और द्राक्षा, इन सबके काढ़ेमें सहत और चीनी मिलाकर पीनेसेभी पित्तज कास उपशम होता है। पद्मवीजका चूर्ण सहतके साथ चाटनेसे पित्तज कास शान्त होता है। कफज कासमें पीपल, पीपला मूल और चाभ, चितामूल और शोंठ, इसका काढा दूधमें औटाकर पिलाना। इससे कास, श्वास और ज्वरका उपशम हो बल और अग्निकी वृद्धि होती है। कूठ कटफल, वमनेटी शोंठ और पीपल इन सब द्रव्योंका काढा पीनेसे कफज कास, श्वास और हृद्रोग आराम होता है। सहत और आदीका रस चाटनेसे भी कास श्वास और सर्दी खासी आराम होता है। दशमूलके काढ़ेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे भी कफज काम, ज्वर और पार्श्ववेदना दूर होता है। क्षयज कासमें, इक्षु, इक्षुवालिका, पद्मकाष्ठ, मृणाल, नीलकमल, सफेद चन्दन, जेठीमध, द्राक्षा, लाक्षा, काकड़ाशिङ्गी और शतमूली सबका समभाग लेना फिर कोई एक वस्तुका दूना वंशलोचन और सर्व्व समष्टिकी चौगूनी चीनी, यह सब द्रव्य एकत्र मिला घी और

सहतमें मिलाकर चाटना। क्षयज कासमें अर्ज्जुन वृक्षकी छालके चूर्णको अडूसेके रसकी ७ बार भावना दे सहत, घी और मिश्रीके साथ चाटनेसे क्षयज कासका रक्तस्राव बन्द होता है।

शास्त्रीय औषध।—पीपलकी चूर्णके साथ कण्टकारीका काढा पीनेसे अथवा कण्टकारीका चूर्ण और पीपलका चूर्ण समभाग सहतमें मिलाकर चाटनेसे सबप्रकारका कास आराम होता है। बहेडामें घी लगाकर गोबरसे लपेट पूट पाकमें सिजाना फिर वही बहेडा मुखमें रखनेसे कास रोग आराम होताहै। अडूसेका पत्ता पुटमें दग्धकर अर्थात् अडूसेके पत्तेको केलेके पत्तेसे लपेटना फिर कपडमिट्टीकर सिजाना इस पत्तेका रस, पीपल का चूर्ण और सहतके साथ पिलाना। अथवा अडूसेके छालका काढा पीपलका चूर्ण और सहत मिलाकर पिलाना। यह दोनो दवा कास निवारक हैं। जेठीमधका काढा सामान्य खासीमें विशेष उपकारी है। कटफलादि काढा मरिचादि चूर्ण, समशर्कर चूर्ण, वासावलेह, तालीशाद्य मोदक, चन्द्रामृत रस, कासकुठार रस, बृहत् रसेन्द्र-गुडिका, शृङ्गाराभ्र, बृहत् शृङ्गाराभ्र, सार्व्वभौम रस, कासलक्ष्मी-विलास, समशर्कर लौह, वसन्ततिलक रस, बृहत् कण्टकारी घृत, दशमूल षटपलक घृत, चन्दनाद्य तेल, बृहत् चन्दनाद्य तैल कास रोगके प्रशस्त औषध है। अवस्थानुसार उक्त औषध देनेसे अति सुन्दर फल मिलताहै। हमारा "वासकारिष्ट" सेवन करनेसे दुरारोग्य खासी भी थोडेही दिनमें आरामहोता है।

पथ्यापथ्य—रक्तपित्त राजयक्ष्मारोगमें जो सब पथ्यापथ्य लिखा है, कास रोगमें भी वही सब पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये। पर इस रोगकी प्रथम अवस्थामें कवई, मागुर आदि छोटी मछलियोंका गुरुवा, मिशरी और काकमाचीको शाक खानेको देना।

हिक्का और श्वास निदान।

हिक्का और श्वास निदान।—खाया हुआ पदार्थ उपयुक्त समयमें हजम न हो पेटसे स्तब्ध होकर रहे, अथवा जो सब द्रव्य भोजन करनेसे छाती और कण्ठमें जलन पैदा हो वही सब द्रव्य भोजन, गुरुपाक, रूक्ष, कफ जनक और शीतल द्रव्य भोजन, शीतल स्थानमें वास, नासिका आदि रास्तेसे धूम और धूलि प्रवेश, धूप और ओसमें फिरना, छातीमें चोट लगे ऐसी कसरत, अधिक बोझा उठाना, बहुत दूर तक पैदल चलना, मलमूत्रका वेग रोकना, अनशन (उपवास) और रूक्षकारक कार्य्यादिसे हिक्का और श्वास उत्पन्न होता है।

लक्षण और प्रकार भेद।—हिक्का रोगका साधारण लक्षण, प्राण और उदान वायु कुपित हो बार बार ऊपरको तरफ जाता है और इसीसे हिक्हिक् शब्दके साथ वायु निकलता रहता है। यह रोग प्रकाश होनेसे पहिले कण्ठ और छातीमें भारबोध, मुखका स्वाद कसैला और पेटमें गुड गुड शब्द होना आदि लक्षण मालूम होता है। हिक्का रोग पाच प्रकार,—अन्नज, यमल, क्षुद्र, गम्भीर और महा हिक्का। अपरिमित पान भोजनसे सहसा वायु कुपित और ऊर्द्धगामी होनेसे जो हिक्का उत्पन्न होती है, उसका नाम अन्नज हिक्का। मस्तक और गरदन कंपाते हुए दो दो बार निकालती है, उसका नाम यमल। कण्ठ और छातीके सन्धिस्थानसे उत्पन्न हो जो हिक्का मन्दवेग और देरसे निकले उसका नाम क्षुद्र। जो हिक्का नाभिस्थलसे उत्पन्न हो गम्भीर स्वरसे निकले और

तृष्णा, ज्वर आदि नाना प्रकार उपद्रव उपस्थित हो तो, उसको गम्भीर हिक्का कहते है, जो हिक्का निरन्तर आती रहे, तथा आती वक्त मब शरीरमे कम्प हो और जिससे वस्ति, हृदय तथा मस्तक आदि प्रधान मर्मस्थान समूहोका विदीर्ण होना मालूम हो उसको महाहिक्का कहते है।

प्राणनाशक हिक्का।—गम्भीर और महाहिक्का उपस्थित होनेसे रोगीको मृत्यु निश्चय जानना। अन्यान्य हिक्कामे जिसका सब शरीर विस्तृत या आकुञ्चित और दृष्टि उर्ध्वगत हो, अथवा जिस हिक्कासे रोगी क्षीण और हिक्का अत्यन्त आती हो तो मृत्यु होती है, जिस व्यक्तिके वातादि दोष अत्यन्त सञ्चित हो, किम्बा वृद्ध या अतिशय मैथुनासक्त मनुष्यको कोई एक हिक्का उपस्थित होनेसे वह प्राणका नाश करती है। यमल हिक्काके साथ प्रदाह, दाह, तृष्णा और मूर्च्छा आदि उपद्रव रहनेसे वहभी घातक है। किन्तु यदि रोगीका बल क्षीण न होकर मन प्रसन्न रहे, धातु समूह स्थिर और इन्द्रियोमें शक्ति भरपूर हो तो इस अवस्थामें भी आराम होनेकी आशा कर सकते है।

श्वासरोगका पूर्व्वलक्षण।—पूर्व्वोक्तकारणोसे कुपित वायु और कफ मिलकर जब प्राण और उदान वायुवाही स्रोत समूहोको बन्द करताहै और कफ कर्त्तृक वायु अवरुद्ध और विमार्गगामी हो इधर उधर फिरता है, तब श्वासरोग उत्पन्न होता है। श्वासरोग प्रकाशित होनेसे पहिले छातीमें दर्द, पेट फूलना, शूल, मल मूत्र थोडा निकलना या रोध, मुख वेस्वाद होना, और मस्तक या ललाटमे दर्द आदि पूर्व्वरूप दिखाई देता है। श्वास रोग पाच प्रकार, क्षुद्रश्वास, तमक श्वास, प्रमतक श्वास, छिन्न श्वास, ऊर्द्ध-श्वास और महाश्वास।

क्षुद्रश्वास।—रूक्षद्रव्य सेवन और अधिक परिश्रमसे कोष्ठस्थित वायु कुपित हो ऊर्द्धगत होनेसे क्षुद्र श्वास उत्पन्न होता है। यह अन्यान्य श्वासको तरह कष्टदायक या प्राण नाशक नहो है।

तमक और प्रमतक श्वास लक्षण।—जब वायु ऊर्द्धगत स्रोत समूहोंमें जाकर कफको बढाता है तथा उसी कफको गति बद्ध होनेसे तमक श्वास उत्पन्न होता है। इस श्वासके पहिले ग्रीवा और मस्तकमें दर्द होता है, फिर कण्ठसे घर घर शब्द निकलना, चारो तरफ अन्धियाला देखता, तृष्णा, आलस्य, खासते खासते मूर्च्छा, कफ निकलनेसे थोडा आराम मालूम होना, गलेमें सुरसुराहट, कष्टसे बोलना, नींद न आना, सोनेसे अधिक श्वास आना, बैठनेसे थोडा आराम बोध, दोनो पसुलियोंमें दर्द, उष्णद्रव्य और उष्ण स्पर्शकी इच्छा, दोनो आखोंमें शोथ, ललाटमें पसोना, अत्यन्त कष्ट, मुह रूखा, बार बार तीव्र वेगसे दम फूलना और शरोर हिलना, यह सब लक्षण प्रकाशित होता है। इस श्वासके साथ ज्वर और मूर्च्छा रहनेसे उसको प्रमतक श्वास कहते है। प्रमतक श्वासको कोई सन्तमक श्वास भो कहते है।

छिन्न श्वास।—अति कष्ट और अत्यन्त जोरसे विच्छिन्न भाव अर्थात् ठहर ठहर कर दम फूलना अथवा जिस श्वाससे एक दम निश्वास बन्द हो जाताहै उसको छिन्न श्वास कहते है। इस श्वासमे अत्यन्त कष्ट, हृदय विदोर्ण होनेको तरह दर्द, आनाह, पसोना आना, मूर्च्छा, वस्तिमें दाह, नेत्रद्वयको चञ्चलता और पानो जाना, अङ्गको कृशता और विवर्णता, एक आख लाल होना, चित्तमें उद्वेग, मुख शोष और प्रलाप, यह सब लक्षण उपस्थित होता है।

ऊर्द्ध्वश्वास लक्षण।—ऊर्द्ध्वश्वासमें रोगी जैसे जोरसे श्वास लेता है वैसे वेगसे श्वास निकाल नहो सकता। रोगीका मुख और स्रोत समूह कफसे आवृत रहनेसे वायु कुपित हो विशेष कष्ट होता है, तथा इसो श्वासमें ऊर्द्ध्वदृष्टि, विभ्रान्त चक्षु, मूर्च्छा, अङ्गवेदना, मुखका सफेद होना, चित्तकी विकलता आदि उपद्रव उपस्थित होता है।

महाश्वास लक्षण।—मत्त वृषको अटका रखनेसे जैसा वह शब्दता और चिल्लता है, महाश्वास रोगमें वायु ऊर्द्धगत होनेसे वस हो शब्दके साथ दीर्घश्वास निकलता है। दूरसे भी श्वासका शब्द सुनाई देता है, तथा इस रोगमें रोगी अत्यन्त क्लिष्ट और उसका जो ठिकाने नही रहता। दोनो आंखे चञ्चल, विस्तृत, मुख विकृत, मल मूत्र रोध, बोल्तो धोमो और मन क्लान्त रहता है।

सांघातिकता।—इस पाच प्रकारके श्वासमें छिन्न, ऊर्द्ध और महाश्वास स्वभावत ही घातक है। इसमें से कोई एक उत्पन्न होनेसे मृत्यु होती है, तमक श्वासको प्रथम अवस्थामें चिकित्सा होनेसे आराम होता है किम्वा चिकित्सासे एक दम आराम न हो तो याप्य रहता है। छिन्न, ऊर्द्ध और महाश्वासके प्रथम अवस्थाहोसे चिकित्सा करना चाहिये, रोगीके भाग्यसें यहभी आराम होते देखा गया है।

चिकित्सा।—वायुका अनुलोमक या वायु नाशक तथा उष्णवीर्य्य कोई क्रिया हिक्का और श्वास रोगमें उपकारी है। हिक्का रोगमें पेटमें और श्वास रोगमें हृदयमें तेल मर्द्दन कर स्वेद देनेसे और वमन करानेसे उपकार होता है। किन्तु रोगीका बल आदि चोण होनेसे वमन कराना उचित नहो है। अकवनके जडका

चूर्ण दो आनेभर मात्रा पानीके साथ सेवन करानेसे वमन होता है।

हिक्का चिकित्सा।—हिक्का रोगमें बेरके गुठलीकी गूदो, सौवीराञ्जन और धानका लावा अथवा कुटकी और स्वर्णगेरू, किम्वा पीपल, आवला, चोनी और शोंठ, अथवा हीराकस और कैथकी गूदो, किम्वा पटलाका फूल, फल और खजूरका गूदो, इन ६ योगोंमे से कोई एक सहतके साथ सेवन करना। जेठीमधका चूर्ण, सहतके साथ, पीपल चूर्ण चोनीके साथ, किम्वा शोंठका चूर्ण गुडके साथ मिलाकर नास लेना। मक्खीका बीट स्तनदूधके साथ अथवा महावरके पानीमें मिलाकर अथवा स्तनदूध में लाल चन्दन घिसकर नास लेना। शोंठ २ तोले बकरीका दूध १ पाव और पानी एक सेर एक साथ औटाना दूध रहने पर छानकर पीना। बडा नीबूका रस, सहत और सौचल या सेंधा नमक मिला पीना। मृगाभस्म, शङ्खभस्म, हरीतकी, आवला, बहेडा और गेरूमिट्टीका चूर्ण, घी और सहतमें मिलाकर चाटना। बडी इलायचीका चूर्ण और चीनी एकत्र मिला सेवन करना। केलेके जडके रसमें चीनी मिला पीना अथवा नास लेना। पीसी हुइ राई पानीमें मिला रख छोडना फिर पानी उपर और राई नीचे बैठ जानेपर वही पानी बार बार पिलाना। चीनी और गोलमिरचका चूर्ण सहतके साथ चाटना। हींग उरदका चूर्ण और गोलमिरचका चूर्ण सहतके साथ चाटना। हींग उरदका चूर्ण और गोलमिरचका चूर्ण निर्धूम कोयलेकी आंचपर रख धूम नाकसे खींचना।

श्वासवेग शान्तिका उपाय।—श्वास रोगमें कनक धतुरेका फल, डाल और पत्ता टूकडा २ कर सुखा लेना, फिर चिलममें रख धूम पीनेसे प्रवल श्वास (दमा) आराम होता है। थोडा

सोरा पानीमें भिगोना, तथा उसी पानीमें सफेद कपड़ेका एक टुकड़ा भिगोकर सूखा लेना, फिर उसी टुकड़ेको लपेट कर चुरूटकी तरह पीना, अथवा देवदारु, बरियारा और जटामासी समभाग पीसकर एक सछिद्र वत्ती बनाना ; सूख जाने पर उसमें घी लगा चुरूटकी तरह पीना, यह दो प्रकार के धूम पानसे श्वास-का वेग जल्दी शान्त होता है। मोरका पङ्ख बन्द बरतनमें भस्मकर उसमें पीपलका चूर्ण और महत मिलाकर चटानेसे श्वासवेग और प्रवल हिक्का रोग आराम होता है। हरीतकी और सोंठ किम्वा गुड़, जवाक्षार और गोलमिरच एकत्र पीसकर गरम पानीके साथ पीनेसे श्वास और हिक्का रोग आराम होता है। श्वासका वेग शान्त होनेपर रोग नाश करनेके लिये, हलदी, गोलमिरच, किसमिस, पुराना गुड़, रास्ना, पीपल और शठीका चूर्ण सरसोंके तेलके साथ मिलाकर चाटना। पुराना गुड़ और सरसोंका तेल समभाग मिलाकर पीना। पुराना सफेद कोहड़े की गूदीका चूर्ण आधा तोला थोड़े गरम पानीमें मिलाकर पीनेसे कास श्वास दोनो आराम होता है। आदीके रसमें पीपल चूर्ण ≁) आनेभर, सेंधा नमक ≁) आनेभर मिलाकर पीना। शोधित गन्धक चूर्ण घीके साथ, अथवा शोधित गन्धक चूर्ण और गोलमिरचका चूर्ण घीके साथ सेवन करना। बेल पत्तेका रस, अडूसेके पत्तेका रस, सरसोंके तेलके साथ पीना। गुरिच, सोंठ, वमनेठी, कण्टकारि और तुलसी इन सबका काढ़ा पीपलका चूर्ण मिलाकर पीना। दशमूलके काढ़ेमें कूठका चूर्ण मिलाकर पीनेसे श्वास, कास, पार्श्वशूल और छातीका दर्द आराम होता है।

शास्त्रीय औषध और हमारा श्वासारिष्ट।— उक्त साधारण औषधसे पीड़ाका उपशम न हो तो भार्गी गुड़,

भार्गी शर्करा, शृङ्गो गुड़ घृत, पिप्पलाद्य लौह, महाश्वासारि लौह, श्वासकुठार रस, श्वासभैरव रस, श्वासचिन्तामणि, हिंस्राद्य घृत, वृहत् चन्दनादि तैल और कनकासव; यह सब औषध अवस्था विचार कर प्रयोग करना। हमारा "श्वासारिष्ट" सब प्रकारके श्वास रोगकी उत्कृष्ट औषध है, इसके पीतेही श्वासका वेग कम हो क्रमश रोग निर्मूल आराम होता है।

पथ्यापथ्य।—जिस प्रकारके आहार विहारादिसे वायुका अनुलोम हो, हिक्का और श्वास रोगमें वही साधारण पथ्य है। रक्तपित्त रोगमें जो सब आहारीय द्रव्योंका नाम लिख आये है, इसमे भी वही सब पानाहार व्यवहार करना। वायुका उपद्रव अधिक हो तो, पुरानो इमली भिगोया पानी पीनेसे उपकार होता है। मिश्रीके शरवतमें नीबूका रस मिलाकर पीना और नदी या प्रशस्त तालावमे स्नान इस अवस्थामे हितकारक है। पर कफकी आधिक्यमे शर्व्वत पीना या स्नान करना मना है। कफज श्वासमे मुहमें सुरती रख थोडा थोडा रस पीनेसे वहुत उपकार होता है। रातको लघु आहार करना चाहिये।

निषिद्ध द्रव्य।—गुरुपाक, रुक्ष और तीक्ष्णवीर्य्य द्रव्य, दही, मछली और मिर्चा आदि द्रव्य भोजन, रात्रि जागरण, अधिक परिश्रम, अग्नि या रौद्र सन्ताप, अधिक परिमाण भोजन, दुश्चिन्ता, शोक, क्रोध प्रभृति मनोविकार इस रोगमें सर्व्वदा परित्याग करना चाहिये।

स्वरभेद।

निदान।—बहुत जोरसे बोलना, विषपान और कण्ठमें चोट लगना आदि कारणोंसे वातादि दोषत्रय स्वर वहा नाडियोंका आश्रय लेनेसे स्वरभेद या स्वरभङ्ग रोग उत्पन्न होता है। यक्ष्मासे भी यह रोग उत्पन्न होता है। स्वरभङ्ग ६ प्रकार, वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, मेदोज और क्षयज।

वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज लक्षण।—वातज स्वरभेदसे गदहेके स्वरकी तरह कण्ठस्वर और मल, मूत्र, चक्षु और मुख कृष्णवर्ण होता है। पित्तज स्वरभेदमें कण्ठ सर्वदा कफसे भरा रहनेके कारण शब्द बहुत धीमा निकलता है, और रातकी अपेक्षा दिनको शब्द कुछ साफ मालूम होता है। सन्निपातज स्वरभेदमें उक्त तीन दोषजात स्वरभङ्गके लक्षण समूह मिले हुये मालूम होता है। मेदोज स्वरभेदमें गला कफ या मेदसे लिप्त रहता है, इससे कण्ठस्वर साफ नही निकलता तथा इस रोगमें रोगीको प्यास बहुत लगती है। क्षयज स्वरभेदमें स्वर बहुत क्षीण और शब्द धूमके साथ निकलना रोगीको मालूम होता है अर्थात् वैसीही तकलीफ होती है। क्षयज और सन्निपातज स्वरभेद स्वभावत दुःसाध्य है। दुर्बल, कृश और वृद्ध व्यक्तिका स्वरभेद, पुराना स्वरभेद, आजन्म जात स्वरभेद, अति स्थूल व्यक्तिका स्वरभेद और सम्पूर्ण लक्षणयुक्त सन्निपातज स्वरभेद असाध्य है। क्षयज स्वरभेदमें एक दम शब्द उच्चारण बन्द हो जानेसे रोगीको मृत्यु होती है।

चिकित्सा ।—स्वरभङ्ग रोगमें तैल मिला खैर अथवा हरीतकी और पीपलका चूर्ण, किम्वा हरीतकी और सोंठका चूर्ण मुखमें रखनेमें विशेष उपकार होता है। अजमोदा, हलदी, आंवला, यवक्षार और चाभकी जड सबका समभाग चूर्ण घी और सहतके साथ चाटनेसे स्वरभेद आराम होता है। बैरका पत्ता पीस घीमें भूजकर खानेसे स्वरभेद और कासरोग उपशम होता है। मृगनाभ्यादि अवलेह, चव्यादि चूर्ण, निदिग्धिकादि अवलेह, व्याघ्र-काव्र, सारस्वत घृत और भृङ्गराजाद्य घृत स्वरभेद रोगका प्रशस्त औषध है। उक्त औषधोंके सिवाय कास और श्वास रोगके कई औषध भी विचारकर इसमें दे सकते है।

पथ्यापथ्य ।—वातज स्वरभेदमें घृत और पुराने गुडके साथ अन्न भोजन कर थोडा गरम पानी पीना, पित्तज स्वरभेदमें दुग्धान्न भोजन और मेदोज तथा कफज स्वरभङ्गमें रुक्ष अन्न पान उपकारी है। अन्यान्य पथ्यापथ्यके नियम कास और श्वास रोगकी तरह प्रतिपालन करना आवश्यक है।

अरोचक (अरुचि)।

संज्ञा, निदान और प्रकारभेद ।—भूख रहते जिस रोगमें खाया नही जाता और कोई वस्तु जिसमें खानेको जी नही चाहता, उसको अरोचक रोग कहते है। यह रोग पाच

प्रकारका है, वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और आगन्तुक। भय, शोक, अति क्रोध, अति लोभ, घृणाजनक भोज्य द्रव्य, घृणा जनक रूपदर्शण या घृणाजनक गन्ध आघ्राण आदि कारणोंसे जो अरोचक रोग उत्पन्न होता है, उसको आगन्तुक अरोचक कहते है।

भिन्न दोषज लक्षण।—वातज अरोचक रोगीके मुखका स्वाद कसैला और दांत खट्टा खायेकी तरह और छातीमें दर्द होता है। पित्तज अरोचकके मुखका स्वाद तिक्त, अम्ल, बेस्वाद, दुर्गन्धयुक्त, उष्ण स्पर्श और तृष्णा, दाह, तथा चूसनेकी तरह पीडा होती है। कफज अरोचकसे मुखका स्वाद मधुर या लवण रस, चटचटा, शीतल और कफलिप्त तथा कफ निकलता रहता है। सन्निपातज अरोचकमें वही सब लक्षण मिले हुये मालूम होता है, अर्थात् मुखका स्वाद बदलता रहता है। आगन्तुक अरोचकमे मुखका स्वाद बदलता नही तथापि अरुचि रहती है, इसमें चित्तकी व्याकुलता, मोह और जडता आदि लक्षण प्रकाशित होता है।

चिकित्सा।—वातज अरोचकमें वस्तिकर्म्म (पिचकारी) पित्तजमें विरेचन, कफजमें वमन और आगन्तुक अरोचकमें मनको प्रसन्न रखना ही साधारण चिकित्सा है। दिनको भोजनके पहिले नमक और आदी खानेसे सब प्रकार अरुचि आराम हो अग्निको दीप्ति और कण्ठ शुद्ध होता है। कूठ, सौचल नमक, जीरा, चीनी, गोलमिर्च और काला नमक, अथवा आवला, बडी लायची, पद्मकाष्ठ, खस, पीपल, चन्दन और नीलाकमल, किम्वा लोध, चाभ, हरीतकी, सोंठ, पीपल, गोलमिर्च और जवा-खार, अथवा नरम अनारके पत्तेका रस जीरा और चीनी, इन

चार योगोंमें से कोई एकका चूर्ण सहत और तेलमें मिलाकर मुख-में रखनेसे सब प्रकारका अरोचक रोग आराम होता है। अथवा कालाजीरा, जीरा, गोलमिरच, मुनक्का, इमली, अनार, सौंचल नमक, गुड और सहत एकत्र मिलाकर मुहमें धारण करना। दालचीनी, मोथा, बडी इलायची और धनिया, अथवा मोथा आवला और दालचीनी, किम्वा दारुहलदी और अजवाईन, अथवा पीपल और चाभ, किम्वा अजवाईन और इमली, इन पांच प्रकारके योगको मुखमें रखना। पुरानी इमली और गुड पानीमें घोलकर दालचीनी, बडी इलायची और गोलमिरचका चूर्ण मिलाकर कुल्ला करनेसे अरोचक रोग आराम होता है, अथवा काला नमक और सहत अनारके रसमें मिलाकर कुल्ला करना। राई, जीरा और हीग भूनकर चूर्ण करना फिर उसके साथ सोंठका चूर्ण और सेंधा नमक मिलाना, सबके समान गायकी दही मिला-कर खूब फेटकर छान लेना तथा सबका समभाग मट्ठा मिलाकर पीना। यह रुचिकर और अग्नि वर्द्धक है। अनारका चूर्ण २ तोले, खांड २ तोले और दालचीनी, इलायची और तेजपत्ताका चूर्ण १ तोला, सब द्रव्य एकत्र मिलाकर उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे अरुचिका नाश, अग्निकी दीप्ति और ज्वर, कास, पीनस रोग शान्त होता है। इसके सिवाय यवानीषाडव, कलहंस, तिन्तिडी पानक, रसाला और सुलोचनाभ्र नामक औषध अरोचक रोगमें देना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—जो सब आहार रोगीका अभिलषित तथा लघुपाक और वातादि दोषत्रयमें उपकारी है, वही सब आहार अरोचक रोगीको देना। आहार करते करते बीच बीचमें ३।४ बार पूर्व्वोक्त कुल्ला करना चाहिये। ज्वरादि कोई उपसर्ग न रहनेसे

बहतो नदी या प्रशस्त तलावमें स्नान करना। उपवन या वैसही सुन्दर स्थानमें घूमना सङ्गीतादि सुनना आदि जिस कामसे मन प्रसन्न रहे वही सब काम करना हितकारी है। खानेको चोज, भोजनका स्थान, पात्रादि, पाचक, परिवेशक आदि सब साफ सुथरा रहनाभी इस रोगमें विशेष आवश्यक है।

निषिद्ध कर्म्म।—जिस कारणसे मन विकृत हो और जो सब आहार मनका विघात कारक है, उसका त्याग करना चाहिये।

छर्द्दि अर्थात् वमन।

वमन लक्षण और प्रकारभेद।—अतिरिक्त तरल वस्तु पान, स्निग्ध द्रव्य अतिरिक्त भोजन, घृणाजनक वस्तु भोजन, अधिक लवण भक्षण, असमयमें भोजन, अपरिमित भोजन और भ्रम, भय, उद्वेग, अजीर्ण, क्रिमिदोष, गर्भावस्था और कोई घृणाजनक कारण समूहोंसे वायु, पित्त और कफ कुपित हो वमन रोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें दो वेग उपस्थित होनेसे मुखको जडता और आच्छादित तथा सर्व्वाङ्गमें भङ्गवत् पोडा होती है वमन रोग पाच प्रकार,—वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज और आगन्तुक। वमन होनेसे पहिले जोमचलाना, उद्गार रोध, मुखसे लवणाक्त पतला जलस्राव और पान भोजनको अनिच्छा, यही सब लक्षण लक्षित होता है।

वातज लक्षण।—वातज वमन रोगमें हृदय और पार्श्व-

में दर्द, मुखशोष, मस्तक और नाभिमें सूई गड़ानेकी तरह दर्द कास, स्वरभेद, अङ्गमें सूचीविद्धवत् वेदना, प्रबल उद्गार और फेनीला, पिच्छिल, पतला, कसैला और तेज वमन होना, यही सब लक्षण प्रकाशित होता है।

पित्तज लक्षण।—पित्तज वमन रोगमें मूर्च्छा, पिपासा, मुखशोष, मस्तक, तालु, और चक्षुद्वयमें सन्ताप, अन्धकार दर्शन और पीला, हरा या धूम्रवर्ण, थोड़ा कड़ुआ, अति उष्ण पदार्थ वमन और वमनके समय कण्ठमें जलन, यही स लक्षण दिखाई देता है।

कफज लक्षण।—कफज वमन रोगमें तन्द्रा, मुखका स्वाद मीठा, कफस्राव, भोजनकी अनिच्छा, निद्रा, अरुचि, देहका भारीपन और स्निग्ध, घना, मधुर रसयुक्त सफेद वमन, वमनके साथ शरीर रोमाञ्च और अतिशय कष्ट होता है।

सन्निपातज लक्षण।—सन्निपातज वमन रोगमें शूल, अजीर्ण, अरुचि, दाह, पिपासा, श्वास, मूर्च्छा और स्वेद लवण रसयुक्त, उष्ण, नील या लाल रङ्गका घना पदार्थ वमन होना आदि लक्षण प्रकाशित होता है।

आगन्तुक वमन।—कुत्सित द्रव्य भोजन, किसी प्रकारके घृणाजनक वस्तु सूंघने या देखनेसे जो वमन होता है तथा गर्भावस्था, क्रिमिरोग और खट्टा खानेसे जो वमन होता है उसको आगन्तुक वमन कहते हैं। इस वमन रोगके वातादि दोष त्रयमें जिस दोषका लक्षण अधिक प्रकाशित हो उसी दोषके वमन रोगमें उसको मिलाना चाहिये। केवल क्रिमिके वमन रोगमें अत्यन्त वेदना, अधिक वमन वेग और क्रिमिसे हृद्रोगके कई लक्षण अधिक प्रकाशित होता है।

रोगका उपद्रव और साध्यासाध्यता।—वमन रोगमें यदि कुपित वायु, मल, मूत्र और जलवाही स्रोत समूहोंको बन्दकर ऊर्द्धगत हो और उससे यदि रोगीके पेटका पूर्व सञ्चित पित्त, कफ या वायु दूषित स्वेदादि वमन हुआ करे, और वस्तिमें मल मूत्र को तरह गन्ध हो तथा रोगी तृष्णा, श्वास और हिकासे पीडित हो तो उसको मृत्यु जानना। जिस वमन रोगमें रोगी क्षीण हो जाय और सर्व्वदा रक्तपित्त मिला पदार्थ वमन करे, अथवा वान्त पदार्थमें यदि मयूर पुच्छको तरह आभा दिखाई दे, किम्वा वमन रोगके साथ ही यदि कास, श्वास, ज्वर, हिक्का, तृष्णा, भ्रम, हृद्रोग और तमक श्वास यह सब उपद्रव उपस्थित होनेसे भी रोग असाध्य होता है।

चिकित्सा।—कच्चे नारियलका पानी, फरुहो या जली रोटी भिगोया पानी और बरफका पानी वमन निवारणके हकमें उत्कृष्ट औषध है। बडीलायचीका काढा पीनेसे भी वमन रोग आराम होता है। रातको गुरिच भिंगो रखना, सबेरे वही पानी थोडा सहत मिलाकर पीनेसे भी वमन आराम होता है। पीपल वृक्षको सूखी छाल जलाकर किसी पात्रमें पानीमें डुबा रखना, फिर वही पानी पीनेसे अति दुर्निवार वमन भी आराम होता है। खेतपापडा, बेलकी जड, या गुरिचका काढा सहतके साथ अथवा मूर्व्वाकी जडका काढा चावलके धोवनके साथ पीनेसे सब प्रकारका वमन दूर होता है। जेठीमध और लाल चन्दन दूधमें पीसकर पीनेसे रक्त वमन आराम होता है। सहतके साथ हरीतकी चूर्ण चाटनेसे दस्त हो वमन आराम होते देखा गया है। आवलेका रस १ तोला और कैथका रस १ तोला, थोडा पीपलका चूर्ण और गोलमिरचका चूर्ण सहतमें मिलाकर चाटनेसे प्रबल वमन

भी आराम होता है। सौंचल नमक चीनी और गोलमिरचका चूर्ण समभाग सहतके साथ चाटनेसे वमन रोग आराम होता है। समभाग दूध और पानी, किम्बा सेंधा नमक और घी एकत्र पान करनेसे वातज वमनमें विशेष उपकार होता है। जामुनकी गुठली और बैरके गुठलीकी गूदी अथवा मोथा और काकडाशिङ्गी, सहतके साथ चाटनेसे कफज वमन आराम होता है। तैलचट्टेका बीट ३।४ दाना थोड़े पानीमें भिगोकर पीनेसे अति दुर्निवार वमन भी आराम होता है। एलादि चूर्ण, रसेन्द्र, वृषध्वज रस और पद्मकाद्य घृत वमन रोगका उत्कृष्ट औषध है।

पथ्यापथ्य।—सब प्रकारके वमन रोगमें आमाशयका उत्क्लेश रहता है, इससे पहिले उपवास करना ही उचित है। वेग शान्त होनेपर लघुपाक, वायु अनुलोमक और रुचिकर आहारादि क्रमश देना चाहिये, वमन वेग रहते आहार देनेको आवश्यकता हो तो भूजे मूगके साथ धानके लावाका चूर्ण, सहत और चीनी मिलाकर खानेको देना, इससे वमन, भेद, ज्वर, दाह और पिपासा की शान्ति होती है। वमन वेग शान्त होनेपर सब वस्तु आहार और ज्वरादि उपसर्ग न रहनेसे अभ्यासके अनुसार स्नान कर सकते है। साफ पानाहार, साफ स्थानमें वास, सुगन्ध सूंघना और मनको प्रसन्न रखना इस रोगमें विशेष उपकारी है।

जिस कारणसे घृणा उत्पन्न हो, वही सब कारण और रौद्रादि आतप सेवन प्रभृति वमन रोगमें विशेष अनिष्टकारक है।

तृष्णारोग।

—*—

निदान।—भय, श्रम बलादि क्षयसे वायु कुपित होता है, तथा यही सब कारणोंसे वायु, कटु या अम्लरस भोजन, क्रोध और उपवास आदि कारणोंसे पित्त प्रकुपित हो तृष्णा रोग उत्पन्न होता है। जलवाही स्रोत समूह वायु प्रभृति दोषत्रयसे कुपित होनेपर भी तृष्णा रोग उत्पन्न होता है। इस रोगके उत्पन्न होनेसे पहिले तालु, कण्ठ, ओष्ठ और मुख सूखना, दाह, प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम और सन्ताप, यह सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है। तृष्णा रोग सात प्रकार,—*वातज, पित्तज, कफज, क्षतज, क्षयज, आमज और अन्नज।*

भिन्न २ दोषज रोग लक्षण।—वातज तृष्णा रोगमें मुह सुखा और म्लान, ललाट और मस्तकमें सूची विद्धवत् वेदना, रस और जलवाही स्रोत समूहोका रोध और स्वादका विगडना यही सब लक्षण लक्षित होता है। पित्तज तृष्णामें मूर्च्छा, आहारमें अनिच्छा, प्रलाप, दाह, दोनो आंखे लाल, अत्यन्त प्यास, शीतल द्रव्यपर इच्छा मुखका स्वाद कडवा और अनुताप, यही सब लक्षण प्रकाशित होता है। कफज तृष्णामे अधिक निद्रा, मुखका स्वाद मीठा और शरीर शुष्क आदि लक्षण दिखाई देता है। शस्त्रादिसे शरीर क्षत हो अधिक रक्तस्राव होनेसे या क्षतज वेदनामे जो तृष्णा होती है उसको क्षतज तृष्णा कहते है। रसक्षयमे जो तृष्णा उत्पन्न होती है उसको क्षयज तृष्णा कहते है। इस तृष्णामे रोगी बार बार पानी पीने परभी तृप्त नही

होता। तथा छातीमें दर्द, कम्प और मनकी शून्यता आदि लक्षण प्रकाशित होता है। आमज तृष्णामें छातीमें शूल, निष्ठीवन, शारीरिक अवसन्नता और तीन दोषजात तृष्णाके भी लक्षण समूह प्रकाशित होता है। घृत, तैल प्रभृति अधिक चिकना पदार्थ, अम्ल, लवण और कटु रस तथा गुरुपाक अन्न भोजन करनेसे जो जो तृष्णा उत्पन्न होती है उसको अन्नज तृष्णा कहते हैं। दुसरे कोई रोगके उपसर्गसे तृष्णा होनेसे उसको उपसर्गज तृष्णा कहते है। यह वातादि दोषजात तृष्णाके अन्तर्गत है इससे इसको अलग नही किया गया। इसमें स्वरको चोणता, मूर्च्छा, क्लान्ति और मुख कण्ठ, तालु बार बार सूखता है, इससे शरीर बहुत सूख जाता है और यह अति कष्टसाध्य है।

सांघातिक लक्षण।—ज्वर, मूर्च्छा, क्षय, कास, श्वास आदि रोगीसे पीडित मनुष्यको कोई एक तृष्णा रोग प्रबल होनेसे और साथही वमन और मुख शोष आदि उपद्रवयुक्त होनेसे रोगीकी मृत्यु होती है।

चिकित्सा।—वायुकी तृष्णारोगमें गुरिचका रस उपकारी है, पित्तज तृष्णामें गुलरके पका फलका रस या काढा सेवन उपकारी है। गाम्भारी फल, चीनी, लाल चन्दन, खस, पद्मकाठ, द्राक्षा और जेठीमध, यह सब द्रव्य मिला २ तोले, आधा पाव गरम पानीमें पहिले दिन शामको भिगोकर दूसरे दिन सबेरे छानकर पीना पित्तज तृष्णामें यह उपकारी है। तथा यह सब द्रव्य पीसकर पीनेसे भी फायदा होता है। मोथा, खेतपापडा, बाला, धनिया, खस और लाल चन्दन प्रत्येक साढे पाच आनेभर एकत्र मिला २ सेर पानीमें औटाना एक सेर पानी रहते छानकर थोडा थोडा पीनेसे तृष्णा, दाह और ज्वर आराम होता है।

बेलकी छाल, अरहरका पत्ता, धवईफूल, पीपला मूल, चाभ, चितामूल, शोंठ और कुशमूल, यह सब द्रव्य २ तोले २ सेर पानीमें औटाना एक सेर रहते छानकर थोडा थोडा पीनेसे कफज तृष्णा शान्त होती है। नीमकी छाल या पत्ता अथवा फलका काढा गरम पीकर के करनेसेभी कफज तृष्णा शान्त होती है। आम जन्य तृष्णा रोगमें पीपल, पीपला मूल, चाभ, चितामूल, शोंठ, अम्लवेतस, गोलमिरच, अजवाईन, भेलावेके गुठली प्रभृति अग्नि-दीपनीय द्रव्यका काढा बनाकर बेलकी गूदी, बच और हींगका चूर्ण मिलाकर पीना। क्षतज तृष्णामें मांस रस और रक्त पान विशेष उपकारी है। क्षयज तृष्णामें दूध और मधु मिला पानी और मांस रस हितकारी है। अन्नज तृष्णामें वमन कराना ही प्रशस्त चिकित्सा है। आंवला, पद्ममूल, कूठ, धानका लावा और बडकोसीर इन सबका समभाग चूर्ण सहतमें मिला मुहमें रखनेसे सब प्रकारकी तृष्णा और मुखशोष आराम होता है। आम और जामुनके पत्तेका किम्वा आम जामुनके छालका काढा अथवा आम जामुनके गुटलीकी गूदी औटाकर सहत मिलाकर पीनेसे वमन और तृष्णा आराम होता है। धनियाका काढा बासीकर पीनेसे तृष्णा आराम होते देखा गया है। बडकोसीर, चीनी, लोध, अनार, जेठीमध और सहत, अथवा चावलके धोवनके साथ सेवन करनेसे तृष्णा आराम होती है। द्राक्षारस, इक्षुरस, दूध, जेठीमध-का काढा सहत या सुटी फूलका रस नाकसे पान करनेसे प्रबल पिपासा शान्त होती है। बडे नीबूका जीरा, सहत और अनार एकत्र पीसकर कुल्ला करनेसे सब प्रकारकी तृष्णा आराम होती है। तालु शोष रोगमें दूध, इक्षुरस, गुड या कोई मस्त द्रव्य पानीमें घोलकर कुल्ला करना। कुमुदेश्वर रस सब प्रकारके तृष्णा रोगका अति उत्कृष्ट औषध है।

पथ्यापथ्य।—रुचिजनक, मधुर रस विशिष्ट और शीतल द्रव्य तृष्णा रोगमें सुपथ्य है। उग्रवीर्य्य और शारीरिक उद्वेग कारक, तृष्णा रोगमें यही सब पानाहारादि सर्व्वदा परित्याग करना चाहिये।

—०—

मूर्च्छा, भ्रम और सन्न्यास।

निदान।—विरुद्ध द्रव्य पान, भोजन, मल मूत्रादि वेग धारण, अस्त्र शस्त्रादिसे शरीरमें आघात प्राप्ति और सत्वगुणकी अल्पता आदि कारणोंसे वातादि उग्रदोषत्रय मनोधिष्ठान अथवा शिराधिष्ठान स्रोत समूहोंमें प्रविष्ट होनेसे मूर्च्छारोग उत्पन्न होता है। अथवा शिरा, धमनी आदि जिस नाडीके अवलम्बनसे मन इन्द्रिय समूहोंमें जाता आता है, वही नाडी वातादि दोषोंसे आच्छादित होनेपर, तमोगुण वर्द्धित हो मूर्च्छा रोग उत्पन्न होता है। सुख दुःखादि अनुभव शक्तिहीन हो, काष्ठादिके तरह बेहोश हो जमीनपर गिर पडनाही इस रोगका साधारण लक्षण है। मूर्च्छा उपस्थित होनेसे पहिले हृदयमें पीडा, जृम्हा, ग्लानि और ज्ञानकी कमी यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है। मूर्च्छा रोग, सात प्रकार, वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, रक्तज, मद्यज और विषज। भिन्न भिन्न मूर्च्छामें पृथक पृथक दोषका आधिक्य रहनेपर भी मूर्च्छा रोग मात्रमें पित्तका आधिक्य रहता है, कारण पित्त और तमोगुण ही मूर्च्छा रोगका आरम्भक है।

भिन्न भिन्न दोषभेदके लक्षण।—वातज मूर्च्छामें रोगी, नील, कृष्ण अथवा अरुणवर्ण आकाश देखते देखते मूर्च्छित होता है और थोड़ेही देरमें होशमें आता है, तथा कम्प, अङ्गमें दर्द, हृदयमें पीड़ा, शारीरिक कृशता और देहका वर्ण श्याम या अरुण वर्ण होता है। पित्तज मूर्च्छामें रोगी लाल, पीला, अथवा हरित् वर्ण आकाश देखते देखते मूर्च्छित होता है। होश आनेपर पसीना, पिपासा, सन्ताप, दोनो आखे लाल या पीतवर्ण, मलभेद और देह पीला होता है। कफज मूर्च्छामें रोगी साफ आकाशमें मेघकी आभा, मेघाच्छन्न या अन्धकारयुक्त देखते देखते मूर्च्छित होता है और देरसे होशमें आता है। होश आनेपर सर्व्वाङ्ग गीले चमड़ेसे आच्छादितकी तरह भारी, मुखसे स्राव और जीमचलाता है। सन्निपातज मूर्च्छामें वातादि त्रिविध मूर्च्छाके लक्षण समूह मिले हुये मालूम होते है और अपस्मार रोगकी तरह प्रबल वेगसे पतित हो देरसे होशमें आता है, पर अपस्मारकी तरह फेन वमन, दाती लगना और नेत्रविकृति आदि भयानक अङ्गविकृति समूह इसमें प्रकाशित नही होता। रक्तज मूर्च्छामें अङ्ग और दृष्टिस्तब्ध तथा श्वास बहुत कम चलती है। मद्यपान जनित मूर्च्छामें ज्ञानशून्य और विभ्रान्तचित्त हो जमीनपर गिरकर हाथ पैर पटकना और प्रलाप बकते बकते मूर्च्छित होता है। मद्य जीर्ण न होनेतक होशमें नही आता। विष मूर्च्छामें कम्प, निद्रा, तृष्णा, आखके सामने अन्धियाला देखना और विष भक्षण जनित अन्यान्य लक्षण भी प्रकाशित होता है।

भ्रमरोगका निदान और लक्षण।—वायु, पित्त और रजोगुण मिलकर भ्रम रोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें रोगीको अपना शरीर और सब पदार्थ घूमता हुआ मालूम होता

है, इससे खडा नही रह सकता तथा खड़ा होनेपर
पडताहै।

सन्न्यास रोग।—वातादि दोष समूह अत्यन्त
हो जब प्राणाधिष्ठान हृदयको दुषित करता है तथा दुर्बल रो
मन और इन्द्रिय समूहोका कार्य्य बन्दकर मूर्च्छित करता है,
उसको सन्न्यास रोग कहते है। यह रोग अतिशय भयानक
सूचीवेध, तीक्ष्ण अञ्जन, तीक्ष्ण नस्य, आदि तुरन्त होशमें
वाले उपाय न करनेसे होशमें नही आता, तथा रोगी भी
ही देरमें प्राणत्याग देता है।

चिकित्सा।—मूर्च्छा रोगके आक्रमण कालमे
और मुख आदि स्थानोंमें ठण्ढे पानीका छींटा देकर होशमें
चाहिये, फिर थोडा देर नरम बिछौने पर सुलाकर ताडके प
हवा करना उचित है। दातो लगजाने पर उसके छुडानेका उ
करना। पानीके छींटेसे होशमे न आवे तो नौसादरका टु
२ भाग औ" सूखा चूना १ भाग शोशीमें भरकर सूंघनेको दे
अथवा सेधा नमक, बच, गोलमिरच और पीपल समभाग पा
पीसकर नास देना। शिरोष बीज, पीपल, गोलमिरच, से
नमक, लहसन, मैनसिल और बच, यह सब द्रव्य गोमू
पीसकर अथवा सेंधा नमक, गोलमिरच और मैनसिल, यह त
द्रव्य महतके साथ पीसकर आखमे अञ्जन करनेसे भी मूर्च्छा
होती है। हमारा "कुमुदासव" सेवन करानेसे मूर्च्छा आर
ही रोगी अच्छी तरह होशमें आता है।

भ्रम चिकित्सा।—भ्रम रोगमे शतमली, वरियारे
जड और किसमिस दूधमें औटाकर वही दूध पीना। वरियारे
बोजका चूर्ण और चीनी एकत्र मिलाकर सेवन कराना। रातव

से भ्रम, मूर्च्छा, कास, कामला, और उन्माद रोग आराम होता है। शोंठ, पोपल, सोवा और हरीतको प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला, गुड ६ तोले एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्राको गोली बना रखना, यह गोली सेवन करनेसे भ्रम रोग दूर होता है। जवासाके काढेके साथ ताम्रभस्म २ रत्ती और घो एक आनाभर मिलाकर पीनेसेभी भ्रम रोग आराम होता है। शिलाजीत आदि रसायन अधिकारके औषध समूहोका सेवन और १० वर्षका पुराना घृत मर्द्दन इस रोगमें विशेष उपकारी है।

सन्यासमे चेतना सम्पादन।—सन्यास रोगको वेहोशी छुडानेके लिये अपस्मार रोगोक्त तेज अञ्जन, नास, धुँआ, सूई गडाना, गरम लोहेको सलाई नखके भोतर दागना, केश लोमादि खोंचना, दांतसे काटना और बदनमें आलकुशी मलना आदि कार्य्यों से होशमें आनेपर मूर्च्छा रोगोक्त औषध देना। वमोके सन्यास रोगमें रेडीका तेल अथवा रसाञ्जन चूर्णसे विरेचन करानेके बाद पेटमें स्वेद करना उचित है। क्रिमिजन्य सन्यास रोगमें क्रिमि नाशक औषध प्रयोग करना चाहिये।

हमारा मूर्च्छान्तक तैल।—मूर्च्छा, भ्रम और सन्यास रोगमें सुधानिधि, मूर्च्छान्तक रस, अश्वगन्धारिष्ट तथा अपस्मार और उन्माद रोगोक्त अन्यान्य औषध, घृत, तैल आदि प्रयोग करना चाहिये। हमारा "मूर्च्छान्तक तैल" इस रोगमें विशेष उपकारी है।

पथ्यापथ्य।—मूर्च्छा आदि रोगमें पुष्टिकर और बलकारक आहार आदि देना। दिनको पुराने चावलका भात, मूग, मसूर, चना और उडदकी दाल, कवई, मागुर शिंगी, खाल्सिशा आदि मछलीका शुरवा, बकरीका मांस, गुलर, परवर,

सफेद कोहडा, वैगन, केलेका फुल आदिको तरकारो, मक्खन, मट्ठा, दही, द्राक्षा, आनार, पक्का आम, पक्का पपोता, शरोफा, कच्चा नारियल आदि फल खानेको देना। रातको पूरो या रोटी, मोहनभोग, मिठाई, खुरमा, दूध, घी, मैदा, सूजी और घीसे बनायो कोई वस्तु खानेको देना। सवेरे धारोष्ण दूध और शरबत पीना विशेष उपकारी है। तिलतैल मर्द्दन, बहती नदी या प्रशस्त तलावमें स्नान, सुगन्ध द्रव्य, साफ हवा और चन्द्रकिरण सेवन, सन्तोषजनक बातें, गोतवाद्य श्रवण और अन्यान्य कार्य्य जिससे मन स्थिर रहे इस रोगमें वही सब करना उचित है।

निषिद्ध कार्य्य।—गुरुपाक, तोक्ष्ण वोर्य्य, रुक्ष और अम्लद्रव्य भोजन, मेहनतका काम करना, चिन्ता, भय, शोक, क्रोध, मानसिक उद्वेग, मद्यपान, रात दिन बैठे रहना, धूपमें बैठना और आग तापना, इच्छाके प्रतिकूल कार्य्यादि, घोडा आदिको सवारोपर चढना, मल, मूत, तृष्णा, निद्रा, क्षुधा आदिका वेग रोकना, रातका जागना, मैथुन और दतुवनसे मुख धोना आदि इस रोगमें अनिष्टकारक है।

मदात्यय।

निदान और प्रकारभेद।—अवैध नियम और अपरिमित मात्रासे तथा बल और विचार न कर मद्यपान करनेसे

मदात्यय रोग उत्पन्न होता है*। इसके सिवाय क्रोध, भय, शोक, पिपासा, भारवहन, पैदल चलते २ थक जानेपर किम्बा मल मूत्रके वेगमें, अजीर्ण अवस्थामें, भोजनके बाद, दुर्व्वल अवस्थामें मद्यपान करनेसे भी मदात्यय रोग उत्पन्न होता है। यह रोग चार भागमें विभक्त है।—पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण और पान विभ्रम।

वात, पित्त और कफाधिक्य रोग लक्षण।—वाताधिक्य मदात्यय रोगमें हिक्का, श्वास, शिर:कम्प, पार्श्वशूल निद्रानाश और अत्यन्त प्रलाप होता है। पित्ताधिक्य मदात्यय रोगमें तृष्णा, दाह, ज्वर, पसीना, मोह, अतिसार, विभ्रम और शरीर पीले रङ्गका होजाता है। कफाधिक्य मदात्ययमें कै, जीमचलाना, अरुचि, तन्द्रा, शरीर भारी मालूम होना अतिशय शीत और शरीर गीले वस्त्रसे लिपटा हुआ अनुभव होता है। सान्निपातिक मदात्ययमें यही सब लक्षण मिले हुये मालूम होता है।

परमद लक्षण।—परमद रोगमें कफके आधिक्यसे नाकसे कफस्राव, देह भारी, मुख वेस्वाद, मल मूत्रका रोध, तन्द्रा, अरुचि तृष्णा, मस्तकमें दर्द, और शरीरके सन्धिस्थानोंमें दर्द होता है।

---

* स्निग्ध अन्न और मांस आदि भक्ष्य द्रव्यके साथ ग्रीष्म ऋतुमें शीतल मधुर रसयुक्त माध्वीकादि मद्य और शीत ऋतुमें तीक्ष्ण और उष्णवीर्य्य गौडिक या पिष्टकादि मद्य प्रसन्न चित्तसे पीना यही मद्यपानका नियम है। जिस मात्रासे बुद्धि, स्मृति, प्रीति, स्वर, अध्ययन या सङ्गीत शक्ति वर्द्धित हो और पान भोजन, निद्रा, मैथुन और अन्यान्य कार्य्योंमें आसक्ति हो वही उचित मात्रा है। इस रीतिसे मद्यपान करनेसे उपकार होता है। विपरीत पान करनेसे उत्कट रोग उत्पन्न हो शरीरमें अनिष्ट होता है।

पानाजीर्ण लक्षण।—पानाजीर्ण रोगमें अत्यन्त उदराध्मान, उन्माद, कै, पेटमें जलन, पीये हुए मद्यका अपरिपाक, यही सब लक्षण प्रकाशित होता है।

पान विभ्रम लक्षण।—पान विभ्रम रोगमें सब शरीर विशेष कर हृदयमें सूई गडानेकी तरह दर्द, कफस्राव, कण्ठसे धूम निकलनेकी तरह दर्द, मूर्च्छा, कै, ज्वर, शिरःशूल, दाह और सुरा या सुरासे बनाया कोई खाद्य और पिष्टकादि भोज्य द्रव्यसे द्वेष, यही सब लक्षण दिखाई देता है।

सांघातिक मदात्यय।—जिस मदात्यय रोगमें रोगीका ओष्ठ नीचेको झुक जाता है और ऊपर शीत तथा भीतर दाह, मुख तैल लगानेकी तरह चिकना, जिह्वा, ओष्ठ तथा दांत काला, नीला या पीले रंगका होना, तथा आंखे लाल होनेसे रोगीकी मृत्यु होती है।

उपद्रव।—हिक्का, ज्वर, कै, कम्प, पार्श्वशूल, कास, और भ्रम इन सबको मदात्यय रोगका उपद्रव कहते है।

चिकित्सा।—मद्यपान न करनाही मदात्यय रोगका श्रेष्ठ औषध है, अत्यन्त मद्यपान करनेवालेको मदात्यय रोग होनेसे कम मात्रा यथाविधि मद्यपान कराना। वातिक मदात्ययमें पहिलेका पीया हुआ मद्य जीर्ण होने पर सोचल नमक, शोंठ, पीपल, गोलमिरच चूर्ण और थोड पानीके साथ मद्यपान कराना। पैत्तिक मदात्ययमें चीनी, द्राक्षा और आवलेके रसमें पुराना शीतवीर्य्य (ठण्ढा) मद्यपान कराना। सुगन्धित मद्य या अधिक जल मिश्रित मद्य किम्वा चीनी और सहत संयुक्त मद्य पैत्तिक मदात्ययमें हितकारी। मद्यके साथ खजूर, किसमिस, फालसा, अनारका रस और सत्तु मिलाकर पीनेसे पैत्तिक मदात्यय आराम

होता है। अथवा अधिक इक्षुरस मिश्रित मद्य पिलाकर थोडी देर बाद कै करानेसे भी पैत्तिक मदात्यय आराम होता है। श्लैष्मिक मदात्ययमें वमन कारक द्रव्य संयुक्त मद्य पिलाकर वमन कराना, फिर रोगीके बलानुसार उपवास कराना चाहिये। इस मदात्ययमें तृष्णा हो तो बाला, बरियारा, पाटला, कण्टकारी, अथवा सोंठका काढा ठण्ढाकर पिलाना। चाभ, सौचल नमक, हींग, बडे नीबुकी छाल, सोंठ और अजवाईनका चूर्ण मिलाकर मद्यपान करानेसे सब प्रकारका मदात्यय रोग आराम होता है। सब प्रकारके मदात्यय रोगका दोष परिपाकके लिये जवासा, मोथा और पितपापडा, किम्बा सिर्फ मोथेका काढा पिलाना। अष्टाङ्ग लवण कफज मदात्ययका श्रेष्ठ औषध है। धानके लावाका चूर्ण पानीमें मिलाना फिर पिंड खजूर, किसमिस, मुनक्का, इमली, अनार और आंवलेका रस मिलाकर पीनेसे मद्यपान जनित सब प्रकारका रोग प्रशमित होता है।

शास्त्रीय औषध।—मदात्ययका दाह दूर करनेके लिये दाह नाशक योग समूह प्रयोग करना। फलत्रिकाद्य चूर्ण, एलाद्य मोदक, महाकल्यान वटी, पुनर्नवा घृत, वृहत् धात्री तैल और श्रीखण्डासव सब प्रकारके मदात्ययमें विचार कर प्रयोग करना।

मत्तता निवारणोपाय।—मद्यपान कर तुरन्त घी चीनी मिलाकर चाटनेसे नशा नहीं होती। कोदो धानकी नशा सफेद कोहडेका पानी गुड मिलाकर पीनेसे दूर होती है। सुपारीकी नशा पानी पीनेसे उतरती है, सूखा गोबर सुंघना और नमक खानेसेभी सुपारीकी नशा दूर होती है। चीनी मिला-या दूध पीनेसे धतुरेकी नशा शान्त होती है। गरम घी, कट-

हरके पत्तेका रस, इमलीका पानी या कच्चे नारियलका पानी पीनेसे भाङ्गको नशा दूर होती है। थोडी शराब पीनेसेभी भाङ्गकी नशा तुरन्त छूट जाती है तथा शराबकीभी नशा नही होती।

पथ्यापथ्य।—वातिक मदात्ययमें स्निग्ध और उष्ण भात, तित्तिर, बटेर, मुरगा, मोर या पानीके पास रहनेवाले जीवोंके मांसका रस, मछलीका रस्सा, पूरी, खट्टा और नमकयुक्त द्रव्य उपकारी है.। ठण्ढा पानी पीना, स्नानभी करना। पैत्तिक मदात्ययमें ठण्ढाभात, चीनी मिलाया मूङ्गका जूस, मांसका रस पीनेको देना, शीतल शयन, उपवेशन शीतल वायु सेवन, शीतल जलसे स्नान और चन्दनादि शीतल द्रव्य अनुलेपन स्त्रीका आलिङ्गन उपकारी है। कफज मदात्ययमें पहिले उपवास, फिर सूखा अर्थात् घृतशून्य छागमांसका रस अथवा दाडिमादि अम्लरसयुक्त जङ्गली मांसका रस किम्वा घृतादि शून्य केवल गोलमिरच और अनारके रसमें मांस भूनकर उसी मांसके साथ अन्न भोजन उपकारी है, तथा जिस कार्य्यसे कफ शान्त रहे, कफज मदात्ययमें वही सब कार्य्य करना। गरम पानी पीनेको देना स्नान बन्द करनाही अच्छा है, किसी किसी दिन गरम पानीसे स्नान करना चाहिये।

दाह।

संज्ञा और लक्षण।—विविध कारणोंसे पित्त प्रकुपित हो, हाथ पैरका तरवा, आंख या सर्व्वाङ्गमें जलन उत्पन्न होता

है। इसोको दाह रोग कहते है। दाह पित्तहोसे उत्पन्न होता है इस लिये रोग मात्रमें पित्तका आधिक्य होनेहोसे दाह होता है। शरीरमें रक्तको अत्यन्त वृद्धि होनेपरभो दाह रोग उत्पन्न होता है। इसमें रोगीको प्यास, दोनो आखे या सब शरीर ताम्रवर्ण, शरीर और मुखसे लोहेको तरह गन्ध, यह सब लक्षण प्रकाशित होता है और रोगी अपने चारो तरफ आग जलानेको तरह कष्ट अनुभव करता है। प्यास लगने पर पानो न पोनेसे शरोरके सब पतले धातु क्रमश क्षोण होता है, इससे पित्तस्लेष्म वर्द्धित हो देहके भीतर अधिक दाह उत्पन्न होता हैं। इस दाहसे गला, तालु और ओष्ठ सूखता है तथा रोगो जीभ बाहरकर हाफने लगता है। रस रक्तादि धातुक्षय होनेसे भी एक प्रकारका दाह होता है, इसमें रोगो मूर्च्छित, तृष्णार्त्त, क्षोणस्वर और चेष्टाहोन हो जाता है। उपयुक्त चिकित्सा न करानेसे इस दाहमें मृत्युको सम्भावना है। अस्त्र घातादिसे हृदयादि कोष्ठ रक्तपूर्ण होनेसे भयङ्कर दाह उत्पन्न होता है। मस्तक या हृदय प्रभृति मर्म्मस्थानमे आघात जन्य दाह असाध्य हैं। जिस दाहमें भीतर दाह और बदन ठण्ढा हो वह दाह रोग भी असाध्य है।

चिकित्सा।—दाह रोगमें पेट साफ रखना बहुत जरूरी है धनिया २ तोले आधा पाव पानीमें पहिले दिन शामको भिगोना सवेरे वही पानी मिस्रो मिलाकर पोनेसे दाह रोग आराम होता है। गुरिचकारस, खेतपापडाका रस दाह नाश करनेमें अकसीर है। ज्वरमे दाह शान्तिका जो सब उपाय लिख आये है, दाह रोगमे भो वही सब प्रयोग करना। इसके सिवाय शतधौत घृत या शतधौत घृतमें जौका सत्तु मिलाकर बदनमे मलना। पद्म-पत्र या केलेके पत्तेपर सुलाकर चन्दन जलसिक्त पंखेसे हवा करना।

बाला, पद्मकाष्ठ, खस और सफेद चन्दन सबका चूर्ण पानीमें मिलाकर स्नान कराना। चन्दनादि काढा, त्रिफलाद्य कषाय, पर्पटादि काढा, दाहान्तक रस और काञ्जिका तैल दाह रोगका प्रशस्त औषध है, ज्वर हो तो तैल या घृत मर्द्दन और स्नान मनाहै।

पथ्यापथ्य।—दाह रोगमें पित्तनाशक द्रव्य भोजन। तिक्त वस्तु खाना अतिशय उपकारी है। मूर्च्छा रोगमें जो सब भोजनविधि लिखा है, ज्वर न रहनेसे वही सब आहार देना। ठढे पानीसे नहाना, शीतल जल पान, चीनीका शर्बत, इक्षुका रस, दूध और मखन आदि शीतल द्रव्य व्यवहार करना चाहिये।

निषिद्ध कर्म्म।—मूर्च्छा रोगमें जो सब आहार विहार मना है, दाह रोगमें भी वही सब त्याग करना चाहिये।

—०—

उन्माद।

निदान।—चोर मत्स्यादि संयोग विरुद्ध भोजन, विषयुक्त द्रव्य भोजन, अरुचि द्रव्य भोजन, देव, ब्राह्मण, गुरू आदिको अवमानना, अत्यन्त भय, हर्ष शोकादि कारणोंसे चित्तमें चोट लगना, विषम भावसे अङ्गविन्यास अर्थात् मुद्रादोष और बलवान मनुष्यसे युद्ध आदि विषम कार्य्योंसे अल्प सत्वगुण विशिष्ट मनुष्योंका वातादि दोषत्रय कुपित हो बुद्धिस्थान, हृदय और मनोवहा नाडीको दूषित करता है, इससे चित्तमें विकृति उपस्थित हो उन्माद रोग उत्पन्न होता है। यह मानसिक रोग है। बुद्धिमें भ्रान्ति,

चित्तमें अस्थिरता, व्याकुल दृष्टि, काममें अस्थिरता, असम्बन्ध वाक्य उच्चारण और हृदय शून्यता, यही सब उन्माद रोगके साधारण लक्षण है।

वातज उन्माद लक्षण ।—निरन्तर चिन्तासे हृदय दूषित होनेके बाद रुच, शीतल या अल्प भोजन, विरेचन, धातुक्षय उपवास आदि वायु वृद्धिकारक निदान सेवन करनेसे वातज उन्माद पैदा होता है। इस उन्मादमें विना कारण हसना, नाचना, गाना, बोलना, अङ्ग विक्षेप और रोना यही सब लक्षण लक्षित होता है, तथा रोगीका देह दुबला, रुखा और लालवर्ण होता है। आहार परिपाकके समय यह रोग बढता है।

पैत्तिक उन्माद लक्षण ।—वैसही चिन्तासे हृदय दूषित होनेपर तथा कटु, अम्ल, उष्ण और जिस द्रव्यका अम्लपाक हो वही सब द्रव्य भोजन और अजीर्णमें भोजन आदि कारणोंसे पित्त प्रकुपित हो पैत्तिक उन्माद रोग उत्पन्न होता है। इस उन्मादमें असहिष्णुता, आडम्बर, वस्त्र पहिरनेकी अनिच्छा, तर्ज्जन, गर्ज्जन, जोरसे दौडना, बदन गरम, क्रोध, छायेमें बैठना, शीतल वस्तु पान भोजनकी इच्छा और देह पीतवर्ण होना यही सब लक्षण प्रकाशित होता है।

कफज उन्माद लक्षण ।—श्रमजनक कार्य्यसे जो अलसजानेपर अति भोजनादि कफ बढानेवाले निदानसे हृदयका कफ दूषित और पित्त संयुक्त होनेसे कफज उन्माद उत्पन्न होता है। इसमें बोलना और काम काज कम करना, अरुचि, स्त्री सहवासकी इच्छा, निर्ज्जनमें रहनेकी इच्छा, निद्रा, जीमचलाना, लारस्राव, त्वक, मूत्र, चक्षु, नख सफेद होना और आहारके बाद रोग बढना, यही सब लक्षण प्रकाशित होता है।

त्रिदोषज लक्षण।—अपने वृद्धिकारक कारण समूहोंसे वातादि तीन दोष कुपित होनेसे सन्निपातज उन्माद उपस्थित होता है। इसमें वही तीन दोषजात उन्माद के लक्षण मिले हुए मालूम होता है। त्रिदोषज उन्माद असाध्य है।

शोकज उन्माद लक्षण।—किसी कारणसे डर जाने-पर या धनक्षय या बन्धुका नाश अथवा अभिलषित कामिनी प्रभृति न मिलनेसे, मन अत्यन्त आहत हो जो उन्माद रोग उत्पन्न होता है उसको शोकज उन्माद कहते है। इसमें रोगी कर्त्तव्य ज्ञानशून्य हो जाता है, अति गुप्तबात भी प्रकाश कर बैठता है और कभी गीत गाता है, कभी हसता तथा कभी रोता है।

विषज उन्माद लक्षण।—विष या विषाक्त द्रव्य भोजन करनेसे विषज उन्माद पैदा होता है। इसमें रोगीकी आखे लाल, मुख काला, अन्तरमें दीनता, चेतना नाश, बल, इन्द्रिय शक्ति और कान्तिका ह्रास होता है।

सांघातिक लक्षण।—जिस उन्मादमें रोगी सर्व्वदा ऊर्द्ध या अधोमुख रहे और अतिशय क्षय, दुर्ब्बल, तथा निद्राशून्य हो तो उसकी मृत्यु होनेकी सम्भावना है।

भूतोन्माद।—उक्त कई प्रकारके उन्मादके सिवाय भूतोन्माद नामका एक प्रकारका उन्माद है। मनुष्य शरीरमें ग्रहोंके आवेशसे भूतोन्माद उत्पन्न होता है। दर्पण आदिका प्रतिविम्ब या जीव शरीरमें जीवात्मा प्रवेशकी तरह ग्रहगण भी रोगीके शरीरमें अदृश्य भावसे प्रविष्ट हो स्व स्व जाति विशेषके अनुसार भिन्न भिन्न लक्षण प्रकाश करते है। देव ग्रहोंको पूर्णिमा तिथि, आसुरग्रहोंको प्रात सन्ध्या और सायसन्ध्या, गन्धर्व्वग्रहोंको अष्टमी, यक्षग्रहोंको प्रतिपद, पितृग्रहोंको अमावस्या, नागग्रहोंको

पञ्चमो, राक्षसोंको रात और पिशाचोंको चतुर्द्दशो तिथि मनुष्य शरोरमें प्रवेश करनेका दिन है। भूतोन्माद रोगमें रोगोको वक्तृताशक्ति, बल, विक्रम, तत्वज्ञान और शिल्पज्ञानादि अमानुषिक भाव ‍र वर्द्धित होता है। यह भूतोन्मादका साधारण लक्षण है।

देव, असुर, गन्धर्व्व, यक्ष, पितृ और ग्रहज उन्माद लक्षण।—देवग्रहजनित उन्माद रोगमें रोगो सर्व्वदा सन्तुष्ट, शुद्धाचार दिव्यमालाको तरह शरोर गन्धविशिष्ट, तन्द्रायुक्त, संस्कृत भाषो, तेजस्वो, स्थिरदृष्टि वरदाता और ब्राह्मणानुरक्त होता है।

असुर ग्रहजमें रोगो घर्म्माक्त देह, देव, द्विज, गुरु आदिका दोष भाषो, कुटिल दृष्टि, निर्भीक, दुष्टाचारो और प्रचुर पान भोजन करने पर भो तृप्त नहो होता। गन्धर्व्व ग्रहजमें रोगो प्रसन्न चित्त नदो तीर या वनमें विचरणशील, सदाचारो, सङ्गीतप्रिय, गन्धमाल्यादिमें अनुरक्त और मृदु मधुर हसते हसते मनोहर नृत्य करता है। यक्षग्रहजमें रोगोका नेत्र लाल, लाल वस्त्र पहिरनेको इच्छा, गम्भोर प्रकृति, द्रुतगामो, अल्पभाषो, सहिष्णु और तेजस्वी होता है, तथा सर्व्वदा किसको क्या दान करे यहो कहता फिरता है। पितृ ग्रहजमें रोगो शान्तचित्त हो पितरोंका श्राद्ध तर्पणका अभिनय करता है, पितृभक्त तथा मांस, तिल, गुड, पायस आदि भोजनको इच्छा होतो है। नागग्रहज रोगमें रोगी कभो कभो सर्पको तरह पेटके बलसे चलता है और जोभसे ओष्ठ वारम्वार चाटता है, तथा इस रोगमें रोगी क्रोधी और गुड, सहत्, दूध आदि द्रव्य खानेको मांगता है। राक्षस ग्रहजमें रोगो मांस, रक्त, मद्य प्रभृति भोजनका अभिलाषो, अत्यन्त निर्लज्ज, अतिशय निठुर, अति बलवीर्य्यशाली, क्रोधो, सदाचारो और

रातको फिरना चाहता है। पिशाचदुष्ट उन्मादमें रोगी ऊर्द्ध-वाहु, उलङ्ग, कृश, रुक्षदेह, सर्व्वदा प्रलापभाषी, गात्र दुर्गन्धयुक्त, अत्यन्त अशुचि, भोज्य वस्तुमें अति लोभी, अति भोजनशील, निर्ज्जन वनमें भ्रमणकारी और विरुद्ध आचरणशील होता है तथा सर्व्वदा रोता और इधर उधर घूमता रहता है।

साध्यासाध्य।—जिस भूतोन्माद रोगीको दोनो आंखे चढी, चञ्चल, फेन लेहनकारी, निद्रालु और कांपती रहती है, अथवा किसी ऊंचेस्थानसे गिरकर यदि ग्रहोंके द्वारा आविष्ट हो तो पीडा असाध्य जानना। १३ वर्ष तक उन्माद रोग अचिकित्सित रहनेसे सब प्रकारका उन्माद रोग असाध्य होजाता है।

चिकित्सा।—वातिक उन्माद रोगमें स्नेहपान, पैत्तिकमें विरेचन और श्लैष्मिक उन्मादमें शिरोविरेचन अर्थात् नस्य सुंघ कर कफ निकालना हितकारी है। रोज सवेरे पुराना घी पान करनेसे उन्माद रोगमें विशेष उपकार होता है। शिरोषफूल, लहसन, शोंठ, सफेद सरसो, बच, मजीठ, हलदी और पीपल यह सब द्रव्य पीसकर गोली बनाना, गोली छायामे सुखाकर पानीमें घिसकर नासलेना। इसका अञ्जन भी कर सकते है। तर्ज्जन, ताडन, भयोत्पादन, वाञ्छित द्रव्य देना, सान्त्वना वाक्य, हर्षोत्पादन और विस्मित करना उन्माद रोगमे विशेष उपकारी है। पुराने सफेद कोंहडेको पीसकर सहत्‌मे मिलाकर सेवन कराना। गोरईया (चटक) का छोटा बच्चा जिसको पङ्ख नही निकला है। उसका मांस दूधमें पीसकर पिलाना। पीपल, गोलमिरच, सेंधानमक और गोलोचन समभाग सहतमें मिलाकर अञ्जन करना। सफेद सरसो, हीग, बच, डहरकरञ्ज, देवदारु, मजीठ,

हरीतकी, आवला, बहेड़ा, सफेद अपराजिता, लताफटकी की छाल, शोठ, पीपल, गोलमिरच, प्रियङ्गु, शिरीषकी छाल, हलदी और दारुहलदी, समभाग छाग दूधमें पीसकर पान, नस्य, अञ्जन, और लेपमें व्यवहार करना, या पानीमें मिलाकर स्नान कराना, तथा उक्त द्रव्योंका कल्क बनाकर गोमूत्रके साथ विधिपूर्व्वक घीसे पाककर पीनेसे उन्माद रोग आराम होता है। देवग्रह, गन्धर्व्व-ग्रह या पितृग्रहसे आविष्ट होनेपर किसी तरहका क्रूर कर्म्म, या तेज अञ्जन आदि प्रयोग करना उचित नहीं है। सारस्वत चूर्ण, उन्माद गजाङ्कुश, उन्माद भञ्जन रस, भूताङ्कुश रस, चतुर्भुज रस और वातव्याधि रोगोक्त चिन्तामणि, वातचिन्तामणि, चिन्तामणि चतुर्म्मुख आदि औषध और पानीयकल्याणक घृत, चैतसघृत, महापैशाचिघृत, नारायन तैल, महानारायण तैल, मध्यमनारायण तैल, हिमसागर और विष्णु तैल आदि विचारकर प्रयोग करनेसे उन्मादरोग आराम होता है।

पथ्यापथ्य।—जिस आहार विहारसे वायु शान्त हो पेट साफ रहे और शरीर चिकना हो वही सब आहार विहार उन्माद रोगीका पथ्य है। उन्माद रोगीको पानी और अग्निके पास या किसी ऊंचे स्थानपर रखना उचित नहीं है। मूर्च्छा रोगमें जो सब पानाहारके नियम लिख आये हैं उन्मादमें भी वही पालन करना चाहिये।

अपस्मार।

अपस्मारका लक्षण और निदान।—अपने अपने निदानके अनुसार वायु पित्त और कफ, अत्यन्त कुपित होनेसे अपस्मार रोग उत्पन्न होता है। चलित भाषामें इसको "मिरगी" कहते है। ज्ञानशून्यता, दोनो आखोंको विकृति, मुखसे फेन वमन और हात पैर पटकना यही कई एक अपस्मार रोगका साधारण लक्षण है। अपस्मार रोग उत्पन्न होनेके पहिले हृदय कम्पन, और शुन्यता, पसीना निकलना, अत्यन्त चिन्ता, मोह, निद्रानाश यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है। अपस्मार चार प्रकार वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज। अपस्मार रोग रोज प्रकाशित न होकर १२ दिन १५ दिन या १ मास अथवा उससे भी कमी वेशी दिनके अन्तर पर प्रकाशित होता है।

वातज लक्षण।—वातज अपस्मारमें कम्प, दांती लगना, फेन वमन और श्वास जोरसे चलती है, तथा रोगी चारो तरफ काला या अरुणवर्ण रूखा देह आदि नाना प्रकारकी मिथ्या मूर्त्ति देखता है। पित्तजमें शरीर गरम, प्यास, मुख, आख, मुखका फेन पीतवर्ण और रोगीको सब वस्तु पीत या लोहित वर्ण अथवा चारो तरफ पीला या लोहित वर्ण युक्त मिथ्यारूप दिखाई देता है, तथा सारा जगत अग्निसे वेष्टित उसको मालूम होता है।

कफज लक्षण।—कफज अपस्मारमें रोगीका मुख, आख और मुखका फेन सफेद रङ्ग, वदन शीतल, भारी और रोमाञ्चित होता है तथा चारो तरफ श्वेतवर्ण मिथ्या मूर्त्ति दिखाई देता है। वातज पित्तजकी अपेक्षा इसमें देरसे होशमें आता है।

यही तीन दोषजात अपस्मारके लक्षण समूह मिले हुए मालूम होनेसे उसको सन्निपातज अपस्मार कहते है।

सन्निपातज लक्षण।—सन्निपातज अपस्मार, क्षीण व्यक्तिका अपस्मार और पुराना अपस्मार असाध्य है। अपस्मार रोगमें बार बार भौंका फरकना और नेत्र विकृति, यही सब लक्षण लक्षित होनेसे रोगोको मृत्यु होती है।

योषापस्मार या हिष्टिरिया।—गर्भाशयको विकृति, रज स्रावका अभाव या कमी, स्वामीसे असेह, निष्ठुराचरण या इन्द्रिय चरितार्थ शक्तिको कमी, वैधव्य आदि नानाविध शोकादिसे मन पोडा, देहमें खूनका आधिक्य या कमी, मलबद्धता, अजीर्ण आदि कारणोंसे युवती स्त्रीको भी एक प्रकारका अपस्मार रोग उत्पन्न होता है, इसको संस्कृतमें योषापस्मार और अङ्गरेजी में "हिष्टिरिया" कहते है।

हिष्टिरिया लक्षण।—यह रोग उपस्थित होनेसे पहिले छातीमें दर्द, तृष्णा शारीरिक और मानसिक ग्लानि प्रकाश हो सज्ञानाश होता है। अपस्मार रोगकी तरह इसमें भी फेन वमन और आंखका तारा बडा नही होता। किसीको अकारण हंसी, रोदन, चिल्लाना, आत्मीयगणोंपर वृथा दोषारोप और अपनेको वृथा अपराधी समझ दूसरेसे क्षमा प्रार्थना आदि विविध भ्रान्ति लक्षण भी दिखाई देता है। अकसर लोग यह लक्षण देखकर भूतावेशका अनुमान करते है। किसी किसी रोगिणोको पेटके नीचेसे एक गोला उपरको उठता हुआ मालूम होता है तथा शरीरके किसी स्थानमें दर्द मालूम होता है इसमें सफेद उजियाला देखने या ऊंची आवाज सुननेसे चमक उठती है और पुरुष सङ्गकी अतिरिक्त इच्छा होती है।

चिकित्सा।—रोग प्रकाश होते ही चिकित्सा करना चाहिये, नहीतो थोड़े दिन जानेसे यह रोग प्राय: असाध्य हो जाता है। इसमें होश लानेके लिये मूर्च्छा रोगकी तरह आंख और मुखमें पानीका छींटा देना। इससे होश न आनेपर मैनसिल रसाञ्जन, कबूतरका बीठ, सहतमें मिला आंखमें लगाना। जेठीमध, हींग, बच, तगरपादुका, शिरोश बीज, लहसन और कूठ गोमूत्रमें पीसकर अञ्जन या नास लेना। यह दो अञ्जन और नास उन्माद रोगमें भी उपकारी है। जटामासीका नास या धूम लेनेसे पुराना अपस्मार भी आराम होता है। फांसी लगा मरने-वाले मनुष्यके गलेको रस्सीका भस्म आधे पानीके साथ मिलाकर पीनेसे अपस्मारमें उपकार होता है। रोज सहतके साथ एक आनाभर बचका चूर्ण चाटकर दुग्धान्न भोजन, सफेद कोहड़ेके पानीमें जेठी-मध पीसकर सेवन और दशमूलका काढ़ा पीनेसे अपस्मार रोग आराम होता है। कल्याण चूर्ण, वातकुलान्तक, चण्डभैरव रस, स्वल्प और वृहत् पञ्चगव्य घृत, महाचैतस घृत, ब्राह्मीघृत, पल-कषाद्य तैल, और मूर्च्छा रोग तथा वातव्याधिमें लिखो औषध, घृत और तैलादि दोष प्रकोपादिका विचारकर अनुपान विशेषके साथ अपस्मार रोगमें देना चाहिये।

योषापस्मारमें भी मूर्च्छा रोगकी तरह उपाय अवलम्बन करना। फिर मूर्च्छा और अपस्मार रोगोक्त औषध, घृत और तैल प्रयोग करना। रजो लोप होनेसे रक्तस्रावका उपाय करना चाहिये। हमारा मूर्च्छान्तक तैल और "कुसुदासव" योषापस्मार-की श्रेष्ठ औषध है।

पथ्यापथ्य।—मूर्च्छा और उन्माद रोगके पथ्यापथ्यकी तरह इसमें भी पालन करना।

वातव्याधि।

— : —

निदान।—रुक्ष, शीतल, लघु या अल्प भोजन, अतिशय मैथुन, अधिक रात्रि जागरण, अतिशय वमन विरेचनादि सेवन, अधिक रक्तस्राव, साध्यातीत उल्लम्फन, अधिक तैरना, चलना या कसरत, शोक, चिन्ता किम्वा रोगादिसे धातुक्षय होना, मल-मूत्रादिका वेग रोकना, चोट लगना, उपवास और किसी तेज सवारीसे गिर जाना प्रभृति कारणोंसे वायु कुपित हो वातव्याधि रोग उत्पन्न होता है। वायु विकारकी गिनती नहीं है। शास्त्रमें ८० प्रकारका वातव्याधि लिखा है पर सबका नाम नहीं पाया जाता, इससे शास्त्रमें वायुरोग जितने प्रकारके कथित हैं हम यहां उतनेही प्रकारके नाम और लक्षण आदि लिखते हैं, बाकीके नाम निर्दिष्ट न रहनेपर भी विचार पूर्व्वक वायु नाशक चिकित्सा करना चाहिये। कई प्रकारके वातव्याधिमें कफ और पित्तका विशेष संस्रव रहता है, चिकित्साके समय इसका भी विचार कर वही दोष नाशक औषध देना चाहिये।

आक्षेप, अपतन्त्रक और अपतानक लक्षण।— कुपित वायु नाडी समूहोंमें रहकर शरीरको बार बार इधर उधर फिरावे तो उसको आक्षेप वातव्याधि कहते हैं। जिस रोगमें वायु हृदय, मस्तक, और ललाटमें पीडा पैदाकर देहको धनुष की तरह नीचा और टेढा करे उसको अपतन्त्रक कहते हैं। इस रोग में रोगी मूर्च्छित, निर्निमेष या निमीलित चक्षु और सज्ञाहीन हो जाता है तथा कष्टसे श्वास और कबूतरके तरह शब्द निकलता है। जिसमें दृष्टिशक्तिका नाश, सज्ञालोप और कण्ठसे अव्यक्त शब्द

निकलता है उसको अपतानक कहते हैं। इस रोगमें वायु जब हृदयमें जाता है तभी सञ्ज्ञानाश आदि रोग प्रकाशित होता है तथा हृदयसे हट जानेपर रोगी स्वस्थ्य होता है। कुपित वायु कफके साथ मिलकर समुदय नाडीको अवलम्बन कर जब दण्डकी तरह शरीरको स्तम्भित और आकुञ्चितादि शक्तिको नष्ट करता है तब उसको दण्डापतानक कहते हैं। जिस रोगमें देह धनुषकी तरह टेढा होता है उसको धनुस्तम्भ कहते हैं। अन्तरायाम और बहिरायाम भेदसे धनुस्तम्भके दो प्रकार हैं। अति कुपित वेगवान वायु अङ्गुली, गुल्फ, जठर, वक्षस्थल, हृदय और गलेको स्नायु समूहोंको खींचनेसे रोगीका गर्दन सामनेकी तरफ नीचा हो जाता है इसको अन्तरायाम कहते हैं। इसमें रोगीकी आंखें स्तब्ध, चक्षुआ बन्द होकर पार्श्वद्वय टूट पडता है और कफ निकलता है। वही वायु पीठके स्नायु समूहोंको खींचनेसे रोगी पीठकी तरफ टेढा हो जाता है इसको बहिरायाम कहते हैं। बहिरायाममें छाती, कमर और जङ्घा टूटनेकी तरह मालूम होता है, यह प्रायः असाध्य है। गर्भपात, अधिक रक्तस्राव या चोट लगना आदि कारणोंका धनुस्तम्भादि रोग असाध्य जानना।

पक्षाघात या एकाङ्ग वात लक्षण।—कुपित वायु देहके आधे भागमें फैलनेसे उस भागकी नाडी और स्नायु समूह सङ्कुचित या सूख जाने तथा सन्धिस्थान टूटनेसे वह भाग बेकाम हो जाता है, इस रोगको पक्षाघात (लकवा) या एकाङ्ग वात कहते हैं। यह रोग दो प्रकारका होते देखा गया है, किसीके बाये या दहिने भागके एक भागमें और किसीके कमरके उपर या नीचे के किसी भागमें उत्पन्न होता है। पक्षाघात रोगमें वायुके साथ पित्तका अनुबन्ध रहनेसे दाह, सन्ताप और मूर्च्छा, तथा कफका

अनुबन्ध रहनेसे पोडित अङ्गोमें शीतलता, शोथ और अङ्गोंकी गुरुता आदि लक्षण लक्षित होता है। पित्त या कफका अनुबन्ध न रहनेसे केवल वायुसे पक्षाघात उत्पन्न हो तो वहभी असाध्य जानना। शरीरकी आधे भागमें न होकर सर्व्वाङ्गमें यह पीडा होनेसे उसको सर्व्वाङ्ग रोग कहते हैं।

अर्द्दित लक्षण।—सर्व्वदा जोरसे बोलना, कठिन द्रव्य चिबाना, हमना, जम्हाइ लेना, भारवहन तथा विषम भावसे शयनादि कारणोंसे वायु कुपित हो मुखका अर्द्धभाग और गर्द्दनको टेढा कर शिर,कम्प, वाक्यरोध और नेत्रादिमें विकृति उत्पादन करता है, इसको अर्द्दित रोग कहते हैं। मुखके जिस तरफ अर्द्दित रोग पैदा होता है उस तरफ गर्द्दन, डाढो और दांतमें दर्द होता है। इस रोगमें वायुका आधिक्य रहनेसे लालास्राव, दर्द, कम्प, फरकन, हनुस्तम्भ (चहुआ बैठना) वाक्यरोध, ओष्ठद्वयमें शोथ और शूलको तरह दर्द होता है। पित्तके आधिक्यसे मुख पीला, ज्वर, तृष्णा, मूर्च्छा और दाह यही सब उपसर्ग दिखाई देता है। कफके आधिक्यसे गाल, मस्तक और मन्या (गरदनकी शिरा) में शोथ और स्तब्धता होता है। जो अर्द्दित रोगी क्षीण, निमेषशून्य, अति कष्टसे अव्यक्तभाषी और कांपताही अथवा जिसका रोग ३ वर्षका पुराना हो गया है ऐसे रोगीके आराम होनेकी आशा नहीं रहती।

हनुग्रह, मन्याग्रह, जिह्वास्तम्भ शिराग्रह और गृध्रसी लक्षण।—दतुवनसे बाद जोभी करते समय या कडी वस्तु चिबानेपर किम्बा किसी तरहसे चोट लगनेपर हनुमूलका वायु कुपित हो हनुद्वय (दोनो चहुआ) को शिथिल करता है इससे मुख बन्द हो जाता है, खुलता नहीं, अथवा खुला रहनेपर

बन्द नहीं होता, इसको हनुग्रह कहते हैं। दिवा निद्रा, विषम भावसे गरदन रखना विक्रत या ऊर्द्ध नेत्रसे देखना आदि कारणोंसे कुपित वायु कफयुक्त हो मन्या अर्थात् गरदनकी दोनों नाडियोंको स्तम्भित करता हैं, इससे गरदनका इधर उधर फिरना बन्द हो जाता है इस रोगको मन्याग्रह कहते हैं। कुपित वायु वाग्वाहिनी शिरामें जाने से जिह्वा स्तम्भरोग उत्पन्न होता है। इसमें रोगीका खाना पीना और बोलना बन्द हो जाता है। गरदनके नाडियोंमें कुपित वायु जानेसे शिरायें सब रुखी, वेदनायुक्त और क्षणावर्ण होती हैं तथा रोगी शिर हिलाडुला नहीं सकता। इसको स्वभावत ही असाध्य जानना। जिस वातव्याधिमें पहिले स्फिक (चूतड) फिर क्रमश कमर, पीठ, ऊरू, जानु, जङ्घा और पैरोंकी स्तब्धता, वेदना और सूई गडानेकी तरह दर्द हो तो उसको गृध्रसी वात कहते हैं, इसमें वाताधिक्य रहनेसे बारबार स्पन्दन तथा वायु और कफ दोनोंके आधिक्यसे तन्द्रा, देहका भारीपन और अरुचि यही सब लक्षण प्रकाशित होता है। बाहुके पीछेकी तरफसे अङ्गुली तक जो सब नाडी विस्तृत हैं, वायुसे वह सब शिरायें दूषित होनेसे, बाहु अकर्मण्य अर्थात् आकुञ्चन प्रसारणादि क्रियाशून्य होता है, इसको विश्वची रोग कहते हैं। कुपित वायु और दूषित रक्त दोनों मिलकर जङ्घोंमें सियारके शिरकी तरह एक प्रकार शोथ पैदा होता है, इसको क्रोष्टुक शीर्ष कहते हैं। कमरका कुपित वायु यदि एक पैरके उपर जङ्घाकी बडी शिराको तानेतो खञ्ज और दोनों पैरके जङ्घाकी बडी शिरायोंको तानेतो पङ्गुरोग उत्पन्न होता है। चलतो वक्त यदि पैर कांपेतो उसको लाय खञ्ज कहते हैं। इन रोगमें सन्धि समूह शिथिल हो जाता है। असम अर्थात् नीचे उपर पैर रखना या अधिक परिश्रमसे स्नायु

कुपितहो गुल्फमें दर्द पैदा हो तो उसको वातकण्टक कहते हैं। सर्व्वदा भ्रमण करनेसे पित्त, रक्त और वायु कुपित होनेसे पायदाह नामक रोग उत्पन्न होता है। दोनो पैर स्पर्शशक्तिहीन, बार बार रोमाञ्चित, भिन भिन और दर्द हो तो उसको पादहर्ष कहते हैं, साधारण भिन भिनके अपेक्षा इस रोगको तकलीफ देरतक रहतो है। वायु और कफ ये दो दोष कुपित हो कन्धेका बन्धन सुखावेतो असशोष रोग होता है, यह केवल वातज है। फिर वही कन्धेका कुपित वायु शिरा समूहोंको सङ्कुचित करनेसे अववाहुक रोग उत्पन्न होता है। वायु और कफ ये दो दोषसे अववाहुक रोग पैदा होता है। कफमय्‌ वायु शब्दवाहिनो धमनी समूहों-को दूषित करनेसे मनुष्य गुगा, नाकसे बोलना या तोतला भाषी होता है। जिस रोगमें मलाशय या मूत्राशयसे लेकर गुह्यदेश, लिङ्ग या योनि तक फाडनेकी तरह दर्द हो तो उसको तूनी तथा वही दर्द पहिले गुह्य, लिङ्ग या योनिसे उठकर प्रबल वेगसे पाका-शयमें जाय तो उसको प्रतितूनी कहते हैं। पाकाशयमें वायु बन्द रहनेसे उदर स्फोत, वेदनायुक्त और गुड गुड शब्द हो तो उसको आध्मान रोग कहते हैं। वही दर्द पाकाशयमें न हो आमाशयसे उठे और पेट या पार्श्वद्वय स्फोत न होतो उसको प्रत्याध्मान कहते है। कफसे वायु आवृत होनेसे प्रत्याध्मान रोग उत्पन्न होता है। नाभिके नोचे पत्थरके टुकडे की तरह कठिन, उपरको तरफ फैला हुआ, उंचा तथा सचल या अचल ग्रन्थि विशेष उत्पन्न होनेसे उसको अष्ठीला कहते हैं। अष्ठोला टेढो होतो उसको प्रत्यष्ठीला कहते हैं। ये दोनो रोगमें मलमूत्र और वायु बन्द हो जाता है। सर्व्वाङ्ग विशेषकर मस्तक कांपनेसे उसको वेपथु तथा पैर, जङ्घा, ऊरू और करमूल सुरक जानेसे खल्ली कहते हैं।

साध्यासाध्य।—सब प्रकारका वातव्याधि कष्टसाध्य है, रोग उत्पन्न होते ही विधिपूर्व्वक चिकित्सा न करनेसे प्रायः असाध्य होजाता है। पक्षाघात (लकवा) आदि वातव्याधिके साथ विसर्प, दाह, अत्यन्त वेदना मलमूत्रका रोध, मूर्च्छा, अरुचि, अग्निमान्द्य, अथवा शोथ, स्पर्श शक्तिका लोप, अङ्ग भङ्ग, कम्प, उदराध्मान प्रभृति उपद्रव मिला रहनेसे और रोगीका बल मांस क्षीण होनेसे प्राय आराम होनेकी आशा नही रहती है।

चिकित्सा।—घृत तैलादि स्नेह प्रयोग ही सब प्रकारकी वातव्याधिकी साधारण चिकित्सा है। अपतन्त्रक और अपतानक आदि रोगोंमे होशमे लानेके लिये तेज नास लेना उचित है। गोलमरिच, सैजनकी बीज, विडङ्ग और तुलसीका छोटा पत्ता समान भाग चूर्णकर नास लेनेसे अपतन्त्रक आदि रोगमें होश आता है। बडीहर्रे, चाभ, रास्ना, सैन्धानमक और थैकाल, इन सबका चूर्ण अदरखके रसमें मिलाकर पीनेसे अपतन्त्रक रोग आराम होता है। अपतानक रोगमे दशमूलके काढेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पिलाना, भोजनके पहिले गोलमरिचका चूर्ण खट्टे दहीमें मिलाकर पीना अपतानक रोगमें उपकारी है। पक्षाघात रोगमें उरद, कवाचकी जड, एरण्ड मूल और वरियाराकी काढेमें हीग और सेधानमक मिलाकर पिलाना। पीपलामूल, चितामूल, पीपल, शोठ, रास्ना और सैन्धव इन सबका कल्क और उरदके काढेके साथ यथाविधि तैल पाककर मालिश करना। अथवा उरद, कवाचकी जड, अतीस, एरण्डमूल, रास्ना सोवा और सेधानमक इन सबका कल्क और तैलका चौगूना उडद और वरियाराका काढा अलग अलग तैलमें पाककर मालिश करना। अर्द्दित रोगमें मुख खुला रहनेसे दोनो अङ्गूठेसे हनु

और दोनो तर्ज्जनीसे डाढी दवाकर मुख बन्द करना। हनु शिथिल हो जानेसे ज्योका त्यों रहने देना। मुख स्तब्ध हो जानेसे स्वेद देना उचित है। लहसन कूटकर मखनके साथ खानेसे अर्द्दित रोग आराम होता है। वरियारा, उडद, कवाचकी जड, गन्धतृण और एरण्डमूल इन सबका काढा पीनेसे और वही काढेकी नास लेनेसे अर्द्दित, पक्षाघात और विश्वची रोग आराम होता है। मन्या स्तम्भ रोगमें कुक्कुट डिम्बके द्रव भागमें लवण और घी मिला गरमकर ग्रीवामें मालिश करना। अश्वगन्धाकी जडका प्रलेप देनेसे और सरसोंका तेल मालिश करनेसे मन्यास्तम्भ आराम होता है। वाग्वाहिनी शिरा विकृत होनेमे, घृत तैल प्रभृति स्नेह पदार्थका कुल्ला उपकारी है। विश्वची और अववाहुक रोगमें दशमूल, वरियारा और उरद इन सबके काढेमें तेल और घृत मिलाकर रात्रि भोजनके बाद नास लेना। वायुशोथ रोगमे मरिचके साथ दूध औटाकर पान करना। गृध्रसी रोगमें हलकी आंचपर निर्गुण्डी-का काढा बनाकर पिलाना। एरण्डमूल, वेलकी छाल, बृहती और कण्टकारी इन सबका काढा सोचल नमक मिलाकर पीनेसे गृध्रसीजन्य वङ्क्षण वस्तिका आदि दर्द आराम होता है। त्रिफलेके काढेके साथ एरण्ड तैल मिलाकर पीनेसे गृध्रसी और उरुस्तम्भ आराम होता है। दशमूल, वरियारा, रास्ना, गुरिच और सोंठ इसके काढेके साथ एरण्ड तैल मिला पान करनेसे गृध्रसी, खञ्ज और पङ्गुरोग आराम होता है।

आध्मान रोगमें पीपलका चूर्ण २ तोले, त्रिवृतके जडका चूर्ण ८ तोले, चीनी ८ तोले एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा मधुके साथ सेवन करना। देवदारु या कठ, सोवा, हींग और सेंधा नमक काञ्जीमें पीस गरम कर लेप करनेसे शूल और आध्मान रोग आराम होता है। प्रत्याध्मान रोगमें वमन, लङ्घन, अग्नि-

दीपक, पाचक औषध प्रयोग और पिचकारी देना उपकारी है। शिरायह या शिरोग्रह रोगमें दशमूलका काढा और बड़े नीबूके रसमें तैलपाककर मालिश करना। अष्ठीला और प्रत्यष्ठीला रोगको चिकित्सा गुल्म रोगकी तरह करना। तूनी और प्रतितूनी रोगमें स्नेह पिचकारी देना उचित है हींग और जवखार मिला गरम घी पान करना। खल्वी रोगमें तेलके साथ कुठ, सेंधानमक और चुक मिला गरम कर मालिश करना। वातकण्टक रोगमें जोंक प्रभृतिसे रक्त मोचन, एरण्ड तैल पान और गरम लोहेसे पीड़ित स्थानमें दागना उचित है। क्रोष्टकशीर्ष और पाददाह रोगको चिकित्सा वातरक्त रोगकी तरह करना। मसूर और उड़दका आटा पानीमें औटाकर लेप करनेसे पाददाह रोग शान्त होता है अथवा दोनो पैरमें मखन मालिश कर सेक करना। पादहर्ष रोगमें कुब्ज प्रसारिणी तैल मालिश उपकारी है।

शास्त्रीय औषध और तैलादि।—सब प्रकारके वात-व्याधिमें तैल मर्द्दन करना प्रधान चिकित्सा है तेलको उपकारिता और रोगको अवस्था विचारकर स्वल्प विष्णुतैल, बृहत् विष्णु तैल, नारायण तैल, मध्यमनारायण तैल, वायुच्छाया सुरेन्द्र तैल, माषवलादि तैल, सैन्धवाद्य तैल, महानारायण तैल, सिद्धार्थक तैल हिमसागर तैल, पुष्पराज प्रसारिणी तैल, कुब्ज प्रसारिणी तैल और महामाष तैल आदि प्रयोग करना। सेवनके लिये रास्नादि काढा माषवलादि काढा, कल्याणावलेह, स्वल्प रसोनपिण्ड, त्रयोदशाङ्ग-गुग्गुलु, दशमूलाद्यत घृत, छागलाद्य और बृहत् छागलाद्य घृत, चतुर्मुख रस, चिन्तामणि रस, वातगजाङ्कुश, बृहत् वातगजाङ्कुश योगेन्द्र रस, रसराज रस, चिन्तामणि रस, बृहत् वातचिन्तामणि रस आदि औषध विचारकर प्रयोग करना।

पथ्यापथ्य।—वातव्याधि मात्रमें स्निग्ध और पुष्टिकर आहारादि उपकारी है। मूर्च्छारोगमें पानाहार जो सब कह आये हैं वही सब और रोहित मछलीका शिर और मांस रस प्रभृति पुष्टिकर द्रव्य भोजन कराना। स्नानादि मूर्च्छा रोगके नियमानुसार करना चाहिये। केवल पक्षाघात (लकवा) रोगमें कफका सम्बन्ध रहनेसे अथवा और कोई वातव्याधिमें कफका उपद्रव या ज्वरादि हो तो गरम पानीसे कदाचित् स्नान करना चाहिये तथा यावतीय शीतलक्रिया परित्याग करना चाहिये। मूर्च्छा रोगमें जो सब आहार विहार मना किया है, साधारण वातव्याधि में भी वही सब मना है।

वातरक्त।

—○—

निदान।—अतिरिक्त लवण, अम्ल, कटु, चिकना, गरम, कच्चा या देरसे हजम होनेवाला पदार्थ भोजन, जलचर और आनूपचर जीवका सूखा या सड़ा, मांस भोजन, अधिक मांस भोजन, उरद, कुरथी, तिल, मूली, सोम, ऊखका रस, दही, काञ्जी, शराब आदि द्रव्य भोजन, संयोग विरुद्ध द्रव्य भोजन, पहिलेका आहार जीर्ण न होनेपर फिर भोजन, क्रोध, दिवा निद्रा और रात्रि जागरण, यही सब कारण तथा हाथी, घोड़ा, या ऊंटके सवारी पर अतिरिक्त भ्रमण आदि कारणोंसे रक्त गरम हो कुपित वायुसे मिलकर वातरक्त रोग पैदा होता है। यह रोग पहिले पादमूल या हस्तमूलसे आरम्भ हो फिर मूषिक विषको

तरह क्रमशः सर्व्वाङ्गमे व्याप्त होता है। वातरक्तप्रकाशित होनेसे पहिले बहुत पसीना निकलना या एकदम पसीना बन्द होना, जगह जगह काला काला दाग और शून्यता, किसी कारणसे कहीं घाव होनेपर उसका जल्दी आराम न होना और दर्द, गांठोकी शिथिलता, आलस्य, अवसन्नता, जगह जगह फोडिया निकलना और जानु, जङ्घा, ऊरु, कमर, कन्धा, हाथ, पैर, तथा सन्धिसमूहों मे सूचो विद्धवत् दर्द, फरकन, फाडनेको तरह कष्ट, भारबोध, स्पर्श शक्तिको अल्पता, खजुली, सन्धियोमें बार बार दर्दका पैदा होना और बदनपर चिंटी चलनेकी तरह मालम होना यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है।

भिन्न भिन्न प्रकारके लक्षण।—वातरक्तमे वायुका प्रकोप अधिक रहनेसे, शूल, स्फुरण, भङ्गवत् पोडा, रुक्ष शोथ, शोथ स्थानका काला या श्यामवर्ण होना, पीडाके सब लक्षण हो कभी अधिक कभी कम, नाडी, अङ्गुलि और सन्धियोका सङ्कोच, अङ्ग वेदना, अत्यन्त यातना, शीतल स्पर्शादिसे द्वेष और अनुपकार, शरीर की स्तब्धता, कम्प, स्पर्श शक्तिकी कमी, यही सब लक्षण लक्षित होता है। रक्तका प्रकोप अधिक रहनेसे ताम्रवर्ण शोथ, उसमे कण्डु और क्लेद, स्राव, अतिशय दाह और सूची विद्धवत् वेदना, स्निग्ध और रुक्षक्रियासे रोगका शान्त न होना। पित्तकी आधिक्यसे दाह, मोह, पसीना आना, मूर्च्छा, मत्तता और तृष्णा होती है। शोथ स्थान छूनेसे दर्द, शोथ रक्तवर्ण और दाहयुक्त, स्फीत, पाक और उष्माविशिष्ट होता है। कफके आधिक्यमे स्तैमित्य, गुरुता, स्पर्श शक्तिकी अल्पता, सर्व्वाङ्ग चिकना, शीतल स्पर्श, खजुली और थोडा दर्द होता है। दो दोष या तीन दोषकी आधिक्यसे वही सब दोष मिले हुए मालूम होता है।

साध्यासाध्य।—एक दोषजात और थोड़े दिनका वातरक्त साध्य तथा रोग एक वर्षका होनेसे याप्य होता है। इसके सिवाय द्विदोषज वातरक्त भी याप्य है। त्रिदोषज वातरक्त रोगमें निद्रानाश, अरुचि, श्वास, मांस पचन, शिरोवेदना, मोह, मत्तता, व्यथा, तृष्णा, ज्वर, मूर्च्छा, कम्प, हिक्का, पङ्गुता, विसर्ग, शोथका पकना, सूची विद्धवत् अत्यन्त यातना, भ्रम, क्लान्ति, अंगुलियों का टेढ़ा होना, स्फोटक, दाह, मर्म्मवेदना और अर्बुद यही सब उपद्रवयुक्त अथवा केवल मोह उपद्रवयुक्त वातरक्त असाध्य है। जिस वातरक्तमें पादमूलसे जानुतक पीड़ा व्याप्त रहती है, त्वक दलित और विदीर्ण होता है, वह भी असाध्य जानना।

चिकित्सा।—वातरक्त रोगका पूर्व्वरूप प्रकाशित होते ही चिकित्सा करना चाहिये, नहीतो सबरूप प्रकाशित होनेसे प्राय असाध्य हो जाता है। जिस स्थानकी स्पर्शशक्ति नष्ट हो गई है वहा जोक लगाकर या किसी अस्त्रसे काटकर रक्त निकालना चाहिये। अङ्ग सूख जानेपर या वायुका प्रकोप अधिक रहनेसे रक्त निकालना उचित नही है। स्नेहयुक्त विरेचक औषध और स्नेह द्रव्यकी पिचकारी देना वातरक्तमें हितकारी है। विरेचनके लिये तीन या पाच अथवा रोगीके बलके अनुसार उससेभी अधिक या कम बड़ीहर्रे पुराने गुड़के साथ पीसकर खिलाना चाहिये। अमिलतासकी गूदी, गुरिच और अडूसेकी छालके काढ़ेके साथ रेंड़ीका तेल पीनेसे विरेचन हो वातरक्त रोग आराम होता है। किसी स्थानमे दर्द रहनेसे गृहधूम, बच, कूठ, सोवा, हरिद्रा और दारुहरिद्रा एकत्र दूधमें पीसकर लेप करनेसेभी वातरक्त शान्त होता है। काढ़ा कल्क, चूर्ण या रस चाहे जिस उपायसे गुरिचका सेवन वातरक्तमे उपकारी है। अमृतादि, वासादि,

नवकार्षिक और पटोलादि काढा, निम्बादि चूर्ण, कैशोर-गुग्गुलु, रसाभ्र गुग्गुलु, वातरक्तान्तक रस, गुडच्यादि लोह, महा-तालेश्वररस, विश्वेश्वररस, गुडूचोघृत, अमृताद्य घृत, वृहत् गुडच्यादि तैल, महारुद्र गुडूची तैल, रुद्रतैल, महारुद्र तैल और महापिण्ड तैल आदि औषध और कुष्ठ रोगोक्त पञ्चतिक्त घृत गुग्गुलु आदि कई औषध विचारकर वातरक्त रोगमें प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—दिनको पुराने चावलका भात, मूग चनेकी दाल, तोतो तरकारो अथवा परवर, गुल्लर, करैला, सफेद कोंहडा आदिकी तरकारी, नीमका पत्ता श्वेत पुनर्नवा और परवरके पत्तेकी शाक खाना उपकारी है। रातको पूरी या रोटी और उपर कही तरकारी, कम मीठेका कोई पदार्थ खाना और थोडा दूध पीना चाहिये, जलपानके समय भिगोया चना खाना वातरक्तके लिये विशेष उपकारी है। तरकारी आदि घीमें बनाना चाहिये।

निषिद्ध द्रव्य।—नये चावलका भात, गुरुपाक द्रव्य, अम्लपाक द्रव्य भोजन, मछली, मास, मद्य, मीम, मटर, गुड, दही, अधिक दूध, तिल, उडद, मूली, खट्टा, लाल कोंहडा, आलु, पियाज, लहसन, लाल मिरचा और अधिक मीठा भोजन, तथा मल मूत्रका वेग रोकना, आगके पास या धूपमें बैठना, कसरत, मैथुन, क्रोध, दिवानिद्रा आदि वातरक्त रोगमें अनिष्ट-कारक है।

—०—

ऊरुस्तम्भ।

निदान।—अधिक शीतल, उष्ण, द्रव, कठिन, गुरु, लघु, स्निग्ध या रुच द्रव्य भोजन, पहिलेका खाया पदार्थ अच्छो तरह परिपाक न होतेहो भोजन, परिश्रम, शरीरको अधिक चलाना, दिवानिद्रा, रात्रि जागरण आदि कारणोंसे कुपित वायु, कफ और आमरक्तयुक्त पित्तको दूषित कर ऊरुमें जानेसे ऊरुस्तम्भ रोग पैदा होता है। ऊरुस्तम्भ, शीतल, अचेतन, भाराक्रान्त और अतिशय वेदनायुक्त तथा ऊरु (जङ्घा) उठाने या चलानेकी शक्ति नहो रहती है, इसके सिवाय इस रोगमें अत्यन्त चिन्ता, बदनमें दर्द स्तैमित्य अर्थात् बदन गीले वस्त्रसे ढपा अनुभव, तन्द्रा, वमि, अरुचि, ज्वर, पैरकी अवसन्नता, स्पर्श-शक्तिका नाश और कष्टसे चलना यही सब लक्षण दिखाई देता है। ऊरुस्तम्भका दूसरा नाम आढ्यावात है। ऊरुस्तम्भ प्रकाशित होनेसे पहिले अधिक निद्रा, अत्यन्त चिन्ता, स्तैमित्य, ज्वर, रोमाञ्च, अरुचि, वमन तथा जङ्घा और ऊरु दुर्ब्बल होना, यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है।

मृत्यु सम्भव।—इस रोगमें दाह, सूचो विद्धवत् वेदना, कम्प, आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे रोगीके मृत्युकी सम्भावना है। यह रोग उत्पन्न होतेही चिकित्सा न करनेसे कष्टसाध्य हो जाता है।

चिकित्सा।—जिस क्रियासे कफकी शान्ति हो और वायुका प्रकोप अधिक न हो वैसी चिकित्सा करना चाहिये। तथापि रुच क्रियासे कफको शान्तकर फिर वायुको शान्त करना

चाहिये। पहिले स्वेद, लङ्घन और रुच क्रिया करना उचित है। अतिरिक्त रूचक्रियासे वायु अधिक कुपित हो निद्रानाश प्रभृति उपद्रव उपस्थित होनेसे स्नेह स्वेद व्यवहार करना चाहिये। डहरकरञ्ज का फल और सरसो, किम्वा असगन्ध, अकवन, नोम या देवदारूको जड, अथवा दन्ती, चुहाकानी, रास्ना और सरसो, किम्वा जयन्ती, रास्ना, सैजनको छाल, वच, कुरैया और नीम, इसमेंसे कोई एक योग गोमूत्रमें पीस कर ऊरुस्तम्भमें लेप करना। सरसोका चूर्ण सहतके साथ मिलाकर अथवा धतुरेके रसमें पीसकर गरम लेप करना। काले धतुरेको जड, पोस्तको ढेडी, लहसन, मिरच, कालाजिरा, जयन्ती पत्र, सैजनकी छाल और सरसो यह सब द्रव्य गोमूत्रमें पीसकर गरम लेप करनेसे ऊरुस्तम्भ आराम होता है। त्रिफला, पीपल, मोथा, चाभ और कुटको इन सबका चूर्ण अथवा केवल त्रिफला और कुटकी यह चार द्रव्यका चूर्ण आधा तोला सहतके साथ सेवन करनेसे ऊरुस्तम्भ रोग आराम होता है। पीपला मूल, भेलावा और पीपल इसका काढा सहत मिलाकर पिलाना। भल्लातकादि और पिप्पल्यादि काढा, गुञ्जाभद्र रस, अष्टकट्वर तैल, कुष्ठाद्य तैल और महासैन्धवाद्य तैल ऊरुस्तम्भ रोगमें प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—दिनको पुराने चावलका भात, कुरथी, मूग चना और मसूरको दाल, परवर, गुल्लर, करेला, बैगन, लहसन अदरख आदिको तरकारी, छाग, कबूतर या मुरगा आदिके मासका रस, सहनेपर घी और थोडा मट्ठा खानेको देना। रातको पूरी या रोटी उपर कही तरकारी, घी मैंदा, सूजी और थोडी चोनो मिलाया पदार्थ, मोहनभोग, मिठाई आदि द्रव्य थोडा दे सकते है। जलपानमें किसमिस, छोहाडा, खजूर आदि कफ-

नाशक और वायु विरोधी फल खानेको देना। गरम पानी ठण्ढा-कर पीनेको देना। स्नान जितना कम हो उतनाही अच्छा है। विशेष आवश्यक होनेसे गरम पानीसे स्नान करना चाहिये। किन्तु वायुका प्रकोप अधिक होनेसे नदीमें स्नान और स्रोतके प्रतिकूलके तरफ तैरना उपकारी है।

निषिद्ध कर्म्म।—गुरुपाक द्रव्य, कफजनक द्रव्य, मत्स्य, गुड, दही, उडद, पिष्टकादि, अधिक आहार और मल मूत्रका वेग रोकना, दिवानिद्रा, रात्रि जागरण और ओसमें फिरना आदि ऊरुस्तम्भ रोगमें अनिष्टकारक है।

—०—

आमवात।

निदान और लक्षण।—क्षीर मत्स्यादि संयोग विरुद्ध आहार, स्निग्धान्न भोजन, अतिरिक्त मैथुन, व्यायाम, सन्तरणादि जलक्रीडा, अग्निमान्द्य, गमनागमन शून्यता आदि कारणोंसे खाये हुए पदार्थका कच्चा रस वायु द्वारा आमाशय और सन्धिस्थल प्रभृति कफ स्थानोंमें एकत्र और दूषित होनेसे आमवात रोग उत्पन्न होता है। अङ्गमें दर्द, अरुचि, तृष्णा, आलस्य, देहका भारी होना, ज्वर, अपरिपाक और शोथ, यही सब आम-वातके साधारण लक्षण है।

कुपित आमवातके उपद्रव।—आमवात अधिक कुपित होनेसे सब रोगको अपेक्षा अधिक कष्ट दायक होता है। इसमें हाथ, पैर, मस्तक, गुल्फ, कमर, जानु, ऊरु और सन्धिस्थानो में अत्यन्त दर्दयुक्त शोथ उत्पन्न होता है, तथा इसमे दुष्ट आम

जिस जिस स्थानमें जाता है उसी स्थानमें बिच्छूके काटनेकी तरह दर्द और अग्निमान्द्य, मुख नाकसे जलस्राव, उत्साह हानि, मुखका बेस्वाद होना, दाह, अधिक मूत्रस्राव, कुक्षिमें शूल और कठिनता, दिवा निद्रा, रातको अनिद्रा, पिपासा, जीमचलाना, भ्रम मूर्च्छा छातीमें दर्द, मलबद्धता, शरीरकी जड़ता, पेटमें शब्द होना और आनाह आदि उपद्रव उपस्थित होता है।

दोषभेद लक्षण।—वातज आमवातमें अधिक शूलवत् वेदना, पैत्तिकमें गात्र दाह, शरीर लाल होना, कफजमें गीला कपड़ा लपेटनेकी तरह अनुभव, गुरुता और कड़ु, यह सब लक्षण अधिक लक्षित होता है। दो दोष या तीन दोषके आधिक्यसे वही सब लक्षण मिले हुए मालूम होता है। एक दोषज आमवात साध्य, द्विदोषज याप्य और सन्निपातज तथा सर्व्व देह-गत शोथ लक्षणयुक्त आमवात असाध्य जानना।

चिकित्सा।—पीड़ाके प्रथम अवस्थाहीसे चिकित्सा करना चाहिये। नहीं तो कष्टसाध्य हो जाता है। लङ्घन, स्वेदन और विरेचन आमवातकी प्रधान चिकित्सा है। बालूकी पोटली गरमकर दर्दकी जगह सेकना, अथवा कपासकी बीज, कुरथी, तिल, यव, लाल रेड़ीका जड़, तीसी, पुनर्नवा और सनबीज, यह सब द्रव्य या इनमें से जय वस्तु मिले उसको कूट काञ्जीसे तरकर पोटली बनाना फिर एक हाँडीमें काञ्जी रख एक बहु छिद्र वाला-सिकोरा ढाक संयोग स्थानको मिट्टीसे बन्दकर देना, फिर वही काञ्जीकी हाँडी आगपर रख तथा ढकनेके उपर वह पोटली रख गरमकर आमवातमें सेकनेसे दर्द दूर होता है। इसको शङ्कर स्वेद कहते हैं। सोंवा, वच, सोंठ गोक्षुर, वरुण छाल, पीत बरियारा, पुनर्नवा, शठी, गन्दाली, जयन्ती फल और हींग यह सब

द्रव्य काञ्जीमें पीस गरमकर लेप करना। कालाजीरा, पीपल, करञ्जके बीजकी गूदी और सोंठ, समभाग अदरखके रसमें पीसकर लेप करनेसे भी दर्द जल्दी आराम होता है। तीनकांटेवाले सेहुडके दूधमें नमक मिलाकर दर्दकी जगह लगानेसे भी आराम होता है। विरेचनके लिये टगमूल और सोंठके काढेमें आधी छटाक या कोष्ठानुसार उससे कम मात्रा रेंडीका तेल अथवा केवल रेंडीका तेल गरम दूधके साथ पिलाना। त्रिवृतके जडका चूर्ण १२ मासे और सोंठ २ मासे, एकत्र मिलाकर चार या ६ आने मात्रा काञ्जीके साथ सेवन करनेसे भी विरेचनसे आमवात शान्त होता है, अथवा केवल त्रिवृत चूर्णको त्रिवृतके काढेकी भावना देकर उक्त मात्रा काञ्जीके साथ सेवन कराना। चीतामूल, कुटकी, अम्बष्ठा, इन्द्रयव, अतीस, और गुरिच, अथवा देवदारु, वच, मोथा, अतीस और हरीतकी, इन सबका चूर्ण गरम पानीके साथ पूर्व्वोक्त मात्रा सेवन करानेसे भी आमवात आराम होता है। रास्नापञ्चक, रास्नासप्तक, रसोनादि कषाय और महारास्नादि क्वाथ आमवातका श्रेष्ठ औषध है। विरेचनकी आवश्यकता होनेसे उपर कहे काढोंमें रेंडीका तेल मिलाकर पिलाना। हिङ्ग्वाद्य चूर्ण, अवलम्बुषाद्य चूर्ण, वैश्वानर चूर्ण, अजमोदादि वटिका, योगराज गुग्गुलु, वृहत् योगराज गुग्गुलु, सिंहनाद्य गुग्गुलु, रसोनपिण्ड, महारसोनपिण्ड, आमवातारि वटिका, वातगजेन्द्रसिंह, प्रसारणी तेल, वृहत् सैन्धवाद्य तेल, विजय भैरव तैल और वातव्याधि कथित कुल प्रसारणी और महामाष प्रभृति तेल आमवात रोगमें विचार कर प्रयोग करनेसे पीडा शान्त होता है। हमारा "वातारिमर्द्दन तैल" मालिश करनेसे आमवातका दर्द जलदी आराम होता है। गृध्रसी, पक्षाघात प्रभृति वातव्याधिके दर्दमें

"वातारिमर्द्दन तैल" व्यवहार करनेसे सब दर्द जल्दी आराम होता है।

पथ्यापथ्य।—ऊरुस्तम्भ रोगमें जो पथ्यापथ्य कह आये , आमवात रोगमें वही सब पालन करना। स्नान गरम पानी सेभी नही करना। रूई और फलालैनसे दर्दके स्थानको बांधना चाहिये। ज्वर होतो भात बन्दकर सूखी रोटी, सागू आदि हलका पथ्य देना।

—o—

शूलरोग।

—○—

संज्ञा और प्रकार भेद।—पेटमें शूल गडानेकी तरह दर्द जिस रोगमें होता है, उसको शूलरोग कहते है। यह रोग आठ प्रकारका है , वातज, पित्तज, द्वन्दज, वातपित्तज, वातश्लेष्मज, पित्तश्लेष्मज, सन्निपातज और आमदोषजात। इस आठ प्रकारके सिवाय परिणाम शूल और अन्नद्रव नामक और दो प्रकारका शूलरोग है। शूलरोग मात्र अतिशय कष्टदायक और कष्टसाध्य है।

निदान।—व्यायाम (कसरत) घोडा आदि सवारीपर घूमना, अति मैथुन, रात्रि जागरण, अतिशय शीतल जल पान, और मटर, मूग, अरहर, कोदो, रूक्ष द्रव्य, तिक्त द्रव्य, अङ्कुरित धानका भात आदि द्रव्य भोजन , सयोग विरुद्ध भोजन, पहिलेका आहार जीर्ण न होनेपर भोजन, मल, मूत्र, वायु और शुक्रका वेग रोकना, शोक, उपवास और अतिशय हसना या बोलना , यही

सब कारणोंसे वायु कुपित होकर वातज शूल उत्पन्न होता है। वातज शूलमें हृदय, पार्श्वद्वय, पीठ, कमर और वस्तिमें सूची वेधवत् या भङ्गवत् वेदना, मल और अधोवायुका रोध, आहार जीर्णहोनेपर, शीत और वर्षा ऋतुमें पीडा बढना, यही सब लक्षण प्रकाशित होते है।

पित्तजशूल।—क्षार, अति तीक्ष्ण और अति उष्ण द्रव्य भोजन, जिस द्रव्यका अम्लपाक हो ऐसा द्रव्य भोजन, सोम, पोसी तिल, कुरथी, उरदका जूस, चूइया और अम्ल रस, मद्य और तैल पान, क्रोध, रौद्र, अग्नि सन्ताप परिश्रम और अति मैथुन आदि कारणोंमे पित्त प्रकुपित हो पित्तज शूल उत्पन्न होता है। इसमें नाभिमे दर्द, तृष्णा, मोह, दाह, पसीना, मूर्च्छा भ्रम और शोष अर्थात् आगके पास रहनेसे जसे चूसनेकी तरह पीडा होती है वैसी पीडा, यही सब लक्षण लक्षित होते है। दोपहर, आधी रात, आहार पचनेके समय और शरत ऋतुमे यह शूल बढता है।

श्लेष्मज शूल।—जलज या जल समीपजात जीवका मास, फटा दूध, दही इक्षु रस, पिष्टक, खिचडी, तिल, तण्डुल और अन्यान्य कफ वर्द्धक द्रव्य भोजन करनेसे श्लेष्मा कुपित हो श्लेष्मज शूल उत्पन्न होता है। इससे आमाशयमें दर्द, जीमचलाना, कास, देहकी अवसन्नता, मुख और नासिकासे जलस्राव, कोष्ठकी स्तब्धता आदि लक्षण दिखाई देते है। आहार करने पर, सवेरे, शीत और वसन्त ऋतुमें कफज शूल अधिक प्रकुपित होता है।

त्रिदोषज शूल।—अपने अपने कारणसे वातादि तीन दोष एकसाथ कुपित होनेसे त्रिदोषज शूल पैदा होता है। इसमें उक्तसब लक्षण मिले हुए मालूम होते है। त्रिदोषज शूल असाध्य है।

आमज शूल लक्षण।—आमज अर्थात् अपक्क रसजात शूल रोगसे उदरमें गुड गुड शब्द होना वमन या वमन वेग, देहकी गुरुता, शरीर आर्द्रवस्त्र आच्छादनकी तरह अनुभव, मलमूत्र रोध, कफस्राव और कफज शूलके अन्यान्य लक्षणभी प्रकाशित होते हैं।

द्विदोषज।—द्विदोषज शूलमें वातकफज शूल वस्ति, हृदय, पार्श्व और पीठ, पित्तकफज शूल कुक्षि, हृदय और नाभि तथा वातपित्तज शूल पूर्व्वोक्त वातज पित्तज शूलके निर्दिष्ट स्थानमें उत्पन्न होता है। वातपैत्तिक शूलमें ज्वर और दाह अधिक होताहै।

उक्त शूलोंमें एक दोषजात शूल साध्य, दो दोषजात शूल कष्टसाध्य, त्रिदोषज तथा अतिशय वेदना, अत्यन्त पिपासा, मूर्च्छा, आनाह, देहको गुरुता, ज्वर, भ्रम, अरुचि, क्षशता और बलहानि आदि उपद्रवयुक्त शूलरोग असाध्य है।

परिणाम शूल।—आहारके परिपाक अवस्थामें जो शूल उत्पन्न होता, उसको परिणाम शूल कहते हैं। वायुवर्द्धक कारण समूह सेवित होनेसे वायु कुपित हो, कफ और पित्तको दुषित करनेसे यह शूल उत्पन्न होता है।

परिणाम शूलमे दोषाधिक्यके लक्षण।—परिणाम शूलमें वायुका आधिक्य रहनेसे उदराध्मान, पेटमें गुडगुड शब्द, मल मूत्रका रोध, मनकी अखस्थता और कम्प, यही सब लक्षण अधिक लक्षित होते हैं। स्निग्ध और उष्ण द्रव्य सेवन करनेसे इस शूलमें उपशम मालूम होता है। पित्तके आधिक्यसे तृष्णा, दाह, चित्तको अस्वस्थता, पसीना और शीतल क्रियामें पीडामें उपशम, यही सब लक्षण दिखाई देते है। कटु, अम्ल या लवण रस भोजनसे यह शूल उत्पन्न होता है। कफके आधिक्यसे वमन या वमनवेग, मूर्च्छा और अल्पक्षण स्थायी दर्द होता

है। कटु या तिक्त अन्न सेवन करनेसे इस शूलमें उपश
है। दो या तीन दोष मिले हुये लक्षण प्रकाशित होने
द्विदोषज या त्रिदोषज परिणाम शूलमें रोगीका बल म
अग्नि क्षीण होनेसे यह असाध्य जानना।

अन्नद्रव शूल लक्षण।—भुक्त द्रव्यका अपरिपाक
या परिपाकके समय अथवा अपक्व अवस्थामें जो अनिर्दि
उत्पन्न होता है उसको अन्नद्रव शूल कहते हैं यह शूल पथ
नाहिसे शान्त नहीं होता है। कै करानेसे कुछ आराम
होता है।

वातज शूल चिकित्सा।—शूलरोग उत्पन्न
चिकित्सा करना चाहिये। रोग पुराना होनेसे आराम
आशा नहीं रहती। वातज शूलमें पेटमें स्वेद करनेसे
मालूम होता है। मिट्टी पानीमें घोलकर आगपर रखक
गाढ़ा हो जाय तब वस्त्रकी पोटलीमें उसे रख सेंकना।
कपास बीज, कुरथी, तिल, जौ, एरण्डमूल, तीसी, पुनर्नव
शण बीज इन सब द्रव्योंमें जो मिले उसको काञ्जीमें पीस गर
पोटलीमें बांधकर सेंकनेसे उदर, मस्तक, केहुनी, चूतड, जा
अङ्गुलि, गुल्फ, कन्धा और कमर की दर्द जल्दी आराम हो
बिल्वमूल, तिल और एरण्डमूल एकत्र काञ्जीमें पीस गर
एक पिण्ड बनाना, वह पिण्ड पेटपर फिरानेसे शूल आराम
है। देवदारु, श्वेतवच, कूठ, सोवा, हींग और सेंधा
काञ्जीमें पीस गरम कर पेटपर लेप करनेसे वातज शूल
होता है। अथवा बेलकी जड, एरण्डकी जड, चितामूल,
हींग और सेंधा नमक एकत्र पीसकर पेटपर ठण्ढा लेप
बरियारा, पुनर्नवा, एरण्ड मूल, वृहती, कण्टकारी और

इसके काढेमें हीग और सेंधा नमक मिलाकर पिलाना। शोंठ, एरण्ड मूल यह दो द्रव्यका काढा हीग सौचल नमक मिलाकर पीनेसे तुरन्त शूल आराम होता है। हीग, थैकल, शोठ, पीपल, सौचल नमक, अजवाइन, यवाचार, हरीतकी और सैन्धव सबका समान वजन चूर्ण चार आनेभर माला ताडीके साथ पीनेसे वातज शूल आराम होता है। हीग, थैकल, शोठ, पीपल, गोलमिरच, अजवाईन, सैधव, सौचल और काला नमक, एकत्र बडे नीबूके रसमें पीसकर दो आने या चार आनेभर माला सेवन करनेसे भी वातज शूल शान्त होता है।

पित्तज शूल चिकित्सा।—पित्तज शूलमें परवरका पत्ता या नीमका कल्कयुक्त दूध, जल किम्वा इक्षुरस पिलाकर वमन कराना। मलबद्ध रहनेसे जेठोमध (मुलेठो) के काढेके साथ उपयुक्त माला एरण्ड तैल पिलाना। अथवा त्रिफला और अमिलतासके गूदेका काढा घी, चीनी मिलाकर पिलाना। इससे शूल दाह और रक्तपित्त आराम होता है। मवेरे सहतके साथ शतमूलीका रस, किम्वा चीनीके साथ आवलेका रस पीनेसे, अथवा सहतके साथ आवलेका चूर्ण चाटनेसे पित्तज शूल आराम होता है। शतमूली, जेठोमध, वरियारा, कुशमूल और गोक्षुर इसका काढा ठण्ढाकर पीनेसे पित्तज शूलकी दाहयुक्त पीडा दूर होती है। वृहती, कण्टकारी, गोक्षुर एरण्डमूल, कुश, काश और इक्षुवालिका, इन सबका काढा पीनेसे प्रवल पित्तज शूल भी शान्त होता है।

कफज शूल।—कफज शूलमें पहिले वमन और उपवास कराना। आमदोष हो तो मोथा, वच, कुटकी, हरीतकी और मूर्व्वाकी जड समान भाग पीस चार आनेभर माला

गोमूत्रके साथ पिलाना। पीपल, पीपलामूल, चाभ, चितामूल, शोंठ, सैंधव, सौचल नमक, काला नमक और हींग एकत्र चूर्णकर दो आने या चार आनेभर मात्रा गरम पानीके साथ सेवन कराना, अथवा वच, मोथा, चितामूल, हरीतकी, और कुटकी, इसका चूर्ण चार आनेभर, गोमूत्रके साथ सेवन कराना।

आमज शूल चिकित्सा।—आमज शूलकी भी चिकित्सा कफज शूलकी तरह करना। इसके सिवाय अजवाइन, सधा नमक, हरीतकी और शोंठ, एकत्र चूर्णकर चार आनेभर मात्रा ठण्ढे पानीके साथ सेवन कराना। जिस औषधसे अग्निमान्द्य और अजीर्ण रोगमें आमदोषका परिपाक और अग्नि वर्द्धित होता है आमज शूलमें भी वही औषध देना चाहिये।

त्रिदोष शूल चिकित्सा।—त्रिदोषज शूल, विदारीकन्दका रस २ तोले और पक्के अनार का रस २ तोले, शोंठ, पीपल, गोलमरिच और सेन्धा नमकका चूर्ण ⅄० भर तथा २ आनेभर मधु एकत्र मिलाकर पिलाना। शङ्खभस्म १ मासा, सैन्धव लवण, शोंठ, पीपल और गोलमरिच, इसका चूर्ण २ मासे और हींग २ या ३ रत्ती एकत्र मिलाकर गरम पानीके साथ सेवन करनेसे त्रिदोषज शूल शान्त होता है।

परिणाम शूल चिकित्सा।—परिणाम शूलमें परण्डमूल, बलकी जड, वृहती, कण्टकारी, बड़े नीबूकी जड, पाथरचूर और गोक्षुर मूल इन सबके काढ़में जवाखार, हींग, सैन्धव और एरण्ड तैल मिलाकर पिलाना। इससे दूसरे स्थानोका दर्दभी शान्त होता है। हरीतकी, शोंठ और मण्डूर चूर्ण प्रत्येक समभाग घृत और मधुके साथ सेवन करनेसे परिणाम शूल दूर होता है। शम्बुकादि गुडिका और नारिकेल क्षार परिणाम शूलकी श्रेष्ठ औषध है।

हमारा शूलनिर्व्वान चूर्ण ।—अतएव शूलमें अम्लपित्त रोगकी तरह चिकित्सा करना चाहिये। हमारा "शूलनिर्व्वान चूर्ण" सेवन करनेसे सब प्रकारका शूल रोग जलदी आराम होताहै।

शास्त्रीय औषध ।—सामुद्राद्य चूर्ण, तारामण्डुर गुड, शतावरी मण्डूर, बृहत् शतावरी मण्डूर, धात्री लौह (दोनो प्रकार) आमलकी खण्ड, नारिकेल खण्ड, बृहत् नारिकेल खण्ड, नारिकेलामृत, हरीतकी खण्ड, श्रीविद्याधराभ्र, शूलगजकेशरी, शूलवर्ज्जिनी वटी, पिप्पली घृत और शूलगजेन्द्र तैल यही सब औषध सब प्रकारके शूलरोगमें विचार कर देना। ग्रहणी रोगोक्त श्रीविल्व तैल भी शूल रोगमें विशेष उपकारी है।

पथ्यापथ्य ।—पीडाकी प्रबल अवस्थामें अन्नाहार बन्द कर दिनको दूध बार्लि, दूध सागु और रातको दूध और धानका लावा खानेको देना। पित्तज शूलमें जीमचलाना, ज्वर, अत्यन्त दाह और अतिशय तृष्णा उपद्रव हो तो सहत मिलाकर जौको लपसी पिलाना। हमारा "सञ्जीवन खाद्य" शूलके प्रबल अवस्थामें देनेसे विशेष उपकार होता है। पीडाकी शान्ति होनेपर दिनको पुराने चावलका भात, मागुर, सिङ्गी, कवई आदि छोटी मछलीका रस्सा, सूरण, यानी ओल, परवर, बैगन, गुल्लर, पुराना सफेद कोंहडा, सैजनका डण्डा, करेला, केलेका फुल आदिकी तरकारी, आवला केसरु, द्राक्षा, पक्का पपीता, नारियल और वेल आदि फल, गरम दूध, तिक्त द्रव्य, कच्चे नारियलका पानी और हींग आदि खानेको देना। तरकारी आदिमें सेंधा नमक मिलाना। तरकारी जितनी कम खाई जाय उतनाही अच्छा है। अर्थात् तरकारी बन्द कर केवल भातही खाना बहुत अच्छा है। रातको जौकी लपसी, दूध बार्लि, दूध सागु, दूध धानका लावा या हमारा

"सञ्जीवन खाद्य" खानेको देना। जलपानमें कोहड़ेका मुरब्बा, गंगेकी बरफी और आवलेका मुरब्बा खानेको देना। इस रोगमें आहारके साथ जलपान न कर आहारके दो घण्टा बाद पानी पीना उपकारी है। सहनेपर शीतल या गरम पानी से स्नान कराना।

निषिद्ध द्रव्य।—गुरुपाक द्रव्य भोजन, अधिक भोजन, सब प्रकारकी दाल, शाक, बड़ी मछली, दही, रुक्ष, कषाय और शीतलद्रव्य, अम्ल द्रव्य, लाल मिरचा, तेज शराब, धूपमें फिरना, परिश्रम, मैथुन, शोक, क्रोध, मलमूत्रका वेग रोकना, रात्रि जागरण, शूल रोगमें अनिष्टकारक है।

—o—

उदावर्त्त और आनाह।

—o—

संज्ञा उदावर्त्त।—अधोवायु, मल, मूत्र, जृम्भा, अश्रु, छींक, डकार, जोमचलाना, शुक्र, क्षुधा, तृष्णा, दीर्घश्वास और निद्रा, इन सबका वेग धारण करनेसे जो जो रोग उत्पन्न होता है उसको उदावर्त्त कहते हैं।

भिन्न भिन्न वेग रोधमें पीड़ाके लक्षण।—अधोवायुका वेग रोकनेसे वायु, मूत्र और मलका रोध, पेटका फूलना, क्लान्ति, उदर और सर्व्वाङ्गमें दर्द, तथा अन्यान्य वातज रोग उत्पन्न होता है। मलवेग रोकनेसे पेटमें गुड़ गुड़ शब्द और शूलवटना, गुदा काटनेकी तरह दर्द मलरोध, डकार और कभी कभी मुंहमें मल निकलना, यही सब लक्षण प्रकाशित होते हैं।

मूत्रवेग रोकनेसे मूत्राशय और लिङ्गमें शूल की तरह कष्टसे मूत्र आना या मूत्ररोध, शिरःपीड़ा, कष्टसे शरीरका बेकाबू होना और वक्षण या (दोनो पट्ठों) में खोचनेकी तरह कष्ट होता है। जम्हाईका वेग रोकनेसे वायुजनित मन्यास्तम्भ, गलस्तम्भ, शिरोरोग और आंख, कान, नाक और मुखरोग उत्पन्न होता है। आनन्द या शोकादि कारणोंसे आंसुका वेग रोकनेसे, मस्तकका भारी होना अति कष्टदायक पीनस और चक्षु रोग उत्पन्न होता है। छींकका वेग रोकनेसे मन्यास्तम्भ, शिरःशूल, अर्द्दित रोग, अर्द्धावभेदक (आधा शीशी) और इन्द्रियोंकी दुर्ब्बलता यही सब लक्षण लक्षित होते है। डकारका वेग रोकनेसे कण्ठ और मुख भरा रहना, हृदय और आमाशयमें सूची वेधवत् वेदना, अस्पष्ट वाक्य, निःश्वास प्रश्वासमें कष्टबोध, खजुली, कोठ, अरुचि, सेहुआ आदि मुखमें काला काला दाग, शोथ, पाण्डुरोग, ज्वर, कुष्ठ, जीमचलाना और विसर्प रोग उत्पन्न होता है। शुक्रवेग रोकनेसे मूत्राशय, गुह्य और अण्डकोषमें शोथ, दर्द, मूत्ररोध, शुक्राश्मरी, शुक्र क्षरण और नानाप्रकार कष्टसाध्य मूत्राघात रोग उपस्थित होता है। भूख रोकनेसे अर्थात् भूख लगने पर भोजन नहीं करनेसे तन्द्रा, अङ्गोंमे दर्द, अरुचि, श्रान्ति और दृष्टिशक्तिकी दुर्ब्बलता आदि उत्पन्न होते है। प्यास रोकनेसे कण्ठ और मुखमें शोष, श्रवणशक्तिका नाश और छातीमें दर्द यही सब लक्षण प्रकाशित होते है। परिश्रमकी बाद दीर्घश्वासका वेग रोकनेसे हृद्रोग, मोह और गुल्मरोग उत्पन्न होता है। निद्रारोधसे जम्हाई, अङ्गमर्द, आंख और शिरका भारीपन तथा तन्द्रा उपस्थित होता है।

अन्यविध प्रकार भेद।—उपर कहे उदावर्त्त के सिवाय कोष्ठाश्रित वायु, रुक्ष और कषाय, कटु, और तिक्त द्रव्य भोजनादि

कारणोंसे कुपित हो और एक प्रकारका उदावर्त्त रोग उत्पन्न होता है। उसमें भी वही कुपित वायुसे वात, मूत्र, मल, रक्त, कफ और मेदोवहा स्रोत समूह आवृत और सूख जाता है, इससे हृदय और वस्तिमें दर्द, जीमचलाना, अति कष्टसे वात, मूत्र पुरीषका निकलना और क्रमश श्वास, काम, प्रतिश्याय, दाह, मूर्च्छा, तृष्णा, ज्वर, वमन, हिचकी, शिरोरोग, मनकी भ्रान्ति, श्रवण इन्द्रियकी विकृति और अन्यान्य विविध वातज रोग उत्पन्न होते है।

आनाह संज्ञा और लक्षण।—आहार जनित अपक्व रस या पुरीष क्रमश सञ्चित और विगुण वायु कर्तृक बद्ध हो यथायथ रूपसे नही निकले तो उसको आनाह रोग कहते है। अपक्व रस जनित आनाहमें तृष्णा, प्रतिश्याय मस्तकमें जलन, आमाशयमें शूल और भारीपन, हृदयमें स्तब्धता और डकार बन्द होना आदि लक्षण उत्पन्न होते है। मल सञ्चय जनित आनाह रोगमें कमर और पीठकी स्तम्भता मल मूत्रका रोध शूल, मूर्च्छा, विष्ठावमन, शोथ, आध्मान, अधोवायुका रोध और अलसक रोगोक्त अन्यान्य लक्षण भी प्रकाशित होते है।

उदावर्त्त चिकित्सा।—वायु अनुलोमक विधान ही उदावर्त्तकी साधारण चिकित्सा है। अधोवातरोध जन्य उदावर्त्तमें स्नेह पान, स्वेद और वस्ति (पिचकारी) प्रयोग करना। मयन फल, पीपल, कूट, बच, और सफेद सरसो हरेकका समभाग सबके समान गुड, पहिले गुड पानीमें घोलकर आगपर रखना, खूब औटनेपर थोडा दूध और वही सब चूर्ण मिलाकर बत्ती बनाना इसीको फलवर्त्ती कहते है। गुह्यद्वारमें यह वर्त्ती प्रयोग करनेसे सब प्रकारके उदावर्त्त रोग आराम होता है। मल वेग धारण जन्य उदावर्त्त रोगमें विरेचन और फलवर्त्ती देना, बदनमें

तैल मर्द्दन, अवगाहन, स्वेद और वस्तिकर्म्म करना चाहिये। मूत्र वेग रोध जन्य उदावर्त्तमें अर्ज्जुन छालका काढा, ककडीके बीजका चूर्ण थोडा नमक मिला पानीके साथ सेवन, अथवा बचका चूर्ण सेवन कराना। मूत्रकृच्छ्र और अश्मरी रोगोक्त सब औषध इसमें प्रयोग कर सकते है। जृम्भा वेग धारणके उदावर्त्तमे स्नेह, स्वेद और वायु नाशक अन्यान्य क्रिया भी करना। अश्रुवेग धारण जनित उदावर्त्तमे तीक्ष्ण अञ्जनादिसे अश्रु निकालकर रोगीको प्रसन्न रखना। छींक रोधमें मरिचादि तीक्ष्ण द्रव्यका नास या सूर्य्य दर्शण आदि क्रियासे छींकना चाहिये। डकार रोधमें गुरिच, भूमि-कुष्माण्ड, असगन्ध, अनन्तमूल, शतमूली (प्रत्येक २ भाग) माष-पर्णी, जीवन्ती और जेठीमध यह सब द्रव्य पीसकर वसा, घृत या मोमके साथ मिलाना फिर उसको बत्ती बनाकर चुरटकी तरह पीना। वमन वेग रोध जन्य उदावर्त्तमे वमन, लङ्घन, विरेचन और तैल मर्द्दन हितकारी है। शुक्रवेग धारण जन्य उदावर्त्तमें मैथुन, तैल मर्द्दन, अवगाहन, मद्यपान, मास रस प्रभृति पुष्टिकर भोजन और पञ्च तृण मूलका कल्क चौगूने दूधमें औटाना दूध रहजानेपर वही दूध छानकर पिलाना। क्षुधा रोध जन्य उदावर्त्तमें स्निग्ध, उष्ण और रुचिजनक अन्न थोडा भोजन तथा सुगन्ध द्रव्य सूंघना भी उपकारी है। तृष्णा वेग धारणके उदा-वर्त्तमें कर्पूर मिला पानी या बरफका पानी, या यवागु पिलाना तथा सब प्रकारको शीतलक्रिया इसमे उपकारी है। श्रमजन्य श्वास रोधज उदावर्त्तमे विश्राम करना और मास रसके साथ अन्न भोजन करनेको देना। निद्रा रोधजन्य उदावर्त्तमे चीनी मिला दूध पान, सम्वाहन (हाथ पर दबाना) और सुखप्रद बिछौने पर सोना आदि उपाय करना चाहिये रुक्ष द्रव्यादि सेवनके उदावर्त्तमे

पूर्व्वोक्त फलवर्त्ती या हींग महत और मंधा नमक एकत्र पीसकर बत्ती बनाना, फिर बत्तीमें घी लगाकर गूदामें रखना।

आनाह चिकित्सा।—आनाह रोगमेंभी उदावर्त्तकी तरह वायुकी अनुलोमता साधन और बस्तिकर्म्म तथा बर्त्ती प्रयोग आदि उपकारी है। त्रिवृत चूर्ण २ भाग, पीपल ४ भाग, हरीतकी ५ भाग और सबके समान गुड़, एकत्र मर्द्दन कर चार आने या आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे आनाह रोग शान्त होता है। वच हरीतकी, चितामूल, जवाखार, पीपल, अतीस और कूठ समभाग सबका चूर्ण चार आने या दो आनेभर मात्रा सेवन करना। इसके सिवाय नाराचचूर्ण, गुड़ाष्टक, वैद्यनाथ बटी, बृहत् इच्छाभेदी रस, शुष्कमूलाद्यघृत और स्थिराद्यघृत, उदावर्त्त और आनाह रोगमें प्रयोग करना। हमारी सरलभेदीवटिका सेवन करनेसे कलका जुलाव हो उदावर्त्त और आनाह रोगमें विशेष उपकार होता है।

पथ्यापथ्य।—उदावर्त्त और आनाह रोगमें वायु शान्तिकारक अन्नपानादि आहार कराना। पुराने चावलका गरम भात घी मिलाकर खाना। कवई, मागुर, शिङ्गी और मौरला आदि छोटी मछलीका शुरवा, छागमांस और शूलरोगोक्त तरकारी समूह और दूध आहार उपकारी है। मांस दूध एक साथ खाना अनिष्टकारक है। मिश्रीका शरबत्, कच्चे नारियलका पानी पक्का पपीता, शरीफा, इक्षु, पेठाना, अनार आदि खानेको देना। रातको भूख हो तो यही सब अन्न खानेको देना। भूख अच्छी तरह न लगे तो दूधसागु, जौके आटेकी लपसी या दूध धानका लावा किम्बा थोड़ा मोहनभोग खानेको देना। मलनेपर ठण्ढा या गरम पानीसे स्नान, तैलमर्द्दन, तीसरे पहरकी हवामें फिरना आदि उपकारी है।

निषिद्ध कर्म्म।—देरसे हजम होनेवाला पदार्थ, उष्णवीर्य्य

या रूक्ष द्रव्य भोजन, रात्रि जागरण, परिश्रम, कसरत, पैदल चलना और क्रोध, शोक आदि मनोविघात कार्य्य करना इस रोगमें अनिष्टकारक है।

गुल्मरोग।



संज्ञा पूर्व्व लक्षण और प्रकार भेद।—हृदय, पार्श्वद्वय, नाभि और वस्ति इन पाचोंके भीतरी भागमें एक गोल गाठ पैदा होनेसे उसको गुल्मरोग कहते हैं। गुल्मरोग उत्पन्न होनेसे पहिले अधिक डकार आना, मलरोध, भोजनमें अनिच्छा, दुर्ब्बलता, उदराध्मान, पेटमें दर्द, गुड गुड शब्द होना और अग्निमान्द्य यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होतेहैं। गुल्म रोग पाच प्रकार, वातज, पित्तज, श्लेष्मज, सान्निपातज और रक्तज। मल, मूत्र और अधोवायुका कष्टसे निकलना, अरुचि, अन्त्र कुजन, आनाह और वायुका ऊर्द्ध गमन, यही सब गुल्मरोगके साधारण लक्षण है। प्राय सब प्रकारके गुल्मरोगमे यही सब लक्षण प्रकाशित होता है।

वातज गुल्मके निदान और लक्षण।—अधिक या अल्प अथवा अनिर्दिष्ट समयमे रूक्ष अन्न, पान, भोजन, बलवान् मनुष्यके साथ युद्ध विग्रहादि कार्य्य, मल मूत्रका वेग धारण, शोक, आघातप्राप्ति, विरेचनादिसे अतिशय मलक्षय और उपवास, यही सब कारण से वातज गुल्म उत्पन्न होताहै। इस गुल्मकी अवस्थितिको स्थिरता नही है, कभी नाभिमे कभी पार्श्वमें, कभी वस्तिमें घूमता रहता है। इसको आकृतिभी सर्व्वदा एक प्रकारकी नही रहती है। कभी बडा कभी छोटा होता रहता है। नाना

प्रकार यातना, मलरोध, अधोवायुका रोध, मुख और गलनालीका सूखना, शरीर श्याम या अरुणवर्ण, शीतज्वर, हृदय, कुक्षि स्कन्ध और मस्तकमें अत्यन्त दर्द तथा आहार पचने पर पीडाका अधिक प्रकोप आहार करते ही पीडाका शान्त होना।

पैत्तिक गुल्मके निदान और लक्षण।—कटु अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण विदाही (जो सब द्रव्यका अम्ल पाक होता है) और रूक्षद्रव्य भोजन, क्रोध, अधिक मद्यपान, अत्यन्त धूप या अग्नि-सन्ताप सेवन, विदग्धाजीर्ण जनित अपक्व रसका आधिक्य और दूषित रक्त, यही सब कारणोंसे पैत्तिक गुल्म उत्पन्न होताहै इसमें ज्वर, पीपासा समस्त अङ्ग विशेषकर मुखका लाल होना, आहार परिपाकके समय अत्यन्त दर्द, पसीना निकलना, जलन और गुल्म स्थान छूनेसे अत्यन्त दर्द होता है। यह गुल्म कदाचित पकतेभी देखा गया है।

कफज गुल्मके निदान और लक्षण।—शीतल गुरु-पाक और स्निग्धद्रव्य भोजन, परिश्रम शून्यता अधिक भोजन और दिवा निद्रा यही सब कारणोंसे कफज गुल्म उत्पन्न होता है। इस मे शरीर आर्द्रवस्त्रसे आहृतकी तरह अनुभव शीत-ज्वर, शारीरिक अवसन्नता, वमन वेग, कास, अरुचि शरीरका भारबोध, शीतानुभव, अल्पवेदना, तथा गुल्म कठिन और उन्नत होताहै।

द्विदोषज और त्रिदोषज गुल्म लक्षण।—दो दोष वर्द्धक कारण मिश्रित भावसे सेवन करनेसे द्विदोषज गुल्म उत्पन्न होताहै। इसमें वही सब दोषके लक्षण मिले हुए मालूम होते हैं। त्रिदोषज गुल्म भी वैसे ही तीन दोष वर्द्धक कारणसे उत्पन्न होता है। इस गुल्ममें अत्यन्त दर्द और दाह, पत्थरकी तरह कठिन भयङ्कर कष्टदायक और मन, शरीर, अग्निबलका क्षयकारक होता

है। यह गुल्म बहुत जल्दी पक जाता है। त्रिदोषज गुल्म असाध्य है।

रक्तगुल्मका निदान और लक्षण।—अपक्व गर्भ-स्राव किम्वा उचित समय पर प्रसव न होनेसे, अथवा ऋतुकालमें अहितकर आहार विहारादि आचरण करनेसे वायु कुपित हो रजो रक्तको दूषित करता है, इससे गर्भाशयमें रक्तगुल्म पैदा होता है। इसमें अत्यन्त दाह, दर्द और पैत्तिक गुल्मके अन्यान्य लक्षण भी दिखाई देते हैं। इसके सिवाय ऋतुबन्द होना, मुख पीला, स्तनका अग्रभाग काला, स्तनसे दूध निकलना, विविध द्रव्य भोजन की इच्छा, मुखसे जलस्राव, आलस्य आदि सब गर्भके लक्षण मालूम होते हैं, पर गर्भलक्षणके साथ केवल यही प्रभेद रहता है कि गर्भ-स्पन्दनमें किसी तरहका दर्द नहीं होता है और गर्भके बालकका सब अङ्ग एक ही वक्त स्पन्दित न हो हाथ पैर आदि एक एक अङ्ग स्पन्दित होता है। रक्तगुल्मके समस्त पिण्डमें दर्द और देरतक स्पन्दित होता रहता है।

असाध्य साङ्घातिक गुल्म।—गुल्म क्रमश सञ्चित होकर यदि समस्त उदरमें व्याप्त होकर रस रक्तादि धातुका आश्रय ले, शिरा समूहोंसे आच्छादित और कछुवेकी तरह बडाही और इसके साथ साथ यदि दुर्व्वलता, अरुचि, वमन वेग, वमि, कास, बेचैनी, ज्वर, तृष्णा, तन्द्रा और मुख नाकसे जलस्राव यह सब लक्षण प्रकाशित हो तो गुल्मरोग असाध्य जानना। गुल्म रोगी का हृदय, नाभि, हाथ और पैरमें शोथ तथा ज्वर, श्वास, वमन और अतिसार अथवा श्वास, शूल, पीपासा, अरुचि, अकस्मात् गुल्मका विलीन होना और दुर्व्वलता आदि लक्षण प्रकाशित होनेसे रोगीकी मृत्यु जानना।

गुल्म चिकित्सा।—गुल्मरोगमें पहिले वायुकी शान्तिका उपाय करना चाहिये। जहां दोषविशेषके लक्षणसमूह स्पष्ट प्रकाशित न हो कौन दोषज गुल्म है इसका निर्णय न हो वहां वायु शान्तिका औषधादि प्रयोग करना। कारण वायुको शान्त करनेहोसे अन्यान्य दोष सब सहजमें शान्त होता है। दूध और बड़ी हर्रके चूर्णके साथ रेंडीका तेल पान करना और स्नेह स्वेद वातज गुल्ममें उपकारी है। सज्जीखार २ मासे, कूठ २ मासे और केतकीकी जटाका चार ४ मासे रेंडीके तेलके साथ मिलाकर पीनेसे वातज गुल्म आराम होता है। सोंठ ४ तोले, सफेद तिल १६ तोले और पुराना गुड़ ८ तोले एकत्र पीसकर आधा तोला या एक तोला मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे वातज गुल्म, उदावर्त्त और योनिशूल आराम होता है। पैत्तिक गुल्ममें विरेचन उपकारी है। त्रिफलाके काढेके साथ त्रिवृत चूर्ण अथवा पुराने गुड़के साथ हरीतकी चूर्ण सेवन करनेसे विरेचन हो पित्तज गुल्म शान्त होता है। गुल्म रोगमें दाह, शूलकी तरह दर्द, स्तब्धता, निद्रानाश अस्थिरता और ज्वर प्रकाश होनेसे गुल्म पकनेपर है समझना, तब उसमें व्रण पकानेके लिये उचित औषध देना और पकजानेपर अन्तर्विद्रधिकी तरह चिकित्सा करना। कफज गुल्ममें वमन, उपवास और स्वेद देना चाहिये। अग्निमान्द्य, थोड़ा दर्द, कोष्ठ भा॰बोध, शरीर गीले वस्त्रसे आच्छादितकी तरह अनुभव, जीमचलाना, अरुचि आदि उपद्रवमें वमन कराना। बेल, श्योनाक, गाम्भारी, पाटला और गणियारी इन सबकी जड़का काढा पीना कफज गुल्ममें हितकर है। अजवाइनका चूर्ण और काला नमक दहीके मट्ठेके साथ पीनेसे अग्निकी दीप्ति और वायु, मूत्र, पुरीषका अनुलोम होता है। कफज गुल्ममें तिल, एरण्डबीज और

सरसो पोसकर गरम लेपकार लोहेके पात्रसे सेकना उपकारी है। हीग, कूठ, धनिया, हरीतकी, त्रिहतकी जड कालानमक, सेन्धा नमक, जवाखार और शोंठ, यह सब द्रव्य घीमें भूज चूर्ण करना फिर दो आने या चार आने मात्रा जौके काढेके साथ सेवन करनेसे गुल्म और तज्जनित उपद्रव दूर होता है। सज्जीखार आधा तोला और पुराना गुड आधा तोला एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे गुल्मरोग शान्त होता है। रक्त गुल्मकी चिकित्सा ११ महीनेके पीछे करना चाहिये कारण यह रोग पुराना होनेहीसे जलदी आराम होता है। इसमे 'पहिले स्नेहपान, स्वेद और स्निग्ध विरेचन देना चाहिये। सोवा, करञ्जकी छाल, देवदारु, बभनेठी और पीपल समभाग पीसकर त्रिफलाके काढेके साथ पीनेसे रक्त-गुल्म आराम होता है, अथवा तिलके काढेके साथ पुराना गुड, हीग और बभनेठीका चूर्ण सेवन कराना। गोलमिरच चूर्णके साथ आवलेका रस पीनेसे भी उपकार होता है।

शास्त्रीय औषध।—हिङ्ग्वादि चूर्ण, वचादि चूर्ण, लवङ्गादि चूर्ण, वज्रखार, दन्ती हरीतकी, काकायन गुडिका, पञ्चानन-रस, गुल्म कालानल रस, बृहत् गुल्मकालानल रस, त्र्यूषणाद्य घृत, नाराच घृत, त्रायमाणाद्य घृत और वायु शान्तिकारक स्वल्प विष्णु तैल आदि कई तैल गुल्मरोगमें विचार कर प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—जो सब द्रव्य वायु शान्तिकारक है वही गुल्मरोगका साधारण पथ्य है। पित्तज और कफज गुल्ममें जो सब द्रव्य पित्त और कफका अनिष्ट कारक नही है तथा वायु शान्तिकारक है ऐसा आहार देना चाहिये। दिनको पुराने महीन चावलका भात, घी, तित्तिर, मुरगा, वत्तक और छोटे पक्षीका

मूल, वरियारा या मुलेठीके साथ दूध औटाकर वही दूध चीनी मिलाकर पिलाना। कफज हृद्रोगमें तिहत, शठी, वरियारा, रास्ना, हरीतकी और कूठका समभाग चूर्ण दो आने या चार आनेभर मात्रा गोमूत्रके साथ पीना। छोटी इलायची और पीपलका चूर्ण दो आनेभर घीके साथ मिलाकर चाटनेसे कफज हृद्रोग आराम होता है। हींग, वच, काला नमक, शोंठ, पीपल, हरीतकी, चितामूल, जवाखार, सोचल नमक और कूठ इन सबका समभाग चूर्ण ।) आनेभर मात्रा जौके काढ़ेके साथ सेवन करनेसे त्रिदोषज हृद्रोग भी आराम होता है। क्रिमिजात हृद्रोगमें विडङ्ग और कूठ चूर्ण दो आनेभर मात्रा गोमूत्रके साथ पीनेसे तथा क्रिमि रोगके अन्यान्य औषधसे भी आराम होता है। ककुभादि चूर्ण, कल्यानसुन्दर रस, चिन्तामणि रस, हृदयार्णव रस, विश्वेश्वर रस, श्वदंष्ट्राद्य घृत और अर्जुन घृत आदि हृद्रोगके श्रेष्ठ औषध है। वृहत् छागलाद्य घृत भी हृद्रोगमें प्रयोग कर सकते है।

विभिन्न कारणज वेदना चिकित्सा।—

छातीमें चोट लगनेसे और कास या रक्तपित्त पीडाके पहिले छातीमें दर्द हो तो छातीमें तार्पिन तेल मालिश कर पोस्तके ढेढोके काढेमें फलालेन या कम्बल भिङ्गो निचोड कर सेंकना चाहिये। अदरख दो भाग और अरवा चावल एक भाग एकत्र पीसकर गरम लेप करना। कूठका चूर्ण सहतके साथ चाटना। दशमूलका काढा सैन्धव और जवाखार मिलाकर पिलाना। लक्ष्मीविलास औषध सेवन और महादशमूल तैल किम्वा कास रोगोक्ता ादि तैल छातीमें मालिश करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—स्निग्ध पुष्टिकर और लघु आहार हृद्रोगमें हित, ज्वरादि कोई उपसर्ग न रहनेसे वातव्याधि की तरह

छिन्न, शलाका द्वारा स्फुटित, अथवा कुठारसे पाटितकी तरह अनुभव होता है। पित्तज हृद्रोगमें हृदयमें ग्लानि, शरीर चूसनेकी तरह दर्द, सन्ताप, दाह, तृष्णा, कण्ठसे धुआ निकलनेकी तरह अनुभव, मूर्च्छा, पसीना होना और मुख सूख जाता है। कफज हृद्रोगमें शरीर भारबोध, कफस्राव, अरुचि, जड़ता, अग्निमान्द्य और मुखका स्वाद मीठा होता है। त्रिदोषज हृद्रोगमें ऊपर कहे तीनो रोगके लक्षण मिले हुए मालूम होता है। त्रिदोषज हृद्रोग उत्पन्न होनेपर यदि तिल, दूध, गुड़ प्रभृति क्रिमिजनक आहारादि अधिक खानेमें आवे तो हृदयके किसी स्थानमें एक गांठ उत्पन्न हो उसमेंसे क्लेद और रस निकलता है, तथा उसी क्लेदादिसे क्रिमि उत्पन्न हो क्रिमिज हृद्रोग उत्पन्न होता है। इससे छातीमें तीव्र वेदना, सूची वेधवत् यातना, कण्डू, वमनवेग, मुखसे कफस्राव, शूल, छातीके रसका वमन, अन्धकार देखना, अरुचि, दोनो आखे कालो और शोथयुक्त, यही सब लक्षण प्रकाशित होता है। क्लान्ति-बोध, देहकी अवसन्नता, भ्रम, शोष और कफज क्रिमिके कई उपद्रव इस हृद्रोगके उपद्रव रुपसे प्रकाशित होता है।

चिकित्सा।—हृद्रोगमें अग्निवृद्धिकारक और रक्तजनक औषधादि प्रयोग करना आवश्यक है। घृत, दूध किम्बा गुड़के साथ अर्ज्जुन छालका चूर्ण ।) आनेभर सेवन करनेसे हृद्रोग, जीर्ण-ज्वर और रक्तपित्त शान्त होता है। कूठ, बड़े नीबूकी जड़, सोंठ, शठी और हरीतकी समभाग एकत्र पीसकर दूध, काञ्जी, घृत और लवण मिलाकर सेवन करनेसे वायुजन्य हृद्रोग प्रशमित होता है। हरीतकी, बच, 'रास्ना', पीपल, सोंठ, शठी और कूठका समभाग चूर्ण दो आनेसे चार आनेभर माला पानीके साथ सेवन करनेसे हृद्रोग दूर होता है। पित्तज हृद्रोगमें अर्ज्जुन छाल, खस पञ्च-

मूल, बरियारा या मुलेठोके साथ दूध औटाकर वही दूध चाना मिलाकर पिलाना। कफज हृद्रोगमें तिह्नत, शठो, बरियारा, रास्ना, हरोतको और कूठका समभाग चूर्ण दो आने या चार आनेभर मात्रा गोमूत्रके साथ पोना। छोटो इलायची और पीपलका चूर्ण दो आनेभर घोके साथ मिलाकर चाटनेसे कफज हृद्रोग आराम होता है। हींग, बच, काला नमक, शोंठ, पीपल, हरोतकी, चितामूल, जवाचार, सौचल नमक और कूठ इन सबका समभाग चूर्ण ।) आनेभर मात्रा जौके काढेके साथ सेवन करनेसे त्रिदोषज हृद्रोग भी आराम होता है। क्रिमिजात हृद्रोगमें विडङ्ग और कूठ चूर्ण दो आनेभर मात्रा गोमूत्रके साथ पोनेसे तथा क्रिमि रोगके अन्यान्य औषधसे भी आराम होता है। ककुभादि चूर्ण, कल्यानसुन्दर रस, चिन्तामणि रस, हृदयार्णव रस, विश्वेश्वर रस, श्वदंष्ट्राद्य घृत और अर्जुन घृत आदि हृद्रोगके श्रेष्ठ औषध हैं। वृहत् छागलाद्य घृत भी हृद्रोगमें प्रयोग कर सकते हैं।

विभिन्न कारणज वेदना चिकित्सा।—

छातीमें चोट लगनेसे और कास या रक्तपित्त पीडाके पहिले छातीमें दर्द हो तो छातीमें तार्पिन तेल मालिश कर पोस्तके ढेढोंके काढेमें फलालेन या कम्बल भिङ्गो निचोड कर सेंकना चाहिये। अदरख दो भाग और अरवा चावल एक भाग एकत्र पीसकर गरम लेप करना। कूठका चूर्ण सहतके साथ चाटना। दशमूलका काढ़ा सैन्धव और जवाचार मिलाकर पिलाना। लक्ष्मीविलास रस औषध सेवन और महादशमूल तैल किम्बा कास रोगोक्त चन्दनादि तैल छातीमें मालिश करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—स्निग्ध पुष्टिकर और लघु आहार हृद्रोगमें देना चाहिये, ज्वरादि कोई उपसर्ग न रहनेसे वातव्याधि को तरह

पथ्यापथ्य प्रतिपालन करना चाहिये। छातीके दर्दमें रक्तपित्त और कासरोगोक्त पथ्य व्यवस्था करना।

निषिद्ध कर्म्म।—रुक्ष या अन्यान्य वायुवर्द्धक द्रव्य भोजन, उपवास और परिश्रम, रात्रिजागरण, अग्नि और धूपमें बैठना, मैथुन आदि इस रोगमें अनिष्टकारक है।

मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात।

संज्ञानिदान और प्रकारभेद।—जिस रोगमें अतिशय कष्टसे पिशाव हो उसको मूत्रकृच्छ्र कहते है। तीक्ष्णद्रव्य या तीक्ष्ण औषध सेवन, रुखा अन्न भोजन, रुखी शराब पीना, जलाभूमिजात * जीवका मांस भोजन, पहिलेका खाया अन्न न पचनेपर फिर आहार करना, अरुचि, कसरत, घोडा आदि तेज सवारी पर चढना, मलमूत्रका वेग धारण आदि कारणोसे यह रोग उत्पन्न होता है। मूत्रकृच्छ्र आठप्रकार, वातज, पित्तज, कफज, सन्निपातज, आगन्तुक, पूरीषज, अश्मरीज और शुक्रज।

विभिन्न दोषजात रोग लक्षण।—वातज मूत्रकृच्छ्रमें दोनो पट्ठा, वस्ति और लिङ्गमें अत्यन्त दर्द और बार बार थोडा २ पिशाव होता है। पित्तजमें दर्द और जलनके साथ बार बार पीला या रक्तवर्ण पिशाव होता है। कफजमें लिङ्ग और बस्तिमें भारबोध, शोथ और पिच्छिल मूत्र होता है। सन्निपातज मूत्रकृच्छ्रमें उक्त

* बरसातके पानीसे डुबे हुये स्थानको जलाभूमि कहते है।

तीन दोषके लक्षण मिले हुए मालूम होता है। मूत्रवहा स्रोत काटेसे क्षत या किसी तरह चोट लगनेसे जो मूत्रकृच्छ्र रोग उत्पन्न होता है उसको आगन्तुक मूत्रकृच्छ्र कहते है। इसमे वातज मूत्रकृच्छ्रके लक्षण लक्षित होता है। मलका वेग धारण करनेसे उदराधान और शूलयुक्त एकप्रकारका मूत्रकृच्छ्र उत्पन्न होता है उसको पुरीषज मूत्रकृच्छ्र कहते है। अश्मरी अर्थात् पथरी रोगमे जो मूत्रकृच्छ्र होता है उसको अश्मरी कहते है। इसमे छातीमें दर्द, कम्प, कुक्षिशूल, अग्निमान्द्य और मूर्च्छा यही सब लक्षण प्रकाशित होता है। दूषित शुक्र मूत्रमार्गमे उपस्थित होनेसे शुक्रज मूत्रकृच्छ्र पैदा होता है। इसमें वस्ति और लिङ्गमें शूलवत् दर्द तथा अति कष्टसे पिशाब होता है।

मूत्राघात लक्षण।—पिशाब रुक रुक कर थोडा थोडा होना या पिशाब बन्द होनेसे उसको मूत्राघात कहते है। मूत्रकृच्छ्रकी अपेक्षा इस रोगमें पिशाबमें कष्ट कम होता है, इसका और मूत्रकृच्छ्र दोनोका निदान एकही प्रकार है। प्रमेहसे भी यह रोग होते देखा गया है। बूद बूद पिसाब होना, मूत्रके साथ रक्तजाना मूत्राशय फूलना, आधान, तीव्र वेदना, वस्तिमें पत्थरकी तरह गाठका पैदा होना, गाढा पिशाब होना, मलगन्धि या मलमिश्रित पिशाब होना आदि नाना प्रकारके लक्षण मूत्राघात रोगमें प्रकाशित होता है। सब प्रकारका मूत्राघात अतिशय कष्टदायक और कष्टसाध्य है।

विभिन्न दोषज मूत्रकृच्छ्र चिकित्सा।—वातजनित मूत्रकृच्छ्रमें गुरिच, सोंठ, आवला, असगन्ध, और गोखरूके काढेके साथ महत मिलाकर पीना। पित्तज मूत्रकृच्छ्रमें शतमूलोके रसमें चीनी मिलाकर पीना। ककडीको बीज मुलेठी

और दारु हलदीका चूर्ण अरवा चावलके धोवनके साथ अथवा दारुहलदीका चूर्ण सहत और आंवलेके रसमें मिला कर पीनेसे पित्तज मूत्रकृच्छ्र आराम होता है। शतावर्य्यादि और हरीतक्यादि काढा पित्तज मूत्रकृच्छ्रमें विशेष उपकारी है। कफज मूत्रकृच्छ्रमें शमालुकी बीज मट्ठेके साथ, अथवा प्रवाल चूर्ण अरवा चावलके धोवनके साथ किम्वा गोखरूचूर्ण शोंठके काढाके साथ पीना। त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्रमें वृहती, कण्टकारी, अम्बष्ठादि, मुलेठी और इन्द्रयवका काढा पीना। आगन्तुक मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा वातज मूत्रकृच्छ्रकी तरह करना। गोखरू बीजके काढेमें जवाक्षार मिलाकर पीनेसे पूरीषज मूत्रकृच्छ्र आराम होता है। अश्मरीज मूत्रकृच्छ्रमें गोखरू बीज, अमिलतासकी गूदी कुश, कास, जवासा, पाथरचूर और हरीतकी, इन सबका काढा या चूर्ण सहतके साथ मिलाकर सेवन करना। केवल पाथरचूरका रस या काढा अश्मरीज मूत्रकृच्छ्र नाशक है। शुक्रज मूत्रकृच्छ्रमें सहतके साथ शिलाजीत सेवन करना। गोरच चाकुलाका काढा, सहत मिलाया जवाक्षार, मट्ठेके साथ गन्धक, जवाक्षार और चीनी, जवाक्षार और चीनी मिला सफेद कोंहड़ेका रस, गुड़के साथ आंवलेका काढा अथवा कुड़कुड़की बीज बासी पानीसे पीसकर सेवन करनेसे सब प्रकारका मूत्रकृच्छ्र आराम होता है। नारियलका फूल अरवा चावलके धोवनके साथ सेवन करनेसे रक्तमूत्र आराम होता है। एलादि क्वाथ, वरुणाद्य लौह, कुशाव लेह, सुकुमारकुमारक घृत और त्रिकण्टकाद्य घृत सब प्रकारके मूत्रकृच्छ्रमें विचारकर प्रयोग करना चाहिये।

मूत्राघात चिकित्सा।—मूत्राघात रोगमें मूत्रकृच्छ्र नाशक और अश्मरी नाशक औषध विचारकर प्रयोग करना।

मूत्रका रोध होनेसे तेलियाकी जड काजोसे पीस नाभिपर लेप करना। लिङ्गके भीतर कपूरका चर्ण रखना। सफेद कोहडेके पानीके साथ जवाचार और चोनो मिलाकर पीनेसे मूत्ररोध दूर होता है। ककडोकी बोज, सेन्धानमक और त्रिफला इन सबका समभाग चूर्ण गरम पानीके साथ पोनेसे भो मूत्ररोध दूर होता है। चित्रकाद्य घृत, धान्यगोक्षुरक घृत, विदारो घृत, शिलोद्भिदादि तैल और उशीराद्य तैल, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र और अश्मरो आदि रोगका उत्कृष्ट औषध है।

पथ्यापथ्य।—स्निग्ध और पुष्टिकर आहार इस रोगमें उपकारी है। दिनको पुराने चावलका भात, छोटो मछलोका शूरवा, छाग, या पचोके मासका शूरवा, बैंगन, परवर, गुल्लर, केलेका फूल आदिको तरकारो, तिक्त शाक, पाती या कागजी नोबू खाना। रातको पूरो, रोटो, मोहनभोग, दूध और थोडा मोठा खाना। जलपानमें मक्खन, मिश्री, तरबूज, पक्का मोठा फल आदि भोजन उपकारो है। सहनेपर रोज सवेरे कच्चे दूधमें पानो मिलाकर पोना या मिश्रीका शरबत पोना। रोज नदी या लम्बे चौडे तालाबमें स्नान करना।

निषिद्ध कर्म्म।—रुचद्रव्य, गुरुद्रव्य, अम्लद्रव्य, दही, गुड, अधिक मछलो, उरदकी दाल, लाल मिरचा, शाकादि भोजन और मैथुन, घोडा आदिको सवारो पर चढना, कसरत, मलमूत्रका वेग रोकना, तेज शराब पोना, चिन्ता, रात्रि जागरण इस रोगमें अनिष्टकारक है।

अश्मरी।

—*—

संज्ञा और पूर्व्वरूप।—कुपित वायु कर्त्तृक मूत्र और शुक्र किम्वा पित्त, कफ, विशोषित हो पत्थरकी तरह कडा होनेसे अश्मरी रोग होता है। चलित भाषामें इसको "पथरी" रोग कहते है, यह रोग उत्पन्न होनेसे पहिले वस्तिका फूलना, वस्तिके पासवाले स्थानोंमें दर्द, मूत्रमें छाग गन्ध, कष्टसे पिशाब होना, ज्वर और अरुचि, यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है। अपने अपने कारणसे कुपित वायु, पित्त, कफ और शुक्र यह चारसे अश्मरी रोग उत्पन्न होता है। सुतरा यह रोग वातज, पित्तज, कफज और शुक्रज भेदसे चार प्रकारका है। नाभि और नाभिके नीचे, फोतेके नीचे सीयनपर तथा वस्तिके मुखमें दर्द, अश्मरीसे मूत्रमार्ग वन्द होनेसे विच्छिन्न धारसे मूत्र आना, पिशाब करती वक्त वेग देनेसे दर्द, मूत्रमार्गमें अश्मरी न रहनेसे थोडा लाल रङ्गका मूत्र निकलना आदि इसके साधारण लक्षण है। किसी प्रकारकी अश्मरीसे मूत्रमार्गमें क्षत होनेसे पिशावमें रक्त दिखाई देता है।

वातज पित्तज अश्मरी लक्षण।—वातज अश्मरी रोगमें अश्मरीकी आकृति श्याम या अरुण वर्ण और छोटे काटे उसमें पैदा होता है। इसमें रोगी दात पीसता है, कापता है, तकलीफसे चिल्लाता है, सर्व्वदा लिङ्ग और नाभि दवाये रहता है तथा पिशाब उतरनेके लिये काखनेसे अधो वायु, मल और बूंद बूंद पिशाब होता है। पित्तज अश्मरी अतिशय उष्ण स्पर्श, रक्त, पीत या कृष्णवर्ण और भेलावेकी तरह आकृति होती है। इससे

वस्तिमें अत्यन्त जलन होता है। कफजमें शीतल स्पर्श, भारी, चिकनी और महतकी तरह पिङ्गल या सफेद रंग तथा वस्तिमें सूई गडानेकी तरह दर्द होता है, शुक्रकावेग रोकनेसे शुक्राश्मरी पैदा होती है, इससे वस्तिमें शूलवत् दर्द मूत्रकृच्छ्र और अण्ड-कोषमें शोथ होता है।

शर्करा और सिकता लक्षण।—यह अश्मरी अधिक दबानेपर क्षुद्र अंशोंमें विभक्त होनेसे शर्करा और अति सूक्ष्म अंशोंमें विभक्त होनेसे उसको सिकता कहते है। वायुका अनु-लोम रहनेसे शर्करा और सिकता पिशाबके साथ निकल जाती है। पर वायुका अनुलोम न रहनेसे वही सब शर्करा या सिकता बद्ध होता है तथा दौर्ब्बल्य, अवसाद, क्षशता, कुक्षिशूल, अरुचि, पाण्डुता, तृष्णा, हृत्पीडा, जीमचलाना आदि उपद्रव उपस्थित होता है।

सांघातिक लक्षण।—अश्मरी, शर्करा और सिकता रोगमें रोगीके नाभि और अण्डकोषमें शोथ, मूत्ररोध और शूलवत् वेदना यह सब लक्षण प्रकाशित होनेसे रोगीको मृत्यु जानना।

चिकित्सा।—अश्मरी रोग उत्पन्न होतेही औषध प्रयोग करना आवश्यक है, नहीतो थोडे दिन बिना चिकित्साके रहनेसे फिर औषधसे आराम नही होता है, तब नस्तरसे पथरीको बाहर निकालना पडता है। इस रोगका पूर्व्वरूप प्रकाश होते ही स्नेह प्रयोग करना चाहिये। वातज अश्मरीमें वरुणछाल, शोठ और गोखरू इसके काढेमें जवाक्षार २ मासे और पुराना गुड २ मासे मिलाकर पीना। गोखरू, रेंडका पत्ता, शोंठ और वरुण छाल इसका काढा पीनेसे सब प्रकारकी पथरी आराम होता है। शर्करा रोगमें वरुण छाल, पाथरचूर, शोंठ और गोखरू इसके काढेमें ।৶) आनेभर

जवाक्षार मिलाकर पीना। गोक्षुर बीज चूर्ण चार आनेभर भेडीके दूधमें मिलाकर सात दिन पीनेसे सब प्रकारकी पथरी आराम होता है। तालमूली अथवा गोरक्षचाकुला वासी पानीमें पीसकर पीनेसे किम्वा नारियलका फूल ४ मासे, जवाक्षार ४ मासे पानीमें पीसकर पीना अश्मरी रोगमें विशेष उपकारी है। मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात रोगोक्त कई योग और औषध अश्मरी आदि रोगमें विचारकर देना चाहिये। पाषाणादि क्वाथ, वरुणादि और वृहत् वरुणादि कषाय, एलादि काढा, पाषाणवज्र रस, पाषाण भिन्न, त्रिविक्रम रस, वरुणाद्य घृत और वरुणाद्य तैल अश्मरी, शर्करा और सिकता रोगका श्रेष्ठ औषध है।

पथ्यापथ्य।—मूत्रकृच्छ्रादि रोगमें जो सब पथ्यापथ्य लिखा है अश्मरीमें भी वही सब पालन करना चाहिये।

प्रमेह।

—:०:—

प्रमेह निदान।—बिलकुल ही परिश्रम न करना, रात दिन बैठे रहना, या बिछौनेपर पडे रहना, अधिक निद्रा, दही दूध, जल जात और जलाभूमिजात जीवका मास भोजन, नये चावलका भात खाना, बरसातका नया पानी पीना, गुड और अन्यान्य कफ वर्द्धक आहार विहारादिसे वस्तिगत कफ दूषित हो मेद, मास और शरीरके क्लेदको दूषित करनेसे पित्तज प्रमेह तथा कफ और पित्त क्षीण होनेसे वायु कुपित हो वसा, मज्जा, ओज

और लसीका * पदार्थको वस्तिके मुहमे लानेसे वातज प्रमेह पैदा होता है। प्रमेह रोग २० प्रकार। इसमें उदक मेह, इक्षु-मेह, सान्द्रमेह, सुरामेह, पिष्टमेह, शुक्रमेह, सिकतामेह, शीत-मेह, शनैर्मेह और लालामेह यह १० प्रकार कफज। क्षारमेह, नीलमेह, कालमेह, हारिद्रमेह, माञ्जिष्ठमेह और रक्तमेह यह ६ प्रकार पित्तज और वसामेह, मज्जामेह, क्षौद्रमेह और हस्ति-मेह यह चार प्रकार वातज प्रमेह है। सब प्रकारका प्रमेह उत्पन्न होनेसे पहिले दांत आंख कर्णादिमें अधिक मल सञ्चय, हाथ पैरमें जलन, देहका चिकना, प्यास और मुहका स्वाद मीठा होना यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है। अधिक मात्रासे मूत्र आना और मूत्रकी आविलता यह दो साधारण लक्षण प्राय. सब प्रमेहमें दिखाई देता है।

सर्व्वविध प्रमेहके लक्षण।—उदक प्रमेहका मूत्र गदला, कभी साफ, पिच्छिल, कभी सफेद पानीकी तरह गन्ध-हीन होता है। इक्षु प्रमेह इक्षु रसकी तरह मीठा होता है। सान्द्र प्रमेहका पिशाब देरतक रख छोडनेसे गाढा हो जाता है। सुरा प्रमेह शराबकी तरह तथा उपर साफ और नीचे गाढा मूत्र दिखाई देता है। पिष्टप्रमेहमें पिशाब करती वक्त रोगी रोमाञ्चित होता है और आटा घोलनेकी तरह सफेद या अधिक पिशाब होता है। शुक्रप्रमेहमें मूत्रशुक्रकी तरह या शुक्रमिश्रित होता है। सिकता मेहके मूत्रके साथ बालुकी तरह कडा पदार्थ निकलता है। शीतप्रमेहमें मूत्र अतिशय शीतल, मीठा और बहुत होता है। शनैर्मेहमे अति मन्द वेगसे थोडा थोडा मूत्र निकलता है। लाला-

* मांसके चिकने भागको वसा, हड्डीके बीचके स्नेह भागको मज्जा, त्वक और मांसके मध्यवर्त्ती जलीय भागको लसीका और सब धातुके सार पदार्थको ओज कहते हैं।

मेहमें लालायुक्त तन्तुविशिष्ट और पिच्छिल पिशाब होता है। क्षारमेहका मूत्र खारे पानीकी तरह गन्ध, वर्ण स्वाद और स्पर्श युक्त होता है। नीलमेह नीलवर्ण और कालमेहमें काले रंगका पिशाब होता है। हारिद्रमेहमें मूत्र पीला, कटुरसयुक्त और पिशाब करती वक्त लिङ्गनालीमें जलन होता है। माञ्जिष्ठ मेहमें मजीठके पानीकी तरह लाल दुर्गन्धयुक्त मूत्र होता है। रक्त मेहमें मूत्र बदबूदार, गरम और खारा होता है वसामेहमें चर्बी-की तरह अथवा चर्बी मिला मूत्र बार बार होता है, कोई कोई वसामेहको "सर्पिमेह" भी कहते हैं। मज्जामेहमें मूत्र मज्जाकी तरह या मज्जा मिला मूत्र होता है। क्षौद्र मेहमें मूत्र कषाय और मधुर रसयुक्त और रुक्ष होता है। हस्तिमेहमें रोगी मत्त-हाथीकी तरह सर्व्वदा अधिक पिशाब करता है, मूत्रत्यागके पहिले किसी प्रकारका वेग नहीं होता। कभी कभी मूत्ररोध भी होते देखा गया है।

मेह रोगके उपद्रव।—१० प्रकारके कफज प्रमेहमें अजीर्ण, अरुचि, वमि, निद्रा, खासीके साथ कफ निकलना और लिङ्गनालीमें सूची विद्धवत् वेदना घाव, अण्डकोषका फटना, ज्वर, दाह, तृष्णा, अम्लोद्गार, मूर्च्छा और मलभेद, तथा ४ प्रकारके वातज मेहमें उदावर्त्त, कम्प, छातीमें दर्द, आहारमें लोभ, शूल, अनिद्रा, कास और श्वास यही सब उपद्रव उपस्थित होता है। उपद्रवयुक्त प्राय सब प्रकारका प्रमेह कष्टसाध्य है।

मधुमेह।—सब प्रकारका प्रमेह, अचिकित्सित भावसे बहुत दिन तक रहने से मधुमेह रोग होता है। इसमें मूत्र मधु-की तरह गाढा, पिच्छिल, पिङ्गलवर्ण और मीठा होता है तथा रोगीका शरीरभी मीठास्वादयुक्त होता है। मधु मेहमें जिस जिस

दोषका आधिक्य रहता है लक्षण भी उसी दोषका प्रकाशित होता है, इस अवस्थामें बहुत दिन तक बिना चिकित्साके रहनेसे रोगीके शरीरमें नाना प्रकारको पिडिका उत्पन्न होती है। मधुमेह और पिडकायुक्त मेह असाध्य। पिता माताके दोषसे पुत्रको प्रमेह रोग होनेसे वह भी असाध्यहो जानना। गुदा, मस्तक हृदय, पीठ और मर्म्मस्थानमें पिडिका उत्पन्न होनेसे और उसके साथ प्यास और काम आदि उपद्रव रहनेसे वहभी असाध्य होताहै।

चिकित्सा और मुष्टियोग।—प्रमेह रोग स्वभावत ही कष्टसाध्य है। इससे रोग उत्पन्न होतेही चिकित्सा करना चाहिये। गुरिच का रस, आवलेकारस नरम सेमलके मुसलीका रस आदि प्रमेह रोगके उत्कृष्ट मुष्टियोग है। त्रिफला, देवदारु, दारुहलदी और मोथा इसका काढा सहतके साथ पीनेसे सब प्रकारका प्रमेह आराम होता है। सहत और हलदीका चूर्ण मिलाया आवलेका रस भी विशेष उपकारी है। शुक्रमेहमें दूधके साथ शतमूलीका रस अथवा रोज सवेरे कच्चा दूध आधा पाव और पानी आधा पाव एकत्र मिलाकर पीनेसे विशेष उपकार होता है। पलाश फूल १ तोला, चीनी आधा तोला एक साथ ठण्ढे पानीके साथ पीसकर पीनेसे भी सब प्रकारका प्रमेह आराम होता है। वङ्गभस्म प्रमेह रोगका उत्कृष्ट औषध है। सेमलके मुसलीका रस, सहत और हलदीके चूर्णके साथ २ रत्ती माता वङ्गभस्म सेवन करनेसे प्रमेह रोग आराम होता है।

मूत्ररोध चिकित्सा।—प्रमेह रोगमें मूत्रका रोध होनेसे ककडीको बीज, सेन्धा नमक और त्रिफला, इसका चूर्ण चार आनेभर गरम पानीके साथ सेवन करना। कुशावलेह और मूत्र-कृच्छ्र रोगके अन्यान्य औषध भी इस अवस्थामें दे सकते हैं।

मेहमें लालायुक्त तन्तुविशिष्ट और पिच्छिल पिशाब होता है। क्षारमेहका मूत्र खारे पानीकी तरह गन्ध, वर्ण स्वाद और स्पर्श युक्त होता है। नीलमेह नीलवर्ण और कालमेहमें काले रंगका पिशाब होता है। हारिद्रमेहमें मूत्र पीला, कटुरसयुक्त और पिशाब करती वक्त लिङ्गनालीमें जलन होता है। माञ्जिष्ठ मेहमें मजीठके पानीकी तरह लाल दुर्गन्धयुक्त मूत्र होता है। रक्त मेहमें मूत्र बदबूदार, गरम और खारा होता है वसामेहमें चर्बी-को तरह अथवा चर्बी मिला मूत्र बार बार होता है, कोई कोई वसामेहको "सर्पिमेह" भी कहते हैं। मज्जामेहमें मूत्र मज्जाकी तरह या मज्जा मिला मूत्र होता है। क्षौद्र मेहमें मूत्र कषाय और मधुर रसयुक्त और रुक्ष होता है। हस्तिमेहमें रोगी मत्त-हातीकी तरह सर्व्वदा अधिक पिशाब करता है, मूत्रत्यागके पहिले किसी प्रकारका वेग नहीं होता। कभी कभी मूत्ररोध भी होते देखा गया है।

मेह रोगके उपद्रव।—१० प्रकारके कफज प्रमेहमें अजीर्ण, अरुचि, वमि, निद्रा, खासीके साथ कफ निकलना और लिङ्गनालीमें सूची विद्धवत् वेदना घाव, अण्डकोषका फटना, ज्वर, दाह, तृष्णा, अम्लोद्गार, मूर्च्छा और मलभेद, तथा ४ प्रकारके वातज मेहमें उदावर्त्त, कम्प, छातीमें दर्द, आहारमें लोभ, शूल, अनिद्रा, कास और श्वास यही सब उपद्रव उपस्थित होता है। उपद्रवयुक्त प्राय सब प्रकारका प्रमेह कष्टसाध्य है।

मधुमेह।—सब प्रकारका प्रमेह, अचिकित्सित भावसे वहुत दिन तक रहने से मधुमेह रोग होता है। इसमें मूत्र मधु-की तरह गाढा, पिच्छिल, पिङ्गलवर्ण और मीठा होता है तथा रोगीका शरीरभी मीठास्वादयुक्त होता है। मधु मेहमें जिस जिस

दोषका आधिक्य रहता है लक्षण भी उसी दोषका प्रकाशित होता है, इस अवस्थामें बहुत दिन तक बिना चिकित्साके रहनेसे रोगीके शरीरमें नाना प्रकारकी पिड़िका उत्पन्न होती है। मधुमेह और पिडकायुक्त मेह असाध्य। पिता माताके दोषसे पुत्रको प्रमेह रोग होनेसे वह भी असाध्यही जानना। गुदा, मस्तक हृदय, पीठ और मर्मस्थानमें पिड़िका उत्पन्न होनेसे और उसके साथ प्यास और कास आदि उपद्रव रहनेसे वहभी असाध्य होताहै।

चिकित्सा और मुष्टियोग।—प्रमेह रोग स्वभावत ही कष्टसाध्य है। इससे रोग उत्पन्न होतेही चिकित्सा करना चाहिये। गुरिच का रस, आवलेकारस नरम सेमलके मुसलीका रस आदि प्रमेह रोगके उत्कृष्ट मुष्टियोग है। त्रिफला, देवदारु, दारुहलदी और मोथा इसका काढा सहतके साथ पीनेसे सब प्रकारका प्रमेह आराम होता है। सहत और हलदीका चूर्ण मिलाया आवलेका रस भी विशेष उपकारी है। शुक्रमेहमें दूधके साथ शतमूलीका रस अथवा रोज सबेरे कच्चा दूध आधा पाव और पानी आधा पाव एकत्र मिलाकर पीनेसे विशेष उपकार होता है। पलाश फूल १ तोला, चीनी आधा तोला एक साथ ठण्ढे पानीके साथ पीसकर पीनेसे भी सब प्रकारका प्रमेह आराम होता है। वङ्गभस्म प्रमेह रोगका उत्कृष्ट औषध है। सेमलके मुसलीका रस, सहत और हलदीके चूर्णके साथ २ रत्ती मात्रा वङ्गभस्म सेवन करनेसे प्रमेह रोग आराम होता है।

मूत्ररोध चिकित्सा।—प्रमेह रोगमें मूत्रका रोध होनेसे ककड़ीकी बीज, सेन्धा नमक और त्रिफला, इसका चूर्ण चार आनेभर गरम पानीके साथ सेवन करना। कुशावलेह और मूत्रकृच्छ्र रोगके अन्यान्य औषध भी इस अवस्थामें दे सकते हैं।

पाथरचूरके पत्तेका रस पीनेसे मूत्र साफ आता है, एलादि मेहकुलान्तक रस, मेहमुद्गर, वङ्गेश्वर, वृहद्वङ्गेश्वर, वृहत् हरि रस, सोमनाथरस, इन्द्रवटिका, स्वर्णवङ्ग, वसन्त कुसुमाकर चन्दनासव, दाडिमाद्य घृत और प्रमेहमिहिर तैल आदि रो अवस्था विचारकर प्रमेह रोगमें देना चाहिये। हमारा " विन्दु" सब प्रकारका प्रमेह और सुजाकका उत्कृष्ट औषध है।

पिड़िका निवारण।—प्रमेहमें पिडिका उत्पन्न तो गुलरका दूध अथवा सोमराज का बीज पीसकर उसका करना। अनन्तमूल, श्यामालता, मुनक्का, निसृत्, सनाय, कुट बड़ीहर्रे, अडूसेकी छाल, नीमकी छाल, हलदी, दारुहलदी गोखरूकी बीज इन सबका काढा पीनेसे प्रमेह पिडिका दूर हैं, शारिमादि लौह, शारिवाद्यासव और मकरध्वज रस अवस्थाका उत्कृष्ट औषध है। प्रमेह रोगके अन्यान्य औषध विचारकर दे सकते है। प्रमेह पिडिकामें हमारा "अमृतव कषाय" विशेष उपकारी।

पथ्यापथ्य।—दिनको पुराने चावलका भात, मूग, मस चनेकी दाल, छोटे मछलीका थोड़ा शुरवा, शशक, कपोत, बटे कुकट, छाग और हरिण मांसका शुरवा, परवल, गुलर, बैग सैजनका डण्डा, केलेका फूल, नरम कच्चा केला आदिका तरका और पाती या कागजी नीबू खाना प्रमेह रोगमें हितकर है रातको रोटी, पूरी और उपर कही तरकारी तथा थोड़ा मो मिलाया दूध पीना चाहिये। सब प्रकारका तिक्त और कषा रसयुक्त द्रव्य उपकारी है। जलपानमें ऊख, सिंघाडा, किसकार बदाम, खजूर, अनार, भिङ्गोया चना, थोडे मीठेका मोहनभो आदि आहार करना, सहनेपर स्नान भी करना।

निषिद्ध द्रव्य।—अधिक दूध, मठा, मछली, लाल मिरचा, शाक, अम्लद्रव्य, उरदको दाल, दही, गुड, लौकी, और अन्यान्य कफवर्धक द्रव्य भोजन, मद्यपान, मैथुन, दिनकी सोना, रातका जागना, धूपमें फिरना, मूत्रका वेग धारण और धूमपान प्रभृति इस रोगमें अनिष्टकारक है।

शुक्र और मधुमेहका पथ्यापथ्य।—शुक्रमेह में पुष्टिकर आहार करना चाहिये, इसमें रोगीका अग्निवल विचार कर ध्वजभङ्ग रोगोक्त पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये। मधु मेहमें वहुमूत्र रोगकी तरह पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये।

गनोरिया या सुजाक।—दूषित योनि—वेश्या प्रभृति-के सहवाससे भी एक प्रकारका प्रमेह रोग होता है उसको हिन्दोमें "सुजाक" और अङ्गरेजीमें "गनोरिया" कहते हैं। सहवासके प्राय' सात दिनके भीतरही यह रोग दिखाई देता है। पहिले लिङ्गके अग्रभागमें सुरसुरो, लिङ्ग खोलनेसे या पिशाव करती वक्त या पिशावके बाद दर्द होना, बार बार लिङ्गोद्रेक और पिशाव करनेकी इच्छा होती है, फिर लिङ्गनालीमें घाव, लिङ्ग फूलना, लालरङ्ग, अण्डकोष और दोनों पट्ठोंमें दर्द, सर्व्वदा पीप रक्तादिका स्राव या लेदसे मूत्रमार्ग बन्द होनेसे मूत्ररोध या दोधार से मूत्रका निकलना, यही सब लक्षण प्रकाशित होता है। सुजाक पुराना होनेसे कष्ट क्रमश कम हो जाता है। यह रोग बडा सक्रामक है अर्थात् इस रोग वाली स्त्रीके सहवाससे पुरुषको और पुरुषके सहवाससे स्त्रीको भी यह रोग उत्पन्न होता है।

भिन्न भिन्न अवस्थाकी चिकित्सा।—औपसर्गिक प्रमेहमें पहिले पिशाव साफ लानेका उपाय करना उचित है, साथ ही घाव आराम होनेकी भी दवा देना चाहिये। त्रिफलाका

काढा, बबूलके लकडीका काढा, पोपलके छालका काढा, खेर भिङ्गोया पानी और दहीके पानीकी पिचकारी लेनेसे घावमें विशेष उपकार होता है। रोज सवेरे कवाबचीनीका चूर्ण ⅛) आनेभर, सोरा एक आनेभर और सनायका चूर्ण एक आनेभर फाक गरम पानी ठण्ढाकर दो घोंट पीना। रातको सोते वक्त कवाबचीनीका चूर्ण एक आनेभर, कपूर २ रत्ती, अफीम आधी रत्ती एकत्र मिलाकर सेवन कराना। इससे साफ पिशाब उतरता है, तथा लिङ्गोद्रेक स्वप्नदोष और घाव आराम होता है। गोंदका पानी या बबूलके पत्तेके रसमें वङ्गेश्वर या मेहसुन्दर वटी सेवन करनेसे क्लेद, पीप रक्तादिका स्राव आदि जल्दी आराम होता है। गुरिचका रस तेज-पत्तेकी लकड़ी भिङ्गोये पानीके साथ वही सब औषध सेवन करनेसे भी जलन आराम होता है। लिङ्गका शोथ थोडा गरम त्रिफलाका काढा या जायफलके काढेमें लिङ्ग डूबो रखनेसे आराम होताहै। सर्व्वदा कपडेसे लिङ्ग लपेटकर बाध रखना तथा उपरको उठा रखना चाहिये। पिशाब साफ लानेके लिये पाथरचूरके पत्तेके रसके साथ उक्त औषधि और कुशावलेह सेवन करना। हमारा "प्रमेहबिन्दु" सुजाकको अकसीर दवा है। इससे थोडे दिनमें ही पीडा शान्त होती है।

आराम न होनेका परिणाम।—यह रोग जडसे आराम न होनेसे फिर क्रमश शुक्रमेह, शुक्रतारल्य या ध्वजभङ्ग रोग उत्पन्न होता है। सब प्रकारकी शीतल क्रिया या स्नान करना इस रोगमें उचित नहीं है। इससे थोडी देरके लिये पीडा में आराम मालूम होनेपर भी परिणाममें गठिया या पङ्गु रोग होनेकी सम्भावना है।

सोमरोग।

संज्ञानिदान और लक्षण।—सोमरोगका साधारण नाम "बहुमूत्र" है। मिष्टद्रव्य या कफजनक द्रव्यका अधिक भोजन, अधिक स्त्रीसे सङ्गम, शोक, अतिरिक्त परिश्रम, योनिदोष सम्पन्ना स्त्री सहवास, अधिक मद्यपान, अतिनिद्रा या दिवा निद्रा, अतिरिक्त चिन्ता अथवा विषदोष प्रभृति कारणोंसे सब देहका जलीय पदार्थ विकृत और स्थानच्युत हो मूत्राशयमें एकत्र होता है फिर वही पानी पिशाबके रास्तेसे अधिक निकलता रहता है। निकलती वख्त, किसी तरहकी तकलीफ नही होती और पानी भी साफ, ठण्ढा, सफेद रङ्ग तथा गन्धशून्य होता है। इस रोगमें दुर्बलता, रतिशक्तिकी हीनता, स्त्री सहवासमें अक्षमता, मस्तककी शिथिलता, मुख और तालुका सुखना तथा अत्यन्त प्यास यही सब लक्षण प्रकाशित होता है। इसमें सोम अर्थात् जलीयासका क्षय होता है इससे इसको सोमरोग कहते है। कोई कोई इसको मूत्रातिसार भी कहते है। रोगके प्रबल अवस्थामें क्षशता, घर्मनिर्गम, शरीरमें बदबू, खासी, अङ्गकी शिथिलता, अरुचि, पिडिका, पाण्डुवर्णता, भ्रान्ति, पीला पिशाब होना, मीठास्वाद और हाथ, पर तथा कानमें सन्ताप यही सब लक्षण प्रकाशित होता है।

सांघातिक अवस्था।—बहुमूत्र रोगमें थोड़ा भी बल क्षय होनेसे यदि प्रलाप, मूर्च्छा या पृष्ठव्रण आदि दूरारोग्य स्फोटकादि उत्पन्न हो तो रोगीके प्राणनाशकी सम्भावना है।

चिकित्सा।—पक्का केला एक, आवलेका रस १ तोला, मधु ४ मासे, चीनी ४ मासे और दूध एक पाव एकत्र मिलाकर पीनेसे बहुमूत्र रोग शान्त होता है। पक्का केला बिदारीकन्द और शतमूली समभाग दूधके साथ खानेसे मूत्राधिक्य दूर होता है। गुलरका रस या गुलरके बीजका चूर्ण जामुनके गुठलीका चूर्ण केलेके जडका रस, आवलेका रस, नरम ताडफल और खजरका रस, नरम अमरूद भिङ्गोया पानी, तथा भूने नेनुआका रस बहुमूत्र निवारक है। वृहद्वङ्गेश्वर, तारकेश्वर रस, सोमनाथ रस, हेमनाथ रस, वसन्तकुसुमाकर रस, वृहत् धात्री घृत, और कदल्याद्य घृत बहुमूत्र रोगमें प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—दिनको पुराने चावलका भात, मूग, मसूर और चनेकी दालका जूस। छाग, हरिण मासका शूरवा तथा गुलर नेनुआ, कच्चा केला, परवर, सैजनकी शाक आदि तरकारी, मक्खन निकाला दूध पीना, आवला, जामुन, कसेरू, पक्का केला, पाती या कागजी नीबू और पुरानी शराब भी सेवन करना। रुक्षक्रिया, घोडा हाथीको सवारी पर घूमना, पर्य्यटन, कसरत आदि इस रोगमें विशेष उपकारी है। पीडाके प्रवल अवस्थामें दिनको भात न खाकर जौके आटे की रोटी या केवल पूर्व्वोक्त दूध पीकर रहना चाहिये। गरम पानी ठण्ढाकर पीना तथा सहनेपर उसी पानीसे स्नान करना उचित है।

निषिद्ध कर्म्म।—कफजनक और गुरुपाक द्रव्य, जलाभूमिजात मास, दही, अधिक दूध, मिष्टद्रव्य, लाल कोहडा, लौकी, शाक, खट्टा, उरदकी दाल, लाल मिरचा भोजन और अधिक जल पान, तीव्र सूरापान, दिवानिद्रा, रात्रि जागरण, अधिक निद्रा, मैथुन और आलस्य इस रोगमें अनिष्ट कारक है।

शुक्रतारल्य और ध्वजभङ्ग ।

शुक्रतारल्यका निदान ।—कम उमरमें स्त्री सहवास, हस्तमैथुन या और कोई अन्याय रीतिसे शुक्र स्खलन, अतिरिक्त स्त्री सहवास आदि कारणोंसे शुक्रतारल्य रोग उत्पन्न होता है। इसमें मल मूत्रके समयमें अथवा थोडा भी कामोद्रेक होनेसे शुक्र पात, स्त्रीदर्शण, स्पर्शण, या स्मरण मात्रसे रेत पात, स्वप्नदोष, सङ्गम होते ही शुक्रपात, शुक्रको तरलता, अग्निमान्द्य, कोष्ठबद्धता या अतिसार, अजीर्ण, शिरघमना, आखके चारो तरफ काला दाग होना, दुर्ब्बलता, उद्यमशून्यता, तथा निर्ज्जनप्रियता यही सब लक्षण लक्षित होता है। पोडाके प्रबल अवस्थामें लिङ्ग शिथिल होनेपरभी शुक्रपात होता रहता है और लिङ्गोद्रेक शक्ति नष्ट हो जाती है, तथा फिर क्रमश ध्वजभङ्ग रोग उत्पन्न होता है। भय, शोक या अन्य किसी कारणसे, विद्वेषभाजन स्त्री सहवास, औपदंशिक पोडा या और कोई कारणसे शुक्रवाहिनी शिराविकृति, कामवेगसे उत्तेजित होनेपर मैथुन नही करना और अधिक कटु, अम्ल, उष्ण, लवणरसयुक्त द्रव्य भोजन आदि कारणोंसे भी ध्वजभङ्ग रोग उत्पन्न होता है।

शुक्रतारल्य चिकित्सा ।—शुक्रतारल्य रोगमें शुक्रको रक्षा करना ही प्रधान चिकित्सा है। कच्चो सेमलको मुसलीका रस, तालमूली चूर्ण, विदारोकन्दका रस या चूर्ण, आवलेका रस, कवाचको बीज या जेठीमध चूर्ण प्रभृति द्रव्य शुक्रवर्द्धक और शुक्र-तारल्य नाशक है।

ध्वजभङ्ग चिकित्सा।—मल मूत्रके समय शुक्रस्राव और ध्वजभङ्गमें उक्त अनुपानके साथ वृहद्वङ्गेश्वर, सोमनाथ रस, शुक्रमातृका वटी, कामचूडामणि रस, चन्द्रोदय मकरध्वज, पूर्णचन्द्र रस, महालक्ष्मीविलास, अष्टावक्र रस, मन्मथाभ्र रस मकरध्वज रस आदि औषध देना। अमृतप्राश घृत, वृहत् अश्वगन्धाघृत, कामदेव घृत, वानरी वटिका, कामाग्निसन्दीपन मोदक, मदन मोदक, शतावरी मोदक, रतिवल्लभ मोदक और श्रीगोपाल तथा पल्लवसार तैल प्रभृति शुक्रतारल्य और ध्वजभङ्गका उत्कृष्ट महौषध है। हमारा "रतिविलास" सेवन करनेसे शुक्रतारल्य और ध्वजभङ्ग रोग जल्दी आराम होता है। स्वप्नदोषमें सोती वक्त कबाबचीनी-का चूर्ण एक आनेभर, कर्पूर २ रत्ती और अफीम आधी रत्ती यह तीन द्रव्य मिलाकर अथवा केवल कबाब चीनीका चूर्ण ≤) आनेभर सहतके साथ सेवन करना, अथवा हमारी "शिवदा वटिका" सेवन करनेसे स्वप्नदोष रोग आराम होता है।

सङ्गममें शीघ्र शुक्रपात निवारणके लिये पूर्वोक्त मोदक और नागवल्यादि चूर्ण, अर्कादि वटिका, शुक्रवल्लभ रस या कामिनी विद्रावण रस सेवन करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—सबप्रकारका पुष्टिकर आहार इस रोगका पथ्य हैं। दिनको पुराने चावलका भात, रोहित आदि बढ़िया मछली, छाग, मेष, चटक, कुक्कुट, कबूतर, बटेर तित्तिर आदिके मासका शूरवा, मूग, मसूर और चनेका दाल, बत्तकका अण्डा, छागका अण्डकोष, आलु, परवर, गुल्लर, बैगन, गोभी, शलगम, गाजर आदि घृतपक्व तरकारी खाना। रातको पूरी या रोटी और उपर कही तरकारी दूध और मीठा खाना उचित है।

जलपान।—जलपानमें घी, चीनी, सूजी वा बेसनकी

वस्तु, अर्थात् खाजा, खुरमा और मोहनभोग तथा बेदाना, बदाम, पिस्ता, किसमिस, खजूर, अंगूर, आम, कटहल और पपोता आदि फल उपकारी है। अग्निबल विचारकर सब प्रकारका पुष्टिकर द्रव्य भोजन इस रोगमें उपकारी है, स्नान सहनेपर करना।

निषिद्ध द्रव्य।—अधिक लवण, लाल मिरचा, खट्टा, आग और धूपका उत्ताप लगाना, रात्रि जागरण, अधिक मद्यपान, मैथुन, और अधिक परिश्रम यह सब दोनों रोगमें विशेष अनिष्ट कारक है।

मेदोरोग।

—o—

निदान।—निरन्तर कफजनक द्रव्य भोजन अथवा व्यायामादि किसी तरहका परिश्रम न करनेसे किम्वा दिनको सोना आदिसे, भुक्तद्रव्य अच्छी तरह हजम नहीं होनेसे मधुर रसयुक्त अपक्व रस उत्पन्न होता है, तथा उसी रसके चिकने पदार्थसे मेदकी वृद्धि हो मेदरोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें मेद वृद्धिके कारण रसरक्तादिवाही स्रोत समूह बन्द हो जाता है, इससे अन्यान्य धातुभी पुष्ट नहीं होने पाता, केवल मेद धातुही क्रमश वर्धित होनेसे मनुष्य अति स्थूल और सब काम काजमें असमर्थ हो जाता है, क्षुद्रश्वास, प्यास, मूर्च्छा, अधिक निद्रा, अकस्मात् उच्छ्वासका रोध, अवसन्नता, अतिशय क्षुधा, पसीना निकलना, शरीरमें दुर्गन्ध,

बल और मैथुन शक्तिकी कमी आदि मेदरोगके आनुसङ्गिक लक्षण है।

मेदोवृद्धि का परिणाम फल।—मेदधातु अतिशय बढ जानेसे वातादि दोष समूह कुपित होकर प्रमेह पिडिका, ज्वर और भगन्दर आदि उत्कट पोडा उपस्थित होनेसे प्राणनाशकी सम्भावना है।

चिकित्सा।—जिससे शरीर कृश और रुक्ष हो वही आचरण करना मेद रोगकी प्रधान चिकित्सा है। रोज सबेरे सहत मिलाया पानी पोनेसे मेदरोग आराम होता है। त्रिफला और त्रिकटु चूर्ण तेल और नमकके साथ मिलाकर कुछ दिन सेवन करनेसे भी मेदोरोग प्रशमित होता है। अथवा विडङ्ग, शोंठ, जवाक्षार, कान्तलौह भस्म, यव और आंवला, इन सबका सम-भाग चूर्ण सहतके साथ मिलाकर चाटना। गनियारीका रस या शिलाजतु सेवनसे भी मेदोरोगमें विशेष उपकार होता है। अमृतादि और नवक गुग्गुलु, त्र्यूषणाद्य लौह, वडवाग्नि लौह और रस तथा त्रिफलाद्य तैल मेदोरोग दूर करनेके लिये प्रयोग करना चाहिये। महासुगन्धि तैल या हमारा हिमांशुद्रव बदनमें लेप करनेसे मेदजन्य दुर्गन्ध जडसे आराम होता है।

पथ्यापथ्य।—दिनको मोटा चावलका भात, अभावमें महीन चावलका भात, छोटी मछलीका शूरवा, गुल्लर, कच्चा केला, बैगन, परवर और पुराने सफेद कोहडेकी तरकारी, खट्टेमें पाती या कागजी नीबू। रातको जौके आटेकी रोटी और ऊपर कही तरकारी। मीठेमें सिर्फ थोडी मिश्री खाना। स्नान न करना ही अच्छा है, मनहनेपर गरम पानी ठण्ढाकर स्नान करना

और गरम पानी पीना उचित है। परिश्रम, चिन्ता, पथ पर्य्यटन, रात्रि जागरण, व्यायाम और मैथुन यह सब कार्य्य मेदोरोगमें विशेष उपकारी है।

निषिद्ध कर्म्म।—यावतीय कफवर्द्धक और स्निग्धद्रव्य, दूध, दही, मक्खन, मांस, मछली, घृतपक्व द्रव्य, नारियल, पक्का केला और दूसरे पुष्टिकर द्रव्य भोजन, सुखकर बिछौनेपर शयन, सुनिद्रा, दिवानिद्रा, सर्व्वदा उपवेशन, आलस्य और चिन्ताशून्यता इस रोगमें अनिष्टकारक है।

कार्श्यरोग और औषध।—यहां कार्श्य रोगके विषयमें भी कुछ लिखना आवश्यक जान पड़ता है। रूक्षद्रव्य भोजन, अत्यन्त परिश्रम, अतिरिक्त चिन्ता, अधिक स्वासप्रश्वास आदि कारणोंसे कार्श्यरोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें मेदमांस आदि धातु क्षीण हो जाता है। असगन्ध कार्श्यरोगका एक उत्कृष्ट औषध है, दूध, घृत, या पानीके साथ असगन्धको पीसकर या कल्क सेवन करना कार्श्यरोगमें विशेष उपकारी है।

कार्श्यरोगमें हमारा अश्वगन्धारिष्ट।—शुक्रतारल्य रोगमें जो सब औषधि कथित है, उसमें अश्वगन्धा घृत, अमृतप्राश घृत और वातव्याधि कथित छागलाद्य घृत आदि पुष्टिकर औषध कार्श्यरोगमें प्रयोग करना चाहिये हमारा "अश्वगन्धारिष्ट" कार्श्यरोगका अति उत्कृष्ट औषध है। असगन्धका कल्क १ सेर, काढा ६ सेर और दूध ६ सेर यह तीन प्रकारके द्रव्यके साथ तिलतैल ४ सेर यथाविधि पाककर मालिश करनेसे कृशाङ्गी पुष्ट होता है। इस रोगमें घी, दूध, मांस, मत्स्य, और अन्यान्य यावतीय पुष्टिकर आहार, सुनिद्रा, दिवानिद्रा, परिश्रम त्याग, निश्चिन्तता और सर्व्वदा प्रसन्न चित्तसे रहना उपकारी है। मांस ही कार्श्यरोगका

उत्कृष्ट पथ्य है। शुक्रतारल्य और ध्वजभङ्ग रोगोक्त पथ्यापथ्य कार्श्यरोगमें पालन करना चाहिये।

—o—

उदर रोग।

—o—

निदान।—एकमात्र अग्निमान्द्यहीको सब प्रकारके उदर रोगका निदान कहा जा सकता है। इसके सिवाय अजीर्ण दोषजनक अन्न भोजन और उदरमें पानीका सञ्चय, यही सब उदर रोगके कारण है। उक्त कारणोंसे सञ्चित वातादि दोष स्वेदवहा और जलवहा स्रोत समूहोंको रुद्ध तथा प्राणवायु, अपान वायु और अग्निको दूषित कर उदर रोग पैदा करता है। इसके सिवाय प्लीहा और यकृत् अत्यन्त बढ़नेसे अन्त्रमें किसी तरहका घाव होनेसे तथा अन्त्रमें अधिक जल सञ्चय होनेसे भी उदर रोग उत्पन्न होता है। उदराध्मान, चलनेमें अशक्ति, दुर्ब्बलता, अतिशय अग्निमान्द्य, शोथ, सर्व्वाङ्गिक अवसन्नता, अधोवायु और मलका अनिर्गम, दाह और तन्द्रा, यही सब उदर रोगके साधारण लक्षण है। उदर रोग ८ प्रकार, वातज, पित्तज, कफज, त्रिदोषज, प्लीहा और यकृत् जनित, मलसञ्चय जनित, क्षतज और उदरमें जल सञ्चयजनित।

वातज रोग लक्षण।—वातज उदर रोगमें हाथ, पैर नाभि और कुक्षिमें शोथ, कुक्षि, पार्श्व, उदर, कटि पृष्ठ और सन्धि समूहोंमें दर्द, सूखी खांसी, अङ्गमर्द, शरीरका आधा भाग भारी मालूम होना, मलरोध, त्वक्, चक्षु मूत्र आदिका श्याम

या अरुण वर्णता, अकस्मात् उदर शोथका ह्रास या वृद्धि, उदरमें सूचीविधवत् या भङ्गवत् वेदना, सूक्ष्म सूक्ष्म कृष्णवर्ण शिरा समूहोंकी उत्पत्ति, पेटमें मारनेसे वायु पूर्णकी तरह आवाज और दर्दके साथ वायुका इधर उधर फिरना। यही सब लक्षण प्रकाशित होता है।

पित्तज रोग लक्षण।—पित्तोदरमें ज्वर, मूर्च्छा, तृष्णा, मुखका कडवा स्वाद, भ्रम, अतिसार, त्वक और आंख आदिका पीला होना, पेटमें पसीना, दाह, वेदना और उष्मायुक्त, कोमल स्पर्श, हरित, पीत या ताम्रवर्णकी शिरासे आच्छन्न और पेटसे उष्मा निकलनेकी तरह अनुभव होना, यही सब लक्षण प्रकाशित होता है। पित्तोदर जल्दी पककर जलोदर होता है।

श्लेष्मज रोग लक्षण।—कफोदरमें सर्वाङ्गकी अवसन्नता, स्पर्शज्ञानका अभाव, शोथ, अङ्गकी गुरुता, निद्रा, वमनवेग, अरुचि, श्वास, कास, त्वक आदिका सफेद होना तथा उदर बडा होना, स्तिमित, चिकना, कठिन, शीतलस्पर्श, भारी, अचल और सफेद शिरायुक्त होता है। कफोदर देरमें बढता है।

दुष्य या त्रिदोषज उदर रोग लक्षण।—नख, लोम, मूत्र, विष्ठा आर्त्तव या किसी तरहके विषादि द्वारा दुषित अन्न भोजन करनेसे रक्त और वातादि दोषत्रय कुपित होकर त्रिदोषज उदर रोग उत्पन्न होता है। इसमें वातादि तीनों दोषके उदर रोगके लक्षण मिले हुए मालूम होता है और रोगी पाण्डुवर्ण, कृश, पिपासासे गला सूखना तथा बार २ मूर्च्छित होता है। ठण्ढके समय ठण्ढी हवा लगनेसे और वर्षात आंधीके दिनोंमें यही उदर रोग बढकर दाहयुक्त होता है। इसका दूसरा नाम दुष्योदर है।

प्लीहोदरका निदान और लक्षण।—निरन्तर कफ-जनक द्रव्य और जो सब द्रव्यका अम्लपाक हो वैसा द्रव्य भोजन करनेसे कफ और रक्त दूषित होकर प्लीहा यकृतको बढ़ाता है। प्लीहा यकृत् बढ़ते बढ़ते जब पेट बढ़ता है तब सर्व्वाङ्गको अवसन्नता, मन्दज्वर, अग्निमान्द्य, बलक्षोण, देहको पाण्डुवर्णता और कफ-पित्तजनित अन्यान्य उपद्रवभो उपस्थित होता है, तब उसको प्लोहोदर या यकृदुदर कहते हे। प्लीहोदरमें पेटका वामभाग और यकृदुदरमें दक्षिण भाग बढ़ता है। इसमे वायुका प्रकोप अधिक रहनेसे उदावर्त्त, आनाह और पेटमें दर्द, पित्तके प्रकोपमें मोह, तृष्णा, दाह, ज्वर और कफके प्रकोपमें गात्र गुरुता, अरुचि और पेटकी कठिनता यही सब लक्षण लक्षित होता है।

बद्ध गुदोदर लक्षण।—शाकादि भोज्यद्रव्य या अन्नादिके साथ केश किम्बा काकरो अन्तडोमें जानेसे अन्ननाडो क्षत हो जाती है, इससे गुह्य नाडीमें मल और दोष समूह सञ्चित हो बद्ध गुदोदर नामक मल सञ्चय जनित उदर रोग उत्पन्न होता। इसमे छाती और नाभिके बोचका भाग बढ़ता है और अति कष्टसे थोडा थोडा मल निकलता है।

क्षतज उदर रोग लक्षण।—अन्नके साथ कण्टकादि शल्य प्रविष्ट होकर यदि नाडोको भेद करे अथवा अतिरिक्त भोजन और जम्हाईसे अन्तडो मे भेद करे तो उस क्षत स्थानमे पानीको तरह स्राव होता है तथा नाभिके नोचेका भाग बढ़ता है, और गुह्यद्वारसे पानो स्राव होता है। इसको परिस्राव्युदर नामक क्षतज उदर रोग कहते हैं। इस उदर रोगमे सूचोविधवत् या विदोर्ण होनेको तरह अत्यन्त यातना होती है।

जलोदर लक्षण।—स्नेहपान, अनुवासन (स्नेह पदार्थ-

की पिचकारी) वमन, विरेचन, अथवा निरुहण (रुक्ष पदार्थको पिचकारी) क्रियाके बाद अकस्मात् शीतल जल पान करना, किम्बा स्नेह पदार्थसे जलवहा स्रोत उपलिप्त होनेसे, वही स्रोत समूह दूषित होता है और वही दूषित नाडीमें जलस्राव होकर उदरकी वृद्धि होती है, इसको उदकोदर या जलोदर नामका जल-सञ्चय जनित उदर रोग कहते। इस रोगमें पेट चिकना, बडा, जल भरा रहनेकी तरह फला और सञ्चालित होनेसे क्षुब्ध, कम्पित और शब्दयुक्त होता है। इसमें नाभिके चारो तरफ दर्द होताहै।

साध्यासाध्यता।—प्राय सब प्रकारका उदर रोग कष्ट-साध्य है, विशेषत' जलोदर और क्षतोदर रोग अतिशय कष्टसाध्य है, अस्त्रचिकित्साके सिवाय इसके आराम होनेकी आशा कम है। रोग पुराना होनेसे या रोगीका बलक्षय हो जानेसे सब उदर रोग असाध्य हो जाता है। जिस उदर रोगीकी आखे फूली, लिङ्ग टेढा, त्वक पतला, क्लेदयुक्त और बल, अग्नि, रक्त मास क्षीण हो जाय, अथवा जिस रोगीका पार्श्वद्वय भग्नवत्, अन्नसे द्वेष, अति-सार किम्वा विरेचन करानेसे भी कोष्ठ पूर्ण रहता है, यही सब उदर रोग असाध्य है।

विभिन्न दोषज उदर रोगकी चिकित्सा।—प्राय सब प्रकारके उदर रोगमें तीन दोष कुपित होता है, इससे वातादि तीन दोषके शान्तिकी चिकित्सा पहिले करना चाहिये। इसमें अग्निवृद्धिके लिये अग्निवर्द्धक औषध और विरेचनके लिये थोडा गरम दूध या गोमूत्रके साथ रेंडीका तेल पान कराना चाहिये। वातोदरमें पहिले पुराना घी आदि स्नेह पदार्थ मालिश कर सेकना चाहिये। फिर विरेचन कराकर कपडेके टुकडेसे पेटको बाध रखना। वातोदरमें पीपल और सैन्धा नमकके साथ,

पित्तोदरमें चीनी और गोलमिरचके साथ, कफोदरमें जवाईन, सैन्धानमक, जीरा और त्रिकटके साथ और सन्निपातोदरमें त्रिकटु जवाखार और सैन्धानमकके साथ मट्ठा पिलाना। इससे देहका भारीपन और अरुचि दूर होता है। प्लीहोदर और यकृदुदरमें प्लीहा और यकृत् रोगोक्त चिकित्सा करना चाहिये। बद्धोदरमें पहिले स्वेद फिर तेलका जुलाव देना चाहिये। देवदारु, सजन और अपामार्ग, अथवा असगन्ध गोमूत्रमें पीसकर पीनेसे दुष्योदर प्रभृति सब प्रकारका मेदोरोग आराम होता है। सबेरे महिषका मूत्र अन्दाज एक छटाक पीनेसे भी सब प्रकारका उदर रोग दूर होता है। पुनर्नवा, देवदारु, गुरिच, अम्बष्ठा, बेलकी जड, गोखुर, बृहती, कण्टकारी, हल्दी, दारुहल्दी, पीपल, चितामूल और अड़सा इन सब द्रव्योंका समान चूर्ण गोमूत्रके साथ सेवन करनेसे उदररोग प्रशमित होता है। दशमूल, देवदारु, शोठ, गुरिच पुनर्नवा और बडी हर इन सबका काढा पीनेसे जलोदर शोथ, श्लीपद और वात रोग आराम होता है। पुनर्नवा, नीमकी छाल, परवरका पत्ता, शोठ, कुटकी, गुरिच देवदारु और हरीतकी इन सबका काढा पीनेसे सब प्रकार उदर, सर्व्वाङ्ग शोथ, कास, शूल, श्वास और पाण्डुरोग आराम होता है। उदर रोगमें दोषविशेषका विचारकर पुनर्नवादि क्वाथ, कुष्ठादि चूर्ण, सामुद्राद्य चूर्ण, नारायण चूर्ण, त्रैलोक्यसुन्दर रस, इच्छाभेदी रस, नाराच रस, पिप्पल्याद्य लौह, प्लीहोदरादि लौह, चित्रकघृत, महाबिन्दुघृत, बृहत् नाराचघृत और रसोन तैल प्रभृति औषध प्रयोग करना चाहिये। रोगी दुर्ब्बल होनेसे तेज जुलाब न देकर हमारी "सरलभेदी वटिका" प्रयोग करना उचित है।

पथ्यापथ्य।—उदर रोगमें लघुपाक और अग्निवृद्धि-

कारक आहार करना उचित है। पीडाकी प्रवल अवस्थामें केवल मानमण्ड, अभावमें केवल दूध अथवा दूध सागूदाना आदि आहार करना हितकर है। पीडा अधिक प्रवल न हो तो दिनको पुराने चावलका भात, मूगका दालका जूस, परवल, बैगन, गुलर, सूरण, मैजनका डण्डा, छोटो मूली, श्वेत पुनर्नवा और अदरख आदिकी तरकारी थोडा नमक मिलाकर खाना चाहिये। रातको दूधसागू अथवा अधिक भूख हो तो २।१ पतली रोटी खानेको देना। गरम पानी पीना उचित है।

निषिद्ध कर्म।—पिष्टकादि गुरुपाक द्रव्य, तिल, लवण सोम आदि द्रव्य भोजन और स्नान, दिवानिद्रा, परिश्रम, उदर रोगमें विशेष अनिष्टकारक।

शोथरोग।

निदान।—वमन विरेचनादि क्रिया, ज्वर, अतिसार, ग्रहणी, पाण्डु, अर्श, रक्तपित्त, प्लीहा और यकृत आदि पीडा, तथा उपवास और भोजनादिसे कृश और दुर्बल होनेपर, क्षार, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण और गुरुपाक द्रव्य भोजन करनेसे, अथवा दही, कच्चा द्रव्य, मिट्टी, शाक, क्षार मत्स्यादि संयोग विरुद्ध और विष मिला द्रव्य भोजन करनेसे तथा वमन विरेचनादि उचित कालमें न करानेसे या असमयमें करनेसे, परिश्रम त्यागनेसे, गर्भस्राव होनेसे किम्वा मर्मस्थानमें चोट लगनेसे शोथ रोग पैदा होता है।

कुपित वायु, दुष्ट रक्त, पित्त और कफको बाहर की शिरा समूहों मे लाकर तथा वायु भी वही दोषोंसे रुद्ध होनेपर त्वक और मास फलता है, इसीको शोथरोग कहते है। शोथ पैदा होनेके पहिले सन्ताप, शिरा समूहोंका फैलनेकी तरह यातना और शरीर भारबोध यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है। अवयव विशेषकी स्फीतता, तथा भारबोध, बिना चिकित्साके भी कभी शोथकी निवृत्ति और फिर उत्पत्ति, शोथस्थान उष्ण स्पर्श, शिरायुक्त, विवर्णता और रोगीके शरीरमे रोमाञ्च होना आदि शोथ रोगके साधारण लक्षण है। वातज, पित्तज, कफज, वातपित्तज, वातश्लेष्मज, पित्तश्लेष्मज और त्रिदोषज भेदसे शोथरोग ७ प्रकारका होता है।

वातज राग लक्षण।—वातज शोथ एक जगह स्थिर नही रहता, इससे बिना कारण भी कभी कभी आराम मालूम होता है, शोथके उपरका चमडा पतला, कर्कश, अरुण या कृष्णवर्ण स्पर्श शक्तिहीन और भिन्न भिन्न वेदना विशिष्ट होता है। यह शोथ दबानेसे बैठ जाता है। दिनको यह शोथ बढता है और रातको कम हो जाता है।

पित्तज लक्षण।—पित्तज शोथ कोमल स्पर्श, गन्धयुक्त और शीत या अरुणवर्ण, तथा उष्माविशिष्ट, दाहयुक्त और अतिशय यन्त्रनादायक होकर पक जाता है। इस शोथमें भ्रम, ज्वर, पसीना, पिपासा, मत्तता और दोनो आखे लाल यही सब लक्षण लक्षित होता है।

कफज लक्षण।—कफज शोथ भारी, एक स्थानमें स्थायी और पाण्डुवर्ण तथा इससे अरुचि, मुखादिसे जलस्राव, निद्रा, वमन और अग्निमान्द्य होता है। यह शोथ दबानेसे दब

जाता है, पर छोड देनेसे फिर उठता नहीं। रातको यह बढता है और दिनको कम हो जाता है। कफज रोग जैसे देरसे बढता है वैसही देरसे आरामभी होता है। इसी प्रकार दो दोषके लक्षण प्रकाशित होनेसे उसको दो दोषजात और तीन दोषके लक्षणोंमें त्रिदोषज मानना चाहिये।

अवस्थानभेद।—शोथजनक कोई दोष आमाशयमें रहनेसे छातीसे ऊर्द्ध देह, पक्काशयमें रहनेके मध्य शरीरमें अर्थात् छातीसे पक्काशय तक, मलाशयमें रहे तो कमरसे पेरके तलवे तक, और सब शरीरमे विस्तृत रहनेमें सर्व्वाङ्गमें शोथ होता है।

साध्यासाध्य निर्णय।—मध्यदेह या सर्व्वाङ्गका शोथ कष्टसाध्य। जो शोथ दहिने बाये या उपर नीचे विभागानुसार जिस किसी अर्द्धाङ्गमे उत्पन्न हो अथवा जो शोथ निम्न अवयवोंमें उत्पन्न होकर क्रमश उपरको विस्तृत होता रहे, उसी शोथसे प्राण नाशको सम्भावना है। किन्तु पाण्डु प्रभृति अन्यान्य रोगके उपद्रव रूपसे यदि पहिले पैरसे शोथ आरम्भ होकर क्रमश उपरके तरफ बढे तो वह मारात्मक नही है। स्त्रियोको पहिले मुखसे उत्पन्न हो क्रमश पैरकी तरफ जो शोथ होता है वह उनका प्राण नाशक है। स्त्री या पुरुष जिस किसीको पहिले गुदामें शोथ होतो वह प्राण नाशक है। ऐसही कुक्षि, उदर, गलदेश और मर्म्मस्थान जात शोथ भी जानना। जो शोथ अतिशय स्थूल और कर्कश, अथवा, जिस शोथमें श्वास, पिपासा, वमि, दौर्ब्बल्य, ज्वर और अरुचि आदि उपद्रव उपस्थित हो वह शोथभी असाध्य जानना। बालक, वृद्ध और दुर्ब्बल व्यक्तिका भी शोथ असाध्य ही होता है।

चिकित्सा।—किसी रोग विशेषके साथ शोथ रोग होनेसे,

उसी रोगको दवायोंके साथ शोथ नाशक औषध प्रयोग करना। मल मूत्र साफ रखना इस रोगमें विशेष आवश्यक है। वातिक शोथ में कोष्ठबद्ध होनेसे दूधके साथ रेडीका तेल पिलाना। दशमूलका काढा वातज शोथमें विशेष उपकारी है। पित्तज शोथमें गोमूत्रके साथ ≈) आनेभर त्रिवृतका चूर्ण सेवन करना, अथवा त्रिवृतकी जड, गुरिच और त्रिफला का काढा पीना। कफज शोथमें पुनर्नवा, शोंठ, त्रिवृतकी जड, गुरिच, बडोहर और देवदारु, इसके काढेमें गोमूत्र और ≈) आनेभर गुग्गुलु मिलाकर पिलाना। गोलमिरच चूर्णके साथ बेलके पत्तेका रस, नीमके पत्तेका रस और सफेद पुनर्नवाका रस, यह सब शोथ रोगमें उपकारी है। सेहुडके पत्तेका रस मालिश करनेसे शोथ शान्त होता है। पथ्यादि क्वाथ, पुनर्नवाष्टक, सिंहास्यादि काढा, मानमण्ड, शोथारिचूर्ण, शोथारिमण्डूर, कंस हरीतकी, कटुकाद्य लौह, त्रिकट्वादि लौह, शोथकालानल रस, पञ्चामृत रस, दुग्धवटी और ग्रहणी रोगोक्त औषध स्वर्णपर्पटी आदि विवेचना पूर्व्वक प्रयोग करना चाहिये। पाण्डुजन्य शोथ रोगमें तक्रमण्डुर और सुधानिधि विशेष उपकारी है। दुग्धवटी और स्वर्णपर्पटी सेवन करतो वक्त लवण पानी बन्दकर केवल दूध पीकर रहना चाहिये। ज्वरादि उपद्रव न रहनेसे चित्रकाद्य घृत सेवन और शोथ स्थानमें पुनर्नवादि तैल और शुष्कमूलादि तैल आदि मर्द्दन कर सकते है।

पथ्यापथ्य।—उदर रोगमें जो सब पथ्यापथ्य लिख आये है शोथ रोगमें भी वही सब पालन करना चाहिये।

कोषवृद्धि।

संज्ञा और प्रकारभेद।—वायु अपने दोषसे कुपित हो पहेसे अण्डकोषमें आता है और फिर पित्तादि दोष दूष्यको कुपित कर अण्डकोष वर्द्धित, स्फीत और वेदनायुक्त होनेसे उसको वृद्धि रोग कहते है। वृद्धिरोग ७ प्रकार, वातज, पित्तज, श्लेष्मज, मेदोज, रक्तज, मूत्रज और अन्त्रज।

प्रकारभेद लक्षण।—वातज वृद्धिरोगमें अण्डकोष बढ़कर वायुपूर्ण चर्म्मपुटको तरह आकृतिविशिष्ट होता है और वह रूखा तथा सामान्य कारणसे उसमें दर्द होता है। पित्तज वृद्धिमें अण्डकोष पके गुल्लरकी तरह लाल, दाह और उष्मायुक्त होता है। शीघ्र दिन रहनेसे पकजाता है। कफज वृद्धिमें अण्डकोष शीतल स्पर्श, भारी, चिकना, कण्डूयुक्त, कठिन और कम वेदनायुक्त होता है। रक्तज वृद्धि कृष्णवर्ण स्फोटक व्याप्त और पित्तज वृद्धिके अन्यान्य लक्षणयुक्त होता है। मेदोज वृद्धि रोगमे अण्डकोषका आकार पके ताडफलको तरह और वह मृदु स्पर्श तथा कफ वृद्धिके लक्षणयुक्त होता है। नियत मूत्रवेग धारण करनेसे मूत्रजवृद्धि रोग पैदा होता है, इस वृद्धिसे चलती वक्त अण्डकोष जलपूर्ण चर्म्मपुटकी तरह संक्षोभित, मृदुस्पर्श और वेदनायुक्त होता है। इसमें कभी मूत्रकृच्छ्रकी तरह दर्द होताहै और हिलानेसे नोचेको तरफ झुक जाता है। वायुकारक आहार, शीतल पानीमें अवगाहन, मलमूत्र वेग धारण या अनुपस्थित वेगमें वेग देना, भार-

वहन, पथ पर्य्यटन, विषम भावमे अङ्गविन्यास और दुःसाहसिक कार्य्य प्रभृतिसे वायु चालित हो जब क्षुद्रान्त्र का कियदंश सङ्कुचित हो नीचेकी तरफ वंक्षन सन्धिमें आता है तभी उस सन्धिस्थलमें ग्रन्थिरूप शोथ उत्पन्न होता है इसीको अन्त्रजवृद्धि कहते है, अन्त्र वृद्धि अचिकित्स्य भाव अधिक दिन रहनेसे अण्डकोष वर्द्धित, स्फीत, वेदनायुक्त और स्तम्भित होता है। कोष दबानेसे या कभी आपही आप शब्द करते हुए वायु उपरकी तरफ उठता है और फिर कोषोमें आकर शोथ उत्पन्न होता है। अन्त्रवृद्धि (आंत उतरना) असाध्य रोग है।

एकशिरा और वातशिरा।—अमावस्या या पूर्णिमा अथवा दशमी और एकादशी तिथिमें कम्प और सन्धिसमूह या सर्व्वाङ्गमे वेदना प्रभृति लक्षणयुक्त प्रबल ज्वर होकर एक प्रकार कोषवृद्धि उत्पन्न होता है, २।३ दिन बाद फिर वह आपही आप दूर हो जाता है। एक कोष बढनेसे उसको चलित भाषामे एक शिरा और दो कोष बढनेसे उसको वातशिरा कहते है।

वृद्धिरोग चिकित्सा।—यावतीय वृद्धिरोगकी प्रथम अवस्थाहीमे चिकित्सा करना चाहिये, नहीतो कष्टसाध्य होजाता है। वातज वृद्धि रोगमे दूधके साथ तथा पित्तज और कफजमें दश मूलके काढेके साथ रेंडीका तेल पीना। कफज और मेदोज वृद्धिमें त्रिकटु और त्रिफलाके काढेके साथ ⁄) आनेभर जवाक्षार और ⁄) आनेभर सेंधा नमक मिलाकर पीना यही श्रेष्ठ विरेचन है। मूत्रज वृद्धिमे अस्त्रविशेषमे भेदकर जलस्राव कराना अर्थात् "टेप" लेना आवश्यक है।

अन्त्रजवृद्धि (आंत उतरना) जबतक कोषतक नही उतरता उसी समय तक चिकित्सा करनेसे आराम होता है। इसमें रास्ना,

मुलेठो, एरण्ड मूल, बरियारा, गोक्षुर, अथवा केवल बरियारको जड दूधमें औटाना, फिर उसो दूधमें रेंडोका तेल मिलाकर पिलाना। बच और सरसों, किम्बा सेजनको छाल और सरसों अथवा छातिम बोज और अदरख, किम्बा सफेद अकवनको छाल काञ्जीमें पोसकर लेप करनेसे सब प्रकारका वृद्धिरोग शान्त होता है। जयन्ती पत्र तावेपर गरम कर कोषमें बांधनेसे भी कोषवृद्धि रोग आराम होता है। हमारी "कोषवृद्धिको दवा' सब प्रकारके वृद्धिरोगमें व्यवहार करनेसे सुन्दर उपकार होता है। भल्लोत्तरोय, वृद्धिवाधिका वटी, वातारि, शतपुष्पाद्य घृत, गन्धर्व्व-हस्त तेल और श्लोपद रोगोक्त कृष्णादि मोदक, नित्यानन्द मोदक आदि औषध विचार कर प्रयोग करना। कोषमें मालिश करनेके लिये सैन्धवाद्य घृत, शोथ रोगोक्त पुनर्नवा और शुष्क मूलादि तैल व्यवहारमें लाना चाहिये। अन्त्रवृद्धिको प्रबलावस्थामें "ट्रस" नामक यन्त्र लगाना उपकारो है।

पथ्यापथ्य।—दिनको पुराने महीन चावलका भात, मूग, मसूर, चना और अरहरकी दाल, परवर, बेंगन, आलु, गाजर, गुलर, करेला, सेजनका डण्डा, अदरख, लहसन आदिकी तरकारी अल्प परिमाण बीच बीचमें छागमांस, छोटी मछली और सब प्रकारका तिक्त और सारक द्रव्य आहार करना। रातको रोटी या पूरो और ऊपर कही तरकारी और थोड़ा दूध भोजन करना। गरम पानी ठण्ढाकर पीना और स्नान करना चाहिये। इस रोगमें मब्वदा लङ्गोट व्यवहार करना उचित है।

निषिद्ध कर्म्म।—नये चावलका भात या और कोई गुरु-पाक द्रव्य, दही, उरद, पक्का केला और अधिक मीठा आदि द्रव्य भोजन शीतल जलपान, भ्रमण, दिवा निद्रा, मलमूत्रका वेग

धारण, स्नान, अजीर्ण रहनेपर भोजन तैलाभ्यङ्ग आदि इस पीडामें अनिष्टकारक है।

गलगण्ड और गण्डमाला।

गलगण्ड लक्षण।—अपने अपने कारणोंसे कुपित वायु, कफ और मेद गलेमें अण्डकोषकी तरह जो लम्बा शोथ पैदा होता है उसको गलगण्ड कहते हैं। वातज गलगण्ड सूचीवेधवत् वेदना, कृष्णवर्ण शिराव्याप्त, कर्कश, अरुणवर्ण और देरसे बढता है, तथा रोगीके मुखका स्वाद फीका और तालु कण्ठमें शोष होता है। यह गलगण्ड पकता नही कदाचित् किसीका पकता है। कफज गलगण्ड कडा, सफेद, वजनदार, अन्यान्य कण्डूविशिष्ट, शीतल, बडी देरसे बढना और अल्प वेदनायुक्त होता है। मुखका स्वाद, मीठा तथा तालू और गलेमे कफ भरा रहता है। मेदोज गलगण्ड, चिकना, भारी, पाण्डुवर्ण, दुर्गन्ध, कण्डूयुक्त और अल्प वेदनाविशिष्ट जानना। इसका आकार लौकीकी तरह जड पतली और उपर मोटा होता है। शरीरके क्रामवृद्धिके साथ साथ इसकी भी क्रामवृद्धि होती रहती है तथा इसमें रोगीका मुख तेलकी तरह चिकना और गलेसे सर्व्वदा शब्द निकलता है। जिस गलगण्डमें रोगीके निश्वास प्रश्वासमें अति कष्ट, सर्व्वाङ्गकी कोमलता, देह क्षीण, आहारमें अरुचि, और स्वरभङ्ग हो तथा जिसको बिमारी एक वर्षसे अधिक दिनको है वह असाध्य जानना।

गण्डमाला।—दूषित मेद और कफ कान्धा, गलेकी मन्यानामक शिरा, गला और गलेके बगलमें बेर और आंवलेको तरह बहुतसो गाठें उत्पन्न होता है उसको गण्डमाला कहते है। गण्ड माला बहुत दिन पर पकते देखा गया है। जिस गण्डमालाको कोई गाठ पक जाय, कोई गाठ आराम हो जाय तथा फिर नई पैदा होय ऐसो अवस्था होनेसे उसको अपची कहते हैं। अपचीके साथ साथ पोनस, पार्श्वशूल, काम, ज्वर और वमि आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे असाध्य होता है। यदि कोई उपद्रव न हो तो आराम भो होता है।

अर्ब्बुद।—शरीरके जिस स्थानमे गाठको तरह एक प्रकार क्षुद्र शोथ उत्पन्न होकर उसमें गोल गाठ अचल और अल्प वेदनायुक्त जो मांसपिण्ड उत्पन्न होता है उसको अर्ब्बुद कहते है। गलगण्डको आकृतिसे यह बहुत मिलता है, इससे यहा इसो दो रोगके साथ लिखना आवश्यक है।

गलगण्ड चिकित्सा।—गलगण्ड रोगमें कफनाशक चिकित्सा करना हो उचित है। हस्तिकर्ण पलाशको जड, अरवे चावलके धोवनमें पोसकर गलगण्डमें लेप करना। अथवा सफेद सरसों, सैजनको बोज, तोसी, जौ और मूलोको बोज, एकसङ्ग मट्ठेमें पोसकर लेप करना। पक्को तितलौकोका रस, काला और सैन्धानमक मिलाकर नास लेनेसे गलगण्ड रोग शान्त होता है। इसमें नित्यानन्द रस और अमृताद्य तैल पान तथा तुम्बो तैलका नास लेना चाहिये।

गण्डमाला चिकित्सा।—गण्डमाला रोगमें गलगण्ड नाशक लेप आदि प्रयोग करना। काञ्चन छालके काढेमें शोठ मिलाकर अथवा वरुण मूलके काढेमें मधु मिलाकर पोना।

सफेद अपराजिताकी जड गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे पुराना गण्डमाला भी आराम होता है। इसमें काञ्चन गुग्गुलु सेवन, छुछुन्दरी और सिन्दुरादि तैल मर्द्दन तथा निर्गुण्डी और बिम्बादि तैलका नस्य लेना विशेष उपकारी है।

अपची चिकित्सा।—गण्डमाला अपचीके रूपमें परिणत होनेसे सैजनकी छाल और देवदारु एकत्र काजीमें पीसकर गरम लेप करना। अथवा सफेद सरसो, नीमका पत्ता, आगमें जलाया भेलावा, छागमूत्रमें पीसकर लेप करना। गुञ्जाद्य तैल और चन्दनाद्य तैल मर्द्दन अपची रोगमें विशेष उपकारी है।

ग्रन्थिरोग चिकित्सा।—ग्रन्थि रोगमें द्राक्षा या इक्षु-रसके साथ हरीतकी चूर्ण सेवन करना, जामुनकी छाल, अर्ज्जुन छाल और बेतकी छाल पीसकर लेप करना। दन्ती मूल, चिता-मूल, सेहुडका दूध, अकवनका दूध, गुड, भेलावेकी बीज और हिराकस, यही सब द्रव्यका लेप करनेसे गाठ पकती है और उसमेंसे लेदादि निकलकर आराम हो जाता है। सज्जीक्षार, मूलीका भस्म और शङ्खचूर्णका लेप करनेसे ग्रन्थि और अर्ब्बुद रोग आराम होता है। अर्ब्बुद रोगमें फस्त लेना चाहिये। गुलर या और कोई कर्कश पत्रसे अर्ब्बुद घिसकर उसके उपर राल, प्रियङ्गु, लाल चन्दन, लोध, रसाञ्जन और मुलेठी एकत्र पीसकर सहत मिला लेप करना। बडका दूध, कूठ और पागा नमक अर्ब्बुदमें लेपकर बडके पत्तेसे बाध रखना, सैजनका बीज, मूलीकी बीज, सरसो, तुलसी, जौ और कनेलकी जड, एकत्र मट्ठेमें पीसकर लेप करनेसे अर्ब्बुद रोग आराम होता है। इन सब क्रियाओंसे ग्रन्थि और अर्ब्बुद रोगकी शान्ति न होनेसे नस्तर करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—गलगण्डादि रोगमें कोपवृद्धि रोगको तरह पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये, इससे अलग नहीं लिखा गया।

श्लीपद।

दोषभेदसे श्लीपदके लक्षण।—श्लीपदका साधारण नाम "फील पा" है। इस रोगमें पहिले पट्ठेमें दर्द होता है, फिर पैर फूलता है। प्रथम अवस्थामें बहुतोंको ज्वर भी होता है। कफके प्रकोपहीसे यह रोग उत्पन्न होता है, तथापि वातादि दोषके आधिक्यानुसार भिन्न भिन्न लक्षण भी इसमें लक्षित होता है। श्लीपदमें वायुका आधिक्य रहनेसे शोथस्थान काला, रुखा, फटा और तोव्र वेदनायुक्त होता है, तथा इसमें सर्व्वदा ज्वर तथा अकसर दर्दको ह्रासवृद्धि होती रहती है। पित्तके आधिक्यसे श्लीपद कोमल, पोतवर्ण दाहविशिष्ट और ज्वर संयुक्त होता है। कफके आधिक्यसे श्लीपद कठिन, चिकना, सफेद या पाण्डुवर्ण और वजनदार होताहै।

असाध्य लक्षण।—जो श्लीपद बहुत बढ़गया हो अथवा क्रमश बढ़कर ऊंचे ऊंचे शिखरयुक्त और एक वर्षसे अधिक दिनका पुराना, तथा जिस श्लीपदमें स्राव और कण्डू तथा जिसमें वातादि दोषजन्य समुदय उपद्रव उत्पन्न हों, ऐसा श्लीपद असाध्य जानना।

जिस देशमें अधिक परिमाण बरसातका पानी सञ्चित रहता

है और जिस देशको आब हवा ठण्ढी है, प्राय ऐसेही देशोंमें श्लीपद रोग अधिक पैदा होता है।

दोषभेद और चिकित्सा।—श्लीपद पैदा होतेही इलाज करना चाहिये नहीतो असाध्य हो जाता है। उपवास, विरेचन, स्वेद, प्रलेप और कफनाशक क्रिया समूह इस रोगका शान्तिकारक है। धातुरा, रेंड, श्वेतपुनर्नवा, सैजन और सरसों यह सब द्रव्य पीसकर लेप करना, अथवा चितामूल, देवदारु, सफेद सरसों या सैजनकी जडकी छाल गोमूत्रमें पीस गरम कर लेप करना। सफेद अकवनकी जड, काजीमें पीस लेप करनेसे भी श्लीपद आराम होता है। पित्तजन्य श्लीपद रोगमें मजीठ, मूलेठी, रास्ना, और पुनर्नवा यह सब द्रव्य काजीमें पीसकर लेप अथवा मदनादि लेप करना। वरियारेकी जड ताडके रससे पीसकर लेप करनेसे सब प्रकारका श्लीपद रोग आराम होता है। वडी हर्रे रेंडीके तेलमें भूनकर गोमूत्रके साथ खानेसे भी श्लीपद रोग आराम होता है। कणादि चूर्ण, पिप्पल्यादि चूर्ण, कृष्णादि मोदक, नित्यानन्द रस, श्लीपद गजकेशरी, सौरेश्वर घृत और विडङ्गादि तेल आदि विचार कर श्लीपद रोगमें प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—कोषवृद्धि रोगमें जो सब पथ्यापथ्य लिखा है, श्लीपद रोगमें भी वही सब पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये।

—०—

विद्रधि और व्रण।

विद्रधि या फोड़ाका निदान और प्रकारभेदसे लक्षण।—विद्रधिका साधारण नाम "फोडा" है। गुल्मकी आकृतिकी तरह और दाह, वेदना तथा अन्तमें पाकयुक्त शोथको विद्रधि कहते हैं। विद्रधि दो प्रकार, बाह्यविद्रधि और अन्तर्विद्रधि। कुपित वातादि दोष हड्डीमें रहकर त्वक्, रक्त, मास और मेदको दूषित करनेसे विद्रधि रोग उत्पन्न होता है। बाह्यविद्रधि शरीरके सब स्थानोंमें पैदा होता है। अन्तर्विद्रधि गुदा वस्तिमुख, नाभि, कुक्षि, दोनों पट्ठा, पार्श्व, प्लीहा, यकृत्, हृदय, क्लोम (पिपासा स्थान) यही सब स्थानों में उत्पन्न होता है। गुह्यनाडीमें विद्रधि उत्पन्न होनेसे अधोवायुका रोध, वस्तिमें होनेसे मूत्रकृच्छ्र और मूत्रको अल्पता, नाभिमें होनेसे हिक्का और पेटमें दर्दके साथ गुड गुड शब्द होना, कुक्षिमें होनेसे वायुका प्रकोप पट्ठोंमें होनेसे कण्ठ और पीठमें तीव्र वेदना, पार्श्वमें होनेसे पार्श्वका सङ्कुचित होना, प्लीहामें होनेसे श्वासरोध, हृदयमें होनेसे सर्वाङ्गमें दर्द और कास, यकृत्में होनेसे श्वास हिक्का और क्लोममें होनेसे बार बार पानी पीनेकी इच्छा होती है। यही सब विशेष लक्षणोंके सिवाय यन्त्रना आदि अन्यान्य लक्षण भी सब प्रकारके विद्रधिका एकही प्रकार जानना।

साध्यासाध्य निर्णय।—नाभिके ऊपर अर्थात् प्लीहा, यकृत्, पार्श्व, कुक्षि, हृदय और क्लोम स्थानमें जो सब अन्तर्विद्रधि

पैदा होता है, वह पककर फूटनेसे पीप रक्त निकलता है, और नाभिके नीचे याने वस्ति, गुदा, पक्ष आदि स्थानोंमें पैदा होनेसे गुदासे पीप आदिका स्राव होता है। मुखसे पीप आदिका स्राव होनेसे रोगीके जीवनकी आशा नहीं रहती, किन्तु गुह्यद्वारके स्रावसे जीवनकी आशा रहती है। विद्रधि रोगमें उदराध्मान, मूत्ररोध, वमन, हिक्का, पिपासा, अत्यन्त वेदना और श्वास आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे रोगीके जीनेकी आशा कम जानना।

व्रण या क्षत।—व्रणका साधारण नाम "घाव" या क्षत है। जिस स्थानमें व्रण उत्पन्न होगा वह स्थान पहिले फूलता है फिर पककर आपही आप फूटकर या नस्तरसे घाव करनेसे उसे व्रणरोग कहते है। व्रण शोथ पकनेसे पहिले शोथस्थान थोडा गरम, कडा, थोडा दर्द और बदनकी तरह रंग होता है। पकनेके समय वह मानो आगमें जलाया जाना, नस्तरसे चीरना, चिमटीसे काटना, दण्डादिसे मारना, सूची आदिसे गडाना, अङ्गुलीसे विदीरना तथा दवानेकी तरह तकलीफ होती है। इसमें अत्यन्त दाह और उत्ताप होता है तथा वायुपूर्ण चर्मपुटकी तरह आध्मान हो उठता है। रोगी भी विच्छू काटनेकी तरह छटपटाता है और ज्वर, तृष्णा, अरुचि आदिसे पीडित होता है। पक जानेपर वेदना और शोथ कम हो, लाल रंग, उपरके मांसमें सिडकुन और फटासालूम होता है तथा दवानेसे शोथस्थान बैठ जाता है, भीतर पीप पैदा होनेसे सूई गडानेकी तरह दर्द और खुजली पैदा होती है। पककर फूटनेपर या नस्तरसे पीप खून निकल जानेपर थोडा स्राव सूई गडानेकी तरह दर्द या जलन लिये घाव होता है। इस अवस्थामें प्यास, मोह, ज्वर आदि उपद्रव भी उपस्थित होते दिखाई देता है।

आरोग्य उन्मुख व्रण लक्षण।—जो व्रण क्रमश जीभके नीचेके भागकी तरह कोमल, मसृण, चिकना, स्रावशून्य, समान, अल्प वेदनायुक्त हो वह आराम होता है और जो व्रण क्लेदशून्य, विदीर्णताशून्य और मांसाङ्कुरयुक्त हो वह आरोग्य उन्मुख जानना। व्रण दुर्गन्धविशिष्ट, पीपरक्त, स्रावयुक्त भीतरको धस जाने पर या दीर्घकालमें भी आराम न होनेसे उसको दुष्टव्रण कहते है।

असाध्य और प्राणनाशक व्रण।—जिस व्रणसे वसा, चर्बी या मज्जा आदि निर्गत हो और जो व्रण मर्म्मस्थानमें उत्पन्न हो, जिसमें अत्यन्त दर्द हो, जिस व्रणके भीतर दाह और उपर ठण्ढा किम्वा बाहर दाह भीतर ठण्ढा तथा जिस व्रणमें बल और मांसका क्षय, श्वास, कास, अरुचि आदि उपद्रव उत्पन्न हो वही सब व्रण असाध्य जानना, तथा जिस व्रणमे शराब, अगरु, घी, चन्दन या चम्पकादि फूलकी तरह सुगन्ध निकले वह प्राण नाशक जानना। अस्त्रशस्त्रादिसे कोई स्थानमें घाव होनेसे या आगसे जल जानेपर जो व्रण होता है, उसको सद्योव्रण कहते हैं। सद्योव्रणमे वसा, चर्बी, मज्जा या पतला पदार्थ निर्गत होनेपर भी असाध्य नही समझना। किन्तु मर्म्मस्थानमें चोट लगनेसे जो व्रण होता है वह असाध्य जानना। इसके अन्यान्य लक्षण साधारण व्रणकी तरह समझना।

नाडीव्रण या नासूर।—व्रणशोथ पकनेपर उपयुक्त समयमे पीपरक्त न निकलनेसे वही पीप क्रमश त्वक मांस, शिरा स्नायु, सन्धि, अस्थि, कोष्ठ और मर्म्म प्रभृति स्थान समूहोंको विदीर्ण कर भीतरको जाता है, इससे उस व्रण स्थानसे भीतरको तरफ एक नाली उत्पन्न होती है, इसीको नाडीव्रण (नासूर) कहते है।

विद्रधि और व्रणशोथ चिकित्सा।—विद्रधि और व्रणशोथके अपक्वावस्थामें रक्त मोक्षण, मृदु विरेचन, औषध प्रयोग और स्वेद क्रियासे उसको बैठानेका उपाय करना चाहिये। जौ, गेहूं और मूग पकाकर उसका लेप करना अथवा सैजनके जडका लेप और स्वेद करनेसे विद्रधि बैठ जाता है। अपक्व अन्तर्विद्रधि में सैजनके जडकी छालका रस सहतके साथ पिलाना, अथवा सफेद पुनर्नवा की जड या वरुण छालकी जडका काढा पिलाना। आकनादि मूल, महत और अरवे चावलके धोवनके साथ सेवन करनेसे भो अपक्व अन्तर्विद्रधि आराम होता है। वरुणादि घृत सेवन करनेसे अन्तर्विद्रधिमें विशेष उपकार होता है। व्रणशोथके अपक्वावस्थामें धतूरेकी जड और सेंधा नमक एकत्र पीसकर गरम लेप करना अथवा वड, गुलर, पीपल, पाकड, और वेत इन सबका छाल समभाग पीसकर थोडा घी मिलाकर लेप करना। इससे भी व्रणशोथ बैठ जाता है।

शोथ पकानेका उपाय।—प्रलेपादिसे न बैठनेपर विद्रधि या व्रणशोथ पकाकर पीप रक्त निकालना चाहिये। पकानेके लिये सनकी बीज, मूलीकी बीज, सैजनकी बीज, तिल, सरसो, तिसी, जौ और गेहूं आदिकी पुलटिस देना। पकनेपर नस्तर करनाही अच्छा है। नहीतो करञ्ज, भिलावा, दन्तीमूल, चितामूल, कनैलकी जड और कबूतर, कौवा, या शकुनिकी विष्ठा पीसकर अथवा गायका दांत घिसकर उपयुक्त स्थानमें लगाना, इससे वही स्थान फूटकर पीप रक्त आदि निर्गत होता है। गेहूं और सेमल आदि पिच्छिल द्रव्यकी छाल और मूल तथा गेहूं और उरद आदि द्रव्यका लेप देनेसे फैला हुआ पीप आदि आकृष्ट हो घावके मुखसे बाहर निर्गत हो जाता है। क्षतस्थान धोनेके लिये

परवरका पत्ता, नीमका पत्ता या वटादिके छालका काढा व्यवहार करना। घाव धोनेपर करञ्जाद्य घृत, जीरक घृत, जात्याद्य घृत और तैल, विपरीत मल्ल तैल, व्रणराक्षस तैल, या हमारा "क्षतारि तैल" प्रयोग करना, इससे घाव जलदी सूख जाता है। व्रण दूषित होनेसे अर्थात् दुष्ट व्रणके लक्षण मालूम होनेसे नीमका पत्ता, तिल, दन्तीमूल और चित्रत मूल यह सब समभाग पीसकर थोडा नमक और सहत मिलाकर लेप करना। केवल अनन्तमूलका प्रलेप किम्बा असगन्ध, कुटकी, लोध जायफल, जेठीमध, लज्जालु लता और धाईफूलका प्रलेप देनेसे अथवा शतपर्णीका दूध लगानेसे भी दुष्टव्रण आराम होता है।

सद्योव्रण चिकित्सा।—सद्योव्रणके प्रथमावस्थामें उपयुक्त चिकित्सा होनेसे फिर वह घाव नहीं होता। अस्त्रादिसे किसी स्थानमें घाव होनेसे जलको पट्टी बांधनेसे रक्तस्राव बन्द होता है। अपामार्गके पत्तेका रस, दन्ती पत्तेका रस और दूर्व्वाका रस प्रयोग करनेसे भी रक्तस्राव बन्द होता है। कपूर मिलाया शतधौत घीसे घाव भरकर बांध देनेसे घाव पकता नहीं तथा तकलीफ दूर हो क्रमश घाव भर आता है। इन सब क्रियाओंसे आराम न हो घाव होनेपर पूर्व्वोक्त प्रलेप और तैलादि प्रयोग तथा आगसे जले घावमें भी वही सब तैलादि प्रयोग करना चाहिये। आगसे जलते ही जले हुए स्थानमें तिल तैलके साथ जौ भस्म मिलाकर अथवा दूध और महिष नवनीतके साथ तिल पीस कर लेप करनेसे जलन शान्त होता है। जले हुए स्थानमें सहत लगाकर उपरमें जौचूर्ण लेप करनेसे या केवल गुड़ अथवा केवल जौ चूर्णसे लेप करनेसे जलन दूर होता है।

नाडीव्रण चिकित्सा।—नाडीव्रण यानी नासूरमें

छापरमालीका गोंद लगाना। सफेद रेंडका दूध और खेर एकत्र मिलाकर लेप करना शृगालकूलो, मेनफल, सुपारीको छाल और सैन्धा नमक समभाग सेंहुड या अकवनके दूधमें मिलाकर बत्ती बनाना तथा वही बत्ती नासूरमें प्रवेश कर रखना। अथवा मेषलोम जलाकर उसको राख और तितलीकोंके साथ तैल पाककर उसमें रुई भिगोकर नासूरमें रखना। स्वर्जिकाद्य तैल निर्गुण्डो तैल, हंसपादो तैल और हमारा "क्षतारि तैल" नासूरमें प्रयोग करना चाहिये। इसके साथ सप्ताङ्ग गुग्गुलु या हमारा "अमृतवल्ली कषाय" व्यवस्था कर सकते हैं।

पथ्यापथ्य।—दिनको पुराने चावलका भात, मूग और मसूरकी दाल, परवल, बैगन, गुल्लर, कच्चा केला सेंजनका डण्ठा आदि घृतपक्व तरकारी, बलादि चोण होनेसे छाग आदि लघु मांसका रस आहार करना। रातको रोटी और वही सब तरकारी, खानेको देना। गरम पानी ठण्ढा कर पान और बीच बीचमें जरूरत होनेसे उसी पानीसे स्नान करना चाहिये।

निषिद्ध कर्म्म।—सब प्रकारका कफजनक और गुरुपाक द्रव्य, दूध, दही, मत्स्य, पिष्टक और सब प्रकार मिष्टद्रव्य भोजन और दिवानिद्रा, रात्रि जागरण, स्नान, मैथुन, पथ पर्य्यटन और व्यायाम आदि कार्य्य इस रोगमें अनिष्ट कारक है।



भगन्दर।

संज्ञा।—गुदासे दो अङ्गुल बादके स्थानमें नाडीव्रणको तरह एकप्रकार घाव उत्पन्न होता है, उसको भगन्दर कहते हैं। कुपित वातादि दोषोंसे पहिले उस स्थानमें व्रणशोथ उत्पन्न होता है, फिर वह पककर फैल जानेसे अरुण वर्णका फेन और पीप आदि उसमें से स्राव होता है, घाव बडा होनेसे उसी रास्ते मल, मूत्र, शुक्र आदि निर्गत होता है। गुह्यदेशमें किसी प्रकारका घाव होकर पकनेपर वह भी क्रमश भगन्दर हो जाता है।

साध्यासाध्य निर्णय।—सब प्रकारका भगन्दर अतिशय कष्टदायक और कष्टसाध्य है। जिस भगन्दरसे अधोवायु, मल, मूत्र और क्रिमि निकले तो उससे रोगीके प्राणनाशको सम्पूर्ण सम्भावना है। जो भगन्दर गौ स्तनकी तरह पैदा हो विदीर्ण होनेसे नदीके पानीके आवर्त्तकी तरह आकारविशिष्ट हो तो वह असाध्य जानना।

चिकित्सा।—पकनेसे पहिले ही इसकी चिकित्सा करना चाहिये, नहोतो नितान्त कष्टसाध्य होता है। अपक्कावस्थामें रक्तमोक्षण ही इसको प्रधान चिकित्सा है। पिडिका बैठानेके लिये वटपत्र या पानीके भीतर को ईटका चूर्ण, सोंठ, गुरिच और पुनर्नवा यह सब द्रव्य पीसकर लेप करना। विद्रधि प्रभृति बैठानेके लिये जो सब उपाय कह आये है वह सब भी प्रयोग कर सकते है। बैठनेकी आशा न रहनेसे शस्त्र प्रयोग करना चाहिये अथवा पूर्व्वोक्त उपायोंसे पकाकर पीप आदि निकालना चाहिये। घाव आराम करनेके लिये सेहुडका दूध, अकवनका दूध अथवा दारु-

हलदी का चूर्ण, यही सब द्रव्यकी बत्ती बनाकर भगन्दरमें रखना। त्रिफलाके काढ़ेसे भगन्दर धोकर, त्रिफलाके काढ़ेमें बिल्ली या कुकुरकी हड्डी घिसकर लेप करना। नाडीव्रण नाशक सब प्रकार-का तेल भगन्दरमें प्रयोग करना चाहिये। इसके सिवाय हमारा "चतारि तैल" प्रयोग करनेसे भी पीड़ा दूर होती है। इस रोगमें सप्तविंशतिक गुग्गुलु, नवकार्षिक गुग्गुलु और व्रण गजाङ्कुश रस आदि औषध अथवा हमारा "अमृतवल्ली कषाय" सेवन करना बहुत जरूरी है।

पथ्यापथ्य।—विद्रधि और व्रण रोगमें जो सब पथ्यापथ्य विहित है, भगन्दर रोगमें भी वही सब पालन करना चाहिये। अग्निबल क्षीण न होतो शृगाल मांस भोजन भगन्दर रोगमें विशेष उपकारी है।



उपदंश और व्रध्न।

—०—

निदान।—दूषितयोनि स्त्रीके साथ सहवास, ब्रह्म-चारिणी सहवास, अतिरिक्त मैथुन, मैथुनके बाद लिङ्ग न धोना अथवा क्षार मिश्रित गरम पानीसे धोना और किसी कारणसे लिङ्गमें घाव होना आदि कारणोंसे उपदंश रोग पैदा होता है। इसी प्रकार दूषित पुरुष सहवास इत्यादि कारणोंसे स्त्रियोंको यह रोग उत्पन्न होता है। इस रोगमें पहिले लिङ्ग मुडमें या उपरकी

चमड़ेपर छोटी २ फुसरी पैदा हो फुसरीके चारो तरफ काड़ा हो जाता है तथा क्रमशः वह फुसरी पककर वढ़ती है, फिर उसमें से पीप क्लेद और जलवत् पदार्थ निर्गत होता है। चतस्थान अत्यन्त विवर्ण होनेके साथ साथ सामान्य ज्वर, वमनोद्रेक, अग्निमान्द्य, जिह्वा विकृतास्वाद और मैली, हड्डोमें दर्द, शिरपीड़ा और किसीको पट्ठेमें दर्द अथवा व्रध्न (वाघी) होता है। चतस्थानका मूलभाग कठिन तथा मध्यस्थान थोड़ा नीचा और उसके चारो तरफ थोड़ा ऊंचा होता है। यह रोग बहुत दिन तक अचिकित्सित भाव रहनेसे क्रमशः सर्व्वाङ्गमें फुसरीकी उत्पत्ति जगह जगह चत या स्फोटक, नेत्ररोग, केश और लोमका चय, सन्धिस्थान समूहोंमें दर्द, पीनस और कभी कभी प्रकृत कुष्ठ रोग भी पैदा होता है, तथा अन्तमें उसी घावमें क्रिमि उत्पन्न हो लिङ्ग चय हो जाता है। इसी अवस्थामें रोगीका प्राण नाश होता है।

चिकित्सा।—उपदंश चत दूर करनेके लिये करञ्जाद्य घृत, विचर्च्चिकारि तैल और हमारा "चतारि घृत" और "चतारि तैल" प्रयोग करना। अथवा आवला, हर्रा और वहेड़ा एक हाड़ोमें रख उपर ढकनीसे ढाककर आगमें जलाना, वही भस्म सहतमें मिलाकर घावमें लगाना, किम्वा रसाञ्जन और हर्रा सहत में घिसकर लगाना। ववूलके पत्तेका चूर्ण, अनारके छालका चूर्ण अथवा मनुष्य अस्थि चूर्ण व्यवहार करनेसे उपदंशका घाव आराम होता है। यही सब लेप या तैलादि प्रयोगके पहिले त्रिफलाका काढ़ा किम्वा भीमराजका रस अथवा करवीर, जयन्ती, अकवन और अमिलतासके पत्तेके काढ़ेसे घाव अच्छी तरह धोना चाहिये। खानेके लिये वरादि गुग्गुलु और रसशेखर रस औषध प्रयोग करना। ज्वर होनेसे ज्वर निवारक औषध भी उसीके साथ सेवन

कराना उचित है। रोग पुराना होनेसे सालसा सेवन कराना चाहिये। हमारा "वृहत् अमृतवल्ली कषाय और अमृतवल्ली कषाय" नामक सालसा उपदंश रोगका अति उत्कृष्ट औषध है।

पारद सेवनका परिणाम।—उपदंश रोग जल्दी आराम होनेके लिये बहुतेरे लोग पारा सेवन करते हैं। पारा यथारीति शोधित या सेवित न होनेसे, वह शरीरमें जाकर नाना-प्रकारका उत्कट रोग पैदा करता है। हड्डोमें जलन सन्धि समूह या सर्व्वाङ्गमें दर्द, शरीरके नानास्थानमें घाव या फोडियोंकी उत्पत्ति और काला या सफेद रंगका दाग, हाथ और पैरके तलवोंसे चमडा निकलना, मुख नाकमें घाव, पीनस, मुखरोग, दन्तच्युति, नासिका क्षय, शिर पोडा पक्षाघात, अण्डकोषमें शोथ और कठिनता, जगह जगह गाठोंमें दर्द और शोथको उत्पत्ति, चक्षुरोग, भगन्दर, नानाप्रकार चर्म्मरोग और कुष्ठरोगतक अथवा पारद सेवनसे उत्पन्न होते देखाई देता है। पारद विकृतिमें हमारा "अमृतवल्ली कषाय" सेवन करना हो अच्छा है, कारण यह इस रोगका श्रेष्ठ औषध है। इसके सिवाय कुष्ठरोगोक्त पञ्चतिक्त घृत आदि कई औषध विचार कर प्रयोग करना चाहिये। शोधित गन्धक ४ रत्ती मात्रा घोके साथ, चालका तेल १०।१२ बूंद दूधके साथ रोज सेवन करनेसे पारद विकृतिमें विशेष उपकार होता है। घाव आराम करनेके लिये पूर्व्वोक्त क्षत निवारक औषध और चर्मरोग शान्तिके लिये सोमराजो तैल, मरिचादि तैल, महारुद्र गुडुचो तैल और कन्दर्पसार तैल बदनमें मालिश करना चाहिये।

व्रध्न कारण।—उपदंश होनेसे अकसर बाघी होते दिखाई देता है। कफ जनक या गुरुपाक अन्न भोजन, सूखा या

सड़ा मांस भोजन, नीचे ऊंचे स्थानमें चलना, तेज चलना और पैरमें फोड़ा या किसी तरहकी चोट लगनेसे भी यह रोग उत्पन्न होता है। इसमें वंक्षण सन्धि यानि दोनों पट्ठोंमें शोथ और साथ ही ज्वर होता है। उपदंश जनित व्रध पक जाता है, पर दूसरे कारणोंसे बाघो पकते नहीं देखा है।

व्रध चिकित्सा।—उपदंशजनित व्रध पकाकर नस्तरसे काट पीब रक्त निकालनाही अच्छा है, नहीतो और और रोग उत्पन्न होनेकी सम्भावना है। व्रणशोथ पकानेके लिये और पक-जानेपर, विदारण और घाव सुखानेके लिये जो सब योगादि लिख आये है, व्रध रोगमें भी वही सब प्रयोग करना। अन्यान्य व्रध अथवा उपदंश जनित व्रध भी किसी वक्त बैठानेकी आवश्यकता हो तो पैदा होतेही बैठानेकी तदबीर करना चाहिये। जोकसे रक्त मोक्षण या बड़का दूध लगाना गन्धाबिरोजा या मुरगीके अण्डेके द्रव भागकी पट्टी रखनेसे व्रध बैठ जाता है। नौसादर या सोरा चार आनेभर एक छटाक पानीमें मिलाकर कपड़ेकी पट्टी भिगोकर रखनेसे भी व्रध जल्दी बैठ जाता है, अथवा कालाजीरा, होबेर, कूठ, तेजपत्ता और बेर, यही सब द्रव्य कांजीमें पीसकर लेप करना। दर्दकी शान्तिके लिये भेड़ीके दूधमें गेंहू पीसकर लेप करना। ज्वर दूर करनेके लिये ज्वरनाशक औषध देना।

पथ्यापथ्य।—इस बिमारीमें दिनको पुराने चावलका भात, मूंग, मसूर, अरहर और चनेकी दाल, परवर, गुलर, बैंगन, पुराना सफेद कोंहड़ा आदि घीमें बनी तरकारी, बीच बीचमें छाग, कबूतर या मूरगाका मांस आहार करना। रातको रोटी और उक्त तरकारी खाना चाहिये ज्वर अधिक हो तो भात बन्दकर रोटी या सागू आदि हलका आहार देना चाहिये।

निषिद्ध कर्म्म।—मिष्टद्रव्य, शीतल द्रव्य, दूध और मछली भोजन और स्नान, मैथुन, दिवानिद्रा, व्यायाम आदि इस रोगमें अनिष्टकारक है।

कुष्ठ और श्वित्र।

निदान।—क्षीर मत्स्यादि संयोग विरुद्ध द्रव्य भोजन, द्रव, स्निग्ध, और गुरुपाक द्रव्य भोजन, नये चावलका भात, दही, मछली, लवण, उरद, मूली, मिष्टान्न, तिल और गुड़ आदि द्रव्य अतिरिक्त भोजन और मलमूत्र वमनादि का वेग धारण, अतिरिक्त भोजनके बाद व्यायाम या धूपमें बैठना, आतपक्लान्त, परिश्रान्त, या भयार्त्त होनेपर विश्राम न लेकर ठण्ढा पानी पीना अजीर्णमें भोजन, वमन विरेचनादि शुद्धिकार्य्यके बाद अहित आचरण, भुक्त अन्न जीर्ण न होनेके पहिले स्त्रीसङ्गम, दिवानिद्रा और गुरु ब्राह्मण आदिका अपमान आदि उत्कट पापाचरण, यही सब कारणोंसे कुष्ठरोग उत्पन्न होता है। वातरक्त और पारद विकृतिसे भी कुष्ठरोग पैदा होता है।

पूर्व्व लक्षण।—कुष्ठरोग उत्पन्न होनेमे पहिले अङ्ग-विशेष अतिशय मसृण या खरस्पर्श, अधिक पसीना या पसीना एक दम बन्द होना, शरीरकी विवर्णता, दाह, कण्डु, बदनमें खुजली, सुरसुरी अथवा चिवटी चलनेकी तरह अनुभव। अङ्ग-

विशेषमें स्पर्शशक्तिका नाश, जगह जगह सूई गडानेकी तरह दर्द, जगह जगह बर्रे काटनेकी तरह दाग, क्लान्ति बोध, किसी प्रकारका घाव होनेसे उसमें भयानक दर्द, घावकी जल्दी उत्पत्ति और आराम होनेमें देर, सामान्य कारणसे भी घावका प्रकोप, घाव सूख जाने-पर भी उस स्थानमें रूखापन, रोमाञ्च और कृष्णवर्णता यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है।

महाकुष्ठके प्रकार और भेद लक्षण।—कुष्ठरोग अपरिसंख्येय होनेपर भी संक्षेपतः १८ प्रकारका निर्दिष्ट है। जिसमें कापाल, औडुम्बर, मण्डल, ऋष्यजिह्व, पुण्डरिक, सिध्म और काकन नामक सात प्रकारके कुष्ठको महाकुष्ठ कहते हैं। बाकी ११ प्रकारका क्षुद्र कुष्ठ है। कापाल कुष्ठ, थोडा काला और थोडा अरुण वर्ण, रूच, खरस्पर्श सूई गडानेकी तरह दर्द और पतला त्वकविशिष्ट होता है। औडुम्बर कुष्ठ गुल्लरके रंगकी तरह, दाह, कण्डुयुक्त और इसमें व्याधि स्थानके लोम पिङ्गल वर्ण होता है। मण्डल कुष्ठ थोडा सफेद, थोडा लाल, आर्द्र, श्वेदयुक्त, उन्नत, मण्डलाकार और परस्पर मिला हुआ होता है। ऋष्य-जिह्व कुष्ठ हरिणके जीभकी तरह आकृतिविशिष्ट कर्कश, प्रान्त-भागमें लाल और बीचमें काला दाग और वेदनायुक्त होता है। पुण्डरीक कुष्ठ लाल कमलके फूलकी तरह आकृतिविशिष्ट सफेद मिला लाल रङ्ग और उंचा। सिध्मकुष्ठ देखनेमें लौकीके फूलकी तरह और सफेद मिला लाल रङ्गका चमडाविशिष्ट व्याधिस्थान घिसनेसे उसमेंसे चूर्णकी तरह पदार्थ निकलता है, यह रोग छातीमें अधिक होता है। काकन कुष्ठ घुंघचीकी तरह भीतर काला और प्रान्तभागमें लाल रंग, तीव्र वेदनायुक्त, यही कुष्ठ पकता है।

सब प्रकारका कुष्ठ जब रसधातुमें प्रवेश करता है तब अङ्गको विवर्णता, रुक्षता, स्पर्श शक्तिका नाश रोमाञ्च और अधिक पसीना यही सब लक्षण प्रकाशित होता है, फिर खून गाढ़ा होनेसे कण्डु और अधिक पोप सञ्चय। मांसगत होनेसे कुष्ठको पुष्टि और कर्कशता, मुखशोष, पिडिकाकी उत्पत्ति, सूई गड़ानेकी तरह दर्द और घाव पैदा होता है। मेदोगत होनेसे हस्तवध, गतिशक्तिका नाश, अङ्गकी वक्रता और घावके स्थानकी विकृति और अस्थि तथा मज्जागत होनेसे नासाभङ्ग, चक्षुकी रक्तवर्णता क्षतस्थानमें क्रिमिकी उत्पत्ति और स्वरभङ्ग होता है।

साध्यासाध्य निर्णय।—कुष्ठरोग रस, रक्त और मांसगत होनेतक आराम होनेकी सम्भावना है। मेदोगत कुष्ठ याप्य। अस्थि और मज्जागत तथा उसमें क्रिमि, तृष्णा, दाह और मन्दाग्नि उपस्थित होनेसे असाध्य होता है। जिस कुष्ठरोगीका कुष्ठ विदीर्ण, स्रावयुक्त, चक्षु लाल और स्वरभङ्ग हो उसकी मृत्यु निश्चय जानना।

क्षुद्रकुष्ठोंके प्रकार भेदसे लक्षण।—उक्त सात महाकुष्ठके सिवाय बाकी ११ प्रकारके क्षुद्र कुष्ठोंमें जिस कुष्ठमें पसीना नहीं होता और जो अधिक स्थानमें व्याप्त रहता है तथा जिसकी आकृति मछलीके चोइयाकी तरह होती है उसे भी एक प्रकारका कुष्ठ कहते हैं। हाथीके चमड़ेकी तरह रुखा, काला और मोटा, कुष्ठको चर्मकुष्ठ कहते हैं। जिस कुष्ठमें हाथ पैर फट जाता है, और तीव्र दर्द होता है, उसको वैपादिक कुष्ठ कहते है। श्याम वर्ण रुखा, सूखा और सूखे घावकी तरह खरस्पर्श कुष्ठको किटिम कुष्ठ कहते है।

कण्डुविशिष्ट, रक्तवर्ण स्फोटक द्वारा व्याप्त कुष्टको अलसक

कहते हैं। उंचा, मण्डलाकार, कण्डुयुक्त और रक्तवर्ण फोडियोंसे व्याप्त कुष्ठको दद्रुमण्डल, तथा रक्तवर्ण, शूलवेदनाकी तरह दर्द, कण्डुयुक्त स्फोटक व्याप्त, स्पर्शसह और जिसमें मास गलकर गिरता है उस कुष्ठको चर्मदल कहते हैं। दाह, कण्डु और स्रावयुक्त छोटी छोटी फोडियाको पामा और उसमें तीव्र दाह और स्फोटक होनेसे कच्छू (खजुली) कहते हैं। कच्छू हाथ और चूतडमें अधिक होता है। श्याम या अरुण वर्ण पतला चर्मविशिष्ट स्फोटकको विस्फोटक कहते हैं। लाल या श्याम वर्ण तथा दाह और वेदनायुक्त वहु व्रणको शताक कहते हैं। विचर्च्चिका नामक क्षुद्र कुष्ठ श्याम वर्ण, स्रावयुक्त तथा कण्डु और पिडका विशिष्ट होता है, यही पैर में पैदा होनेसे उसको विपादिका कहते हैं। वस्तुत १८ प्रकारके कुष्ठोंमें सिध्म, दद्रु, पामा या कच्छू, विचर्चिका या विपादिका, शताक और विस्फोटक यही छ प्रकारके कुष्ठको प्रकृत क्षुद्र कुष्ठ कहना उचित है। इनके सिवाय और भी कई क्षुद्र कुष्ठ शास्त्रमें परिगणित है इन सबको अन्य कुष्ठकी तरह समझना चाहिये।

अवस्थाभेदसे चिकित्सा।—कुष्ठरोगका पूर्व्वरूप प्रकाश होतेही चिकित्सा करना चाहिये, नहोती सम्पूर्ण रूप प्रकाश होनेपर यह रोग असाध्य हो जाता है। इस रोगमें मञ्जिष्ठादि और अमृतादि क्वाथ, पञ्चनिम्ब, अमृत गुग्गुलु, पञ्चतिक्त घृत गुग्गुलु, अमृत भल्लातक, अमृताङ्कुर लौह, तालकेश्वर, महा तालकेश्वर, रसमाणिक्य और पञ्चतिक्त घृत तथा कुष्ठस्थानमें मालिश करनेके लिये महासिन्दुराद्य तैल, सोमराजी तैल, मरिचादि तैल, कन्दर्पसार तैल और वात रोगोक्त महागुडूची तैल व्यवहार कर सकते है। कुष्ठस्थानमें प्रलेप करनेके लिये हरीतकी, डहर-

करञ्जको बीज, चकावडको बीज और कूठ, यह सब द्रव्य गोमूत्रमें पीसकर लेप करना, अथवा मैनसिल, हरिताल, गोलमिरच, सरसोंका तेल, अकवनका दूध, यह सब द्रव्य पीसकर किम्वा डहरकरञ्ज बीज, चकावडको बीज और कूठ यह तीन द्रव्य गोमूत्रमें पीसकर लेप करना। गोमूत्र पान और चावलमुगराके तेलका मर्द्दन, कुष्ठ और कण्डू आदि रोगमें विशेष उपकारी है। दादको दूर करनेके लिये विडङ्ग, चकावडको बीज, कूठ, हलदी, सेन्धा नमक और सरसो, यह सब द्रव्य काञ्जीमें पीसकर लेप करना। चकावडको बीज, आंवला, राल और सेंहुडका दूध, यह सब द्रव्य काञ्जीमें पीसकर लेप करनेसे दद्रुरोग आराम होता है। हमारा "दद्रुनाशक चूर्ण" व्यवहार करनेसे भी दाद जलदी आराम होता है। चकावडको बीज, तिल, सफेद सरसो, कूठ, पीपरा, सोचल और काला नमक यह सब द्रव्य दहीके पानीमें तीन दिन भिगो रखना फिर उसका लेप करनेसे दद्रु और विचर्चिका रोग आराम होता है। अमिल्तासका पत्ता काञ्जीमें पीसकर लेप करनेसे दद्रु, किट्टिम और सिध्म रोग दूर होता है। गन्धक चूर्ण और यवाक्षार चूर्ण सरसोंके तेलमें मिलाकर लेप करनेसे सिध्मरोग आराम होता है। मूलीको बीज अपामार्गके रसके साथ अथवा दहीमें पीसकर लेप करनेसे भी सिध्मरोग आराम होता है। अकवनके पत्तेका रस और हलदीका कल्क सरसोंके तेलमें औटाकर मालिश करनेसे पामा, कच्छू और विचर्चिका आराम होता है। नरम अडसेका पत्ता, हलदी, गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे पामा, कच्छू रोगमें विशेष उपकार होता है। हमारा "चतारि तैल" पामा, कच्छू और विचर्चिका रोगमें विशेष उपकारी है।

श्वित्र या धवल और किलास।—पूर्वोक्त अष्टादश

प्रकारके कुष्ठरोगके सिवाय श्वित्र और किलास नामक और भी दो प्रकारके कुष्ठ रोग है। श्वित्र रोगका साधारण नाम "धवल" है। इससे शरीरमें जगह जगह सफेद दाग और किलास रोगमें थोडा लाल रंगका दाग होता है। जिन कारणोंसे कुष्ठरोग पैदा होता है श्वित्रादि रोग भी वही सब कारणोंसे उत्पन्न होता है। श्वित्रादि रोग पुराना और निर्लोम स्थान अर्थात् गुदा, लिङ्ग, योनि, हाथ पैरका तलवा और ओठमें उत्पन्न होनेसे असाध्य जानना। जिस श्वित्रके दाग सब परस्पर असंयुक्त और जिसके ऊपरकी रोम समूह श्वेतवर्ण न हो कृष्णवर्ण हो तथा थोडा दिनका पैदा हुआ और जो आगमें जला नही है उसीके आराम होनेकी सम्भावना है। बकुची दाना और छागलनादि गोमूत्रके साथ पोसकर लेप करनेसे श्वित्र और किलास रोगमें विशेष उपकार होता है। इसके सिवाय कुष्ठ रोगोक्त यावतीय मिश्रनाशक प्रलेप समूह और कन्दर्पसार तेल इसमें प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—वातरक्त रोगोक्त पथ्यापथ्य कुष्ठ प्रभृति रोगमें भी पालन करना चाहिये। यह रोग अतिशय संक्रामक है, इससे कुष्ठरोगीके साथ एक बिछौने पर शयन, उपवेशन, एकत्र भोजन, बदनमें निश्वासादि लगाना, रोगीका पहिरा कपडा पहिरना और उसके साथ मैथुन कदापि नही करना चाहिये।

शीतपित्त।

संज्ञा और पूर्व्व लक्षण।—सर्व्वाङ्गमें बर्रे काटनेकी तरह शोथ और अतिशय कण्डु विशिष्ट लाल रंगका एक प्रकार दिदोरा हो खुजलाया करता है, उसीको शीत पित्त तथा चलित भाषामें इसको "आमवात" कहते है। किसी किसी जगह सूची-वेधवत् वेदना, वमन, ज्वर और दाह भी होता है। यह रोग उत्पन्न होनेसे पहिले पिपासा, अरुचि, वमन वेग, शरीरका अवसाद, गौरव और आखे लाल होना, यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है।

उदर्द और कोठ।—उदर्द और कोठ नामक औरभी दो प्रकारका रोग इसी जातिका है। शीतल वायु सेवन आदि कारणोंसे वायु और कफ, प्रकुपित हो वायुके आधिक्यसे शीतपित्त और कफके आधिक्यसे उदर्द रोग उत्पन्न होता है। यह दो रोगके लक्षण प्राय एकही प्रकारका होता है। वमन क्रियासे अच्छी तरह वमन न होनेसे उत्क्लिष्ट पित्त और कफ शीतपित्तके लक्षणयुक्त जो सब शोथ पैदा होता है उसको कोठ कहते है। कोठ बार बार उत्पन्न और बार बार विलीन होनेसे उसको उत्कोठ कहते है।

चिकित्सा।—इस रोगमें अजीर्ण जन्य आमाशय पूर्ण रहनेसे परवरका पत्ता, नीमकी छाल और अडूसेकी छालका काढ़ा पिलाकर के करना। विरेचनके लिये त्रिफला, गुग्गुलु और पीपल समभाग मिलाकर आधा तोला मात्रा सेवन करना। बदनमें

सरसोका तेल मर्द्दन और गरम पानीसे स्नान उपकारी है। पुराने गुडके साथ अदरखका रस पीना, २ तोले गौके घीके साथ ⅓) आने-भर गोलमरिच चूर्ण रोज सवेरे सेवन, हरिद्राखण्ड, वृहत् हरिद्राखण्ड और आर्द्रखण्ड सेवन और दूर्व्वा, हरिद्रा एकत्र पीसकर लेप अथवा सफेद सरसो, हल्दी चाकुलाका बीज और काली तिल एकत्र पीसकर सरसोका तेल मिलाकर लेप करनेसे शीतपित्त आदि रोगमें विशेष उपकार होता है। दस्त साफ रखना इससे बहुत जरूरी है।

पथ्यापथ्य।—इन सब रोगोंमें तिक्तरसयुक्त द्रव्य, कच्ची हल्दी, और नीमका पत्ता खाना उपकारी है। वातरक्त पीडामें जो सब पथ्यापथ्य लिखा है, इस रोगमें भी वही सब द्रव्य पानाहार करना। गरम पानीमें स्नान और गरम कपडेसे शरीरको ढाके रखना विशेष उपकारी है।

—०—

अम्लपित्त।

—०—

निदान और लक्षण।—चोर मत्स्यादि संयोगविरुद्ध द्रव्य भोजन और दूषित अन्न, अम्लरस, अम्लपाक तथा अन्यान्य पित्त प्रकोप कारक पानाहारसे पूर्व्व सञ्चित पित्त विदग्ध हो अम्लपित्त रोग पैदा होता है। इस रोगमें भुक्त द्रव्यका अपरिपाक, क्लान्तिबोध, वमन वेग, तिक्त या अम्लरसयुक्त डकार, देहका भारीपन, छाती और गलेमें जलन और अरुचि यही सब लक्षण

प्रकाशित होता है। अम्लपित्त अधोगामी होनेसे चारो तरफ सबजो मालूम होती है, ज्ञानका वैपरोत्य, वमन वेग शरीरमें कोठका उद्गम, अग्निमान्द्य रोमाञ्च, घर्म और शरीरका पोला होना, यही सब लक्षण लक्षित होता है। ऊर्द्धगामी होनेसे हारत्, पोत, नील, कृष्ण और रक्तवर्ण अथवा मास धोया पानीकी तरह रग, अम्ल, कटु या तिक्तरसयुक्त पिच्छिल और कफामिश्रित वमन होता है। भुक्तद्रव्य विदग्ध होनेके बाद अथवा अभुक्त अवस्थाहीमें कभी कभी वमन होता है। इसमें कण्ठ, हृदय और कुक्षिमें दाह, शिरो वेदना, हात पैरमें जलन, देह गरम, अत्यन्त अरुचि, पित्त कफज ज्वर, शरीरमें कण्डु युक्त पिडकाकी उत्पत्ति आदि नानाप्रकारके उपद्रव उपस्थित होता है।

प्रकारभेद्से लक्षण।—वातज, श्लेष्मज, और पित्त-श्लेष्मज भेदसे अम्लपित्त चार प्रकारका होता है। वातज अम्ल-पित्तसे कम्प, प्रलाप, मूर्च्छा, अवसन्नता, शूलवेदना अन्धकार दर्शण, ज्ञानका वैपरित्य, मोह और रोमाञ्च, यही सब लक्षण दिखाइ देता है। कफजमें कफ निष्ठीवन, देहको गुरुता जडता, अरुचि, शीतबोध और निद्राधिक्य प्रकाशित होता है। वात-श्लेष्मज अम्लपित्तमें तिक्त, अम्ल और कटुरसयुक्त उद्गार, छाती, कुक्षि और कण्ठमें दाह, भ्रम, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, आलस्य, शिरोवेदना, मुखसे जलस्राव, मुखका स्वाद मीठा, यही सब लक्षण प्रकाशित होता है।

अधोगत अम्लपित्तमें अतिसारका भ्रम और ऊर्द्धगत अम्ल-पित्तमें वमन रोगका भ्रम होनेकी सम्पूर्ण सम्भावना है, इसीसे इस रोगकी परीक्षा सावधानी और विचार कर करना उचित है।

चिकित्सा।—पीडाकी प्रथम अवस्थामें चिकित्सा न

कारनेसे यह रोग असाध्य हो जाता है, इससे पैदा होतेही चिकित्सा करना चाहिये।

लक्षणभेदसे चिकित्सा।—अम्लपित्त रोगमें अत्यन्त जलन अथवा कोष्ठबद्ध रहनेसे किम्वा कफके आधिक्यमें वमन विरेचनादि उपयुक्त शुद्धिक्रिया नितान्त उपयोगी है। कफज अम्लपित्तमें परवरका पत्ता, नीमपत्र और मदनफलके समभाग काढेमें सहत और ≶) आनेभर सैन्धानमक मिलाकर पिलानेसे वमन हो अम्लपित्तकी शान्ति होती है। विरेचनके लिये सहत और आंवलेके रसमें चार आनेभर विहतका चूर्ण मिलाकर सेवन कराना। अम्लपित्त शान्तिके लिये निस्तूष जौ, अडूसा और आंवला, इनके काढेमें दालचिनी, इलायची, तेजपत्र चूर्ण और सहत मिलाकर पिलाना। जौ, पीपल और परवरका पत्ता अथवा गुरिच खैरकी लकडी, मुलेठी और दारु हरिद्राके काढेमें सहत मिलाकर पिलाना। गुरिच, नीमकी छाल, परवरका पत्ता और त्रिफलाके काढेमें सहत मिलाकर पीनेसे अम्लपित्त आराम होता है। अम्लपित्तमें वमन निवारणके लिये हरीतकी और भीमराज चूर्ण समभाग आधा तोला मात्रा पुराने गुडके साथ सेवन कराना। अथवा अडूसा, गुरिच और कण्टकारी इन सबके काढेमें सहत मिलाकर पिलाना, इस काढेसे श्वास, कास और ज्वरका भी उपशम होता है। अतिसार निवारणके लिये अतिसार रोगोक्त कई औषध विचारकर प्रयोग करना। मलबद्ध हो तो अविपत्तिकर चर्ण हरीतकी खण्ड अथवा हमारी "मरल्मिटी वटिका" सेवन करना उचित है। पिप्पलीखण्ड, वृहत् पिप्पली खण्ड, शुण्ठीखण्ड, खण्ड कुष्माण्डक अवलेह, सौभाग्य शुण्ठी मोदक, सितामण्डूर, पानीय भक्त वटी, सुधावती गुडिका, लीलाविलास, अम्लपित्तान्तक लौह,

सर्व्वतोभद्र लोह, पिप्पली घृत, द्राक्षाद्य घृत, श्रीविल्व तै आदि विचारकर अम्लपित्त रोगमें व्यवहार कराना। शूल रोगो धात्री लोह, आमलकी खण्ड आदि औषध भी इसमें प्रयोग क सकते हैं, हमारा शूल "निर्व्वाण चूर्ण" अम्लपित्त रोगका विशे उपकारी औषध है।

पथ्यापथ्य और हमारा सञ्जीवन खाद्य।—शूलरोगोक्त पथ्यापथ्यही इसमें पालन करना उचित है। तिक्तर भोजन इसमें विशेष उपकारी है। वातज अम्लपित्तमें चीनी औ सहतके साथ धानके लावाका चूर्ण खाना हितकर है। यव औ गोधूमका मण्ड आदि लघुपथ्य इसमें देना चाहिये। हमार "सञ्जीवन खाद्य" इस रोगमें उपयुक्त पथ्य है।

निषिद्ध कर्म्म।—सब प्रकारका गुरुपाक द्रव्य, अधिव लवण, मिष्ट, कटु और अम्लरस तथा तीक्ष्णवीर्य्य द्रव्य भोजन दिवानिद्रा, रात्रि जागरण, मैथुन और मद्यपान आदि इस रोगमें विशेष अनिष्टकारक है।

विसर्प और विस्फोटक।

विसर्पका निदान और प्रकारभेद।—सर्व्वदा लवण, अम्ल, कटु और उष्णवीर्य्य द्रव्य सेवन करनेसे वातादि दोष कुपित हो विसर्प रोग पैदा होता है। इस रोगमें शरीरके किसी स्थानमें स्फोटककी तरह उत्पन्न हो नानास्थानमें विस्तृत होता है। विसर्प रोग सात प्रकार, वातज, पित्तज, श्लेष्मज, सन्निपातज, वातपित्तज, वातश्लेष्मज और पित्तश्लेष्मज। इन सबमें वातपित्तज

विसर्पको अग्नि विसर्प, वातकफजको ग्रन्थि विसर्प और पित्त कफजको कर्द्दमक कहते हैं।

विभिन्न दोषजात लक्षण।—वातज विसर्पमें वात-ज्वरकी तरह मस्तक, हृदय, गात्र और उदरमें दर्द, शोथ, धक धक करना, सूचीवेधवत् या भङ्गवत् वेदना, श्रान्तिवोध और रोमाञ्च होना यही सब लक्षण लक्षित होता है। पैत्तिक विसर्प अतिशय लाल रंग और जल्दो बढता है, तथा पित्तज्वरके लक्षण समूह प्रकाशित होता है। कफज विसर्प कण्डूयुक्त चिकना और कफज ज्वरके लक्षणयुक्त होता है। सन्निपातज विसर्पमें तीनो दोषके लक्षण मिले हुए मालूम होता है।

अग्नि विसर्प।—अग्नि विसर्प नामक वातपित्तज विसर्प मे ज्वर, जोमचलाना, मूर्च्छा, अतिसार, पिपासा, भ्रम, गांठोमें दर्द, अग्निमान्द्य, अन्धकार दर्शण और अरुचि यही सब लक्षण प्रकाशित होता है। इसके सिवाय सर्व्वाङ्ग शरीर जलते हुए अङ्गारसे व्याप्त मालूम होना, शरीरके जिस स्थानमें विसर्प विस्तृत हो, वह स्थान कोयलेकी तरह काला रंग, कभी नीला या लालभी होते देखा गया है, तथा उसके चारो तरफ आगसे जलनेको तरह फफोले होते है। यह विसर्प हृदयादि मर्म्म स्थानोपर होनेसे वायु प्रवलहो सर्व्वाङ्गमे दर्द, सन्ना और निद्रानाश तथा श्वास और हिक्का पैदा होता है। इसीतरह तकलीफ भोगते भोगते रोगी अवसन्न और सन्नाहीन हो मृत्युमुखमें जाता है।

ग्रन्थि विसर्प।—ग्रन्थि-विसर्प नामक वातकफज विसर्पमें दीर्घ वर्त्तुलाकार, स्थूल, कठिन और लाल रङ्गको ग्रन्थियेंभी अर्थात् गांठे होती है। इसमें अत्यन्त पीडा, प्रवल ज्वर, श्वास, कास, अतिसार मुखशोष, हिक्का, वमन, भ्रम, ज्ञानका वैपरीत्य,

विवर्णता, मूर्च्छा, अङ्गभङ्ग, और अग्निमान्द्य यही सब लक्षण उपस्थित होता है।

कर्द्दमक।—कर्द्दमक नामक पित्तश्लेष्मज विसर्प पीत लोहित, या पाण्डुवर्ण पिडकासे व्याप्त, चिकना, काला या रक्तवर्ण, मलिन, शोथयुक्त, गुरु, भीतर पका हुआ, अतिशय उष्णस्पर्श, क्लिन्न, विदीर्ण, कीचकी तरह कालारङ्ग और मूर्देकी तरह दुर्गन्धयुक्त होता है फिर क्रमश इस रोगमें मास गलकर गिर जानेसे शिरा और स्नायु सब दिखाई देता है, तथा साथही ज्वर, जडता, निद्रा, शिरोवेदना, देहका अवसाद, आक्षेप, मुखकी लिप्तता, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, अग्निमान्द्य, अस्थिवेदना, पिपासा, इन्द्रिय समूहोका भारीवोध, अपक्व मल निर्गम और स्रोत समूहोकी लिप्तता, यही सब लक्षण प्रकाशित होता है।

क्षतज विसर्प।—शस्त्र, नख, और दन्त आदिसे किसी जगह घाव होनेसे कुरथीको तरह काली या लाल रङ्गकी फोडिया पैदा होते देखा गया है, यह भी एक प्रकारका पित्तज विसर्प है।

उपद्रव।—ज्वर, अतिसार, वमन, क्लान्ति, अरुचि, अपरिपाक, और त्वकमास विदीर्ण होना यही सब विसर्प रोगके उपद्रव है।

साध्यासाध्य।—उक्त विसर्पोंमें वातज, पित्तज और कफज विसर्प साध्य है। किन्तु मर्मस्थानमें होनेसे कष्टसाध्य हो जाता है। त्रिदोषज, क्षतज, और वातपित्तज ग्रन्थिविसर्प असाध्य जानना।

विस्फोटकका निदान और लक्षण।—कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही (अम्लपाकी) रूक्ष, क्षार, या अपक्व द्रव्य भोजन, पहिलेका आहार जीर्ण न होनेपर फिर भोजन,

आतप-सेवन और ऋतु-पर्य्यय आदि कारणोंसे वातादि दोष समूह विशेष कर पित्त और रक्त कुपित हो विस्फोटक रोग उत्पन्न होता है। इसमे शरीरके किसी स्थानमें या सर्व्वाङ्गमें आगसे जलेकी तरह फफोले पैदा होते है और ज्वर भी होता।

दोषभेदसे लक्षण।—वातज विस्फोटक कृष्णवर्ण तथा साथही उसमें शिरोवेदना, अत्यन्त शूल, ज्वर, तृष्णा सन्धिस्थानोंमें दर्द होता है। पित्तज विस्फोट पाण्डुवर्ण अल्प वेदना, और कण्डुयुक्त होता है, यह देरसे पकता है, तथा वमन, अरुचि, और शरीरकी जडता आदि उपस्थित होता है। द्विदोषज विस्फोटकमें इसी तरह दो दोषके लक्षण मिले हुए मालूम होता है। त्रिदोषज विस्फोटक कठिन, रक्तवर्ण, अल्प पाकविशिष्ट तथा उसका मध्यभाग नीचा और प्रान्तभाग ऊंचा, दाह, तृष्णा, मोह, वमन, मूर्च्छा, वेदना, ज्वर, प्रलाप, कम्प और तन्द्रा यही सब लक्षण इसके साथ प्रकाशित होता है। रक्त दूषित होनेसे घुंघुचीकी तरह लालरङ्ग और पित्तविसर्पके लक्षणयुक्त एक प्रकार रक्तज विसर्प उत्पन्न होता है।

साध्यासाध्य।—उक्त विसर्पोंमें एक दोषज विसर्प साध्य, द्विदोषज कष्टसाध्य और त्रिदोषज, रक्तज, तथा बहु उपद्रवयुक्त विसर्प असाध्य जानना।

विसर्प चिकित्सा।—विसर्प रोगमें कफका आधिक्य रहनेसे वमन और पित्तके आधिक्यमें विरेचन देना चाहिये। वमनके लिये परवरका पत्ता नीम और इन्द्रयव, अथवा पीपल, मदन फल और इन्द्रयव, इसका काढा पिलाना। विरेचनके लिये त्रिफलाके काढेके साथ घी ॰) आनेभर और त्रिवृत चूर्ण चार आनेभर मिलाकर पीना इसमे ज्वरकोभी शान्ति होती है। वातज

विसर्पमें रास्ना, नीलोत्पल, देवदारु, लाल चन्दन, मुलेठी और बरियारा यह सब समभाग घी और दूधके साथ पीसकर लेप करना। पित्तज विसर्पमें बड़कीसोर, गुरिच, केलेका फूल और कमलके डण्डाकी गांठ एकत्र पीसकर शतधौत घीमें मिलाकर लेप करना। कफज विसर्पमें त्रिफला, पद्मकाठ, खसकी जड़, वराहक्रान्ता, कनैलकी जड़ और अनन्तमूल, इन सब द्रव्योंका लेप देना। द्विदोषज और त्रिदोषज विसर्पमें भी वही सब पृथक दोष-नाशक द्रव्य विचारकर लेप करना। सब प्रकारके विसर्पमें पद्मकाठ, खसकी जड़, मुलेठी और लाल चन्दन इन सबका काढ़ा अथवा बड़, पीपर, पाकर, गुल्लर और बकुल इन सबके पल्लवका काढ़ा सेवन विशेष उपकारी है। शिरीष, मुलेठी, तगरपादुका, लाल चन्दन, इलायची, जटामासी, हलदी, दारुहलदी, कूठ और बाला, यही दशाङ्ग प्रलेप सब प्रकारके विसर्पमें प्रयोग होता है। चिरायता, अडूसेकी छाल, कुटकी, परवरका पत्ता, त्रिफला, लाल चन्दन, नीमकी छाल इन सबका काढ़ा पीनेसे सब प्रकारका विसर्प और तज्जनित ज्वर, दाह, शोथ, कण्डु तृष्णा और वमन आराम होता है।

विस्फोटक चिकित्सा।—विस्फोटक शान्तिके लिये चावलके धोवनमें इन्द्रयव पीसकर लेप करना चाहिये, लाल चन्दन, नागकेशर, अनन्तमूल, शिरीषछाल और जातिपुष्प इन सब द्रव्योंका लेप करनेसे विस्फोटकका दाह शान्त होताहै। शिरीष-छाल, तगरपादुका, देवदारु और बभनेठी इन सब द्रव्योंका प्रलेप सब प्रकारके विस्फोटकमें उपकारी है। शिरीषछाल, गुल्लर और जामुनकी छाल, इन सब द्रव्योंका प्रलेप और काढ़ेका परिषेक विस्फोटक रोगमें विशेष उपकारी है।

शास्त्रीय औषध और हमारा चतारि तैल।—विसर्प और विस्फोटक रोगमें अमृतादि कषाय, नवकषाय गुग्गुलु, काला तिल, रुद्ररस, वृषाद्य घृत और पञ्चतिक्त घृत सेवन, तथा घावमें करञ्ज-तैल या हमारा "चतारि तैल" व्यवहार करना चाहिये। हमारा "अमृतवल्ली-कषाय" पीनेसे दोनो रोग जल्दी आराम होता है।

पथ्यापथ्य।—वातरक्त और कुष्ठरोगमें लिखित पथ्यापथ्य, विसर्प और विस्फोटक रोगमें भी पालन करना चाहिये।

रोमान्ती और मसूरिका।

रोमान्तीकी संज्ञा और लक्षण।—चलित भाषामें रोमान्तीको छोटीमाता, और मसूरिकाको बड़ीमाता कहते हैं। रोमकूपके उन्नतिकी तरह छोटी छोटी लाल फोड़ियाको रोमान्ती अर्थात् छोटीमाता कहते है, तथा छोटीमाता निकलनेके पहिले ज्वर और सर्व्वाङ्गमें दर्द होता है, अकसर २।३ दिन तक एकज्वर होकर ज्वर शान्त होते ही बदनमें दिखाई देती है, पहिले कपाल और डाढीमें निकल कर फिर सर्व्वाङ्गमें प्रकाशित होती है। रोमान्ती ज्वरमें कोष्ठरोध या उदरामय, अरुचि, कास और कष्टसे श्वास-निर्गम यही सब लक्षण प्रकाश होते हैं। रोमान्ती

अच्छी तरह बाहर न निकलनेसे पीडा कष्टसाध्य होती है। यह रोग बाल्यावस्थामें अधिक होता है।

बडीमाताके निदान और लक्षण।—क्षीर-मत्स्यादि सयोगविरुद्ध भोजन, दूषित अन्न, सीम, शाक और कट, अम्ल, लवण और क्षार द्रव्य भोजन पहिलेका आहार पचनेसे पहिले भोजन और क्रूर ग्रहोंकी कुदृष्टि आदि कारणोंसे मसूरिका अर्थात् बडीमाता उत्पन्न होती है। मसूरिकाकी पिडिका समूहोंकी आकृति मसूरकी तरह। यह रोग उत्पन्न होनेसे पहिले ज्वर, कण्डू, सर्व्वाङ्गमें दर्द, चित्तकी अस्थिरता, भ्रम, त्वक स्फीत और लाल रंग तथा दोनों आंखे लाल, यही सब पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है। मसूरिका धातुको अवलम्बन कर उत्पन्न होती है, इस लिये इसमें नानाप्रकारके भेद दिखाई देता है।

रसधातुगत या दूलारीमाता।—रसधातुगत मसूरिका जलविम्बकी तरह अर्थात् छोटे छोटे फलोलेकी तरह होती है और फूट जानेसे पानी निकलता है। यह सुखसाध्य है। चलित भाषामें इसको दुलारीमाता कहते है। रक्तगत मसूरिका लाल और पतले चर्म्मयुक्त होती है यह जल्दी पकजाती है और फूटने पर रक्तस्राव होता है। रक्त अधिक दूषित न होनेसे यह भी सुखसाध्य है। मांसगत मसूरिका कठिन, स्निग्ध और मोटे चर्म्म विशिष्ट, इससे बदनमें शूलवत् वेदना, तृष्णा, कण्डू, ज्वर और चित्तकी चञ्चलता होती है। मेदोगत मसूरिका, मण्डलाकार, कोमल, किञ्चित अधिक ऊंची स्थूल और वेदनायुक्त होती है। इसमें अत्यन्त ज्वर, मनोविभ्रम, चित्तकी चञ्चलता और सन्ताप यही सब उपद्रव उपस्थित होता है। अस्थि और मज्जागत मसूरिका क्षुद्राकृति, गात्रसम वर्ण, रूक्ष, चिवडेकी तरह चिपटी और

थोडो रूखो, इसमें अत्यन्त मोह, वेदना, चित्तको अस्थिरता, मर्म-स्थान छिन्न होनेको तरह और सर्व्वाङ्गमें भ्रमर काटनेको तरह तकलीफ होती है। शुक्रगत मसूरिका चिकनो, सूक्ष्म, अत्यन्त वेदनायुक्त और देखनेसे पकेको तरह पर पकी नहीं होती, इसमें सर्व्वाङ्ग गीले कपडेसे आच्छादनको तरह अनुभव, चित्तको अस्थिरता, मूर्च्छा, दाह और मत्तता यही सब उपद्रव प्रकाशित होता है।

दोषाधिक्यसे पिडकाको अवस्था।—मसूरिकामें वायुके आधिक्यसे पिडिका श्याम या अरुणवर्ण, रूच, तीव्र वेदनायुक्त और कठिन होतो है, तथा देरसे पकती है। पित्तके आधिक्यसे स्फोटक लाल, पीत या कृष्णवर्ण और दाह तथा उग्रवेदनायुक्त होतो है, यह जल्दो पकती है तथा सन्धिस्थान और अस्थिसमूह तोडनेको तरह दर्द, कास, कम्प, चित्तको अस्थिरता, क्लान्ति, तालु, ओठ और जिह्वामें शोथ, तृष्णा और अरुचि यही सब उपद्रव उपस्थित होता है। कफके आधिक्यसे स्फोटक श्वेतवर्ण, चिकना, अतिशय स्थूल, कण्डु और अल्प वेदनायुक्त होतो है, यह देरसे पकती है, इसमें कफस्राव, शरीर आदि वस्त्रसे आहतको तरह अनुभव, शिरोवेदना, गात्रको गुरुता, वमनवेग, अरुचि, निद्रा, तन्द्रा और आलस्य आदि उपद्रव दिखाई देता है। रक्तके आधिक्यमें मलभेद, अङ्गमर्द, दाह, तृष्णा, अरुचि, मुखमें घाव होना, आखे लाल, तीव्र वेगसे दारुण ज्वर और पित्तज मसूरिकाके अन्यान्य लक्षण प्रकाशित होता है। तीनो दोषका आधिक्य रहनेसे मसूरिका लाल रंग चिवडेको तरह चिपटो और मध्यभाग नीचा, अत्यन्त वेदना और सुगन्ध स्रावयुक्त होती है। यह बहुत परिमाण उत्पन्न होती है और देरसे पकती है। चर्म्मदल नामक एक प्रकारको मसूरिका होती है उसमें

कण्ठरोध, अरुचि, स्तम्भितभाव, प्रलाप और चित्तको अस्थिरता यही सब लक्षण उपस्थित होता है।

साध्यासाध्य।—उक्त मसूरिकामें त्रिदोषज, चर्म्मदल, और मास, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्रगत मसूरिका असाध्य। तथा जो मसूरिका रोगमें कई मूगेकी तरह लाल रंग, कई जामूनकी तरह काली, कई तमाल फलकी तरह होती है यह सब असाध्य जानना। जिस मसूरिका रोगमें कास, हिक्का, चित्तकी विभ्रमता और अस्थिरता, अति कष्टप्रद तीव्रज्वर, प्रलाप, मूर्च्छा, तृष्णा, दाह, गात्रघूर्णन, अतिनिद्रा, मुख, नासिका और आखसे रक्तस्राव और कण्ठसे घुर घुर शब्द होना और अति वेदना सहित श्वासनिर्गम यही सब उपद्रव प्रकाशित होता है, उसको भी असाध्य ही समझना। मसूरिका रोगी अतिशय तृष्णार्त्त और अपतानकादि वातव्याधिग्रस्त होनेसे, अथवा मुखको छोड केवल नासिकासेही दीर्घश्वास लेनेसे उसको मृत्यु निश्चय जानना।

आरोग्यान्तमे शोथ।—मसूरिका आराम होनेपर किसी किसीके केहुनी, हाथका कब्जा, कन्धेमें शोथ होता है, यह अतिशय कष्टदायक और दुश्चिकित्स्य है।

चिकित्सा।—इस दो रोगमें अधिक रुक्षक्रिया या अधिक शीतल क्रिया करना उचित नही है। अधिक रुक्षक्रियासे माता अच्छी तरह नही निकलती, इससे पीडा कष्टदायक होती है, और अधिक शीतलक्रियासे रोग कष्टदायक होता है, तथा अधिक शीतलक्रियासे सर्द्दी खासी होकर तकलीफ बढती है। माता अच्छी तरह नही निकलनेसे कच्ची हलदीका रस, तेलाकूचाके पत्तेका रस, या शतमूलीका रस मक्खनके साथ मिलाकर मालिश करना। इस अवस्थामें तुलसीके पत्तेके रसके साथ अज-

वाईन पीसकर लगाते देखा है। पीड़ाके प्रथमावस्थामें मेथी भिगोया पानी कूठ और बनतुलसीका काढ़ा किम्वा कूठ, बन-तुलसी, पानका जड़ और मानकं जड़का काढ़ा पिलानेकी रीति है। छोटीमातावालेको वच, घृत, वासकी गांठ, जी अड़ूसेकी जड़, बनौरकी बीज, ब्रह्मीशाक, तुलसीका पत्ता, अपामार्ग और लाह यह सब द्रव्यका धूप देना चाहिये। यदि खांसी हो तो मुलेठोके काढ़ेके साथ मकरध्वज या लक्ष्मीविलास रस सेवन करना।

प्रथम अवस्थाकी चिकित्सा।—मसूरिकाके प्रथमावस्थामें कटा कुम्भाण्ड नामक लताके काढ़ेमें ⌄) आनेभर हींग मिलाकर पिलाना। सुपारीकी जड़, करञ्जकी जड़, गोक्षुरकी जड़ अथवा अनन्तमूल पानीमें पीस कर सेवन कराना। वातज मसूरिकामें दशमूल, अड़सा, दारुहरिद्रा, खसकी जड़, अमिलतास, गुरिच, धनिया और मोथा, यह सब द्रव्यका काढ़ा पिलाना तथा मजीठ, बड़, पाकर, शिरीष और गुल्लरकी छाल यह सब द्रव्यका लेप करना। मसूरिका पकने पर गुरिच, मुलेठी, रास्ना, वृहत् पञ्चमूल, रक्तचन्दन, गाभारी फल और बरियारेकी जड़ इन सबका काढ़ा अथवा गुरिच, मुलेठी, द्राक्षा, इक्षुमूल और अनार यह सब द्रव्यका काढ़ा पिलाना। पित्तज मसूरिकामें नीमकी छाल, खेतपापड़ा, अक्षवन, परवरका पत्ता, चन्दन, लालचन्दन, खसकी जड़, कुटकी, आंवला, अड़ूसेकी छाल और जवासा इसका काढ़ा ठण्ढाकर थोड़ी चिनी मिलाकर पीना। शिरीष, गुल्लर, पीपल और बड़ इन सबका छाल ठण्ढे पानीमें पीसकर घी मिला लेप करनेसे पित्तज मसूरिकाका व्रण और दाह दूर होता है। कफज मसूरिकामें अड़ूसा, मोथा, चिरायता, त्रिफला, इन्द्र-यव, जवासा, परवरका पत्ता और नीमका छाल इन सबका काढ़ा

पिलाना और शिरोषकी छाल, गुल्लरकी छाल, खैर और नीमका पत्ता पीसकर लेप करना। गुडके साथ बैरका चूर्ण खानेसे सब प्रकारकी मसूरिका पकजाती है। परवरका पत्ता, गुरिच, मोथा अडूसेकी छाल, जवासा, चिरायता, नीमकी छाल, कुटकी और खेतपापडा इन सबका काढा पीनेसे अपक्व माता भी पक जाती है, और पकी माता शीघ्र सूखजाती है, तथा इससे ज्वरमें भी विशेष उपकार होता है। दाह शान्तिके लिये कलमी शाकका रस बदनमें लगानेसे विशेष उपकार होता है।

पीप निवारणोपाय।—मसूरिकासे पीप निकलेतो बड, गुल्लर, पीपर, पाकर और बकुल (मौलसरी) की छालका चूर्ण क्षतस्थानमें लगाना। जङ्गली कण्डेकी राख अथवा गोबरका मिहीन चूर्ण लगानेसे भी घाव जल्दी सूखता है। इस अवस्थामें क्षत नाशक अन्यान्य औषध भी प्रयोग करना चाहिये। मातामें क्रिमि उत्पन्न होनेसे, धूना, देवदारु, चन्दन, अगरू और गुग्गुलु आदिका धूप देना। मसूरिका एक दफे निकल कर एकाएकी लीन हो जानेसे निम्बादि और काञ्चनादि क्वाथ पिलाना। मसूरिका रोगीको खदिरकाष्ठके काढेसे शौचादि कराना उपकारी है।

चक्षुजात मसूरिकाकी चिकित्सा।—आखमें मसूरिका होनेसे गोक्षुर, बाकुल और मुलेठीका काढा दोनो आखमें देना। मुलेठी, त्रिफला, मूर्व्वाकी जड, दारुहल्दी, दालचिनी, खसकी जड, लोध, मजीठ, यह सब द्रव्यके काढेसे दोनो आखें धोना।

आगन्तुक रोग चिकित्सा।—इस रोगमें अरुचि रहनेसे खट्टे अनारका रस और खैरकाठका काढा ठढाकर पीना विशेष उपकारी है। मुखरोग या कण्ठरोग रहनेसे जावित्री, मजीठ, दारुहल्दी,

सुपारी, शमीकी छाल, आवला और मुलेठी, इन सब का काढा सहत मिलाकर कुल्ला कराना। सहतके साथ पीपल और हरीतकी चूर्ण चाटनेसे मुख और कण्ठ शुद्ध होता है। जयणादि चूर्ण, सर्व्वतोभद्र, इन्दुकलावटी, एलाद्यरिष्ट, छोटी माता और बडी माता रोगमें विचारकर प्रयोग करनेसे उपकार होता है।

पथ्यापथ्यमें हमारा सञ्जीवन खाद्य।—रोगकी प्रथमावस्थामें भूखके अनुसार दूधसागु, दूधवार्लि या हमारा "सञ्जीवन खाद्य" आदि लघु पथ्य खानेको देना। फिर क्षुधावृद्धि और ज्वरादिके अनुसार अन्न आदि खानेको देना। परवर, बैगन, कच्चा केला, गुलर आदिकी तरकारी और बेदाना, किसमिस, नारङ्गी, अनारस आदि द्रव्य खाना चाहिये। बदन पर मोटा कपडा रखना तथा रहनेका घर प्रशस्त और बिछौना साफ रहना चाहिये।

निषिद्ध द्रव्य।—मत्स्य, मास, उष्णवीर्य्य द्रव्य, गुरुपाक द्रव्य भोजन और तैल मर्द्दन, वायु सेवन इस रोगमें मना है। मसूरिका अतिशय सक्रामक व्याधि है। इसमें रोगीसे हरवख्त दूर रहना चाहिये।

सक्रामकका प्रतिरोध।—इस रोगके आक्रमणसे बचनेका उपाय "छपाना"। स्त्री बांये तरफ पुरुष दहिने तरफ छपाना चाहिये। हरीतकी को बीज धारण करनेसे मसूरिकाके आक्रमणका भय कम रहता है।

—०—

क्षुद्ररोग।

अजादि।—बालकोंके शरीरमें मूगकी तरह गोल, चिकना, गात्र समवर्ण गठोला और वेदनाशून्य एक प्रकारकी फोडिया उत्पन्न होती है, उसको अजगल्लिका कहते हैं। जौकी तरह मध्यभाग स्थूल, कठिन गठोली जो सब पिडिका मांसल स्थानमें उत्पन्न होती है उसको यवप्रख्या कहते हैं। अवक्र, उन्नत, मण्डलाकार अल्प पूययुक्त और घनसन्निविष्ट पिडिका समूह उत्पन्न होनेसे उसको अन्त्रालजी कहते हैं। यह तीन प्रकार व्याधि वातश्लेष्मज है। पके गुल्लरको तरह रंग, दाहयुक्त, मण्डलाकार और विदीर्ण पिडिकाका नाम विवृता, यह पित्तज व्याधि है। कछुवेको तरह आकृतिविशिष्ट अति कठिन और पांच छ एकसाथ मिली हुई फोडियाका नाम कच्छपिका, यह भी वातश्लेष्मज है। ग्रीवा, स्कन्ध, हाथ, पैर, सन्धिस्थान और गलेमें वल्मीककी तरह शिखरयुक्त पिडिकाको वल्मीक कहते हैं, यह त्रिदोषज व्याधि। प्रथमावस्थामें इसको चिकित्सा न करनेसे क्रमश वर्द्धित, अग्रभाग उन्नत, बहुमुख, स्राव और वेदनायुक्त होता है। कमलके छत्तेमें जैसे कमलको बीज समूह मण्डलाकार रहती, वैसही मण्डलाकार पिडिका उत्पन्न होनेसे उसको इन्द्रविद्धा कहते है, यह वातपैत्तिक रोग है। मण्डलाकार, उन्नत, लाल, वेदनायुक्त गोल पिडिका व्याप्त व्याधिको गर्द्दभिका कहते हैं, यह वातपित्तज व्याधि है। हनु अर्थात् चहुआके स[illegible] । जो शोथ उत्पन्न होता है उस[illegible]

रोग है। कानमें उग्र वेदनायुक्त जो पिडिका उत्पन्न हो भीतरका भाग पकजाता है, उसको पनसिका कहते है। विसर्पकी तरह क्रमश विस्तृतिशील, दाह और ज्वरयुक्त जो शोथ उत्पन्न होता है उसका जालगर्दभ या अग्निवात कहते है, इसके उपरका चमडा पतला और यह अकसर पकता नही कदाचित् कोई पकताभी है, यह रोग पित्तजनित है। उग्र वेदना और ज्वरयुक्त जो सब पिडिका मस्तकमें, उत्पन्न होतो है उसका नाम इरिवेल्लिका, यह त्रिदोषज है। बाहु, पार्श्व, स्कन्ध, बगलमें कृष्णवर्ण वेदनायुक्त जो स्फोटक पैदा होता है उसको गन्धमाला कहते है, यह फोडा पित्तज है। बगलमें जलते हुए अङ्गारेको तरह एक प्रकार स्फोटक पैदा हो चर्म विदोर्ण होकर भोतर अत्यन्त दाह और ज्वर होता है, इस रोगका नाम अग्निरोहिणो, यह त्रिदोषज और असाध्य है। ८ दिनसे १५ दिन तक इस रोगसे रोगीके मृत्युको सम्भावना है। वायु और पित्त कर्तृक नखका मास दूषित हो पकनेसे अत्यन्त दाह होताहै, इसका नाम चिप्प, चलित भाषामें "अङ्गुलि खोया" कहते है। नखका मास अल्प दूषित होनेसे पहिले नखका दोनो कोना, फिर सब नख नष्ट या खराब होनेसे उसको कुनख कहते है। पैरके उपर थोडा शोथ, गात्र समवर्ण, अन्तरमें पका जो रोग पैदा होता है उसका नाम अनुशयो। बगल और पट्ठेमें भूमिकुष्माण्डको तरह जो शोथ होता है उसका नाम विदारिका, यह त्रिदोषज है। जिस रोगमें दूषित वायु और कफ, मास, शिरा, स्नायु और मेदको दूषित करनेसे पहिले कई एकगाठ पैदा होती है, फिर वह गाठ विदोर्ण होकर उसमेंसे घो, सहत और चर्व्वीको तरह स्राव होनेसे धातुक्षय हो मास सूख जाता है, सुतरा यह सब ग्रन्थिस्थान अतिशय कठिन होता है, इसको शर्करार्ब्बुद कहते

है, इस अर्ब्बुदको शिरामें दुर्गन्ध, सड़ा या नानाप्रकार स्राव दिखाई देता है, कभी कभी रक्तस्रावभी होता है।

पाददारी।—सर्व्वदा नङ्गे पैर पैदल चलनेवालोंका पैर रुखा हो फट जाता है, इसको पाददारी कहते हैं। कङ्कर या काटेंसे पैरके तलवेमें चोट या घाव लगनेसे पैरके तलवेमें जो बैरके बीजकी तरह गाठ पैदा होती है, उसको बदर या बैरकी बाल कहते है। रातदिन पैर पानीमें भिगा रहनेसे पैरके अङ्गुलियोकी सन्धि सड कर उसमें खुजलाहट और दर्द पैदा होनेसे उसको अलस कहते है। कुपित वायु और पित्त केशके जडमें जाकर यदि सिरका बाल गिरा दे और खराब कफ और रक्तसे लोमकूप बन्द हो जाय और फिर उस जगह केश नही निकलेतो, उसको इन्द्रलुप्त या खालित्य, और चलित भाषामें "टाक" कहते हैं। केशभूमि कठिन, कण्डुयुक्त, और फट जानेसे उसको दारुणक रोग तथा चलित भाषामें "रुसी" कहते है यह वात कफज व्याधि है। मस्तकमें बहु क्लेदयुक्त व्रण समूह उत्पन्न होनेसे उसको अरुंषिका कहते हे। कफ, रक्त और क्रिमिसे यह रोग उत्पन्न होता है। क्रोध, शोक और श्रमादि कारणसे देहकी उष्मा और पित्त शिरोगत होनेसे केश बेवक्त पकजाता है, उसको पलित रोग कहते है। युवकोंके मुखपर सेमलकी कांटकी तरह एक प्रकार फोडिया पैदा होती है उसको युवानपिडका या "वयो-व्रण" कहते है। कफ वायु और रक्तके दोषसे यह पैदा होती है, अतिरिक्त शुक्रचयही इस रोगका प्रधान कारण है। चमडेके उपर पद्मके काटेंकी तरह कण्टकाकीर्ण, पाण्डुवर्ण कण्डुयुक्त और गोलाकार जो मण्डल उत्पन्न होता है उसको पद्मिनीकण्टक कहते है, यह वात कफज व्याधि है। चमडेके उपर उरदकी तरह थोडा

ऊंचा, काला, वेदनाशून्य और मण्डलाकार एकप्रकार फोडिया पैदा होती है, उसको माषक कहते है। वायुके प्रकोपसे यह पोडा पैदा होती है। चमडेके उपर तिलकी तरह काले रंगका जो दाग होता है उसको तिल कहते है, यह त्रिदोषज व्याधि है। बदनमें श्याम या कृष्णवर्ण, वेदनाशून्य मण्डलाकार जो चिह्न होता है उसको मच्छ या सेंहुआ कहते है, यह रोग पहिले बूंद बूंद उत्पन्न हो फिर बढता है। क्रोध और परिश्रम आदि कारणोंसे वायुपित्त कुपित हो मुख श्याम वर्ण, अनुन्नत और वेदनाशून्य एक प्रकार मण्डलाकार चिह्न पैदा होता है उसको मुखव्यङ्ग बोदकर कहते है। यही बोदकर अधिक काला होनेसे उसको नीलिका कहते है। नीलिका शरीरमेंभी होती है।

परिवर्त्तिका।—लिङ्ग अतिशय मर्द्दित, पीडित या किसी तरह चोट लगनेसे लिङ्ग चर्म्म दूषित और परिवर्त्तित होकर लिङ्गमणिके नीचेका भाग गाठकी तरह लम्बा हो जाता है, उसको परिवर्त्तिका कहते है। इसमें वायुका आधिक्य रहनेसे दर्द, कफके आधिक्यमें कडा और कण्डूयुक्त होता है। सूक्ष्ममुख योनि आदिमे गमन या और कोई कारणसे यदि लिङ्गचर्म्म उलट जाय तथा मुद्रित नही तो उसको अवपाटिका कहते है। कुपित वायु लिङ्ग चर्म्ममें रहनेसे लिङ्गमणि विहृत नही होता तथा अत्यन्त दर्द, मूत्रस्रोत बन्द, अथवा पतली धारसे मूत्र निकलता है। इसको निरुद्धप्रकाश कहते है। मलवेग धारण करनेसे अपान वायु कुपित हो मलमार्गको बन्द या सूक्ष्म द्वार होनेसे अतिकष्टसे मल निकलता है उसको सन्निरुद्ध गुद कहते है। बच्चोंके गुदाका मलमूत्र घर्म्मादि न धोनेसे गुदामें खजुली पैदा होती है। फिर वह खुजलानेसे वहा घाव हो स्राव होने लगता है, उसको अहिपूतनक रोग कहते

करना। अवपाटिका रोगमें परिवर्त्तिकाकी तरह चिकित्सा
करना। निरुद्धप्रकाश रोगमें सोना, लोहा आदिका छिद्रयुक्त
नल घृतादिसे अभ्यक्त कर मूत्रमार्गमें प्रवेश करनेसे मूत्र निकलता
है। मूत्रद्वार बढानेके लिये एक दिन अन्तरपर क्रमशः वही नल
स्थूलतर प्रवेश करना चाहिये। अङ्गरेजोमें इस प्रकार नल प्रवे
करनेको "काथिटार" पास करना कहते है। सन्निरुद्ध गुद रोग
भी यह प्रवेश करना चाहिये। चर्मकील, माषक और तिल मश
उखाड कर क्षार या आगसे जलाना चाहिये, रेंडके डण्ठे से
चूर्ण घिसकर अथवा सांपकी केंचुलीको राख घिसनेसे
रोग आराम होता है, युवानपिडिकामें लोध, धनिया, वच,
चन, मरिचचूर्ण अथवा सफेद, सरसो, बच, लोध, सेंध
एकत्र पीसकर मुखमें लेप करना। सेमर इसका चोप
मसूरकी दाल दूधमें पीसकर लेप करनेसे युवानपिडिका
होती है। सेहुंआमें लाल चन्दन, मञ्जीठ, कूठ, लोध
बडका नरम पत्ता और कलो, मसूरकी दाल एकत्र
लेप करना। हरिद्राद्य तैल, कनकतैल, कुङ्कुमाद्य तैल
युवानपिडिका, व्यङ्ग और नीलिका आदि रोग आराम
अरुंषिका रोगमें शिर मुडाकर नीमके काढेसे व्रण
फिर घोडेकी लीदका रस ... एकत्र
करना, अथवा पुरानी सरसों ... मूत्रगोका
पीसकर लेप करना। ... रोग
कारो है। शिरको ... राख
कर वही क्षार पानीसे शिर
और आवला यह, सब द्रव्यका
वह्नि तैल इस रोगमें विशेष

सूई गडाना या गुन्नर आदि कर्कश पत्तेसे घिसकर घाव कर फिर लालघुघची पीसकर लेप करना। बकरीका दूध, रसाञ्जन और पुटदग्ध हाथीदातभस्म एकत्र मिलाकर लेप करनेसे टाकमेंभी केश उत्पन्न होता है। क्षुद्राद्य तैल, मालत्याद्य तैल और यष्टि-मध्वाद्य तैल टाक रोगमें प्रयोग करना। पालित्य रोग विनाशके लिये अर्थात् सफेद केश काला करनेके लिये त्रिफला, नील वृक्षका पत्ता, लोहा और भीमराज समभाग छाग मूत्रको भावना देकर केशमें लगाना। महानीलतैल इस रोगका श्रेष्ठ औषध है। हमारा केशरञ्जन तैल यथाविधि व्यवहार करनेसे दारुणक, इन्द्रलुप्त और पालित्य रोग आराम होता है। कक्षा, अग्निरोहिणी और इरि-वेल्लिका रोगमें पैत्तिक विसर्पकी तरह चिकित्सा करना। पनसिका रोगमें पहिले स्वेद करना फिर मैनशिल, कूठ, हल्दी और देवदारु इन सब द्रव्योंका लेप करना। पकनेपर नस्तरसे पीप आदि निकाल कर व्रणकी तरह चिकित्सा करना। शर्करार्बुदकी चिकित्सा अर्बुद रोगकी तरह करना। वृषणकच्छू रोगमें राल, कूठ, सेंधानमक और सफेद सरसो यह सब द्रव्य पीसकर मर्दन करना तथा पामा और अहिपूतन रोगकी तरह चिकित्सा करना। हमारा "चतारि तैल" और मरिचादि तैल लगानेसे भी रोग आराम होता है। अहिपूतन रोगमें होराकस, गोरोचन, तुतिया, हरिताल और रसाञ्जन यह सब द्रव्य काञ्जीसे पीसकर लेप करना। शूकरदंष्ट्रक रोगमें हल्दी और भगरैयाकी जड ठण्ढे पानीमें पीसकर गायके घीके साथ सेवन कराना। विसर्प रोगकी तरह अन्यान्य चिकित्सा-भी करना। न्यच्छ अर्थात् सेहुआ रोगमें सोहागीका लावा और सफेद चन्दन अथवा सोहागीका लावा और सहत मिलाकर मर्दन करना। सिध्म रोगोक्त अन्यान्य प्रलेप भी इसमें प्रयोग कर सकते

है। सप्तच्छदादि तैल, कुङ्कुमादि घृत, सहचर घृत और हमारा "हिमांशु द्रव" सेहुंआको अकसीर दवा है।

क्षुद्र रोगाधिकारोक्त पीडा समूहोंको चिकित्सा सक्षेपमें लिखी गयो, यह सब चिकित्साके सिवाय रोगका दोष और अवस्था-विशेषादि विचारकर बुद्धिमान चिकित्सक अन्यान्य औषधभी इसमें प्रयोग कर सकते है।

पथ्यापथ्य।—रोगविशेषका दोष दुष्य विचार कर वही वही दोषके उपशमकारक पथ्य सेवन और उसी दोषवर्द्धक पथ्यापथ्य समूहोंका त्याग करना चाहिये।



मुखरोग।

मुखरोग संज्ञा और निदान।—ओष्ठ, दन्तवेष्ठ, (मसूढा) दन्त, जिह्वा, तालु, कण्ठ प्रभृति मुखके भीतरी अवयवोंमें जो सब रोग उत्पन्न होता है उसको मुखरोग कहते है। मत्स्य, क्षीर, दही आदि द्रव्य अतिरिक्त भोजन करनेसे वातादि दोषत्रय दुषित हो मुखरोग उत्पन्न होता है। अधिकांश मुखरोगमें कफका ही प्राधान्य रहता है।

ओष्ठगत मुखरोगका प्रकारभेद और लक्षण।—ओष्ठगत मुखरोगमें—वातज ओष्ठ रोगमें ओष्ठद्वय कर्कश, श्याम-वर्ण, रुक्ष, जड़वत्, सूई गडाने को तरह दर्द और कठोर होता

है। पित्तज ओष्ठ रोगमें ओष्ठद्वय पीतवर्ण, वेदना, दाह और पाकयुक्त फोड़ियोंसे व्याप्त होता है। कफज ओष्ठ रोगमें ओष्ठद्वय शीतल, श्वेताभ, गुरु, पिच्छिल, कण्डुयुक्त, वेदनाशून्य और त्वकसम वर्ण पिडकायुक्त होता है। त्रिदोषज ओष्ठ रोगमें ओष्ठद्वय कभी पीला, कभी सफेद और कभी नाना प्रकारकी पिडकायुक्त होता है। रक्तकोपज ओष्ठरोगमें ओष्ठद्वय पके खजूर फलके रंगकी तरह पिडिका व्याप्त और रक्तस्रावयुक्त होता है। मांस दोषज ओष्ठरोगमें ओष्ठद्वय गुरु, स्थूल और मांसपिण्डकी तरह तथा ओष्ठप्रान्तद्वयमें क्रिमि उत्पन्न हो क्रमश बढ़ता है। मेदोजनित ओष्ठ रोगमें ओष्ठद्वय भारी, कण्डुयुक्त और घीके ऊपरीभाग की तरह सफेद रंग होता है तथा सर्व्वदा निर्मल स्राव होता रहता है। किसी तरहके आघातसे यदि ओष्ठरोग उत्पन्न हो तो पहिले उसमें फट जाने की तरह या कुठाराघात की तरह दर्द होता है, फिर दोष कुपित हो अन्यान्य लक्षण प्रकाशित होता है।

दन्तगत मुखरोगके लक्षण और प्रकार भेद।—

दन्तवेष्ठ अर्थात् मसूढ़ेमें जो सब रोग उत्पन्न होता है, उसमें शीताद नामक रोगमें अकस्मात् मसूढ़े से रक्तस्राव होकर दन्तमांस क्रमश सड़कर दुर्गन्ध, क्लेदयुक्त, कृष्णवर्ण और कोमल हो मसूढ़ा गिर पड़ता है। कफ और रक्तदूषित होनेसे यह रोग उत्पन्न होता है। दो या तीन दांतके जड़में शोथ होने से उसको दन्तपुप्पुटक रोग कहते, यह भी कफज व्याधि है। जिस रोगमें दांत हिलता है और दन्तमूलसे रक्त पीप निकलता है, उसको दन्तवेष्ठ रोग कहते हैं। दांतकी खराबीसे यह रोग उत्पन्न होता है। दांतके जड़में दर्द और शोथ को रक्तज व्याधि कहते है। जिस रोगमें दांत हिले तथा तालु, दांत और ओष्ठ क्लेदयुक्त हो,

उसको महाशौषिर कहते है; यह त्रिदोषज रोग है। दन्तमास गलकर उसमें से खुन निकले तो उसको परिदर कहते है, यह रक्त-पित्त और कफको खराबीसे पैदा होता है। मसूडेमें दाहयुक्त फोडिया होनेसे तथा तज्जन्य दात गिर पडनेसे उसको अपकुश कहते है, यह रक्तपित्तज पीडा है। मसूढा किसी तरह घिस जानेसे यदि प्रवल शोथ हो या दात हिले तो उसको वैदर्भ कहते है, यह अभिघातज पीडा है। वायुके प्रकोपसे प्रबल यातना सहित जो एक एक अधिक दात हनुकुहरमे निकलता है; उसको खली वर्द्धक कहते है, निकल आनेपर फिर इसमें किसी तरहका दर्द नही रहता है। यह दात अधिक उमरमे उठता है, इससे इसको अक्किल दात कहते है। कुपित वायु दातका आश्रय कर क्रमश. विषम और विकटाकार दात निकलनेसे उसको कराल रोग कहते है, यह असाध्य व्याधि है। हनुकुहरस्थ अखीर दन्त-मूलमें अति पीडादायक प्रवल शोथ हो लार निकलनेसे उसको अधिमास कहते है, यह कफज पीडा है। यह सब पीडाके सिवाय मसूडेमें नानाप्रकार नाडीव्रण नासूर आदि उत्पन्न होता है।

दन्तगत रोग समूहोमें दालननामक दन्तरोगमें दात विदीर्ण की तरह तकलीफ होती है, यह वातरोग है। क्रिमिदन्तक रोगमें दातमें काला छिद्र होता है, दन्तमूलमें अतिशय दर्द लिये शोथ तथा उसमें से लारस्राव और अकस्मात् दर्दका बढना यही सब लक्षण लक्षित होता है, यह भी वातपित्तज व्याधि है। भञ्जनक रोगमें मुख टेढा और दात टूट जाता है, यह वातश्लेषज व्याधि है। दन्ताहर्ष रोगमें दन्तसमूह शीत, उष्ण, वायु और अम्लस्पर्श सहन नही कर सकता अर्थात् दात सुरसुराता है, यह वात पित्तज पीडा है। मसूढा दूषित हो मुखके भीतर और बाहर दाह

और वेदनायुक्त जो शोथ उत्पन्न होता है, उसको दन्तविद्रधि कहते है। इस रोगमें मलोत्पत्ति और स्राव होता है। विदीर्ण होनेसे इसमेंसे पीपरक्त निकलता है। वायु और पित्तसे दन्तगत मलशोषित हो कङ्कर की तरह खरस्पर्श होनेसे उसको दन्तशर्करा कहते है, यही दन्तशर्करा फट जानेसे उसके साथ दातका भी थोडा अंश फट जानेसे उसको कपालिका कहते है। इसी पीडामें क्रमश. सब दात गिर पडता है। दुष्टरक्त और पित्तसे कोई दात जल जानेकी तरह काला या श्याम वर्ण होनेसे उसको श्यामदन्तक कहते है।

जिह्वागत मुखरोगके लक्षण और निदान।—

जिह्वागत रोग समूहोंमें वायुजनित जिह्वा स्फुटित, रसास्वादनमें असमर्थ और काटेदार होती है। पैत्तिक रोगमें जिह्वा लाल रग, दाहजनक और दीर्घाकार कण्टक समूहोंसे व्याप्त होती है। श्लेष्मज जिह्वारोगमें जिह्वा गुरु और सेमरके काटे की तरह मांसाङ्कुर विशिष्ट होती है। कुपित कफ और रक्तसे जिह्वाके नीचे भयानक शोथ होनेसे उसको अलास कहते है। यह रोग बढ जानेसे जिह्वा-मूल पककर स्तम्भित होता है। ऐसेही दूषित कफ रक्तसे जो शोथ जिह्वाके नीचे उत्पन्न हो जिह्वाको उन्नत, तथा शोथ, दाह, कण्डु और लालास्राव होता है। उसको उपजिह्वा कहते है।

तालुगत मुखरोगके लक्षण और प्रकारभेद।—

तालुगत रोग समूहोंमें दुष्टकफ और रक्तसे तालुमूलमें जो शोथ उत्पन्न होता है वह क्रमश बढकर वायुपूर्ण चर्मपुटके आकृतिकी तरह होनेसे उसको गलशुण्ठी कहते है। इस रोगके साथ तृष्णा और कास उपद्रव भी रहता है। कफ और रक्त कुपित हो तालु-मूलमें बनकपासके आकृतिकी तरह तथा दाह और सूचीवेधवत्

वेदनायुक्त जो शोथ पैदा होता है उसको तुण्डीकेरी कहते है ; यह भी पकजाता है। रक्तदुष्टिसे लालरंग अनतिस्थूल तथा ज्वर और तीव्र वेदनायुक्त जो शोथ तालुमें उत्पन्न होता है, उसको अध्रुष कहते है। कफप्रकोपसे तालुमें थोडा दर्द लिये और कछुवेकी तरह शोथ क्रमश. उत्पन्न हो देरसे वढता है ; उसको काच्छपरोग कहते है। रक्तप्रकोपसे तालुमें मांसाङ्कुर उत्पन्न होनेसे, उसको रक्तार्ब्बुद कहते है। कफदुष्टिसे तालुमें मांसवृद्धि होतो उसको मांसघात कहते है। इसमें दर्द किसी तरहका नहो होता। दुष्ट कफ और मेदसे तालुमें वेर की तरह और वेदनाशून्य शोथको तालु-पुप्पुट कहते है। जिस तालुरोगमें तालु बारबार सूखता रहता है, विदीर्ण होनेकी तरह दर्द और रोगीको श्वास उपस्थित होतो उसको तालुशोष कहते हैं। वायुके प्रकोपसे यह रोग पैदा होता है। पित्तके अधिक प्रकोपसे तालु पकजानेसे उसको तालुपाक कहते है।

कण्ठगत मुखरोगके लक्षण और प्रकारभेद।—

वायु पित्त और कफ यह तीन दोषके प्रकोपसे कण्ठमें नानाप्रकारके रोग पैदा होता है। उसमें अधिकांश ही शस्त्रसाध्य और असाध्य जानना। कण्ठरोग समूहोंमें रोहिणी और अधिजिह्व नामक दो रोग आराम नहो होता। यहा हम केवल वही दो रोगके लक्षण आदि लिखते है। कण्ठरोगमें कुपित दोषसे मांस और रक्त दूषित हो जीभके चारो तरफ मांसाङ्कुर उत्पन्न होता है, उसको रोहिणी कहते है। वही सब मांसाङ्कुर अधिक वढकर क्रमशः कण्ठरोध हो रोगीके प्राणनाशको सम्भावना है। अधिजिह्व जिह्वाके उपरी-भागमें उत्पन्न होता है। जिह्वाके अग्रभाग की तरह इसकी आकृति होती है, तथा पकनेपर यह रोग असाध्य हो जाता है।

सर्व्वसर मुखरोग।—मुखके भीतर जो सब रोग उत्पन्न होता है उसको सर्व्वसर मुखरोग कहते है। वायुके आधिक्यसे मुखभरमें सूचीवेध को तरह वेदनायुक्त छोटी छोटी फोडिया पैदा होती है। पित्ताधिक्यसे वही सब फोडिया पीत या रक्तवर्ण हो उसमें दाह होता है, कफाधिक्यसे फोडियोंमें अल्प वेदना, कण्डु और रङ्ग वदन की तरह होता है।

ओष्ठगत मुखरोग चिकित्सा।—वातज ओष्ठ रोगमें तेल या घोमें मोम मिलाकर मर्द्दन करना। लोहवान, राल, गुग्गुल, देवदारु और जेठोमधु (मुलेठो) इन सब द्रव्योंका चूर्ण धीरे धीरे ओष्ठपर घिसना। मोम और गुडके साथ राल, तेल या घोमें पकाकर लेप करनेसे ओष्ठका सूचोवेधवत् दर्द, कर्कशता और पीप खून जाना बन्द होता है। पित्तज ओष्ठ रोगमें तिक्त द्रव्यका पान भोजन तथा शोतल द्रव्यका प्रलेप करना। पित्तज विद्रधिकी तरह इसकी चिकित्सा करना चाहिये। कफज ओष्ठ रोगमें त्रिकटु सज्जीखार और यवाखार यह तोन द्रव्यमें सहत मिलाकर ओष्ठमें घिसना। मेदजनित ओष्ठ रोगमें अग्निका सेंक करना उपकारी है। प्रियङ्गु, त्रिफला और लोध इन सबका चूर्ण सहत मिलाकर ओष्ठमें घिसना। ओष्ठके घावमें राल, गेरु, धनिया, तेल, घृत, सैन्धानमक और मोम एकत्र पकाकर लेप करना। त्रिदोषज ओष्ठ रोगमें जिस दोषका अधिक प्रकोप हो पहिले उसको चिकित्सा कर फिर दूसरे दोषोंको चिकित्सा करना चाहिये। पक जानेपर व्रणरोग की तरह चिकित्सा करना।

दन्तगत मुखरोग चिकित्सा।—दन्तरोग समूहोंमें शीताद रोगमें शोंठ, सरसों और त्रिफलाके काढ़ेका कुल्ला करना। होराकस, लोध, पीपल, मैनसिल, प्रियङ्गु, तेजपत्ता इसका चूर्ण

सहत मिलाकर लेप करनेसे शीताद रोगका सडा मांस निकल जाता है। कूठ, दारुहलदी, लोध, मोथा, वराहक्रान्ता, अकवन, चाभ और हलदी इन सबके चूर्णसे दांत घिसनेसे रक्तस्राव, कण्डू और दर्द आराम होता है। दन्तपुप्पुट रोगकी प्रथम अवस्थामें रक्तमोक्षण और मधु मिलाकर पञ्च लवण और जवाक्षार चूर्ण घिसना उपकारी है। चलदन्त रोगमें वड, पीपल प्रभृति दूधवाले वृक्षके काढेसे कुल्ला करना या मौलसरीका कच्चा फल चिवाना। दन्त-तोद और दन्तहर्ष रोगमें तेलादि वायु नाशक द्रव्यका कुल्ला करना। मौलसरी छालके काढेका कुल्ला और पीपल चूर्ण, घी और सहत एकत्र मिलाकर मुहमें धारण करनेसे दन्तशूल आराम होता है। दन्तवेष्ट रोगमें रक्तमोक्षण, वड और अश्वत्थादि वृक्षके काढेमें घी, सहत और चिनी मिलाकर कुल्ला करना तथा लोध, लालचन्दन मुलेठी और लाह इसका चूर्ण सहतमें मिलाकर आहिस्ते आहिस्ते घिसना विशेष उपकारी है। शैशिर रोगमें रक्तमोक्षण वटादिके काढेका कुल्ला करना और लोध मोथा, रसाञ्जन चूर्ण सहतमें मिलाकर लेप करना। परिदर और उपकुश रोगकी चिकित्सा शीताद रोगकी तरह करना चाहिये। उपकुश रोगमें पीपल, सफेद सरसों और शोंठ गरम पानीमें पीसकर कुल्ला करना। दन्त-वैदर्भ, अधिदन्त, अधिमांस और शुषिर रोग शास्त्रसाध्य है। दन्त-नाली रोगमें जिस दांतमें नाली हो वह दांत उखाड डालना किन्तु उपरका दांत उखाडना उचित नही है। जावित्री, माजूफल और कुटकी इसका काढा मुखसे धारण करनेसे और लोध, खैर, मजीठ, मुलेठी,- इन सब द्रव्यके साथ तेल पकाकर लगानेसे दन्तनाली आराम होता है। दन्तशर्करा रोगमें दन्तमूलमें किसी तरह की तकलीफ न हो इस,,ख्यालमें काटना तथा सहत मिला लाहका

चूर्ण घिसना। कपालिका रोगकी चिकित्सा दन्तहर्षकी तरह करना। क्रिमिदन्तक रोगमें हींग गरम कर लेप करना। वृहती, कुकरौंधा, एरण्डमूल और कण्टकारीके काढ़ेमें तैल मिलाकर कुल्ला करना। द्रोण पुष्पका रस, समुद्र फेन सहत और तैल एकत्र मिलाकर कानमें डालनेसे दांतका कीडा नष्ट होता है। सेहुडकी जड चिबाकर दांतके नीचे दबा रखनेसे कीडा गिरजाता है। कौंकडेका पैर पीसकर दांतमें लेप करनेसे नींदमें दांतका घिसना दूर होता है। अथवा कौंकडेका पैर गायके दूधमें औटाना दूध खुब गाढ़ा होनेपर दोनो पैरमें लेपकर सोना, इसमें भी दन्तशब्द दूर होता है। दन्तरोगाशनि चूर्ण, दन्तसस्कार चूर्ण और हमारा "दन्तधावन चूर्ण" सब प्रकारके दन्तरोगका उत्‌कृष्ट औषध है।

जिह्वागत मुखरोग चिकित्सा।—वातज जिह्वा रोगमें वातज ओष्ठ रोगको चिकित्सा करना चाहिये। पैत्तिक जिह्वा रोगमें कर्कश पत्तेसे जिह्वा घिसकर खून निकालना, फिर सतावर, गुरिच, भूमिकुष्माण्ड, सरिवन, पिठवन, असगन्ध, काकडाश्रृङ्गी, वंशलोचन, पद्मकाष्ठ, पुष्करिया, बरियारा, पीत बरियारा, द्राक्षा, जीवन्ती और मुलेठी इन सब द्रव्यका चूर्ण और काढ़ा जिह्वामें घिसना। श्लैष्मिक जिह्वा रोगमें भी इसी तरह कर्कश पत्तेसे जिह्वा घिसकर खून निकालना चाहिये फिर पीपल, पीपलामूल, चाभ, चितामूल, शोंठ, गोलमिरच, गजपिप्पली, समालुकी बीज, बड़ीइलायची, अजवाइन, इन्द्रयव, अकवन, जीरा, सरसो घोड़नीमका फल, हींग, वारङ्गी, मूर्व्वामूल, अतीस, बच, विडङ्ग और सेंधानमकके काढ़ेका कुल्ला करना। मानभस्म, सेंधानमक और तैल एकत्र मिलाकर जीभमें घिसना तथा बड़ा नीबू आदि अम्ल द्रव्यका केशर थोड़ा सेहुड़का दूध मिलाकर चिबानेसे जिह्वाकी

जडता दूर होती है। उपजिह्वा रोगमें कर्कश पत्तेसे जिह्वा घिसकर फिर जवाखार घिसना अथवा त्रिकटु, बडोहर और चितामूल इन सबका चूर्ण घिसना या इन सब द्रव्योंमें तैल पकाकर लगानेसेभी उपजिह्वा रोग आराम होता है।

तालुरोग।—प्राय. सब तालुरोग बिना नस्तरके आराम नहो होता। जिसमें गलशुण्ठी रोगमें हरसिङ्गारका जड घिवानेसे अथवा बच, अतीस, अकवन, रास्ना, कुटकी, नीमकी छाल इसके काढेका कुल्ला करनेसे आराम होता है। वातज रोहिणी रोगमें खून निकाल कर नमक घिसना और गरम तेलका कुल्ला करना हितकर है। पैत्तिक रोहिणी रोगमें लाल चन्दन, चिनी और सहत एकत्र मिलाकर घिसना तथा लाह और फालसेके काढेका कुल्ला करना। श्लैष्मिक रोहिणी रोगमें झूल (मकडीका जाला) और कुटको चूर्ण घिसना तथा अपराजिता, विडङ्ग, दन्ती सेंधानमक तेलमें औटाकर इसका नास लेना और कुल्ला करना। रक्तज रोहिणीमें पैत्तिक को तरह चिकित्सा करना। अधिजिह्व रोगको चिकित्सा उपजिह्वको तरह जानना, सोंठ, मिरच आदि तीक्ष्ण द्रव्य, लवण और उष्णद्रव्य घिसनेसे अधिजिह्व रोग शान्त होता है। कालक चूर्ण, पीतक चूर्ण, क्षारगुडिका और यवक्षारादि गुटी व्यवहारसे यावतीय कण्ठरोग आराम होता है।

सर्व्वसर मुखरोग।—सर्व्वसर मुखरोगमें परवरका पत्ता, जामूनका पत्ता, आमका पत्ता और मालती पत्तेके काढेसे कुल्ला करना। जावित्री, गुरिच, द्राक्षा, जवासा दारुहल्दी और त्रिफलाके काढेमें सहत मिलाकर कुल्ला करनेसे मुखके भीतरका घाव दूर होता है। पीपल, जीरा, कूठ और इन्द्रयवका चूर्ण मुखमें रखनेसे भी मुखपाक, व्रण, क्लेद और दुर्गन्ध दूर होती

है। सप्तच्छदादि, पटोलादि क्काथ, खदिर वटिका, बृहत् खदिर वटिका, वकुलाद्य तैल सब प्रकारके मुखरोगमें विचार कर प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—रोग विशेषमें दोषका आधिक्य विचारकर वही दोष नाशक पथ्य देना। साधारणतः कफनाशक द्रव्य मुख-रोगमें विशेष उपकारक है।

निषिद्ध कर्म्म।—मुखरोगमें अधिक खट्टा, मछली, दही दूध, गुड़, उरद और कठिन द्रव्य भोजन, अधोमुख शयन, दिवा-निद्रा और दतुवनसे मुख धोना अहितकर है।

कर्णरोग।

कर्णशूल लक्षण।—कर्णगत वायु चारो तरफ घूमनेसे कानमें कष्टदायक दर्द उत्पन्न होता है और उसके साथ जो दोष रहता है उसी दोषके लक्षण प्रकाशित होता है, इसीको कर्णशूल कहते है। कानमें भेरी, मृदङ्ग, शङ्ख आदिके शब्दकी तरह नाना-प्रकारके शब्द सुनाई देनेसे उसको कर्णनाद कहते है। केवल वायु अथवा वायु कफ यही दो दोषसे शब्द वहा स्रोत अवरुद्ध होकर वाधिर्य रोग पैदा होता है, इस रोगमें श्रवणशक्ति नष्ट हो जाती है। कानमें बासुलीकी तरह शब्द सुनाई देनेसे उसको कर्णक्ष्वेड कहते है। मस्तकमें आघात, जलमग्न होना अथवा कानमें फोड़ा

हो पक जानेपर कानसे पीप, रस, पानी आदि निकलनेसे उसको कर्णस्राव कहते है। सर्व्वदा कानमें खुजली हो तो उसको कर्ण-कण्डू कहते है। पित्तकी उष्मासे कानका कफ सूखकर कानमें एक प्रकार मल पैदा होता है उसको कर्णशूल कहते है। स्नेह पदार्थादि प्रयोगसे कर्णगूथ द्रव हो मुख और नाकसे निकल जाने पर उसको कर्णप्रतिनाह कहते है। इसके साथही अर्धावभेदक उपस्थित होता है। पित्त प्रकोपसे कान क्लेदयुक्त और पूतिभावा-पन्न होनेसे उसको कर्णपाक जानना। चाहे जिस कारणसे कानसे दुर्गन्ध पीप आदि निकलेतो उसको पूतिकर्ण कहते है। कानमें मास रक्तादि सडकर कीडा पैदा होनेसे उसको क्रिमिकर्णक रोग कहते है। इस पीडाके सिवाय विद्रधि, अर्ब्बुद और कीट प्रवेश या आघातादि कारणोंसे नानाप्रकार का रोग कानमें उत्पन्न होता है।

कर्णरोग चिकित्सा।—अदरखका रस आधा तोला, सहत चार आनेभर, सेंधानमक एक रत्ती और तिल तैल चार आनेभर यह सब द्रव्य एकत्र मिलाकर कानमें भरनेसे कर्णशूल, कर्णनाद, वाधिर्य्य और कर्णक्ष्वेड रोग आराम होता है। लहसन, अदरख, सैजनकी छाल, मूली, करेला इन सबमें कोई एकका रस थोडा गरम कर कानमें डालनेसे दर्द दूर होता है। अकवन पत्तेके पुटमें मेंहुडका पत्ता जलाकर अथवा अकवनके पत्तेमें घी लगाकर आगमें झलसाना फिर उसके गरम रससे कान भर देनेसे कर्णशूल आराम होता हैं। कर्णनाद, कर्णक्ष्वेड और वाधिर्य्य रोगमे कडुवा तेल अथवा वात रोगोक्त महामाष तैल कानमे डालना। गुडमिश्रित सोंठके काढेका नास लेना विशेष उपकारी है। वट, पीपल, पाकड, गुलर और वेतसके छालका चूर्ण, कयेथका रस, और सहत एकत्र मिलाकर कानमें डालनेसे पूतिकर्ण दूर होता

है। कर्णगूथ रोगमें पहिले तेलसे मल फूलाना फिर शलाकासे उसको निकाल डालना। कानके कीडे दूर करनेके लिये हुड हुड, निमिन्दा और ईशलाङ्गलाके जडके रसमें त्रिकटु चूर्ण मिलाकर कानमें डालना। सरसोका तेल डालना और बैगनके छालको जलाकर उसका धूआ लगाना क्रिमिकर्णकमें विशेष उपकारी है।

कर्णवेधज शोथ।—कर्णवेधके समय उचित स्थानमें कर्णविद्ध न होनेसे शोथ और दर्द होता है, इसमें जेठीमध, जौ, मजीठ और रेंडका जड एकत्र पीसकर घी और सहत मिला लेप करना। पकने पर व्रण रोगकी तरह चिकित्सा करना।

शास्त्रीय औषध।—भैरव रस, इन्द्रवटी, सारिवादि वटी, दीपिका तैल, अपामार्ग क्षार तैल शम्बूक तैल, निशातैल और कुष्ठाद्य तैल, रोगविशेष पर विचार कर देना।

पथ्यापथ्य।—कर्णरोग समूहोंके दोषका आधिक्य विचार कर पथ्यापथ्य स्थिर करना। कर्णक्ष्वेड, वाधिर्य्य आदि वायुप्रधान कर्णरोगमें वातव्याधिको तरह और कर्णपाक, कर्णस्राव आदि श्लेष्मप्रधान रोगमें आमवातादि पीडाकी तरह पथ्यापथ्य व्यवस्था करना।

नासारोग।

पीनस लक्षण।—जिस रोगमें कफ वायुसे शोषित हो नासिकाको बद्ध कर धूआ निकलनेकी तरह यातना अनुभव हो

तथा नाक कभी सूखी, कभी गीली होती रहे और घ्राणशक्ति, आस्वाद शक्ति नष्ट हो जाय, उसको पीनस रोग कहते है। पीनसके अपक्वावस्थामें शिरका भारीपन, अरुचि, पतला स्राव, स्वरकी क्षीणता और नासिकासे बार बार पानी निकलता है। पकनेपर कफ घना हो नाकके छिद्रमें विलीन होकर स्वर साफ होता है, किन्तु अपक्वावस्थाके कई एक लक्षण इसमें मिले हुए रहते है। दुष्ट रक्त, पित्त और कफसे वायु तालुमूलमें दुषित और पूतिभावापन्न हो मुख और नाकसे निकलनेपर उसको पूतिनस्य कहते है। जिस रोगमे नाकके दुष्टपित्तसे नाकमे पिडिका समूह और दारुण दाह हो अथवा जिस रोगसे नासिका पूतिभावापन्न और क्लेदयुक्त हो उसको नासापाक कहते हैं। वातादि दोषोंसे दूषित होनेपर अथवा ललाटमें किसी तरहसे चोट लगनेसे पीप रक्त निकलता है उसको पूयरक्त रोग कहते है। शृङ्गाटक नामक नासा रोग में मर्म्मस्थानका कफानुगत वायु दूषित होनेसे नाक जोरसे बोलती है उसको क्षवथु (छींक) कहते है। तेजवस्तु सूंघना, सूर्य्य दर्शण, बत्ती डालनेसे भी छींक आती है, उसको आगन्तुक क्षवथु कहते है। मस्तकमें पहिलेका सञ्चित गाढा कफ सूर्य्यको गरमी या पित्त से विदग्ध होनेपर लवण रसयुक्त नाकसे निकलता है इसको भ्रंशथु रोग कहते है। जिस नासा रोगसे नासिकामें अत्यन्त दाह तथा अग्निशिखा और धूआ निकलनेकी तरह दर्दके साथ गरम श्वास निकले तो उसको दीप्त कहते है। वायु और कफसे निश्वास मार्ग बन्द हो जानेपर उसको प्रतिनाह कहते है। नासिकासे गाढा या पतला पीला या सफेद कफ निकले तो उसको नासास्राव कहते हैं। नासा स्रोत और तद्गत कफ वायुसे शोषित और पित्तसे प्रतप्त होनेपर अति कष्टसे निश्वास प्रश्वास निकलता है, इसको नासा शोष कहते

है। मलमूत्रादि वेग धारण, रात्रि जागरण, दिवानिद्रा, शीतल जलका अधिक व्यवहार, शैत्यक्रिया, ओसमें फिरना, मैथुन, रोदन आदि कारणोंसे मस्तकका कफ घनीभूत होनेपर वायु कुपित हो तुरन्त प्रतिश्याय रोग पैदा होता है। तथा वायु, पित्त, कफ और रक्त पृथक् पृथक् या मिलकर क्रमशः मस्तकमें सञ्चित और अपने अपने कारणोंसे कुपित होनेसे कालान्तरमें प्रतिश्यायरोग उत्पन्न होता है। प्रतिश्याय होनेसे पहिले छींक, शिरका भारीपन, स्तब्धता, अङ्गमर्द, रोमाञ्च, नाकसे धूआ निकलनेको तरह अनुभव, तालुमें जलन और नाक मुखसे पानीका स्राव आदि पूर्व्वरूप प्रकाशित होता है। वातिक प्रतिश्यायमें नासिका विवद्ध और आच्छादितको तरह मालूम होती है, पतला स्राव और गला, तालु, ओष्ठ में शोष ललाटमें सूई गड़ानेको तरह दर्द, वारवार छींक आना, स्वरभङ्ग और नाक मुखसे मानो सधूम अग्नि निकलती है। रोगी भी काला, पाण्डुवर्ण और सन्तप्त हो जाता है। श्लैष्मिक प्रतिश्याय में नाकसे पाण्डुवर्ण और शीतल कफ बहुत निकलता है, रोगीका शरीर और दोनो आखे शुक्लवर्ण, शिर भारी, कण्ठ, ओष्ठ, तालु और मस्तकमें अत्यन्त खजुली होती है। प्रतिश्याय रोग पक्व या अपक्व चाहे जिस अवस्थामें अकारण बार बार उत्पन्न और बार बार विलीन होता रहे तो उसको सान्निपातिक जानना। रक्तज प्रतिश्यायमें नाकसे रक्तस्राव, आखोका लाल होना, मुख और निश्वासमें दुर्गन्ध तथा घ्राणशक्तिका नाश हो जाता है।

साध्यासाध्य लक्षण और परिणाम।—जिस प्रतिश्यायके निश्वासमें दुर्गन्ध, घ्राण शक्तिका लोप और नासिका कभी आर्द्र, कभी सूखी, कभी बद्ध, कभी विवृत होनेसे उसको दुष्ट और कष्टसाध्य जानना। वक्तपर दवा न करनेसे प्रतिश्याय दुष्ट और

असाध्य हो जाता है तथा उसमें छोटे छोटे कोड़े पैदा होनेसे क्रिमिज शिरोरोगके लक्षण समूह प्रकाशित होता है। प्रतिश्याय अधिक गाढ़ा होनेसे क्रमश वाधिर्य्य, नेत्रहीनता, नानाविध उत्कट नेत्ररोग, घ्राणशक्तिका नाश, शोथ, अग्निमान्द्य, कास और पीनस रोग उत्पन्न होता है।

नासार्श:।—अर्शोरोगोक्त मांसाङ्कुरकी भांति नाकमें भी एक प्रकार मांसाङ्कुर उत्पन्न होता है उसको नासार्श कहते है। चलित भाषामें इसको "नासारोग" या नासाज्वर नामक एक प्रकार रोग होता है इसमें नाकके भीतर लाल रङ्गका एक शोथ हो उसके साथ प्रबल ज्वर, गरदन, पीठ और कमरमें दर्द, सामनेकी तरफ झुकनेसे तकलीफ होना, यही सब लक्षण प्रकाशित होता है, यह भी एक प्रकार नासार्श रोगके अन्तर्भूत है।

नासारोग चिकित्सा।—पीनसरोग उत्पन्न होते ही गुड़ और दहीके साथ गोलमिरचका चूर्ण मिलाकर सेवन करनेसे विशेष उपकार होता है। जायफल, कूठ, काकड़ा शिङ्गी, सोंठ, पीपल, मिरच, जवासा और कालाजीरा, इसका चूर्ण या काढ़ेमें अदरखका रस मिलाकर सेवन करनेसे पीनस, स्वरभेद, नासास्राव, हलीमक आदि रोग शान्त होता है। व्योषाद्यचूर्ण नासा रोगमें विशेष उपकारी है। इन्द्रयव, हींग, मिरच, लाह, तुलसी, कुटकी कूठ, वच, सैजनकी बीज और विडङ्ग चूर्णका नास लेनेसे पूतिनस्य रोग आराम होता है। शिग्रुतैल और व्याघ्री तैलका नास भी पूतिनस्यमें उपकारी है। नासापाक रोगमें पित्तनाशक चिकित्सा करना तथा वटादि क्षीरि वृक्षकी छाल पीसकर घी मिलाकर लेप करना। पूयरक्त रोगमें रक्तपित्त नाशक नस्य ग्रहण और उसी रोगोक्त औषधादि सेवन करना। क्षवथु रोगमें सोंठ, कूठ, पीपल,

बेलका जड, द्राक्षा इसका काढा और कल्कके साथ यथाविधि घृत, गुग्गुलु और मोम मिलाकर धूम देना चाहिये। घीका भूजा आंवला काञ्जीसे पीसकर मस्तकमें लेप करनेसे नाकसे खूनका जाना बन्द होता है। प्रतिश्याय रोगमें पीपल, सैंजनकी बीज, विडङ्ग और मिरचके चूर्णका नास लेना, शुंठो, भूई आमला और त्रिकटु इसका चूर्ण घी और पुराने गुडके साथ सेवन करना अथवा पुटपक्व जयन्तीपत्र तैल और सेंधानमक के साथ रोज सेवन करना चाहिये। त्रिकटु और करीतकी और महालक्ष्मीविलासरस प्रतिश्याय रोगका श्रेष्ठ औषध है। नासार्श रोगमें करवीराद्य तैल और चित्रकतैल प्रयोग करना। नासा रोगमें सूईसे नाकके भीतरका रक्तपूर्ण शोथ छेदकर खून निकालना, फिर नमक मिला अकवनका दूध या सरसोंका तैल अथवा तुलसीके पत्तेके रसकी नास लेना। ज्वर न छूटनेसे ज्वरनाशक औषध सेवन करना। आहवारि रस और चन्दनादि लौह नासा ज्वरका उत्कृष्ट औषध है। दूर्व्वादि तैलका नास लेना इसमें विशेष उपकारी है। जिनको अकसर यह रोग होता है वे रोज दतुवनके समय मसूढेसे थोडा खून निकाले और सुंघनी सूंघनेसे विशेष उपकार होता है।

पथ्यापथ्य।—पीनस, प्रतिश्याय प्रभृति कफ प्रधान नासारोगमें कफ शान्तिकारक पथ्य देना। थोडाभी कफका उपद्रव हो तो भात न देकर रोटी या इससे भी अधिक रूखा और हलका पथ्य देना। पूयरक्त और नासापाक प्रभृति पित्तप्रधान नासा रोगमें पित्तनाशक और रक्तपित्त शान्तिकारक पथ्य देना। नासाज्वरमें अधिक रूक्षक्रिया उचित नहीं है, तथापि ज्वर प्रवल रहनेसे पहिले २।१ दिन भात न देकर हलका पथ्य देना अच्छा है।

नेत्ररोग।

—○—

नेत्ररोग निदान।—आतपादिसे सन्तप्त हो तुरन्त स्नान करना, बहुत देरतक दूरको वस्तुको देखना, दिवानिद्रा, रात्रि जागरण, आखमें पसीना, धूलि और धूमका प्रवेश, वमनका वेग रोकना या अतिरिक्त वमन, रातको पतला पदार्थ भोजन, मल, मूत्र और अधोवायुका वेग धारण, सर्व्वदा रोना, क्रोध या शोक, शिरमें चोट लगना, अतिशय मद्यपान, ऋतुविपर्य्यय, अश्रुवेग धारण आदि कारणोंसे वातादि दोष कुपित हो नानाप्रकार नेत्र-रोग पैदा होता है। नेत्ररोग बहुसंख्यक है, जिसमें अधिकांश हो शस्त्रसाध्य और असाध्य है। इनसे साधारणत कइ एक औषध और साध्य नेत्ररोग की चिकित्सा यहा लिखते है।

नेत्राभिष्यन्द।—नेत्राभिष्यन्द या "आख आना" यह रोग अकसर दिखाई देता है. वातज, पित्तज, कफज और रक्तज भेद से यह रोग ४ प्रकार है। वातज अभिष्यन्द मे आखमे सूई गडानेकी तरह दर्द, जडता, रोमहर्ष, आखका गडना, रुक्षता, शिरवेदना, शुष्कभाव और शीतल अश्रुपात यही सब लक्षण प्रकाश होता है। पित्तज अभिष्यन्दसे आखमे जलन, घाव. शीतल स्पर्शादि की इच्छा, आखसे धूम निकलनेकी तरह दर्द और अधिक अश्रु-पात आदि लक्षण लक्षित होता है। कफज अभिष्यन्दमें उष्ण स्पर्शादिकी इच्छा, भारबोध, चक्षुमें शोथ, कण्डू, कीचड आना, आख शीतल और वार वार पिच्छिल स्राव, यही सब लक्षण प्रकाशित होता है। रक्तज अभिष्यन्दके लक्षण पित्तज अभिष्यन्दको

तरह जानना। अभिष्यन्द रोग क्रमश बढजानेसे अधिमन्थ हो-जाता है, इसमें अभिष्यन्दके सम्पूर्ण लक्षण रहनेके सिवाय आंख और मस्तकका अर्द्धभाग मानो उत्पाटित और मथित होना मालूम होता है। आखें फूलकर पके गुलरको तरह लाल रंग कण्डु-विशिष्ट, क्लिन्नता, शोथयुक्त और पकजाने पर उसको नेत्रपाक रोग कहते हैं। अधिक खट्टा खानेसे पित्तप्रकुपित हो अम्लाध्युषित नामक एक प्रकार नेत्ररोग उत्पन्न होता है, इसमें आंखका भीतरो भाग ईषत् नोलवर्ण और प्रान्तभाग लालरंग हो पकजाता है तथा दाह और शोथ बराबर बना रहता है।

रात्रान्ध पीड़ा।—निरन्तर उपवास या अम्ल भोजन, तीक्ष्णवीर्य्य द्रव्य भोजन, अग्नि और धूप लगना, सफेद रोशनी देखना, अतिरिक्त परिश्रम, रात्रि जागरण अतिशय मैथुन या अवध उपायसे शुक्रपात, अत्यन्त चिन्ता, अधिक क्रोध या शोक और प्रमेह या और कोई बिमारोसे बहुत दिन तक भोगनेके सबब धातु-क्षय प्रभृति कारणोंसे दृष्टिशक्ति कम हो जाती है। इसमें दूरको वस्तु या छोटो वस्तु दिखाई नहो देती अथवा रातको कोई चीज नजर नहीं आती है। रातको दिखाई न देनेसे उसको रात्रान्ध (रतौन्धी) कहते हैं।

अभिष्यन्द चिकित्सा।—कनैलका नरम पत्ता तोड-नेसे जो रस निकलता है, वह आंखमें लगानेसे अथवा दारुहलदी का काढा किम्वा स्तनदूधमें रसाञ्जन घिसकर आंखमें लगानेसे अभिष्यन्दका अश्रुस्राव, दाह और दर्द आराम होता है। सैन्धव, दारुहलदी, गेरुमिट्टी, हरीतकी और रसाञ्जन, एकत्र मर्दन कर आंखके चारो तरफ लेप करनेसे आंखका शोथ और दर्द शान्त होता है। अथवा गेरुमिट्टी, लाल चन्दन, सोंठ, सफेद मिट्टी

और वच, पानीमें पीसकर लेप करनेसे रक्ताभिष्यन्द आराम होता है।

हमारा नेत्रविन्दु अभिष्यन्दकी श्रेष्ठ दवा — आंखे लाल होनेसे फिटकिरीका पानी या गुलाब जल आंखमें देना तथा हमारा "नेत्रविन्दु" सब प्रकार के नेत्राभिष्यन्दका श्रेष्ठ औषध है। पोस्तको ढेंडी उबाला पानीका स्वेद करनेसे आंखका शोथ आराम होता है। नेत्रपाक, अधिमन्थक आदि रोगमें भी यही सब औषध प्रयोग करना। शिरमें दर्द हो तो शिरोरोगोक्त कई औषध और महादशमूल आदि तैल व्यवहार करना।

नेत्ररोग चिकित्सा।—नेत्ररोग पक जानेसे अर्थात् शोथ, दर्द कण्डू, अश्रुपात प्रभृति छूट जानेसे अञ्जन लगाना चाहिये। हल्दी, दारुहलदी, मुलेठी, द्राक्षा और देवदारु यह सब द्रव्य बकरीके दूधमें पीसकर अञ्जन करना। बबूल का काढा गाढाकर सहत मिलाकर अञ्जन करनेसे आंखसे पानी जाना बन्द होता है। बेलके पत्तेका रस आधा तोला, सेन्धा नमक २ रत्ती और गायका घी ४ रत्ती ताम्बेके बरतनमें कौडीसे घिसकर आंचमें गरम करना, फिर स्तनदूध मिलाकर अञ्जन लगानेसे आंखका शोथ, रक्तस्राव, दर्द और अभिष्यन्द आराम होता है। चन्द्रोदय और वृहत् चन्द्रोदयवर्त्ति, चन्द्रप्रभावर्त्ति तथा नागार्जुन अञ्जन लगानेसे नाना प्रकारका चक्षुरोग शान्त होता है। विभीतकादि, वासकादि और वृहत् वासकादि काढा, महात्रिफलाद्य घृत, नयन-चन्द्र लौह आदि औषध नेत्ररोगमें विचार कर प्रयोग करना। नेत्र रोगमें सहत और त्रिफलाचूर्ण सेवन करनेसे विशेष उपकार होताहै।

दृष्टिशक्तिकी दुर्व्वलतामें हमारा केशरञ्जन तैल।—दृष्टिशक्तिकी दुर्व्वलतामें महात्रिफलाद्य घृत, अश्वगन्धा

घृत, बृहत् छागलाद्य घृत, मकरध्वज, विष्णुतैल, नारायण तैल और हमारा "केशरञ्जन तेल" आदि वायु नाशक और पुष्टिकर औषध प्रयोग करना। रात्रन्धता, (रतौंधो) मे भी यही सब औषध सेवन करना, या रसाञ्जन, हलदी, दारुहरिद्रा, मालती पत्र और नीमके पत्तेको गोमयके रसमें बत्ती बनाकर अञ्जन करना। रोज शामको पानका रस ३।४ बूंद आंखमें डालनेसे रतौंधी आराम होती है। पान या केलेके फलमें जुगनू कोड़ा रोगीको बेमालूम खिलानेसे भी रतौंधी आराम होती है।

पथ्यापथ्य।—अभिष्यन्द आदि रोगमें लघु, रूक्ष और कफनाशक द्रव्य भोजन कराना। ज्वरादि उपसर्ग हो तो लङ्घन कराना। मछली, मांस, खट्टा, शाक, उरद, दही और गुरुपाक द्रव्य भोजन तथा स्नान, दिवानिद्रा, अध्ययन, स्त्रीसङ्गम, धूपमें फिरना आदि अनिष्टकारक है।

दृष्टिदौर्ब्बल्य और रतौंधी रोगमें पुष्टिकर, स्निग्ध और वायुनाशक द्रव्य भोजन करना चाहिये।

निषिद्ध कर्म्म।—रूक्षसेवा, व्यायाम, रौद्रादिका आतप सेवन, तेज रोशनी देखना, परिश्रम, पर्य्यटन, अध्ययन स्त्रीसहवास आदि धातुक्षयकारक कार्य्य इस रोगमें अनिष्टकारक है।

शिरोरोग।

शिरोरोग सञ्ज्ञा।—शूलवत् दर्दकी तरह मस्तकमें जो रोग पैदा होता है, उसको शिरोरोग कहते है। वातज शिरोरोग से मस्तकमें अकस्मात् दर्द होता है, रातको यह दर्द बढने पर शिरमे कपडा बाधना और स्नेह स्वेद करनेसे दर्द शान्त होता है। पित्तज शिरोरोग में मस्तक जलते हुए अङ्गारसे व्याप्त और आख नाकसे पानी निकलने की तरह तकलीफ होती है। यह शैत्यक्रियासे और रातको कुछ शान्त होता है। कफज शिरोरोग में मस्तक कफलिप्त, भारी, बद रहनेकी तरह दर्द और शीतल स्पर्श तथा दोनो आंखे फूल जाती है। सन्निपातज शिरोरोग में वही सब लक्षण मिले हुए मालूम होता है। रक्तज शिरोरोग में पित्तज शिरोरोगके लक्षण उपस्थित होता है और मस्तक में भयानक दर्द होता है।

क्षयज लक्षण।—शिरका रक्त, चर्बी और वायु अतिरिक्त क्षय हो भयानक कष्टदायक और कष्टसाध्य शिर शूल पैदा होता है, उसको क्षयज शिरोरोग कहते है। क्रिमिज शिरोरोग में कीडा पैदा होता है, इस से दर्द, सूची वेधवत् यन्त्रणा, टनटनाहट और नाकसे पानी मिला हुआ पीप स्राव होता है।

सूर्य्यावर्त्त लक्षण।—सूर्य्योदयके वक्त जिस शिरोरोगमें आंख और भौमें थोडा थोडा दर्द आरम्भ हो तथा सूर्य्य जैसे जैसे ऊपर उठे दर्द भी वैसही बढने लगे, फिर सूर्य्य जितना पश्चिम की तरफ उतरते जाय वैसही दर्द भी कम होती जाय तो उसे

सूर्यावर्त्त कहते है। सुतरां दोपहर को इस रोगकी वृद्धि और शामको निवृत्ति होती है।

अनन्तवात।—पहिले गरदनके पीछे दर्द आरम्भ हो तुरन्तही ललाट और भौंमें पैदा हो तथा गालके पास कम्पन, हनुग्रह और नानाप्रकार नेत्ररोग उत्पन्न होनेसे उसको अनन्तवात नामक रोग कहते हैं। रूखा भोजन, अध्ययन, पूर्व्व वायु और हिम सेवन, मैथुन मलमूत्रादिका वेग धारण, परिश्रम, व्यायाम आदिसे कुपित, केवल वायु अथवा वायु और कफ मस्तकके आधे हिस्सेमें जाकर एक तरफकी मन्या, भौं, ललाट, कान, आंख और गण्डदेशमें भयानक दर्द पैदा होता है इसको अर्द्धावभेदक (अधकपारी) कहते हैं। पहिले शङ्खदेश (कनपटी) में दारुण वेदना और दाहयुक्त रक्तवर्ण शोथ उत्पन्न हो एकाएकी शिर शूल और कण्ठरोध उपस्थित होनेसे उसको शिरोरोग कहते हैं। उपयुक्त चिकित्सा न होनेसे तीन दिनमें इस रोगसे रोगीकी मृत्यु होती है।

शिरोरोगकी चिकित्सा।—वातज शिरोरोगमें वायुनाशक घृत पान और तेल मर्द्दन उपकारी है। कूठ, रेड़की जड़ काञ्जीमें पीसकर अथवा मुचकुन्द फूल पानीमें पीसकर लेप करना। पैत्तिक शिरोरोगमें घी या दूधके साथ उपयुक्त मात्रा त्रिवृतका चूर्ण सेवनकर विरेचन कराना चाहिये। दाह हो तो शतधौत घी मालिश करना, तथा कुमुद, उत्पल आदि शीतल पुष्पका लेप करना। लालचन्दन, खसकी जड़, मुलेठी, बरियारा, व्याघ्रनखी और नीलोत्पल दूधमें एकत्र पीसकर, अथवा आंवला और नीलोत्पल पानीमें पीसकर लेप करनेसे पैत्तिक शिरोरोग आराम होता है। श्लैष्मिक शिरोरोगमें कायफलका नास लेना। पीपल, सोंठ, मोथा, मुलेठी सोवा, नीलोत्पल और कूठ, यह सब द्रव्य

एकत्र पानीमें पीसकर लेप करनेसे भी कफज शिरोरोग तुरन्त आराम होता है। वातपैत्तिक शिरोरोगमें स्वल्प पञ्चमूल दूधमें औटाकर नास लेना। वातश्लैष्मिक शिरोरोगमें वृहत् पञ्चमूल दूधमें औटाकर नास लेना। त्रिदोषज शिरोरोगमें ऊपर कही सब दवाएं मिलाकर व्यवहार करना। त्रिकटु, कूठ, हल्दी, गुरिच और असगन्ध, इसका काढा नाकके रास्ते पीनेसे अथवा शोंठ चूर्ण ३ मासे दूध ८ तोले एकत्र मिलाकर नास लेनेसे त्रिदोषज शिरोरोग आराम होता है। पित्तज शिरोरोगकी तरह रक्तज शिरोरोगकी चिकित्सा करना चाहिये। क्षयज शिरोरोगमें अमृतप्राश घृत, वृहत् छागलाद्य घृत आदि धातु पोषक औषध सेवन और वातज शिरोरोग नाशक लेप करना चाहिये। क्रिमिज शिरोरोगमें अपामार्ग तैल या शोंठ, पीपल, मिरच, करञ्जबीज, और सैजनकी बीज गोमूत्रमें एकत्र पीसकर नास लेना तथा और भी क्रिमिनाशक अन्यान्य औषध प्रयोग करना चाहिये।

सूर्य्यावर्त्त, अर्द्धावभेदक और अनन्तवात रोगमें अनन्तमूल, नीलोत्पल, कूठ और मुलेठी काञ्जीमें पीसकर घी मिलाकर लेप करना, अथवा हुडहुडका बीज हुडहुडके रसमें पीसकर लेप करना। भङ्गरैया का रस और बकरीका दूध समभाग धूपमें गरम कर नास लेना। दूधके साथ तिल पीसकर नास लेनेसे सूर्य्यावर्त्त आदि रोग आराम होता है। चीनी मिलाया दूध, नारियलका पानी, ठण्ढा पानी या घी इसमेंसे किसी एकका नास लेनेसे अर्द्धावभेदक रोग आराम होता। समभाग विडङ्ग और काली तिल एकत्र पीसकर नास लेना, अथवा चुल्हेकी जली मिट्टी और गोल मिरचका चूर्ण समभाग मिलाकर नास लेनेसे भी अर्द्धावभेदक आराम होता है। शङ्ख रोगमें भी यही चिकित्सा उपकारी है।

इसके सिवाय दारुहलदी, हलदी, मजीठ, नीमका पत्ता खसकी जड और पद्मकाष्ठ पानीमें पीसकर कनपटीमें लेप करना। नाकसे घी पान और मस्तकपर बकरीका दूध या ठण्ढा पानी सिञ्चन शङ्ख रोगमें विशेष उपकारी है।

शास्त्रीय औषध।—शिरःशूलादि वज्ररस, अर्द्धनाडी नाटकेश्वर, चन्द्रकान्त रस, मयुराद्य घृत, षड्बिन्दु तैल और वृहत् दशमूल तैल सब प्रकारके शिरोरोगका उत्कृष्ट औषध है। अवस्थाविशेष विचारकर यही सब औषध प्रयोग करना।

पथ्यापथ्य।—कफज, क्रिमिज और त्रिदोषज शिरोरोगके सिवाय अन्यान्य शिरोरोगमें वायुप्रधान रहता है सुतरां वातव्याधि कथित पथ्यापथ्य उन सब रोगोंमें विचारकर देना चाहिये। कफज आदि कफप्रधान शिरोरोगमें रूक्ष और मधुर आहार करना तथा स्नान, दिवानिद्रा, गुरुपाक द्रव्य भोजन आदि कफवर्द्धक आहार विहार परित्याग करना। क्रिमिज शिरोरोगमें क्रिमिरोगकी तरह पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये।

स्त्रीरोग।

प्रदर निदान।—क्षीर मत्स्यादि संयोगविरुद्ध भोजन, मद्यपान, पहिलेका आहार पचनेसे पहिले भोजन, कच्चा पदार्थ खाना, गर्भपात, अतिरिक्त मैथुन, पथपर्य्यटन, सवारीपर अधिक

चढना, शोक, उपवास, भारवहन अभिघात, अतिनिद्रा आदि कारणोंसे प्रदररोग उत्पन्न होता है, इसका दूसरा नाम असृग्दर है। अङ्गमर्द और दर्द लिये योनिद्वार से स्राव होना यही सब प्रदरके साधारण लक्षण है। कच्चा रसयुक्त, चिपकाता हुआ पीला रंग या मासके धोवनकी तरह स्रावको कफज प्रदर कहते है। जिससे पीला नीला, काला या लाल रंगका गरम स्राव, दाह और दर्द आदिके साथ वेगसे स्राव हो वह पित्तज और जिसमें रुखा, अरुणवर्ण, फेनीला, तथा मासके धोवन की तरह दर्दके साथ निकले उसको वातज प्रदर कहते है। सन्निपातज प्रदर रोगमें सहत घी या हरितालके रंगको तरह अथवा मज्जा या शव गन्धयुक्त स्राव होता है यह असाध्य जानना। प्रदर रोगिणी का खून और बल घटजाने पर भी निरन्तर स्राव होनेसे तथा तृष्णा, दाह और ज्वरादि उपद्रव उपस्थित होनेसे यह रोग असाध्य हो जाता है।

बाधक लक्षण।—यह भी प्रदर रोगके अन्तभूत है। बाधक रोग नानाप्रकार दिखाई देता है। किसीमें कमर, किसीमें नाभिके नीचेका भाग, पार्श्वद्वय, दोनो स्तनोंमे दर्द और कभी कभी एक या दो मासतक लगातार रक्तस्राव होता रहता है। किसी बाधकमें आंख, हाथका तलवा, और योनिमें जलन लस्से-दार रक्तस्राव तथा कभी कभी महीनेमें दोबार ऋतु होता है, किसीमें मानसिक अस्थिरता, शरीरका भारीपन, अधिक रक्तस्राव, हाथ पैरमें जलन, कृशता, नाभिके नीचे शूलवत् दर्द और कभी कभी तीन या चार मासपर ऋतु होता है तथा किसी बाधकमें बहुत दिनपर ऋतु होना पर उपवाससे थोडा रक्तस्राव, दोनो स्तनोंकी गुरुता, स्थूलता, देहकी कृशता और योनिमें शूलवत् दर्द यही सब लक्षण प्रकाशित होता है।

शुद्धऋतु लक्षण।—हरमहीनेमें ऋतु होकर पांच दिनतक रहे तथा दाह और वेदना न हो, खून चिटचिटा तथा कम और थोड़ा न हो, खूनका रंग लाहके रसकी तरह तथा कपड़ा उसमें रंग फिर पानीसे धोनेहो छूट जाय वही ऋतु शुद्ध जानना। इसमें किसी प्रकारका व्यतिक्रम मालूम होनेहो से अशुद्ध जानना।

योनिव्यापक रोग।—योनिव्यापक अनुपयुक्त आहार विहार, खराब रज और बीज दोष आदि कारणोंसे स्त्रियोंको नानाप्रकार योनिरोग उत्पन्न होता है। जिस योनिरोगमें अत्यन्त कष्टके साथ फेनीला रज निकले उसको उदावर्त्त कहते हैं। जिसमें रज दूषित हो सन्तानोत्पादिका शक्ति नष्ट हो जाती है उसको वन्ध्या। विप्लुता नामक योनिरोगमें योनिमें सर्व्वदा दर्द बना रहता है। परिप्लुता रोगमें मैथुनसे वक्त अत्यन्त दर्द होता है। यह चारो वातज योनिरोगमें योनि कर्कश, कठिन, शूल और सूचीवेधवत् दर्द होता है। लोहितक्षय नामक योनिरोगमें अतिशय दाह और रक्त क्षय होता है। वामिनी योनिरोगमें वायुके साथ रक्त मिला शुक्र निकलता है। प्रस्रंसिनीमें योनि अपने स्थानसे नीचेकी तरफ लम्बी होती है तथा वायुके उपद्रव इसमें होता है, इस रोगमें सन्ताप प्रसव कालमें बड़ी तकलीफ होती है। पुत्रघ्नी रोगमें बीच बीचमें गर्भका सञ्चार होता है पर वायुसे रक्तक्षय होकर गर्भ नष्ट हो जाता है। यह चार पित्तज योनिरोगमें अत्यन्त दाह, पाक और ज्वर उपस्थित होता है। अत्यानन्दा नामक योनिरोगमें अतिरिक्त मैथुनसे भी तृप्ति नहीं होती। योनिमें कफ और रक्तसे मांसकन्दकी तरह ग्रन्थिविशेष उत्पन्न होनेसे उसको कर्णिक रोग कहते। अचरणा रोगमें मैथुन के समय पुरुषके पहिलेहो

स्त्रोका रेत गिर जाता है इससे वह स्त्री बोज ग्रहणमें समर्थ नहीं होती। अतिरिक्त मैथुनसे बीज ग्रहण शक्ति नष्ट हो जानेसे उसको अतिचरणा कहते। यह चारो कफज योनिरोगमें योनि पिच्छिल, कण्डुयुक्त और अत्यन्त शीतल स्पर्श होती है। जिस स्त्रोको ऋतु नहीं होता उसका स्तन कम उठता है और मैथुनके वक्त योनि कर्कश स्पर्श मालूम होती हैं, ऐसे योनिको षण्ढो कहते हे। कम उमरमें और छोटी योनिद्वारवाली स्त्री स्थूल लिङ्ग पुरुषके साथ सहवास करनेसे उसको योनि फोतेकी तरह लटक आती है उसको अण्डली रोग कहते है। अति विस्तृत योनिको महायोनि और छोटे छेदवाली योनिको सूचीवक्ता कहते हैं।

योनिकन्द।—दिवानिद्रा, अतिरिक्त क्रोध, अधिक व्यायाम, अतिशय मैथुन और किसी कारणसे योनिमें घाव होनेसे वातादि दोषत्रय कुपित हो योनिमें पोप रक्तके रगको तरह, मान्दारफलके आकारको तरह एक प्रकार मांसकन्द पैदा होता हैं। उसको योनिकन्द कहते है। वायुके आधिक्यसे कन्द रुखा विवर्ण और फटा होता हैं। पित्तके आधिक्यसे कन्द लाल रग, दाह और ज्वर भी होता है। कफके आधिक्यसे नोलवर्ण और कण्डयुक्त होता है। त्रिदोषके आधिक्यमे यही सब लक्षण मिले हुए मालूम होता है।

भिन्न भिन्न रोगमें प्रदर चिकित्सा।—वातज प्रदररोगमें दही ६ तोले, सौचल नमक ≈) आनेभर, कालाजोरा, मुलेठो और नोलोत्पल प्रत्येक चार आनेभर सत्त आधा तोला एकत्र मिलाकर २ तोले मात्रा दो घण्टा अन्तर पर सेवन कराना। पित्तज प्रदरमें अडूसेका रस अथवा गुरिचके रसमें चोनो मिलाकर पिलाना। रक्तप्रदरमें रसाञ्जन, और चौराई को जड समभाग

अरवे चावलके धोवनके साथ सेवन करना। रक्तप्रदरमें ख़ास होती उसी योगमें अमनैठो और सोंठ मिलाना चाहिये। गुल्लरका रस, खाह भिड़ोया पानी आदि पोनेसे प्रदर रोगका रक्तस्राव जल्दी बन्द होता है। अशोक छाल २ तोले आधा सेर पानीमें औटाना एक पाव रहे तब एक सेर दूध मिलाकर फिर औटाना पानी जल-जानेपर उतार लेना रोगिणीका अग्निबल विचारकर उपयुक्त मात्रा सेवन करानेसे प्रदररोगका रक्तस्राव बन्द होता है। दार्व्यादि क्वाथ, उत्पलादि कल्क, चन्दनादि चूर्ण, पुष्यानुग चूर्ण, प्रदरारि लौह, प्रदरान्तक लौह, अशोक घृत, सितकल्याण घृत, और हमारा "अशोकारिष्ट" सब प्रकारके प्रदररोगमें विचारकर देना चाहिये। अजीर्ण, अग्निमान्द्य, ज्वर आदि उपद्रव हो तो घी सेवन करना उचित नहो है। वायुका उपद्रव या पेड़ूमें दर्द हो तो मिथ्याद्रि या प्रमेहमिहिर तेल मर्द्दन उपकारी है। बाधकरोगमें रक्तस्राव अधिक हो तो प्रदररोगोक्त औषध देना चाहिये। रजोरोध होनेसे ओड़हुलका फल कानीमें पोसकर सेवन करना और मुसब्बर, हीराकस, अफीम, दालचिनी, हरेक का चार आनेभर चूर्ण पानीमें घोटना फिर २ रत्ती मात्राकी गोली बनाकर एक गोली सवेरे और एक शामको पानीके साथ देना।

योनिरोग चिकित्सा।—वातप्रधान योनिरोगमें वायु-नाशक घृतादि सेवन कराना। गुरिच, त्रिफला, दन्तीके, काढ़ेसे योनि धोना और तगरपादुका, वार्त्ताकू, कूठ, सन्धव और देव-दारुका कल्क विधिपूर्व्वक तेलसें पकाकर रुईका फाहा तेलमें भिगोकर योनिमें रखना। पित्तप्रधान योनिरोगमें पित्तनाशक चिकित्सा और रुईका फाहा घीमें भिङ्गोकर योनिमें रखना। कफ-प्रधान योनिरोगमें रुच और उष्णवीर्य्य औषध प्रयोग करना तथा

पीपल, गोलमिरच, उडद, सोवा, कूठ, सेन्धानमक एकत्र पीसकर तर्ज्जनी अङ्गुलोके बराबर वत्तो बनाकर योनिमें रखना। कर्णिनो नामक योनिरोगमें कूठ, पीपल, अकवनका पत्ता, सेन्धानमक बकरीके दूधमें पीसकर वत्ती बनाकर योनिमें रखना। सोवा और बैरका पत्ता पीसकर तिलका तेल मिला लेप करनेसे विदीर्ण योनि आराम होती है। करेलेका जड पीसकर लेप करनेसे अन्तःप्रविष्ट योनि बाहर आती है। प्रस्रंसिनी नामक योनिरोगमें चुहेकी चर्व्वी मालिश करनेसे अपने स्थानमें आजाती है। योनिको शिथिलतामें वच, नीलोत्पल कूठ, गोलमिरच, असगन्ध और हल्दी समभाग एकत्र पीसकर लेप करना और कस्तुरी जायफल, कपूर किम्वा मदनफल और कपूर सहत मे मिलाकर योनिमे भरना। योनिका दुर्गन्ध निवारण करनेके लिये आम, जामुन, कयेथ, बडानीबू और बेलका नरम पत्ता, सुलेठी, मालतीफूल, इन सबका कल्क यथाविधि घीमें पाकाकर उसी घीमे रुईका फाहा भिङ्गोकर योनिमें रखना। वन्ध्यारोगमें असगन्धका काढा दूधमें औटाना फिर घी मिलाकर ऋतु स्नानके बाद सेवन करना। कन्दरोगमें त्रिफलेके काढेमें सहत मिलाकर योनि धोना। गेरू-मिट्टी, आमकी गुठली, विडङ्ग, हल्दी, रसाञ्जन और कटफल इन सबका चूर्ण सहत मिलाकर लेप करना चुहेका टटका मास तिलके तेलमे पकाना, मास अच्छी तरह तेलमें मिल जानेपर उतार लेना, फिर उसी तेलमे कपडा भिगोकर योनिमें रखनेसे कन्दरोग आराम होता है। फलघृत, फलकल्याण घृत, कुमार कल्पद्रुम घृत आदि योनिरोगमें विचारकर प्रयोग करना चाहिये।

पथ्यापथ्य।—प्रदर आदि रोगमें दिनको पुराने चावलका भात, मूग, मसूर और चनेकी दाल, केलेका फूल, कच्चाकेला,

करेला, गुलर, परवर, पुराना कोहडा आदिकी तरकारी, सहनेपर बीच बीचमें छाग मासका रस देना। मछलीका रस्सा भी थोडा देना चाहिये। रातकी रोटी आदि भोजन कराना। सहनेपर ३।४ दिनके अन्तरपर गरम पानीसे स्नान कराना चाहिये। ज्वरादि उपसर्ग हो तो हलका आहार देना तथा स्नान बन्द करना।

निषिद्ध कर्म्म।—गुरुपाक और कफजनक द्रव्य, मछली मिठाई, लाल मिरचा, अधिक लवण, दूध आदि आहार और अग्नि-सन्ताप, धूपमें फिरना, ओसमें बैठना, दिनको सोना, रातको जागना, अधिक परिश्रम, पथपर्य्यटन, मद्यपान, ऊंचे स्थानपर चढना और उतरना, विशेष मैथुन, मलमूत्रका वेग धारण, सङ्गीत और जोरसे बोलना, सब प्रकारके स्त्रीरोगमें अनिष्टकारक है।

रजोरोध होनेसे स्निग्धक्रिया आवश्यक है। उडद, तिल, दही कांजी, मछली और मास भोजन इस अवस्थामें उपकारी है।

गर्भिणी चिकित्सा।

गर्भिणी चिकित्साकी दुरूहता।—गर्भावस्थामें औरतोंको ज्वर, शोथ, उदरामय, वमन, शिरका घूमना, रक्तस्राव, गर्भवेदना आदि नाना प्रकारका रोग उपस्थित होता है। साधारण अवस्थाकी तरह हरेक रोगकी दवा देनेसे इस रोगमें उपकार नही होता, तथा गर्भस्थ शिशुको नानाप्रकारकी विपदकी

आशङ्का बनी रहती है। इसलिये प्रधान प्रधान कई एक रोगकी चिकित्सा जानना उचित है।

गर्भावस्थामे ज्वरकी चिकित्सा।—गर्भावस्थामें ज्वर हो तो मुलेठी, लालचन्दन खसकी जड, अनन्तमूल, पद्मकाष्ठ और तेजपत्तेका काढा सहत और चीनी मिलाकर पिलाना। अथवा लालचन्दन, अनन्तमूल, लोध और द्राक्षाका काढा चीनी मिलाकर पिलाना। एरण्डादि क्वाथ, गर्भचिन्तामणिरस, गर्भविलासरस, गर्भपियूषवल्ली, गर्भिणीके ज्वर शान्तिके लिये प्रयोग करना, ज्वर रोगोक्त काढा और गोलियोंमें जिसका वीर्य्यमृदु है विशेष विचार कर वह सबभी दे सकते हैं। अतिसार या ग्रहणी रोगमें आम और जामुनके छालके काढेमें धानके लावाका चूर्ण मिलाकर सेवन कराना। वृहत् क्षीरिरादि क्वाथ, लवङ्गादि चूर्ण, इन्दुशेखररस और अतिसारादि रोगोक्त मृदुवीर्य्य कई औषध विचारकर प्रयोग करना। मलरोध होनेसे आम, पक्कावेल, किसमिस, पक्का पपोता, गरम दूध आदि सारक द्रव्य देना। विशेष जरूरत हो तो थोडा रेडीका तेल दूधके साथ मिलाकर पिलाना, अधिक दस्त आनेसे गर्भस्रावका डर है, इससे विचारकर अधिक दस्त न हो ऐसी दवा देना। शोथमें सूखी मूली, पुनर्नवा, गोक्षुरबीज, ककडीकी बीज और खीरेकी बीजका काढा चीनी मिलाकर पिलाना। शोथमें सेंहुडके पत्तेका रस मालिश करना। गर्भावस्थामें वमन होना स्वाभाविक नियम है इससे उसके लिये कोई औषध प्रयोग नहीं करना। रोज सवेरे मिश्रीका शर्बत या दूध पीनेसे वमन कम होता है। रोज अधिक कष्टकर वमन होनेसे धानके लावाका चूर्ण द्राक्षा और चीनी पानीमें खूब मिलाना फिर छान लेना, वही पानी थोडा थोडा पिलाना, अथवा द्राक्षा, घिसा

चन्दन, खीरेको बीज, इलायची और सौफ यह सब द्रव्य पानीमें खूब मलकर थोडा थोडा पिलाना तथा गर्भविलास, नारायण आदि तैल मर्द्दन करना। शिर भारी मालूम होतो यही सब तैल या हमारा केशरञ्जन और मूर्च्छान्तक तैल शिरमें मालिश करना।

मासभेदसे गर्भसे रक्तस्रावकी चिकित्सा।—गर्भके प्रथम महीनेमें रक्तस्राव होतो मुलेठी, सागवानकी बीज चीरकाकोली और देवदारु इन सब द्रव्योंके साथ दूध मिलाकर पिलाना। द्वितीय मासमें रक्तस्राव होतो काली तिल, मजीठ और शतावर तृतीय महीनेमें चीरकाकोली और अनन्तमूल, चतुर्थ मासमें अनन्तमूल, श्यामालता, रास्ना, बभनेठी और मूलेठी, पञ्चम मासमें बृहती, कण्टकारी, गाम्भारी फल, वटादि चीरी वृक्षकी छाल और गूदा तथा घी। षष्ठ मासमें चकवड, बरियारा, सैजनकी बीज, गोक्षुर और मुलेठी, सप्तम मासमें सिङ्घाडा, मृणाल, किसमिस, कसेरु, मुलेठी और चीनी, अष्टम मासमें कैथ, बेल, वृहती, परवरका पत्ता, इक्षुमूल, कण्टकारी, नवम मासमें मुलेठी, अनन्तमूल, चीरकाकोली, श्यामालता और दशम मासमें दूधमें सोंठ मिला औटाकर पिलाना।

मासभेदसे गर्भवेदनाकी चिकित्सा।—गर्भके प्रथम महीनेमें दर्द हो तो, श्वेतचन्दन, चीनी और मयनफल, समान भाग अरवे चावलके धोवनमें मिलाकर पिलाना। अथवा तिल, पद्मकाष्ठ, और शालि तण्डुल यह सब द्रव्य दूधके साथ पीसकर दूध चीनी और सहत मिलाकर पिलाना, फिर दूध भात खिलाना। द्वितीय मासमें दर्द होनेसे पद्म, सिङ्घाडा, कसेरु, अरवे चावलके पानीसे पीसकर पिलाना। तृतीय मासमें दर्द हो तो सतावर २ भाग, आवला १ भाग एकत्र पीसकर गरम पानीके साथ

आशङ्का बनी रहती है। इसलिये प्रधान प्रधान कई एक रोगकी चिकित्सा जानना उचित है।

गर्भावस्थामें ज्वरकी चिकित्सा।—गर्भावस्थामें ज्वर हो तो मुलेठी, लालचन्दन खसकी जड, अनन्तमूल, पद्मकाष्ठ और तेजपत्तेका काढा सहत और चीनी मिलाकर पिलाना। अथवा लालचन्दन, अनन्तमूल, लोध और द्राक्षाका काढा चीनी मिलाकर पिलाना। एरण्डादि क्वाथ, गर्भचिन्तामणिरस, गर्भविलासरस, गर्भपियूषवल्ली, गर्भिणीके ज्वर शान्तिके लिये प्रयोग करना, ज्वर रोगोक्त काढा और गोलियोंमें जिसका वीर्य्यमृदु है विशेष विचार-कर वह सबभी दे सकते हैं। अतिसार या ग्रहणी रोगमें आम और जामुनकी छालके काढेमें धानके लावाका चूर्ण मिलाकर सेवन कराना। वृहत् ह्रीवेरादि क्वाथ, लवङ्गादि चूर्ण, इन्दुशेखररस और अतिसारादि रोगोक्त मृदुवीर्य्य कई औषध विचारकर प्रयोग करना। मलरोध होनेसे आम, पकावेल, किसमिस, पक्का पपीता, गरम दूध आदि सारक द्रव्य देना। विशेष जरूरत हो तो थोडा रेंडीका तेल दूधके साथ मिलाकर पिलाना, अधिक दस्त आनेसे गर्भस्रावका डर है, इससे विचारकर अधिक दस्त न हो ऐसी दवा देना। शोथमें सूखी मूली, पुनर्नवा, गोक्षुरबीज, ककडीकी बीज और खीरेकी बीजका काढा चीनी मिलाकर पिलाना। शोथमें सेंहुडके पत्तेका रस मालिश करना। गर्भावस्थामें वमन होना स्वाभाविक नियम है इससे उसके लिये कोई औषध प्रयोग नही करना। रोज सबेरे मिश्रीका शर्ब्बत या दूध पीनेसे वमन कम होता है। रोज अधिक कष्टकर वमन होनेसे धानकी लावाका चूर्ण द्राक्षा और चीनी पानीमें खूब मिलाना फिर छान लेना, वही पानी थोडा थोडा पिलाना, अथवा द्राक्षा, घिसा

वे समय गर्भपात और कुक्षिशूल चिकित्सा।—वे समय गर्भपात होनेसे काडो आदि बनानेके लिये तयार की हुई मिट्टी आधा तोला, एक पाव बकरीका दूध और चार आनेभर सहत एकत्र मिलाकर पिलाना। अथवा बाला, अतीस, मोथा, मोचरस और इन्द्रयव, इन सब द्रव्योंका काढा पिलाना। इससे कुक्षिशूल भी आराम होता है। गर्भस्राव हो जानेपर कसेरु, सिङ्घाडा, पद्मकेशर, नील कमल, मुगानी और मुलेठी यह सब द्रव्य दूधमें औटाकर पिलाना इससे गर्भस्राव का शूल आराम होता है।

अति रक्तस्राव चिकित्सा।—गर्भस्राव, गर्भपात या प्रसव होनेपर अतिरिक्त रक्तस्राव हो तो बन्द करना, नहीं तो इससे प्रसूतिके मृत्यु की सम्भावना है। रक्त बन्द करनेके लिये प्रसूतीका पेड़ू खूब दबाकर मलना। पेड़ूपर ठण्ढे पानीकी धार गिराना। और भिगोया कपडा रखकर बार बार पानीसे तर करते जाना। नौसादर और सोरा पानीमें भिगो कपडेमें बांध पेड़ूपर रखना। पिचकारीसे ठण्ढा पानी गर्भाशयमें देना, कबूतरके बीटका चूर्ण २ रत्ती अरवे चावलके पानीके साथ सेवन करना। रोगिणी उठने बैठने न पावे हरवक्त पडी रहे। प्यास मालूम होनेपर ठण्ढा पानी जितना मांगे उतना पीनेको देना।

प्रसवमें विलम्ब चिकित्सा।—प्रसवमें देर होनेसे ईशलाङ्गलाकी जड काजीमें पीसकर दोनों पैरमें लेप करना। अडूसेकी जड, कमर में बांधना, अथवा अडूसेकी जड पीसकर नाभि, वस्ति और योनिमें लेप करना। काजीमें बरका जाला अथवा बडे नीबूकी जड और मुलेठी घीके साथ किम्वा फालसा, सरिवन, अकवन, ईशलाङ्गला और अपामार्ग इनमेंसे कोई एक

सेवन कराना। अथवा पद्म, नीले कमलका फूल और शालुक चीनीके शर्बतमें पीसकर सेवन कराना। चतुर्थ मासमें नीला कमल, शालुक, कण्टकारी और गोक्षुर अथवा गोक्षुर, कण्टकारी, वाला और नीला कमल, यह सब द्रव्य दूधमें पीसकर सेवन कराना। पञ्चम माससे, नीला कमल और क्षीरकाकोली दूधके साथ पीसकर दूध, घी और सहत मिलाना अथवा नीला कमल, घृतकुमारी और शीतल चीनी समभाग पानीमें पीसकर दूधमें मिला पिलाना। षष्ठ मासमें बड़े नीबूका बीज, प्रियङ्गु, लालचन्दन और नीला कमल दूधमें पीसकर किम्वा चिरौंजी, द्राक्षा और धानके लावाका चूर्ण पानीमें मिलाकर खिलाना। सप्तम मासमें शतमूली और पद्ममूल पीसकर दूधके साथ किम्वा कयेथ, सुपारी की जड़, धानका लावा, और चीनी ठण्ढे पानीके साथ सेवन कराना। अष्टम मासमें सप्तम मासका द्रव्य अरवे चावलके धोवनमें पीसकर सेवन कराना। नवम मासमें एरण्डमूल काञ्जीमें पीसकर पिलाना। दशम मासमें नीलोत्पल, मुलेठी, और मूंग चीनीका शर्बत या दूधमें पीसकर सेवन कराना, एकादश मासमें मुलेठी, पद्मकाष्ठ, मृणाल और नीला कमल, कूठ, वाराहक्रान्ता और चीनी यह सब द्रव्य ठण्ढे पानीमें पीसकर दूधमें मिलाकर सेवन कराना। द्वादश मासमें चीनी बिदारीकन्द काकोली और क्षीरकाकोली यह सब द्रव्य ठण्ढे पानीमें पीसकर सेवन कराना।

नवम, दशम, एकादश और द्वादश मासका कर्त्तव्य।—नवमसे द्वादश मास तक प्रसवका काल है, इससे इसी समयमें गर्भवेदना उपस्थित होनेसे वह प्रसव वेदना है वा नहीं इसका विचार कर औषध प्रयोग करना। प्रसव वेदनामें किसी प्रकारका औषध देना उचित नहीं है।

अनन्तमूल, सतावर, पिठवन, माषपर्णी, जीवन्ती और मुलेठी, यह सब द्रव्य यथाविधि घीमें पकाकर सेवन कराना।

पथ्यापथ्य और कर्त्तव्य कर्म्म।—गर्भावस्थामें कई एक साधारण नियम पालन करना गर्भिणी माताका कर्त्तव्य है। हलका अथवा पुष्टिकर और रुचिकर आहार करना। अधिक परिश्रम या एकदम परिश्रम त्याग करना नहीं चाहिये। जिस कामसे श्वास प्रश्वास देरतक बन्द रखना पड़े, अधिक वेग देना हो किम्वा पेड़ू दबे ऐसा काम करना नहीं चाहिये। पैदल या तेज सवारीमें अधिक दूर तक जाना भी अनिष्टकारक है। सर्व्वदा प्रसन्नचित्त रहना चाहिये, भय, शोक और चिन्ता रात्रि जागरण आदिसे मनमें दुख होनेसे सन्तानका अनिष्ट होता है। उपवास, जागरण, दिवानिद्रा, अग्नि सन्ताप, मैथुन, भारवहन कठिन शय्यामें शयन, ऊचे स्थानपर चढ़ना और मूत्रादि वेग धारण कदापि उचित नहीं है।

गर्भावस्थामें जो रोग उत्पन्न हो पथ्यापथ्य भी उसी रोगका पालन करना चाहिये। उपवासवाले रोगमें हलका आहार देना-पर उपवास कराना अच्छा नहीं।

गर्भ या गर्भिणी सूख जानेसे घी, दूध, हमका अण्डा और छाग, कुक्कुट आदिका मास आदि पुष्टिकर पथ्य भोजन करनेको देना।

प्रसवान्तका कर्त्तव्य।—प्रसवके बाद प्रसूतीको थोड़े दिन बड़ी सावधानीसे रखना चाहिये। प्रसवके दिनसे तीन दिन तक दूध या दूधसागुदाना आदि हलका आहार देना उचित है। प्रसव दिनके बाद बाकी दो दिन दूधभात भी दे सकते हैं। फिर क्रमश सुन्दर पथ्य देना चाहिये। पाच दिन तक स्नान बन्द

द्रव्यका जड, नागदानाकी जड और चितामूल समभाग पीसकर चार आनेभर खिलानेसे जल्दी प्रसव होता है।

मृतसन्तान प्रसव व्यवस्था।—गर्भस्थ शिशु गर्भमें मरजानेपर प्राय. प्रसव नही होता, अकसर शस्त्रकी जरूरत पडती है। गर्भिणीके शिरमें सेहुडका दूध देनेसे मरा हुआ सन्तान प्रसव होता है। पीपल और बच पानीमें पीसकर रेंडीका तेल मिलाकर नाभिमें लेप करनेसे तथा नागदानेकी जड और चितामूल सम-भाग पीसकर चार आनेभर माला सेवन करनेसे मृत सन्तान प्रसव होता है।

फूल या खेरी गिरनेका उपाय।—उचित समयमें खेरी न गिरनेसे तितलौकी, सापकी केंचुली, घीयालता, सरसों और कडुवा तेल, यह सब द्रव्यका धूप योनिमें देना। अङ्गुलिमें केश लपेटकर कण्ठमें घिसना। ईशलाङ्गलाकी जड पीसकर लेप करनेसे भी खेरी गिर पडती है।

मक्कन्द शूल चिकित्सा।—प्रसवके बाद वस्ति और शिरमें अत्यन्त वेदना होनेसे उसको मक्कन्द शूल कहते हैं। घी या गरम पानीके साथ जवाक्षार सेवन करानेसे, किम्बा पीपल, पीपलामूल, चाभ, तथा शोंठ, मिरच, गजपिप्पली, सम्भालुकी बीज, एलाइची, अजवाईन, इन्द्रयव, अकवन, जीरा, सर्षप, बडोनीम, हींग, बभनेठी, मूर्व्वा, अतीस, बच, विडङ्ग और कुटकी, यह सब द्रव्यका काढा नमक मिलाकर पीनेसे मक्कन्द शूल दूर होता।

वायुप्रकोप शान्तिका उपाय।—गर्भावस्थामें थोडाभी वायुका प्रकोप होनेसे गर्भिणीका शरीर और गर्भ सूखजाता है अच्छी तरह बढने नही पाता। इसमें मुलेठी और गाम्भारी फल दूधमें औटाकर पिलाना अथवा गुरिच, विदारीकन्द, असगन्ध,

अनन्तमूल, सतावर, पिठवन, माषपर्णी, जीवन्ती और मुलेठी, यह सब द्रव्य यथाविधि घीमें पकाकर सेवन कराना।

पथ्यापथ्य और कर्त्तव्य कर्म्म।—गर्भावस्थामें कई एक साधारण नियम पालन करना गर्भिणी मात्रका कर्त्तव्य है। हलका अथवा पुष्टिकर और रुचिकर आहार करना। अधिक परिश्रम या एकदम परिश्रम त्याग करना नही चाहिये। जिस कामसे श्वास प्रश्वास देरतक बन्द रखना पडे, अधिक वेग देना हो किम्बा पेडू दबे ऐसा काम करना नही चाहिये। पैदल या तेज सवारीमें अधिक दूर तक जाना भी अनिष्टकारक है। सर्व्वदा प्रसन्नचित्त रहना चाहिये, भय, शोक और चिन्ता रात्रि जागरण आदिसे मनमें दुख होनेसे सन्तानका अनिष्ट होता है। उपवास, जागरण, दिवानिद्रा, अग्नि सन्ताप, मैथुन, भारवहन कठिन शय्यामें शयन, ऊचे स्थानपर चढना और मूत्रादि वेग धारण कदापि उचित नही है।

गर्भावस्थामें जो रोग उत्पन्न हो पथ्यापथ्य भी उसी रोगका पालन करना चाहिये। उपवासवाले रोगमें हलका आहार देना-पर उपवास कराना अच्छा नही।

गर्भ या गर्भिणी सूख जानेसे घी, दूध, हसका अण्डा और छाग, कुक्कुट आदिका मास आदि पुष्टिकर पथ्य भोजन करनेको देना।

प्रसवान्तका कर्त्तव्य।—प्रसवके बाद प्रसूतीको थोडे दिन बडी सावधानीसे रखना चाहिये। प्रसवके दिनसे तीन दिन तक दूध या दूधसाबुदाना आदि हलका आहार देना उचित है। प्रसव दिनके बाद बाको दो दिन दूधभात भी दे सकते हैं। फिर क्रमश सुन्दर पथ्य देना चाहिये। पाच दिन तक स्नान बन्द

रखना, तथा १५।१६ दिन तक गरम पानीसे स्नान कराना चाहिये। अग्निसन्ताप सेवन और शोठ, गोलमिरच, अदरख, काला जीरा प्रभृति द्रव्य पीसकर अछवानी देनेका नियम जो इस देशमें है वह विशेष उपकारी है। प्रसूतीका मैला कपड़ा और बिछौना सर्व्वदा बदलना चाहिये।

सूतिकारोग।

कारणवेधज रोग।—प्रसूता स्त्रीके अनुचित आहार विहारादिसे अर्थात् शरीरमें अधिक हवा और ओस लगाना, शैत्यक्रिया अपक्व द्रव्य भोजन, अजीर्णमें भोजन, कम भूखमें गुरुपाक द्रव्य भोजन आदि कारणोंसे नानाप्रकार सूतिका रोग पैदा होता है। खराब सूतिकागृह भी सूतिका रोगका एक प्रधान कारण है। ज्वर, शोथ, अग्निमान्द्य, अतिसार, ग्रहणी, शूल, आनाह, बलक्षय, कास, पिपासा, गात्रभार, गात्रवेदना, नाक मुखसे कफस्राव आदि रोग जो प्रसवके बाद उत्पन्न होता है, उसको सूतिका रोग कहते है।

सूतिकागृह निर्म्माण चिकित्साका अङ्ग है।—स्त्रियोंको सूतिकारोगसे बचानेके लिये पहिले सूतिकागृह स्थिर करना विशेष आवश्यक है। मकान के कोनेमें एक छोटीसी अन्धियारी कोठरी प्रसवके लिये निर्दिष्ट करना उचित नहीं है, ऐसे घरमें हवा धूप न जानेसे तथा आगका धूआ और गरमी, बालकका मलमूत्र और २।३ आदमीके श्वास प्रश्वास आदिसे उस सङ्कीर्ण

घरकी हवा खराब हो प्रसूती और बालक दोनोको नानाप्रकारका रोग उत्पन्न होता है। साफ, सूखा कमसे कम ७।८ हात लम्बा, ५।६ हाथ चौडा और ५।६ हात ऊंचा, उत्तर द्वारी या दक्षिणद्वारी आमने सामने दो दो जङ्गलाविशिष्ट सूतिकागृह स्थिर करना, जिसकी कुरसी जमीनसे हाथभर ऊंची और मजबूत होना चाहिये, दरवाजा और जङ्गलेमें किवाड लगा रहे, ऐसा घर न बनसके तो मकानमें जो कोठरी साफ सुथरी और हवादार हो वही स्थिर करना चाहिये। घरमें धूआ न हो ऐसे अङ्गारेकी बोरसी घरमें रखना। प्रसूतीके सोने आदिके लिये एक खटिया रखना चाहिये नहीतो खड या पोवाल रखकर उसके उपर बिछौना करना। बालकका मलमूत्र सर्व्वदा बाहर फेंकना। रातको जाडेके दिनोंमें जङ्गला बन्द रखना तथा दूसरे ऋतु मे खुला रखना चाहिये। यह सब नियम पालन करनेसे सूतिका रोगकी आशङ्का कम रहती है।

सूतिका ज्वर चिकित्सा।—सूतिका ज्वरमें सूतिका-दशमूल या महचरादि काढा सूतिकारिरस, वृहत् सूतिकाविनोद और ज्वर रोगोक्त पुटपक्व विषम ज्वरान्तक लौह आदि कई औषध प्रयोग करना। गात्रवेदना शान्तिके लिये दशमूलका काढा और और लक्ष्मीविलास रस आदि औषध प्रयोग करना उचित है। कास शान्तिके लिये सूतिकान्त रस और कास रोगोक्त शृङ्गाराभ्र आदि कई औषध प्रयोग करना। अतिसार और ग्रहणी आदि रोगमें अतिसारादि रोगोक्त कई औषध और जीरकादिमोदक, जीरकाद्यरिष्ट, सौभाग्यशुण्ठी मोदक प्रयोग करना। सूतिका रोगमें जिस रोगका आधिक्य दिखाई दे वही वही रोग नाशक औषध विचार कर प्रयोग करना।

रखना, तथा १५।१६ दिन तक गरम पानीसे स्नान कराना चाहिये। अग्निसन्ताप सेवन और शोंठ, गोलमिरच, अदरख, काला जीरा प्रभृति द्रव्य पीसकर अछवानी देनेका नियम जो इस देशमें है वह विशेष उपकारी है। प्रसूतीका मैला कपड़ा और बिछौना सर्व्वदा बदलना चाहिये।

सूतिकारोग।

कारणविधज रोग।—प्रसूता स्त्रीके अनुचित आहार विहारादिसे अर्थात् शरीरमें अधिक हवा और ओस लगाना, शैत्यक्रिया व्यापक द्रव्य भोजन, अजीर्णमें भोजन, कम भूखमें गुरुपाक द्रव्य भोजन आदि कारणोंसे नानाप्रकार सूतिका रोग पैदा होता है। खराब सूतिकागृह भी सूतिका रोगका एक प्रधान कारण है। ज्वर, शोथ, अग्निमान्द्य, अतिसार, ग्रहणी, शूल, आनाह, बलक्षय, कास, पिपासा, गात्रभार, गात्रवेदना, नाक मुखसे कफस्राव आदि रोग जो प्रसवके बाद उत्पन्न होता है, उसको सूतिका रोग कहते है।

सूतिकागृह निर्म्माण चिकित्साका अङ्ग है।—स्त्रियोंको सूतिकारोगसे बचानेके लिये पहिले सूतिकागृह स्थिर करना विशेष आवश्यक है। मकान के कोनेमें एक छोटीसी अन्धियाली कोठरी प्रसवके लिये निर्दिष्ट करना उचित नहीं है, ऐसे घरमें हवा धूप न जानेसे तथा आगका धूआ और गरमी, बालकका मलमूत्र और २।३ आदमीके श्वास प्रश्वास आदिसे उस सङ्कीर्ण

घरकी हवा खराब हो प्रसूती और बालक दोनोंको नानाप्रकारका रोग उत्पन्न होता है। साफ, सूखा कमसे कम ७।८ हात लम्बा, ५।६ हाथ चोड़ा और ५।६ हात ऊंचा, उत्तर द्वारो या दक्षिणद्वारी आमने सामने दो दो जङ्गलाविशिष्ट सूतिकागृह स्थिर करना, जिसकी कुरसी जमीनसे हाथभर ऊंचो और मजबूत होना चाहिये, दरवाजा और जङ्गलेंमें किवाड़ लगा रहे, ऐसा घर न बनसके तो मकानमें जो कोठरी साफ सुथरी और हवादार हो वही स्थिर करना चाहिये। घरमें धूआ न हो ऐसे अङ्गारेकी बोरसी घरमें रखना। प्रसूतीके सोने आदिके लिये एक खटिया रखना चाहिये नहीतो खड़ या पोवाल रखकर उसके उपर बिछौना करना। बालकका मलमूत्र सर्व्वदा बाहर फेंकना। रातको जाड़ेके दिनोंमें जङ्गला बन्द रखना तथा दूसरे ऋतु में खुला रखना चाहिये। यह सब नियम पालन करनेसे सूतिका रोगकी आशङ्का कम रहती है।

सूतिका ज्वर चिकित्सा।—सूतिका ज्वरमें सूतिकादशमूल या महचरादि काढ़ा सूतिकारिष्ट, वृहत् सूतिकाविनोद और ज्वर रोगोक्त पुटपक्व विषम ज्वरान्तक लौह आदि कई औषध प्रयोग करना। गात्रवेदना शान्तिके लिये दशमूलका काढ़ा और और लक्ष्मीविलास रस आदि औषध प्रयोग करना उचित है। कास शान्तिके लिये सूतिकान्त रस और कास रोगोक्त शृङ्गाराभ्र आदि कई औषध प्रयोग करना। अतिसार और ग्रहणी आदि रोगमें अतिसारादि रोगोक्त कई औषध और जीरकादिमोदक, जीरकाद्यरिष्ट, सौभाग्यशुण्ठो मोदक प्रयोग करना। सूतिका रोगमें जिस रोगका आधिक्य दिखाई दे वही वही रोग नाशक औषध विचार कर प्रयोग करना।

रखना, तथा १५।१६ दिन तक गरम पानीसे स्नान कराना चाहिये। अग्निसन्ताप सेवन और शोठ, गोलमिरच, अदरख, काला जीरा प्रभृति द्रव्य पीसकर अछवानी देनेका नियम जो इस देशमें है वह विशेष उपकारी है। प्रसूतीका मैला कपडा और बिछौना सर्व्वदा बदलना चाहिये।

सूतिकारोग।

कारणविधज रोग।—प्रसूता स्त्रीके अनुचित आहार विहारादिसे अर्थात् शरीरमें अधिक हवा और ओस लगाना, शैत्यक्रिया अपक्व द्रव्य भोजन, अजीर्णमें भोजन, कम भूखमें गुरुपाक द्रव्य भोजन आदि कारणोंसे नानाप्रकार सूतिका रोग पैदा होता है। खराब सूतिकागृह भी सूतिका रोगका एक प्रधान कारण है। ज्वर, शोथ, अग्निमान्द्य, अतिसार, ग्रहणी, शूल, आनाह, वलक्षय, कास, पिपासा, गात्रभार, गात्रवेदना, नाक मुखसे कफस्राव आदि रोग जो प्रसवके बाद उत्पन्न होता है, उसको सूतिका रोग कहते है।

सूतिकागृह निर्म्माण चिकित्साका अङ्ग है।—स्त्रियोंको सूतिकारोगसे बचानेके लिये पहिले सूतिकागृह स्थिर करना विशेष आवश्यक है। मकान के कोनेमें एक छोटीसी अन्धियाली कोठरी प्रसवके लिये निर्दिष्ट करना उचित नही है, ऐसे घरमें हवा धूप न जानेसे तथा आगका धूआ और गरमी, बालकका मलमूत्र और २।३ आदमीके श्वास प्रश्वास आदिसे उस सङ्कीर्ण

पानीमें डूब जाता है। ऐसही या त्रिदोषज मिले हुए दो या तीन दोषके लक्षण मालूम हो तो त्रिदोषज स्थिर करना। यही दूध पीनेमें बालको भी नानाप्रकार रोग उत्पन्न होता है। जो दूध पानीमें डालनेसे मिल जाय तथा पाण्डुवर्ण, मधुर रस और निर्मल वही दूध निर्दोष है, बालक को वही दूध पान करनेको देना चाहिये।

थनैलको चिकित्सा।—थनैल रोगमें स्तनमें शोथ होतेही दूध गार डालना। जोंक लगाना राखालशशाकी जड या हल्दी, धतूरेका पत्ता एकत्र पीसकर लेप करना। विद्रधि और व्रण रोगमें जो सब योगादि लिख आए है वही सब योग इसमें भी प्रयोग करना। पकजानेपर शस्त्रप्रयोग या औषध से पीप आदि निकाल कर व्रणरोगको तरह चिकित्सा करना।

दूषित स्तन्य चिकित्सा।—दूध वायुकर्त्तृक दूषित होनेसे दशमूलका काढा पिलाना पित्तदूषित स्तनमें गुरिच, शतमूली, परवरका पत्ता, नोमका पत्ता, लालचन्दन, और अनन्तमूल, यह सब द्रव्यका काढा पिलाना। कफदूषित स्तनमें त्रिफला, मोथा, चिरायता, कुटकी, बभनेठी, देवदारु, वच और अकवन, यह सब द्रव्यका काढा पिलाना द्विदोषज या त्रिदोषज स्तन्यदुष्टिमें ऐसही मिले हुए द्रव्योंका काढा पिलाना।

शुष्क स्तन्य चिकित्सा।—स्तनदूध सूख जानेपर वनकपास की जड और इक्षुमूल समभाग काजोमें पीसकर आधा तोला मात्रा सेवन कराना अथवा हल्दी, दारुहल्दी, चकवड, इन्द्र यव और मुलेठी यह सब द्रव्यका काढा किम्बा वच, मोथा, अतीस, देवदारु, सोंठ, सतावर और अनन्तमूल यह सब द्रव्यका काढा पिलाना।

पथ्यापथ्य ।—सूतिका रोगमे रोग विशेषके अनुसार पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये। साधारण सूतिकावस्थामें पुराने चावलका भात, मसूर उरदका जूस, बैगन, नरम मूली, गुल्लर, परवल और कच्चे केलेको तरकारी, अनार और अग्निदीपक तथा वातश्लेष्म नाशक द्रव्य आहार और वातश्लेष्मनाशक क्रिया समूह भी पालन करना उचित है।

निषिद्ध कर्म्म ।—गुरुपाक और तीव्र वीर्य्य द्रव्य भोजन, अग्निसन्ताप, परिश्रम, शीतल सेवा और मैथुन सूतिका रोगमें मना है। प्रसवके बाद ३।४ मास तक प्रसूतीको सावधानीसे रखना चाहिये।

—•—

स्तनरोग और स्तन्यदुष्टि ।

थनैल ।—अपने अपने प्रकोप कारणके अनुसार वातादि दोषत्रय कुपित हो गर्भवती या प्रसूता स्त्रीके स्तनमे आश्रय लेनेसे नानाप्रकार विद्रधि (फोडा) उत्पन्न होता है। चलित भाषामें इसको थनैल कहते है।

दूषित स्तनलक्षण ।—अनुचित आहार विहारादि कारणोसे वातादि दोष समूह स्तनदूधको दूषित करनेसे उसको स्तन्यदुष्टि कहते हे। वायुदूषित स्तन्य कषाय रसविशिष्ट और पानीमें डालनेसे पानीमे न मिलकर उपर तैरता हे। पित्तदूषित स्तन्य कटु, अम्ल या लवणास्वाद और पीतवर्ण रेखायुक्त होता है। श्लेष्मदूषित स्तन्य गाढा और लसदार यह

पानीमें डूब जाता है। ऐसही या त्रिदोषज मिले हुए दो या तीन दोषके लक्षण मालूम हो तो त्रिदोषज स्थिर करना। यही दूध पीनेमें बालको भी नानाप्रकार रोग उत्पन्न होता है। जो दूध पानीमें डालनेसे मिल जाय तथा पाण्डुवर्ण, मधुर रस और निर्म्मल वही दूध निर्दोष है, बालक को वही दूध पान करनेको देना चाहिये।

थनैलको चिकित्सा।—थनैल रोगमें स्तनमें शोथ होतेही दूध गार डालना। जोंक लगाना राखालशशाकी जड या हल्दी, धतूरेका पत्ता एकत्र पीसकर लेप करना। विद्रधि और व्रण रोगमें जो सब योगादि लिख आए है वही सब योग इसमें भी प्रयोग करना। पकजानेपर शस्त्रप्रयोग या औषध से पीप आदि निकाल कर व्रणरोगको तरह चिकित्सा करना।

दूषित स्तन्य चिकित्सा।—दूध वायुकर्तृक दूषित होनेसे दशमूलका काढा पिलाना पित्तदूषित स्तनमें गुरिच, शतमूली, परवरका पत्ता, नीमका पत्ता, लालचन्दन, और अनन्तमूल, यह सब द्रव्यका काढा पिलाना। कफदूषित स्तनमें त्रिफला, मोथा, चिरायता, कुटकी, बभनेठी, देवदारु, बच और अकवन, यह सब द्रव्यका काढा पिलाना द्विदोषज या त्रिदोषज स्तन्यदुष्टिमें ऐसही मिले हुए द्रव्योंका काढा पिलाना।

शुष्क स्तन्य चिकित्सा।—स्तनदूध सूख जानेपर बनकपास की जड और इक्षुमूल समभाग काजीमें पीसकर आधा तोला मात्रा सेवन कराना अथवा हल्दी, दारुहल्दी, चकवड, इन्द्र यव और सुलेठी यह सब द्रव्यका काढा किम्बा बच, मोथा, अतीस, देवदारु, शोंठ, सतावर और अनन्तमूल यह सब द्रव्यका काढा पिलाना।

पथ्यापथ्य ।—स्तनरोगमें विद्रधि रोगकी तरह पथ्यापथ्य पालन करना चाहिये। स्तनदुष्टिमें दोषके आधिक्यानुसार वही वही दोषनाशक और सूतिका रोगका साधारण पथ्यापथ्य प्रतिपालन करना चाहिये ।

—०—

बालरोग ।

—◌—

बालरोगदूषित स्तन्यज ।—प्रसूता या धात्रीका स्तन-दूषित होनेसे, वही दूषित स्तन पानकर बच्चोंको नानाप्रकारका रोग पैदा होता है। वातदुष्ट स्तन्यपान करनेसे बालक वातरोगाक्रान्त, क्षीणस्वर और क्षशाङ्ग होता है, तथा उसके मलमूत्र और अधोवायु निकलनेमें कष्ट होता है। पित्तदुष्ट स्तन्यपान करनेसे, पसीना, मलभेद, तृष्णा, गात्रसन्ताप, कामला और अन्यान्य पित्तजन्य रोग उत्पन्न होता है। कफदुष्ट स्तन्यपान करनेसे लालास्राव, निद्रा, जडता, शूल, दूध के, आंखे सफेद और विविध श्लेष्मजन्य रोग पैदा होता है। दो या तीन दोषसे स्तन्य दूषित होनेसे दो या तीन दोषके लक्षण मिले हुए मालूम होता है।

कुकूनक ।—दूषित दूध पान, सूतिकागृहका दोष, ओस लगाना आदि कारणोंसे बच्चोंके आंखको वरौनोंमें कुकूनक नामक रोग पैदा होता है। इससे आंखमें कण्डु, बार बार आंखसे जल-स्राव, बालक कपाल आंख और नाक घिसता रहता है तथा धूपको तरफ नहीं देखता और न आंख खोलता है।

तालुकराटक।—बच्चोंके तालुका कफ दूषित होनेसे तालुकण्टक नामक रोग पैदा होता है। इसमे तालु बैठजाता है, स्तन्य पानमें द्वेष, स्तन्यपान करनेमें कष्टबोध होना, पिपासा, मलभेद, आंख कण्ठ और मुखमें दर्द, दूध कै करना, और गरदन गिर पडना आदि लक्षण प्रकाशित होता है।

पारिगर्भिक।—बालक गर्भवती माता या धात्रीका स्तनदूध अधिक पावेतो पारिगर्भिक नामक रोग पैदा होता है। इसमें कास, अग्निमान्द्य, वमन, तन्द्रा, कृशता, अरुचि, भ्रम, उदर वृद्धि यह्नो सब लक्षित होता है।

दन्तोद्गम रोग।—पहिले पहल दांत निकलतोवक्त बहुतेरे बालकको ज्वर, उदरामय, वमन, वदन तोडना, शिरोवेदना, नेत्रराग आदि विविध रोग दिखाई देता है।

दूध फेकना।—बच्चे दूध पानकर कैकर दे तो उसको चलित भाषामें 'दूध फेकना" कहते है। पहिले इसमें फटा दूध या दहोको तरह दूध तथा खट्टी बदबू रहता है। थोडे दिन बाद क्रमश पानीको तरह पतला कै होता है और जो खाता है तुरन्त वह्नो निकल जाता है, पेटफूलना और पेट बोलता है, दस्त साफ नहो अथवा कभो कभो अधिक दस्त होता है। शरीर चोण, वर्ण पाण्डु और स्वभाव जिद्दो हो जाता है तथा शरीर ठण्ढा और चमडा रुखा होता है।

तडकाके लक्षण।—बालकों को "तडका" नामक एक प्रकार रोग होता है। उसका साधारण लक्षण मूर्च्छा और हाथ पैरकी ऐठन है। नाना कारणोंमें यह रोग पैदा होता है। ज्वर या और कोइ कारणसे शरीरका उत्ताप बढनेसे, डर जानेसे,

शरीरमें कहो चोट लगनेसे या दद होनेसे, फोडा या क्रिमि होने और बहुत दिन तक बिमार रहना आदि कारणोंसे बालक दुर्ब्बल होजानेपर तडका रोग पैदा होता है। तडका आरम्भ होतेही बालक बेहोश, मुखका रग सफेद हाथकी अङ्गुली मुट्ठीबन्धी, पैरकी अङ्गुली टेढी और हाथ पैर ऐठता रहना है। एक मिनटसे पाच मिनट तक यह रहता है। बहुतेरोको ऐसही बार बार होता रहता है। कई जगह तडका होनेसे पहिले कई एक पूर्व्वरूप अनुभव होता है, नींदमें चमक उठना, आखे टेढी होना और अङ्गुलीसिकुडजाना आदि तडका का यह पूर्व्वरूप है।

क्रिमि।—बालकके पेटमे छोटे छोटे कोडे पैदा होता है, मलद्वारमे खुजलाहट और नाकमें सुरसुराहट होतोहैं किसी किसी वख्त बालक नाक मलते मलते रो उठता है। क्रिमि बटी हानेसे बालक सोते सोते चमक उठता है, दात पिसता है और मुखमे दुर्गन्ध आती है, कभी कभी चिपकता हुआ सबुज रग और तेल-मिला दस्त होता है।

धनुष्टङ्कार निदान।—कुत्सित सूतिकागृहमें साफ हवाके अभावसे आद्रेता दुर्गन्ध आदि कारणोसे और बालकको तेल लगाकर अधिक सेंकना और बालकके शरीरमें ओस लगनेसे धनु-ष्टङ्कार नामक रोग पैदा होता है। जन्मके बाद ८ दिनके भीतर यह रोग दिखाई देता है। इसमें पहिले बालकका चहुआ अटक जाता है फिर पाठको रोढ कठिन और टेढी हाता है, हाथ पेर कडा और ऐठता है। हाथ परका अङ्गुली टेढी, मुख टेढा और बालक को छूने या हिलानेसे पाडा बढती है, इस रोगसे ऐसही कोई बालक आराम होता है।

ग्रहपीड़ा।—बालकके शरीरमें विविध ग्रहावेश होना आयुर्व्वेद शास्त्रमें स्वीकृत है। बालक ग्रहसे पीड़ित होने पर कभी उद्विग्न, कभी डर, कभी रोना, कभी नख आदिसे जनना धावो या अपना हाथ पैर नोचता है, बार बार फेन वमन और शरीर क्षीण हो जाता है। रातको नींद नहीं आती, आंखे फूल जाती हैं, दस्त पतला होता है, गला बैठ जाता है, बदनसे रक्त और मांसकी बू आती है। यह सब रोगके सिवाय ज्वर और अतिसार आदि अन्यान्य प्राय सब रोग बालक को पैदा होता है।

शिशुचिकित्साकी कठिनता।—बालक किसी प्रकारकी तकलीफ सह नहीं सकता, इससे उसका रोना और पीड़ित स्थानमें बार बार हाथ लगाना आदि चेष्टा और निपुणतासे विचार कर रोगकी परीक्षा करना चाहिये। गलेमें दर्द होनेसे बालक बार बार गलेमें हाथ लगाता है। शिर पीड़ा होनेसे कपालका चमड़ा सिकुड़ जाता है और बालक बार बार शिरमें हाथ लगता है और कान खींचता है। चंगा बालक बार बार रो उठनेसे उसका पेट दर्द करता है जानना। दूध पीनेवाले बच्चेको प्यास लगनेसे वह बार बार जीभ बाहर निकलता है। सर्दी होकर नाक बन्द होनेसे बालक दूध पीती वक्त मुंहसे सांस लेनेके लिये बार बार स्तन छोड़ देता है। तीन चार महीनेतक का बालक रोनेसे उसकी आंखसे पानी नहीं निकलता, फिर निकलता है। तीन चार महीनेसे अधिक उमरके बालक की रोती वक्त आंखसे पानी न निकले तो उसका रोग कठिन जानना। बालकको नाड़ी स्वभावत ही अति द्रुत रहती है, इससे नाड़ी परीक्षासे उसका रोग निर्णय करना नये चिकित्सकके लिये अत्यन्त कष्टकर है। ज्वरा-

दिका परीक्षाके वक्त थर्मामिटर लगानाही अच्छा है। सांस लेते वक्त बालकके नाकका छिद्र बडा होनेसे और नाक हिलनेसे उसको खांसी अति गुरुतर है तथा श्वास फेकनेमें कष्ट होता है जानना। बालकका पेट स्वभावतः ही थोडा मोटा होता है, उससे भी अधिक मोटा होनेसे यकृत् प्लीहा या अजीर्ण की आशङ्का करना उचित है। इसी प्रकार विविध लक्षणसे बालकके रोगकी परीक्षा करना चाहिये।

धात्रीनिर्व्वाचन।—माताका दूध दूषित होनेसे बालक को पिलाना उचित नहीं है। उसके बदले कोई दुग्धवती धात्री (दाई)का दूध पिलाना। धात्रीनिर्व्वाचनमें कई बातोंका विशेष ध्यान रखना चाहिये। धात्रीकी उमर २०से ३२ वर्ष तक होना चाहिये। इससे अधिक या कम उमरकी धात्रीका दूध शुद्ध नहीं होता। धात्रीके शरीरमें किसी तरहका रोग हो तो उसका दूध नहीं पिलाना। जिस बालकके लिये धात्री रखना हो उसी उमरका और मोटा ताजा बालक धात्रीका रहना चाहिये। धात्रीके स्तन द्वय दुग्धपूर्ण और दबानेमें दूध गिर पडे तथा धात्रीका स्वभाव चरित्र निर्दोष और चित्त सन्तुष्ट होना चाहिये, ऐसी धात्री न मिलनेसे अथवा धात्रीका दूध दूषित होनेसे बकरीका दूध किम्वा पानी मिलाकर गायका दूध पिलाना। सौरीके बालकको माताके दूधका अभाव होतो गायके दूधमें उतनही चूनेका पानी मिलाकर पिलाना। इससे पेट फूले तो सौंफ भिंगोया पानी १ तोला एक छटाक दूधमें मिलाकर पिलाना। इसी प्रकार स्तन्य छुडानेसे दूषित स्तनपानजनित रोग क्रमशः दूर होता है। तालु बैठ जानेसे हरीतकी वच और कूठ इसका चूर्ण सहत और स्तनदूधमें मिलाकर पिलाना।

आंख आनेकी चिकित्सा।—बच्चोंको आंख आनेसे या कुकूनक रोग होनेसे गरम पानीकी पतली धार आधा हाथ ऊंचेसे देना और आंख धोना। गरम पानीमें कपड़ा भिगोकर आंखका कीचड़ निकालना। एक रत्ती तूतिया एक छटाक साफ पानीमें मिलाकर एक शीशीमें भरना, यही पानी दिनभरमें २।३ बार आंखमें बूंद बूंद कर डालना। सेवारके रसमें कपड़ा भिगोकर उसका काजल पाड़कर आंखमें लगाना। दारुहल्दी, मोथा और गेरूमिट्टी बकरीके दूधमें पीसकर आंखके बाहर लेप करना।

पारिगर्भिक।—बच्चोंके पारिगर्भिक रोगमें पहिले माताका दूध पिलाना बन्द करना चाहिये। अग्निवृद्धिके लिये अग्निमान्द्य रोगोक्त यमानीपञ्चक, हिङ्गाष्टक चूर्ण आदि मृदुवीर्य्य औषध अल्पमात्रा सेवन कराना। दूधके साथ चूनेका पानी या सौंफका अर्क मिलाकर पिलाना। अतिसार आदि रोग इस अवस्थामें दिखाई दे तो अतिसारोक्त औषध प्रयोग करना। कुमार-कल्याण रस, सेवन करानेसे पारिगर्भिक आदि रोग आराम होता है।

दन्तोद्भेदज रोग चिकित्सा।—दांत निकलनेके वक्त ज्वर, उदरामय आदि पीडामें एकाएकी कोई औषध प्रयोग करना उचित नहीं है। कारण दांत निकल आनेपर सब रोग आपही आप आराम हो जाता है। धवईका फूल, पीपल चूर्ण सहतमें मिलाकर या आंवलेका रस मसूड़ेमें घिसनेसे दांत जल्दी निकलता है। अन्यान्य रोगोंके लिये दवा देनेकी आवश्यकता हो तो दन्तोद्भेदगजान्तक, कुमारकल्याण और पिप्पल्याद्य घृत विचार

दिका परीक्षाके वक्त थर्मामेटर लगानाही अच्छा है। सांस लेती वक्त बालकके नाकका छेद बड़ा होनेसे और नाक हिलनेसे उसको खांसी अति गुरुतर है तथा श्वास फेंकनेमें कष्ट होता है जानना। बालकका पेट स्वभावतः ही थोड़ा मोटा होता है, उससे भी अधिक मोटा होनेसे यकृत् प्लीहा या अजीर्ण की आशङ्का करना उचित है। इसी प्रकार विविध लक्षणसे बालकोंके रोगकी परीक्षा करना चाहिये।

धात्रीनिर्व्वाचन।—माताका दूध दूषित होनेसे बालक को पिलाना उचित नहीं है। उसके बदले कोई दुग्धवती धात्री (दाई)का दूध पिलाना। धात्रीनिर्व्वाचनमें कई बातोंका विशेष ध्यान रखना चाहिये। धात्रीकी उमर २०से ३२ वर्ष तक होना चाहिये। इससे अधिक या कम उमरकी धात्रीका दूध शुद्ध नहीं होता। धात्रीके शरीरमें किसी तरहका रोग हो तो उसका दूध नहीं पिलाना। जिस बालकके लिये धात्री रखना हो उसी उमरका और मोटा ताजा बालक धात्रीका रहना चाहिये। धात्रीके स्तन-द्वय दुग्धपूर्ण और दबानेसे दूध गिर पड़े तथा धात्रीका स्वभाव चरित्र निर्दोष और चित्त सन्तुष्ट होना चाहिये, ऐसी धात्री न मिलनेसे अथवा धात्रीका दूध दूषित होनेसे बकरीका दूध किम्वा पानी मिलाकर गायका दूध पिलाना। सौरीके बालककी माताके दूधका अभाव होतो गायके दूधमें उतनाही चूनेका पानी मिलाकर पिलाना। इससे पेट फूले तो सौंफ भिंगोया पानी १ तोला एक छटाक दूधमें मिलाकर पिलाना। इसी प्रकार स्तन्य छुड़ानेसे दूषित स्तनपानजनित रोग क्रमशः दूर होता है। तालु बैठ जानेसे हरीतकी बच और कूठ इसका चूर्ण सहत और स्तनदूधमें मिलाकर पिलाना।

आंख आनेकी चिकित्सा।—बच्चोंको आख आनेसे या कुकूनक रोग होनेसे गरम पानीकी पतली धार आधा हाथ ऊचेसे देना और आख धोना। गरम पानीमें कपडा भिगोकर आखका कोचड निकालना। एक रत्ती तूतिया एक छटाक साफ पानीमें मिलाकर एक शीशीमें भरना, यही पानी दिनभरमें २।३ बार आखमें बूद बूद कर डालना। सेवारके रसमें कपडा भिगोकर उसका काजल पाडकर आखमें लगाना। दारुहल्दी, मोथा और गेरूमिट्टी बकरीके दूधमें घीसकर आखके बाहर लेप करना।

पारिगर्भिक।—बच्चोंके पारिगर्भिक रोगमें पहिले माताका दूध पिलाना बन्द करना चाहिये। अग्निवृद्धिके लिये अग्निमान्द्य रोगोक्त यमानीपञ्चक, हिङ्गाष्टक चूर्ण आदि मृदुवीर्य्य औषध अल्पमात्रा सेवन कराना। दूधके साथ चूनेका पानी या सौफका अर्क मिलाकर पिलाना। अतिसार आदि रोग इस अवस्थामें दिखाई दे तो अतिसारोक्त औषध प्रयोग करना। कुमार-कल्याण रस, सेवन करानेसे पारिगर्भिक आदि रोग आराम होता है।

दन्तोद्भेदज रोग चिकित्सा।—दात निकलनेके वक्त ज्वर, उदरामय आदि पीडामें एकाएकी कोई औषध प्रयोग करना उचित नही है। कारण दात निकल आनेपर सब रोग आपही आप आराम हो जाता है। धवईका फूल, पीपल चूर्ण सहतमें मिलाकर या आवलेका रस मसूडेमें घिसनेसे दात जल्दी निकलता है। अन्यान्य रोगोंके लिये दवा देनेकी आवश्यकता हो तो दन्तोद्भेदगजान्तक, कुमारकल्याण और पिप्पल्याद्य घृत विचार

कर प्रयोग करना। दांत निकलनेमें अधिक देर होनेसे या तकलीफ अधिक मालूम होनेसे वह स्थान चीर डालना।

दूध फेकनेकी चिकित्सा।—दूध फेकना आराम करनेके लिये दूधमें चूनेका पानी मिलाकर पिलाना। इससे आराम न हो तो दूध बन्दकर मासका शूरुवा पिलाना। हहती और कण्टकारी फलका रस या पीपल, पीपलामूल, चाभ, चितामूल और सोंठ, इन सब द्रव्योंका चूर्ण महत और घीमें मिलाकर थोड़ा थोड़ा चटाना। आम्रकेशी, धानका लावा और सैन्धा नमक इन सबका चूर्ण सहतमें मिलाकर चटानेसे दूध फेकना बन्द होता है। टटका सरसोंका तेल दिनभरसे ३।४ बार पेटपर मालिश करना और एक टुकड़ा फलालेन पेटमें लपेट रखना।

तड़काकी प्रथम चिकित्सा।—तड़का उपस्थित होनेसे पहिले होशमें लानेका उपाय करना चाहिये। कलछी या लोहेकी सलाई आदि गरम कर कपालमें थोड़ा थोड़ा सेंक देना, आंखपर ठण्ढे पानीका छींटा देना, यदि इससे भी होशमें न आवेतो नौसादर और चूना एकत्र मिलाकर बालकके नाकके पास रखना इसके सूंघनेसे भी मूर्च्छा दूर होती है। फिर जिस रोगके कारणसे तड़का हुआ है उसकी तकलीफ दूर करना चाहिये। अतिरिक्त ज्वरसे तड़का होनेपर आंख, मुख, शिर, पीठकीरीढ़ और मस्तकके पीछे ठण्ढे पानीका छींटा देना। तेल और पानी एकत्र मिलाकर सर्व्वाङ्गमें मालिश करना। बालकको प्यास मालूम हो तो भरपूर पानी पीनेको देना। इन सब क्रियाओंसे शरीरका उत्ताप कम हो जानेपर तड़का होनेका डर नहीं रहता। नाताकतीके सबबसे तड़का होनेपर राईका चूर्ण गरम पानीमें मिलाकर उसी पानीमें बालक को ठेहुनातक डुबो रखना। बालक हिलने डोलने

न पावे। इसके बाद मयदा और राईका चूर्ण समभाग थोडे पानीमें मिलाकर पैरके तलवेमें पट्टी लगाना। बगल और हाथ पैरमें सेंक करना। हाथ पैर और छातीमें शोठका चूर्ण मालिश करना। क्रिमि या दूसरे किसी सबबसे तडका होनेपर सहन हो ऐसे गरम पानीमें बालकको गलेतक डवा रखना और आधा हाथ ऊचेसे उसके शिरपर ठण्ढे पानीकी धार देना। ५।६ मिनिट तक ऐसा कर बदन पोछकर सुलादेना।

तडकामें दस्त कराना।—सब प्रकारका तडका आराम होनेपर दूधके साथ थोडा रेंडाका तेल मिलाकर पिलाना चाहिये। तडकाके बार बार हमलेसे बचानेके लिये चौगुने पानी में थोडी मल्लीवना सुरा अभावमें ब्रान्डि मिलाकर बालकको पिलाना चाहिये।

क्रिमिनाशक उपाय।—क्रिमिनाशके लिये भाटपत्ते-का रस या अन्यान्य क्रिमिनाशक औषध प्रयोग करना। क्रिमि छोटो हो तो नमक को पिचकारीसे विशेष उपकार होता है। एक छटाक पानीमें थोडा नमक मिलाकर एक छोटी कांचकी पिचकारीसे बालकके मलद्वारमें देना। पिचकारीके सुखमें तेल लगाकर मलद्वारमें देना चाहिये। पानी तुरन्तही गिर न पडे इससे मलद्वारको २।३ मिनिट अङ्गुठेसे दवा रखना। इसी तरह २।३ दिन पिचकारी देनेसे क्रिमिनाश होती है।

धनुष्टङ्कार चिकित्सा।—धनुष्टङ्कारमें होशमें लानेके लिये तडका रोगोक्त उपाय करना। फिर माताका दूध पिलाना। बालक दूध खीच न सके तो दूध गारकर सोपसे दूध पिलाना। स्तनदूधके अभावमें गोका दूध पिलाना। विरेचक औषध न खा सके तो रेंडाके तेलमें थोडा तार्पिनका तेल मिलाकर पेटमें

मालिश कर उगढा पानी देना। रेंडीका तेल पिलाकर दस्त कराना बहुतही उपकारी है। नींद आनेके लिये नाभिके उपर गांजा या भांग पीसकर पुलटिस बांधना। चौगूनी मृतसञ्जीवनी सुरा या ब्राण्डी पिलानेसे भी नींद आती है। चाहे जैसे हो बालकको सुलाना चाहिये। बालक सुरा पान न करे तो मलद्वारमें पिचकारी देना। गरम पानीसे स्नान और सर्व्वाङ्गमें वायुनाशक कुब्जप्रसारिणी आदि तैल मर्द्दन विशेष उपकारी है।

ग्रहावेशमें कर्त्तव्य।—ग्रहावेश जनित पीडामें ज्योतिष शास्त्रोक्त ग्रहशान्तिका उपाय करना। या मुरामासी, वच, कूठ, शिलाजीत, हलदी, दारुहल्दी, शठी चम्पक, मोथा इन सब द्रव्योंके काढेसे स्नान कराना। इसको "सर्व्वौषधि स्नान" कहते है। अष्टमङ्गलघृत पान करानेसे भी ग्रहावेशको शान्ति होती है।

बालककी ज्वर चिकित्सा।—बालकके ज्वरमें भद्रमुस्तादि क्वाथ, रामेश्वर रस, बालरोगान्तक रस और ज्वररोगोक्त अन्यान्य मृदुवीर्य्य औषध उपयुक्त मात्रासे सेवन कराना। ज्वरातिसार रोगमें धातक्यादि और बालचतुर्भद्रका चूर्ण सेवन कराना चाहिये। अतिसारमें वराहक्रान्ता, धवईका फूल और पद्मकेशर इसके कल्कका यवागू बनाकर सेवन करना। बकरीका दूध और जामुनके छालका रस समान भाग मिलाकर पिलाना। अथवा बेलका गिरी, इन्द्रयव बाला, मोचरस और मोथा, यह सब द्रव्य मिलाकर एक तोला, एक पाव बकरीका दूध और एक सेर पानीके साथ औटाना, दूध बाकी रहनेपर छानकर पिलाना। इससे ग्रहणी रोग भी आराम होता है। प्रवाहिका अर्थात् आमाशय रोगमें धानकी लावाका चूर्ण मुलेठीका चूर्ण, चीनी और मधु यह सब द्रव्य अरवे चावलके धोवनके साथ सेवन कराना।

सफेद जीरा और राल्का चूर्ण गुडके साथ सेवन कराना। ग्रहणी रोगको शान्तिके लिये मिरच एक भाग, शोठ २ भाग और कुरेया को छाल ४ भाग, इन सब द्रव्योंका चूर्ण गुड और मट्ठेके साथ सेवन कराना। अतिसारनाशक अन्यान्य औषध भी ग्रहणी रोगमें प्रयोग करना। बालकुटजावलेह और बालचाङ्गेरी घृत नामक औषध पुराना अतिसार, रक्तातिसार और ग्रहणीरोगमें विशेष उपकारो है। बेलकी गिरी और आमको गुठलीकी गूदेके काढेके साथ धानके लावाका चूर्ण और चीनी मिलाकर सेवन करानेसे भेद वमन दूर होता है। बेर, आमरूल, काकमाची और कायफ का पत्ता पीसकर मस्तकमें लेप करनेसे भी बच्चोंका भेद वमन आराम होता है। आनाह और वातिक शूलरोगमें सैन्धव, बेलकी गिरी, इलायची, हींग और बभनेठी, इन सबका चूर्ण घीके साथ लेहन या पानीके साथ पान कराना। तृष्णारोगमें अनारबीज, जीरा और नागेश्वर इन सबका चूर्ण चीनी और सहतके साथ चटाना। हुचकी होनेसे गेरूमिट्टीका चूर्ण सहतके साथ चटाना चितामूल, शोठ, दन्तीमूल और गोरचचाकुला, इन सब द्रव्यका चूर्ण गरम पानीके साथ सेवन कराना, अथवा द्राक्षा, जवासा हरीतकी और पीपल इन सबका चूर्ण घी और सहतके साथ मिलाकर चटानेसे हिक्का, श्वास और कासरोग आराम होता है। बृहतीफल, कण्टकारीफल और पीपल, प्रत्येकका समभाग चूर्ण सहतके साथ चटाना। कुठ, अतीस, काकडाशिङ्गी, पीपल और जवासा, इन सबका चूर्ण सहतके साथ चटानेसे सब प्रकारकी खांसी आराम होती है। कण्टकारीका रस और काढेमें मकरध्वज सेवन करानेसे कास और तत्संयुक्त ज्वर भी आराम होता है। कण्टकारीघृत सेवन करानेसे भी कास, श्वास आदि पीडामें विशेष

मालिश कर ठण्ढा पानी देना। रेंडीका तैल पिलाकर दस्त कराना बहुतही उपकारी है। नींद आनेके लिये नाभिके उपर गांजा या भांग पीसकर पुलटिस बांधना। चौगुनी मृतसञ्जीवनी सुरा या ब्राण्डी पिलानेसे भी नींद आती है। चाहे जैसे हो बालकको सुलाना चाहिये। बालक सुरा पान न करे तो मलद्वारमें पिचकारी देना। गरम पानीसे स्नान और सर्व्वाङ्गमें वायुनाशक कुब्जप्रसारिणी आदि तैल मर्द्दन विशेष उपकारी है।

ग्रहावेशमें कर्त्तव्य।—ग्रहावेश जनित पीड़ामें ज्योतिष शास्त्रोक्त ग्रहशान्तिका उपाय करना। या सुरामांसी, वच, कूठ, शिलाजीत, हल्दी, दारुहल्दी, शठी चम्पक, मोथा इन सब द्रव्योंके काढ़ेसे स्नान कराना। इसको "सर्व्वौषधि स्नान" कहते है। अष्टमङ्गलघृत पान करानेसे भी ग्रहावेशकी शान्ति होती है।

बालककी ज्वर चिकित्सा।—बालकके ज्वरमें भद्र-मुस्तादि क्वाथ, रामेश्वर रस, बालरोगान्तक रस और ज्वररोगोक्त अन्यान्य मृदुवीर्य्य औषध उपयुक्त मात्रासे सेवन कराना। ज्वराति-सार रोगमें धातक्यादि और बाल्चतुर्भद्रका चूर्ण सेवन कराना चाहिये। अतिसारमें वराहक्रान्ता, धवईका फूल और पद्मकेशर इसके कल्कका यवागू बनाकर सेवन करना। बकरीका दूध और जामुनके छालका रस समान भाग मिलाकर पिलाना। अथवा बेलकी गिरी, इन्द्रयव, बाला, मोचरस और मोथा, यह सब द्रव्य मिलाकर एक तोला, एक पाव बकरीका दूध और एक सेर पानीके साथ औटाना, दूध बाकी रहनेपर छानकर पिलाना। इससे ग्रहणी रोग भी आराम होता है। प्रवाहिका अर्थात् आमा-शय रोगमें धानके लावाका चूर्ण मुलेठीका चूर्ण, चीनी और मधु यह सब द्रव्य अर्वे चावलके धोवनके साथ सेवन कराना।

वैद्यक-शिक्षा।

द्वितीय और तृतीय खण्ड।

परिभाषा।

परिभाषा।—आयुर्वेद शास्त्रोक्त औषधादि प्रस्तुत और प्रयोग करनेको प्रणाली कई एक साधारण नियमोंके वशवर्त्ती है। जिसमे विस्तृत रूपसे लिखा जाय उसको परिभाषा कहते हैं। यहा परिभाषाध्यायके यावतीय जानने लायक विषय विस्तृत रूपसे आलोचित होता है।

परिमाण विधि।—३ सर्षपका एक यव। ३ यव या ४ धानका १ रत्ती। ६ रत्तीका एक आना। १० रत्ती का एक माषा। (सुश्रुतके मतसे ५ रत्तीका एक माषा होता है) ४ माषाका १ शाण (आधा तोला) २ शाणका १ कोल (एक तोला) २ कोलका १ कर्ष (दो तोला)। २ कर्षको एक शुक्ति (चार तोला) २ शुक्तिका १ एक पल (आठ तोला)। २ पलका एक प्रसृति (एक पाव)। २ प्रसृतिका एक अञ्जली या कुडव (आधा सेर)। २ कुडवका एक शराव (एक सेर)। २ शरावका एक प्रस्थ। ४ प्रस्थका एक आढक (८ सेर)। ४ आढक का एक द्रोण (३२ सेर)। दो द्रोणका एक कुम्भ (६४ सेर)। १०० पलका एक तुला (१२॥ सेर)। २००० पलका एक भार। २ कुम्भका एक द्रोणी या गोणी (३ मन ८ सेर)। ४ गोणीका एक खारी (१२ मन ३२ सेर)।

चूनेका पानी मिलाना। इसके बाद चूनेका पानी मिलानेकी जरूरत नहीं रहती है।

आवश्यकीय बातें।—प्रथम दो महीने तक दिनको ४ बार और रातको दो बार दूध पिलाना। अनियमित रूपसे बार बार दूध पिलाना उचित नहीं है। बालक अपनी इच्छासे जितना पीवे उतनाही पिलाना चाहिये जोरकर पिलानेसे नुकसान हो सकता है। दो मासकी उमरके बाद दिनको चार बार और रातको एक दफे दूध पिलाना। ६।७ मासकी अवस्थामें अर्थात् सामनेका दो दांत निकलने पर दूधके सिवाय और भी हलका आहार थोडा थोडा देना चाहिये। दूध साबूदाना मोहनभोग सहने पर थोडा थोडा खिलाना चाहिये। फिर दूध भात या खीर थोडा देना उचित है। दो वर्षकी उमर न होनेतक भात या रोटी खानेको देना उचित नहीं है।

शिशुचर्य्या।—बालकके सोनेका घर साफ और लम्बा चौडा जिसमें अच्छी हवा प्रतिवाहित हो सके स्थिर करना चाहिये। जाडा और बरसातमें रातको घरका जंगला बन्द रखना तथा बालकको कुरता पहिराना, दुसरे मौसममें आवश्यक नहीहै। कुरता ढीला रखना चाहिये। सहनेपर ठण्ढे पानीसे स्नान कराना चाहिये ३।४ वर्षकी उमर तक दिनको सोने देना उचित है। अपने आपसे चलना सीखनेसे पहिले जोर कर नही चलाना इससे अङ्ग विकृत होनेको आशङ्का है। धमका कर या भकाऊ आदि बहुत नामसे डराना उचित नही है। अकारण खेलाना, या अधिक कुदाना मना है। खेलनेके उपयुक्त उमर तक खेलने देना।

हरिद्रा, मुक्ताके अभावमें सीपका चूर्ण, हीराके अभावमें चुन्नी या कौडीका भस्म, स्वर्ण और रौप्यके अभावमें लौहभस्म, पुष्कर-मूलके अभावमें कूठ, रास्नाके अभावमें बाटरी जडी रसाञ्जनके अभावमें दारुहल्दीका काढा, पुष्पके अभावमें नरम फल, मेदके अभावमें असगन्ध, महामेदके अभावमें अनन्तमूल, जीवकके अभावमें गुरिच, ऋषभकके बदलेमें विदारीकन्द, ऋद्धिके बदले में बरियारा, वृद्धिके बदलेमें गोरखचाकुला, काकोली और क्षीर-काकोलीके अभावमें शतावर, रोहितक छालके बदलेमें नीमकी छाल, कस्तूरीके बदलेमें खटाशी और अन्यान्य दूधके अभावमें गायका दूध लेना चाहिये। इन सब द्रव्योंके सिवाय और किसी द्रव्यके अभावमें उस द्रव्योंके समान गुणवाला दूसरा द्रव्य ग्रहण करना चाहिये। भिलावा असह्य होनेसे उसके बदलेमें लालचन्दन देना।

काढा बनानेकी विधि।—काढेमें जितनी दवायें हो वह सब समभाग मिलाकर दो तोले होना चाहिये। जैसे दो द्रव्यमें प्रत्येक एक तोला, चार द्रव्यमें प्रत्येक आधा तोला। इसी नियममें जितनी दवायें हो सब मिलाकर दो तोले लेना। फिर वह सब द्रव्य ३२ तोले पानीमें औटाना तथा ८ तोले पानी रहते उतारकर छान लेना। काढ़ेमें कोई वस्तु मिलाकर लेना होतो काढा पीती वक्त मिलाना चाहिये। मिलानेवाली दवाकी मात्रा आधा तोला। एक द्रव्य मिलाना हो तो ॥) तोला, दो द्रव्य मिलाना हो चार आनेभर, पर रोगीके बलके अनुसार इसकी मात्रा कमभी कर सकते हैं। काढा एक दिन बनाकर २।३ दिन पीना उचित नहीं हैं। रोज नये द्रव्यका नया काढा बनाना चाहिये।

अनुक्त विषयमें ग्रहण विधि।—जिस औषधके निर्दिष्ट द्रव्य समूहोंमें जिसका परिमाण लिखा न हो वह और सब दवायोंके परिमाणसे लेना चाहिये। औषध सेवनका समय निर्द्धारित न रहनेसे सवेरे औषध सेवन करना। द्रव्यका कौन अंश लेना होगा लिखा न रहनेसे जड़ लेना। औषध पाक करने या रखनेके पात्रका उल्लेख न हो तो मिट्टीका पात्र लेना। द्रव्यका मूल लेती वक्त जो सब मूल बड़ी और जिसमें काठ है उसका काष्ठभाग छोड़कर छाल लेना तथा जो सब मूल छोटी और पतली है उसका काष्ठभाग समेत लेना चाहिये। अंग विशेषका उल्लेख रहनेसे वही अङ्ग ग्रहण करना। द्रव पदार्थ विशेषका उल्लेख न रहनेसे पानी लेना चाहिये। द्रव्य विशेषका विशेष परिचय लिखा न रहनेसे उत्पल शब्दमें नीलोत्पल पूरीष रसमें गोमय रस, चन्दनमें लाल चन्दन, सर्षपमें सफेद सरसों, लवणमें सेन्धा नमक, मूत्रमें गायका मूत्र, दूध और घीमें गायका दूध घी लेना चाहिये। मांस ग्रहणमें चौपाये जन्तुमें स्त्रीजातिका और पक्षीमें पुंजातिका मांस ग्रहण करना। किन्तु छाग मांसमें नपुंसक छागका मांस और शृगाल मांसमें पुंशृगालका मांस ग्रहण करना। नपुंसक छागका अभाव होनेसे वन्ध्या छागीका मांस लेसकते है। प्रायः सब औषध नया ग्रहण करना उचित है। सिर्फ गुड़, घृत, मधु, धनिया, पीपल और हींग, यह सब द्रव्य पुराना लेना चाहिये।

द्रव्यका प्रतिनिधि।—पुराने गुड़के अभावमें नया गुड़ चार पहर धूपमें रखकर लेना। सौराष्ट्र मृत्तिकाके अभावमें पङ्कपर्पटी, तगर पादुकाके अभावमें हरसिङ्गार, लोहेके अभावमें मण्डूर, सफेद सरसोंके अभावमें लाल सरसों, चाभ और गजपिप्पलीके अभावमें पिपलामूल, मुञ्जतिकाके अभावमें लालमिट्टी, कुङ्कुमके अभावमें

हरिद्रा, मुक्ताके अभावमें सीपका चूर्ण, हीराके अभावमें चुन्नी या कौडीका भस्म, स्वर्ण और रौप्यके अभावमें लौहभस्म, पुष्कर-मूलके अभावमें कूठ, रास्नाके अभावमें बादरी जडी रसाञ्जनके अभावमें दारुहल्दीका काढा, पुष्पके अभावमें नरम फल, मेदके अभावमें असगन्ध, महामेदके अभावमें अनन्तमूल, जीवकके अभावमें गुरिच, ऋषभकके बदलेमें बिदारीकन्द, ऋद्धिके बदले में बरियारा, वृद्धिके बदलेमें गोरक्षचाकुला, काकोली और चीर-काकोलीके अभावमें शतावर, रोहितक छालके बदलेमें नीमकी छाल, कस्तुरीके बदलेमें खटाशी और अन्यान्य दूधके अभावमें गायका दूध लेना चाहिये। इन सब द्रव्योंके सिवाय और किसी द्रव्यके अभावमें उस द्रव्योंके समान गुणवाला दूसरा द्रव्य ग्रहण करना चाहिये। भिलावा असह्य होनेसे उसके बदलेमें लालचन्दन देना।

काढा बनानेकी विधि।—काढेमें जितनी दवायें हों वह सब समभाग मिलाकर दो तोले होना चाहिये। जैसे दो द्रव्यमें प्रत्येक एक तोला, चार द्रव्यमें प्रत्येक आधा तोला। इसी नियमसे जितनी दवायें हों सब मिलाकर दो तोले लेना। फिर यह सब द्रव्य ३२ तोले पानीमें औटाना तथा ८ तोले पानी रहते उतारकर छान लेना। काढेमें कोई वस्तु मिलाकर लेना होतो काढा पीती वक्त मिलाना चाहिये। मिलानेवाली दवाकी मात्रा आधा तोला। एक द्रव्य मिलाना हो तो ॥) तोला, दो द्रव्य मिलाना हो चार आनेभर, पर रोगीके बलके अनुसार इसकी मात्रा कमभी कर सकते हैं। काढा एक दिन बनाकर २।३ दिन पीना उचित नहीं है। रोज नये द्रव्यका नया काढा बनाना चाहिये।

शीतकषाय प्रस्तुत विधि।—शीतकषाय बनाना होतो वैसही दो तोले द्रव्य कूटकर १२ तोले पानीमें पहिले दिन शामको भिगो रखना तथा सवेरे छानकर सेवन करना। फाट कषाय प्रस्तुत करना हो तो कूटी हुई दवाये ४ चोगूने गरम पानीमे थोडो देर भिगो रखना फिर छानकर सेवन करना। कच्ची या पक्की दवा पानीमें पोस लेनेसे उसको कल्क कहते है। कच्चा द्रव्य कूटकर उसका रस लेनेको स्वरस कहते है। काढेसे स्वरसतकको पञ्चकषाय कहते हैं। किसी द्रव्यका रस पुटपाकसे लेना हो तो वही सब द्रव्य कूटकर जामून या वडके पत्तेमे लपेट रस्सीसे मजबूत बांधकर उपरसे एक या दो अङ्गुल मिट्टी लपेटना। फिर सुखाकर आगमे जलाना आगकी गरमीसे मिट्टी लाल रंग होनेपर भीतरका द्रव्य निकालकर रस निकाल लेना।

चूर्ण औषध प्रस्तुत विधि।—औषधका चूर्ण करना हो तो, सब द्रव्य अलग अलग अच्छी तरह सुखाकर फिर कूटकर कपडेसे छान लेना, फिर जो सब द्रव्य एकत्र मिलाना हो वह सब एक एक कर निर्दिष्ट परिमाणसे लेकर एकत्र मिलाना। किसी चूर्णमें भावना देनेकी व्यवस्था रहने पर उसमे निर्दिष्ट द्रव्यकी भावना देकर सुखाकर चूर्ण करना।

वटिका औषध प्रस्तुत विधि।—वटिका बनाना हो तो, निर्दिष्ट द्रव्य समूहके चूर्णमे द्रव पदार्थ विशेष की भावना देकर खलमे अच्छी तरह घोटना, फिर यव, सर्षप या गुंजा आदिके बराबर गोली बनाना। किसी द्रव पदार्थ का उल्लेख न रहनेसे केवल पानीमे खल करना। गोलीका परिमाण न लिखा हो तो प्राय एक रत्ती परिमाण गोली बनाना। भावना देनेकी रीति—जो सब चूर्ण पदार्थमे भावना देना हो, वह किसी

द्रव्यके रस या काढ़ेमें अच्छो तरह भिगोकर दिनको धूप और रातको ओसमें रखना। ऐसही जिस औषधमें जितने दिन भावना देना हो उतने दिन तक रोज भिगोकर दिनको धूप और रातको ओसमें रखकर खत्म करना।

मोदक प्रस्तुत विधि —जो सब मोदक औषध पाक करना नहो है, वह निर्दिष्ट परिमित अथवा अनिर्दिष्ट स्थलमें चूर्ण द्रव्यका दूना गुड और समान सहतमें खलकर निर्दिष्ट मात्रासे गोलो बनाना, तथा जो सब मोदक पाक करना हो, उसमें पहिले गुड या चोनो चूर्णके दूने पानोमें औटाना। पक्का चाशनो हो जानेपर नोचे उतारकर उसमें चूर्ण डालकर अच्छो तरह मिलाना चाहिये। किसो किसी जगह चाशनो आगपर रहते हो चूर्ण मिलाते है। मोदक प्रस्तुत हो जानेपर घृत भावित बरतन या आधुनिक चोनो मिट्टोके बरतन में रखना।

अवलेह प्रस्तुत विधि।—अवलेह बनाना हो तो पहिले काढ़ा तयार कर फिर उसे औटाकर गाढ़ा करना। चोनीसे अवलेह बनाना हो तो चूर्ण पदार्थको चौगूनो चोनो या गुडका रस बना लेना। किसो द्रव पदार्थके साथ अवलेह बनाना हो तो वह भो चूर्णका दूना लेना चाहिये। मोदककी तरह अवलेहको भो चाशनी पक्की होनो चाहिये।

गुग्गुलु पाक विधि।—पहिले गुग्गुलका मल आदि पदार्थ निकालकर दशमूलके गरम काढ़ेमें मिलाकर छान लेना अथवा गुग्गुलु कपडेमें ढोला बाधकर दोलायन्त्रमें अर्थात् हाडोमें झुला देना तथा गायका दूध या त्रिफलाके काढ़ेमें पाककर छान लेना, फिर धूपमें सुखाकर घी मिलाना। इस रीतिसे गुग्गुलु शोधा जाता है। यही शोधित गुग्गुलु आगमें पाक करनेका उपदेश हो

तो करना, उपदेश न हो तो नहो करना, निर्दिष्ट चूर्णादि पदार्थके साथ मिलानेहो से गुग्गुलु तैयार होता है।

पुटपाक विधि।—एक गज गहिरा एक गढा खोदना, फिर उसका तोन भाग कण्डेसे भरना तथा उसके उपर दवाका मुषा रखकार उस मुषिके उपरसे कण्डा रख गढा भर देना, फिर उसमें आग लगाना। जब सब कण्डा राख हो जाय तब वह मुषा बाहर कर उसके भीतरको दवा निकाल लेना। मुषावस्त्र और मिट्टीसे अच्छी तरह लपटना चाहिये। गढेका मुख एक हाथ और नोचेका भाग १॥ हाथ चौडा होना चाहिये। इनोको गज-पुट कहते ह।

बालुका यन्त्रमे औषध पाक विधि।—बालुका यन्त्र या लवण यन्त्रमे औषध पाक करना हो तो एक हाडोमे बालु या लवण भरना तथा उसके उपर औषधिका मुषा रखकर निर्दिष्ट समयतक आगपर चढाना। मुषिको कपडा और मिट्टीमे लेप करना।

सुरा प्रस्तुत विधि।—सुरा बनाना हो तो, कलवारको तरह शराब चुआनेवाला यन्त्र बनाकर उसमे चुआ लेना। आसव और अरिष्ट चुआना नहीं पडता है केवल निर्दिष्ट समयतक धान्य-राशि या जमोनमे गाडकर सडा लेनेसे तयार होता है।

स्नेहपाक विधि।—तेल और घृत पाक करनेसे पहिले उसको मूर्च्छा करना आवश्यक है। तिलके तेलको मूर्च्छा करना हो तो, लोहेको कढाइ या दूसरे किसो पात्रमें तेल रखको आंच पर चढाना, तेल निस्फेन होजानेपर नोचे उतार कर थोडा ठण्ढा होनेपर, उसमें पिसो हुई हल्दोका पानो फिर वैसहो मजोठ और क्रमश, पिसा हुआ लोध, मोथा, नालुका, आवला, बहेडा,

हरीतकी, केवडेका फूल, बडकोसीर और वाला, यह सब द्रव्य थोडा थोडा मिलाकर तेलका चौगूना पानी देकर पाक करना, थोडा पानी रहते ही नीचे उतारना। फिर ७ दिनतक कोई पाक नहो करना। मूर्च्छाके लिये मजीठ आदि द्रव्योंके वजन,—जितना तेल हो उसके १६ भागका एक भाग मजीठ। और दूसरे द्रव्य मजीठका चौथाई भाग लेना, अर्थात् तेल ४ सेर हो तो मजीठ एक पाव और दूसरे द्रव्य सब एक एक छटाक लेना चाहिये।

वायुनाशक तैलपाक विधि।—वायुनाशक तेल पाक करनेमें मूर्च्छित तेलका आठवा भाग आम, जामुन, कईथ और बडे नीबू का पत्ता चौगूने पानीमें औटाना एक भाग पानी रहते उतारकर छानकर उसी काढेके साथ मूर्च्छित तेल और एक दफे औटाना चाहिये।

सर्षप तैल मूर्च्छा विधि।—सर्षप तेलका मूर्च्छामें यथाक्रम हलदी, मजीठ, आवला, मोथा, बेलकी छाल, अनारकी छाल, नागकेशर, कालाजीरा, वाला, नालुका और बहेडा, यह सब द्रव्य. और रेडीके तेलकी मूर्च्छामें मजीठ, मोथा, धनिया, त्रिफला, जयन्ती पत्र, वनखजूर, बडकोसीर, हलदी, दारुहलदी, नालुका, केवडेका फूल, दही और काजी, यह सब देना चाहिये। ॥ सेर सरसोंके तेलमें मजीठके सिवाय वाकी सब द्रव्य दो दो तोले और ४ सेर रेंडीके तेलमें मजीठके सिवाय अन्यान्य द्रव्य ४ तोले मात्रामें मिलाना। मजीठ सब तेलमें समान परिमाण में देना उचित है, अर्थात् ४ सेर तेलमें एक पाव मजीठ देना।

घृतमूर्च्छा विधि।—घृतमूर्च्छामें घी आगपर चढा निस्फेन होनेपर नीचे उतार थोडा ठण्ढा होनेपर पहिले हल्दीका

पानी, फिर नीबूका रस और उसके बाद पिसी हुई हरीतकी आवला, बहेड़ा, और मोथा डालना, तथा तेलकी तरह चौगूना पानी देकर फिर औटाना चाहिये। ४ सेर घीमें सब द्रव्य ८ तोले मिलाना।

आवश्यकीय बातें।—मूर्च्छाके द्रव्य समूह अच्छी तरह छान कर, तेल या घीके साथ क्वाथ पाक करना चाहिये जितने क्वाथके साथ पाक करनेकी विधि निर्दिष्ट हो उसके प्रत्येक के साथ अलग अलग पाक करना चाहिये। पहिले क्वाथ द्रव्य तैलादिका दूना लेकर उसके आठ गूने पानीके साथ अर्थात् ८ सेर क्वाथ द्रव्य ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर रहने पर छान लेना, फिर उसी काढ़ेके साथ तैलादि पाक करना। क्वाथ पाकके बाद विधिके अनुसार दूध, दही, काजी, गोमूत्र और रस आदि द्रव पदार्थके साथ तैलादि पाक करना। ये सब द्रव्यका परिमाण निर्दिष्ट न रहनेसे प्रत्येक द्रव्य स्नेहके समान लेना। किन्तु क्वाथादि और कोई द्रव पदार्थके साथ पाक करनेकी विधि न रहनेसे केवल दूधहीके साथ विहित रहनेसे स्नेह पदार्थका चौगूना दूध लेना चाहिये। कोई कोई दूध पाकके समय दूधमें चौगूना पानी मिलाकर पाक करनेका उपदेश देते हैं। इसके बाद कल्क पाक करना उचित है। सूखा या कच्चा द्रव्य पानीमें पीस लेनेसे उसको कल्क कहते हैं। स्नेह पदार्थके साथ मिलाकर स्नेह पाक करना, अर्थात् ४ सेर स्नेह पदार्थमें १ सेर कल्क द्रव्य, ४ सेर द्रव पदार्थके साथ मिलाना। कल्क द्रव्यके साथ किसी द्रव पदार्थ का उल्लेख न रहनेसे चौगूने पानीके साथ कल्क पाक करना। कल्क पाक करती वख्त जब कल्क द्रव्य अङ्गुलीसे बत्ती या गोली बन जाय और आगमें देनेसे किसी तरहका शब्द न हो तो पाक

शेष जानना। तब चुल्हेसे नीचे उतार रखना और सात दिनके बाद कल्का द्रव्य छान लेना।

गन्धपाक विधि।—अधिकांश तैलमें सबसे पीछे एक बार गन्धपाक करनेकी विधि है। कूठ, बालुका, खटासी, खसकी जड, सफेद चन्दन, जटामांसी, तेजपत्ता, नखी, कस्तूरी, जायफल, शीतलचीनी, कुङ्कुम, दालचीनी, लताकस्तूरी वच, छोटी इलायची, अगरु, मोथा, कपूर, गठिवन, धूप सरल, गुदवरोसा, लौंग, गन्धमाला, छडीला, सोवा, मेथी, नागर मोथा, शठी, जावित्री, शैलज, देवदारु और जीरा यह सब तथा गन्धद्रव्योंमें छडीला, कुङ्कुम, नखी, खटासी, इलायची, सफेद चन्दन। कस्तूरी और कपूरके सिवाय और सब द्रव्य पीसकर या चूर्ण कर कल्क पाककी तरह चौगुने पानीमें औटाना। खटासी पाकके वक्त तैलमें देना और सोंज आनेपर निकाल डालना। पाक शेष होनेपर छडीला, कुङ्कुम, नखी, इलायची, सफेद चन्दन और कस्तूरी यह सब द्रव तैलमें डालकर पांच दिनके बाद छान लेना। घृत पाकमें गन्ध पाकको विधि नहीं है।

औषध सेवन काल।—रोग और रोगीके अवस्थानुसार भिन्न भिन्न समयमें औषध सेवन कराना चाहिये। पित्त और कफके प्रकोपमें तथा विरेचनादि शुद्धि कार्य्यके लिये सवेरे औषध सेवन कराना चाहिये। अपान वायु दूषित होनेसे भोजनके पहिले, समान वायुके प्रकोपमें भोजनके मध्यमें अर्थात् भोजन करते वक्त, व्यान वायु कुपित होनेसे भोजनके बाद, उदान वायुके प्रकोपमें शामको भोजनके साथ और प्राणवायुके प्रकोपमें शामको भोजनके बाद औषध सेवन कराना चाहिये। हिक्का, आक्षेप और कम्प रोगमें भोजनसे पहिले और पीछे औषध सेवन करानेका उपदेश

है। अग्निमान्द्य और अरुचि रोगमें भोजनके साथ औषध सेवन कराना चाहिये। अजीर्ण नाशक औषध रातही को सेवन करने की विधि है। तृष्णा, वमि, हिक्का, श्वास और विष रोगमें मुहुर्मुहु औषध सेवन कराना उचित है।

साधारणतः प्रायः सब औषध सवेरेही सेवन करानेको प्रथा है, पर २।३ औषध रोज सेवन कराना हो तो विचार कर कोई सवेरे कोई उसके २।३ घण्टे बाद और कोई तीसरे पहरको दिया जाता है।

अनुपान विधि।—बहुतेरो दवायें सेवन करनेके बाद कोई एक पतला पदार्थ पोने को विधि है, उसोको अनुपान कहते है। किन्तु साधारणतः सहत प्रभृति जो सब द्रव पदार्थमें औषध मिलाकर सेवन कराया जाता है वही अनुपान शब्दमें व्यवहृत होता आया है। औषध मात्र अनुपान विशेषके साथ देनेसे वह थोड़ेही देरमें अधिक कार्य्यकारक होता है, इससे प्राय सब औषध अनुपान विशेषके साथ सेवन कराना चाहिये। जो रोग नाशक औषध हो अनुपान भो वही रोग नाशक व्यवस्था करना चाहिये। कफ ज्वरमें अनुपान सहत, पानका रस अदरखका रस और तुलसी पत्रके रसमें देना। पित्त ज्वरमें परवरका रस, खेत पापड़ेका रस या काढा, गुरिचका रस और नीमको छालका रस या काढा। वातज्वरमें सहत, गुरिच का रस और चिरायता भिगोया पानी आदि का अनुपान देना। विषम ज्वरमें सहत, पीपलका चूर्ण, तुलसीके पत्तेका रस, हरसिंघारके पत्तेका रस, बेलके पत्तेका रस और गोलमरिच का चूर्ण आदि अनुपान देना। अतिसार रोगमें बेलको छाल, धवईका फूल और कुरैया। कास, कफप्रधान श्वास और प्रतिश्याय आदि रोगमें अडूसेका पत्ता, तुल-

सीका पत्ता, पान और अदरखका रस, अडूसेकी छाल, वभनेठो, मुलेठी, कटेलो, कटफल और कूठ आदि द्रव्यका काढा और बच, तालिश पत्र, पीपल, काकडाशिङ्गो और वशलोचन आदिका चूर्ण। वायुप्रधान श्वासमें बहेडेका काढा या बहेडेके बोजके गूदेका चर्ण और मधु। रक्तभेद, रक्त वमन और रक्तस्राव दूर करनेके लिये अडूसेके पत्तेका रस, विशल्यकर्णीका रस या काढा, दूबका रस, बकरीका दूध और मोचरसका चूर्ण। शोथ रोगमें बेलके पत्तेका रस, सफेद पुनर्नवा का रस या काढा, सूखी मूलीका काढा और गोलमिरच चूर्ण। पाण्डु और कामला आदि रोगमें खेतपापडाका रस या गुरिचका रस आदि। मलभेद करानेके लिये त्रिवृत मूलका चूर्ण, दन्तीमूल चूर्ण, सनाय भिगोया पानी या काढा, कटकीका काढा, हरीतकी भिगोया पानी या गरम दूध। मूत्र विरेचन अर्थात् पिशाब साफ करानेके लिये स्थलपद्मके पत्तेका रस पत्थरचूरके पत्तेका रस, सोरा भिगोया पानी, कबाबचीनीका चूर्ण और गोखुर बीज, कुशमूल, कासमूल, खसकी जड और काली ऊखके जडका काढ़ा आदि। बहुमूत्र निवारणके लिये गुलरके बीजका चर्ण, जामुनके बीजका चूर्ण, मोचरस। प्रमेह रोगमें कच्ची हल्दीका रस, आवलेका रस, नरम सेमलके मुसलीका रस, दारुहल्दीका चूर्ण, मजीठ और असगन्धका काढा, घिसा हुआ सफेद चन्दन, गोंद भिगोया पानी, कदम छालका रस और कसेरूका रस। प्रदर रोगमें गुरिचका रस, अशोक छालका काढा और रक्त रोधक अन्यान्य औषध। रज स्राव करानेके लिये मुसब्बर, उल्टा कम्मल लताकिटकिरोका पत्ता और ओडउलके फूलका रस। अग्निमान्द्य रोगमें अजवाइन अजमोदा और सौफ भिगोया पानी, तथा पीपल, पिपला मूल, गोलमिरच, चाभ, सोंठ और हींगका

चूर्ण। क्रिमि रोगमें विडङ्ग चूर्ण, अनारके जडका काढा और अनारसका पत्ता, खजूरका पत्ता, चम्पाका पत्ता और निसिन्दा पत्तेका रस। वमन रोगमें बडी इलायचीका काढा या चूर्ण। वायु रोगमें त्रिफला भिगोया पानी, सतावरका रस, वरियारिका काढा, बिदारीकन्द, आमला या त्रिफला भिगोया पानी। शुक्र वृद्धि और शरीर पुष्टिके लिये मक्खन, दूधकी मलाई, दूध, कवांच की बीज, बिदारीकन्द, असगन्ध, सेमरकी मुसलीका रस और अनन्तमूलका काढा अनुपान व्यवस्था करना।

अवस्था विशेष की व्यवस्था।—रोग और रोगीकी अवस्था विचारकर उक्त अनुपानोंमें काढा या भिगोया हुआ पानी एक छटाक, द्रव्यका रस २ तोले या एक तोला और चूर्ण एक आना या आधा आनेभर प्रयोग करना। चूर्ण अनुपानके साथ उपयुक्त सहत मिलाना चाहिये। पित्तके आधिक्यके सिवाय अन्यान्य सब अवस्थामें सहत देना चाहिये। वटिका और चूर्ण औषधमें ही यह सब अनुपान व्यवहृत होता है। मोदक, गुग्गुलु और गुड आदि औषध, अवस्था विशेषमें अनुपान ठण्ढा पानी, गरम पानी और गरम दूधके साथ सेवन कराना। घृत केवल एक छटाक गरम दूध और चार आनेभर चीनीके साथ मिलाकर पीना चाहिये।

धातु आदिका शोधन और मारण विधि।

सर्व्वधातु शोधन विधि।—स्वर्णादि धातुका बहुत पतला पत्तर काटना फिर आगमें गरम कर यथाक्रम तेल, मट्ठा, काञ्जी, गोमूत्र और कुरथीके काढेमें बुझाना, इसी प्रकार तीन वार करनेसे सब धातुका शोधन होता है। रांगा जल्दी गल जाता है, इससे इसका पत्तर न बनाकर केवल गलाकर तैलादि पदार्थोंमें बुझाना।

स्वर्णभस्म।—शोधित सोनेके पत्तरको कैंचीसे छोटा छोटा टुकडा कर काटना, फिर समभाग पारेके साथ मर्द्दन कर एक गोला बनाना। एक मिट्टीके कटोरेमें सोनेके वजन बराबर गन्धक चूर्ण रख उपर वह गोला रखना, फिर ऊपर से गन्धक चूर्ण भर मिट्टीका लेप करना तथा ३० जङ्गली कण्डेके पुटमें फूकना। ठण्ढा होनेपर बाहर निकालकर फिर वैसही पारेके साथ खलकर गन्धक मिला पुटपाक करना। इसीतरह १४ बार मर्द्दन और पुटपाक करनेसे स्वर्णका भस्म तयार होता है।

रौप्य भस्म।—सोनेको तरह चांदीका भी पत्तर बनाकर समभाग पारेके साथ मर्द्दन करना। फिर समानभाग हरिताल, गन्धक और नीबूके रसमें खल कर सोने की तरह फूकना। इसी तरह ७।३ पुट देनेसे चांदीका भस्म तयार होता है।

ताम्रभस्म।—समभाग पारा गन्धक को कज्जली वडे नीबूके रसमें खलकर विशुद्ध ताम्बेके पत्रमें इसी कज्जलीका लेप-

कर मिट्टीके बरतनमें रखना तथा उपरसे ढकना रख पुटपाकमें फूकना। पारा गन्धक के अभावमे बड़े नीबूके रसमें हिङ्गल मिलाकर उसीका लेप करनेका भी उपदेश है। ताम्रभस्म तयार होनेपर उसका अमृतीकरण करना चाहिये, इससे वमन, भ्रम और विरेचन आदि ताम्र सेवन जनित उपद्रव नही होता। जारित ताम्र किसी खट्टे रसमें खलकर एक गोला बनाना फिर वह गोला एक सूरणके भीतर रख सूरणके चारो तरफ मिट्टी लपेट सुखाकर गजपुटमें फूकना, इसीको अमृतीकरण कहते है। पित्तल और कासा भी इसी रोतिसे भस्म होता है।

वङ्ग भस्म।—लोहेकी कढाईमें रांगा गलाना और क्रमश उसमें रांगेके समान हल्दी का चूर्ण, अजवाइनका चूर्ण, जीरेका चर्ण, इमलीके छालका चूर्ण और पीपलके छालका चूर्ण एक एक कर डालना तथा लगातार चलाते रहना। सफेद रंग और साफ चूर्ण हो जानेपर रांगेका भस्म तयार हुआ जानना। जस्ता भी इसी रीतिसे भस्म होता है।

सीसक भस्म।—लोहेके कढाईमें सीसा और जवाखार एकत्र धीमी आंचपर चढाना, सीसेको राख न होनेतक बार बार उसमें जवाखार मिलाकर हिलाना चाहिये। लाल रंग होजाने पर नीचे उतार कर पानीसे धो फिर आंचपर सुखा लेना। इस रीतिसे सीसेका पीला भस्म तयार होता है। काला भस्म करना हो तो, सीसा आंचपर गल जानेसे मैनसिल का चर्ण मिलाकर चलाना जब धूलेकी तरह हो जाय तब नीचे उतार रखना, फिर गन्धक का चूर्ण मिलाकर नीबूके रसमें खलकर पुटपाक करना। यह दोनो प्रकारका भस्म औषधादिमें प्रयोग होता है।

लौह भस्म।—पूर्व्वोक्त विधिके अनुसार लोहा शोधकर

अर्थात् लोहेका पत्र गरम कर क्रमश: दूध, काजो, गोमूत्र और त्रिफलाके काढ़ेमे तीन तीनबार बुझाना। दूध, काजो और गोमूत्र लोहेका दूना और लोहेका आठगूना त्रिफला, चौगूने पानोमे औटाना एक भाग पानो रहने पर छान लेना। इसी तरह निषेक कार्य्यके बाद लौहपत्रका चूर्णकर २० बार गजपुटमें फूकना, प्रत्येक बार गोमूत्रको भावना देना चाहिये। लोहा जितनो बार फूका जायगा उतनहो उसका गुणभी अधिक होगा। सहस्र पुटित लौह सबसे अधिक उपकारो और सब कार्य्यमें प्रशस्त है।

अभ्र भस्म।—भस्मके लिये कृष्णाभ्र लेना। पहिले कृष्णाभ्र आचमें जलाकर दूधमें देना फिर तबक अलग अलग कर चौराईके रसमें या किसो अम्ल रसमें ८ पहर भावना देनेसे अभ्र शोधित होता है। वही शोधित अभ्रके चार भागका एक भाग शालिधान्यके साथ एक कम्बलमे बांधकर तीन दिन पानीमें भिगो रखना, फिर हाथसे मर्द्दन करनेसे बहुत छोटा छोटा बालूकी तरह अभ्रकणा निकलता है। वही भस्म करने योग्य है। इस अभ्रको धान्याभ्र कहते है। धान्याभ्र गोमूत्रमें मर्द्दन कर गजपुटमें फूकनेसे अभ्रभस्म तयार होता है। जबतक अभ्र भस्मका चन्द्र अर्थात् चमकीला अंश नष्ट न होजाय तबतक औषधादिमें व्यवहार करना उचित नहो है। सहस्रपुटित अभ्र सब काममें प्रयोग करना चाहिये। अभ्रभस्मका अमृतोकरण विधि —त्रिफलाका काढ़ा २ सेर, गायका घो एक सेर और जारित अभ्र सवासेर यह सब द्रव्य एकत्र लोहेको कढ़ाइमे धीमो आचपर चढाना, पाक शेषमे चूर्ण हो जानेपर अमृतीकरण शेष हुआ जानना।

मण्डूर।—लौह जलाती वक्त उसमेंसे जो मैल निकलता है, उसको मण्डूर कहते हैं। सौवर्षमें अधिक दिनका पुराना मण्डूर औषधके लिये ग्रहण करना। ६० वर्षका पुराना भी ले सकते हैं, किन्तु इससे कम दिनका मण्डूर कदापि नहीं लेना। मण्डूर आगमें सात वार गरम कर गोमूत्रमें बुझाना। फिर वही मण्डूर चूर्णकर गजपुटमें फूकनेसे औषधके उपयोगी होता है।

स्वर्ण माक्षिक।—तीन भाग स्वर्णमाक्षिक और एक भाग सैन्धा लवण बड़े नीबूके रसमें मर्द्दनकर लौहपात्रमें पाक करना, पाकके समय बार बार हिलाना। लौहपात्र जब लाल हो जाय तब स्वर्णमाक्षिक विशुद्ध हुआ जानना। फिर वही स्वर्णमाक्षिक कुरथीके काढ़ेमें किम्वा तिलके तैलमें अथवा मट्ठा किम्वा बकरीके दूधमें मर्द्दनकर गजपुटमें फूकना। रौप्य-माक्षिक काकरोल, मेंडाश्रृङ्गी और बड़े नीबूके रसमें भिगोकर तेज धूपमें रखनेसे विशुद्ध होता है।

तुतियाकी शोधन विधि।—बड़े नीबूके रसमें खल-कर लघु पुटमें पाक कर तीन दिन दहीके पानीकी भावना देनेसे तुतिया शुद्ध तथा औषध के काम लायक होती है।

शिलाजीत शोधन।—गोमूत्रकी तरह गन्ध, काला रंग, तिक्त और कषाय रस, शीतल, स्निग्ध, मृदु और भारी हो ऐसी शिलाजीत लेना। शिलाजीत पहिले एक पहर गरम पानी में भिगो रखना, फिर कपड़ेसे एक मिट्टीके बरतनमें छानकर दिनभर धूपमें रखना। शामको पानीके उपरवाली मलाईकी तरह पदार्थ एक बरतन में निकाल लेना, इसी तरह रोज धूपमें रखकर उसमेंकी सब मलाई लेना। यही मलाई शोधित शिला-

जीत है। असल शिलाजीत आगमें देनेसे लिङ्गको तरह ऊपर को उठता है तथा उसमेंसे धूआं नहीं निकलता।

सिन्दूर शोधन—दूध और किसी खट्टे रसको भावना देनेसे सिन्दूर शुद्ध होता है।

रसाञ्जन शोधन।—रसाञ्जन चूर्ण बड़े नीबूके रसमें मिलाकर दिनभर धूपमें रखनेसे अथवा पानीमें मिलाकर छान लेनेसे भी शोधित होता है।

सोहागा शोधन—आगपर रख इसका लावा हो जानेसे यह शुद्ध होता है। फिटकिरी भी इसी तरह शुद्ध होती है।

शङ्खादि शोधन—शङ्ख, शुक्ति (सीप) और कपर्द्दक (कौड़ी) काञ्जीमें एक पहर दोला यन्त्रमें औटानेसे शुद्ध होता है। तथा मिट्टीके बरतनमें रख आगमें जला लेनेसे भस्म तयार होता है।

समुद्रफेन शोधन—कागजी नीबूके रसमें घोसनेसे समुद्रफेन शुद्ध होता है।

गेरुमिट्टी—गायके दूधमें घिसनेसे अथवा गायके घीमें भून लेनेसे गेरुमिट्टी शुद्ध होती है।

हिराकस—भङ्गरईयाके रसमें एक दिन भिगोनेसे हिराकस शुद्ध होता है।

खर्पर।—सात दिन दोला यन्त्रमें गोमूत्रके साथ औटानेसे खपरिया शुद्ध होता है, फिर आगपर चढ़ा, गल जानेपर क्रमश मैन्धव चूर्ण देना और पलासको लकड़ीसे चलाना, राखको तरह हो जानेपर नीचे उतार लेनेसे खर्पर तयार होता है।

हीरका भस्म।—कटेली की जड़में हीरा रखकर कुरथी या कोदोके काढ़ेमें तीन दिन दोला यन्त्रमें औटानेसे हीरा शुद्ध होता है। फिर वही हीरा आगमें खूब गरम कर हींग और सैन्धा

नमक मिलाये कुरथोके काढ़ेमे डूबाना, इसी तरह २१ बार डुबानेसे हीराभस्म तयार होता है। वैक्रान्त भी इसी तरह शुद्ध और भस्म होता है।

अन्यान्य रत्न शोधन।—अन्यान्य रत्न जयन्ती पत्तेके रसमे एक पहर दोलायन्त्रमें औटा कर शुद्ध करना, फिर आगमें गरम कर यथाक्रम घिकुआरके रसमे चौलाईके रसमे और स्तनदूधमे सात सात बार बूझालेनेसे भस्म तयार होता है।

मोठाविष शोधन—विषका छोटा छोटा टुकरा कर तीन दिन गोमूत्रमे भिगोनेसे शुद्ध होता है, गोमूत्र रोज बदलना चाहिये। फिर उसकी छाल निकाल डालना।

सर्पविष शुद्धि—काले सर्पका विष पहिले सरसोंके तेलमे मिला कर धूपमें सुखाना, फिर पानका रस, अगस्तोपत्रका रस और कूठ के काढ़ेकी यथाक्रम तीन तीन बार भावना देनेसे शुद्ध होता है।

जयपाल शुद्धि—जमालगोटाके बोजके मध्यभागमे जो पतला पत्ता रहता है वह निकालकर दोलायन्त्रमे दूधमे औटानेसे शुद्ध होता है।

लागलोविष—दिनभर गोमूत्रकी भावना देनेसे शोधित होताहै।

धतुरेका बीज—कूटकर गोमूत्रमे चार पहर भिगो रखनेसे धतुरेकी वोज शुद्ध होती है।

अफोम—अदरखके रसकी १२ दफे भावना देनेसे शोधित होताहै।

भाग—पहिले पानीसे खूब साफ धोकर सुखा लेना फिर दूध की भावना देकर सुखा लेनेसे शुद्ध होता है।

कुचिला—घीमें भून लेनेसे कुचिला शोधित जानना।

गोदन्त शोधन।—एक हाडोमें थोडा गोबर रखना, उसके उपर एक पान रखकर गोदन्त रखना तथा हाडोका मुह

बान्धकर कपड़ा और मिट्टीका लेपकर चार पहर आगमें रखनेसे गोदन्त उपरको सलम हो जायगा, वही विशुद्ध गोदन्त जानना। दारुमुज नामक विष हरितालको तरह शोधन करना।

भल्लातक शोधन—पक्का भेलावा जो पानीमें डूब जाय वह लेना, फिर ईंटके चूर्णमें घिसनेसे शुद्ध होता है।

नखी शोधन।—गोवरका रस या गोबर मिलाये पानीमें नखी औटाना, तथा धोकर सुखा लेना फिर घीमें भूनकर गुड़ और हरीतकीके पानीमें थोड़ा देर भिगो रखनेसे शुद्ध होता है।

हींग शोधन—लोहेकी कढ़ाईमें थोड़ा घीमें भूनना, हिलाते हिलाते तब लाल हो जाय जब शुद्ध जानना।

नौसादर शोधन।—नौसादर चूनेके पानीमें दोला यन्त्रमें औटानेसे शुद्ध होता है। अथवा गरम पानीमें घुलकर मोटे कपड़े में छान वह पानी एक बरतनमें रखना, ठण्ढा हो जानेपर नीचे जो पदार्थ जम जाय उसीको शुद्ध नौसादर जानना।

गन्धक शोधन।—लोहेकी कलछीमें थोड़ा घी गरम कर उसमें गन्धक चूर्ण देना तथा गन्धक गल जानेपर पानी मिलाये दूधमें डालना। इसी तरह सब गन्धक गलाकर दूधमें डाल देना तथा अच्छी तरह धोकर सुखा लेनेसे गन्धक शोधित होता है।

हरिताल शोधन।—पहिले सफेद कोहड़ेके रसमें फिर क्रमश चूनेका पानी और तेल एक एकबार दोला यन्त्रमें औटानेसे हरिताल शुद्ध होता है। वशपत्र हरिताल केवल सात दिन चूनेके पानीकी भावना देनेसे शुद्ध होता है।

हिङ्गुल शोधन—हिङ्गुल चूर्ण नीबूका रस और भेंसका दूध अथवा भेड़ीके दूधकी सात बार भावना देनेसे शुद्ध होता।

हिङ्गुलसे पारा निकालना।—हिङ्गुलसे पारा निकालना। बड़े नीबूका रस अथवा नीमके पत्तेके रसमें एक पहर खलकर एक हाडीमें रखना तथा उसके उपर दूसरी हाडी पानी भरी रख सयोग स्थलको मिट्टीसे अच्छी तरह बन्द करना। उपरके हाडीका पानी गरम न हो इसलिये पानी बदलते रहना। इसी रीतिसे हिङ्गुलका पारा उपरवाली हाडीकी पेंदीमें लग जायगा। उसको निकाल लेना। यह पारा बहुत शुद्ध जानना इसको स्वतन्त्र रूपसे शोधन करना नही पडता।

पारा शोधन।—अन्यान्य पारा पहिले घिकुआर, चीतामूल, लाल सरसी, वहती और त्रिफला इन सबके काढेमें खल करना, फिर मकडीका जाला, ईटका चूर्ण, कालाजीरा, मेष रोमका भस्म, गुड, सेन्धव और काजीके साथ तीन दिन मर्द्दन करना। फिर पारेका चौथाई हिस्सा हरिद्रा चूर्ण और घिकुआरके रसमे मर्द्दन करना। साधारणत इसी रीतिसे पारा शोधा जाता है।

शोधित पारेका ऊर्द्धपातन विधि।—पारा शोधित करनेमे कई प्रकार पातनक्रिया करना चाहिये। तीनभाग पारा और एकभाग ताम्बा एकत्र बडे नीबूके रसमे खलकर एक गोला बनाना, वह पिण्ड एक हाडीमें रख उसके उपर पानी भरी दूसरी हाडी रख सन्धिस्थान मिट्टीसे बन्द कर हाडी चुल्हेपर रखना। उपरके हाडीका पानी गरम होनेसे गरम पानी निकालकर ठण्ढा पानी देना। इस रीतिसे नीचेवाली हाडीका पारा जलभरी हाडीकी पेंदीमे लग जाता है, वही पारा ग्रहण करना। इसीको पारेका ऊर्द्धपातन विधि कहते है।

पारेका अधःपतन-विधि।—अधःपतन करना हो तो पहिले त्रिफला, सैजनको बीज, चीतामूल सेंधव और राई इन

सब द्रव्योंके साथ पारा खलकर कीचकी तरह होने पर एक हाडीके बीचमें लेप करना। दूसरी पानीभरी हाडीके ऊपर पहिले हाडी औंधी रख सन्धिस्थान मिट्टीसे बन्द करना, फिर एक गढे दोनो हाडी गाड उपरसे आगका थोडा अङ्गारा रखना गरमी पाकर उपरके हाडीका पारा नीचेवाली पानीभरी हाडी गिर जायगा। इस प्रक्रियाको पारेका अधःपतन कहते हैं।

तिर्य्यक्पातन विधि।—तिर्य्यक्पातन, एक घडे शोधित पारा और दूसरे घडेमें पानीभर दोनोंके मुहपर मिट्टीका ढकना रख कपडमिट्टीसे बन्द करना, फिर दोनो घडेके गलेमें छेदकर बांसकी नलीका दो भाग दो छेदमें लगा सन्धिस्थान मिट्टीसे बन्द करना। फिर पारेवाली हाडीमें आग लगानेसे पारा नलीके रास्तेसे पानी भरे घडेमें चला जायगा। इसीको तिर्य्यक्पातन कहते है। पारेका यह तीन प्रकार पातन विधि होनेसे वह शुद्ध होता है।

कज्जली प्रस्तुत विधि।—शोधित पारा और शोधित गन्धक समभाग अच्छी तरह खल करना, दोनो मिलकर काला चूर्ण हो जाय तथा पारेकी चमक बिलकुल जाती रहे तब कज्जली तयार हुई जानना। औषध विशेषमें गन्धक दूना मिलाकर कज्जली बनानेकी विधि है। वहा पारेका दूना गन्धक मिलाकर कज्जली बनाना, औषध बनानेके नियमोंमें कज्जली जहा नही लिखी अलग अलग पारा और गन्धक लिखा है वहा पारा और गन्धकको कज्जली बनाकर व्यवहारमें लाना चाहिये।

रससिन्दूर।—शोधित पारा ४ भाग, शोधित गन्धक एक भाग और कृत्रिम गन्धक एक भाग एक दिन खलकर कज्जली

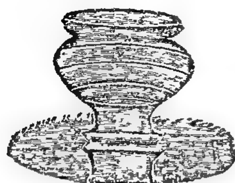
बनाना फिर एक काले काचका दलदार बोतलका शिर थोडा काटकर लगातार तीनबार कपडा और मिट्टी लगाकर सुखा लेना, फिर उसमें कज्जली भरकर बालुभरी हाडीमें रखना। बोतलके गलेतक बालु रहना चाहिये तथा हाडीके नीचे कानी अङ्गुली जासके इतना बडा छेद करना। फिर वह बालु भरी बोतलवाली हाडी चुल्हेपर चढा, चार दिन तक आंच देना अर्थात् पहिले बोतलसे धूआ निकलकर नीले रंगकी शिखा होगी फिर धूआ वगैरह बन्द हो लाल रंगकी आंच निकले तब पाक शेष हो रससिन्दूर तयार हुआ है जानना, तब नीचे उतार कर बोतलकी तोड उपरकी तरफ लगा हुआ सिन्दूर रंगका पदार्थ निकाल लेना, इसी को रससिन्दूर कहते है।

मकरध्वज प्रस्तुत विधि।—सोनेके पत्तरका टुकडा ८ पल और पारा ८ पल पहिले खल करना फिर उसके साथ १६ पल गन्धक मिला खल करना कज्जली तयार होनेपर घिकुआरके रसमें खल करना। फिर रससिन्दूरकी तरह बोतलमें भरकर तीन दिन वालुका यन्त्रमें फूकना। रससिन्दूरकी तरह इसकाभी पाक शेष अनुमान करना। मकरध्वजकी पूरी मात्रा १ यव, यह अनुपान विशेषके साथ सब रोगोंमें प्रयोग होता है।

षड्गुण बलिजारण विधि।—बालुभरी हाडीमें मिट्टीका एक भाड रख पहिले उसमें पारेका समभाग गन्धक देना, गन्धक गलकर तेलकी तरह हो जानेपर पारा देना, ऐसही क्रमश पारा ६ गूना देनेपर बालुभरी हाडी नीचे उतार कर पारेका भाड अलग करना तथा उसके नीचे एक छेद कर पारा निकाल लेना। इसीको षडगुण बलिजारित पारा कहते है।

एक हाथ गहिरा गढा खोदकर उसमें एक हाडी रखो, तथा

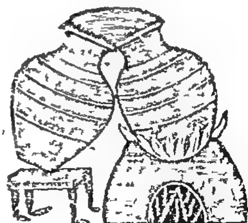
पाताल यन्त्र।



दूसरी हाडीमें औषध भर उसका मुह एक छेदवाले ढकनेसे बन्दकर नीचेवाली हाडी पर औंधी रख सयोग स्थल अच्छी तरह मिट्टीसे बन्द करो तथा मिट्टीसे गढा भरकर उपरवाली हाडीपर आग जलाओ। इससे उपरवाली हाडीकी दवा ढकनेसे छेदसे नीचेवाली हाडीमें गिर जायगी। आग ठण्ढी होनेपर गढेसे हाडी निकाल भीतर की दवा निकाल लेना। इसीको पाताल यन्त्र कहते हैं।

दो लम्बी हाडी एकमें पारा और दूसरीमें पानीभर दोनो हाडीका मुह टेढाकर मिलाना तथा सयोगस्थल मिट्टीसे बन्द करना। फिर पारेवाली हाडीमें आच लगानेसे पारा उडकर पानीभरी हाडीमें क्रमश चला जायगा। इसीको तिर्य्यकपातन यन्त्र कहते हैं। दोनो हाडीके गलेमें नल लगाकर भी एक प्रकार तिर्य्यकपातन यन्त्र बनता है। जिसका विवरण तिर्य्यक-पातन विधिमें लिख आये है।

तिर्य्यक्पातन यन्त्र।



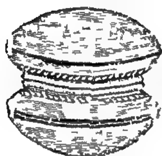
यन्त्र-परिचय।

—o—

औषध तयार करनेके लिये नानाप्रकारके यन्त्रोंकी जरूरत पड़ती है। यहा हम सब प्रकारके यन्त्रोंकी तस्वीर और नाम व्योरेवार लिखते है।

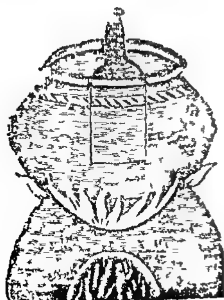
एक हांडीमें पानी भरकर गढेमें रखना, तथा दूसरी हांडीमें दवा लपेटकर, पहिली हांडीके ऊपर औंधी रख संयोग स्थलको मिट्टीसे बन्द करना। फिर ऊपरवाली हांडीके ऊपर आगका अंगारा रखनेसे उसका औषध नीचेवाली पानीभरी हांडीमें क्रमश गिर जायगा। पारेको अध पतन विधि इसी यन्त्रसे होता है।

भूधर यन्त्र



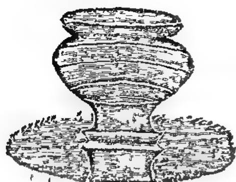
एक हांडीमें कांचकी यन्त्र अर्थात् औषधपूर्ण और मिट्टी लपेटा बोतल रखो, बोतलके गलेतक बालु रहना चाहिये। फिर हांडी चुल्हेपर चढाकर निर्दिष्ट समय तक आग पर रखना। इसीको वालुकायन्त्र कहते है। इसी यन्त्रमे रस-सिन्दूर और मकरध्वज आदि तयार होता है।

बालुका यन्त्र।



एक हाथ गहिरा गढा खोदकर उसमें एक हाडी रखो, तथा

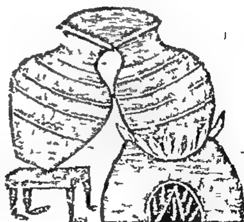
पाताल यन्त्र।



दूसरी हाडीमें औषध भर उसका मुह एक छेदवाले ढकनेसे बन्दकर नीचेवाली हाडी पर औंधी रख सयोग स्थल अच्छी तरह मिट्टीसे बन्द करो तथा मिट्टीसे गढा भरकर उपरवाली हाडीपर आग जलाओ। इससे उपरवाली हाडीकी दवा ढकनेके छेदसे नीचेवाली हाडीमें गिर जायगी। आग ठण्ढी होनेपर गढेसे हाडी निकाल भीतर की दवा निकाल लेना। इसीको पाताल यन्त्र कहते है।

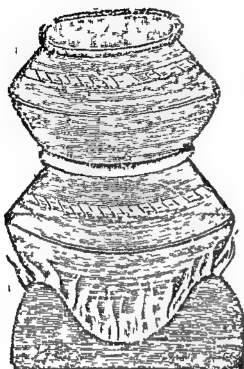
दो लम्बी हाडी एकमें पारा और दूसरीमें पानीभर दोनो हाडीका मुह टेढाकर मिलाना तथा सयोगस्थल मिट्टीसे बन्द करना। फिर पारेवाली हाडीमें आच लगानेसे पारा उडकर पानीभरी हाडीमें क्रमश चला जायगा। इसीको तिर्य्यकपातन यन्त्र कहते हैं। दोनो हाडीके गलेमें नल लगाकर भी एक प्रकार तिर्य्यकपातन यन्त्र बनता है। जिसका विवरण तिर्य्यक-पातन विधिमें लिख आये हैं।

तिर्य्यकपातन यन्त्र।



एक हाडोमें पारा दूसरो हाडोमे पानीभर उसके उपर

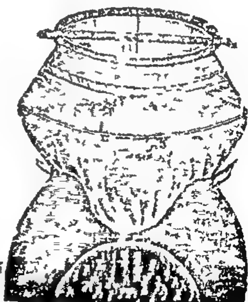
विद्याधर यन्त्र।



रखना तथा सयोगस्थल मिट्टीसे अच्छो तरह बन्दकर, दोनो हाडो चूल्हेपर चढाना। ऊपर वाली हाडोका पानी गरम होनेसे बदल देना। इस तरह नीचेवाली हाडीका पारा उपर वाली हाडोको पेंदीमे लग जायगा। पाक शेषमें हाडा ठण्ढो होनेसे नीचे उतार कर पेंदोका पारा निकाल लेना। इसको विद्याधर यन्त्र कहते है। पारेको ऊर्द्ध पातनक्रिया इसो यन्त्रसे होती है।

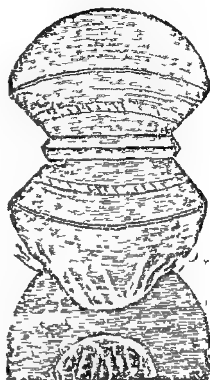
जो सब पदार्थ दोलायन्त्रमे पाक करना हो उसको एक पोटली बनाना और हाडोका आधा अंश निर्दिष्ट द्रव पदार्थ या चूर्णसे पूर्ण करना तथा मुह पर लम्बो लकडी रख उसमें वह पोटली बाधकर हाडोमे लटका देना। फिर हाडी चूल्हेपर रख आग लगाना। इसीको दोला यन्त्र कहते है। अनेक पदार्थ स्विन्न या सिद्ध करनेके लिये यह यन्त्र व्यवहृत होता।

दोलायन्त्र।



डमरू यन्त्रमें उपरवाली हाडी नीचेवाली हाडीपर औंधा रखना तथा संयोग स्थल मिट्टीसे बन्द करना। नीचेवाली हाडीमें पारा आदि पदार्थ और उपरवाली हाड़ी खाली रहे। नीचे-वाली हाडी चूल्हेपर रख उपरवाली पर पानी की धार देनेसे नीचेकी हाडी-का पारा उपरवाली हाडी मे लग जायगा। डमरु और विद्याधर यन्त्र प्राय एकही काममें व्यवहृत होता है।

डमरु यन्त्र।



वकयन्त्रमें जो सब पदार्थ पाक करना हो उस पदार्थसे आधी हाडी पूर्ण करना तथा उसके उपर दो नलवाला पात्र रख संयोगस्थल मिट्टीसे बन्द करना। नलवाले पात्रके किनारे-के नीचे एक अङ्गुल चौडी कार्निस रहना चाहिये, उसी कार्निस पर एक नल लगा

वकयन्त्र।



उसका प्रान्तभाग बोतलमें रखना, तथा उसी पात्रके उपर चारो तरफ दो अङ्गुल ऊंचा किनारा लगाकर और एक नल लगाना इसका प्रान्तभाग एक बरतनमें रखना, फिर उस हाडीके नीचे हलकी आंच देना तथा उपरवाले पात्रमें बार बार पानी देना। उपरवाले नलसे वही पानी पात्रमें आ गिरेगा। इसीको वकयन्त्र कहते है। शराब और अर्क इसी यन्त्रसे उतारा जाता है।

एक घडेके उपर दूसरा छोटा घडा औंधारख संयोगस्थल मिट्टी से अच्छी तरह बन्द करना तथा उपरके घडेमें एक छिद्रकर एक नल लगाना यह नल एक पात्रमे घुमाते हुए एक बोतलमें लाना। इसीको नाडीकायन्त्र कहते है। दूसरे पात्रमें अर्थात् जिस पात्रसे नल घुमें उसमें पानी भरा रहे। आंच लगानेसे भाफ उपर उठ कर नलसे बाहर हो पानीके बरतनमें ठण्ढा होनेसे पानी हो जायगा तथा नलके प्रान्तभागसे बाहर निकलेगा। तब वहा एक बोतल रख वह पानी लेना चाहिये। इस यन्त्रसे भी सुरा अर्क आदि उतारा जा सकता है।

नाडिकायन्त्र।



कवची यन्त्र—न बहुत बडा और न बहुत छोटा एक मोटा बोतल, मिट्टी और कपडेसे अच्छी तरह लपेटकर सुखा लेना। उसीको कवचीयन्त्र कहते है। रससिन्दूरादि पाक करनेमें इसकी जरूरत पडती है। इसमें दवा भर बालुकायन्त्रमें पाक करना चाहिये।

वारुणी यन्त्र प्राय नाडिका यन्त्रको तरह होता है। पर नाडिका यन्त्रका नल एक पात्रमें गेरुडो मारे रहता है, इसमें उसके बदले बोतल हो ठण्ढा पानो भरे एक पात्रमें रखना। नलसे भाफ आकर पानोभरे पात्रमें बोतल रहनेसे ठण्ढपाकर साफ पानो हो जाता है। सुतरां नाडिका यन्त्र और वारुणी यन्त्र दोनो एकही प्रकारके कार्य्यमें व्यवहृत होता है।

वारुणी यन्त्र।



अन्धमूषायन्त्र। भूसको राख २ भाग, दीमककी मिट्टो १ भाग, मण्डूर १ भाग, सफेद पत्थरका चूर्ण १ भाग, बकरीका दूध २ भाग और मनुष्य केश एकत्र खलकर गोस्तनको तरह एक प्रकार पात्र बनाना। इसीको मूषा कहते हैं। मूषा सूख जानेसे उसमें पारा आदि पदार्थ रख दूसरा मूषा उसके उपर औधारख दोनोका सयोग स्थान मूषा बनानेके उपादानसे अच्छी तरह बन्द करना। इसीको अन्धमूषा कहते हैं। अन्धमूषाको वज्रमूषा भी कहते है।

पारिभाषिक संज्ञा ।

वाक्य प्रयोगके सुबोतेके लिये कई लम्बे चौड़े विषय और कतिपय बहुसख्यक पदार्थोंका एक एक छोटा नाम रखा गया है। वही यहा "पारिभाषिक संज्ञा" नामसे अभिहित कर उसका विस्तृत विवरण लिखते है।

दोष—वायु, पित्त और कफ यह तीन शरीर दोष और रज' तम यह दो मानस दोष नामसे अभिहित है। त्रिदोष शब्दका उल्लेख रहनेसे वायु, पित्त और कफ यह तीन दोष जानना।

दुष्य।—रस, रक्त, मास, मेद, अस्थि मज्जा और शुक्र यह सात पदार्थको दुष्य कहते है। रोग मात्रमें इनमेसे कोई एक अवश्यही दुषित होता है। अविकृत अवस्थामें ये सब शरीरको धारण करते है इससे इसका दूसरा नाम-धातु है।

मल।—मल, मूत्र, स्वेद, क्लेद और सिङ्घानक आदि पदार्थको मल कहते है, इसका नाम किट्ट भी है। किसी किसी जगह वातादि दोषत्रय भी मल नामसे अभिहित होता है।

कोष्ठ।—आमाशय, ग्रहणी नाडी, पक्वाशय, मूत्राशय, रक्ताशय (प्लीहा और यकृत्) हृदय, फुसफुस और गुह्यनाडी, यह आठ स्थानको कोष्ठ कहते है।

शाखा।—रक्त, मास, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र और त्वक यह सात अवयवको शाखा कहते है।

पञ्चवायु ।—पञ्चवायु।—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान, नाम भेदसे शरीरमें पाच प्रकार वायु है। प्राण वायु मस्तक, छाती और कण्ठमें रहकर बुद्धि, हृदय, इन्द्रिय और चित्तवृत्तिको चलाना, छींक, डकार, निश्वास आदिका निकालना और अन्नादि पदार्थको पेटमें लेजाता है। उदान वायुका स्थान छाती, नासिका, नाभि और गलेमें यह विचरण करता है। वाक्यप्रभृति कार्य्योद्यम, उत्साह और स्मरण आदि उदान वायुके कार्य्य है। व्यान वायुका स्थान हृदय किन्तु यह अति वेगवान है इससे यह सर्व्वदा समस्त देहमे विचरण करता है। चलना, उडना, बैठना, आख बन्द करना और बोलना आदि यावतीय क्रिया व्यान वायुकी है। समान वायु पाचकाग्निके पास कोष्ठके सब स्थानोंमें विचरण करता है और अपक्व अन्न आमाशयमें लेजाकर उसका परिपाक और मलमूत्र निकालना आदि कार्य्य करता है। अपान वायुका स्थान गुह्यदेश, नितम्ब, वस्ति, लिङ्ग और ऊरूमें यह विचरण करता है तथा आर्त्तव, मल, मूत्र और गर्भको निकालता।

पञ्चपित्त ।—पञ्चपित्त।—शरीरका पित्त कार्य्यभेदके अनुसार पाचक, रञ्जक, साधक, आलोचक, भ्राजक ये पाच प्रकारमें विभक्त है। जो पित्त आमाशय और पक्वाशयमें रहकर खाये हुए पदार्थको पचाता है उसको अग्नि और जो अन्नको पचाकर उसका सार और मल अलग अलग विभक्त करता है तथा रञ्जकादि बाकी ४ प्रकारके पित्तोंको बढाता है उसको पाचक कहते है। जो पित्त आमाशयमें रहकर रसको रक्तवर्ण बनाता है उसका नाम रञ्जक है। जो पित्त हृदयमें रहकर बुद्धि, मेधा और अभिमानादि द्वारा अभिमत विषयोंको कराता है उसका

नाम साधक है। जो पित्त आखमें रहकार रूपको देखता है उसको आलोचक कहते हैं और जो पित्त त्वचामें रहकर त्वचाको दीप्ति बढ़ाता है उसको भ्राजक कहते है।

पञ्चश्लेष्मा।—पञ्चश्लेष्मा।—शरीरका कफभी भिन्न भिन्न कार्य्यके अनुसार अवलम्बक, क्लेदक, बोधक, तर्पक और श्लेष्मक ये पाच नामसे विभक्त है, जो कफ छातीमें रहकर अपने क्लेद पदार्थसे सन्धिस्थान आदि अन्यान्य स्थानके कार्य्यमें मदद देता है उसको अवलम्बक कहते है। जो आमाशयमें रहकर कठिन अन्नको नरम करता है उसको क्लेदक कहते है। जो रसनामें रहकर मधुरादि रसका अनुभव कराता है उसका नाम बोधक है। जो मस्तकमें रहकर चक्षु आदि इन्द्रिय समूहोका तृप्तिसाधन करता है उसका नाम तर्पक और जो कफ सन्धिस्थानमे रहकर सन्धिस्थानका मिलन आकुञ्चन प्रसारणादि कार्य्य करता है उसको श्लेष्मक कहते है।

त्रिकटु—शोंठ, पीपल और गोलमिरच यह तीन द्रव्यको त्रिकटु या त्र्यूषण कहते है।

त्रिफला—आमला, हर्रा और बहेडा ये तीन द्रव्यका नाम त्रिफला।

त्रिमद—वाभिरङ्ग, मोथा और चीतामूल यह तीनको त्रिमद कहते है।

त्रिजात—दालचीनी, बडोलायची और तेजपत्ता इसको त्रिजात या त्रिसुगन्ध कहते है।

चातुर्जात—दालचीनी, बडोलायची, तेजपत्ता और नागकेशर ये ४ द्रव्यको चातुर्जात कहते है।

चातुर्भद्रक—शोठ, अतीस, मोथा और गुरिच यह चार द्रव्यका नाम चातुर्भद्रक है।

पञ्चकोल—पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल और शोठ यह पाच द्रव्यको पञ्चकोल कहते है।

चतुरम्ल और पञ्चाम्ल—बैर, अनार, इमली और थैकल यह चार अम्ल पदार्थको चतुरम्ल और इसके साथ जम्बीरी नीबू मिलानेसे पञ्चाम्ल कहते है।

पञ्चगव्य—दही, दूध, घृत, गोमूत्र और गोमय, यह पाचको पञ्चगव्य कहते है।

पञ्चपित्त—वराह, छाग महिष, रोहित मछली और मयूर यह पाच जीवके पित्तको पञ्चपित्त कहते है।

लवणवर्ग—एक लवणका उल्लेख हो तो सैन्धव, द्विलवण शब्दमें सैन्धव और सौवर्चल, त्रिलवणमें सैन्धव, सौवर्चल और काला नमक, चतुर्लवणमें सैंधव, सौवर्चल, कालानमक और सामुद्र, पञ्च लवणमें सैधव, सौवर्चल, काला नमक, सामुद्र और औद्भिद यह पाच प्रकार लवण जानना। लवणवर्गका उल्लेख रहनेसे यही पाचो ग्रहण करना।

क्षीरिवृक्ष—गुलर, वड, पीपर, पाकड और वेतस यह पाचको क्षीरिवृक्ष कहते है।

स्वल्पपञ्चमूल—सरिवन, पिठवन, वृहती, कण्टकारी और गोक्षुर यह पाच पदार्थको स्वल्प पञ्चमूल कहते है।

वृहत् पञ्चमूल—बेल, श्योनाक, गम्भारी, पाटला और गणियारी, यह पांच द्रव्यको वृहत् पञ्चमूल कहते है।

तृणपञ्चमूल—कुश, काश, शर, दर्भ और इक्षु यह पाचको तृण पञ्चमूल कहते है।

मधुर वर्ग—जीवक, ऋषभक, मेद, महामेद, काकोली, क्षीर काकोली, मुलेठी, मुगानी, माषोणी और जीवन्ती यह दस द्रव्यको मधुर वर्ग या जीवनीयगण कहते हैं।

अष्टवर्ग—मेद, महामेद, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि और वृद्धि यह आठ द्रव्य को अष्टवर्ग कहते हैं।

जीवनीय कषाय—जीवक, ऋषभक, मेद, महामेद, काकोली, क्षीरकाकोली, मुगाणी, माषोणी, जीवन्ती और मुलेठी यह दस द्रव्यको जीवनीय अर्थात् आयुवर्द्धक कहते हैं।

बृंहणीय कषाय—सत्यानासी, राजक्षवक, बरियारा, वन-कपास, श्वेतबिदारीकन्द और बिधारा यह छः द्रव्य बृंहणीय अर्थात् पुष्टिकारक है।

लेखनीय कषाय—मोथा, कूठ, हलदी, दारुहलदी, वच, अतीस, कुटकी, चीतामूल, करञ्ज और श्वेत वच यह दस द्रव्य लेखनीय अर्थात् मलखुरचकर निकालनेकी तरह सञ्चित दोषोंका नाशक है।

भेदनीय कषाय—त्रिवृत मूल, अकवन, एरण्ड, भेलावा, दन्ती मूल, चीतामूल, करञ्ज, शङ्खपुष्पी, कुटकी और सत्यानासी यह दस द्रव्य भेदनीय अर्थात् मल विरेचक है।

सन्धानीय कषाय—मुलेठी, गुरिच, पिठवन, अकवन, वराह-क्रान्ता, मोचरस, धवइफूल, लोध, प्रियङ्ग और कटफल यह दसको सन्धानीय अर्थात् टूटी हड्डीका संयोजक।

दीपनीय कषाय—पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल, शोंठ, अम्लवेतस, (थैकल) मिरच, अजवाईन, भेलावा और हींग यह दस द्रव्य दीपनीय अर्थात् अग्नि उद्दीपक है।

वल्यकषाय—बड़ाखीरा, कवाच, शतावर बिदारीकन्द, असगंध, सरिवन, कुटकी, बरियारा और पीला बरियारा यह दस वल्य अर्थात् बलकारक है।

वर्ण्य कषाय—लालचन्दन, पतङ्गवृक्ष, पद्माक, खसकी जड़, मुलेठी, मजीठ, अनन्तमूल, काकोली, चीनी और दूर्व्वा यह दस वर्ण्य अर्थात् वर्णकी उज्ज्वलता बढ़ाता है।

कण्ठ्य कषाय—अनन्तमूल, ईखमूल, मुलेठी, पीपल, द्राक्षा, बिदारीकन्द, कटफल, खुलकुड़ि, वृहती और कण्टकारी यह दसको कण्ठ्य अर्थात् स्वरशुद्धिकारक कहते है।

हृद्य कषाय—आम, अमड़ा, मदार, करञ्ज, आमरुल, अम्लबेतस, शेयाफूल, बेर, अनार और बड़ानीबू यह हृद्य अर्थात् रुचिकारक है।

तृप्तिघ्न कषाय—शोंठ, चीतामूल, चाभ, बिडङ्ग, मूर्व्वामूल, गुरिच, बच, मोथा, पीपल और परवर यह दस तृप्तिघ्न अर्थात् अक्षुधा या आहारमें अनिच्छा नाशक है।

अर्शोघ्न कषाय—कुरैया बेलकी गिरी, चीतामूल, शोंठ, अतीस, हर्रा, जवासा, दारुहल्दी, बच और चाभ यह दस अर्शनाशक है।

कुष्ठघ्न कषाय—खैर, हरीतकी, आंवला, हल्दी, भेलावां, छातीम छाल, अमिलतास, करवीर, बिडङ्ग और जातीफूलका नरम पत्ता यह दस कुष्ठनाशक है।

कण्डुघ्न कषाय—लालचन्दन, खसकी जड़, अमिलतास, करञ्ज, नीम, कुरैया, सरसों, मुलेठी, दारुहल्दी और मोथा यह दस कण्डुनाशक है।

क्रिमिघ्न कषाय—सैजन, मिरच, शमठशाक, केऊ, बिडङ्ग, समालू, लताफिटकिरी, गोखुर, अपनैठी और मूषाकानी यह दस द्रव्य क्रिमिनाशक है।

विषघ्न कषाय—हलदी, मजीठ, रास्ना, छोटी इलायची, श्यामालता, लालचन्दन, निर्मली फल, शिरीष, सभालू और छातिम यह दस द्रव्य विषनाशक है।

स्तन्यजनन कषाय—खसकी जड, शालिधान, साठीधान, ईखवालिका, दर्भ, कुशकी जड, काशकी जड, गुरिच, करडा और गन्धतृण यह दस स्तनदुग्धजनक है।

स्तन्यशोधन कषाय—अकवन, शोंठ, देवदारु, मोथा, मूर्व्वामूल, गुरिच, इन्द्रयव, चिरायता, कुटकी और अनन्तमूल, यह दस स्तन्यदूधका शुद्धिकारक है।

शुक्रजनन कषाय—जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, सरिवन, पिठवन, मेदा, बांदरी जटामांसी और काकडासिङ्गी, यह दस द्रव्य शुक्रवर्द्धक है।

शुक्रशोधन कषाय—कूठ, एलवालुक, कटफल, समुद्रफेन, कदमका गोंद, ईख, खागडा, कुलेखाडा, मौलसरीका फूल और खसकी जड यह दस शुक्रशोधक है।

स्नेहोपग कषाय—द्राक्षा, मुलेठी, गुरिच, मेदा, बिदारीकन्द, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, जीवन्ती और शालपर्णी; यह द्रव्य स्नेहोपग अर्थात् स्नेहक्रियामें व्यवहृत होता है।

स्वेदोपग कषाय—सैजन, एरण्ड, अकवन, श्वेतपुनर्नवा, रक्त पुनर्नवा, यव, तिल, कुरथी, उरद और बैर, यह दस स्वेदोपग अर्थात् स्वेदक्रियामें व्यवहृत होता है।

वमनोपग कषाय—सहत्, मुलेठी, रक्तकाञ्चन, श्वेतकाञ्चन, कदम्ब, जलवेतस, तैलाकुचा, शणपुष्पी, अकवन और अपामार्ग, यह दस द्रव्य वमनोपग अर्थात् वमन कार्य्यमें व्यवहृत होता है।

विरेचनोपग कषाय—द्राक्षा, गाम्भारी फल, फालसा, हरीतकी, आवला, बहेड़ा, बड़ी बेर, छोटी बेर, शेयाफुल और पीलूफल यह दस द्रव्य विरेचनोपग अर्थात् जुलाबमें व्यवहृत होता है।

आस्थापनोपग कषाय—त्रिवृतमूल, बेल, पीपल, कूठ, सरसो, वच, इन्द्रयव, सोवा, मुलेठी और मैनफल यह दस द्रव्य आस्थापनोपग अर्थात् वस्तिक्रिया (पिचकारी) में व्यवहृत होता है।

अनुवासनोपग कषाय—रास्ना, देवदारु, बेत, मैनफल, सोवा, श्वेतपुनर्नवा, गोक्षुर, गणियारी और श्योनाक छाल, यह दस द्रव्य अनुवासनोपग अर्थात् स्नेह पिचकारीमें व्यवहृत होता है।

शिरोविरेचनोपग कषाय—लताफिटकिरी, नकछिकनी, मिरच, पीपल, विडङ्ग, सैजनकी बीज सरसो, श्वेत अपराजिता, अपामार्गकी बीज और नील अपराजिता, यह दस द्रव्य शिरोविरेचन अर्थात् नस्यक्रियामें उपयोगी है।

छर्दिनिग्रह कषाय—जामुनका पत्ता, आमका पत्ता, बड़ा नीबू, खट्टी बेर, अनार, यव, मुलेठी, खसकी जड़, सौराष्ट्रमृत्तिका और धानका लावा, यह दस वमन निवारक है।

हिक्कानिग्रह कषाय—शठी, कूठ, बेरकी गुठलीका गूदा, कण्टकारी, बृहती, बांदरी, हरीतकी पीपल, जवासा और काकड़ाशृङ्गी, यह दस हिक्का (हुचकी) निवारक है।

पुरीष संग्रहणीय कषाय—प्रियङ्गु, अनन्तमूल, आमकी गुठली, मुलेठी, मोचरस, वाराहक्रान्ता, धवइफल, बभनेठी और पद्मकेशर यह सब द्रव्य पुरीष संग्राहक अर्थात् मलरोधक है।

पुरीष विरजनीय कषाय—जामुनकी छाल, शल्लकी छाल, कवाच, मुलेठी, मोचरस, गन्धाविरोजा, जली मिट्टी, विदारी

कन्द, नीला कमल और त्रिनाछिन्नकेका तिल, यह दस द्रव्य पुरीष विरंजनीय अर्थात् दोषके कारण मलका रंग विकृत होनेसे इससे प्रकृत वर्ण होता है।

मूत्रसंग्रहणीय कषाय—जामुनकी बीज, आमकी गुठली, पाकड़, बड़, अमड़ा, गुल्लर, पीपर, भिलावा, अश्मकुचा और खैर, यह दस द्रव्य मूत्रसंग्राहक है।

मूत्रविरेचनीय कषाय—आदरी, गोक्षुर, बकफूल, हुडहुड, पाथरचूर, शरमूल, कुशमूल, काशमूल, गुरिच और दर्भमूल, यह मूत्रविरेचक है।

मूत्रविरजनीय कषाय—थोड़ा सूखा पद्म, नीला कमल, लाल-पद्म, श्वेत उत्पल, सुगन्धयुक्त नीलोत्पल, श्वेतपद्म, शतदल पद्म, मुलेठी, प्रियङ्गु और धवईफूल; यह दस द्रव्य मूत्रकी विवर्णता नाशक है।

कासहर कषाय—द्राक्षा, हरीतकी, आंवला, पीपल, अग्नि-ज्ञतास, काकड़ाशिङ्गी, कण्टकारी, लाल पुनर्नवा, सफेद पुनर्नवा, और भूई आंवला, यह दस द्रव्य कासनाशक है।

श्वासहर कषाय—शठी, कूठ, अम्लवेतस, इलायची होंग, अगुरु, तुलसी, भूई आमला, जीवन्ती और शङ्खपुष्पी, यह दस द्रव्य श्वासनाशक है।

शोथहर कषाय—पाटला, गणियारी, बेल, श्योनाक, गाम्भारी, कण्टकारी, बृहती, सरिवन, पिठवन और गोक्षुर, यह दस द्रव्य शोथनाशक है।

ज्वरहर कषाय—अनन्तमल, चीनी, अकवन, मजीठ, द्राक्षा, चिरौंजी, फालसा, हरीतकी आवला और बहेड़ा; यह दस द्रव्य ज्वर नाशक है।

श्रमहर कषाय—द्राक्षा, खजूर, चिरौंजी, बैर, अनार, काकगुलर, फालसा, ईख, जौ और साठीधान, यह दस द्रव्य श्रान्तिनाशक है।

दाहप्रशमन कषाय—धानका लावा, श्वेतचन्दन, गाम्भारी फल, मुलेठी, चीनी, नीलोत्पल, खसकी जड़, अनन्तमूल, गुरिच और वाला, यह दस द्रव्य दाह निवारक है।

शीतप्रशमन कषाय—तगरपादुका, अगुरू, धनिया, शोंठ, अजवाईन, वच, कण्टकारी, गणियारी, श्योनाक और पिपल, यह दस द्रव्य शीत निवारक है।

उदर्द प्रशमन कषाय—गाव, पियाल फूल, खैर, पपड़ी खैर, छातिम छाल, अर्जुन, पीतशाल और जङ्गली वबूल, यह दस द्रव्य उदर्द रोग नाशक है।

अङ्गमर्द प्रशमन कषाय—शरिवन, पिठवन, वृहती, कण्टकारी, एरण्डमूल, काकोली, लालचन्दन, खसकी जड़, इलायची और मुलेठी यह दस द्रव्य अङ्गमर्द निवारक है।

शूल प्रशमन कषाय—पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल, शोंठ, गोलमिरच, अजवाईन, अजमोदा, जीरा और शालिचा, यह दस द्रव्य शूल निवारक है।

शोणित स्थापन कषाय—सहत, मुलेठी, केशर मोचरस, जली मिट्टी वा सोन्धी मिट्टी, लोध, गेरूमिट्टी, प्रियङ्गु, चीनी और धानका लावा यह दस द्रव्य रक्तरोधक है।

वेदनास्थापन कषाय—शाल, कायफल, कदम्ब पद्मकाष्ठ, पुन्नाग, मोचरस, शिरीष, वेतस, एलवा और अशोक, यह दस द्रव्य वेदनास्थापक अर्थात् जहांकी दर्द आराम न होनेसे विपत्तिकी आशङ्का है वहां यह सब द्रव्य प्रयोग करना चाहिये।

बभनेठी, प्राचीवल, काकमाची और कुचिला इसको सुरसादिगण कहते हैं। यह क्रमि, प्रतिश्याय, अरुचि, श्वास, कास रोग निवारक और व्रण शोधक है।

मुष्ककादिगण—घण्टापाटला, पलाश, धव चीतामल, धतुरा, शिसो, सेहुड और त्रिफला इनको मुष्ककादिगण कहते हैं यह मेदोरोग, प्रमेह, अर्श, पाण्डु, सर्करा और अश्मरीरोग निवारक है।

पिप्पल्यादिगण—पोपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल, शोंठ, गोलमिरच, बडी पीपल, रेंगनी, इलायची, अजवाईन, इन्द्रयव, अकवन, जीरा, सरसो, बडी नीमका फूल, बभनेठी, हींग, मूर्व्वा, अतीस, वच, विडङ्ग, कुटकी इनको पिप्पल्यादिगण कहते हैं। इससे कफ, प्रतिश्याय, वायु, अरुचि गुल्म और शूल दूर होता है। यह आमदोषका पाचक और अग्निका उद्दीपक है।

एलादिगण—इलायची, तगरपादुका, कूठ, जटामासी, गन्ध तृण, दालचिनी, तेजपत्ता, नागकेशर, प्रियङ्गु, रेनुका, नखी, सेहुड, चोरपुष्पी, गठिवन, गन्धाबिरोजा, चोरक नामक गधद्रव्य, बाला गुग्गुल, राल, घण्टापाटला, कुन्दूरखोटी, अगुरु, चुकशाक, खसकी जड, देवदारू केशर और नागेश्वर, इन सबको एलादिगण कहते हैं। इससे वायु, कफ, विषदोष, खजुली, फोडा और कुष्ठरोग दूर हो शरीरकी कान्ति उज्वल होती है।

वचादिगण—वच, मोथा, अतीस, हरीतकी, देवदारू और नागकेशर इसको वचादिगण कहते हैं।

हरिद्रादिगण—हल्दी, दारुहल्दी, पिठवन, इन्द्रयव और मुलेठी, इसको हरिद्रादिगण कहते हैं।

उक्त वचादि और हरिद्रादिगण स्तनदुग्ध शोधक आमातिसार नाशक और दोषपाचक है।

श्यामादिगण—अनन्तमूल, श्यामालता, त्रिहृतमूल शङ्खपुष्पी, लोध, कमलागुडि, बडी नीम, सुपारी चुहाकानी गवाक्षी, अमिलतास, करञ्ज, डहर करञ्ज, गुरिच, नवमालिका, शरतृण, राल, बोजताडक, सेहुड और सत्यानासी, इनको श्यामादिगण कहते हैं। यह गुल्म, विषदोष, आनाह, उदररोग, उदावर्त्त निवारक और विरेचक है।

हहत्यादिगण—हहती, कण्टकारी, इन्द्रयव, अकवन और मुलेठी, इनको हहत्यादिगण कहते हैं। इससे पित्त, कफ, अरुचि, वमन, वमनोद्वेग और मूत्रकृच्छ्र दूर होता है।

पटोलादिगण—परवरका पत्ता, चन्दन, लालचन्दन, मूर्व्वा, गुरिच, अकवन और कुटकी इनको पटोलादिगण कहते हैं। यह पित्त, कफ, अरुचि, ज्वर, व्रण, वमन, कण्डू और विषदोष निवारक है।

काकोल्यादिगण—काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, ऋषभक, मुगानी, माषोणी, मेदा, महामेदा, गुरिच, काकडाशृङ्गी, वंश-लोचन, पद्मकाठ, पुण्डरियाकाठ, ऋद्धि, वृद्धि, द्राक्षा, जीवन्ती और मुलेठी इनको काकोल्यादिगण कहते हैं। यह रक्तपित्त और वायुनाशक तथा आयुवर्द्धक, पुष्टिकर, शुक्र और रतिशक्ति जनक, स्तन्यवर्द्धक और कफकर है।

ऊपणादिगण—क्षारमृत्तिका, सैन्धव लवण, शिलाजतु, श्वेत हिराकस, रक्त हिराकस, हीग और तुतिया इनको ऊपणादिगण कहते हैं। इससे कफ, मेदरोग, अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र और गुल्म रोग दूर होता है।

अञ्जनादिगण—अञ्जन, रसाञ्जन नागकेशर, प्रियङ्गु, नीलोत्पल, खसकी जड, पानी आवला, कुङ्कुम और मुलेठी इनको अञ्जनादि

कहते हैं। इससे रक्तपित्त, विष और भीतर का दाह शान्त होता है।

परूषकादिगण—फालसा, किसमिस, कायफल, अनार, पलाश वृक्ष, निर्मली फल, शिरीष, जायफल, आवला, हरीतकी और बहेडा इनको परूषकादिगण कहते हैं। इससे वायु, मूत्रदोष और पिपासा दूर हो भूख बढती है।

प्रियङ्ग्वादिगण—प्रियङ्गु बराहक्रान्ता, धवईफूल, नागकेशर, रक्तचन्दन, पतङ्गवृक्ष, मोचरस, रसाञ्जन, टोकापानी, स्रोतोञ्जन, पद्मकेशर, मजीठ और श्यामालता इसको प्रियङ्ग्वादिगण कहते हैं।

अम्बष्ठादिगण—अकवन, धवईफूल, बराहक्रान्ता, श्योनाक, मुलेठी, बेलकी गिरी, लोध, साबर लोध, पलाश, तूतवृक्ष और पद्मकेशर इनको अम्बष्ठादिगण कहते हैं। उक्त दोनो गण पक्वातिसार नाशक व्रण रोधक और भग्नस्थान सयोजक है।

न्यग्रोधादिगण—वट, गुल्लर, अश्वत्थ, पाकर, मुलेठी, आमडा, अर्जुन, आम, कोपाम्र, पिडिशाक तेजपत्ता, बडा जामुन, छोटा जामुन, पियाल, महुआ, कुटकी, वेतस, कादम्ब, बर, रक्तलोध, शल्लकी, लोध, साबर लोध, भेलावा, पलाश, मेषशृङ्गी इनको न्यग्रोधादिगण कहते है। यह व्रणनाशक, मलरोधक, भग्नस्थान सयोजक, तथा रक्तपित्त, दाह, मेदोरोग और योनिदोष निवारक है।

गुडूच्यादिगण—गुरिच, नीमकी छाल, धनिया, चन्दन और पद्मकाष्ठ इनको गुडूच्यादिगण कहते है इससे सब प्रकारका ज्वर, वमनवेग, अरुचि, वमन, पिपासा और दाह दूर होता है।

उत्पलादिगण—नीलोत्पल रक्तोत्पल, श्वेतोत्पल, सुगन्धि नीलोत्पल, कुवलय, (थोडा नीला श्वेतोत्पल) श्वेतपद्म और

मुलेठी, इसको उत्पलादिगण कहते हैं। इससे दाह, रक्तपित्त, पिपासा, विषदोष, हृद्रोग, वमन और मूर्च्छा दूर होता है।

मुस्तादिगण—मोथा, हलदी, दारुहलदी, हरीतकी, आंवला, बहेड़ा, कूठ, सत्यानासी, बच, अकवन, कुटकी, बड़ा करोंदा, अतीस, इलायची, भिलावा और चीतामूल इसको मुस्तादिगण कहते हैं। यह कफनाशक, योनिदोष निवारक, स्तन्यशोधक और पाचक है।

आमलक्यादिगण—आंवला, हरीतकी, पीपल और चीतामूल इनको आमलक्यादिगण कहते हैं। यह सब प्रकारका ज्वर, कफ और अरुचिका नाशक तथा चक्षु हितकर, अग्नि उद्दीपक और रतिशक्ति वर्द्धक है।

त्रपादिगण—वङ्ग, सीसक, ताम्र, रौप्य, कान्तलौह, स्वर्ण और मण्डूर इसको त्रपादिगण कहते हैं। यह दूषित विषदोष, क्रिमि, पिपासा, विषदोष, हृद्रोग, पाण्डु और प्रमेह रोग नाशक है।

लाक्षादिगण—लाक्षा, जम्बीर, कुरैया, करवीर, कायफल, हरिद्रा, दारुहरिद्रा, नीम, छातिम, मालती, वला और गुलर इन सबको लाक्षादिगण कहते हैं। यह कषाय, तिक्त, मधुर रस, कफ और पित्तजनित पीड़ा नाशक, कुष्ठ और क्रिमि निवारक तथा दुष्टव्रण शोधक है।

त्रिफला—हरीतकी, आंवला और बहेड़ा ये तीनको त्रिफला कहते हैं। यह वायु, कफ, पित्त, मेह, कुष्ठ, विषम ज्वरनाशक, चक्षु हितकर और अग्नि उद्दीपक है।

त्रिकटु—पीपल, मिरच और सोंठ यह तीन द्रव्यको त्रिकटु कहते हैं। त्रिकटुसे कफ, मेदोरोग, प्रमेह, कुष्ठ, चर्मरोग, गुल्म, पीनस और मन्दाग्नि दूर होता है।

स्वल्प पञ्चमूल—गोक्षुर, वृहती, कण्टकारी, सरिवन और पिठवन यह पाच द्रव्यके मूलको स्वल्पपञ्चमूल कहते है। यह कषाय तिक्त-मधुर रस, वायुनाशक, पित्तप्रशमक, बलकर और पुष्टिकारक है।

महत् पञ्चमूल—बेल, श्योनाक, गाम्भारी, पाटला और गणियारी। यह पाचद्रव्यके मूलको महत् पञ्चमूल कहते हैं। यह तिक्त मधुर रस, कफ वायुनाशक, लघुपाक और अग्नि उद्दीपक है।

दशमूल—स्वल्प और महत् पञ्चमूलको मिलानेसे दशमूल होता है। यह श्वास, कफ, पित्त और वायुनाशक आमदोष पाचक और सर्व्वज्वर निवारक है।

वल्ली पञ्चमूल—सरिवन, अनन्तमूल, हल्दी, गुरिच और मेष-शृङ्गी, इन सबके मूलको वल्ली पञ्चमूल कहते हैं।

कण्टक पञ्चमूल—करोंदा, गोक्षुर, नीलझांटो, शतमूली और कालिया काडा, इनके मूलको कण्टक पञ्चमूल कहते हैं।

वल्ली पञ्चमूल और कण्टक पञ्चमूल रक्तपित्त, शोथ सब प्रकार-का प्रमेह और शुक्रदोष निवारक है।

तृणपञ्चमूल—कुश, काश, नरकट, कण्डा और इक्षु, इन सबके मूलको तृणपञ्चमूल कहते है। यह दूधके साथ देनेसे मूत्र-दोष और रक्तपित्त जल्दी आराम होता है।

विशेषत. यह पाचमूलमें स्वल्प और महत् पञ्चमूल वायुनाशक तृणपञ्चमूल पित्तनाशक और कण्टक पञ्चमूल कफनाशक है।

यवक्षार।—जौके छिलकेकी राख एक सेर ६४ सेर पानीमें मिलाकर मोटे कपडेमें वह पानी क्रमश. २१ दफे छान लेना। फिर यह पानी किसी पात्रमें रख औटाना पानी जलकर चूर्णवत् पदार्थ बाकी रहनेपर उसको यवक्षार कहते हैं।

यवक्षार गरम पानीमें मिलाकर थोडी देर रखनेसे नीचे जम

जाता है फिर उपरका पानी आहिस्तेसे निकाल कर सुखा लेनेसे यवक्षार शोधित होता है। अन्यान्य पदार्थका क्षार बनानेकी रीति प्राय इस तरह है।

वज्रक्षार।—यवक्षार और सोरा एक बरतनमें रख आग-पर, चढाना पानीकी तरह गल जानेपर उसमें फिटकिरीका चूर्ण मिलाना, इससे उस्का मैला कटकर उपरको उठनेपर वह भारीसे आहिस्ते बाहर निकाल देना। फिर किसी चौडे पात्रमें ढालकर वह जमा देनेसे उसको वज्रक्षार कहते है। यह अजीर्ण, मूत्रकृच्छ्र, शोथ आदि विविध रोगनाशक है।

बुद्धिमान चिकित्सक रोग और रोगीको अवस्था विचार कर इस अध्यायको सब दवाओंका काढा लेप और इसके साथ तैल घी आदि पाककर प्रयोग करनेसे उपयुक्त उपकार प्राप्त होवेंगे।

पथ्य प्रस्तुत विधि।

यवागू।—थोडा कूटा हुआ चावल या जौके चावलका यवागू तयार करना। मण्ड, पेय और लपसी यह तीन प्रकारकी यवागू होता है। चावल १८ गूने पानीमें खूब सिजाकर छान लेनेसे माण्ड होता है, ११ गूने पानीमें खूब सिजा लेनेसे पेय कहते है और ८ गूने पानीमें सिजानेसे लपसी कहते है। पेय और लपसी छानी नही जाती। यवागू पानीकी तरह होनेसे पेय और गाढा होनेसे लपसी कहते है।

धानके लावाका माड—टटका धानका लावा थोड़े गरम पानीमें थोड़ी देर भिगो रखना, फिर कपडेमें छाननेसे जो माडकी तरह पदार्थ निकलेगा उसको धानके लावाका मांड कहते हैं।

वार्लि और एरारुट।—वार्लि और एरारुट बनाना हो तो पहिले गरम पानीमें खूब मिला लेना, फिर दूध, मिश्री मिलाकर औटाना। सागू बनानेकी भी रीति यही है, पर सागू थोड़ी देर ठण्ढे पानीमें भिङ्गोकर सिझाना चाहिये।

मानमण्ड।—माणकन्दका चूर्ण दो भाग और चावलका चूर्ण एक भाग १८ गूने पानीमें औटानेसे माणमण्ड तयार होता है। यवागू आदि पथ्य रोगीको अवस्था विचारकर मिश्री, कागजी नीबूका रस २।३ बूद या छोटी मछलीका शुरवा अथवा मांसका रस मिलाकर दिया जाता है।

उपवास या यवागू आदि जलके भोजनके बाद अन्न पथ्य देना हो तो चावल पाच गूने पानीमें सिझाना चावल खूब गलजानेपर माड निकाल डालना। तरकारी आदिमें भी थोड़ा तेल और नमक मिलाना चाहिये।

दालका जूस।—मूंग और मसूरका जूस बनाना हो तो, दाल १८ गूने पानीमें सिझाना तथा तेल, नमक और मसाला बहुत कम मिलाना। २।३ तेजपत्ता, थोड़ी गोलमिरच और थोड़ी पिसी हुई धनियाके सिवाय और कोई मसाला देना उचित नहीं है।

मांसका रस।—रोगके अवस्थानुसार छाग, कबूतर या मुरगा आदिके कोमल मासका छोटा छोटा टूकड़ा कर उसकी चर्व्वी निकाल उपयुक्त पानीमें अन्दाज एक घण्टा भिगो रखना, फिर उसमें थोड़ा नमक, हल्दी और समूची धनिया, मिला सुप

बन्दकर हल्की आंचमें सिजाना। सुसिद्ध होनेपर एक पात्रमें रस और दूसरे पात्रमें मास निकाल रखना। फिर मास अच्छी तरह ममलकर उसका भी रस दूसरे पात्रवाले रसमें मिला देना। थोडी देर बाद रसके उपर चर्बी दिखाई देगी, वह एक साफ कपडेके टुकडेसे निकाल लेना। रोगीकी अवस्थाके अनुसार ‒।४ तेज-पत्ता और राईकी फोडन देकर थोडा गोलमिरचका चूर्ण मिलाना। इसीको मास रस कहते है। आजकल बोतलमें भर-कर मास रस बनानेकी एक प्रकार रोति है, उसे भो तयार कर सकते है। मास रस एक दफे बनाकर ५।६ घटेके बाद फिर वह कामका नही रहता है, जरूरत होनेपर फिरसे बनाना चाहिये।

आटेकी रोटी।—जल्दी हजम होनेवाली रोटी बनाना हो तो, पहिले आटा एक घटातक उपयुक्त पानीमें भिगो रखना, फिर खूब ममलकर गोला बनाना, तथा एक बरतनमें पानी चूल्हेपर चढा वह गोला १५।२० मिनट सिजाकर बाहर निकाल लेना। फिर उस गोलेको अच्छी तरह मसलकर पतली रोटी बनाकर सेंक लेना। यह रोटी बहुत जल्द हजम होती है और किसी तरह के बदहजमीका डर नही रहता है।

ज्वराधिकार।

वातज्वरमें।

बिल्वादि पञ्चमूल। बेल, अरलु, गाम्भारी, पाटला (पदु) और गणियारी (एरणी) यह पाच वृक्षके जडकी छाल २ तोले, आधासेर पानीमें औटाना आधा पाव रहते उतार कर पिलानेसे वातज्वर आराम होता है।

किरातादि। चिरायता, मोथा, गुरिच, वृहती, कण्टकारी, गोक्षुर, सरिवन, पिठवन और सोंठ; यह काढा वातज्वर नाशक है।

रास्नादि। रास्ना, अमिलतास, देवदारु, गुरिच, एरण्ड और पुनर्नवा, इन सबके काढेमें शोंठका चूर्ण मिलाकर पोनेसे वातज्वर आराम होता है, तथा तज्जनित बदनका दर्द आदिभी निवृत्ति होता है।

पिप्पल्यादि। पोपल, गुरिच और शोंठ किम्वा पोपल, अनन्तमूल, द्राक्षा, सोवा और सम्भालुकी बीज, यह दोमें किसी एकका काढा पोनेसे भी वातज्वर आराम होता है।

गुडूच्यादि। वातज्वरके सातवे दिन जब सम्पूर्ण लक्षण प्रकाशित हो तब गुरिच, पीपलामूल और शोंठका काढा देना चाहिये।

द्राक्षादि। द्राक्षा, गुरिच, गाम्भारी, गुलर और अनन्तमूल, इस काढेमें गुड मिलाकर पिलानेसे वातज्वर आराम होता है।

पित्तज्वरमें।

कलिङ्गादि। इन्द्रयव, काटफल, लोध, अकवन, परवरका पत्ता और मजीठ, यह काढा पीनेसे पित्तज्वरका दोष परिपाक होताहै।

लोध्रादि। लोधकी छाल, उत्पल, गुरिच, पद्मकाष्ठ और अनन्त-मूलका काढा थोडी चीनी मिलाकर पिलानेसे पित्तज्वर दूर होताहै।

पटोलादि। पित्तज्वरमें दाह और पिपासा प्रवल होती पर-वरका पत्ता, यव, धनिया और मुलेठीका काढा पिलाना।

दुरालभादि। जवासा, पितपापडा, प्रियङ्ग, चिरायता, अडूसा और कुटकीके काढेमें चीनी मिलाकर पिलानेसे तृष्णा, रक्तपित्त, ज्वर और दाह प्रशमित होता है।

त्रायमाणादि। गुलर, मुलेठी, पीपलामूल, चिरायता, मोथा महुवेका फूल और बहेडाका काढा चीनी मिलाकर पीनेसे पित्त ज्वर आराम होता है।

श्लेषज्वरमें।

पिप्पल्यादिगण। पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीता, सोंठ, गोलमिरच, गजपीपल, सम्भालुकी बीज, इलायची, अजवाईन, इन्द्रयव, अकवन, जीरा, सरसी, बडी नीमका फल, हींग, बभनेटी, मूर्व्वा, अतीस, वच, विडङ्ग और कुटकी, इन सबको पिप्पल्यादिगण कहते है। इससे श्लेषज्वर दूर होता है तथा काफ, प्रतिश्याय, वायु, अरुचि, गुल्म और शूल आराम होता है।

कटकादि। कुटकी, चीतामूल, नीमकी छाल, हल्दी, अतीस, वच, कुठ, इन्द्रयव, मूर्व्वा और परवरका पत्ता, इन सबके काढेमें गोलमिरचका चूर्ण और सहत मिलाकर पीनेसे कफज्वर नाश होता है। किसी किसी ग्रन्थकारके मतसे कुटकीसे बचतक एक योग और कुठसे परवरके पत्तेतक दूसरा योग है।

निम्बादि। नीमकी छाल, शोंठ, गुरिच, देवदारु, शठी, चिरायता, कुठ, पीपल और हड़तीका काढा कफज्वर नाशक है।

वातपित्त ज्वरमें।

नवाङ्ग। शोंठ, गुरिच, मोथा, चिरायता, मरिवन, पिठवन कण्टकारी और गोखुरका काढा पीनेसे वातपित्तज्वर जल्दी आराम होता है।

पञ्चभद्र। गुरिच, पित्तपापडा, मोथा, चिरायता और शोंठ, इनका काढा वातपित्त ज्वरमें उपकारी है।

त्रिफलादि। त्रिफला, गंभारकी जड, रास्ना, अमिलतासका फल और अडूसेका काढा वातपित्त ज्वर नाशक है।

निदिग्धिकादि। कण्टकारी, वरियारा, रास्ना, गुलर, गुरिच और मसूर (किसीके मतसे श्यामालता) के काढेसे वातपित्त ज्वर आराम होता है।

मधुकादि। मुलेठी, अनन्तमूल, श्यामालता, द्राक्षा, महुवेका फूल, लालचन्दन, उत्पल, गाम्भारी, पद्मकाष्ठ, लोध, आंवला, हरीतकी, बहेडा, पद्मकेशर, फालसा और खसकी जड, रातको साफ पानीमें भिगोना और सबेरे छान लेना, इसमें मधुत, धानकी लावाका चूर्ण और चीनी मिलाकर खिलानेसे पित्तजनित तृष्णा, वमन, भ्रम आदि उपद्रव जल्दी प्रशमित होता है।

वातश्लेष्म ज्वरमें।

गुडूच्यादि। गुरिच, नीमकी छाल, धनिया, पद्मकाष्ठ और लालचन्दनका काढा पीनेसे वातश्लैष्मिक ज्वर प्रशमित होता है। तथा अरुचि, सर्दी, पिपासा और दाह दूर होता है।

मुस्तादि। वातश्लेष्म ज्वरमें वमन, दाह और मुखशोष रहनेसे मोथा, पित्तपापडा, शोंठ, गुरिच और जवासेका काढा पिलाना।

दार्व्वादि। वातकफ ज्वरमें हिक्का, मुखशोष, गलबद्धता, काम, श्वास और मुखप्रसेक हो तो देवदारु, खेतपापडा, बभनेठो, मोथा, बच, धनिया, कटफल, हरोतको, शोंठ और नाटाकरञ्ज, इनका काढा होंग और सहत मिलाकर पिलाना।

चातुर्भद्रक। कफका वेग प्रबल हो तो चिरायता, शोंठ, मोथा और गुरिचका काढा पिलाना।

पाठासप्तक। ज्वरका वेग प्रबल हो तो चिरायता, शोंठ, गुरिच, अकवन, बाला और खसकी जडका काढा उपकारी है।

कण्टकार्य्यादि। कटकारो, गुरिच, बभनेठो, शोंठ, इन्द्रयव, जवासा, चिरायता, लालचन्दन, मोथा, परवरका पत्ता और कुटको का काढा पिलानेसे दाह, तृष्णा, अरुचि, काम और हृदय तथा पार्श्व वेदना दूर होती है।

पित्तश्लेष्म ज्वरमें।

पटोलादि। परवरका पत्ता, लालचन्दन, मूर्व्वा, कुटको अकवन और गुरिचका काढा पित्तश्लेष्म ज्वर, अरुचि, वमन, कण्डु और विषदोष नाशक है।

अमृताष्टक। गुरिच, नीमकी छाल, इन्द्रयव, परवरका पत्ता, कुटको, शोंठ, लालचन्दन और मोथाके काढेमें पोपलका चूर्ण मिलाकर पोनेसे पित्तश्लेष्म ज्वर दूर होता है, तथा तज्जनित वमन, अरुचि, तृष्णा, वमनवेग और दाह प्रशमित होता है।

पञ्चतिक्त। कटकारो, गुरिच, शोंठ, चिरायता और कूठ यह पञ्चतिक्त काढा पोनेसे आठ प्रकारका ज्वर आराम होता है।

नये ज्वरमें।

ज्वराङ्कुश। पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, हिङ्गुल ३ भाग,

जमालगोटेको बोज ४ भाग, यह सब दन्तीमूलके काढ़ेमें खलकर एक रत्ती वजनको गोलो बनाना। अनुपान चीनीका शर्व्वत।

स्वच्छन्द भैरव। पारा, गन्धक, मीठाविष, जायफल और पीपल, समभाग पानीमें खलकर आधो रत्ती वजनकी गोली बनाना, अनुपान अदरखका रस, पानका रस और सहत।

हिंगुलेश्वर। पीपल, हिंगुल और मिठाविष, समभाग पानीमें खलकर आधी रत्तीकी गोली बनाना। यह सहतमें देनेसे वातिक ज्वर आराम होता है।

अग्निकुमार रस।—गोलमिरच २ मासे, बच २ मासे, कूठ २ मासे, मोथा २ मासे, और मीठा विष ८ मासे, अदरखके रसमें खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान आमज्वरके प्रथमावस्थामें शोंठका चूर्ण और सहत, कफज्वरमें अदरखका रस, पीनस और प्रतिश्यायमें भी अदरखका रस, अग्निमान्द्यमें लौंगका चूर्ण, शोथमें दशमूलका काढ़ा, आमातिसारमें धनिया और शोंठका काढ़ा, पक्कातिसारमें कुरैया का काढ़ा और सहत, ग्रहणी रोगमें शोंठका चूर्ण, सन्निपातके पहिली अवस्थामें पीपलका चूर्ण और अदरखका रस, खासीमें कण्टकारीका रस, श्वासमें सरसोंका तेल और पुराना गुड़। इसकी केवल दो गोली सेवन करनेसे रोगीको आराम मालूम होता है। सब प्रकारके रोगोंमें आमदोषके शान्तिके लिये यह औषध देना चाहिये। इससे अग्निवृद्धि होती है, इससे इसका नाम अग्निकुमार रस रखा गया है।

श्रीमृत्युञ्जय रस।—विष (मीठा विष) १ भाग, गोलमिरच एक भाग, पीपल एक भाग, जङ्गली जीरा १ भाग, गन्धक एक भाग, सोहागेका लावा १ भाग, हिंगुल २ भाग, (यहां हिंगुल

जम्बीरी नीबूके रसकी भावना देकर लेना, यदि इसमें १ भाग पारा मिलाया जाय तो हिंगुल मिलानेकी जरुरत नहीं है) अदरखके रसमें खूब खलकर मूगके बराबर गोली बनाना। इसका साधारण अनुपान सहत, वातज्वरमें टहीका पानी, सन्निपातमें अदरखका रस, जीर्ण ज्वरमें जम्बीरी नीबूका रस, विषम ज्वरमें काला जीराका चूर्ण और पुराना गुड, इसकी पूरीमात्रा ४ गोली है, पर बूढे, बालक और दुर्व्वल मनुष्यको एकही गोली देना चाहिये। यदि कफका आधिक्य न हो तथा रोगी सवल हो तो कच्चे नारियलका पानी और चीनीके साथ सेवन कराना। इससे वातपैत्तिक दाह भी दूर होता है।

सर्व्वज्वराङ्कुश वटी।—पारा, गोलमिरच, सोंठ, पीपल, जमालगोटेकी छाल, चीता और सोया, इन सबका समभाग चूर्ण अदरखके रसमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। यह गोली सेवनकर शरीर कपडेसे ढाके रखना चाहिये। इससे आठ प्रकारका ज्वर, प्राकृत, वैकृत विषम आदि सब प्रकारका ज्वर आराम होता है।

चण्डेश्वर रस।—पारा, गन्धक, मीठा विष और ताम्बा, यह सब समभाग लेकर एक पहर खल करना, फिर अदरखके रसकी ७ बार और समालू पत्रके रसकी ७ सात बार भावना देकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान अदरखका रस। इससे सब प्रकारका ज्वर जल्दी आराम होता है।

चन्द्रशेखर रस।—पारा एकभाग गन्धक दो भाग, सोहागेका लावा २ भाग, गोलमिरच २ भाग और सबके समान चीनी, रोहित मछलीके पित्तकी भावना देकर २ रत्ती वजनकी

गोली बनाना। अनुपान अदरखका रस और ठढापानी। इससे अत्युग्र पित्तश्लेष ज्वर तीन दिनमें आराम होता है।

वैद्यनाथ वटी।—पारा आधा तोला और गन्धक आधा तोला खलकर कज्जली बनाना, फिर कुटकीका चूर्ण २ तोले मिलाकर करेलीका रस अथवा त्रिफलाके काढ़ेकी तीन दफे भावना देकर मटरके बराबर गोली बनाना। अनुपान पानका रस किम्वा करेलीका रस और गरम पानी। दोषका बलाबल विचारकर एकसे चार गोलीतक देनेकी व्यवस्था है। यह बाल-कोंके लिये फलका जुलाब है।

नवज्वरेभसिंह।—पारा, गन्धक, लोहा, तांबा, सीसा, गोलमिरच, पीपल और सोंठ प्रत्येक समभाग, मीठा विष आधा भाग (कोई कोई समष्टिका आधा विष कहते है।) २ दिन पानीमें खलकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान अदरखका रस। इससे घोरतर नवज्वर आदि रोग नष्ट होता है।

मृत्युञ्जय रस।—पारा, एकभाग, गन्धक दो भाग, सोहागेका लावा ४ भाग विष ८ भाग, धतूरेकी बीज १६ भाग, त्रिकटु ६२ भाग धतूरेके रसमें खलकर एक मासा वजनकी गोली-बनाना। इससे सबप्रकारका ज्वर आराम होता। कच्चे नारि-यलका पानी और चीनीसे वातपैत्तिक ज्वर, महतसे श्लैष्मिक ज्वर और अदरखके रससे देनेसे सन्निपात ज्वर आराम होता है।

प्रचण्डेश्वर रस।—विष, पारा और गन्धक समान वजन दोपहर खलकर समालू पत्तके रसकी २१ दफे भावना देना तथा इसको तिलके बराबर गोली बनाना। अनुपान अदरखके रसमें यह नवज्वरकी अकसीर दवा है।

त्रिपुरभैरव रस।—विष एक भाग, सोहागा २ भाग, गन्धक ३ भाग, तांबा ४ भाग, दन्तीबीज ५ भाग; दन्तीके काढ़ेमें एक पहर खलकर ३ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान अदरखका रस अथवा शोंठ, पीपल और गोलमिरचका काढ़ा और चीनी। इससे नवज्वर, मन्दाग्नि, आमवात, शोथ, विष्टम्भ, अर्श और क्रिमि दूर होता है।

शीतारि रस।—पारा एक भाग, गन्धक एक भाग, सोहागेका लावा एक भाग, जमालगोटेकी बीज २ भाग, सैंधव एक भाग, मिरच एक भाग, इमलीकी छालका भस्म १ भाग और मीठाविष एक भाग, यह सब द्रव्य जम्बीरी नीबूके रसमें खलकर दो रत्ती वजनकी गोली बनाना। यह वातश्लेष्म और शीतज्वरकी उत्कृष्ट औषध है।

कफकेतु।—शङ्खभस्म, शोंठ, पीपल, मिरच, सोहागेका लावा आदि एक एक भाग, मीठाविष ५ भाग यह आदीके रसमें तीन दफे खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान आदीका रस, इससे कफ जन्य कण्ठरोध, शिरोरोग और भयानक सन्निपात दूर होता है।

प्रताप मार्त्तण्ड रस—मीठा विष, हिंगुल और सोहागा समभाग पानीमें खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। इससे ज्वर तुरन्त आराम होता है।

ज्वरकेशरी।—पारा, गन्धक, मीठाविष, शोंठ पीपल, मिरच, हरीतकी, आंवला, बहेड़ा और जमालगोटेकी बीज, प्रत्येक समभाग भङ्गरइयाके रसमें खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। बच्चोंके लिये सरसों बराबर। पित्तज्वरमें चीनी, सन्निपात ज्वरमें मिरच और दाहज्वरमें पीपल और जीरेके काढ़ेमें

विरेचनके लिये प्रयोग करना। साधारणत यह केवल गरम पानीके साथ प्रयुक्त होता है।

ज्वरमुरारि।—हिंगुल, मीठाविष, शोंठ पीपल, मिरच, सोहागेका लावा और हरीतकी, प्रत्येक समभाग, सबके बराबर जमालगोटेकी बीज पानीके साथ खलकर उरदके बराबर गोली बनाना। आदाके रसके साथ विरेचनके लिये दिया जाता है। यह भी सद्य. ज्वर निवारक है।

सन्निपात ज्वरमें।

क्षुद्रादि—कण्टकारी, गुरिच, शोंठ और कूठका काढा पीनेसे सन्निपात ज्वर, कास, श्वास, अरुचि और पार्श्वशूल आराम होता है, यह वातश्लैष्मिक ज्वरमें भी दिया जा सकता है।

चातुर्भद्रक—चिरायता, शोंठ, मोथा और गोलमिरचका काढा पीनेसे सान्निपातिक ज्वर आराम होता है। यह कफाधिक्य सन्निपातमें प्रशस्त है।

नागरादि—शोंठ, धनिया, बभनेठी, पद्मकाष्ठ, लालचन्दन, परवरका पत्ता, नीमकी छाल, त्रिफला, मुलेठी, बरियारा, कुटकी, मोथा, गजपीपल, अमिलतास, चिरायता, गुरिच, दशमूल और कण्टकारीके काढेमें चीनी मिलाकर पीनेसे त्रिदोषोल्वण सन्निपात ज्वर आराम होता है।

चतुर्दशाङ्ग—पुराना ज्वर या वातश्लैष्मिक सन्निपात ज्वरमें पूर्व्वोक्त दशमूल और किरातादिगण अर्थात् चिरायता, मोथा, गुरिच और शोंठ के काढेके साथ आधा तोला निशोथका चूर्ण मिलाकर पीनेको देना।

वातश्लेष्महर अष्टादशाङ्ग—वात कफाधिक्य सान्निपातिक ज्वरमें हृदय और पार्श्ववेदना तथा कास, श्वास, हिक्का और

वमनवेग रहनेसे पूर्व्वोक्त दशमूल, शठी काकडाशिङ्गी कूठ, जवासा, बभनेठी, इन्द्रयव, परवरका पत्ता और कुटकी, यही अष्टादशाङ्ग का काढा देना।

पित्तश्लेष्महर अष्टादशाङ्ग—चिरायता, देवदारु, दशमूल, शोंठ, मोथा, कुटकी, इन्द्रयव, धनिया और गजपीपलके काढेसे तन्द्रा, प्रलाप, कास, अरुचि, दाह और मोह आदि उपद्रवयुक्त सान्निपातिक ज्वर जल्दी आराम होता है।

भार्ग्यादि—बभनेठी, हरीतकी, कुटकी, कूठ, पितपापडा, मोथा, पीपल, गुरिच, दशमूल और शोंठका काढा पीनेसे सान्निपातिक ज्वर नाश होता है, तथा सततादि घोरतर ज्वर, वहिस्थ और शीत मयुक्त ज्वर तथा मन्दाग्नि, अरुचि, प्लीहा, यकृत्, गुल्म और शोथभी विनष्ट होता है।

शठ्यादि—शठी, कूठ, हहती, काकडाशिङ्गी, जवासा, गुरिच, शोंठ, आकनादि, चिरायता और कुटकी, यह शठ्यादि क्वाथ सान्निपातिक ज्वर नाशक है।

हहत्यादि—हहती, कण्टकारी, कूठ, बभनेठी, शठी, काकडा शिङ्गी, जवासा, इन्द्रयव, परवरका पत्ता और कुटकी, यह हहत्यादि क्वाथ सेवन करनेसे सान्निपातिक ज्वर और उसके उपद्रव कासादि दूर होता है।

व्योषादि—शोंठ, पीपल, मिरच, त्रिफला, परवरका पत्ता, नीमकी छाल, अडूसा, चिरायता, गुरिच और जवासाका काढा त्रिदोषज्वर नाशक है।

विहतादि—विहतमूल, गोरक्षचाकुला, त्रिफला, कुटकी और अमिलतासके काढेमें, जवाक्षार मिलाकर पीनेसे त्रिदोषजनित ज्वर आराम होता है।

अभिन्यास ज्वरमें।

कारव्यादि—कालाजीरा, कूठ, एरण्डमूल, बड़ा गुल्लर, सोंठ, गुरिच, दशमूल, शठी, काकड़ाशिङ्गी, जवासा और पुनर्नवा, गोमूत्रमें औटाकर पीनेसे घोरतर अभिन्यास ज्वर आराम होता है।

शृङ्ग्यादि। काकड़ाशिंगी, बभनेठी, हरीतकी, कालाजीरा, पीपल, चिरायता, पितपापड़ा, देवदारु, वच, कूठ, जवासा, काय फल, सोंठ, मोथा, धनिया, कुटकी, इन्द्रयव, अकवन, रेणुका, गजपीपल, अपामार्ग, पीपलामूल, चीतामूल, बड़ा खीरा, अमिल-तास, नीमकी छाल, बकुची, विडङ्ग, हल्दी, दारुहल्दी, अज-वाईन, अजमोदाके काढ़ेमें हींग और आदीका रस मिलाकर पीनेसे उत्कट अभिन्यास ज्वर, तेरह प्रकारका सन्निपात ज्वर और तन्द्रा, मोह, हुचकी, कर्णशूल, श्वास, कास आदि उपद्रव शान्त होता है।

स्वल्पकस्तूरी भैरव—हिंगुल, विष, सोहागेका लावा, जावित्री, जायफल, मिरच, पीपल और कस्तूरी, प्रत्येक द्रव्य समभाग पानीमें खलकर दो रत्ती प्रमाण गोली बनाना। यह सन्निपात ज्वरमें आदीके रसमें देना।

बृहत् कस्तूरी भैरव।—कस्तूरी, कपूर, धवईका फूल, तांबा, केवाच बीज, चांदी, सोना, मोती, मूंगा, लोहा, अकवन, विडंग, मोथा, सोंठ, बाला, हरिताल और आंवला इन सबका समभाग चूर्ण मदारके पत्तेके रसमें खलकर १ रत्ती वजन-की गोली बनाना, अनुपान आदीका रस, इससे सब प्रकारका ज्वर तथा और कई प्रकारके रोग आराम होता है।

श्लेष्मकालानल रस।—शुद्धशोल्य पारा, गन्धक, तांबा, तुतिया, मैनसिल, हरिताल, कटफल, धतूरेकी बीज, हींग, स्वर्णमाक्षिक, कूठ, निशोथ, दन्ती, शोंठ, पीपल, मिरच, अमिलतास, वच और सोहागेका लावा, यह सब द्रव्य सेहुडके दूधमें खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। इससे कफोल्वण सन्निपात आदि नानाप्रकारके रोग आराम होता है।

कालानल रस।—पारा, गन्धक, अभ्रक, सोहागेका लावा, मैनसिल, हिंगुल, काले सर्पका विष, टारसुज विष और ताम्बा, प्रत्येक २ तोला लेकर बहुत महीन चूर्ण करना। लाङ्गली मूल, घोषालताका मूल, लाल चीताकी जड, नरम भृङ्ग आवला, ब्रमनेठी, अकवनकी जड और पञ्चतिक्त रसकी भावना देकर राईके बराबर गोली बनाना। इससे सन्निपातका विकार शान्त होता है।

सन्निपात भैरव।—पारा, विष, गन्धक, हरिताल, बहेडा, आवला, हर्रा, जमालगोटेकी बीज, निशोथ मूल, सोना, तांबा, सीसा, अभ्र, लोहा, मदारका दूध, लागली और स्वर्णमाक्षिक, यह सब द्रव्य समभाग लेकर नीचे लिखे प्रत्येक काढेकी ३० बार भावना देकर मटर बराबर गोली बनाना।

भावनाके द्रव्य—अकवन, श्वेत अपराजिता, मुण्डरी, हुडहुड, कालाजीरा, काकजङ्घा, श्योनाक छाल, कूठ, शोंठ, पीपल, मिरच, वडची, लाल सूर्यमणि फूल, श्रीखण्डचन्दन, समालू, रुद्रजटा, धतूरा और दन्ती, इससे सन्निपात ज्वर आराम होता है।

वेताल रस।—पारा, गन्धक, विष, मिरच और हरिताल, समभाग पानीमें खलकर एक रत्ती वजनकी गोली

बनाना। इससे साध्यासाध्य १२ प्रकारका सान्निपातिकज्वर और तज्जनित मूर्च्छा आदि शान्त होता है।

सूचिकाभरण रस।—कालकूट विष, काले सर्पका विष और दारमुज, प्रत्येक एक भाग, हिंगुल ३ भाग, रोहित मछली, बराह, महिष, छाग और मोरके पित्तको क्रमश भावना देकर सरसोंके बराबर गोली बनाना। अनुपान कच्चे नारियलका पानी या मिश्रीका शर्बत। इसको सेवन कर तिलतैलका मर्दन और गन्धान्य शीतल क्रिया करना चाहिये। इससे विकारग्रस्त मृतप्राय रोगीभी आराम होते देखा गया है।

घोरन्नसिंह रस।—ताम्बा १ भाग, वङ्ग तीन भाग, लोहा २ भाग, अभ्र चार भाग, स्वर्णमाक्षिक १ भाग, पारा १ भाग, गंधक एक भाग, मैनशिल एकभाग, काले सर्पका विष ४ भाग कुचिला ३२ भाग और काष्ठविष ८८ भाग, यह सब, द्रव्य, रोहित मछली, महिष, मयूर और शूकरका पित्त और चीतामूलके रसमें एक एक पहर भावना देकर सरसो बराबर गोली बनाकर धूपमें सुखा लेना। अनुपान कच्चे नारियलका पानी। इससे १३ प्रकारका सन्निपात, हैजा और अतिसार आदि रोग आराम होता है।

चक्री (चाकी)।—पारा, गंधक, विष, धतूरेको बीज, मिरच, हरिताल और स्वर्णमाक्षिक, प्रत्येक द्रव्य समभाग लेकर दन्तीके काढेकी भावना देकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। इससे साध्य और असाध्य १३ प्रकारका सान्निपातिक ज्वर आराम होता है।

ब्रह्मरन्ध्र रस।—पारा, गंधक, अभ्र, हरिताल, हिंगुल, मिरच, सोहागेका लावा और सेंधानमक प्रत्येक समभाग सबके

समान विष, तथा समष्टीका चौथा हिस्सा महिषके पित्तमें खल करना। औषध सेवनमें असमर्थ रोगीको ब्रह्मरन्ध्र रस शरीर थोडा चीर कर लगानेसे सन्निपातके विकारकी अज्ञानता दूर होती है। रोगीको उख आदि शीतल द्रव्य देना चाहिये।

मृगमदासव।—मृतसञ्जीवनी ५० पल, सहत २५ पल, पानी २५ पल, कस्तूरी ॥ पल, मिरच, लौंग, जायफल, पीपल और दालचिनी प्रत्येक २ पल, यह सब एक बरतनमें रख मुह बन्दकर एक महीना रख, फिर छान लेना। यह उचित मात्रासे विसूचिका, हुचकी और सन्निपातिक ज्वरमें दिया जाता है।

मृतसञ्जीवनी सुरा।—एक वर्षसे भी अधिक पुराना गुड ३२ सेर, कूटी हुई बबूलकी छाल २० पल, अनारकी छाल, अडूसेकी छाल, मोचरस, बराहक्रान्ता, अतीस, असगन्ध, देवदारु, बेलकी छाल, श्योनाककी छाल, पाटलाकी छाल, शरिवन, पिठवन, बृहती कण्टकारी, गोक्षुर बेर, बडे खोरैकी जड, चीतामूल, आलकुशी बीज और पुनर्नवा यह सब मिलाकर १० पल लेना तथा कूटकर १५६ सेर पानीमें मिलाकर बडे मिट्टीके बरतनमें रख मुह बन्द करना। १६ दिनके बाद कूटी हुई सुपारी ॥ सेर, धतूरेकी जड, लौंग, पद्मकाष्ठ, खस, लालचन्दन, सोवा, अजवाइन, गोलमिरच, जीरा, कालाजीरा, शठी, जटामासी, दालचिनी, इलायची, जायफल, मोथा, गठिवन, शोठ, मेथी, मेष-शृङ्गी और चन्दन प्रत्येक २ पल, कूटकर मिलाना तथा मुह बन्द कर देना, फिर ॥ दिनके बाद बकयन्त्रमें चुआकर शराब बनाना। बल, अग्नि और उमरके अनुसार इसकी मात्रा स्थिर करना। इससे घोर सन्निपात ज्वर और विसूचिका आदि नानाप्रकारके

[illegible] और

[illegible] होता है [illegible]

[illegible]

[illegible] होता है।

[illegible]

आँखों और [illegible]

[illegible] होता है। [illegible]

[illegible]

और [illegible]

[illegible]

(१) आनेभर पीपलका चूर्ण और सहत २ मासे मिलाकर पानेसे वातज पित्तज, द्वन्दज और चिरोत्पन्न रात्रिज्वर आराम होता है।

द्राक्षादि—जीर्णज्वरमें कास, श्वास, शोथ और अरुचि हो तो, द्राक्षा, गुरिच, शठी, काकड़ाशिङ्गी, मोथा, लालचन्दन, शोंठ, कुटकी, अम्बष्ठा, चिरायता, श्यामा, खस, धनिया, पद्मकाष्ठ, बाला, कण्टकारी, कूठ और नीमकी छाल, यह अष्टादशाङ्ग काढ़ा देना।

महौषधादि—शोंठ, पिपलामूल, तालमूली, मार्कण्डिका, अमिलतास, बाला और हरीतकी। इस सबके काढ़ेसे जवाखार मिलाकर पिलाना। यह पाचक, रेचक और विषमज्वर नाशक है।

पटोलादि—परवरका पत्ता, मुलेठी, कुटकी, मोथा और हरीतकी, इनका काढ़ा अथवा त्रिफला, गुरिच और अड़ूसेका काढ़ा, किम्वा दोनों प्रकारका मिला हुआ काढ़ा विषम ज्वर नाशक है।

वृहत् भार्गादि—वारगी, हरीतकी, कुटकी, कूठ, पित्त-पापड़ा, मोथा, पीपल, गुरिच, दशमूल और शोंठका काढ़ा पीनेसे धातुगत सततादि घोरतर ज्वर, वहिस्थ और शीतयुक्त ज्वर, मन्दाग्नि, अरुचि, प्लीहा, यकृत्, गुल्म और शोथ आराम होता है।

भार्गादि—वारगी, कूठ, रास्ना, वेलकी छाल, अजवाईन, शोंठ, दशमूल और पीपल, इसका काढ़ा पीनेसे विषम ज्वर सान्निपातिक ज्वर और तज्जनित कास, श्वास, अग्निमान्द्य, तन्द्रा, हृदय और पार्श्वशूल आदि उपद्रव दूर होता है।

मधुकादि—मुलेठी, लालचन्दन, मोथा, आवला, धनिया, खस, गुरिच और परवरके पत्तेके काढ़ेमें २ मासे सहत और

२ मासे चौनी मिलाकर पीनेसे आठ प्रकारका ज्वर, सततादि ज्वर आदि जल्दी आराम होता है।

दास्यादि।—नीलपुष्प, देवदारु, इन्द्रयव, मजीठ, श्यामालता, अम्बष्ठा, शठो, शोंठ, खस, चिरायता, गजपीपल, त्रायमाणा, पद्मकाष्ठ, हडजोड, धनिया, मोथा, सरलकाष्ठ सैजनकी छाल, वाला, कण्टकारो, पित्तपापडा, दशमूल, कुटकी, अनन्तमूल, गुरिच और कूठके काढेमें आधा तोला सहत मिलाकर पीनेसे धातुस्थ विषम ज्वर, त्रिदोषजनित ज्वर, ऐकाहिक ज्वर और द्वाहिक ज्वर, कामज्वर, शोकजनित ज्वर, वमन युक्त ज्वर, क्षय जनित ज्वर सततक और दु साध्य जोर्ण ज्वर आराम होता है।

दार्व्व्यादि।—दारुहल्दी, इन्द्रयव, मजोठ, वृहती, देवदारु, गुरिच, भूई आवला, पित्तपापडा, श्यामालता, करमिष्ठाका पत्ता, गजपीपल, कण्टकारी, नीमकी छाल, मोथा, कूठ, शोंठ, पद्मकाष्ठ, शठी, अडुसे का मूल, त्रायमाणा, हडजोड, चिरायता, भिलावा, अम्बष्ठा, कुशमूल, कुटकी, पीपल और धनियाके काढेमें आधा तोला सहत मिलकार पीनेसे सब प्रकारका विषम ज्वर और शीत, कम्प, दाह, कास्य, पसीना निकलना, वमन, ग्रहणी अतिसार, कास, श्वास, कामला, शोथ, अग्निमान्द्य, अरुचि, आठ प्रकारका शूल, बीस प्रकारका प्रमेह, प्लोहा, अग्रमास, यकृत और हलीमक आदि नानाप्रकारके रोग आराम होता है।

महौषधादि—शोंठ, गुरिच, मोथा, लालचन्दन, खस और धनियाके काढेमें सहत और चीनो मिलाकर पीनेसे तृतीयक (एक दिन अन्तरका) ज्वर आराम होता है।

उशोरादि—तृतीयक ज्वरमें तृष्णा और दाह हो तो खस,

लालचन्दन, मोथा, गुरिच, धनिया और शोठके काढ़ेमें चोनी तथा मधु मिलाकर पोनेसे तृतीयक ज्वर आराम होता है।

पटोलादि—परवरका पत्ता, नीमको छाल, किसमिस, श्यामा-लता, त्रिफला और अडूसेके काढ़ेमें चोनी और मधु मिलाकर पीनेसे भो तृतीयक ज्वर आराम होता है।

वासादि—अडूसेको छाल, आवला, सरिवन देवदारु, हरी-तकी और शोठ, इसका काढ़ा चोनी और सहत मिलाकर पोनेसे चातुर्थक अर्थात् दो दिन अन्तरका ज्वर आराम होता है।

मुस्तादि—मोथा, अम्बष्ठा और हरीतकीका काढ़ा किम्वा दूधके साथ त्रिफलाका काढ़ा पीनेसे भो चातुर्थक ज्वर आराम होता है।

पथ्यादि—हरोतको, सरिवन, शोठ, देवदारु, आवला और अडूसेका काढ़ा, चोनो और सहत मिलाकर पोनेसे चातुर्थक ज्वर जल्दी आराम होता है।

निदिग्धिकादि—निदिग्धिकादिगण (सरिवन, पिठवन, वृहती कण्टकारो, गोखुर) हरीतकी और बहेडेके काढ़ेमें यवक्षार और पीपलका चूर्ण २ मासे मिलाकर पीनेसे प्लोहा और यकृत्युक्त ज्वर आराम होता है, तथा प्लोहा आदि भो उपशम होता है।

सुदर्शन चूर्ण।—कृष्णागुरु (अभावे अगुरु), हल्दी, देवदारु, वच, मोथा, हरीतकी, जवासा, काकडाशिङ्गी, कण्ट-कारी, शोठ, त्रायमाणा, खेतपापड़ा, नीमको छाल, पीपलामूल, बाला, शठी, कूठ, पीपल, मूर्व्वामूल, कुरैयाकी छाल, मुलैठी, सेंजनको बीज, नीलोत्पल, इन्द्रयव, शतमूली, दारुहल्दी, लाल चन्दन, पद्मकाष्ठ, सरलकाष्ठ, खस, दालचीनी, सौराष्ट्र मृत्तिका, सरिवन, अजवाइन, अतीस, बेलकी छाल, गोलमिरच गन्धतृण,

आवला, गुरिच, कुटकी, चीतामूल, परवरका पत्ता और पिठवन, यह सब द्रव्यका समभाग चूर्ण और सबके बराबर चिरायतेका चूर्ण मिलाना। इसका नाम सुदर्शन चूर्ण है। मात्रा ≈) आने भरसे आधा तोला तक। इससे सब प्रकार जीर्ण और विषम ज्वर, विरुद्ध औषध सेवन जनित ज्वर, प्लीहा, यकृत् और गुल्म आदि जल्दी आराम होता है।

ज्वरभैरव चूर्ण।—सोंठ, त्रायमाना, नीमकी छाल जवासा, हरीतकी, मोथा, बच, देवदारु, कण्टकारी, काकड़ाशिङ्गी, सनाय, पितपापड़ा, पीपलामूल, इन्द्रवारुणीकी जड़, कूठ, शठी, मूर्व्वामूल, पीपल, हल्दी, दारुहल्दी, लोध, लाल चन्दन, बड़ापाटला, इन्द्रयव, कुरैयाकी छाल, मुलेठी, चीतामूल, सैजनकी बीज, वरियारा, अतीस, कुटकी, तालमूली, पद्मकाष्ठ, अजवाईन, सग्विन, गोलमिरच, गुरिच, बेलकी छाल, बाला, पङ्कपर्पटी, तेजपत्ता, दालचीनी, आवला, पिठवन, परवरका पत्ता, गन्धक, पारा, लोहा अभ्रक और मैनसिल, यह सब द्रव्यका समभाग चूर्ण तथा सबष्टिका आधा चिरायतेका चूर्ण एकत्र मिलाना। दोषका बलाबल विचार कर दो आने भरसे ॥) तक मात्रा प्रयोग करना। इससे भी सुदर्शण चूर्णकी तरह सब प्रकारका ज्वर आराम होता है। अधिकन्तु उदर, अम्लवृद्धि, पाण्डु, रक्तपित्त, चर्म्मरोग, शोथ, शिर शूल और वातव्याधि प्रभृति रोगभी आराम होता है।

चन्दनादि लोह—लालचन्दन बाला, अम्बष्ठा, खस, पीपल मोथा समभाग तथा सबके बराबर लोहा मिलाकर पानीमें खल कर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। इससे जीर्ण और विषम ज्वर जल्दी आराम होता है।

सर्व्वज्वरहर लौह।—चीतामूल, बहेड़ा, आवला, हरीतकी, शोठ, पीपल, मिरच, विडङ्ग, मोथा, गजपीपल, पिपला मूल, खस, देवदारु, चिरायता, परवरका पत्ता, बाला, कुटकी, कण्टकारी, सैजनकी बीज, मुलेठी और इन्द्रयव, प्रत्येक समभाग और समष्टिके बराबर लोहा मिलाना। फिर पानीके साथ खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। इससे सब प्रकारका ज्वर, प्लीहा, यकृत् और अग्रमास आराम होता है।

वृहत् सर्व्वज्वरहर लौह।—पारा, गन्धक, ताम्र, अभ्रक, स्वर्णमाक्षिक, सोना, चांदी और शोधित हरिताल प्रत्येक २ तोले, कान्तलौह, आठ तोले, यह सब द्रव्य करेलीका पत्ता, दशमूल, पित्तापापडा, त्रिफला, गुरिच, पान, काकमाची, समालुका पत्ता, पुनर्नवा और अदरख, इन सबका स्वरस या काढेको सात दिन भावना देकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। यह महोषध सेवन करनेसे ज्वर चाहे वैसाही क्योंनहो सात दिनमें अवश्य आराम होता है। अनुपान पुराना गुड और पीपलका चूर्ण।

पञ्चानन रस।—विष २ तोले, मिरच ४ तोले, गन्धक ३ तोले, हिङ्गुल २ तोला, ताम्बा २ तोले, यह सब द्रव्य मदारके रसमें भावना देकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। इससे प्रबल ज्वरभी आराम होता है। इसको देकर शीतक्रियादि करना चाहिये।

ज्वराशनि रस।—पारा, गन्धक, सेन्धानमक, मीठाविष और ताम्बा प्रत्येक समभाग तथा सबके बराबर लोहा और अभ्रक एकत्र मिलाकर, लोहेका खल और लोहेके दण्डसे समालू पत्तके खल ... वजन बराबर गोलमिरचका चूर्ण

मिला मर्द्दनकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान पानका रस। इससे बहुत दिनका पुराना ज्वर, विषम ज्वर, धातुस्थ प्रबल ज्वर दाहज्वर, यकृत्, प्लीहा, गुल्म, उदर, शोथ, श्वास और कास जल्दी आराम होता है।

ज्वरकुञ्जर पारीन्द्र।—पारा २ तोले, अभ्र १ तोला, चांदी, स्वर्णमाक्षिक, रसाञ्जन, गेरूमिट्टी, मैनसिल, गन्धक और सोना, यह सब प्रत्येक ४ तोले नीचे लिखे द्रव्योंके स्वरसकी तीन तीन बार भावना देकर ४ रत्ती वजनकी गोली बनाना। भावना के द्रव्य—मदार, तुलसीका पत्ता, पुनर्नवा, गणियारी, भूई आमला घोषालता, चिरायता, पद्मकी गुरिच, दशलाङ्गला, लताफिटकिरी, सुगानि और गन्धतृण। इसको सेवन करनेसे सब प्रकारका ज्वर, श्वास, कास, प्रमेह, शोथ, पाण्डु, कामला, ग्रहणी और क्षयरोग आराम होता है।

जयमङ्गल रस।—हिंगुलोत्थ पारा, गन्धक, सोहागेका लावा, ताम्बा, वङ्ग, स्वर्णमाक्षिक, सेंधानमक और गोलमिरच प्रत्येक ॥) और चांदी ॥) एकत्र मिलाकर धतूरेके पत्तेका रस हर-सिङ्गारके पत्तेका रस दशमूलका काढा और चिरायताके काढेको तीन तीन बार भावना देकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान जीराका चूर्ण और सहत। इससे चाहे जैसा ज्वर क्यों न हो अवश्य आराम होता है। यह बल और पुष्टि बढानेमें भी उत्कृष्ट औषध है।

विषम ज्वरान्तक लौह।—पारा २ भाग, गन्धक २ भाग, ताम्बा १ भाग, स्वर्णमाक्षिक १ भाग और लोहा ६ भाग, जयन्ती पत्तेका रस, तालमखानेके पत्तेका रस, पानका रस, अदरखका रस और अडूसेके रसको अलग अलग पांच दफे

भावना देकर मटर बराबर गोली बनाना। इससे विषम ज्वर, गुल्म और प्लोहा आराम होता है। अधिकन्तु यह अग्निकारक, हृदयको उत्कर्षता जनक, बल और पुष्टिकारक है।

पुटपक्व विषमज्वरान्तक लौह।—हिङ्गुलोत्थ पारा १ तोला, गन्धक एक तोला, इसकी कज्जली बनाकर पर्प्पटीको तरह फूकना। इसके साथ चौथाई तोला सोना, लोहा, अभ्र और ताम्बा प्रत्येक २ तोले, वङ्ग, गेरूमिट्टी और प्रवाल प्रत्येक आधा तोला, यह सब द्रव्य पानीमें खलकर सोपमें बन्दकर मिट्टोका लेपकर २०।२५ गोयठेमें फूक लेना। इसकी मात्रा २ रत्ती, अनुपान पीपलका चूर्ण, हींग और सेंधानमक। इससे सब प्रकारका ज्वर, पाण्डु, कामला, शोथ, प्रमेह, अरुचि, ग्रहणी आदि कई प्रकारके रोग जल्दी आराम होता है।

कल्पतरू रस।—पारा, गन्धक, विष और ताम्बा प्रत्येक समभाग, पञ्चपित्त अर्थात् बराह, छाग, महिष, रोहूमछली और मोरके पित्तकी यथाक्रम ५ दिन, समालूके पत्तेके रसकी ७ दिन और अदरखके रसको ३ दिन भावना दे सरसोंके बराबर गोली बनाकर छायामें सुखा लेना। दोष, अग्नि और उमर विचारकर लगातार २१ दिनतक एक एक गोली सेवन कराना, तथा पसीना निकलनेतक कपड़ा ओढ़कर सोना चाहिये। पसीना निकल जानेपर बिछौनेसे उठकर दहीमें चीनी मिलाकर पिलाना। इसका अनुपान पीपलका चूर्ण और गरम पानी। इससे जीर्णज्वर विषम ज्वर, ज्वरातिसार, पाण्डु और कामला आराम होता है। श्वास, काम और शूलयुक्त रोगीको यह देना उचित नहीं है।

वाहिकारि रस।—पारा १ भाग, गन्धक १ भाग,

मेनशिल १ भाग, हरताल १ भाग, अतीस ४ भाग, लोहा २ भाग और चांदी आधा भाग, यह सब द्रव्य नीमके छालके रसमें खल-कर ३ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान अतीसका काढ़ा। इससे तराहिकादि सब प्रकारका विषम ज्वर नाश होता है।

चातुर्थ्यकारि रस।—पारा, गन्धक, लोहा, अभ्रक, हरिताल, प्रत्येक समभाग, सोना पारेका आधा भाग, यह सब एकत्र कर काला धतूरा और मौलसरी फूलके रसमें खलकर २ रत्ती प्रमाणकी गोली बनाना। अनुपान चम्पेका रस। इससे चौथैया आदि विषम ज्वर आराम होता है। ज्वर छूटजाने पर तराहिकारि और चातुर्थकारि सब प्रकारका रस देना चाहिये।

अमृतारिष्ट।—गुरिच, १२॥ सेर। दशमूल १२॥ सेर, २५। सेर पानीसे औटाना ६४ सेर पानी रहनेपर नीचे उतारकर छान लेना। फिर उसी काढ़ेमें ३७॥ सेर गुड़ २ सेर कालाजीरा १ पाव पित्तपापड़ा, छातिमछाल, शोंठ, पीपल, मिरच, मोथा, नागेश्वर, कुटकी, अतीस, इन्द्रयव प्रत्येक १ पल, उसमें मिला मुंह बन्दकर १ महीना रखना। यह अरिष्ट सेवन करनेसे सब प्रकारका ज्वर आराम होता है।

अङ्गारक तैल।—तिलका तैल ४ सेर, काञ्जी १६ सेर, कल्कार्थ मूर्वाकी जड़, लाह, हरदी, दारुहरदी, मजीठ इन्द्रवारु-णकी जड़, हरतो, सेंधानिमक, कूठ, रासन, जटामासी और सता-वर, सब मिलाकर १ सेर पीसकर, १६ सेर पानीमें औटाना, पाक शेष होनेपर तैल छान लेना। फिर कपूर, छड़ीला, नखी, प्रत्ये-कका चूर्ण २ तोले मिला रखना। यह तैल मालिश करनेसे सब प्रकारका ज्वर आराम होता है।

वृहत् अङ्गारक तैल—मूर्च्छित तिलका तेल ४-सेर, पानी १६ सेर, सूखी मूली, पुनर्नवा, देवदारु, रास्ना, शोंठ और अङ्गारक तैलोक्त सब द्रव्यका कल्क एक सेर। यह तैल मर्द्दन करनेसे ज्वर, शोथ और पाण्डुरोग आराम होता है।

लाक्षादि तैल—मूर्च्छित तिलका तैल ४ सेर, कांजी २४ सेर, लाह, हलदी और मजीठ का कल्क एक सेर, पानी ४ सेर यथाविधि पाक करना। इससे दाह और शीतज्वर आराम होता है।

महालाक्षादि तैल।—मूर्च्छित तिलका तेल ४ सेर, लाहका काढ़ा १६ सेर (लाह ८ सेर पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर), दहीका पानी १६ सेर, सोवा, हलदी मूर्व्वाकी जड, कूठ, समालुकी बीज, कुटकी, मुलेठी, रास्ना, असगन्ध, देवदारु, मोथा और लाल चन्दन प्रत्येक दो तोलेका कल्क। तैलपाक समाप्त होनेपर यथाविधि छडीला, नखी और कपूर प्रत्येक दो तोले तेलमें मिला रखना। यह तेल मालिश करनेसे ज्वर और अन्यान्य रोग प्रशमित होता है।

किरातादि तैल।—मूर्च्छित सरसोंका तेल ४ सेर, दहीका पानी ४ सेर, कांजी ४ सेर, चिरायतेका काढ़ा ४ सेर, मूर्व्वाकी जड, लाह, हल्दी, इन्द्रवारुणी की जड, बाला, कूठ, रास्ना गजपीपल, मिरच, अम्बष्ठा, इन्द्रयव, सैन्धानमक, सोंचल नमक, कालानमक, अडूसेकी छाल, सफेद अकावनकी जड, श्यामालता, देवदारु, गडतुम्बी सब मिलाकर एक सेरका कल्क। यह तेल मालिश करनेसे सब प्रकारका ज्वर, पाण्डु और शोथ आदि नानाप्रकारके रोग आराम होता है।

वृहत् किरातादि तैल।—मूर्च्छित सरसोंका तेल ८ सेर, चिरायता १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, मूर्व्वामूल ४ सेर,

पानी ३२ सेर शेष ८ सेर, काजी ८ सेर, लाहका काढा ८ सेर, काजी ८ सेर, दहीका पानी ८ सेर, कल्कार्थ चिरायता, गजपीपल, रास्ना, कूठ, लाचा, इन्द्रवारुणीको जड, मजीठ, हल्दी, मूर्व्वामूल, मुलेठी, मोथा, पुनर्नवा, सेंधानमक, जटामासी, ब्रहती, कालानमक, वाला, शतावर, लालचन्दन, कुटकी, असगन्ध, सोवा, समालुकी बीज, देवदारु, खस, पद्मकाष्ठ, धनिया, पीपल, वच, शठी, त्रिफला, अजवाईन, अजमोदा, काकडाशिंगी, गोक्षुर, सरिवन, पिठवन, दन्तीमूल, विडङ्ग, जीरा, कालाजीरा, नीमकी छाल, हीवेर और जवाक्षार प्रत्येक ४ तोले। पाक शेष होनेपर गन्धद्रव्य मिलाना। यह तैल मर्द्दन करनेसे सब प्रकारका विषम ज्वर, प्लीहा, शोथ, प्रमेह ज्वर और पाण्डुरोग आराम होता है।

दशमूल षट्पलक घृत।—दशमूल ८ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, कल्कार्थ पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल, शोंठ, जवाक्षार प्रत्येक ८ तोले दूध ४ सेर, यह सब द्रव्यके साथ विधिपूर्व्वक ४ सेर घृत पाक करना, यह घृत विषमज्वर, प्लीहा, कास, अग्निमान्द्य और पाण्डुरोग नाशक है।

वासाद्य घृत।—अडूसा, गुरिच, त्रिफला, त्रायमाणा और जवासा सब मिलाकर ८ सेर ६४ सेर पानीमें औटाना, शेष १६ रखना। कल्कार्थ पीपलामूल, द्राक्षा, लालचन्दन, नीला यमल और शोंठ सब मिलाकर १ सेर। दुध ८ सेर। विधि पूर्व्वक इसके साथ ४ सेर घृत पाक करना। यह जीर्ण ज्वर नाशक है।

पिप्पलाद्य घृत।—मूर्च्छित घी ४ सेर, पानी १६ सेर, कल्कार्थ पीपल, लालचन्दन, मोथा, खस, कुटकी, इन्द्रयव, अजटा

(भूई अवरा), अनन्तमूल, अतीस, सरिवन, द्राक्षा, आवला, बेलकी छाल, त्रायमाणा और कण्टकारी, सब मिलाकर एक सेर, दूध १६ सेर विधिपूर्व्वक पाक करना। इससे जीर्णज्वर, श्वास, कास, हिक्का, क्षय, शिर शूल, अरोचक, अग्निवैषम्य और अङ्गसन्ताप दूर होता है।

यह सब घृत पहिले आधा तोला मात्रासे सेवन कराना। सहने पर क्रमश मात्रा २ तोलेतक देना चाहिये। अनुपान गरम दूध।

प्लीहा और यकृत्।

माणकादि गुडिका।—एक वर्षका पुराना मानकण्ड, अपामार्गके जडकी राख, गुरिच, अडूसेकी जड, सरिवन, सेंधानमक, चीतामूल, शोठ और ताडकी जटाका चार प्रत्येक ६ तोले, कालानमक, सोवर्च्चल नमक, जवाखार और पीपल, प्रत्येक २ तोले, इन सबका चूर्ण १६ सेर गोमूत्रमें पाककर, मोदककी तरह गाढा होनेपर नीचे उतार लेना, ठण्ढा होनेपर ३ पल (२४ तोले) सहत उसमें मिलाना। इसकी आधा तोला मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करानेसे प्लीहा यकृत् आदि नानाप्रकारके उदर रोग आराम होता है।

वृहत् मानकादि गुडिका।—पुराना मानकन्द, अपामार्गका चार, सरिवन, चीतामूल, सेहुडकी जड, शोठ, सेंधानमक,

ताडके जटाका क्षार, विडङ्ग, ह्रीवेर, चाभ, वच, काला नमक, सौवर्च्चल नमक, जवाक्षार, पीपल, शरपुङ्ख, जीरा और शालि-धामदार की जड, प्रत्येक ४ तोला, एकत्र २४ सेर गोमूत्रमें पाक करना मोदक की तरह गाढा होनेपर त्रिकटु, हींग, अजवाईन, कूठ, शठी, त्रिवृत, दन्तीमूल और इन्द्रवारुणी की जड प्रत्येकका चूर्ण २ तोले मिलाना। ठण्ढा होनेपर २४ तोले सहत मिलाना। इसकी आधा तोला मात्रा गरम पानीमें प्रयोग करना। इससे यकृत्शूल और पार्श्वशूल आराम होता है।

गुडपिप्पली।—विडङ्ग, त्रिकटु, कूठ, हींग, पञ्चलवण, जवाक्षार, सज्जिक्षार, सोहागा, समुद्रफेन, चीतामूल, गजपीपल, कालाजीरा, ताडके जटाकी राख, कोहडेके डालकी राख, अपमार्ग भस्म और इमलीको छालका भस्म, प्रत्येक समभाग, सबके बराबर पीपलका चूर्ण, सब समष्टीका दूना पुराना गुड एकत्र मिलाना। आधा तोला मात्रा गरम पानीके साथ प्लीहा आदि रोगमें देना चाहिये।

अभयालवण।—नीमकी छाल, पलाशकी छाल, सेहुडकी छाल, अपामार्ग, चीतामूल, वरुणकी छाल, गणियारीकी छाल, बथुआ शाक, गोखरू, वृहती, कटकारी, नाटा, हाफरमाली, कुरैयाकी छाल, घोषालता और पुनर्नवा यह सबको कूट एक हाडीमें रख तिलकी लकडीके आंचसे राख करना। यह राख २ सेर, ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर रहनेपर उतारकर क्रमश २१ दफे छान लेना। इस खार पानीमें सेंधानमक २ सेर, बडी हर्रका चूर्ण एक सेर और गोमूत्र १६ सेर मिलाना। गाढा होनेपर कालाजीरा, त्रिकटु, हींग, अजवाईन, कूठ और शठी प्रत्येकका चूर्ण ४ तोले मिलाना। आधा तोला मात्रा गरम

पानीके साथ देनेसे प्लीहा, गुल्म, आनाह, अष्ठीला और अग्निमान्द्य आदि आराम होता है।

महामृत्युञ्जय लौह।—पारा, गन्धक और अभ्रक प्रत्येक आधा तोला, लोहा १ तोला, ताम्बा २ तोले, जवाखार, सज्जीखार, सैन्धानमक, कालानमक, कौडीका भस्म, शङ्खभस्म, चीतामूल, मैनसिल, हरिताल, हींग कुटकी, विड़ंग, इमलीके छालका भस्म, इन्द्रवारुणी की जड, धनाश्राकडीका मूल, अपामार्ग भस्म, अम्लवेतस, हल्दी, दारुहल्दी, प्रियङ्गु, इन्द्रयव, हरीतकी, अजमोदा, अजवाईन, तूतिया, शरपुङ्ख और रसाञ्जन प्रत्येक द्रव्य आधा तोला इन सबको अदरख और गुरिचके रसकी भावना दे २ पल सहत मिलाकर २ रत्ती मात्राकी गोली बनाना यह दोष विशेषके आधिक्यानुसार उपयुक्त अनुपानके साथप्रयोग करनेसे विषम ज्वर, कास, श्वास, और गुल्म आदि पीडा आराम होती है।

वृहत् लोकनाथ रस।—पारा १ तोला, गन्धक २ तोले की कज्जली तथा अभ्रक १ तोला, घिकुआरके रसमें खलकरो फिर ताम्बा २ तोले, लोहा २ तोला और कौडीका भस्म ८ तोले मिलाकर काकमाचीके रसमें खलकर एक गोला बना सुखाकर फिर वह गोला गजपुटमें फूकना। २ रत्ती मात्रा अनुपान सहत। इससे प्लीहा, यकृत् और अग्रमास रोग आराम होता है।

यकृदरि लौह।—लोहा ४ तोले, अभ्रक ४ तोले, ताम्बा २ तोले, पातीनोबूके जडकी छाल ८ आठ तोले और अन्तर्धूमसे भस्मकिया कृष्णसार मृगका चर्म्म ८ तोले एकत्र पानीके साथ खलकर ८ घुङ्घुची बराबर गोली बनाना। दोषानुसार उपयुक्त अनुपानसे प्रयोग करना।

वृहत् प्लीहारि लौह ।—हिंगुलोत्थ पारा, गन्धक, लौह, अभ्रक, जमालगोटा, सोहागा और शिलाजीत प्रत्येक १ तोला, ताम्बा, मैनसिल और हलदी प्रत्येक २ तोले एकत्र खलकर, दन्तीमूल, त्रिवृतमूल, चीतामूल, समालूका पत्ता, त्रिकटु, अदरख, और भीमराज यथासम्भव इन सबके रस या काढेकी अलग अलग भावना देकर बैरकी गुठली बराबर गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानके साथ देनेसे पाण्डु, कामलादि रोग प्रशमित होता है।

यकृत् प्लीहोदरहर लौह ।—लोहा एकभाग, लोहेका आधा भाग अभ्रक, अभ्रकका आधा भाग रससिन्दूर, अभ्रक और लोहाके समष्टिका तिगुना त्रिफला, इस समष्टिके ६ गुने पानीमे औटाना अष्टमास रहनेपर उतार कर उसके साथ समान भाग घी और लोहा तथा अभ्रकका दूना सतावरका रस और दूध मिलाकर फिर औटाना। (लोहेका आधा भाग औटाती वख्त देना बाकी आधा भाग रख छोडना) गाढा होनेपर वही आधा भाग लोहा और सूरण, कापालिका, चाभ, विडङ्ग, लोध, शरपुङ्ख, अम्बष्ठा, चीतामूल, शोठ, पञ्चलवण, जवाखार, बोजदारक, अलवार्द्दन और मोम प्रत्येक लोहा और अभ्रकके बराबर मिलाना। विचार कर दो आनेसे चार आनेतक मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करानेसे प्लीहा, यकृत् और गुल्म आदि रोग प्रशमित होताहै। प्लीहोदर निवारणके लिये यह मानकन्द, और जिमिकन्दके रसमे खलकर दो दफे पुटमें फूकनेपर काममें लाना चाहिये।

वज्रखार ।—सामुद्र, सेन्धा, साभर और सौवर्च्चल नमक, सोहागा, जवाखार और सज्जीखार प्रत्येकके समभाग को अकवन और सेहुडके दूधकी ३ दिन भावना दे सुखा लेना फिर बन्द ताम्बेके पात्रमे फूकना। फिर दो गुना वजन त्रिकटु, त्रिफला,

जीरा, हल्दी और चीतामूलका चूर्ण प्रत्येक आधा हिस्सा मिलाना। आधा तोला मात्रा गरम पानी या गोमूत्रके अनुपानमें देना।

महाद्रावक।—अडूसा, चीतामूल, अपामार्ग, इमलीकी छाल, कोहडेका डण्डा, सेहुडकी जड, ताडकी जटा, पुनर्नवा और बेत। यह सब द्रव्यका भस्म समभाग, पातीनीबूके रसमें मिलाकर छान लेना। फिर धूपमें सुखाकर २ पल परिमित खारमें जवाखार २ पल, फिटकिरी एक पल, नौसादर १ पल, सैंधव ४ तोले, सोहागा २ तोले, हीराकस १ तोला, मुर्दाशङ्ख १ तोला, गोदन्त ३ तोले और समुद्रफेन १ तोला, यह सब द्रव्यका भी चूर्ण उससे मिलाकर बकयन्त्रमें चुआ लेना। ५।६ बूंद मात्रा ठण्ढे पानीमें मिलाकर पीनेसे प्लीहा यकृत् और गुल्म आदि रोग प्रशमित होता हैं।

शङ्खद्रावक।—अकवनकी छाल, सेहुडकी जड, इमलीकी छाल, तिलकी लकडी, अमिलतासका छाल, चीतामूल, और अपामार्गका भस्म समभाग पानीमें घोलकर छान लेना तथा हलकी आग्नमें औटाना, पानीका स्वाद लवण होनेपर नीचे उतार ४ तोले चार लेना, तथा उसके साथ जवाखार, सज्जीखार, सोहागा, समुद्रफेन, गोदन्त हरिताल, हीराकस और सोरा प्रत्येक ४ तोले, तथा पंच लवण प्रत्येक ८ तोले मिलाना। फिर बडेनीबूके रसमें सब द्रव्य मिला एक बोतलमें भर सात दिन रखना। तथा उसमें ८ तोले शङ्खचूर्ण मिलाकर वारुणीयन्त्रमें चुआ लेना। इसकी भी मात्रा और अनुपान महाद्रावक की तरह व्यवस्था करना।

महाशङ्ख द्रावक।—इमलीकी छाल, पीपलकी छाल, सेहुडकी छाल, अकवनकी छाल और अपामार्ग, इन सबका खार

अलग अलग बनाना। फिर सोहागा, जवाखार, सज्जीखार, हीग, हरिताल, लौग, नौसादर, जायफल, गोदन्ती हरिताल, स्वर्णमाक्षिक, गन्धबोल, मीठाविष, समुद्रफेन, सोरा, फिटकिरी, शङ्खचूर्ण, शम्बूकनाभि चूर्ण, मेनसिल, हीराकस, यह सब द्रव्य सम भाग लेकर वेतसके रसको भावना दे कर एक बोतलमें रखो। फिर बोतल कपडेसे लपेटकर सात दिन गरम स्थानमें रखना, सात दिनके बाद वारुणीयन्त्रसे चुआ लेना। एक रत्ती मात्रा पानके साथ सेवन करनेसे काम, श्वास, क्षय, प्लीहा, अजीर्ण, रक्तपित्त, उर:क्षत, गुल्म, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, शूल और आमवात आदि रोग आराम होता है।

चित्रकघृत।—घृत ४ सेर, काढ़ेके लिये चीतामूल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, काजी ८ सेर, दहीका पानी १६ सेर, कल्कार्थ पीपल मूल, चाभ, चीतामूल, सोंठ, तालीशपत्र, जवाखार सेंधानमक, जीरा काला जीरा, हल्दी, दारुहल्दी और मिरच, सब मिलाकर १ सेर यथाविधि पाक करना। इस घीसे प्लीहा, यकृत् उदराध्मान, पाण्डु, अरुचि और शूल आदि पीड़ामें उपकार होता है।

ज्वरातिसार।

---o---

ह्रीवेरादि—वाला, अतीस, मोथा, सोंठ वेलकी गिरि और धनिया, इसका काढा पीनेसे मलकी चिकनाहट, विवद्धता, शूल और आमदोष तथा सरक्त, सज्वर और विज्वर अतिसार आराम होता है।

पाठादि—ज्वरातिसारके आमावस्थामें अम्बष्ठा, चिरायता, इन्द्रयव, मोथा, खेतपापड़ा, गुरिच और सोंठका काढा देना। इससे सज्वर, आमातिसार प्रशमित होता है।

नागरादि—सोंठ, चिरायता, गुरिच, अतीस और इन्द्रयवका काढा सब प्रकारका ज्वर और अतिसार नाशक है।

गुड़ूच्यादि—गुरिच, अतीस, धनिया, सोंठ, बेलकी गूदो, मोथा, वाला, अम्बष्ठा, चिरायता, कुरैया, लालचन्दन, खस और पद्म-काष्ठका काढा ठण्ढाकर पीनेसे ज्वरातिसार, वमनवेग, अरुचि, वमन, पिपासा और दाह दूर होता है।

उशीरादि।—खसको जड़, वाला, मोथा, धनिया, सोंठ, वराहक्रान्ता, धवइका फूल, लोध और वेलकी गिरी, इसका काढा पीनेसे अग्निकी दीप्ति और आम परिपाक होता है तथा सवेदन, सरक्त, सज्वर या विज्वर अतिसार अरुचि और मलकी पिच्छिलता तथा विवद्धता विनष्ट होता है।

पञ्चमूलादि।—सरिवन, पिठवन, वृहती, कण्टकारी, गोक्षुर, बरियारा, वेलकी गिरी, गुरिच, मोथा, सोंठ, अम्बष्ठा, चिरायता, बाला, कुरैयाकी छाल और इन्द्रयव, इस काढ़ेसे सब

प्रकारका अतिसार, ज्वर, वमन, शूल और भयङ्कर श्वास कास विनष्ट होता है।

कलिङ्गादि।—ज्वरातिसार और दाहमें नीचे लिखा काढ़ा देना। इन्द्रयव, अतीस, शोंठ, चिरायता, वाला और जवासा, अथवा इन्द्रयव, देवदारु, कुटकी, गजपीपल, गोखुर, पीपल, धनिया, बेलकी गिरी, अवष्ठा और अजवाईन, किंवा शोंठ, गुरिच, चिरायता, बेलको गिरी, बाला और इन्द्रयव, मोथा, अतीस और खस, यह योगत्रयका काढ़ा विचारकर प्रयोग करना। इस योगत्रयमें पहिले योगका नाम कलिङ्गादि है।

मुस्तकादि—मोथा, बेलकी गिरो, अतीस, अम्बष्ठा, चिरायता और इन्द्रयवके काढ़ेमे सहत मिलाकर पीनेसे ज्वरातिसार निवृत्त होता है।

घनादि—मोथा, बाला, अम्बष्ठा, अतीस हरीतकी, नीला कमल, धनिया, कुटकी, शोंठ और इन्द्रयवका काढ़ा ज्वरातिसार नाशक है।

बिल्वपञ्चक—ज्वरातिसारमें वमन हो तो मरिवन, पिठवन, बरियारा, बेलकी गिरी और अनारके फलकी छालका काढ़ा देना।

कुटजादि—कुरैयाकी छाल, शोंठ, मोथा, गुरिच और अतीस का काढ़ा पीनेसे ज्वरातिसार आराम होता है।

व्योष्यादि चूर्ण।—शोंठ, पीपल, मिरच, इन्द्रयव, नीमकी छाल, चिरायता, भीमराज, चीतामूल, कुटकी, अम्बष्ठा, दारुहल्दी और अतीस प्रत्येक समान भाग सबके बराबर कुरैयाके जड़की छालका चूर्ण, एकत्र मिलाकर एक आना मात्रा चावलके पानीके साथ पीनेसे या दूने सहतमें मिलाकर चाटनेसे ज्वरातिसार,

तृष्णा, अरुचि, प्रमेह, ग्रहणी, गुल्म, प्लीहा, कामला, पाण्डु और शोथ रोग आराम होता है। यह पाचक और मल-संग्रहक है।

कलिङ्गादि गुड़िका।—इन्द्रयव, बेलकी गिरी, जामुन और आमकी गुठलीका गूदा, कयेथका पत्ता, लाह, हलदी, दारु-हल्दी, वाला, कायफल, श्योनाक छाल, लोध, मोचरस, शङ्खभस्म, धवईका फूल और बड़कीसोर, यह सब द्रव्य समभाग ले चावलके पानीमें पीसकर दो मासे वजनकी गोली बना छायामें सुखा लेना। इससे ज्वरातिसार, रक्तातिसार और पेटकी दर्द आराम होता है।

मध्यम गङ्गाधर चूर्ण।—बेलकी गिरी, सिङ्घाड़ा, अनारका पत्ता, मोथा, अतीस, सफेद राल, धवइका फूल, मिरच, पीपल, शोंठ, दारुहल्दी, चिरायता, नीमकी छाल, जामुनका छाल, रसाजन, इन्द्रयव, अम्बष्ठा, वराहक्रान्ता, वाला, मोचरस, भाग और भृङ्गराज प्रत्येक समभाग तथा कुरैयाकी छालका चूर्ण सबके बराबर एकत्र मिलाना। एक आनाभर मात्रा अनुपान बकरीका दूध, मण्ड या सहत। इससे ज्वरातिसार अतिसार ग्रहणी आदि रोग आराम होता है।

वृहत् कुटजावलेह।—कुरैयाके जड़की छाल १२॥० सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर रहनेपर छान लेना, इसमें २॥ सेर चीनी मिलाकर औटाना, गाढ़ा होनेपर नीचे लिखे द्रव्योंका चूर्ण मिलाकर उतार लेना। अम्बष्ठा, वराहक्रान्ता, बेलकी गिरी, धवईका फूल, मोथा, अनारके फलकी छाल, अतीस, लोध, मोचरस, सफेद राल, रसाजन, धनिया, खस और वाला, यह सब द्रव्यके प्रत्येकका चूर्ण २ तोले। ठण्ढा होनेपर एक पाव सहत मिलाकर भाड़में रखना। इससे सब प्रकारका

अतिसार, ग्रहणी, रक्तस्राव ज्वर, शोथ, वमन, अर्श, अम्लपित्त, शूल और अग्निमान्द्य रोग विनष्ट होता है।

मृतसञ्जीवनी वटिका—पीपल एकभाग, वत्सनाभ विष एक-भाग, हिंगुल २ भाग, यह तीनों द्रव्य जामुनके रसमें खलकर मूलीके बीज बराबर गोली बनाना। यह वटिका ठण्ढे पानीके साथ सेवन करनेसे ज्वरातिसार, विसूचिका और सान्निपातिकज्वर दूर होता है।

सिद्ध प्राणेश्वर रस।—गन्धक पारा और अभ्रक प्रत्येक ४ मासे, सज्जीखार, सोहागेका लावा, जवाखार, पांचो लवण, त्रिफला, त्रिकटु, इन्द्रयव, जीरा, कालाजीरा, चीतामूल, अज-वाईन, विडङ्ग और सोवा प्रत्येकका चूर्ण एक एक मासा, एकत्र पानीमें खलकर एकमासे वजनकी गोली बनाना। अनुपान पानका रस। औषध सेवनके बाद गरम पानी पीना। इससे प्रबल ज्वरातिसार और ग्रहणी आदि रोग आराम होता है।

कनकसुन्दर रस—हिंगुल, मिरच, गन्धक, पीपल, सोहागेका लावा, मिठाविष और धतूरेकी बीज, यह सब समभाग ले भागके रसमें एक पहर खलकर चने बराबर गोली बनाना। इससे तीव्र-ज्वर, अतिसार, ग्रहणी और अग्निमान्द्य आराम होता है। पथ्य दही या मट्ठा और भात।

गगनसुन्दर रस—सोहागेका लावा, हिंगुल, गन्धक और अभ्रक समभाग ले मदारके रसकी तीन दफे भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान सफेद राल २ रत्ती और सहत। इससे रक्तातिसार और आमशूल दूर होता है। यह अग्निवृद्धिकर है। पथ्य मट्ठा और बकरीका दूध।

आनन्दभैरव—हिंगुल, त्रिकटु, सोहागेका लावा, मोठा विष और गंधक समभाग पानीमें खलकर १ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान कुरैयाके छालका चूर्ण और सहत। इससे त्रिदोषज अतिसार आराम होता है।

मृतसञ्जीवन रस।—पारा एकभाग, गन्धक एकभाग, मीठाविष चौथाई भाग, और सबके बराबर अर्थात् सवा दो भाग अभ्रक, धतूरेके पत्तेका रस और गन्धनाकुलीके रसमें एक एक पहर खल करना, तथा धवईफूल, अतीस, मोथा, सोंठ, जीरा, बाला, अजवाईन, धनिया, बेलकी गिरी, अम्बष्ठा, हरीतकी, पीपल, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव, कथेथबेल और कच्चा अनार, यह १६ द्रव्य, प्रत्येक २ तोले कूटकर चौगूने पानीमें औटाना, चतुर्थांश रहनेपर इसी काढेमें उक्त पारा आदिको तीन दिन भावना देकर एक मिट्टीके बरतनमें रख मुंह मिट्टीसे बन्दकर हलकी आंचपर वालुकायन्त्रमें पाक करना। इस औषधका नाम मृतसञ्जीवनी रस है। इसको एक रत्ती मात्रा अतिसारनाशक द्रव्यके अनुपानके साथ देनेसे सब प्रकारका दुर्निवार अतिसार आराम होता है।

कनकप्रभा वटी—धतूरेकी बीज, मिरच, गोयालिया लता, पीपल, सोहागेका लावा, विष और गन्धक, यह सब द्रव्यभागके रसमें खलकर गुंजा बराबर गोली बनाना। इसके सेवन करनेसे अतिसार, ग्रहणी, ज्वर और अग्निमान्द्य आराम होता है। पथ्य—दही भात, ठण्ढापानी और बटेर आदि पक्षीका मांस।

—०—

अतिसार।

आमातिसारमें।

पिप्पल्यादि—पीपल, शोंठ, धनिया, अजवाईन, हरीतकी और वच यह सब द्रव्य समभाग अर्थात् सब मिलाकर दो तोले अच्छी तरह कूटकर पूर्व्वोक्त नियमसे काढा बनाना। इससे आमातिसार आराम होता है।

वत्सकादि—इन्द्रयव, अतीस, शोंठ, बेलकी गिरी, हींग, जौ, मोथा और लालचीता, इन सबका काढा पीनेसे आमातिसार आराम होता है।

पथ्यादि—आमातिसारमें हरीतकी, देवदारु, वच, मोथा, शोंठ और अतीसका काढा पिलाना।

यमान्यादि—अग्निकी दीप्ति और आमरसको पचानेके लिये अजवाईन, शोंठ, खस, धनिया, अतीस, मोथा, बेलकी गिरी, सरिवन और पिठवनका काढा प्रयोग करना।

कलिङ्गादि—कुरैयाकी छाल, अतीस, हींग, बडीहर्रे, सौवर्चल नमक और वच, इन सबका काढा पीनेसे शूलकी दर्द, स्तम्भ और मलकी विवद्धता नाश तथा अग्निकी दीप्ति और आमदोषका परिपाक होता है।

त्र्यूषणादि—प्रबल अतिसारमें शोंठ, पीपल, मिरच, अतीस, हींग, बरियारा, सोवर्च्चल नमक और बडी हर्रे, इन सबका चूर्ण समान भाग गरम पानीमें देना।

वातातिसारमें।

पूतिकादि—वातातिसारकी शान्तिके लिये करञ्ज, पीपल, शोंठ, बरियारा, धनिया और बडी हर्रे, इन सबका काढा देना।

पथ्यादि—प्रवल वातातिसारमें बडी हर्रं, देवदारु, बच, शोंठ, अतीस और गुरिचका काढा प्रयोग करना।

वचादि—वच, अतोस, मोथा, इन्द्रयवका काढा वातातिसार को उत्कृष्ट औषध है।

पित्तातिसारमें।

मधुकादि—पित्तातिसारमें मुलेठी, कायफल, लोध, कच्चे अनारका फल और छिलका। इन सबके चूर्णमें सहत मिलाकर चावल भिगोये पानीके साथ देना।

विल्वादि—आमपित्तातिसारमें वेलकी गिरी, इन्द्रयव, मोथा, वाला और अतोसका काढा पिलाना।

कट्फलादि—कायफल, अतोस, मोथा, कुरैयाको छाल, और शोठ इन सबकी काढेमें थोडा सहत मिलाकर पीनेसे पित्तातिसार की निवृत्ति होती है।

कचटादि—चौराईका पत्ता, अनारका पत्ता, जामुनका पत्ता, सिघाडेका पत्ता, वाला, मोथा और शोठ, इन सबके काढेमें सहत मिलाकर पीनेसे अति प्रवल अतिसारभी बन्द होता है।

किराततिक्तादि—चिरायता, मोथा, इन्द्रयवके काढेमें रसाञ्जन और सहत मिलाकर पीनेसेभी पित्तातिसार आराम होता है।

अति विषादि—अतोस, कुरैयाकी छाल और इन्द्रयव इन सबके चूर्णमें सहत मिलाकर चावल भिगोये पानोमें लेनेसे पित्तातिसार बन्द होता है।

कफातिसारमें।

पथ्यादि—हरीतकी, चीतामूल, कुटकी, अम्बष्ठा, बच, मोथा, इन्द्रयव और शोठका काढा या कल्कसे कफातिसार दूर होता है।

क्रमिघ्नादि—विडङ्ग, बच, विल्वमूल, धनिया और कायफलका काढा भी कफातिसार नाशक है।

चव्यादि—चाभ, अतीस, सोंठ, बेलको गिरो, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव, और बडो हर्रका काढा पोनेसे कफातिसार और वमन निवृत्त होता है।

त्रिदोषातिसार।

समङ्गादि—वराहक्रान्ता, अतीस, मोथा, सोंठ, बाला, धवई का फुल, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव और बेलको गिरो इन सबका काढा पोनेसे त्रिदोषज अतिसार आराम होता है।

पञ्चमूलो बलादि—पञ्चमूल (पित्ताधिक्यमें स्वल्प पञ्चमूल और वातकफाधिक्यमें वृहत् पञ्चमूल), बरियारा, बेलकी गिरो, गुरिच, मोथा, सोंठ, अम्बष्ठा, चिरायता, बाला, कुरैयाको छाल, और इन्द्रयवका काढा पोनेसे त्रिदोषज अतिसार, ज्वर, वमन, शूल उपद्रवयुक्त श्वास और दारुण कास आराम होता है।

शोकादिजातिसार।

पृश्निपर्ण्यादि—पिठवन, बरियारा, बेलको गिरो, धनिया, नीला कमल, सोंठ, विडङ्ग, अतोस, मोथा, देवदारु, अम्बष्ठा और कुरैयाको छालके काढेमें गोलमिरच का चूर्ण मिलाकर पोनेसे शोकजातिसार आराम होता है।

पित्तकफातिसार।

मुस्तादि—मोथा, अतीस, मुर्रा, बच और कुरैयाको छालके काढेमें महा मिलाकर पोनेसे पित्तकफातिसार आराम होता है।

समङ्गादि—वराहक्रान्ता, धवईका फूल, बेलको गिरो आमको गुठलो और पद्मकेसर, किम्बा बेलको गिरो, मोचरस, लोध और कुरैयाको छाल, इन सबका काढा अथवा चावल भिगोये पानीमे कल्क पोनेसे पित्तकफातिसार और रक्तस्राव बन्द होता है।

वातकफातिसार।

चित्रकादि—चीता, अतीस, मोथा, बरियारा, बेलकी गिरी, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव और बड़ी हर्रका काढ़ा वातकफातिसार नाशक है।

वातपित्तातिसार।

कलिङ्गादि कल्क—वातपित्तातिसारग्रस्त रोगीको इन्द्रयव, बच, मोथा, देवदारु और अतीस, यह सब द्रव्य समभाग पीसकर चावल भिगोये पानीके साथ पिलाना।

पक्वातिसार।

वत्सकादि—इन्द्रयव, अतीस, बेलकी गिरी, वाला और मोथा का काढ़ा पिलानेसे आम और शूलविशिष्ट पुराना अतिसार भी बन्द होता है।

कुटज पुटपाक।—कीड़ोंको न खाई हुई, कच्ची और मोटी कुरयाके जड़की छाल कूटकर चावल भिगोये पानीसे तर करना फिर जामुनके पत्तेसे लपेट कर चारो तरफ गाढ़ी मिट्टीका लेपकर पुटपाक करना। ऊपरकी मिट्टी जब लाल हो जाय तब बाहर निकाल उसका रस निचोड़ लेना। इसके दो तोले रसमें थोड़ा मधु मिलाकर देना। यह सब प्रकारके अतिसारको प्रधान औषध है।

कुटजलेह।—कुरैयाकी छाल १२॥ सेर कूटकर ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर रहनेपर उतार कर छान लेना। तथा इसी काढ़ेको फिर औटाना गाढ़ा होनेपर इसमें सोवर्चल नमक, जवाखार, कालानमक, सेंधानमक, पीपल, धवईका फूल, इन्द्रयव और जीरा, इन सबका समभाग चूर्ण १६ तोले मिलाकर उतार लेना।

मात्रा एक तोला सहतके साथ चटाना। इससे पक्का, कच्चा, नानावर्ण और वेदनायुक्त अतिसार तथा दुर्निवार्य्य ग्रहणी आराम होता है।

कुटजाष्टक।—कुरैयाकी छाल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, यह काढा छानकर फिर औटाना, गाढा होनेपर उसमें नीचे लिखी दवाओंका चूर्ण मिलाना। मोचरस अम्बष्ठा, वराहक्रान्ता, अतीस, मोथा, वेलकी गिरी और धवईका फूल, प्रत्येक ८ तोले। इससे सब प्रकारका अतिसार, रक्तप्रदर, रक्तार्श आदि आराम होता है। अनुपान गरम दूध या ठण्ढा पानी, वस्तिदोषमें भातका माड और रक्तस्रावमें बकरीका दूध।

नारायण चूर्ण।—मुरिच, त्रिधारेकी बीज, इन्द्रयव, वेलकी गिरी, अतीस भृङ्गराज, सोंठ और भागका पत्ता, प्रत्येकका चूर्ण समभाग, सबके बराबर कुरैयाके छालका चूर्ण एकत्र मिलाकर एक आना या दो आने मात्रा, सोंठ अथवा सहतके साथ सेवन करनेसे रक्तातिसार शोथ, पाण्डु, कामला अग्निमान्द्य और ज्वर आदि पीडा दूर होती है।

अतिसार वारण रस—हिंगुल, कपूर, मोथा और इन्द्रयव इन सब द्रव्योंको अफीम भिगोये पानीकी भावना देकर एक रत्ती वजन सेवन करनेसे सब प्रकारका अतिसार आराम होता है।

जातीफलादि वटिका—जायफल, पिण्डखजूर और अफीम समभाग पानके रसमें खलकर ३ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान मट्ठा। इससे प्रबल अतिसार बन्द होता है।

प्राणेश्वर रस—पारा, गन्धक, अभ्रक, सोहागेका लावा, सोवा, अजवाईन और जीरा प्रत्येक ४ तोले, जवाखार, हीग, पञ्च लवण, विडङ्ग, इन्द्रयव, राल और चीता प्रत्येक २ तोले, यह

सब द्रव्य पानीमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। इससे अतिसार आराम होता है।

अमृतार्णव रस।—हिंगुलोत्थ पारा, लोहा, गन्धक, सोहागेका लावा, शठी, धनिया, बाला, मोथा, अम्बष्ठा, जीरा और अतीस, प्रत्येक एक तोला, बकरीके दूधमें पीसकर एक मासा वजनकी गोली बनाना। धनिया, जीरा, भाग, शालबीज चूर्ण, सहत, बकरीका दूध, ठण्ढा पानी, केलेके जड़का रस अथवा कण्टकारीके साथ सबेरे लेना चाहिये। इससे सब प्रकारका अतिसार, शूल, ग्रहणी, अर्श और अम्लपित्त आराम होता है।

भुवनेश्वर—सधानमक, त्रिफला, अजवाईन, बेलकी गिरी और धूमसल यह सब द्रव्य पानीमें पीसकर एक मासे वजनकी गोली बनाना। अनुपान पानी, इससे भी सब प्रकारका अतिसार आराम होता है।

जातीफल रस।—पारा, गन्धक, अभ्रक, रससिन्दूर, जायफल, इन्द्रयव, धतूरेको बीज, सोहागेका लावा, त्रिकटु, मोथा, हरीतकी, आम्रकेशी, बेलकी गिरी, शाल बीज, अनारकी छाल और जीरा यह सब द्रव्य समभाग भागके रसमें खलकर एक रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान कुरैया की छालका काढ़ा। यह आमातिसार नाशक तथा अग्निदीप्तिकारक है। रक्तातिग्रहणी रोगमें बेलके गिरीका काढ़ा और सहतके अनुपानसे तथा अतिसारमें शोंठ और धनियाके काढ़ेमें यह गोली देना।

अभयनृसिंह रस—हिंगुल, विष, त्रिकटु, जीरा, सोहागेका लावा, गन्धक, अभ्रक और पारा प्रत्येक समभाग, सबके बराबर अफीम, यह सब द्रव्य नीबूके रसमें खलकर दो रत्ती वजनकी

गोला बनाना। भुने हुए जीरेका चूर्ण और सहतमें देनेसे अतिसार और सग्रह ग्रहणी आराम होता है।

कर्पूर रस—हिंगुल अफीम, मोथा, इन्द्रयव, जायफल और कर्पूर, यह सब समभाग लेकर पानीमें पीसकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। कोई कोई इसमें एकभाग सोहागेका लावा भी मिलाते है। ज्वरातिसार, अतिसार, रक्तातिसार और ग्रहणी रोग का यह महौषध हैं।

कुटजारिष्ट।—कुरैयाकी छाल १२॥ सेर, मुनक्का ६। सवा छ सेर महुयेका फूल १० पल, गाम्भारीकी छाल १० पल, पानी २५६ सेर, शेष ६४ सेर, इस काढेमें धवईका फुल २० पल और गुड १२॥ सेर मिला मुह बन्दकर एक मास रख छोडना। फिर उसे छान लेना। इस अरिष्टसे दुर्निवार ग्रहणी, रक्तातिसार और सब प्रकारका ज्वर आराम हो अग्निकी वृद्धि होती है।

अहिफेनासव—महुवेकी शराब १२॥ सेर, अफीम ४ पल, मोथा, जायफल, इन्द्रयव और इलायची प्रत्येक एक एक पल, यह सब द्रव्य एक बरतनमें रख मुह बन्दकर एक महीना रख छोडना, फिर छान लेना।

षडङ्ग घृत—इन्द्रयव, दारुहल्दी, पीपल, सोंठ लाह और कुटकी, यह ६ द्रव्योंके कल्कमें यथाविधि घी पाककर सेवन करनेसे सब प्रकारका अतिसार आराम होता है। यह घी सेवनके बाद यवागू पथ्य देना चाहिये।

—○—

ग्रहणी ।



शालपर्ण्यादि कषाय—सरिवन, पिठवन, बेलको गिरी, धनिया और सोंठ इनका शृतकषाय पीनेसे वातज ग्रहणी और उसके उपद्रव उदराध्मान और शूलवत् वेदना प्रशमित होता है।

तिक्तादि—कुटकी, सोंठ, रसाञ्जन, धवईका फूल, हरीतकी, इन्द्रयव, मोथा, कुरैयाकी छाल और अतीसका काढ़ा पीनेसे सब प्रकार ग्रहणीरोग और उसके उपद्रव गुह्यशूल आदि आराम होता है।

श्रीफलादि कल्क—बेलके गिरीके कल्कमें थोड़ा गुड़ और सोंठका चूर्ण मिलाकर मट्ठेके साथ सेवन करनेसे अति उग्र ग्रहणी रोग आराम होता है।

चातुर्भद्र कषाय—गुरिच, अतीस, सोंठ और मोथा, इसका काढ़ा आमदोषयुक्त ग्रहणी नाशक, मलसंग्राहक, अग्निदीपक और दोषपाचक है।

पञ्चपल्लव—जामुन, अनार, सिंघाड़ा, अम्बठा और कांचड़ाके पत्तेमें नरम बेलका फल लपेटकर पानीमें उबालना, दूसरे दिन वही बासी बेलका गुद्दा थोड़ा गुड़ और सोंठका चूर्ण मिलाकर खानेसे तथा भोजनके बाद उसका पानी पीनेसे सब प्रकारका अतिसार और प्रबल ग्रहणी रोग आराम होता है।

चित्रक गुडिका—चीतामूल, पीपलमूल, जवाखार, सज्जीखार, सेंधा, सोंचर्चल, काला, औद्भिद और सामुद्रलवण, त्रिकटु, हींग, अजमोदा, और चाभ, यह सब द्रव्योंके चूर्णको बड़े नीबूका रस अथवा

अनारके रसको भावना देकर चार आने मात्राकी गोली बनाना। यह आम परिपाचक और अग्निवर्द्धक है।

नागरादि चूर्ण—शोंठ, अतीस, मोथा, धवईका फूल, रसाञ्जन, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव, बेलकी गिरी पाठा और कुटकी इन सबका समभाग चूर्णमें महत मिलाकर चावल भिगोये पानीके साथ सेवन करनेसे पित्तज ग्रहणीका रक्तभेद, अर्श, हृद्रोग और आमाशयके रोग आराम होते हैं। मात्रा ।) आनेसे ॥) तक।

रसाञ्जनादि चूर्ण—रसाञ्जन, अतीस, इन्द्रयव, कुरैयाकी छाल, शोंठ और धवईका फूल, इन सबका चूर्ण सहत और चावल भिगोये पानीके साथ सेवन करनेसे पित्तज ग्रहणी, रक्तातिसार, पित्तातिसार और अर्शरोग आराम होता है।

रास्नादि चूर्ण—रास्ना, हरीतकी, शठी, शोंठ, पीपल, गोलमिरच, जवाखार, सज्जीखार, पांचोनमक और पीपलामूलका समभाग चूर्ण बड़े नीबूका रस और अम्लरसके साथ लेनेसे कफज ग्रहणी शान्त होती है।

पिप्पलीमूलादि चूर्ण—पीपलामूल, पीपल, जवाखार, सज्जीखार, सेंधानमक, काला नमक, सौवर्चल नमक, औद्भिद और सामुद्रलवण, बड़े नीबूकी जड़, हरीतकी, रास्ना, शठी, गोलमिरच और शोंठ, इन सब द्रव्योंका चूर्ण समभाग गरम पानीके साथ सवेरे सेवन करनेसे कफज ग्रहणी विनष्ट तथा बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है।

मुण्ड्यादि गुडिका—गोरखमुण्डी, सतावर, मोथा, कवाच बीज, चोरोहच गुरिच, मुलेठी और सैन्धव, सबका समभाग चूर्ण, भूजो भांग दो गुनी, यह सब द्रव्य दशगुने दूधसे घृत भाण्डमें पाक करना, जबतक गोला न हो जाय तबतक हलकी आंचपर रखना।

पाक समाप्त होनेपर मधुके साथ सेवन करानेसे वातपित्तज ग्रहणी दूर होता है।

कर्पूरादि चूर्ण—कपूर, सोंठ, पीपल, गोलमिरच, रास्ना, पाचो-नमक, हरीतकी, सज्जीचार, जवाचार और बड़ा नीबू, सबका समभाग चूर्ण ।) भर मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करनेसे, वात-कफज ग्रहणी दोष दूर होकर बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है।

तालिशादि वटी—तालीशपत्र, चाभ और गोलमिरच प्रत्येक एक एक पल, पीपल और पीपलामूल प्रत्येक २ पल, सोंठ ३ पल और चातुर्जात (दालचीनी, इलायची, नागेश्वर, तेजपत्ता) प्रत्येक २ पल, इन सबके चूर्णमें तीगुना गुड़ मिलाकर ६ मासेकी गोली बनाना। इससे वातकफजनित उत्कट ग्रहणी, वमन, कास, श्वास, ज्वर, अरुचि, शोथ, गुल्म, उदर और पाण्डुरोग आराम होता है।

भूनिम्बादि चूर्ण—चिरायता २ तोले, कुटकी, त्रिकटु, मोथा और इन्द्रयव प्रत्येक १ तोला चीतामूल २ तोला और कुरैयाकी छाल १६ तोले एकत्र चूर्ण बनाकर उपयुक्त मात्रा गुड़के शरबतके साथ पीनेसे ग्रहणी, गुल्म, कामला, ज्वर, पाण्डु, प्रमेह, अरुचि और अतिसार रोग आराम होता है।

पाठाद्य चूर्ण।—पाठा, बेलकी गिरी, चितामूल, त्रिकटु, जामुनकी छाल, अनारके फलकी छाल, धवईका फूल, कुटकी, मोथा, इन्द्रयव, अतीस, दारुहल्दी और चिरायता, इन सबका समभाग चूर्ण और सबके बराबर कुरैयाके छालका चूर्ण एकत्र मिलाकर मधु और चावल भिगोये पानीके साथ सेवन करनेसे ज्वरातिसार, शूल, हृद्रोग, ग्रहणी, अरोचक और अग्निमान्द्य विनष्ट होता है।

स्वल्प गङ्गाधर चूर्ण।—मोथा, सेन्धानमक, सोंठ, धवईका फूल, लोध, कुरैयाकी छाल, बेलकी गिरी, मोचरस, पाठा,

इन्द्रयव, बाला, आम्रकेशो, अतोस और वराहक्रान्ता, इन सबका समभाग चूर्णकर सहत और चावल भिगोये पानीके साथ देना। इससे सब प्रकारका अतिसार, शूल, सग्रह ग्रहणो और सूतिका रोग आराम होता है।

बृहत् गङ्गाधर चूर्ण।—बेलको गिरो, मोचरस, पाठा, धवईका फल, धनिया, वराहक्रान्ता, सोंठ, मोथा, अतीस, अफीम, लोध, कच्चा अनारके फलको छाल, कुरैयाको छाल, पारा और गन्धक, प्रत्येक समभाग खल करना। अनुपान चावल भिगोये पानो या माठेके साथ। इससे आठ प्रकारका ज्वर, अतिसार, और ग्रहणो आदि रोग आराम होता है।

स्वल्प लवङ्गादि चूर्ण।—लौंग, अतीस, बेलको गिरो, मोथा, पाठा, मोचरस, जोरा, धवईका फूल, लोध, इन्द्रयव, बाला धनिया, सफेदराल, काकडाशिङ्गी, पीपल सोंठ, वराहक्रान्ता, जवाखार, सेधानमक और रसाञ्जन, यह सब द्रव्य समभाग ले चूर्णकर एकत्र मिलाना। मात्रा १० से २० रत्ती अनुपान सहत और चावल भिंगोया पानो अथवा बकरीका दूध। इससे अग्निमान्द्य, सग्रह ग्रहणो, सशोथ अतिसार, पाण्डु, कामला, कास, श्वास, ज्वर, वमन, अम्लपित्त, शूल और सान्निपातिक सब प्रकारके रोग नष्ट होता है।

बृहत् लवङ्गादि चूर्ण।—लौग, अतोस, मोथा, पोपल, गोलमिरच, सैन्धव, होबेर धनिया, जायफल, कूठ, रसाञ्जन, जावित्री, जायफल, कालाजोरा, सोवर्चल लवण, धवईका फूल, मोचरस, अम्बष्ठा, तेजपत्ता, तालोशपत्र, नागेश्वर, चोतामूल, काला नमक, तितलौकी, बेलको गिरो, टालचोनो, इलायची, पीपलामूल, अजमोदा, अजवाईन, वराहक्रान्ता, इन्द्रयव, सोंठ, अनारके फलको

छाल, जवाखार, नीमकी छाल सफेद राल, सज्जीखार, समुद्रफेन, सोहागेका लावा, बाला, कुरैयाकी छाल, जामुनकी छाल, आमकी छाल, कुटकी तथा शोधित अभ्र, लौह, गन्धक और पारा, प्रत्येक का समभाग चूर्ण। मात्रा एक आना। अनुपान सहत और चावल भिगोया पानी। इससे उत्कट ग्रहणी, सब प्रकारका अतिसार, ज्वर, अरोचक, अग्निमान्द्य, काम, श्वास, वमन, अम्लपित्त, हिक्का, प्रमेह, हलीमक, पाण्डु, अर्श, प्लीहा, गुल्म, उदर, आनाह, शोथ, पीनस, आमवात, अजीर्ण और प्रदर आदि नानाप्रकारके रोग दूर होता है।

नायिका चूर्ण।—पाचीनमक प्रत्येक १॥ डेढ तोला, त्रिकटु प्रत्येक २ तोले, गन्धक १ तोला, पारा आधा तोला, भागका पत्ता ८॥ तोले, इन सबका चूर्णकर एकत्र मिलाना। मात्रा एक मासासे आरम्भ कर आधा तोला तक। यह अत्यन्त अग्निवर्द्धक और ग्रहणी नाशक है।

जातीफलादि चूर्ण।—जायफल, विडङ्ग, चीतामूल, तगरपादुका, तालीश पत्र, लालचन्दन, शोठ, लौंग, कालाजीरा, कपूर, हरीतकी, आवला, मिरच, पीपल, वंशलोचन, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची और नागेश्वर, प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले, भागका चूर्ण ७ पल और चीनी सबके बराबर एकत्र मर्द्दन करना। इससे ग्रहणी, अतिसार, अग्निमान्द्य, कास, क्षय, श्वास, अरोचक, पीनस, वातकफरोग और प्रतिश्याय निवारित होता है।

जीरकादि चूर्ण।—जीरा, सोहागेका लावा, मोथा, पाठा, बेलकी गिरी, धनिया, बाला, सोवा, अनारकी छाल, बराह-क्रान्ता, कुरैयाकी छाल, धवईका फूल, त्रिकटु, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, मोचरस, इन्द्रयव, अभ्र, गन्धक और पारा प्रत्येक समभाग

और समष्टीके बराबर जायफल का चूर्ण, यह सब द्रव्य एकत्र मिला मर्द्दन करना। इससे दुर्निवार ग्रहणी, सब प्रकार का अतिसार, कामला, पाण्डु और मन्दाग्नि का नाश होता है।

कपित्थाष्टक चूर्ण।—अजवाईन, पीपलामूल, दालचीनी, तेजपत्ता, बड़ी इलायची, नागकेशर, शोंठ, मिरच, चीतामूल, बाला, कालाजीरा धनिया और सोवर्च्चल नमक, प्रत्येक एक एक तोला, अम्लवेतस, धवईफूल, पीपल, बेलकी गिरी, अनारका छिलका और गावज़ान, प्रत्येक तीन तीन तोले, चीनी ६ तोले, कयेथका गूदा ८ तोले, एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे अतिसार ग्रहणी, क्षय, गुल्म, कण्ठरोग, कास, श्वास, अरुचि और हिक्कारोग प्रशमित होता है।

दाडिमाष्टक चूर्ण—वंशलोचन २ तोले, दालचीनी, तेजपत्ता, बड़ी इलायची और नागेश्वर, प्रत्येक चार तोले, अजवाईन, धनिया, कालाजीरा, पीपलामूल और त्रिकटु, यह सब प्रत्येक आठ तोले, अनारका छिलका ८ पल और चीनी ८ पल, एकत्र मिलाकर सेवन करनेसे कपित्थाष्टक चूर्णोक्त सब रोग दूर होताहै।

अजाम्बादि चूर्ण—जीरा २ पल, जवाखार १ पल, मोथा २ पल, अफीम १ पल, मदारकी जड़का चूर्ण ४ पल, यह सब चूर्ण एकत्र मिलाकर २से ६ रत्ती मात्रा सेवन करनेसे अतिसार, रक्तातिसार ज्वरातिसार, ग्रहणी और विसूचिका रोग विनष्ट होता है।

कच्चटावलेह।—कच्चट (चौराई) एक सेर, तालमूली एक सेर, १६ सेर पानीमें औटाना ॥ सेर रहनेपर नीचे उतार छान लेना। इस काढ़ेमें एकसेर चीनी मिलाकर पाक करना, चौथाई हिस्सा रहनेपर उसमें बराहक्रान्ता, धवईफूल, पाठा, बेलकी गिरी, पीपल, भाग, अतीस, जवाखार, सौवर्च्चल

नमक, रसाञ्जन और मोचरस प्रत्येक का चूर्ण २ तोले मिलाना। इसकी माता दोष, काल और उमर विचारकर स्थिर करना। पाक शेष तथा ठंढा होनेपर एकपाव सहत मिलाना। यह सब प्रकारका अतिसार, सग्रहग्रहणी, अम्लपित्त, उदरशूल और अरोचक नाशक है।

दशमूल गुड़।—दशमूल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, इस काढ़ेमें पुराना गुड़ १२॥ सेर और अदरखका रस ४ सेर मिलाकर धीमी आचमें औटाना। अवलेहकी तरह गाढा होनेपर पीपल, पीपलामूल, मिरच, सोंठ, हीग, विडङ्ग, अजमोदा, जवाखार, सज्जीखार, चीतामूल, चाभ और पञ्चलवण, यह सब द्रव्य प्रत्येक एक एक पल मिलाकर चलाना तथा पाक समाप्त होनेपर स्निग्ध पात्रमें रखना। माता एक तोला। इससे अग्निमान्द्य, शोथ, आमजग्रहणी, शूल, प्लीहा, उदर, अर्श और ज्वर आराम होता है।

मुस्तकाद्य मोदक।—त्रिकटु, त्रिफला, चीतामूल, लौंग, जीरा, कालाजीरा, अजवाईन, अजमोदा, सौंफ, पान, सोवा, शतमूली, धनिया, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, वंशलोचन, मेथी और जायफल, प्रत्येक २ तोले मोथा ४८ तोले, चीनी १॥ सेर। यथाविधि पाककर मोदक बनाना, माता आधा तोलासे एक तोलातक। यह शामको ठण्ढे पानीमें लेनेसे ग्रहणी, अतिसार, मन्दाग्नि, अरोचक, अजीर्ण, आमदोष और विसूचिका रोग आराम हो देहका बल, वर्ण और पुष्टि सम्पादन करता है।

कामेश्वर मोदक।—आंवला, सैन्धव, कूठ, कटफल, पीपल, सोंठ, अजवाईन, अजमोदा, मुलेठी, जीरा, कालाजीरा, धनिया, शठी, काकड़ाशिंगी, बच, नागेश्वर, तालीशपत्न, दालचीनी तेजपत्ता, इलायची, मिरच, बड़ीहर्रे और बहेड़ा, प्रत्येक का

चूर्ण समभाग ; सबके बराबर थोड़े भूनी हुई बीज समेत भागका चूर्ण, तथा समष्टिकी दो गुनी चीनी, चीनीकी चाशनी गाढ़ी होनेपर उक्त सब चूर्ण मिलाना, फिर थोड़ा घी और सहत मिला मोदक तयार कर भूनी तिलका चूर्ण और कपूरसे अधिवासित करना। इससे ग्रहणी आदि नानाप्रकारके रोगोंकी शान्ति, बल, वीर्य्य और रतिशक्तिकी वृद्धि होती है।

मदन मोदक ।—घीमें भूनी हुई सबीज भागका चूर्ण २१ तोले, त्रिकट, त्रिफला, काकड़ाशिंगी, कूठ, धनिया, सैन्धव, शठी, तालीशपत्र, कटफल, नागेश्वर, अजमोदा, अजवाईन, मुलेठी, मेथी, जीरा और कालाजीरा, प्रत्येक का चूर्ण एक एक तोला, चीनी ४२ तोले, पाकयोग्य पानीमें औटाना, पाकशेष होनेसे घी और सहत मिलाकर मोदक बना दालचीनी, तेजपत्ता और इला-यची का चर्ण मिलाना। उपयुक्त मात्रा सवेरे सेवन करनेसे वात-कफ रोग, कास, सब प्रकारका शूल, आमवात और संग्रहग्रहणी विनष्ट होता है।

जीरकादि मोदक ।—जीरा ८ पल, घीमें भूनी भागके बीजका चूर्ण ४ पल, लौह, वंग, अभ्र, सौफ, तालीशपत्र, जावित्री, जायफल, धनिया, त्रिफला, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, लौंग, कडोला, सफेद चन्दन, लाल चन्दन, जटामासी, द्राक्षा, शठी, सोहागेका लावा, मुलेठी, वंशलोचन, बाला, गोरचचाकुला, त्रिकटु, धवईकाफूल, बेलकी गिरी, अर्जुनकी छाल, सोवा, देव-दारु, कपूर, प्रियङ्गु, जीरा, मोचरस, कुटकी, पद्मकाष्ठ और नालुका प्रत्येक का चूर्ण दो दो तोले और समष्टिकी दूनी चीनी, पाक शेष होनेपर घी और सहत मिलाकर मोदक बनाना। १ तोला मात्रा सवेरे ठण्ढे पानीके साथ लेनेसे सब प्रकारकी ग्रहणी,

अग्निमान्द्य, अतिसार, रक्तातिसार, विषमज्वर, अम्लपित्त और सब प्रकारका उदर रोग आदि पीडा दूर होती है।

वृहत् जीरकादि मोदक।—जीरा, कालाजीरा, कूठ, सोंठ, पीपल, मिरच, त्रिफला, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, वंशलोचन, लौंग, छडीला, लाल चन्दन, सफेद चन्दन, काकोली, क्षीरकाकोली, जावित्री, जायफल, मुलेठी, सौंफ, जटामासी, मोथा, सौवर्चल नमक, शठी, धनिया, देवताड, मूगमासी, द्राक्षा, नखी, सोवा, पद्मकाष्ठ, मेथी, देवदारु, बाला, नालुका, सैन्धा नमक, गजपीपल, कपूर, प्रियङ्गु, प्रत्येक एक एक भाग, लोहा, अभ्र और वंग प्रत्येक २ भाग, सब चूर्णके बराबर भूजे हुए जीराका चूर्ण। समष्टी को दूनी चीनीकी चाशनीकर उक्त सब चूर्ण तथा घी और सहत मिलाकर मोदक बनाना। अनुपान गायका घी और चीनी। इससे अस्सी प्रकारका वायुरोग चालीस प्रकारका पित्तज रोग, सब प्रकारका अतिसार, शूल अर्श, जीर्णज्वर, विषमज्वर, सूतिकारोग, प्रदर आदि नानाप्रकार का रोग दूर होता है।

मेथी मोदक।—त्रिकटु, त्रिफला, जीरा, कालाजीरा, धनिया, कायफल, कूठ, काकडाशिंगी, अजवाईन, सैन्धव, काला नमक, तालीशपत्र, नागेश्वर, तेजपत्ता, दालचीनी, बडी इलायची, जायफल, जावित्री, लौंग, सुरामांसी, कपूर, और लालचन्दन, इन सबका चूर्ण समभाग तथा सबके बराबर मेथीका चूर्ण। यह मोदक दो गुना पुराने गुडमें बनाना, पाक शेष होनेपर घी और सहत मिलाना। इससे अग्निमान्द्य, ग्रहणी, प्रमेह, मूत्राघात, अश्मरी, पाण्डु, कास, यक्ष्मा और कामला रोग आराम होता है।

वृहत् मेथी मोदक।—त्रिफला, धनिया, सोंठ, मिरच, पीपल, कायफल, सेंधा नमक, काकड़ासिंगी, जीरा, कालाजीरा, कूठ, अजवाईन, नागेश्वर, तेजपत्ता, तालीशपत्र, कालानमक, जायफल, दालचीनी, इलायची, जावित्री, कपूर, लौंग, सोवा, सुरामासी, मुलेठी, पद्मकाष्ठ, चाभ, सौंफ, और देवदारु, प्रत्येकका चूर्ण समभाग और सबके बराबर मेथीका चूर्ण तथा सब समष्टीकी दूनी चीनीको चाशनीमें यह सब चूर्ण मिला नीचे उतार घी और सहत मिलाकर मोदक बनाना। मात्रा आधा तोला, इससे अग्निमान्द्य, आमदोष, आमवात, ग्रहणी, प्लीहा, पाण्डु, अर्श, प्रमेह, कास, श्वास, सर्दी, अतिसार और अरोचक रोग आराम होता है।

अग्निकुमार मोदक।—खसकी जड़, बाला, मोथा, दालचीनी, तेजपत्ता, नागेश्वर, जीरा, कालाजीरा, काकड़ासिंगी, कायफल, कूठ, शठी, त्रिकटु, बेलकी गिरी, धनिया, जायफल, लौंग, कपूर, कान्तलौह, छड़ीला, वंशलोचन, इलायची, जटामासी, रास्ना, तगरपादुका, वराहक्रान्ता, बरियारा, अभ्र, सुरामासी और वंग, यह सब द्रव्य प्रत्येक समभाग, तथा सबके बराबर मेथीका चूर्ण और मेथीका आधा भाग भागका चूर्ण, तथा सब चूर्णकी दूनी चीनी। पाकशेष होनेपर सहत मिला मोदक बनाना। ठण्ढा पानी अथवा बकरीके दूधमें आधा तोला मात्रा सवेरे सेवन करानेसे दुर्निवार ग्रहणी, श्वास, कास, आमवात, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, विषमज्वर, आनाह, शूल, यकृत् प्लीहा, उदर, अठारह प्रकारका कुष्ठ, उदावर्त्त और गुल्म रोग आराम होता है।

ग्रहणीकपाट रस।—सोहागेका लावा, जवाखार,

गन्धक, पारा, जायफल, खैर, जीरा, सफेदराल, कवावचीनी और बकपुष्प, प्रत्येक द्रव्यका आधातोला चूर्ण, बेलका पत्ता, कपासका फल, शालिच, कटेरी, शालिचमूल, कुरैयाकी छाल चौराई-पत्तेके रसमें मर्दन कर एकरत्ती वजनकी गोली बनाना। यह औषध तीन दिन देना तथा औषध खानेके बाद आधपाव दही पिलाना, इससे सब प्रकारकी ग्रहणी, आमशूल, ज्वर, कास, श्वास, शोथ और प्रवाहिका आदि नानाप्रकारके रोग आराम होता है।

सग्रह ग्रहणीकपाट रस।—मोती, सोना, पारा, गन्धक, सोहागेका लावा, अभ्रक, कौडी भस्म और विष प्रत्येक १ तोला, शङ्ख भस्म ८ तोले, सब एकत्रकर अतीसके काढ़ेकी भावना दे एक गोला बना दो पहर गजपुटमें फूकना, आग ठण्ढी होनेपर औषध निकालकर लोहेके पात्रमें धतूरा, चीता और तालमूलीके रसकी भावना दे २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान वाताधिक्य ग्रहणीमें घी और गोलमिरच, पित्ताधिक्य ग्रहणीमें मद्दत और पीपल तथा कफाधिक्य ग्रहणीमें भागका रस या घी मिलाया त्रिकटु। इससे ग्रहणी, क्षय, ज्वर, अर्श, मन्दाग्नि, अतिसार, अरोचक, पीनस और प्रमेह नष्ट होता है।

ग्रहणीशार्दूल वटिका—जायफल, लौंग, जीरा, कूठ, सोहागेका लावा, कालानमक, दालचीनी, इलायची, धतूरेकी बीज, और अफीम, प्रत्येक समभाग, गधालीके रसमें खल्कर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना, इससे ग्रहणी, नानाप्रकार अतिसार और प्रवाहिका रोग आराम होता है।

ग्रहणीगजेन्द्र वटिका।—पारा, गन्धक, लोहा, शङ्ख-भस्म, सोहागेका लावा, हींग, शठी, तालिशपत्र, मोथा, धनिया, जीरा, सैन्धानमक, धवईका फूल, अतीस, सोंठ, गृहधूम, हरी-

तकी, मैलावा, तेजपत्ता, जायफल, लौंग, दालचीनी, इलायची, वाला, वेलगिरी और मेथी, यह सब द्रव्य भांगके रसमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना, यह ग्रहणी, ज्वरातिसार, शूल, गुल्म, अम्लपित्त, कामला, हलीमक, कण्डू, कुष्ठ, विसर्प, गुदभ्रंश और क्रिमिरोग नाशक तथा बल, वर्ण और अग्निजनक है।

अग्निकुमार रस—पारा, गन्धक, मीठाविष, त्रिकट, सोहागेका लावा, लौहभस्म, अजमोदा और अफीम प्रत्येक समभाग, सबके बराबर अभ्रभस्म, एकत्र चीतामूलके काढ़ेमें एक पहर खलकर गोलमिरचके बराबर गोली बनाना। इससे अजीर्ण और ग्रहणी रोग दूर होता है।

जातीफलाद्य वटी।—जायफल, सोहागेका लावा, अभ्रभस्म और धतूरेकी बीज प्रत्येक एक तोला अफीम २ तोले, यह सब द्रव्य गन्धाली पत्तेके रसमें खलकर चने बराबर गोली बनाना। यह गोली ग्रहणी रोगमें सहतके साथ और दोषानुसार अनुपान विशेषके साथ सब प्रकारके अतिसारमें भी प्रयोग कर सकते हैं। *गोली सेवनके बाद दही और भात भोजन कराना चाहिये।*

महागन्धक।—पारा २ तोले, गन्धक २ तोलेकी कज्जली बनाना। कज्जलीमें थोड़ा पानी मिला एक लोहेके पात्रमें रख गरम करना फिर जायफल, लौंग, जावित्री और नीमका पत्ता प्रत्येक का चूर्ण २ तोले इसमें मिलाना। फिर दो सीपमें यह औषध बन्दकर केलेका पत्ता लपेट मिट्टीका लेप करना। सूखजानेपर गजपुटमें फूंकना, उपरकी मिट्टी लाल हो जानेपर दवा आगसे निकालकर एकट्ठे और खल करना। इसकी पूरी मात्रा २ रत्ती। ग्रहणी, अतिसार, सूतिका, कास, श्वास और बालकोंके उदरामय रोगोंमें इससे विशेष उपकार होता है।

महाभ्र वटी।—अभ्रक, ताम्बा, लौह, गन्धक, पारा, मैनसिल, सोहागीका लावा, जवाखार और त्रिफला प्रत्येक ८ तोले, मीठाविष आधा तोला, एकत्र मर्द्दन कर, भाग, सोमराजी, भृगराज, वेलका पत्ता, पालिधापत्र, गनियारी, विधारा, धनिया, खुलकुडी, निर्गुण्डी, नाटाकरञ्ज, धतूरेका पत्ता, श्वेत अपराजिता, जयन्ती, अदरख, अडूसा और पान यथासम्भव इन सबके प्रत्येकके पत्तेका रस ८ तोला, या भिगोये हुये पानीको अलग अलग भावना देकर थोडा गिला रहनेपर ८ तोले गोलमिरचका चर्ण मिला, एक रत्ती बराबर गोली बनाना, अनुपान विशेषके साथ यह ग्रहणी, अतिसार, सूतिका, शूल, शोथ, अग्निमान्द्य, आमवात और प्रदर आदि रोगोंमें प्रयोग करना।

पीयूषवल्ली रस।—पारा, गन्धक, अभ्र, रौप्य, लोहा, सोहागेका लावा, रसाञ्जन, स्वर्णमाक्षिक, लौंग, लालचन्दन, मोथा, पाठा, जीरा, धनिया, बराहक्रान्ता, अतीस, लोध, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव, दालचीनी, जायफल, शोंठ, नीमकी छाल, धतूरेकी बीज, अनारकी छाल, लज्जालुलता, धवइफूल और कूठ प्रत्येक आधा तोला, इन सबको एकत्र मिला कसेरूका रस और बकरीके दूधकी भावना देकर चने बराबर गोली बनाना। भूजा बेल और गुडके साथ देनेसे रक्तातिसार, ग्रहणी और रक्तप्रदर आदि विविध पीडा इससे आराम होता है।

श्रीन्पतिवल्लभ।—जायफल, लौंग, मोथा, दालचीनी, इलायची, सोहागेका लावा, हींग, जीरा, तेजपत्ता, अजवाइन, शोंठ, सैंधव, लोहा, अभ्रक, पारा, गधक, और ताम्बा प्रत्येक एक पल, गोलमिरच २ पल एकत्र बकरीका दूध और आंवलेके रसकी

भावना देकर एक आनाभरको गोली बनाना। इससे अग्निमान्द्य, ग्रहणी, शूल, कास, श्वास, शोथ, भगन्दर, उपदंश और गुल्म आदि पीडा आराम होती है।

बृहत् नृपवल्लभ ।—पारा, गन्धक, लोहा, अभ्र, सोसा, चीतामूल, मोथा, सोहागेका लावा, जायफल, लौंग, दालचीनी, इलायची, वंग, तेजपत्ता, कालाजीरा, अजवाईन, शोंठ, सेंधव, गोलमिरच और ताम्बा प्रत्येक एक एक तोला, स्वर्णभस्म आधा तोला, इन सब द्रव्योंको अदरख और आंवलेके रसको भावना दे चने बराबर गोली बनाना। इससे भी ग्रहणी, अग्निमान्द्य और अजीर्ण आदि उदरामय रोग आराम होता है।

ग्रहणीवज्रकपाट—पारा, गधक, जवाखार, अजवाईन, अभ्रक, सोहागेका लावा और जयन्ती समभाग ले, जयन्ती, भीमराज और जम्बीर नीबूके रसमें एक एक दिन खलकर गोला बनाना। शीशी आचमें गोला गरम कर ठण्ढा हो जानेपर भाग, सेमर और हरीतकीके रसको सात सात दफे भावना देना। उपयुक्त मात्रासे सहतके साथ देनेसे ग्रहणी रोग विनष्ट होता।

जवम्भ रस—जायफल, लौंग, मोथा, दालचीनी, इलायची, सोहागेका लावा, लौंग, जीरा, तेजपत्ता, अजवाईन, शोंठ, सैधव, लोहा, अभ्र, ताम्बा, पारा, गधक, [illegible] और रौप्य, प्रत्येक समभाग आंवलेके रसको भाव[illegible] बराबर गो[illegible] बनाना। यह औषध [illegible] ग्रहणी, [illegible]

कर एक सेर, यथाविधि घृत पाककर प्रयोग करनेसे ग्रहणी, प्रवाहिका और वातकफजनित रोग आराम होता है।

मरिचाद्य घृत—घी ४ सेर, दशमूल ६। सेर, पानी ३२ सेर, शेष ८ सेर, दूध ८ सेर कल्कार्थ गोलमिरच, पीपलामूल, सोंठ, पीपल, भिलावा, अजवाइन, विडङ्ग, गजपीपल, हींग, सौवर्च्चल, काला, सैंधव और कटैलानमक, चाभ, जवाखार चीतामूल और वच प्रत्येक ४ तोले यथाविधि पाक करना। यह अग्निमान्द्य, ग्रहणी, प्लीहा, अर्श, भगन्दर, आमदोष, क्रिमि, श्वास और कास नाशक है।

महाषट्पलक घृत—घी ४ सेर, दशमूलका काढा ४ सेर, अदरखका रस ४ सेर, शुक्त ४ सेर, दूध ४ सेर, दहीका पानी ४ सेर और काजी ४ सेर। कल्कार्थ पञ्चकोल, सौवर्च्चल, सैन्धव, काला और पाङ्गानमक, हीवेर, अजमोदा, जवाखार, हींग, जीरा, कालाजीरा, और अजवाईन प्रत्येक ४ तोले। यथाविधि पाक करना। इससेभी ग्रहणी, अर्श, श्वास, कास और क्रमि आदि रोग आराम होता है।

बिल्वतैल।—तिलका तेल ४ सेर, बेलका गूदा ६। सेर और दशमूल ६। सेर एकत्र ६४ सेर पानीमें औटाना शेष १६ सेर, अदरखका रस ४ सेर, काजी ४ सेर, दूध ४ सेर। कल्कार्थ धवइफल, बेलगिरी, कूठ, शठी, रास्ना, पुनर्नवा, त्रिकटु, पीपलामूल, चीतामूल, गजपीपल, देवदारु, वच, कूठ, मोचरस, कुटकी, तेजपत्ता, अजमोदा, और अश्व० प्रत्येक चार चार तोले, कल्की आचवर यथाविधि पाक करना। यह समग्र ग्रहणी, अतिसार, गुल्म और सूतिका आर वह्निरोग नाशक है।

ग्रहणीमिहिर तैल।—तिलका तेल ४ सेर, क्वाथार्थ कुरैयाकी छाल किम्वा धनिया १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, अथवा तक्र (मट्ठा) १६ सेर कल्कार्थ धनिया, धवईका

फूल, लोध, बराहक्रान्ता, अतीस, हरीतकी, खसको जड, मोथा, वाला, मोचरस, रसवत, बेलको गिरी, नीलोत्पल, तेजपत्ता, नागेश्वर, पद्मकेशर, गुरिच, इन्द्रयव, श्यामालता, पद्मकाष्ठ, कुटकी, तगरपादुका, जटामासी, कुरैयाकी छाल, दालचीनी, कसेरु, पुनर्नवा, आमकी छाल, जामुनकी छाल, कदम्बकी छाल, अजवाईन और जीरा प्रत्येक २ तोले, यथाविधि पाक करना। ग्रहणी आदि विविध रोगोंमें यह प्रयोग होता है।

वृहत् ग्रहणीमिहिर तैल।—तिलका तैल ४ सेर, क्वाथार्थ कुरैयाकी छाल और धनिया प्रत्येक १२॥ सेर, अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाना, प्रत्येकका शेष १६ सेर, मट्ठा १६ सेर और कल्कार्थ धनिया, धवईका फूल लोध, बराहक्रान्ता, अतीस, हरीतकी, लौंग, वाला, सिघाडेका पत्ता, रसवत्त, नागेश्वर, पद्मकाष्ठ, गुरिच, इन्द्रयव, प्रियङ्गु, कुटकी, पद्मकेशर, तगरपादुका, शरमूल, भृङ्गराज, कसेरु, पुनर्नवा, आमकी छाल, जामुनकी छाल और कदमकी छाल, प्रत्येक दो दो तोले, यथाविधि पाक करना। यह तैल ग्रहणीमिहिर तैलसे भी विशेष उपकारी है।

दाडिमाद्य तैल।—तिलका तैल १६ सेर, अनारके फलकी छाल, बाला, धनिया और कुरैयाकी छाल प्रत्येक द्रव्य ८ सेर अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाना शेष १६ सेर यह सब काढा प्रत्येकका १६ सेर मट्ठा ८ सेर और कल्कार्थ त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, चाभ, जीरा, सेंधव, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, सौंफ, जटामासी, लौंग, जावित्री, जायफल, धनिया, अजवाईन, अजमोदा, बाला, कायफल, अतीस, खुलकुडी, सिघाडेका पत्ता, वृहती, कण्टकारी, आमकी छाल, जामुनकी छाल, सरिवन, पिठवन, वराहक्रान्ता, इन्द्रयव, सतावर, धवईका फूल, बेलकी गिरी, मोच-

रस, तालमूली, कुरैयाकी छाल, बरियारा, गोखुरु, लोध, पाठा, खदिर काष्ठ, गुरिच और सेमरकी छाल, प्रत्येक ४ तोले, अरवा चावल भिगोये पानीमें पीसकर यथाविधि पाक करना। यह ग्रहणी, अर्श, प्रमेह आदि बहुविध रोग निवारक है।

दुग्धवटी।—पारा गन्धक, मीठाविष, ताम्बा, अभ्रक, लोहा, हरिताल, हिंगुल, सेमरका खार और अफीम, प्रत्येक समभाग दूधमें खलकर आधा जौ बराबर गोली बनाना। यह दूधके अनुपानके साथ देनेसे शोथ युक्त ग्रहणी आदि रोग आराम होता है। इसमें पानी पीना और नमक खाना मना है। प्यास लगेतो पानीके बदले दूध पीना चाहिये। दाल तर्कारीके बदले केवल दूधभात या दूधमें औटाया दूसरा पदार्थ मड आदि पथ्य देना उचित है। पानी और नमक बन्द करना कठिन मालूम हो तो, सेन्धानमक केसुरयाके रसमें भूनकर वही नमक दाल और तरकारीमें बहुत थोडा मिलाकर देना तथा पानी गरम कर बहुत मांगनेपर थोडा पीनेको देना चाहिये।

लौहपर्पटी।—पारा २ तोले और गन्धक २ तोलेकी कज्जली बनाकर उसमें २ तोले लोहाभस्म मिलाना तथा लोहेके पात्रमें मर्द्दन करना। फिर लोहेकी कलछीमें घी लगाकर आगपर रख कज्जली गला लेना, फिर वह कज्जली गरम रहतेही, गोबरके उपर केलेका पत्ता रख उसपर ढालना तथा उपरसे दूसराकेलेका पत्ता रखकर गोबरमें ढाक देना। थोडी देर बाद जो चिपटा पदार्थ जम जायगा उसीको लौह पर्पटी कहते है। मात्रा एक रत्तीसे आरम्भकर थोडा थोडा बढाना, अनुपान ठण्ढा पानी या धनिया और जीरेका काढा। इससे ग्रहणी, अतिसार, सूतिका, पाण्डु, अग्निमान्द्य आदि रोग आराम होता है।

स्वर्णपर्पटी।—पारा ८ तोले और सोनेका भस्म १ तोला, एकत्र खूब मर्द्दन कर उसमें ८ तोले गन्धक मिला कज्जली बनाना। फिर लौह पर्पटीको तरह पर्पटी बनाकर उसी मात्रासे प्रयोग करना। इससे ग्रहणी, यक्ष्मा, शूल, आदि रोग आराम होता है।

पञ्चामृत पर्पटी।—गन्धक ८ तोले, पारा, ४ तोले, लोहा २ तोले, अभ्रक एक तोला और ताम्बा आधा तोला, एकत्र लोहेके पात्रमें खलकर पूर्व्ववत् पर्पटी बनाना। २ रत्ती मात्रा घी और सहतके साथ सेवन करनेसे ग्रहणी, शोथ, अर्श, ज्वर, रक्तपित्त, क्षय, कास, अरुचि, वमन और पुराना अतिसार आदि रोगोंका नाश होता है।

रसपर्पटी।—समभाग पारा और गन्धक की कज्जली बनाकर पूर्व्ववत् पर्पटी तयार करना। यह भी ग्रहणी आदि विविध पीड़ानाशक है। मात्रा २ रत्ती। रस पर्पटी सेवनके समयमें भी दुग्धवटीकी तरह जलपान और लवण भोजन परित्याग करना चाहिये।

विजय पर्पटी।—गन्धक के चूर्ण को भगरैया के रसको ७ बार अथवा ३ बार भावना देकर सुखा लेना। फिर वही गन्धक लोहेके पात्रमें गलाकर भगरयाके रसमें डालना। थोड़ो देर बाद निकालकर सूखा लेना। यह गन्धक ८ तोले, शोधित पारा ४ तोले, चांदीका भस्म २ तोले, सोनेका भस्म १ तोला, वैक्रान्त भस्म आधा तोला और मोती चार आनेभर एकत्र खल-कर कज्जली बनाना। बैरको लकड़ीके अगारेपर इसे गलाकर पर्पटी तयार करना। यह पर्पटी यथानियम २ रत्ती मात्रा सेवन करनेसे दुर्निवार ग्रहणी, शोथ, आमशूल, अतिसार, यक्ष्मा, पाण्डु, कामला, अम्लपित्त, वातरक्त, विषम ज्वर और प्रमेह आदि

विविध रोग निराकृत होता है तथा रोगी क्रमश बल और पुष्टि लाभकर थोड़ेही दिनोंमें चङ्गा हो जाता है। यह औषध सेवन करनेसे स्त्रीसहवास, रात्रिजागरण, कसरत और तिक्त द्रव्य तथा कफजनक द्रव्य भोजन निषिद्ध है। व्यञ्जनादि पथ्य देना हो तो धनिया, हींग, जीरा, सोंठ, सेंधव और घीसे पाक करना चाहिये। वायु कुपित होनेसे विशेष विचारकर कच्चा नारियलका पानी थोड़ा देना, नहीतो दूधके सिवाय और कोई पदार्थ नही पिलाना।

अर्शोरोग (ववासीर)।

चन्दनादि काढा—लालचन्दन, चिरायता, जवासा और सोंठ प्रत्येक आधा तोला यथाविधि औटाकर पिलाना। यह खूनी ववासीर नाशक है।

मरिचादि चूर्ण—गोलमिरच, पोपल, कूठ, सेंधव, जीरा, सोंठ, बच, हींग, विडङ्ग, हरीतकी, चीतामूल और अजवाईन, इन सबका समभाग चूर्ण और समष्टीका दो गुना पुराना गुड़ एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा गरम पानीसे देना।

समशर्कर चूर्ण—बडी इलायची एक भाग, दालचीनी २ तेजपत्ता ३ भाग, नागेश्वर ४ भाग, गोलमिरच ५ भाग, पीपल ६ भाग और शोंठ ७ भाग, एकत्र चूर्णकर समष्टीके बराबर चीनी मिलाना। यह चार आनेभर अथवा अवस्था विशेषमें उससे भी अल्पाधिक माता पानीसे देना।

कर्पूराद्य चूर्ण।—कपूर, लौंग, इलायची, दालचीनी, नागेश्वर, जायफल, खसकी जड, शोंठ, कालाजीरा, कृष्णागुरु, वंशलोचन, जटामासी, नीलाकमल, पीपल, लालचन्दन, तगरपादुका, बाला और शीतलचीनीका समभाग चूर्ण एकत्रकर सब द्रव्यकी आधी चीनी मिलाना। यह वातार्शकी श्रेष्ठ औषध है तथा अतिसार, गुल्म, ग्रहणी और हृद्रोग आदि पीडा नाशक है।

विजय चूर्ण—त्रिकटु, त्रिफला, त्रिजात, वच, हींग, अम्बष्ठा, जवाखार, हरिद्रा, दारुहल्दी, चाभ, कुटकी, इन्द्रयव, चीतामूल, सोवा, पाचो नमक, पीपलामूल, बेलकी गिरी और अजवाईन, सब समभाग एकत्र चूर्णकर गरम पानीके साथ सेवन करनेसे अर्श ग्रहणी, वातगुल्म, कास, श्वास, हिक्का और पार्श्वशूल आदि विविध पीडा नाश होती है।

करञ्जादि चूर्ण—करञ्ज फलका गूदा, चीतामूल, सैन्धव, शोंठ, इन्द्रयव और श्योनाक (शोना) छाल, इन सबका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर उपयुक्त मात्रा मट्ठेके साथ देनेसे भी रक्तार्श आराम होता है।

भल्लातकामृत ग—गुरिच, ईशलांगला, काकडाशिङ्गी, बडी गुच्छापत्र और केतकी पत्रके रसके साथ भेलावेकी नरम बीज एक एक दिन खूब खलकर २ मासे मात्रा प्रयोग करनेसे रक्तार्श आराम होता है।

दशमूल गुड—दशमूल, चीतामूल और दन्तीमूल, प्रत्येक ५ पल, ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर रहते छानकर उसी काढ़ेके साथ १२॥ सेर गुड औटाना। पाकशेष होनेपर त्रिवृत चूर्ण १ सेर मिलाना। इसकी मात्रा आधा तोला। अर्श, अजीर्ण और पाण्डुरोगकी श्रेष्ठ दवा है।

नागराद्य मोदक—शोंठ, भेलावा और बिधारा का बीज प्रत्येकका समभाग चूर्ण दो गुने गुडमें मिलाकर मोदक बनाना। आधा तोला मात्रा पानीके साथ देना।

स्वल्प शूरण मोदक—गोलमिरच एक भाग, शोंठ दो भाग, चीतामूल ४ भाग, जंगली जिमिकन्द ८ भाग और सबके बराबर गुड, एकत्र मिलाकर मोदक बनाना। १ तोला मात्रा पानीके साथ देना, इससे अर्श, गुल्म, शूल, उदर रोग, श्लीपद, अग्निमान्द्य आदि रोग आराम होता है।

वृहत् शूरण मोदक।—जिमिकन्द का चूर्ण १६ तोले, चीतामूल ८ तोले, बेलकी गिरी ४ तोले, गोलमिरच २ तोले, त्रिफला, पीपल, शतावर, तालीस पत्र, भेलावा और विडङ्ग प्रत्येक का चूर्ण ४ तोले, तालमूली ८ तोले, बिधाराका बीज १६ तोले, दालचीनी ४ तोले और बड़ी इलायची ४ तोले, यह सब द्रव्य १८० तोले पुराने गुडमें मिलाकर मोदक बनाना। मात्रा एक तोला ठण्ढे पानीके साथ। इससे स्वल्प शूरणोक्त रोग समूह तथा शोथ, ग्रहणी, प्लीहा, कास और श्वास आदि रोगभी आराम होता है।

कुटजलेह।—कुरैयाकी छाल १२॥ सेर ६४ सेर पानीमें औटाना ८ सेर रहते छानकर फिर औटाना, गाढ़ा हो जानेपर भेलावा, विडङ्ग, त्रिकटु, त्रिफला, रसाञ्जन, चीतामूल, इन्द्रयव, वच, अतीस और बेलकी गिरी प्रत्येक का चूर्ण ८ तोले। पुराना

गुड ≈॥ सेर, घी एक सेर और मइत एक सेर, यह सब एकत्र मिलाना। आधा तोला मात्रा ठण्ढा पानी, मट्ठा अथवा बकरीके दूधमें देनेसे रक्तार्श, रक्तपित्त और रक्तातिसार आदि रोग नष्ट होता है।

प्राणदा गुड़िका।— सोंठ ३ पल, गोलमिरच १ पल, पीपल २ पल, चाभ १ पल, तालीशपत्र १ पल, नागेश्वर ४ तोले पीपलामूल २ पल, तेजपत्ता १ तोला, छोटी इलायची २ तोले, दालचीनी १ तोला, खसकी जड़ १ तोला, पुराना गुड ३० पल, यह सब द्रव्य एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा प्रयोग करना। अनुपान दूध वा पानी। कोष्ठबद्ध हो तो सोंठके बदले बहेड़े देना।

चन्द्रप्रभा गुड़िका।—बिड़ङ्ग, चीताम्मूल, त्रिकटु, त्रिफला, देवदारु, चाभ, चिरायता, पीपलामूल, मोथा, शठी, वच, स्वर्णमाक्षिक, सैन्धव, सोवर्चल नमक, जवाखार, सज्जीखार, हल्दी, दारुहल्दी, धनिया, गजपीपल और अतीस, प्रत्येक २ तोले, शिलाजीत ८ पल, शोधित गुग्गुल २ पल लोहा २ पल, चीनी ४ पल, वंशलोचन १ पल, दन्तीमूल, त्रिवृत, दालचीनी, तेजपत्ता और इलायची प्रत्येक द्रव्य २ तोला, कज्जली ८ तोले अथवा रससिन्दूर ८ तोले, यह सब एकत्र खल करना। मात्रा पहिले ४ रत्ती फिर सहनेपर बढ़ा देना। अनुपान घी और मइत।

रसगुड़िका।—रससिन्दूर, एकभाग, गोलमिरच विड़ङ्ग, और अभ्रक प्रत्येक ४ भाग, एकत्र जङ्गली पालकी शाककी रसमें ७ बार भावना दे खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। यह अर्श और अग्निमान्द्य नाशक है।

जातीफलादि वटी—जायफल, लौंग, पीपल, सैन्धव, सोंठ,

धतूरेकी बीज, हिङ्गुल और सोहागेका लावा, समभाग नीबूकी रसमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना।

पञ्चानन वटी—रससिन्दूर, अभ्रक, लोहा, ताम्बा और गन्धक, प्रत्येक एक एक तोला, शोधित भेलावा ५ तोले ८ तोले जङ्गली जिमिकन्दके रसमें खलकर एक मासा वजन की गोली बनाना।

नित्योदित रस—पारा, गन्धक, ताम्बा, लोहा, अभ्रक और मीठाविष प्रत्येक समभाग, तथा सबके बराबर भेलावा, सब एकत्र खलकर जिमिकन्द और मानकन्दके रसको तीन दिन भावना दे उरद बराबर गोली बनाना, अनुपान घी।

दन्त्यरिष्ट।—दन्तीमूल आठ तोले चीतामूल ८ तोला और दशमूल प्रत्येक ८ तोले, एकत्र कूटकर ६४ सेर पानीमें औटाना। औटाती वक्त हरीतकी, बहेड़ा और आवला प्रत्येक आठ तोले एकत्र पीसकर मिलाना, फिर १६ सेर पानी रहते छान कर इसमें पुराना गुड़ १२॥ सेर मिलाकर घीके बरतनमें मुंह बन्दकर रखना। १५ दिनके बाद १ भरी मात्रासे प्रयोग करना।

अभयारिष्ट।—हरीतकी एक सेर, आवला २ सेर, कपित्थ की गिरी १० पल, इन्द्रवारुणी ४ तोले, विडङ्ग, पीपल, लोध, गोलमिरच, एलवा, प्रत्येक दो दो पल, यह सब द्रव्य एकत्र ६ मन १६ पानीमें औटाना ६४ सेर रहते उतारकर छान लेना। फिर उसमें २५ सेर पुराना गुड़ मिला घृत भावित पात्रमें १५ दिन रखना। पूर्व्वोक्त मात्रा प्रयोग करनेसे अर्श, ग्रहणी, प्लीहा, गुल्म, उदर, शोथ, अग्निमान्द्य और क्रिमि आदि रोग दूर होता है।

चव्यादि घृत—घी ४ सेर, दहीका पानी १६ सेर, पानी १६ सेर, कल्कार्थ चाभ, त्रिकटु, अम्बष्ठा, जवाखार, धनिया, अजवाईन, पीपलामूल, कालानमक, सेंधानमक, चीतामूल, बेलकी छाल और हरीतकी सब मिलाकर एक सेर यथानियम पाककर सेवन करनेसे मल और वायुका अनुलोम होता है तथा गुदभ्रंश, गुल्म शूल, अर्श और मूत्रकृच्छ्र आदि पीड़ा शान्त होता है।

कुटजाद्य घृत—घी ४ सेर, कल्कार्थ इन्द्रयव, कुरैयाकी छाल, नागकेशर, नीलाकमल, लोध और धवईका फूल सब मिलाकर एक सेर, पानी १६ सेर, यथाविधि पाक करना। यह रक्तार्श निनाशक है।

काशीशाद्य तेल—तिलका तैल १ सेर, काली ४ सेर, कल्कार्थ हिराकस, दन्तीमूल, सेंधव नमक, कनैलकी जड़ और चीतामूल प्रत्येक एक छटाक, यथाविधि पाक करना, प्रयोग करनेके वक्त अकवनका दूध थोड़ा मिला लेना चाहिये।

वृहत् काशीशाद्य तैल—तिलका तेल ४ सेर, कल्कार्थ हिराकस, सैंधव, पीपल, शोठ, कूठ, ईशलाङ्गला, पत्थरचूर, कनैलकी जड़ दन्तीमूल, विडङ्ग, चीतामूल, हरिताल, मैनसिल, सनाय और सेहुड़का दूध सब मिलाकर एक सेर, गोमूत्र १६ सेर, एकत्र यथाविधि पाक करना।

अग्निमान्द्य और अजीर्ण।

वडवानल चूर्ण—सेंधानमक १ भाग, पीपलामूल २ भाग, पीपल ३ भाग, चाभ ४ भाग, चीतामूल ५ भाग, सोंठ ६ भाग और हरीतकी ७ भाग, इन सबका चूर्ण सेवन करनेसे अग्निकी दीप्ति होती है। मात्रा एक आनासे चार आनेभर तक। अनुपान गरम पानी।

सैन्धवादि चूर्ण—सेंधानमक, हरीतकी, पीपल और चीतामूल, इन सबका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर मात्रा ।) आनेभर गरम पानीके साथ सेवन करनेसे, अग्निकी अतिशय दीप्ति होती है। इससे नया चावलका भात, घृतपक्व पदार्थ और मछली आदि भी थोड़ेही देरमें हजम होता है।

सैन्धवाद्य चूर्ण—सैंधव, चीतामूल, हरीतकी, लौंग, मिरच, पीपल, सोहागा, सोंठ, चाभ, अजवाईन, सौफ और वच, यह १२ द्रव्योंका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर २१ दिन नीबूके रसकी भावना देना। यह चूर्ण २ मासे, गरम पानी, नमक मिलाया मट्ठा, दहीका पानी या काञ्जीके साथ सेवन करनेसे, सद्य अग्निकी दीप्ति होती है।

हिङ्गाष्टक चूर्ण—त्रिकटु, अजवाइन, सैन्धव, जीरा, काला जीरा और हींग, प्रत्येकका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाना। भोजनके समय पहिले ग्रासमें यह चूर्ण और घी मिलाकर खानेसे उदावर्त्त, अजीर्ण, प्लीहा, कास और वायु शान्त होता है।

स्वल्प अग्निमुख चूर्ण—हींग १ भाग, वच २ भाग, पीपल ३

भाग, शाठ ४ भाग, अजवाईन ५ भाग, हरीतकी ६ भाग, चीता-मूल ७ भाग, कुठ ८ भाग, एकत्र चूर्ण करना। दधिमण्ड, सुरा या गरम पानीके साथ सेवन करनेसे उदावर्त्त, अजीर्ण, प्लीहा, कास और वायु शान्त होता है।

वृहत् अग्निमुख चूर्ण ।—यवाक्षार, सज्जीखार, चीता-मूल, अम्बष्ठा, करञ्जमूल की छाल, पाचोनमक, छोटो इलायची, तेजपत्ता, वभनेठो, विडङ्ग, हींग, कुठ, शठो, दारुहल्दी, तेवडो, मोथा, वच, इन्द्रयव, आंवला, जीरा, गजपीपल, कालाजीरा, अम्लवेतस, इमली, अजवाइन, देवदारु, हरीतकी, अतीस, अनन्त-मूल, हीवेर, अमिलतास का गूदा, तिलके लकडीका खार, सेजनके जडकी छालका खार, कुलेखाडाका खार, पलाशका खार, वनपला सका खार और गरम गोमूत्रमें ७ बार भिगोया मण्डूर, यह सब द्रव्य समभाग ले, ३ दिन नीबूके रसको, ३ दिन काञ्जीको और ७ दिन अदरखके रसकी भावना दे चूर्ण कर लेना। यह चूर्ण २ तोले मात्रा, भोजनके द्रव्योंमें मिलाकर घो डालकर खानेसे अजीर्ण, अग्नि-मान्द्य, प्लोहा, गुल्म, अष्ठीला और अर्श आदि पोडा शान्त होती है।

भास्कर लवण ।—पीपल, पीपलामूल, धनिया, काला जीरा, सेंधानमक, कालानमक, तेजपत्ता, तालीश पत्र और नाग केशर प्रत्येक २ पल सोवर्चल नमक ५ पल, गोलमिरच, जीरा और सोंठ प्रत्येक एक पल, दालचीनी वडीलायची प्रत्येक ४ तोला, कटेलानमक ८ पल, अनारके फलकी छाल ४ पल, अम्लवेतस २ पल, इन सब द्रव्योंका चूर्ण एकत्र मिलाकर मट्ठा या काञ्जीके साथ सेवन करनेसे वातकफ, वातगुल्म, वातशूल, प्लीहा और पाण्डुरोगादि नानाप्रकारकी पीडा आराम हो अतिशय अग्निकी दीप्ति होती है।

अग्निमुख लवण।—चीतामूल, त्रिफला, दन्तीमूल, तिवडीमूल, और कूठ, प्रत्येक का समभाग चूर्ण, सबके बराबर सैन्धव नमक, एकत्र सेहुडके दूधको भावना देकर, सेहुडके डण्डेमें भर मिट्टीका लेपकर आगमें रखना। जलजानेपर बाहर निकाल चूर्ण करना। इस चूर्णकी माला २ रत्ती। गरम पानीके साथ सेवन करनेसे अतिशय अग्निको दीप्ति होती है तथा प्लोहा और गुल्म आदि नानाप्रकारके रोग नाश होता है।

वाडवानल रस—शोधित पारा २ तोले और शोधित गन्धक २ तोलेको कज्जली तथा पोपल, पाचोनमक, गोलमिरच, त्रिफला जवक्षार, सज्जीक्षार और सोहागा प्रत्येक दो तोले एकत्र चूर्ण-कर निर्गुण्डोके पत्तेके रसकी एक दिन भावना दे, एकरत्ती वजन की गोली बनाना। यह अग्निमान्द्य नाशक है।

हुताशन रस—गन्धक एकभाग, पारा एकभाग, सोहागेका लावा एक भाग, विष ३ भाग, मिरच ८ भाग, यह सब द्रव्य एकत्र नोबूके रसमें एक दिन खलकर मूंगके बराबर गोली बनाना। अनुपान अदरखका रस। यह शूल, अरुचि, गुल्म, विसूचिका, अजीर्ण, अग्निमान्द्य, शिरपोडा और सन्निपात आदि रोगमें प्रयोग होता है।

अग्नितुण्डी बटी—पारा, गन्धक, विष, अजवाईन, त्रिफला, सज्जीक्षार, जवाक्षार, चीतामूल, सेंधानमक, जीरा, सौवर्चल नमक, विडङ्ग, कटैलानमक और सोहागेका लावा, प्रत्येक समभाग और सबके बराबर कुचिला, एकत्र बड़े नोबूके रसमें खलकर गोलमिरच बराबर गोली बनाना। इससे अग्निमान्द्य रोग दूर होता है।

लवङ्गादि मोदक—लौंग, पीपल, शोंठ, गोलमिरच, जीरा, कालाजीरा नागकेशर, तगरपादुका, इलायची, जायफल, वंश-

लोचन, कटफल, तेजपत्ता, पद्मबीज, लालचन्दन, शीतल चीनी, अगुरु, खसको जड, अभ्र, कपूर, जावित्री, मोथा, जटामासी, जौका चावल, धनिया और सोवा, प्रत्येक का समभाग चूर्ण, और चूर्णको दूनी चीनी मिला यथाविधि मोदक बनाना। इससे अम्लपित्त, अग्निमान्द्य, कामला, अरुचि और ग्रहणी आदि रोग दूर होता है।

सुकुमार मोदक—पीपल, पीपलामूल, शोंठ, गोलमिरच, हरीतकी, आवला, चीतामूल, अभ्र गुरिच और कुटकी सबका चूर्ण १ तोला, दन्तीचूर्ण ६ तोले, तेवडीचूर्ण १६ तोले, चीनी २४ तोले, सहत मिलाकर मोदक बनाना। इससे वाताजीर्ण, विष्टम्भ, उदावर्त्त और आनाह रोग प्रशमित होता है।

त्रिवृतादि मोदक—तेवडीमूल, पीपलामूल, पीपल, चीता-मूल, प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल गुरुचकी चीनी ५ पल, शोंठका चूर्ण ५ पल और गुड ३० पल, इसका मोदक बनाना। मात्रा आधा तोलासे २ तोलातक। यह अतिशय अग्निवृद्धि कारक है।

मुस्तकारिष्ट—मोथा २५ सेर, पानी २५६ सेर, शेष ६४ सेर यह काढा छानकर उसमें ३७॥ सेर गुड, धवईकाफूल १६ पल, अजवाईन, शोंठ, गोलमिरच, लौंग, मेथी, चीतामूल, जीरा, प्रत्येकका चूर्ण दो दो पल मिलाना, फिर मुह बन्दकर एक महीना रख द्रवांश छान लेना। इससे अजीर्ण, अग्निमान्द्य, विसूचिका और ग्रहणी रोग आराम होता है।

सुधासागर रस—त्रिकटु, त्रिफला, पाचीनमक, जवाखार, सज्जीखार, सोहागेका लावा, पारा, गंधक, प्रत्येक एक एक भाग, विष २ भाग, एकत्र पानीमें खलकर एकरत्ती बराबर गोली

बनाना। यह गोली सहत और ५ लौंगके चूर्णमें मिलाकर चाटना। इससे सब प्रकारका अजीर्ण, आमवात, ग्रहणी, गुल्म, अम्लपित्त और मन्दाग्नि दूर होती है।

टङ्कनादि वटी—सोहागेका लावा, सोंठ, पारा, गन्धक, मीठाविष और गोलमिरच, प्रत्येक समभाग एकत्र मदारके रसमें खलकर चने बराबर गोली बनाना। यह अग्निमान्द्य नाशक है।

शङ्खवटी—पारा ३ तोले, गन्धक ३ तोले, विष ६ तोले, गोलमिरच १२ तोले, शङ्खभस्म १२ तोले, तथा सोंठ सज्जीखार, हींग, पीपल, सैजन, सौवर्चल नमक, कालानमक, सेंधा और पागानमक प्रत्येक १० तोले कागजी नीबूके रसकी भावना दे गोली बनाना। इससे ग्रहणी, अम्लपित्त, शूल, अग्निमान्द्य आदि रोग नष्ट होकर अग्निकी वृद्धि होती है।

महाशङ्ख वटी।—पीपलामूल, चीतामूल, दन्तीमूल, पारा, गंधक, पीपल, जवाखार, सज्जीखार, सोहागेका लावा, पाचीनमक, गोलमिरच, सोंठ, विष, अजमोदा, गुरिच, हींग और इमलीके छालकी राख, प्रत्येक एक तोला, शङ्खभस्म २ तोले, यह सब द्रव्यमें अम्लवर्ग अर्थात् शरबती नीबू, बिजौरा नीबू, सुकपालकी, चांगेरी (चौपतिया शाक) इमली, बैर और करञ्जके रसकी भावना देकर बेरके गुठली बराबर गोली बनाना। खट्टे अनारका रस, मठा, दहीका पानी, शराब, सीधू, काञ्जी अथवा गरम पानीके अनुपानसे देना। इससे अग्निवृद्धि होकर अर्श, ग्रहणी, क्रिमि, कुष्ठ, प्रमेह, भगन्दर, पथरी, कास, पाण्डु, कामला आदि रोग दूर हो जाता है।

भास्कर रस।—विष, पारा, गंधक, त्रिफला, त्रिकटु, सोहागेका लावा और जीरा, प्रत्येक एकभाग, लौह, शङ्खभस्म, अभ्र और कौडीभस्म प्रत्येक २ भाग, सबके बराबर लौगचूर्ण, इन सबको ७ दिन शरबती नीबूके रसकी भावना दे २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। इसे पानके साथ चिबाकर खाना चाहिये। इससे अग्निकी वृद्धि होकर सब प्रकारका शूल, विसूचिका और अग्नि मान्द्य रोगमें विशेष उपकार होता है।

अग्नि घृत।—पीपल, पीपलामूल, चीतामूल गजपीपल, हींग, चाभ, अजवाईन, पाचीनमक, जवाखार, सज्जीखार, और ह्रीवेर, प्रत्येक का कल्क चार चार तोले, काजी ४ सेर, मट्ठा ४ सेर, अदरखका रस ४ सेर, दही ४ सेर, घी ४ सेर, यथाविधि पाक करना। यह घी मन्दाग्निमें विशेष उपकारी है। इससे अर्श, गुल्म, उदर, ग्रन्थि, अर्व्वुद, अपची, कास, यक्ष्मा, शोथ, मेद, भगन्दर, वस्तिगत और कुक्षिगत रोग समूह आराम होता है।

विसूचिका।

अहिफेनासव—महुवेके फूलकी शराब १२॥ सेर, अफीम ४ पल, मोथा, जायफल, इन्द्रयव और बडी इलायची प्रत्येक एक एक पल, यह द्रव्य एकत्र एक पात्रमें रख मुंह बन्दकर एकमास रखना, फिर द्रव्यांश छान लेना। इससे उग्र अतिसार और प्रबल विसूचिका रोग आराम होता है।

मुस्ताद्य वटी—मोथा एक तोला, पीपल, हींग और कपूर प्रत्येक आधा तोला, यह सब एकत्र पानीमें खलकर २ रत्ती वजनकी वनाना। विसूचिका और प्रवल अतिसारमें विशेष उपकारी है।

कर्पूर रस—हिङ्गुल, अफीम, मोथा, इन्द्रयव, जायफल और कर्पूर, यह सब द्रव्य समभाग पानीमें खलकर २ रत्ती वजनकी गोली वनाना। कोई कोई इसमें सोहागेका लावा १ तोला मिलाते है। यह ज्वरातिसार, अतिसार और ग्रहणी रोग मे उपकारी है।

क्रिमिरोग।

पारसीयादि चूर्ण—पलाशवीज इन्द्रयव, विडङ्ग, नीमकी छाल और चिरायताका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर चार आने भर मात्रा गुड़के साथ ५ दिन सेवन करनेसे अथवा पलाशबीज और अजवाईन का चूर्ण एकत्र मिलाकर खानेसे क्रिमि नष्ट होता है।

दाडिमादि कषाय—अनारके छालकी काढ़ेमें तिलका तेल चार आने भर मिलाकर पीनेसे, पेटके कीडे निकल जाते हैं।

मुस्तकादि कषाय—मोथा, मुहाकानी, त्रिफला, देवदारु, और सेजनकी वीजके काढेमें पीपलचूर्ण और बिडङ्ग चूर्ण एक एक मासा मिलाकर पीनेसे, सव प्रकारको क्रिमि और क्रिमिज रोग दूर होता है।

क्रिमिमुद्गर रस—पारा एक तोला, गन्धक २ तोले, अजमोदा ३ तोले, विडङ्ग ४ तोले, कुचिला ५ तोले, पलाशवीज, ६ तोले एकत्र खल करना। मात्रा एक मासासे ४ मासेतक

सहतमें मिलाकर चाटना तथा उपरसे मोथेका काढा पोना। यह औषध सेवन करनेसे ३ दिनमें क्रिमि और क्रिमिज रोग दूर होता है।

क्रिमिघ्नरस—विडङ्ग, किंशुक, पलाशवीज और निमवीज यह सब द्रव्य चुहाकानीके रसमें खलकर ६ गुञ्जा वरावर गोली बनाना। इससे भो क्रिमि नष्ट होती है।

विडङ्ग रस—पारा, गन्धक, गोलमिरच, जायफल, लौङ्ग, पोपल, हरिताल, शोठ और वङ्ग, प्रत्येक समभाग, समष्टीके बराबर लौह भस्म, तथा सब द्रव्यके बराबर विडङ्ग एकत्र पानीमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। इससे भो क्रिमि नाश होती है।

क्रिमिघातिनी वटिका—पारा एक तोला, गन्धक २ तोले, अजमोदा ३ तोले, विडङ्ग ४ तोले, बभनेठीको वीज ५ तोले केऊ ६ तोले, यह सब द्रव्य सहतमें मिलाकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। यह औषध सेवनके बाद पियास लगनेसे मोथा अथवा चुम्राकानीके काढेमें चोनी मिलाकर पोना। इससे बहुत जल्दी क्रिमि नष्ट होती है।

त्रिफलाद्य घृत—घो ४ सेर गोमूत्र १६ सेर, कल्कार्थ त्रिफला तेवडी, दन्तीमूल, बच और कमलागुडी सब मिलाकर एक सेर यथाविधि पाककर आधा तोला मात्रा गरम दूधमें मिलाकर पोनेसे क्रिमि नष्ट होती है।

विडङ्ग घृत—हरीतकी १६ पल, बहेडा १६ पल, आंवला १६ पल, विडङ्ग १६ पल, पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल और शोंठ मिलाकर १६ पल, दशमूल १६ पल, पानी ६४ सेर, शेष ८ सेर, घृत ४ सेर, कल्कार्थ सेन्धानमक २ सेर, चानी एक सेर यथाविधि पाक करना। यह घो पान करनेसे भी क्रिमि नष्ट होती है।

विडङ्गतैल—सर्षपतैल ४ सेर, गोमूत्र १६ सेर, कल्कार्थ विडङ्ग, गन्धक और मेनसिल सब मिलाकर १ एकसेर, एकत्र पाक करना। यह तैल मस्तकमें लगानेसे केशका कीडा नष्ट होता है।

धुस्तूर तैल—सरसोका तैल ४ सेर, धतूरेके पत्तेका रस १६ सेर, कल्कार्थ धतूराका पत्ता एक सेर एकत्र औटाना। यह तैल मस्तकमें मर्द्दन करनेसे भी केशके कीडे नष्ट होते हैं।

पाण्डु और कामला।



फलत्रिकादि कषाय—त्रिफला, गुरिच, अडूसा, कुटकी, चीरायता और नीमकी छालके काढ़ेमें सहत मिलाकर पीनेसे पाण्डु और कामला रोग प्रशमित होता है।

वासादि कषाय—अडूसा, गुरिच, नीमकी छाल, चिरायता और कुटकीके काढ़ेमें सहत मिलाकर पीनेसे पाण्डु, कामला, हलीमक और कफज रोग आराम होता है।

नवायस लौह—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, विडङ्ग और चीतामूल, प्रत्येक एक एक तोला, लोहा ८ तोले, सबका चूर्ण एकत्र पानीमें खलकर ७ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान सहत और घी।

त्रिकत्रयाद्य लौह।—मण्डूर एक पल, चीनी एक पल कान्तलौह, सोंठ, पीपल, गोलमिरच, हरीतकी, आमला, बहेडा, चीतामूल, मोथा और विडङ्ग, प्रत्येक एक एक तोला, एकत्र लोहेके खलमें, गायका घी एक पल और सहत एक पलके साथ लोहेके दण्डसे ६ दिन खलकर दिनको धूप और रातको ओसमें रखकर खल करना। मिट्टीके बरतनमें भी रख सकते हैं। माला

एक मासा, भोजनके पहिले मध्य और अन्त ग्रासके साथ सेवन करना। इससे पाण्डु, कामला और हलीमक आदि रोग आराम होता है। भोजनके साथ सेवन करनेमें विशेष कष्ट और भोजनमें अप्रवृत्ति होनेसे दूसरे समय दूधके अनुपानसे देना।

धात्रीलौह—आंवला, बहेडा, लौहभस्म, शोंठ, पोपल, गोलमिरच हल्दो, सहत और चोनो, यह सब द्रव्य एकत्र खलकर सेवन करनेसे कामला और हलीमक रोग आरोग्य होता है।

अष्टादशाङ्ग लोह—चिरायता, देवदारु, दारुहल्दो, मोथा, गुरिच, कुटको, परवलका पत्ता, जवासा, खितपापडा, नीम, शोंठ, पीपल, गोलमिरच, चीतामूल आवला, बहेडा, हरीतकी और विडङ्ग, प्रत्येकका चूर्ण समभाग, चूर्णको समष्टोके बराबर लौह भस्म, घी और सहत मिलाकर गोली बनाना। यह सेवन करनेसे पाण्ड, हलीमक, शोथ और ग्रहणी रोग आराम होता है। अनुपान मट्ठा।

पुनर्नवा मण्डूर।—शोधित मण्डूर ५ पल, पाकार्थ गोमूत्र पाच सेर, आसन्न पाकमें पुनर्नवा, तेवडीमूल, शोंठ, पोपल, गोलमिरच, विडङ्ग, देवदारु, चीतामूल, कूठ, त्रिफला, हल्दो, दारुहल्दो, दन्तीमूल, चाभ, इन्द्रयव, कुटको, पोपलामूल और मोथा प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला मिला खूब चलाकर नीचे उतारना। मात्रा ४ मासे। इससे पाण्डु और शोथ, आदि अनेक रोग आराम होता है।

पाण्डु पञ्चानन रस।—लोह, अभ्रक, ताम्बा, प्रत्येक एक एक पल, त्रिकटु, त्रिफला, दन्तीमूल, चाभ, कालाजीरा, चीतामूल, हल्दी, दारुहल्दी, तेवडीमूल, मानकन्दमूल, इन्द्रयव कुटको, देवदारु, बच और मोथा, प्रत्येक दो दो तोले. सब समष्टी

का दूना मण्डूर, मण्डूरका आठगुना गोमूत्र, पहिले गोमूत्रमें मण्डूर औटाना, पाकसिद्ध होनेपर लोहा, अभ्रक आदि द्रव्य मिलाना। गरम पानीके साथ सवेरे सेवन करना चाहिये। इससे पाण्डु, हलीमक और शोथ आदि रोग शान्त होता है।

हरिद्राद्य घृत—भैंसका घी ४ सेर, दूध १६ सेर, पाकार्थ पानी ६४ सेर, कल्कार्थ हल्दी, त्रिफला, नीमकी छाल, बरियारा और मुलेठी सब मिलाकर एक सेर। मात्रा आधा तोला। यह घी सेवन करनेसे कामला नष्ट होता है।

व्योषाद्य घृत—त्रिकटु, बेलकी छाल, हलदी, दारुहल्दी, त्रिफला, श्वेतपुनर्नवा, रक्तपुनर्नवा, मोथा, लौहचूर्ण अम्बष्ठा, विडङ्ग, देवदारु, बिछोटी और बभनेठी, सब मिलाकर एक सेरका कल्क, घी ४ सेर, दूध १६ सेर, पाकार्थ पानी ६४ सेर। यथाविधि पाक करना। यह घी पीनेसे मृत्तिका भक्षण जनित पाण्डुरोग आराम होता है।

पुनर्नवा तैल—तिलका तेल ४ सेर, क्वाथार्थ श्वेतपुनर्नवा १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, कल्कार्थ त्रिकटु, त्रिफला, काकड़ासिंगी, धनिया, कटफल, शठी, दारुहल्दी, प्रियङ्गु, देवदारु, रेणुक, कूठ, पुनर्नवामूल, अजवाइन, कालाजीरा, इलायची, दालचीनी, पद्मकाष्ठ, तेजपत्ता और नागेश्वर, प्रत्येक दो दो तोले, यथाविधि पाककर मालिश करनेसे पाण्डु, कामला, हलीमक और जीर्णज्वर आराम होता है।

रक्तपित्त।

धान्यकादि हिम—धनिया, आंवला, अडूसा, किसमिस और खेतपापडा, इन सबका शीतकषाय पीनेसे, रक्तपित्त, ज्वर, दाह और शोथ आराम होता है।

ह्रीवेरादि क्वाथ—बाला, निलोत्पल, धनिया, लाल चन्दन, मुलेठी, गुरिच, खसकी जड और तेवडोके काढेमें चीनी और सहत मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त जल्दी आराम होकर तृष्णा, दाह और ज्वर दूर होता है।

अटरूषकादि क्वाथ—अडूसेकी जडकी छाल, किसमिस और हरीतकीका काढा, चीनी और सहत मिलाकर पीनेसे श्वास, कास और रक्तपित्त आराम होता है।

एलादि गुड़िका—बडी इलायची एक तोला, तेजपत्ता १ तोला, दालचीनी १ तोला, पीपल ४ तोले, चीनी, मुलेठी, पिण्डखर्जूर, द्राक्षा, प्रत्येक एक एक पल, सबके चूर्णमें सहत मिलाकर गुडिका बनाना, दोषोंका बलाबल विचार कर माला स्थिर करना। इससे कास, ज्वर, हिक्का, वमन, मूर्च्छा, रक्तवमन और तृष्णा आदि रोग आराम होता हैं।

कुष्माण्ड खण्ड।—सफेद कोंहडा कोसा, पानी निचोडा तथा धूपमें थोडी देर सुखाया हुआ १०० पल, ४ सेर घीमें भूनना, थोडा लाल होनेपर कोंहडेका पानी १६ सेर, चीनी १२॥ सेर मिलाकर औटाना, पाकसिद्ध होनेपर नीचे लिखे द्रव्योंके चूर्ण मिला खूब चलाकर ठण्ढा होनेपर दो सेर

सहत मिलाकर घीके बरतनमें रखना। प्रक्षेप द्रव्य—पीपल, शोंठ और जीरा प्रत्येक दो दो पल, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, गोलमिरच और धनिया प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले। मात्रा एक तोलासे दो तोलेतक। अग्नि और बलका बिचार कर मात्रा स्थिर करना। छागादि दूधके साथ सेवन करनेसे विशेष उपकार होता है। यह हृष्य, पुष्टिकर, बलप्रद और स्वरदोष निवारक है। यह औषध सेवन करनेसे रक्तपित्त और क्षयादि नानाप्रकारके रोग आराम होता है।

वासा कुष्माण्ड खण्ड।—अडूसेके जडको छाल ६४ पल, पाकार्थ पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, सफेद कोंहडा किसाहुआ ५० पल, ४ सेर घीमें भूनकर, १०० पल चीनी, अडूसेका काढा और किसाहुआ कोंहडा यह तीन द्रव्य एकत्र औटाना, फिर उपयुक्त समयमें मोथा, आवला, वंशलोचन, बारङ्गी, दालचीनी, तेजपत्ता और इलायची इन सबका चूर्ण दो दो तोले, पलवा, शोंठ, धनिया और मिरच प्रत्येक एक एक पल और पीपल ४ पल उसमें मिला कर खूब चलाकर नीचे उतार लेना। ठण्ढा होनेपर एक सेर सहत मिलाना। इससे कास, श्वास, क्षय, हिक्का, रक्तपित्त, हलीमक, हृद्रोग, अम्लपित्त और पीनस रोग आराम होता है।

खण्डकाद्य लौह।—शतावर, गुरिच, अडूसेके जडकी छाल, मुण्डरी, बरियारा, तालमूली, खदिर काष्ठ, त्रिफला, बारङ्गी और कूठ, प्रत्येक पाच पाच पल, पाकार्थ पानी ६४ सेर, शेष ८ सेर, इस काढेमें मैनसिल या स्वर्णमाक्षिकके साथ फूका हुआ कान्तलौह १२ पल, चीनी १६ पल, घी १६ पल, एकत्र पाक करना, गाढा होनेपर वंशलोचन, शिलाजीत, दालचीनी, काकड़ाशिंगी, विडङ्ग, पीपल, शोंठ और जायफल प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल

और त्रिफला, धनिया, तेजपत्ता, गोलमिरच, नागेश्वर प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले उसमें मिलाना। गाढा होनेपर दो सेर मधुत मिलाना। मात्रा दो आनेसे चार आनेभर तक। दूधके साथ सेवन करनेसे दुर्निवार रक्तवमन, रक्तस्राव, अम्लपित्त, शूल, वातरक्त, प्रमेह, शोथ, पाण्डु, क्षय, काम वमन आदि पीड़ा आराम होती है। यह पुष्टिकारक बलवर्द्धक, कान्ति और प्रीतिजनक तथा चक्षु हितकर है।

रक्तपित्तान्तक लौह—अभ्रभस्म, लौह, मौक्तिक, हरताल और गन्धक समभाग, इन सबको मुलेठी द्राक्षा और गुरिचके काढमें एक दिन खल करना। एक माशा मात्रा चीनी और सहतके साथ सेवन करनेसे रक्तपित्त, ज्वर और दाह आदि नानाप्रकारके रोग दूर होते है। (पारा, गन्धक, हरिताल, और दारमुज विष एकत्र मर्दनकर बालुकायन्त्रमें एक पहर पाक करनेसे एक प्रकारका पीला पदार्थ होता है उसको रसतालक कहते हैं)।

वासाघृत—अडूसेकी छाल, पत्र और मूल मिलाकर ८ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, कल्कार्थ अडूसेका फूल ४ पल, घी ॥ सेर, यथाविधि पाक करना। यह घी थोड़ा सहत मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त रोग शान्त होता है।

सप्तप्रस्थ घृत—शतावर, बाला, द्राक्षा, भूमिकुष्माण्ड, ऊख और आंवला, प्रत्येकका रस चार चार सेर, घी ४ सेर, यथाविधि औटाना। फिर चौथाई वजन चीनी मिलाना मात्रा आठ आनेभरसे दो तोलेतक सेवन करनेसे रक्तपित्त, उरःक्षत क्षय, पित्तशूल आदि रोग दूर होते है। यह बल, शुक्र और ओज वृद्धि कारक भी है।

ह्रीवेराद्य तैल।—तिलका तेल ४ सेर, लाहका काढा

१६ सेर, दूध ४ सेर, कल्कार्थ वाला, खसकी जड, लोध, पद्मकेशर, तेजपत्ता, नागेश्वर, बेलको गिरी, नागरमोथा, शठी, लालचन्दन, अश्वगन्धा, इन्द्रयव, कुरैयाकी छाल, त्रिफला, सोंठ, बहेडाकी छाल, आमकी गुठली, जामुनकी गुठली और लालकमलकी जड, प्रत्येक दो दो तोले यथाविधि पाककर यह तैल मालिश करनेसे त्रिविध रक्तपित्त, कास, श्वास और उरःक्षत रोग आराम होता है तथा बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है ।

—०—

राजयक्ष्मा ।

—०:०—

लवङ्गादि चूर्ण ।—लौंग, शीतलचीनी, खसकी जड, लालचन्दन, तगरपादुका, नीलोत्पल, जीरा, छोटी इलायची, पीपल, अगुरु, दालचीनी, नागेश्वर, सोंठ, जटामांसी, मोथा, अनन्तमूल, जायफल और वंशलोचन, प्रत्येकका चूर्ण एक एक भाग, चीनी ८ भाग एकत्र मिलाकर उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे यक्ष्मा, श्वास, कास और ग्रहणी आदि रोग शान्त होता है। यह रोचक, अग्नि दीपक, तृप्तिकर, बलप्रद, शुक्रजनक और त्रिदोषनाशक है ।

सितोपलादिलेह—दालचीनी एक भाग, बडी इलायची दो भाग, पीपल ४ भाग, वंशलोचन ८ भाग, चीनी १६ भाग एकत्र घी और सहतके साथ चाटनेसे अथवा बकरीके दूधके साथ सेवन करनेसे यक्ष्मा, श्वास, कास, कर्णशूल और क्षयादि रोग प्रशमित होता है। यह हाथ पैर और ऊर्द्ध्वग रक्तपित्तमें प्रशस्त है ।

वृहद्वासावलेह।—अडूसेकी जडकी छाल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, घीव १६ सेर, चीनी १२॥ सेर, त्रिकटु, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, कटफल, मोथा, कूठ, कमीला, श्वेत जीरा, काला जीरा, तेवडी, पीपलामूल, चाभ, कुटकी, हरीतकी, तालीशपत्र और धनिया, प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले यथाविधि पाक करना। ठण्ढा होनेपर एक सेर सहत मिलाना। मात्रा एक तोला, अनुपान गरम पानी, इससे राजयक्ष्मा, स्वरभङ्ग, कास और अग्निमान्द्य आदि रोग नष्ट होता है।

च्यवनप्राश।—बेलकी छाल, गणियारी की छाल, श्योनाक छाल, गाम्भारी छाल, पाटला छाल, बरियारेकी छाल, सरिवन, पिठवन, मुगानि, मापाणी, पीपल, गोक्षुर, वृहती, कण्टकारी, काकडाशिंगी, बिदारीकन्द, द्राक्षा, जीवन्ती, कूठ, अगरू, हरीतकी, गुरिच, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, शठी, मोथा, पुनर्नवा, मेदा, छोटी इलायची, नीलोत्पल, लालचन्दन, भूमिकुष्माण्ड, अडूसेकी छाल, काकोली और काकजङ्घा, प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल, ५०० या सात सेर १३ छटाक आवलेकी पोटली, यह सब एकत्र ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर पानी रहते उतारकर काढा छान लेना और आवला पोटलीसे निकाल बीज अलगकर ६ पल घी और ६ पल तेलमें अलग अलग भूनकर सिल पर पीस लेना। फिर मिश्री ५० पल, ऊपर कहा काढा, और पिसा हुआ आवला एकत्र पाक करना। गाढा होनेपर वंशलोचन ४ पल, पीपल २ पल, दालचीनी २ तोले, तेजपत्ता २ तोले, इलायची २ तोले, नागेश्वर २ तोले, इन सबका चूर्ण मिलाकर उतार लेना। ठण्ढा होनेपर उसमें सहत ६ पल मिलाकर घीके पात्रमें रखना। इसकी

माला आधा तोलासे २ तोले तक। अनुपान बकरीका दूध। इससे स्वरभङ्ग, यक्ष्मा और शुक्रगत दोष आदि शान्त होता है तथा अग्निवृद्धि, इन्द्रिय सामर्थ, वायुकी अनुलोमता, आयुकी वृद्धि और बूढाभी जवानकी तरह बलवान होता है। यह दुर्व्वल और क्षीण व्यक्तिके हकमें अति उत्कृष्ट औषध है।

द्राक्षारिष्ट—द्राक्षा ६।० सवा छ सेर, पानी १२८ सेर, शेष ३२ सेर। इस काढेमें २५ सेर गुड मिलाना, तथा दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, नागेश्वर, प्रियङ्गु, मिरच, पीपल और कालानमक प्रत्येक एक एक पल इसमें मिलाकर चलाना तथा घीके बरतनमें रख मुह बन्धकर एक महीना रख छोडना। फिर छानकर काममें लाना। इससे उर:क्षत, क्षयरोग, कास, श्वास, और गलरोग निराकृत हो बलकी वृद्धि तथा मल साफ होता है।

वृहत् चन्द्रामृत रस—पारा २ तोले, गन्धक २ तोले, अभ्रक ४ तोले, कर्पूर आधा तोला, स्वर्ण १ तोला, ताम्बा १ तोला, लोहा २ तोले, विधारे की बीज, जीरा, बिदारीकन्द, शतमूली, तालमखाना, वरियारेकी जड, लौंग, भांगकी बीज और सफेद राल प्रत्येक आधा तोला, यह सब द्रव्य सहतमें खलकर ॥ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान पीपलका चूर्ण और सहत।

क्षयकेशरी—त्रिकटु, त्रिफला, इलायची, जायफल और लौंग, प्रत्येक एक एक तोला और लौहभस्म ८ तोले बकरीके दूधमें पीसकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान सहत, इससे क्षयरोग दूर होता है।

मृगाङ्क रस—पारा १ तोला, स्वर्णभस्म १ तोला, मुक्ताभस्म २ तोले गंधक २ तोले, सोहागेका लावा २ मासे, यह सब कांजीमें पीसकर गोला बनाकर सुखा लेना फिर सुपेमें रख लवण यन्त्रमें

पाक करना। मात्रा ४ रत्ती। १० दाना गोलमिरच, या १० पीपलका चूर्ण और मधुमें मिलाकर चाटना।

महामृगाङ्क रस।—स्वर्णभस्म एक भाग, रससिन्दूर २ भाग, मुक्ताभस्म ३ भाग, गन्धक ४ भाग, स्वर्णमाक्षिक ५ भाग, प्रवाल ७ भाग, सोहागेका लावा २ भाग, यह सब द्रव्य शर्व्वती नोबूके रसमें ३ दिन खलकर गोला बनाना और वह गोला तेज धूपमें सुखाकर मूषामें रख ४ पहर लवण यन्त्रमें पाक करना। ठण्ढा होनेपर बाहर निकाल लेना। इसके साथ हीरा (अभावमें वैक्रान्त) एक भाग मिलाना। मात्रा २ रत्ती, अनुपान गोलमिरच और घी किम्वा पीपलके चूर्णके साथ मिरच और घी। इससे यक्ष्मा, ज्वर, गुल्म, अग्निमान्द्य, अरुचि, वमन, मूर्च्छा, स्वरभेद और कास आदि नानाप्रकारके रोग शान्त होते हैं।

राजमृगाङ्क रस।—रससिन्दूर ३ तोले, स्वर्ण १ तोला, ताम्बा १ तोला, मैनसिल २ तोले, हरताल २ तोले और गन्धक २ तोले। यह सब द्रव्य एकत्र खलकर बड़ी कौड़ीमें भरकर उसका मुंह बकरीके दूधमें सोहागा पीसकर उससे बन्द करना। फिर एक हाडीमें रख उसका मुंह बन्दकर मिट्टीका लेपकर गजपुटमें फूकना ठण्ढा होनेपर चूर्ण करना, मात्रा दो रत्ती। अनुपान घी मधु और १० पीपल या १८ गोलमिरचके साथ इससे सब प्रकारका क्षयरोग नाश होता है।

काञ्चनाभ्र—सोना, रससिन्दूर, मोती, लोहा, अभ्रक, प्रवाल, रौप्य, हरीतकी, कस्तूरी और मैनसिल, प्रत्येक समभाग, पानीमें खलकर दो रत्ती बराबर गोली बनाना। दोषानुसार अनुपानके साथ देनेसे क्षय, प्रमेह, कास आदि पीड़ा शान्त होकर बलवीर्य बढ़ता है।

वृहत् काञ्चनाभ्र रस।—सोना, रससिन्दूर, मोती, लोहा, अभ्रक, मूगा, वैक्रान्त, ताम्बा, रौप्य, वङ्ग, कस्तूरी, लौंग, जाविती और एलवा यह सब समभाग द्रव्य एकत्र घीकुआरके रसमें केशरियाके रसमें और बकरीके दूधमें ३ दफे भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना। दोषानुसार अनुपानके साथ देनेसे क्षय, श्वास, कास, प्रमेह और यक्ष्मा आदि रोग शान्त होता है।

रसेन्द्रगुडिका।—शोधित पारा २ तोले, जयन्ती और अदरखके रसमें खलकर गोला बनाना, फिर जलकुम्भी और काकमाचीके रसको अलग अलग भावना दे, तथा भगरैयाके रसको भावना दिये हुए गन्धकका चूर्ण एक पल, उक्त पारेमें मिलाकर कज्जली बनाना, फिर छागदूध २ पलमें खलकर उरद बराबर गोली बनाना। अनुपान छागदूध किम्बा अडूसेके पत्तेका रस और महत। इससे क्षयकास, रक्तपित्त, अरुचि और अम्लपित्त रोग नष्ट होता है।

वृहत् रसेन्द्रगुड़िका।—घिकुआरका रस, त्रिफलाचूर्ण, चीताका रस, राईका चूर्ण, भूल, हल्दीका चूर्ण, ईटका चूर्ण, अलम्बुषाके पत्तेका रस और अदरखके रसमें ४ तोले पारा अलग अलग खलकर पानीसे धोकर गाढे कपडेमें छान लेना। फिर जयन्ती, जलकुम्भी और काकमाचीके रसका अलग अलग भावना देकर धूपमें सुखा लेना। तथा भगरैयाके रसमें शोधा हुआ गन्धक एक पल, गोलमिरच, सोहागा, स्वर्णमाक्षिक, तुतिया, हरिताल और अभ्रक प्रत्येक चार चार तोले, यह सब द्रव्य एकत्र मिलाकर अदरखके रसमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान आटीका रस। औषध सेवनके बाद दूध और मांसका जूस पिलाना चाहिये।

इससे चयकास, श्वास, रक्तपित्त, अरोचक, क्रिमि, और पाण्डु आदि रोग नष्ट हो बलबीर्य्य बढता है ।

हेमगर्भपोट्टली रस—रससिन्दूर ३ भाग, सोनेका भस्म १ भाग जारित ताम्र एक भाग, गन्धक एक भाग, यह सब द्रव्य चीताके रसमें दोपहर खलकरनेके बाद कौडीमें भरकर सोहागेसे मुह बन्दकर हाडीमें गजपुटमें फूकना । ठण्ढा होनेपर चूर्ण २ रत्ती वजन सेवन करना । इससे राजयक्ष्मा आराम होता है ।

रत्नगर्भ पोट्टली रस ।—रससिन्दूर, हीरा, सोना, चादी, सीसा, लोहा, ताम्बा, मोती, स्वर्णमाक्षिक, मूगा मिरच, तुतिया और शङ्खभस्म, समभाग आदीके रसमें ७ दिन खलकर कौडीमें भर उसका मुह अकवनके दूधमें पिसा हुआ सोहागेसे बन्दकर हाडीमें रख उसका मुह बन्दकर गजपुटमें फूकना । ठण्ढा होनेपर निर्गुण्डीके रसमें सातवार, आदीके रसमें सातवार और चीताके रसको २१ बार भावना देकर सुखा लेना । इसको मात्रा २ रत्ती अनुपान सहत और पीपलका चूर्ण अथवा घी और गोलमिरचका चूर्ण । इससे कृच्छ्रसाध्य यक्ष्मा, आठ प्रकारका महारोग और ज्वरादि नानाप्रकार पीडा शान्त होती है । (वातव्याधि, अश्मरी, कुष्ठ, प्रमेह, उदररोग, भगन्दर, अर्श और ग्रहणी इन आठ रोगोंको महारोग कहते हैं ।)

सर्व्वाङ्गसुन्दर रस ।—पारा १ भाग, गन्धक एक भाग, सोहागेका लावा दो भाग (सोहागे लावेका चूर्ण कपडेसे छान लेना) मोती, मूगा और शङ्ख प्रत्येक एक भाग और स्वर्णभस्म आधा भाग इन सब द्रव्यको कागजी नीबूके रसकी भावना देकर गोला बनाना तथा मूषेमें बन्दकर गजपुटमें तेज आचसे फूकना । ठण्ढा होनेपर लोहा आधा भाग और लोहेका आधाभाग हिंगुल उसमें मिलाना ।

मात्रा २ रत्ती। अनुपान पीपलका चूर्ण, सहत घी, पानका रस, चीनी अथवा आदीका रस। इससे राजयक्ष्मा, वातिक और पैत्तिकज्वर, सन्निपातज्वर, अर्श, ग्रहणी, गुल्म, प्रमेह, भगन्दर और कास आदि नानाप्रकारके रोग दूर होता है।

अजापञ्चक घृत—बकरीका घी ४ सेर, बकरीके बीटका रस ४ सेर, छागमूत्र ४ सेर, छाग दूध ४ सेर और छागदधि ४ सेर, एकत्र पाककर एक सेर जवाखारका चूर्ण मिलाकर उतार लेना। मात्रा एक तोला। यह घी पीनेसे यक्ष्मा, कास और श्वासरोग आराम होता है।

बलागर्भ घृत—पुराना घी ४ सेर, दशमूलका काढा ८ सेर, बकरीके मासका काढा ४ सेर, दूध ४ सेर। कूटे हुए बरियारेका कल्क एक सेर यथानियम पाक करना। यह घी पीनेसे यक्ष्मा, शूल, क्षत क्षय और उत्कट कासरोग आराम होता है।

जीवन्त्याद्य घृत—पुराना घी ४ सेर, पानी १६ सेर, कल्कार्थ—जीवन्ती, मुलेठी, द्राक्षा, इन्द्रयव, शठी, कूठ, कण्टकारी, गोक्षुर, बरियारा, नीलोत्पल, भुईआमला, जवासा और पीपल सब मिलाकर १ सेर। यथाविधि पाक करना। यह घी पीनेसे ११ प्रकारका उग्रयक्ष्मारोग आराम होता है।

महाचन्दनादि तैल।—तिलका तैल १६ सेर, कल्कार्थ लालचन्दन, सरिवन, पिठवन, कण्टकारी, वृहती, गोक्षुर, मुगानी, माषाणी, बिदारीकन्द, असगन्ध, आमला, शिरीषछाल, पद्मकाष्ठ, खस, सरलकाष्ठ, नागेश्वर, गन्धाली, मूर्व्वामूल, प्रियङ्गु, नीलोत्पल, बाला, बरियारा, गुलशकरी, पद्ममूल, पद्मडण्डा और शालूक मिलाकर ५० पल, श्वेत बरियारा ५० पल, पाकार्थ पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, बकरीका दूध, शतावरका रस, लाहका

काढा, काजी और दहीका पानी प्रत्येक १६ सेर। हरिण, छाग और शशक प्रत्येकका मांस आठ आठ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, (इन सबका काढा अलग अलग रखना) कल्कार्थ श्वेत चन्दन, अगरु, शीतलचीनी, नखी, छडीला, नागेश्वर, तेजपत्ता, दालचीनी, मृणाल, हल्दी, दारुहल्दी, श्यामालता, अनन्तमूल, रक्तोत्पल, तगरपादुका, कूठ, त्रिफला, फरुपाफल, मूर्व्वामूल, नालुका, देवदारु, सरलकाष्ठ, पद्मकाष्ठ, खस, धाईफूल, बेलकी गिरी, रसाञ्जन, मोथा, शिलारस, वाला, वच, मजीठ, लोध, सौंफ, जीवनीयगण, प्रियङ्ग, शठी, इलायची, कुङ्कुम, खटासी, पद्मकेशर, रास्ना, जावित्री, शोंठ और धनिया, प्रत्येक ४ तोले। यथाविधि औटाना। पाकशेष होनेपर बडी इलायची, लौंग, शिलारस, श्वेत-चन्दन, जातीफूल, खटासी शीतलचीनी, अगरु, लताकस्तूरी यह सब गन्ध द्रव्य मिलाकर फिर पाक करना। पाकके अन्तमें छानकर केशर, कस्तूरी और कपूर थोडा मिला रखना, यह तैल मालिश करनेसे राजयक्ष्मा, रक्तपित्त और धातुदौर्व्बल्यादि रोग आराम होता है।

कासरोग।

कटफलादि काढा--कायफल, गन्धतृण, वारङ्गी, मोथा, धनिया, वच, हरीतकी, काकडाशिङ्गी, खेतपापडा, शोठ और देवदारु, इन सबके काढेमें सहत और हींग मिलाकर पीनेसे वातश्लैष्मिक कास, श्वास, क्षय, शूल, ज्वर और कण्ठरोग नष्ट होता है।

मरिचाद्य चूर्ण—गोलमिरच का चूर्ण २ तोले, पीपलका

चूर्ण १ तोला, अनारके बीजका चूर्ण ८ तोले, पुराना गुड १६ तोले और, जवाखार १ तोला, यह सब द्रव्य एकत्र मर्द्दनकर यथायोग्य मात्रा देनेसे अति दुःसाध्य कास और जिस कासमें पीव आदि निकलता है वहभी आराम होता है।

समशर्करं चूर्ण—लौंग २ तोले, जायफल २ तोले, पीपल २ तोले, गोलमिरच ४ तोले, शोंठ ४ पल इन सबका चूर्ण तथा सबके बराबर चीनी, यह सब द्रव्य एकत्र खल करना। ।) भर मात्रा सेवन करनेसे श्वास, कास, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, गुल्म, अग्निमान्द्य और ग्रहणी आदि नानाप्रकारके रोग नष्ट होते है।

वासावलेह।—अडूसेंकी छाल २ सेर, पानी १६ सेर शेष ४ सेर, चीनी १ सेर, और घी एक पाव मिलाकर औटाना, गाढा होनेपर पीपलका चूर्ण १६ तोले मिलाकर नीचे उतारना। ठण्ढा होनेपर एक सेर सहत मिलाना। मात्रा आधा तोला। यह अवलेह राजयक्ष्मा, कास, श्वास, पार्श्वशूल, हृच्छूल ज्वर और रक्तपित्त आदि रोग नाशक है।

तालीशादि चूर्ण और मोदक।—तालीश पत्र १ तोला, गोलमिरच २ तोले, शोंठ ३ तोले पीपल ४ तोले, दालचीनी और इलायची प्रत्येक आधा तोला, चीनी आधा सेर एकत्र मिलाकर ।) आने मात्रा यह चूर्ण सेवन करनेसे कास श्वास और अरुचि आराम हो भूख बढती है। इसमें चीनीके समान पानी मिलाकर यथानियमसे मोदक बनाना, यह चूर्ण की अपेक्षा हलका है। यह मोदक सेवन करनेसे कास, श्वास, अरुचि, पाण्डु, ग्रहणी, प्लीहा, शोथ, अतिसार, जीमचलाना और शूल आदि नानाप्रकारके रोग नष्ट होता। (कोई कोई इसके साथ ५ भाग वंशलोचन भी मिलाते है, पैत्तिक कासमें वंशलोचन मिलाना भी उचित है।)

चन्द्रामृत रस।—त्रिकटु, त्रिफला, चाभ, धनिया, जीरा, सेंधानमक, प्रत्येक एक एक तोला, पारा, गन्धक, लोहा प्रत्येक दो दो तोले, सोहागेका लावा ८ तोले, गोलमिर्च ४ तोले; यह सब बकरीके दूधमें पीसकर ६ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान रक्तोत्पल, नीलोत्पल, कुरथी, छाग दूध और अदरख किसी एकका रस अथवा पीपलका चूर्ण और मधु। इससे नानाविध कास, श्वास, रक्तवमन ज्वर, दाह, भ्रम, और जीर्णज्वर आदि नानाप्रकारके रोग नष्ट होता है। यह अग्नि-वर्द्धक, बलकारक और वर्णकारक है। औषध सेवनकर अडूसा, गुरिच, बारङ्गी, मोथा और कण्टकारी सब मिलाकर २ तोले आधा सेर पानीमें औटाना आधा पाव पानी रहते छानकर मधु मिलाकर पीनेसे विशेष उपकार होता है।

कासकुठार रस—हिंगुल, गोलमिरच, गन्धक, त्रिकटु और सोहागेका लावा. यह सब द्रव्य एकत्र पानीमें खलकर २ रत्तीकी गोली बनाना। अनुपान अदरखका रस। इससे सन्निपात और सब प्रकारका कासरोग नष्ट होता है।

शृङ्गाराभ्र।—अभ्रक १६ तोले, कपूर, जावित्री, बाला, गजपीपल, तेजपत्ता, लौंग, जटामांसी, तालीशपत्र, दालचीनी, नागेश्वर, कूठ और धवईफूल, प्रत्येक आधा तोला, हरीतकी, आमला, बहेड़ा और त्रिकटु, प्रत्येक चार आनेभर, इलायची और जायफल प्रत्येक एक तोला, गन्धक एक तोला, पारा आधा तोला, यह सब द्रव्य पानीमें खलकर भिगे चने बराबर गोली बनाना। अनुपान अदरख और पानका रस। औषध सेवनके बाद थोड़ा ठढा पानी पीना चाहिये। इससे कासादि विविध रोगोंकी शान्ति और बलवीर्य्यकी वृद्धि होती है।

वृहत् शृङ्गाराभ्र।—पारा, गन्धक, सोहागा, नागकेशर, कपूर, जावित्री, लौंग, तेजपत्ता, धतूरेको बोज (कोई २ स्वर्णभस्म भी मिलाते है) प्रत्येक दो दो तोले, अभ्रभस्म ८ तोले, तालीश-पत्र, मोथा, कूठ, जटामासी, दालचीनी, धाईफूल, इलायची, त्रिकट, त्रिफला और गजपीपल, प्रत्येक चार चार तोले, एकत्र पीपलके काढेमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। यह दालचीनीका चूर्ण और सहतके साथ सेवन करनेसे अग्निमान्द्य, अरुचि, पाण्ड, कामला, उदर, शोथ, ज्वर, ग्रहणी, कास, श्वास और यक्ष्मा आदि नानाप्रकारके रोग दूर हो बल, वर्ण और अग्नि-की वृद्धि होती है।

सार्व्वभौम रस—पूर्व्वोक्त शृङ्गाराभ्रमें स्वर्ण या लोहा २ मासे मिलानेसे उसको सार्व्वभौम रस कहते हैं। यह शृङ्गाराभ्रसे अधिक बलकारक है।

कासलक्ष्मीविलास।—वङ्ग, लोहा, अभ्रक, ताम्बा, कासा, पारा, हरिताल, मैनशिल और खपरिया प्रत्येक एक एक पल, एकत्र केशुरियाका रस और कुलथीके काढेको ३ दिन भावना देना। फिर इसके साथ इलायची, जायफल, तेजपत्ता, लौंग, अजवाईन, जीरा, त्रिकटु, त्रिफला, तगरपादुका, दालचीनी और वंशलोचन प्रत्येक दो दो तोले मिलाकर फिर केशुरियाका रस और कुलथीके काढेमे खलकर चना बराबर गोली बनाना। अनुपान ठण्ढा पानी। यह राजयक्ष्मा, रक्तकास, श्वास, श्लेष्मक, पाण्डु, शोथ, शूल, अर्श और प्रमेह आदि रोग नाशक तथा अग्निकारक और बलवर्द्धक है।

समशर्कर लौह।—लौंग, जायफल, कूठ, अजवाईन, त्रिकटु, चीतामूल, पीपलामूल, अडूसेके जडकी छाल, कण्टकारी,

चाभ, काकडाशिङ्गी, दालचीनी, तेजपत्ता, बडी इलायची, नागे श्वर, हरीतकी, शठी, शीतलचीनी, मोथा, लोहा, अभ्रक और जवाखार प्रत्येकका एक एक भाग और समष्टीके बराबर चीनी एकत्र मिलाकर घृत भाण्डमें रखना। यह सब प्रकारका कास, रक्तपित्त, क्षयकास और श्वासरोग नाशक तथा बल, वर्ण और अग्निवृद्धिकारक है। मात्रा ४ मासे।

वसन्ततिलक रस।—स्वर्णभस्म १ तोला, अभ्रक २ तोले, लोहा ३ तोले, पारा ४ तोले, गन्धक ४ तोले, बङ्ग २ तोले, मोती २ तोले और प्रवाल २ तोले, यह सब द्रव्य अडूसा, गोक्षुर और ईखके रसमें खलकर बज्रमूषीमें रख जङ्गली कंडेकी आंचसे वालुकायन्त्रमें सात पहर फूकना। फिर बाहर निकालकर कस्तूरी और कपूर मिलाकर खल करना। यह कास और क्षयकी महौषध है। मात्रा २ रत्ती। प्रमेह, हृद्रोग, ज्वर, शूल, अश्मरी, पाडु और विषदोषमें विशेष उपकारी है।

वृहत् कण्टकारी घृत।—कण्टकारी जड, पत्ता और शाखाका काढा १६ सेर, घी ४ सेर, कल्कद्रव्य बरियारा, त्रिकट, विडङ्ग, शठी, चीतामूल, सौवर्चल नमक, जवाखार, बेलकी छाल, आंवला, कूठ, श्वेतपुनर्नवा, वृहती, बडीहर्र, अजवाईन, अनारका फल, ऋद्धि, द्राक्षा, रक्तपुनर्नवा, चाभ, जवासा, अम्लवेतस, काकडाशिङ्गी, भूईआमला, बारङ्गी, रास्ना और गोक्षुर, यह सब द्रव्य मिलाकर एक सेर, अच्छी तरह कूटकर इसके साथ घी पाक करना। इस घीसे सब प्रकारका कास, कफरोग, हिक्का, श्वास आदि रोग नष्ट होता है।

दशमूलाद्य घृत—घी ४ सेर, दशमूलका काढा १६ सेर। कल्कार्थ—कूठ, शठी, बेलकी जड, सोंठ, पीपल, मिरच और

होग प्रत्येक दो दो तोले। यथाविधि घृत पाककर सेवन करनेसे वातश्लेष्मोल्वण, कास और सब प्रकारका श्वास दूर होता है।

चन्दनाद्य तैल।—तिलका तैल ८ सेर। कल्कार्थ—श्वेतचन्दन, अगरु, तालीश पत्र, नखो, मजीठ, पद्मकाष्ठ, मोथा, शठो, लाह, हल्दी और लालचन्दन, प्रत्येक एक पल। क्वाथार्थ वामड़ी, अडूसेको छाल, कण्टकारी, बरियारा, गुरिच सब मिलाकर १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, इसो काढ़ेके साथ कल्क औटाना, कल्क पाक करनेमें दूसरा पानो देनेको कोई जरूरत नहीं है। तैल औट जानेपर गन्धद्रव्य मिलाकर फिर औटाना। गन्धद्रव्यमें शिलारस, कुङ्कुम, नखी, श्वेतचन्दन, कपूर, इलायची और लौंग, यह सब द्रव्य तैल नीचे उतारकर मिलाना। यह तैल मालिश करनेसे यक्ष्मा और कास रोग आराम हो बल वर्णको वृद्धि होती है।

वृहत् चन्दनाद्य तैल।—तिलका तैल ४ सेर, क्वाथार्थ लाह २ सेर, पानी १६ सेर, शेष ४ सेर, दहोका पानी १६ सेर। कल्कार्थ—लालचन्दन, बाला, नखी, कूठ, मुलेठी, छड़ीला, पद्मकाष्ठ, मजीठ, सरलकाष्ठ, देवदारु, शठो, इलायची, खटासो, नागेश्वर, तेजपत्ता, शिलारस, मुरामांसो, कक्कोल, प्रियङ्गु, मोथा, हल्दी, दारुहल्दी, श्यामालता, अनन्तमूल, लताकस्तूरी, लौंग, अगरु, कुङ्कुम, दालचीनी, रेणुका और नालुका, प्रत्येक दो दो तोले अच्छी तरह कूटकर १६ सेर पानीमें औटाना। फिर गन्धद्रव्य मिलाकर पाकशेष करना। ठण्ढा होनेपर कस्तूरी आदि गन्धद्रव्य देना चाहिये। इसे मालिश करनेसे रक्तपित्त, क्षय, श्वास और कास आराम होता है।

हिक्का और श्वासरोग।

—०:*:०—

भार्गी गुड।—बारंगीकी जड १२॥ सेर, दशमूल प्रत्येक सवा सेर, बडोहर्रे १०० वस्त्रकी ढीली पोटलीमें बांध ११६ सेर पानीमें औटाना २८ सेर पानी रहते नीचे उतार छान लेना। फिर इसी पानीमें उक्त हर्रे और १२॥ सेर पुराना गुड मिलाकर औटाना, गाढा होनेपर, त्रिकटु, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, प्रत्येकका चूर्ण आठ आठ तोले और जवाखार ४ तोले मिलाकर नीचे उतार लेना। ठण्ढा होनेपर तीन पाव सहत मिलाना। माता आधा तोलासे २ तोलेतक और हर्रे एक एक खाना। इससे प्रबल श्वास और पञ्चकासादि रोग दूर होता है।

भार्गी शर्करा।—बारंगीकी जड सवा छ ६। सेर अडूसेकी छाल ६। सेर, कण्टकारी ६। सेर, पानी ८६ सेर शेष २४ सेर। ४ चमगीदडका मांस, पानी १६ सेर शेष ४ सेर। दोनो काढा एकत्र मिलाकर उसमें चीनी २ सेर मिलाकर औटाना। गाढा होनेपर नीचे उतार उसमें त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, तालीशपत्र, नागेश्वर, बारंगीकी जड, वच, गोखुर, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, जीरा, अजवाईन, अजमोदा, वंशलोचन, कुलथी, कायफल, कूठ और काकडाशिंगी प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला मिलाना। रोग विचारकर उपयुक्त अनुपानके साथ आधा तोलासे एक तोलातक माता सेवन करना। इससे प्रबल श्वास, पञ्चप्रकार कास, हिक्का, यक्ष्मा और जीर्णज्वर आराम हो शरीर पुष्ट होता है।

शृङ्गीगुड घृत।—कण्टकारी, हहती, अडूसेके जडकी छाल और गुरिच प्रत्येक पांच पल, सतावर १५ पल,

बारगो १० पल, गोक्षुर, पिप्पलामूल प्रत्येक आठ तोले, पाटला छाल २४ तोले, यह सब द्रव्य कूटकर चौगुने पानीमें औटाना चतुर्थांश पानी रहते नीचे उतार छानकर उसमें पुराना गुड़ १० पल, घी ५ पल और दूध १० पल मिलाकर फिर औटाना। गाढ़ा होनेपर काकड़ाशिंगी २ तोले, जायफल ३ तोले, तेजपत्ता ३ तोले, लौंग ४ तोले, वंशलोचन ४ तोले, दालचीनी २ तोले, इलायची २ तोले, कूठ ४ तोले, शोंठ ७ तोले पीपल ७ तोले, पीपलामूल ८ तोले, तालीशपत्र ३ तोले, जावित्री १ तोला, यह सब द्रव्यका चूर्ण डालकर नीचे उतार लेना, तथा ठण्ढा होनेपर आठ तोले सहत मिलाना। आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे प्रबल श्वास, उपद्रवयुक्त पाच प्रकारके कास, क्षय और रक्तपित्त आदि रोग आराम होता है।

पिप्पलाद्य लौह—पीपल, आमला, मुनक्का, बैरकी गुठलीकी गिरी, मुलेठी, चीनी, विडङ्ग और कूठ, प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला, लोहा ८ तोले पानीमें खलकर ५ रत्ती बराबर गोली बनाना। दोष विचारकर अलग अलग अनुपानोंके साथ देनेसे, हिक्का, वमन और महाकास आराम होता है। यह हुचकी की महौषध है। खासकर यह हिक्का रोगका महौषध है।

महाश्वासारिलौह।—लोहा ४ तोले, अभ्रक १ तोला, चीनी ४ तोले, सहत ४ तोले और त्रिफला, मुलेठी, मुनक्का, पीपल, बैरके गुठलीकी गिरी, वंशलोचन, तालीशपत्र, विडंग, इलायची, कूठ और नागेश्वर, प्रत्येकका मिहीन चूर्ण एक एक तोला, यह सब द्रव्य लोहेके खरलमें २ पहर खल करना। मात्रा चार रत्तीसे २ मासेतक। महतके साथ सेवन करनेसे महाश्वास पाचप्रकार कास और रक्तपित्तादि रोग निश्चय आराम होता है।

श्वासकुठार रस—पारा, गन्धक, मीठाविष, त्रिकटु, सोहागेका

लावा, मिरच और त्रिकटु, इन सबका समभाग चूर्ण आदीके रसमें खलकर १ रत्ती बराबर गोली बनाना। आदीके रसमें खलकर १ रत्ती बराबर गोली बनाना, आदीके रसमें देनेसे वातकफजनित श्वास, कास और स्वरभेद आराम होता है।

श्वासभैरवरस—पारा, गन्धक, विष, त्रिकटु, मिरच, चाभ और चन्दन इन सबका समभाग चूर्ण अदरखके रसमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान पानी। इससे श्वास, कास और स्वरभेद आराम होता है।

श्वासचिन्तामणि।—लोहभस्म ॥ तोले, गन्धक २ तोले, अभरक २ तोले, पारा १ तोला, स्वर्णमाक्षिक १ तोला, मोती आधा तोला, सोना आधा तोला, यह सब द्रव्यको कण्टकारीका रस, अदरखका रस, बकरीका दूध और मुलेठीके काढेकी भावना दे ४ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान सहत और बहेडेका चूर्ण। यह श्वास, कास और यक्ष्मारोगमें उपकारी है।

कनकासव।—धतूरेका फल, पत्ता, जड और शाखा कूटा हुआ ३२ तोले, अडूसेके जडकी छाल ३२ तोले, मुलेठी, पीपल, कण्टकारी, नागेश्वर, सोंठ, बारगी, तालीशपत्र प्रत्येकका चूर्ण १६ तोले। धवईका फूल २ सेर, मुनक्का २॥ सेर, पानी १२८ सेर, चीनी २॥ सेर, सहत ६। सेर, यह सब एक पात्रमें रख मुह बन्दकर एकमास बाद द्रव्याश छान लेना, इससे सब प्रकारका श्वास, कास और रक्तपित्त आदि नाना प्रकारके रोग दूर होता है।

तेजोवत्याद्य घृत।—घी ॥ सेर, दूध २ सेर, पानी १६ सेर, कल्कार्थ चाभ, हरीतकी, कूठ, पीपल, कुटकी, अजवाइन, गन्धत्वग, पलाशछाल, चीतामूल, शठी, सौवर्चल, नमक, भूईआमला, सेंधानमक, बेलकी गिरी, तालीशपत्र, जीवन्ती और बच, प्रत्येक

२ तोले, हींग आधा तोला, पाकार्थ पानी १६ सेर, शेष ४ सेर। यथानियम औटाकर पोनेसे हिक्का, श्वास, शोथ, वातज अर्श, ग्रहणी और हृदय पार्श्वशूल दूर होता है।



स्वरभङ्गरोग।

—○—

मृगनाभ्यादि अवलेह—कस्तूरी, छोटी इलायची, लौंग और वंशलोचन, इन सबका चूर्ण घी और महतमें मिलाकर चाटनेसे वाकस्तम्भ (तोतलापन) और स्वरभग शान्त होता है।

चव्यादि चूर्ण—चाभ, अम्लवेतस, त्रिकटु, इमली, तालीश-पत्र, जीरा, वंशलोचन, चीतामूल, दालचीनी तेजपत्ता और इलायची, यह सब द्रव्य समभाग पुराने गुडमें मिलाकर खानेसे, स्वरभङ्ग, पीनस और कफज अरुचि आराम होती है।

निदिग्धिकावलेह।—कण्टकारी १२॥ सेर, पीपलामूल ३॥, चीतामूल ३ सेर २ छटाक दशमूल ३ सेर २ छटाक यह सब द्रव्य एकत्र १०८ सेर पानीमें औटाना १६ सेर पानी रहते उतारकर छान लेना, तथा उसमें पुराना गुड ८ सेर मिलाकर फिर औटाना, गाढा होनेपर पीपलका चूर्ण १ सेर, त्रिजातक (दालचीनी, तेजपत्ता और इलायची) एक पल, गोलमिरचका चूर्ण ८ तोले मिलाकर नीचे उतारना। ठण्डा होनेपर आधा सेर सहत मिलाना। अग्निका बल विचारकर उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे स्वरभेद, प्रतिश्याय, काम और अग्निमान्द्य आदि रोग दूर होता है।

त्र्यम्बकाभ्र।—अभ्रभस्म ८ तोलेको कण्टकारी, वरियारा, गोक्षुर, घृतकुमारी, पीपलामूल, भगरैया, अडूसा, बैरकापत्ता, आमला, हल्दी और गुरिच प्रत्येकके आठ आठ तोले रसको अलग अलग भावना देकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। इससे सब प्रकारका स्वरभग, श्वास, कास, हुचकी आदि नानाप्रकारके रोग दूर होते हैं।

सारस्वत घृत।—ब्रह्मोशाककी जड और पत्तेका रस १६ सेर, घी ४ सेर। हल्दी, मालतीका फूल, कूठ, तेवडीकी जड और बडोहर्रे प्रत्येकका कल्क आठ आठ तोले, इसको आचपर औटाना। इसके पीनेसे स्वरविकृति, कुष्ठ, अर्श, गुल्म और प्रमेह आदि नानाप्रकारके रोग दूर हो रतिशक्ति बढती है। इसको ब्राह्मी घृत भी कहते हैं।

भृङ्गराजाद्य घृत।—घी ४ सेर, भगरैया, गुरिच, अडूसेकी जड, दशमूल और कसौंदी (कासमर्द) इन सब द्रव्योंका काढा १६ सेर, पीपलमूलका कल्क १ सेर, एकत्र यथानियम पाककर ठण्ढा होनेपर ४ सेर सहत मिलाना। उपयुक्त मात्रा यह घी सेवन करनेसे स्वरभग और कासरोग आराम होता है।

—०—

अरोचक।

—०—

यमानीषाडव।—अजवाईन, इमली, सोंठ, अम्लवेतस, अनार और खट्टी बैर प्रत्येक दो दो तोले, धनिया, सौवर्चल नमक, जीरा और दालचीनी प्रत्येक एक एक तोला, पीपल १००, गोलमिरच

२०० चोनी ३२ तोले, यह सब द्रव्य एकत्र पीसकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे अरोचक रोग आराम होता है।

कलहंस।—सैजनको बोज १८, गोलमिरच १०, पीपल २०, अदरख ८ तोले, गुड़ ८ तोले, काजी ८ सेर और कालानमक ८ तोले एकत्र मिलाकर इसके साथ चातुर्जात चूर्ण ८ तोले मिलाना, इससे स्वरभंगमें भी विशेष उपकार होता है।

तिन्तोड़ी पानक।—बीजशून्य पक्की इमली ५ पल, चीनी २० पल, पीसी धनिया ४ तोले, अदरख ४ तोले, दालचीनी १ तोला, तेजपत्ता १ तोला, बडी इलायची १ तोला, नागेश्वर १ तोला और पानी ६ सेर १० छटाक नये मिट्टीके पात्रमें एकत्र मिलाना तथा थोड़ा गरम दूध मिलाकर छान लेना, फिर कपूर आदि सुगन्धि द्रव्य मिलाकर उपयुक्त मात्रासे प्रयोग करना।

रसाला।—खट्टी दही ८ सेर, चीनी २ सेर, घी ८ तोले, मधद आठ तोला, गोलमिरचका चूर्ण ४ तोला, शोठ ४ तोले और चातुर्जातक प्रत्येक एक एक तोला एकत्र मिलाना। इसे भी कर्पूरादिसे सुवासित करना चाहिये।

सुलोचनाभ्र।—अभ्रभस्म १ तोला, हीरक भस्म १ तोला, चाभ, बेर, खसकी जड, अनार, आमला, चौपतिया, बडानीबू, प्रत्येक १० तोले, एकत्र खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना, उपयुक्त अनुपानके साथ देनेसे अरुचि, श्वास, कास, स्वरभेद, अग्निमान्द्य, अम्लपित्त, शूल, वमन, दाह, अश्मरी, अर्श और दौर्बल्य आदि रोग दूर होते हैं।

वमनरोग ।

एलादि चूर्ण ।—इलायची, लौंग, नागेश्वर, बेरके बीजकी गिरी, धानका लावा, प्रियगु, मोथा, लालचन्दन और पीपल, प्रत्येक का चूर्ण समभाग एकत्रकर चीनी और सहतमें मिलाकर चाटना ।

रसेन्द्र ।—जीरा, धनिया, पीपल, सहत, त्रिकटु और रससिन्दूर समभाग खलकर उपयुक्त मात्रासे प्रयोग करना ।

वृषध्वज रस ।—पारा, गधक, लोहा, मुलेठी, चन्दन, आमला, छोटी इलायची, लौंग, सोहागा, पीपल और जटामासी समभाग सरिवन और इक्षुके रसको अलग अलग सात सात दिन भावना देकर फिर बकरीके दूधमें एक प्रहर खल करना । मात्रा २ रत्ती की गोली बनाना, अनुपान सरिवनके रस साथ देना ।

पद्मकाद्य घृत ।—पद्मकाष्ठ, गुरिच, नीमकी छाल, धनिया और चन्दन इन सब द्रव्योंका काढा और कल्कमें यथाविधि ४ सेर घी पाककर उपयुक्त मात्रा देनेसे वमन अरुचि, तृष्णा और दाह आदि रोग दूर होते है ।

—o—

तृष्णारोग ।

कुमुदेश्वर रस ।—ताम्र २ भाग और वङ्ग १ भाग एकत्र मुलेठीके काढेकी भावना दे २ रत्ती मात्रा देना । अनुपान—

चन्दन, अनन्तमूल, मोथा, छोटी इलायची और नागेश्वर प्रत्येक समभाग और सबकी बराबर धानका लावा, १६ गुने पानीमें औटाना आधा पानी रहनेपर छानकर उसमें सहत और चीनी मिलाना। इस काढ़ेके अनुपानमें देनेसे तृष्णा और वमन रोग आराम होता है।

—०—

मूर्च्छा, भ्रम और सन्यासरोग।

सुधानिधि रस—रससिन्दूर और पीपलका चूर्ण एकत्र समभाग मिलाकर ४ रत्ती मात्रा सहतके साथ देना।

मूर्च्छान्तक रस—रससिन्दूर, स्वर्णमाक्षिक, स्वर्णभस्म, शिलाजीत और लौहभस्म सब द्रव्य समभाग, सतावर और बिदारीकन्दके रसकी भावना देकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। सतावरका रस और त्रिफला भिगोये पानी आदि वायुनाशक अनुपानमें देना।

अश्वगन्धारिष्ट।—असगन्ध ५० पल, तालमूली २० पल, मजीठ, बडीहर्र, हल्दी, दारुहल्दी, मुलेठी, रास्ना, बिदारीकन्द, अर्ज्जुनछाल, मोथा और तेवडीमूल प्रत्येक १० पल, तथा अनन्तमूल श्यामालता, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, बच, चीतामूल प्रत्येक आठ आठ पल, यह सब द्रव्य ५ मन १२ सेर पानीमें औटाना, ६४ सेर पानी रहनेपर उतारकर छान लेना, फिर

उसमें धवईकाफूल १६ पल, सहत ३७॥ सेर, त्रिकटु प्रत्येक २ पल दालचीनी, तेजपत्ता और इलायची प्रत्येक ४ पल, प्रियङ्गु ४ प और नागेश्वर २ पल, यह सब द्रव्य मिलाकर पात्रका मुंह बन्दक एक मास रखना, फिर छानकर एक तोलासे ४ तोले तक मा प्रयोग करना। इससे मूर्च्छा, अपस्मार, उन्माद, शोथ, क्षय अर्श, अग्निमान्द्य, तथा वायुजनित रोग आराम होता है।

मदात्ययरोग ।

फलत्रिकाद्य चूर्ण—त्रिफला, तेवडी, श्यामालता, देवदार शोंठ अजवाइन, अजमोदा, दारुहल्दी, पाचोनमक, सोवा, वच कूठ, दालचीनी, तेजपत्ता, बडी इलायची और एलवालुक, (एलवा) प्रत्येकका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर अवस्थानुसार एक आनासे आठ आनेतक मात्रा ठण्ढे पानीसे देना।

एलाद्य मोदक ।—बडी इलायची, मुलेठी, चीतामूल, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, रक्तशालि, पीपल, द्राक्षा, पिण्डखर्जूर, तिल जौ, विदारीकन्द, गोक्षुरबीज, तेवडी और शतावर प्रत्येक समभाग समष्टीकी दूनी चीनी मिला यथाविधि मोदक बनाना। आधा तोला मात्रा धारोष्ण दूध या मूगकी जूसके अनुपानसे देना।

महाकल्याण वटिका—स्वर्ण, अभ्रक, पारा, गंधक, लोहा और मोती प्रत्येक समभाग, आमलाके रसमें खलकर, १ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान मक्खन और चीनी अथवा त्रिलका चूर्ण और सहतके साथ देना।

पुनर्नवाद्य घृत—घी ४ सेर, दूध ४ सेर, पुनर्नवा का काढा १७ या १६ सेर मुलेठी का कल्क एक सेर, यथाविधि पाक करना, उपयुक्त माता प्रयोग करनेसे मदात्यय रोग दूर होकर वीर्य और ओजको वृद्धि होती है।

वृहत् धात्रीतैल।—तिलका तेल ४ सेर, आवला, शतावर और बिदारीकन्द प्रत्येक का रस चार सेर, बकरीका दूध ४ सेर, बरियारा, असगन्ध, कुरथी, जौ और उरद प्रत्येकका काढा चार चार सेर, कल्कार्थ—जीवनीयगण, जटामासी, मजीठ, इन्द्रवारुणी की जड, श्यामालता, अनन्तमूल, शैलज, सोवा, पुनर्नवा, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, इलायची, दालचीनी, पद्ममूल, केलिकाफूल, वच, अगरू, हरीतकी और आवला मिलित इन सबका कल्क एक सेर, यथाविधि पाक करना।

श्रीखण्डासव।—श्वेतचन्दन, गोलमिरच, जटामासी, हलदी, दारुहलदी, चीतामूल, मोथा, खसकी जड, तगरचण्डी द्राक्षा, लालचन्दन, नागेश्वर, अम्बष्ठा, आमला, पीपल, चाभ, लौंग, एलवा और लोध प्रत्येक चार चार तोले कूटकर १२८ सेर पानीमें भिगोना, फिर मुनक्का ६० पल, गुड ३७॥ सेर और धवईफूल १२ पल मिला पात्रका मुख बन्दकर एक मासके बाद द्रव्याद्य छान लेना। माता एक तोलासे ४ तोलेतक अवस्थानुसार प्रयोग करना। इससे पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण और पानविभ्रम रोग आराम होता है।

दाहरोग।

—०—

चन्दनादि काढा—लालचन्दन, खेतपापडा, खसकी जड, बाला, मोथा, वामलकी जड, कमलका डण्डा, सौफ, धनिया, पद्मकाष्ठ और आवला मिलाकर दो तोले, आधा सेर पानीमें औटाना एक पाव पानी रहनेपर छानकर सहत मिला पीनेको देना।

त्रिफलाद्य—त्रिफला और अमिलतासके गूदाके काढेमें सहत और चीनी मिलाकर पीनेसे दाह, रक्तपित्त और पित्तशूल आराम होता है।

पर्प्पटादि—दवनपापडा, मोथा और खसकी जड, इन सबका काढा ठण्ढाकर पीनेसे दाह और पित्तज्वर आराम होता है।

दाहान्तक रस—पारा ५ तोले और गन्धक ५ तोलेकी कज्जली अर्व्वती नीबूके रसमें खलकर पानके रसकी भावना देना, फिर इस कज्जली को एक तोला वजन तांबेके पत्रमें लपेटना सूख जानेपर गजपुटमें फूकना। भस्म हो जानेपर २ रत्ती मात्रा अदरखका रस और त्रिकट चूर्णके साथ सेवन करनेसे दाह, सन्ताप और पित्तज मूर्च्छा शान्त होती है।

सुधाकर रस—रससिन्दूर, अभरख, सीना और मोतीका भस्म प्रत्येक समभाग, त्रिफला भिगोये पानी और सतावरके रसकी सातबार भावना देकर एक रत्ती बराबर गोली बना छायामें सुखा लेना। उपयुक्त अनुपानमें देनेसे दाह, आमरक्त और प्रमेह रोग आराम होता है।

काञ्जिक तैल—तिलका तेल ४ सेर, ६४ सेर काञ्जीके साथ औटाकर मालिश करनेसे दाह ज्वर आराम होता है।

उन्माद ।

—०—

सारस्वत चर्ण—कुठ, असगन्ध, सेंधानमक, अजवाइन, अज मोदा, जीरा, कालाजीरा, त्रिकटु, पाठा और शङ्खपुष्पी, प्रत्येक समभाग और सबके बराबर वचका चूर्ण ब्राह्मीशाक के रसमें ३ बार भावना दे सुखाकर चूर्ण करना । ।) आने मात्रा घी और सहतके अनुपानमें देना ।

उन्माद गजाकुश ।—१ तोला पारा यथाक्रम, धतूरेका रस, जलपिप्पलीकारस और कुचिलाके रसको अलग अलग तीन दिन भावना देकर उसी पारेका ऊर्द्ध पातन करना फिर १ तोला गंधक मिला कज्जली बना वही कज्जली ताम्र पत्रमें लपेटकर सूखा लेना तथा स्वल्प गजपुटमें फूकना, फिर धतूरेकी बीज १ तोले, अभरख १ तोले, गंधक १ तोले और मीठाविष २ तोले उसमें मिलाकर ३ दिन पानीमें खल करना । एक रत्ती मात्रा वायुनाशक अनुपानमें देना ।

उन्मादभञ्जन रस ।—त्रिकटु, त्रिफला, गजपीपल, विडङ्ग, देवदारु, चिरायता, कुटकी, कण्टकारी, मुलेठी, इन्द्रयव, चीतामूल, बरियारा, पिपलामूल, खसकी जड़, सैजनकी बीज तेवडीमूल, इन्द्रवारूणी की जड़, वंग, चांदी अभरख और मूगा, प्रत्येक समभाग और सबके बराबर लौह भस्म एकत्र पानीमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना ।

भूताकुश रस ।—पारा, लोहा, चांदी, ताम्बा, और मोती प्रत्येक एक एक तोला, हीरा दो मासे हरिताल, गंधक, मैनसिल, तुतिया, शिलाजतु, सौवीराञ्जन, समुद्रफेन, रसाजन और पाचीनमक प्रत्येक एक एक तोला, यह सब द्रव्य भङ्गरैया, दन्तीका रस, और सीजके दूधमें खलकर एक गोला बनाना, सूखजानेपर गजपुटमें

फुलाना। २ रत्ती मात्रा अदरखके रसमें मिलाकर चटावे फिर उपरसे दशमूलके काढेमें पीपलका चूर्ण मिलाकर पिलाना। तथा सर्व्वाङ्गमें सरसोंका तेल मालिश कर तितलीकी का बफारा लेना चाहिये।

चतुर्भुज रस।—रससिन्दूर २ भाग, सोना एक भाग, मैनसिल १ भाग, कस्तूरी एक भाग और हरताल एक भाग, एकत्र घीकुआरके रसमें एक दिन खलकर गोला बनाना उपरसे रेडका पत्ता लपेटकर ३ दिन धानमें रखना। फिर चूर्णकर २ रत्ती मात्रा मधुत और त्रिफलाके चूर्णमें प्रयोग करना।

पानीय कल्याणक और क्षीरकल्याण घृत।—घी ४ सेर, इन्द्रवारुणीकी जड, त्रिफला, मभालुकी बीज, देवदारु, एलवा, सरिवन, तगरचगडी, हलदी दारुहलदी, श्यामालता, अनन्तमूल, प्रियङ्गु, नीलाकमल, इलायची, मजीठ, दन्तीमूल, अनारकी बीज, नागेश्वर, तालीशपत्र, बृहती, मालतीफूल, विडंग, पिठवन, कूठ, लालचन्दन और पद्मकाष्ठ प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, पानी १६ सेर यथाविधि पाक करना। मात्रा आधा तोलासे २ तोलातक। यही घी दूने पानी और चौगुने दूधमें औटा लेनेसे उसे क्षीरकल्याण घृत कहते हैं।

चैतस घृत—घी ४ सेर गम्भारीके सिवाय बाकी ८ दशमूल, रास्ना, रेडकी जड, बरियारा, त्रिवृतमूल, मूर्व्वामूल और सतावर, प्रत्येक दो दो पल, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, इस काढेका चौगुना दूध और पानीय कल्याणक के कल्क समूहके साथ यथाविधि पाक करना।

शिवाघृत।—घी ४ सेर गीदडका मांस ६। सेर, पानी ३२ सेर शेष आठ सेर और दशमूल ६। सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, बकरीका दूध ८ सेर कल्कार्थ—मुलेठी, मजीठ, कूठ,

लालचन्दन, पद्मकाष्ठ, वरियारा, वडीहर्र, आमला, वहेडा, हहती, तगरचरडो, विडङ्ग, अनारकी बीज, देवदारू, दन्तीमूल, सम्भालुकि बीज, तालीशपत्र, नागेश्वर, श्यामालता, इन्द्रवारुणी की जड, सरिवन, प्रियङ्ग, मालतीफल, काकोली, क्षीरकाकोली, नीलपद्म, छनटी, दारुहलदी, अनन्तमूल, मेदा, इलायची, एलवा और पिठवन, प्रत्येक का दो दो तोले कल्क, यथाविधि औटाना। यह उन्माद आदि वायुरोग में उपकारी है।

महापैशाचिक घृत।—गो घृत ४ सेर, कल्कार्थ—जटामासी, हरीतकी, भूतकेशी, स्थलपद्म या ब्रह्मीशाक, कवाचकी बीज, वच, त्रायमाना, जयन्ती, क्षीरकाकोली, कुटकी, छोटी इलायची, विदारीकन्द, सौंफ, मोवा, गुग्गलु, शतावर, आवला, रास्ना, गन्धरास्ना, गन्धाली, विछोटी और सरिवन सब मिलाकर एक सेर, पानी १६ सेर, यथाविधि औटाकर उन्माद और अपस्मार आदि रोगमें प्रयोग करना।

अपस्मार।

—०—

कल्याण चूर्ण—पञ्चकोल, मिरच त्रिफला, कालानमक, सेधा नमक, पीपल, विडङ्ग, पूतिकरञ्ज, अजवाईन, धनिया और जीरा, प्रत्येक समभाग एकत्र मिलाना, मात्रा ।) चार आने, अनुपान गरम पानी।

वातकुलान्तक—कस्तूरी, मैनसिल, नागकेशर, बहेडा, पारा, गन्धक, जायफल, इलायची और लौंग प्रत्येक दो दो तोले एकत्र पानीमें खलकर २ रत्ती बरावर गोली वनाना। वायुनाशक अनुपानके साथ देना।

चण्डभैरव—पारा, गन्धक, तामा, लोहा, हरताल, मैनसिल और रसाञ्जन प्रत्येक समभाग गोमूत्रसे खलकर, फिर दो भाग और गन्धक मिलाकर थोड़ी देर लोहेके पात्रमें औटाना। मात्रा दोसे ५ रत्ती, अनुपान हींग, सौवर्च्चल नमक और सठका चूर्ण मिलाकर २ तोले तथा गोमूत्र और घृत।

स्वल्पपञ्चगव्य घृत—गायका घी ४ सेर, गोबरका रस ४ सेर, गायकी खट्टी दही ४ सेर, गायका दूध ४ सेर, गोमूत्र ४ सेर, पानी १६ सेर यथाविधि औटाना। मात्रा ।।०।। तोला।

वृहत् पञ्चगव्य घृत।—क्वाथार्थ—दशमूल, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, कुरैयाकी छाल, अपामार्गकी जड़, नीलवृक्ष, कुटकी, अमिलतास, गुलञ्चकी जड़, कूठ और जवासा प्रत्येक दो दो पल, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, कल्कार्थ बारङ्गी, पाठा, त्रिकटु, तेवडी की जड़, इन्द्र बोज, गजपीपल, अरहर, मूर्व्वामूल, दन्तीमूल, चिरायता, चीतामूल, श्यामालता, अनन्तमूल, रोहितक छाल, गन्धतृण और मल्लिकाफूल प्रत्येकका दो दो तोलेका कल्क। गोबरका रस ४ सेर, गोमूत्र ४ सेर, गायका दूध ४ सेर और गौकी दही ४ सेरके साथ गायका घी ४ चार सेर यथाविधि औटाना।

महाचैतस घृत।—क्वाथार्थ—शनकी बोज, तेवडीकी जड़, मूल, शतावर, दशमूल, रास्ना, पीपल और सैंजनकी जड़, प्रत्येक दो दो पल, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर। कल्कार्थ—बिदारीकन्द, मुलेठी, मेद, महामेद, काकोली, क्षीरकाकोली, चीनी, पिण्डखर्जूर, मुनक्का, शतावर, ताड़का गूदा, गोखुर और चैतस घृतके सब कल्कद्रव्य सब मिलाकर एक सेर, ४ चार सेर घृत एकत्र यथाविधि पाक करना।

ब्राह्मीघृत—पुराना घी चार सेर, ब्राह्मीशाकका रस १६ सेर

कल्कार्थ—वच, कूठ और शङ्खपुष्पी मिलाकर एक सेर, यथाविधि पाक करना।

पलङ्कशाद्य तैल—कल्कार्थ—गुग्गुलु, वच, बडोहर्र, बिछौटीकी जड, अकवनकी जड, सरसों, जटामासी, भूतकेशी, ईशलाङ्गला, चोरपुष्पी, लहसुन, शतोस, टम्रो, कूठ और गिद्ध आदि मांसभोजी पक्षीकी विष्टा, सब मिलाकर एक सेर और छागमूत्र १६ सेरके साथ, ४ सेर तिलका तेल यथाविधि पाककर मालिश करना।

—०—

वातव्याधि।

— ० —

रास्नादि काढ़ा—रास्ना, गुरिच, अमिलताम, देवदारु, गोखुर, रेंडकी जड और पुनर्नवा, इन सबके काढ़ेमें सोंठका चूर्ण मिलाकर पीना।

माषबलादि—उड़द, वरियारा, आंवलेकी जड, गन्धतृण, रास्ना, असगन्ध और रेंडकी जड, इन सबके काढ़ेमें हींग और सेंधानमक मिला नाकके रास्ते अथवा असमर्थ रोगीको मुखमें पिलाना।

कल्याणावलेह—हलदी, वच, कूठ, पीपल, सोंठ, जीरा, अजमोदा, मुलेठी और सैन्धानमक, इन सबका समभाग चूर्ण घीके साथ मिलाकर चाटना। मात्रा आधा तोला।

स्वल्प रसोनपिण्ड—छिलका निकाला तथा पीसाहुआ लहसन १२ तोले, हींग, जीरा, सेंधानमक, सौवर्चल नमक और त्रिकटु, प्रत्येकका चूर्ण एक एक मासा, यह सब एकत्र खलकर मात्रा आधा तोला रेंडके जडके काढ़ेके साथ देना।

त्रयोदशाङ्ग गुग्गुलु—बबूलको छाल, असगन्ध, क्षीवेर, गुरिच, सतावर, गोखुर, बिधारेको बीज, रास्ना, सोवा, शठो, अजशाईन, और सोंठ प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला, गुग्गुलु १२ तोले और घो ६ तोले। पहिले घोके साथ गुग्गुलु मिलाकर पीछे और सब दवायोंका चूर्ण मिलाना, मात्रा आधा तोला, अनुपान गरम दूध या गरम पानो।

दशमूलाद्य घृत—घो ४ सेर, दूध ४ सेर दशमूलका काढा १२ सेर, जीवनीयगण मिलेहुएका कल्क एक सेर, यथाविधि औटाना।

छागलाद्य घृत—घो ४ चार सेर, छागमांस ५० पल, दशमूल ५० पल, पानो ६४ सेर, शेष १६ सेर, दूध ४ सेर, शतावरका रस ४ चार सेर, जीवनीयगण मिलेहुएका कल्क एक सेर, यथाविधि औटाना।

वृहत् छागलाद्य घृत।—घो १६ सेर, छागमांस, दशमूल, बरियारा और असगन्ध प्रत्येक द्रव्य १०० पल, अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर पानो रहते उतारकर अलग अलग पात्रमें रखना। फिर १६ सेर दूध और सतावरका रस १६ सेर प्रत्येक पात्रमें मिलाकर औटाना और एकत्र कल्क पाक करना। कल्क द्रव्य—जीवन्ती, मुलेठी, मुनक्का, काकोली, क्षीरकाकोली, नीलाकमल, मोथा, लालचन्दन, रास्ना, मोगानी, मापाणी, श्यामालता, अनन्तमूल, मेद, महामेद, कूठ, जीवक, ऋषभक, शठी, दारुहल्दी, प्रियङ्गु, त्रिफला, तगरचण्डो, तालीशपत्र, पद्मकाष्ठ, इलायची, तेजपत्ता, शतावर, नागेश्वर, जातीपुष्प, धनिया, मजीठ, अनार, देवदारु, सम्भालुको बीज, एलवा, वायविडङ्ग और जीरा, प्रत्येक ४ तोले पाकशेष और ठढा होनेपर छानकर

२ सेर चोनो मिलाना। यह घी ताम्रपात्रमें इसको आचपर औटाना चाहिये।

चतुर्मुख रस।—पारा, गन्धक, लोहा और अभ्रक प्रत्येक एक एक तोला, सोनेका भस्म ३ तीन मासे, एकत्र घीकुआरके रसमें खलकर गोला बना उपरसे रेंडका पत्ता लपेटकर धानके ढेरके भीतर ३ दिन तक रख देना। तीन दिन बाद बाहर निकाल २ रत्ती वजनको गोली बनाना। अनुपान सहत और त्रिफलेका पानी।

चिन्तामणि चतुर्मुख—रससिन्दूर २ तोले, लोहा एक तोला, अभरख एक तोला और सोना आधा तोला एकत्र घिकुआरके रससे मर्द्दनकर गोला बना रेंडका पत्ता लपेट उपर कहे अनुसार धानमें रखना। मात्रा २ रत्ती अनुपान सहत और त्रिफलाका पानी।

वातगजाङ्कुश—पारा, लोहा, स्वर्णमाक्षिक, गन्धक, हरताल, बडीहर्रे, काकडाशिङ्गी, मिठाविष, त्रिकटु, गणियारी और सोहागेका लावा, एकत्र गोरखमुण्डी और निर्गुण्डीके पत्तेके रसमें एक एक दिन खलकर २ रत्ती वजनको गोली बनाना। अनुपान पीपलका चूर्ण और छोटी हर्रेका काढा।

वृहत् वातगजाङ्कुश—पारा, गन्धक, अभ्रक, लोहा, ताम्बा, हरताल, सोना, शोंठ, वरियारा, धनिया, कायफल, मीठाविष, काकडाशिङ्गी, पीपल, मिरच और सोहागेका लावा प्रत्येक समभाग हर्रीतको दो भाग गोरखमुण्डी और निर्गुण्डीके रससे एक दिन खलकर २ रत्ती वजनको गोली बनाना। अनुपान पानका रस।

योगेन्द्र रस—रससिन्दूर १ तोला, सोना, लोहा, अभ्रक, मोती और वङ्ग प्रत्येक आधा आधा तोला, एकत्र घिकुआरके

रसकी भावना दे ऊपर कहे रीतिसे धानमें ३ दिन रख २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान त्रिफलाका पानी और चीनी।

रसराज रस।—रससिन्दूर ८ तोले, अभ्रक २ तोला और सोना १ तोला, एकत्र घिकुआरके रसमें खलकर इसके साथ लोहा, चांदी, बङ्ग, असगन्ध लौंग, जावित्री और क्षीर-काकोली प्रत्येक आधा तोला मिलाना, फिर काकमाचीके रसमें खलकर २ रत्ती वजनकी गोली बनाना। अनुपान दूध या चीनीका शर्बत।

चिन्तामणि रस।—रससिन्दूर और अभ्रक प्रत्येक २ तोला, लोहा एक तोला और सोना आधा तोला एकत्र घिकुआरके रसमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। अवस्था विचार-कर वायुनाशक अनुपानके साथ देना। इससे प्रमेह, प्रदर, सुतिका आदि रोगमें भी उपकार होता है।

वृहत् वातचिन्तामणि—सोना ३ भाग, चांदी २ भाग, अभ्रक २ भाग, लोहा ५ भाग मूंगा ३ भाग, मोती ३ भाग और रससिन्दूर ७ भाग, एकत्र घिकुआरके रसमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान विचारकर देना।

स्वल्प विष्णुतैल—तिलका तेल ४ सेर, गाय या बकरीका दूध १६ सेर, सरिवन, पिठवन, वरियारा, सतावर, रेंडकी जड़, छहती, कण्टकारी, पोईंकी जड़, गुलशकरी और झाटीमूल प्रत्येक के एक एक पलका कल्क, यथाविधि औटाकर वातज रोगमें प्रयोग करना।

वृहत् विष्णुतैल।— तिलका तेल १६ सेर, सतावरका रस १६ सेर, पानी ३२ सेर। मोथा, असगन्ध, जीवक, ऋषभक, शटी, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, मुलेठी, सौंफ, देवदारु,

पद्मकाष्ठ, शैलज, जटामासी इलायची, दालचीनी, कूठ, वच, लाल चन्दन, केशर, मजीठ कसेरी, श्वेतचन्दन, रेणुका, सरिवन, पिठवन, मागोनी, माषोनी, कुरण्टोटी, गठेला और नखी प्रत्येकका एक एक पलका कल्क, यथाविधि औटाकर सब प्रकारके वायुरोगोंमें प्रयोग करना।

नारायण तैल।—तिलका तैल १६ सेर, शतावरका रस १६ सेर, दूध ६४ सेर, बेल गणियारी, श्योनाक, पाटला इन सबके मूलकी छाल और गन्धाली, असगन्ध, वृहती, कण्टकारी, वरियारा, गुलशकरी, गोक्षुर और पुनर्नवा प्रत्येक १० पल, २५८ सेर पानी, शेष ६४ सेर यह काढा, तथा सोवा, देवदारु, जटामासी, शैलज, वच, लालचन्दन, तगरपादुका, कूठ, इलायची, सरिवन, पिठवन, मागोनी, माषोनी, रास्ना, असगन्ध, सेंधव और पुनर्नवाकी जड प्रत्येकका दो दो पलका कल्क यथाविधि औटाना।

मध्यमनारायण तैल।—तिलका तैल ३२ सेर, बेल, असगन्ध, वृहती, गोक्षुर, श्योनाक, वरियारा, कण्टकारी, पुनर्नवा, गुलशकरी, गणियारी, गन्धाली और पाटला, इन सबकी जड २॥ अढाई सेर एकत्र १२ मन ३२ सेर पानीमें औटाना तथा ३ मन आठ सेर पानी रहते उतार लेना। बकरी या गायका दूध ३२ सेर सतावरका रस ३२ सेर, कल्कार्थ रास्ना, असगन्ध, सौंफ, देवदारु, कूठ, सरिवन, पिठवन, मागोनी, माषोनी, अगरु, नागेश्वर, सेंधानमक, जटामासी, हलदी, दारुहलदी, शैलज, लालचन्दन कूठ, इलायची, मजीठ, मुलेठी, तगरपादुका, मोथा, तेजपत्ता, दालचीनी, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मेद, महामेद, बाला, वच, पलाशमूल, गठेला, श्वेतपुनर्नवा और

कूठ, कण्टकारी, शोंठ, मुलेठी, देवदारू, सरिवन, पुनर्नवा, मजीठ, तेजपत्ता, रास्ना, वच, पुष्करमूल, अजवाइन, गन्धतृण, जटामासी, वरियारा, चीतामूल, गोक्षुर, मृणाल और सतावर प्रत्येक दो दो तोले, यथाविधि औटाना। इससे कुब्ज, पङ्गु, गृध्रसी और अर्द्दित आदि वायुरोग तथा वात कफके रोग समूह दूर होता है।

महामाष तैल।—तिलका तेल ४ सेर, उरद ४ सेर, दशमूल ६। सेर, बकरेका मांस ३० पल, एकत्र ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर रहते नीचे उतार लेना। उरद और बकरेके मांसको अलग पोटली बांधकर औटाना चाहिये। दूध १६ सेर तथा रेंडकी जड, कंवाचकी जड, सोवा, मधा, वाला, सौवर्च्चल नमक, जीवनीयगण, मजीठ, चाभ, चीतामूल, कायफल, त्रिकटु पीपलामूल, रास्ना, मुलेठी, देवदारू, गुरिच, क्षुरयी, असगन्ध, वच और शठी प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर लकवा, अर्द्दित, वाम्प, गृध्रसी, अवबाहुक आदि वायुरोगमें प्रयोग करना।



वातरक्त।

—○—

अमृतादि काढा—गुरिच, शोंठ और धनिया प्रत्येक दो दो तोले, १६ गूने पानीमें औटाना ४ गूना पानी रहते छान लेना, और ८ तोले पिलाना।

रास्नादि—अडूसा, गुरिच और अमिलतास का फल, इन सबके काढेमें आधा तोला रेंडीका तेल मिलाकर पिलाना।

नवकार्षि।—आवला, हर्रा, बहेडा, नोमकी छाल, मजीठ, बच, कुटकी गुरिच और दारूहल्दी, प्रत्येक "५ रत्तीका एक मासा" इसी हिसाबसे एक कर्ष अर्थात् तेरह आना २ रत्तीभर ले १६ गूने पानीमें औटाना ४ गूना पानी रहते नीचे उतार ८ तोले मात्रा प्रयोग करना।

पटोलादि—परवरका पत्ता, कुटकी, सतावर, त्रिफला और गुरिचकी काढेसे वातरक्त और तज्जनित दाह दूर होता है।

निम्बादि चूर्ण।—नीमकी छाल, गुरिच, बडीहर्र आवला और सोमराजी प्रत्येक एक एक पल, सोंठ, वायविडङ्ग, कचवडकी जड, पीपल, अजवाईन, बच, जीरा, कुटकी, खैरकी, लडकी, सैन्धव, यवाखार, हल्दी, दारूहल्दी, मोथा, देवदारू और कूठ प्रत्येक दो दो तोले, इन सबका चूर्ण एकत्र मिलाकर चार आने मात्रा गुरिचकी अनुपानकी काढेके अनुपानमें देनेसे आमवात-का शोथ, पिलही और गुल्म आदि रोग शान्त होता है।

कैशोर गुग्गुलु।—ढीली पोटलीमें बधा हुआ महिषाक्ष गुग्गुलु २ सेर, त्रिफला २ सेर, गुरिच ४ सेर, एकत्र ८६ सेर पानी में औटाकर ४८ सेर पानी रहते उतार लेना। औटाती वखत बीच बीचमें हिला देना उचित है। फिर छानकर पोटलीकी गुग्गुलुमें घी मिलाकर उक्त काढेमें मिला लोहेके बरतनमें औटाना, गाढा होनेपर इसकी साथ त्रिफलाकी प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले, त्रिकटुका चूर्ण १२ तोले, विडंग ४ तोले तेवडीमूल २ तोले, दन्तीमूल दो तोले और गुरिच ८ तोले मिलाकर एक सेर घी मिलाना। चना भिगोया पानी, गुरिचका काढा अथवा दूधकी अनुपानमें एक तोला मात्रा प्रयोग करना चाहिये।

रसाभ्र गुग्गुलु।—गुरिच दो सेर, पानी १६ सेर शेष ४ सेर, त्रिफला दो सेर, पानी १६ सेर शेष ४ सेर, यह दो काढा एकत्र मिलाकर उसमें गुग्गुलु एक सेर, पारा, गन्धक और लोहभस्म प्रत्येक ४ तोले तथा अभ्रक भस्म ८ तोले मिलाकर औटाना, गाढा होनेपर त्रिकटु, त्रिफला, दन्तीमूल, गुरिच, इन्द्रवारुणी की जड, वायविडंग नागेश्वर और तेवडी की जड प्रत्येक दो दो तोले मिलाकर चलाना। मात्रा एक तोला अनुपान गुरिचका काढा। यह वातरक्त और कुष्ठ रोगका श्रेष्ठ औषध है।

वातरक्तान्तक रस।—पारा, गन्धक, लोहा, मोथा, मैनसिल, हरताल, शिलाजीत, गुग्गुलु, वायविडङ्ग, त्रिफला, त्रिकट, समुद्रफेन, गदहपुना, देवदारू, चीतामूल, दारुहलदी और श्वेत अपराजिता, यह सब द्रव्यको त्रिफलाका काढा और भङ्गरैयाको रसको तीन तीन बार भावना देकर उरद बराबर गोली बनाना। यह औषध घी और नीमका पता, फूल और छालके काढेके अनुपानमें प्रयोग करना।

गुड़्च्यादि लौह—गुरुचिका सत्त, त्रिफला, त्रिकटु, चित्रक प्रत्येक एक एक तोला, लोहा १० तोले, एकत्र पानीमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान गुरिचका काढा या धनिया और परवरके पत्तेका काढा।

महातालेश्वर रस।—हरिताल भस्म और गन्धक प्रत्येक समभाग एकत्र मिला दोनोंके बराबर ताम्रभस्म मिलाना, फिर एक मिट्टीके कटोरेमें रख दूसरा कटोरा ढांप मिट्टीसे लेपकर बालुका यन्त्रमें फूकना। मात्रा दो रत्ती अनुपान त्रिशिपके साथ देनेसे वातरक्त, कुष्ट, श्वित्र आदि पीडा शान्त होती है। हरताल

भस्म करनेकी विधि—हरताल ८ तोला, मीठाविष २ तोले, एकत्र अङ्कोटक (ढेरा) के रसमें खलकर एक गोला बनाना, फिर एक हाडी में १६ तोले पलाशका खार रखकर उपर वह गोला रखना तथा उसके उपरसे २४ तोले चिरचिडीका खार रखकर गोला ढक देना, तथा हाडोके उपर एक ढकना ढाक मिट्टीसे लेपकर सुखा लेना और चुल्हेपर रख २४ घण्टे आंच लगाना। इससे हाडोके ढकनेके नोचे कपूर को तरह पदार्थ जम जायगा, उसीको हरिताल भस्म कहते है। २ रत्तो मात्रा हरिताल भस्म अनुपान विशेषसे साथ देनेसे वातरक्त कुष्ठ, विस्फोट, विचर्चिका, शोथ, हलीमक, शूल, अग्निमान्द्य और अरुचि आदि रोग दूर होता है।

विषघ्नेश्वर रस।—पारा १० तोले, गन्धक १० तोले, तूतिया १० तोले, मिठाविष ५ तोले, पलाश बीज ५ तोले और कटैलो, कनेलको जड, धतुरा, हडजोडको लता, नीलहच, जटामासो, दालचीनो, कुचिला और भेलावा प्रत्येक १० तोलेका एकत्र चूर्ण करना। मात्रा २ या ३ रत्तो सेवन करनेसे वातरक्त, ज्वर, कुष्ठ, अग्निमान्द्य, अरुचि और सब प्रकारके विषज रोग आराम होता है।

गुडचो घृत—घो ४ सेर, गुरिचका काढा १६ सेर, दूध ४ सेर और गुरिचका कल्क एक सेर यथाविधि औटाना।

अमृताद्य घृत—घो ४ सेर, आवलेका रस ४ सेर, पानी १२ सेर कल्कार्थ गुरिच, मुलेठो, मुनक्का, त्रिफला, शोठ, बरियारा, अडूसा, अमिलतास, श्वेत पुनर्नवा, देवदारु, गोखुर, [illegible] सतावर, पोपल, गाम्भारो फल, रास्ना, तालमखाना, [illegible] विधारा, मोथा और नोलोत्पल, सब मिलाकर एक [illegible] यथाविधि पाक कर उपयुक्त मात्रासे अन्नादि [illegible] साथ सेवन करना।

बृहत् गुड़ूची तैल ।—तिलका तैल ४ सेर, गुरिच १०० पल, पानी ६॥ सेर, शेष १६ सेर यह काढा, दूध १६ सेर, असगन्ध, विदारीकन्द, काकोली, चीरकाकोली, सफेद चन्दन, सतावर, गुल्शकरी, गोखुर, बृहती, कण्टकारी, वायविडङ्ग, त्रिफला, रास्ना, त्रायमाणा, अनन्तमूल, जीवन्ती, पीपलामूल, त्रिकटु, हाकुचबीज, अनारकी बीज, इन्द्रवारुणी की जड, मजीठ, लाल चन्दन, हल्दी, सोवा और छातियानकी छाल प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाना यह नस्य और मालिश करनेसे वातरक्त, कुष्ठ, प्रमेह, कामला, पाण्डु, विस्फोट, विसर्प तथा हाथ परका जलन दूर होता है।

महारुद्र गुडूची तैल ।—सरसोका तैल ४ सेर, गुरिच १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, नीमछाल ८ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, गोमूत्र ४ सेर, गुरिच, सोमराजी की बीज, दन्तीमूल, कनेलकी जड, त्रिफला, अनारकी बीज, नीमकी बीज, हलदी, दारुहलदी, बृहती, कण्टकारी, गुलशकरी, त्रिकटु, तेजपत्ता, जटामासी, पुनर्नवा, पीपरामूल, मजीठ, असगन्ध, सोवा, लाल चन्दन, श्यामालता, अनन्तमूल, छातियानकी छाल और गोखरका रस प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाना। इसे वातरक्त, कुष्ठ, व्रण और विसर्प आदि रोगोंमे प्रयोग करना।

रुद्र तैल ।—सरसोका तैल ४ सेर, गुरिच ॥ सेर, पानी, १६ सेर, शेष ४ सेर, दूध ४ सेर, अड़सेका रस ४ सेर, पुनर्नवा, हलदी, नीमछाल, देवन, बृहती, दालचीनी, कटैली, करञ्ज, निर्गुण्डी, अडूसेकी जड, चिरगिरी, परवरका पत्ता, धतूरा, अनार-का छिलका, जयन्तीमूल, दन्तीमूल और त्रिफला प्रत्येक ४ तोलेका कल्क, यथाविधि औटाना, फिर कृष्णागुरु, शठी, काकोली, चन्दन,

गँठेला, नखो, खटासो, नागेश्वर, और कुठ, इन सब द्रव्योंसे यथाविधि गन्धपाक करना। यह तैल मालिश करनेसे अस्थिमज्जागत कुष्ठ, हाथ पैरका घाव, पामा, विचर्च्चिका, कण्डु, मसूरिका, दाद और गात्रवैवर्ण आदि विविध रक्त और त्वकदोषजनित पीड़ा शान्त होता है।

रुद्र तैल।—सरसोंका तेल ॥ सेर, अड़सेके पत्तेका का रस ४ सेर, गुरिच ८ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर यह काढ़ा, पुनर्नवा, हलदी, नीमछाल, वार्त्ताकू, अनारको छाल, बृहती, कण्टकारी, नाटामूल, अड़सेकी छाल, निर्गुण्डी, परवरका पत्ता, धतूरा, चिरचिरीकी जड़, जयन्ती, दन्ती और त्रिफला प्रत्येक चार चार तोले, मिठाविष १६ तोले, त्रिकटु प्रत्येक तीन तीन पल, ४ सेर पानीसे यथाविधि औटाना। यह भी वातरक्त, कुष्ठ, व्रण और विविध चर्म्मरोग नाशक है।

महापिण्डतैल।—सरसोंका तेल ॥ सेर, गुरिच, सोमराजी और अमालो प्रत्येक १२॥ सेर, अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाकर १६ सेर रखना। दूध १६ सेर शिलारस, राल, निर्गुण्डी, त्रिफला, भाग, बृहती, दन्तीमूल, कक्कोल, पुनर्नवा, चीतामूल, पीपलामूल, कुठ, हलदी, दारुहलदी, चन्दन, लालचन्दन, खटासी, करञ्ज, सफेद, सोमराजी बीज, चक्रमर्द बीज, अड़सेकी छाल, नीमकी छाल, परवरका पत्ता, कवाच बीज, असगन्ध, सरलकाठ, प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाना। इस तैलके मालिश करनेसे वातरक्तादि विविध पीड़ा शान्त होती है।

ऊरुस्तम्भ ।

भल्लातकादि काढा—भेलावा, गुरिच, शोंठ, देवदारू, हरीतको, पुनर्नवा और दशमूल, यथाविधि इन सबका काढा बनाकर पीनेसे ऊरुस्तम्भ रोग आराम होता है ।

पिप्पल्यादि—पोपल पोपलामूल और भेलाविको जडके काढेमें सहत मिलाकर पोना । ये तोन द्रव्योंका कल्क भो सहतके साथ चटाया जासकता है ।

गुञ्जाभद्रक रस—पारा १॥ तोला, गन्धक ६ तोले, घुङ्गची ३ तोले, जयपालका बोज आधा तोला, यह सब द्रव्य जयन्तो पत्र, जम्बोरो नोबू, धतूरेका पत्ता और काकमाचोके रसको एक एक दिन भावना दे घोमें खलकर ४ रत्तो बराबर गोलो बनाना । अनुपान होंग, सेंधानमक और सहत ।

अष्टकट्वर तेल—सरसोका तेल ॥ सेर, दहोका पानो ४ सेर, कट्वर अर्थात् दहोका मट्ठा ३२ सेर, पोपलामूल और शोंठ प्रत्येक दो-दो पलका कल्क यथाविधि औटाना । यह तेल मालिश करनेसे ऊरुस्तम्भ और गृध्रसो रोग आराम होता है ।

कुष्ठाद्य तेल—सरसोका तेल ४ सेर, कूठ, नवनोतखोटो, बाला, सरलकाष्ठ, देवदारू, नागकेशर, अजमादा और असगन्ध मिलाकर एक सेरका कल्क, पानो १६ सेर यथाविधि औटाकर सहतके साथ यह तेल पोनेसे ऊरुस्तम्भ रोग विनष्ट होता है ।

महासैन्धवाद्य तैल ।—तिलका तेल ४ सेर, सैन्धव, कूठ, शोंठ, बच, वारगो, मुलेठो, सज्जिन, जायफल, देवदारू, शोंठ,

शठी, धनिया, पीपल, कायफल, कूठ, अजवाईन, अतीस, एरण्ड-मूल, नीलवृक्ष और नीलाकमल, सब मिलाकर एक सेर, काञ्जी १६ सेर, यथाविधि औटाकर पान नस्य मर्द्दन करनेसे ऊरुस्तम्भ, आमवात और पक्षाघात आदि पीडा शान्त होती है।

—०।०—

आमवातरोग।

राम्नापञ्चक।—राम्ना, गुरिच, एरण्डमूल, देवदारू और शोंठ, यह पांच द्रव्योंको राम्नापञ्चक कहते है। यह काढा सब प्रकार आमवातनाशक है।

राम्नासप्तक—राम्ना, गुरिच, अमिलतासका फल, देवदारू, गोखुर, एरण्डमूल और पुननेवा इन सबको राम्नासप्तक कहते हैं। इसके काढेमें शोठका चूर्ण मिलाकर पोनेसे जङ्घा, ऊरू, त्रिक और पृष्ठ शूल आराम होता है।

रसोनादि कषाय—लहसन, शोंठ और निर्गुण्डोका काढा आमवातको श्रेष्ठ औषध है।

महाराम्नादि क्वाथ।—राम्ना, एरण्डमूल अडूसा, जवासा, शठी, देवदारू, वरियारा, मोथा, शोंठ, अतीस, हर्रो, गोखुर, अमिलतास, सोफ, धनिया, पुनर्नवा, असगन्ध, गुरिच, पीपल, विधारा, सतावर, वच, भिंटोमूल, चाभ, वृहती और कण्ट-कारो, इन सब द्रव्योंमें राम्नाके सिवाय बाकी सब द्रव्य समभाग राम्ना दो भाग, आठ गुने पानीमें औटाना आठ भागका एक भाग पानी रहते उतार कर शोंठका चूर्ण मिलाकर पीना। अजमोदादि

चूर्ण और अलम्बुषाद्य चूर्णके अनुपानमें भी यह दिया जाता है। आमवात आदि वातवेदना इससे शान्त होती है।

हिङ्ग्वाद्य चूर्ण—हींग एक भाग, चाभ दो भाग, काला नमक ३ भाग, सोंठ ४ भाग, पीपल ५ भाग, जीरा ६ भाग और कूठ ७ भाग एकत्र चूर्णकर चार आनेभर मात्रा गरम पानी या उक्त काढेके अनुपानसे देना।

अलम्बुषाद्य चूर्ण—मुण्डरी, गोखुरू, गुरिच, बिधारेको बीज, पीपल, तेवडी, मोथा, वरुणमूल, पुनर्नवा, त्रिफला और सोंठ, प्रत्येकका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर चार आनेभर मात्रा दहीका पानी, मट्ठा या काजीके अनुपानसे देना, इससे पिलही, गुल्म, आनाह, अर्श और अग्निमान्द्य आदि पीडा आराम होती है।

वैश्वानर चूर्ण—सेंधानमक २ भाग, अजवाईन २ भाग, अजमोदा ३ भाग, सोंठ ५ भाग और हर्रा १२ भाग, एकत्र चूर्णकर गरम पानी या उक्त अनुपानसे प्रयोग करना। यह भी अलम्बुषादिकी तरह विविध रोग नाशक है।

अजमोदादि वटक।—अजमोदा, गोलमिरच, पीपल, विडङ्ग, देवदारू, चीतामूल, सोवा, सेन्धव और पीपलामूल, प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल, सोंठ १० पल, बिधारेको बीज १० पल, हर्रा पांच पल और सबके बराबर गुड। पहिले गुडमें थोडा पानी मिलाकर औटाना चाशनी होनेपर सबका चूर्ण मिलाकर आधा तोला वजनकी गोली बनाना। अनुपान गरम पानी

योगराजगुग्गुलु।—चीतामूल, पीपलामूल, अजवाईन, काला जीरा, विडङ्ग, अजमोदा, जीरा, देवदारू, बडी इलायची, चाभ, सेंधव, कूठ, रास्ना, गोखुर, धनिया, त्रिफला, मोथा, त्रिकटु, दाल

चीनो, खसको जड, जवाखार, तालीशपत्र और तेजपत्ता प्रत्येकका समभाग चूर्ण और सबके बराबर गुग्गुलु। पहिले गुग्गुलु घीमें अच्छी तरह मिलाना फिर सब चूर्ण मिलाकर थोडा घी मिलाकर मर्द्दन करना। मात्रा आधा तोला अनुपान गरम दूध या उक्त काढा।

बृहत् योगराज गुग्गुलु।—त्रिकटु, त्रिफला, अम्बष्ठा, सोवा, हलदी, दारुहलदी, अजमोदा, बच, हींग, होबेर, गजपीपल, छोटी इलायची, धनिया, काला नमक, सौवर्च्चल नमक, सेंधानमक, पीपलामूल, दालचीनी, बडी इलायची, तेजपत्ता, नागेश्वर, गन्धतुलसी, लौहभस्म, राल, गोत्तुर, रास्ना, शतोस, सोंठ, जवाखार, अम्लवेतस, चीतामूल, कूठ, चाभ, मदादा, अनार, एरण्डमूल, असगन्ध, तेवडी, दन्तीमूल, बेरके बोजकी गिरी, देवदारु, हलदी, कुटकी, मूर्व्वामूल, त्रायमाणा, जवासा, विडङ्ग, वङ्गभस्म, अजवाईन, अडूसेकी छाल और अभरख भस्म प्रत्येकका चूर्ण समभाग और सबके बराबर गुग्गुलु घीमें मर्द्दन कर ऊपर कहे अनुसार तयार करना तथा पूर्व्वोक्त मात्रा और अनुपानसे प्रयोग करना।

सिंहनाद गुग्गुलु।—हर्रा, आवला और बहेडा प्रत्येक चार चार सेर और एक सेर गुग्गुलुको पोटली ८६ सेर पानीमें औटाना २४ सेर रहते नीचे उतार छानकर इसी काढेमें पोटलीका गुग्गुलु और आधा सेर रेडोका तेल मिलाकर औटाना गाढा होनेपर त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, विछौटी का जड, गुरिच, चीतामूल, तेवडी, दन्तीमूल, चाभ, सूरन, मानकन्द, प्रत्येक चार चार तोले जयपाल बीज १००० एक हजार अच्छो तरह चूर्णकर उसमें मिलाना। मात्रा चार आनेभर अनुपान गरम पानी या गरम दूध। इससे विरेचन हो आमवात आराम होता है।

रसोनपिण्ड।—लहसन १२॥ सेर, सफेद तिल आधा सेर, हींग, त्रिकटु, जवाखार, सज्जीखार, पाचोनमक, सोवा, कूठ, पीपलामूल, चीतामूल, अजमोदा, अजवाईन और धनिया प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल, चूर्ण एक पात्रमें रख उसमें १ सेर तिलका तेल २ सेर काजी मिलाकर १६ दिनतक धानके राशिके भीतर रखना। मात्रा आधा तोला अनुपान गरम पानी। इससे श्वास, कास, शूल आदि पोडा शान्त होती है।

महारसोनपिण्ड।—कुटाहुआ लहसन १०० पल, सफेद तिल ५० पल, गायके दहीका मट्ठा १६ सेर; त्रिकटु, धनिया, चाभ, चीतामूल, गजपीपल, अजमोदा, दालचीनी, इलायची और पीपलामूल, प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल, चीनी ८ पल, मरिच १ पल, कुठ ४ पल, कालाजीरा ४ पल, सहत ॥ सेर, अदरख ४ पल, घी ८ पल, तिलका तेल ८ पल, काजी २० पल, सफेद सरसो ४ पल, राई ४ पल, हींग दो तोला, पाचोनमक प्रत्येक दो दो तोले, यह सब द्रव्य एकत्र धूपसे सुखाकर धान्यराशिमें १२ दिन रख देना। मात्रा आधा तोला अनुपान गरम पानी।

आमवातारि वटिका—पारा, गन्धक, लौहभस्म, ताम्रभस्म, अभ्रभस्म, तुतिया, सोहागा और सैंधव प्रत्येक समभाग, सबका दूना गुग्गुलु, चतुर्थांश तेवडीका चूर्ण और चीतामूलका चूर्ण, यह सब द्रव्य घीमें मिलाकर मर्द्दन करना। चार आनेभरकी गोली। अनुपान त्रिफला भिगोया पानी। यह औषध पाचक और विरेचक है।

वातगजेन्द्रसिंह—अभ्रभस्म लौहभस्म, पारा, गन्धक, ताम्रभस्म, सोनाभस्म, सोहागा, मोठाविष, सैंधव, लौंग, हींग और जायफल प्रत्येक एक एक तोला, दालचीनी, तेजपत्ता, बडी इलायची, त्रिफला और

जीरा प्रत्येक आधा तोला, यह सब द्रव्य घिकुआरके रसमें मर्द्दन कर ३ रत्ती बराबर गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानके साथ देनेसे आमवात और अन्यान्य वायुविकार आराम होता है।

वृहत् सैन्धवाद्य तैल—रेंडीका तेल ४ सेर, सोवाका काढा ४ सेर, काजी ८ सेर, दही का पानी ८ सेर, सेन्धव, गजपीपल, रास्ना, सोवा, अजवाइन, सफेद राल, मिरच, कुठ, शोठ, सौवर्च्चल नमक, काला नमक, वच, अजमोदा, मुलेठी, जीरा, कुठ और पीपल प्रत्येक ४ तोले, यथानियम औटाकर पान, अभ्यङ्ग और वस्तिकार्य्यमें प्रयोग करना।

प्रसारिणी तैल—रेंडीका तेल ४ सेर, १६ सेर गधालीके रसमें औटाना, आधा तोला मात्रा दूधमें मिलाकर पीनेसे आमवात और सब प्रकारके श्लेष्मिक रोग शान्त होता है।

विजयभैरव तैल।—पारा, गन्धक, नीमकी छाल और हरिताल प्रत्येक समभाग, काजीसे पीसकर कपडेके एक टुकडे में लेपकर सुखा लेना फिर उसको बत्ती बनाकर बत्तीके अग्रभागमें तेल लगाकर जलाना, तथा जलती हुई बत्तीपर थोडा थोडा सरसो या रेंडीका तेल देते रहना, इस रीतिसे नीचेके पात्रमें जो तेलका बूंद गिरेगा उसीका नाम विजय भैरव तेल है। उक्त द्रव्योंमें एक भाग अफीम मिलाकर तेल तयार करनेसे उसे महाविजयभैरव तैल कहते है। यह तेल मालिश करनेसे सब प्रकारका वातरोग आराम होता है।

शूलरोग।



सामुद्राद्य चूर्ण—कटैला नमक, सेंधानमक, जवाखार, सज्जीक्षार, सौवर्च्चल नमक, साम्भर, कालानमक, दन्तीमूल, लौहभस्म, मण्डुर, तेवडीमूल और जिमिकन्द प्रत्येक समभाग, और सबका चौगूना दही, दूध और गोमूत्र प्रत्येक समभाग एकत्र सब मिलाकर हलकी आंचमें औटाना। चूर्णको तरह होजानेपर नीचे उतार लेना। मात्रा दो आने या चार आनेभर गरम पानीसे देना। इससे सब प्रकारका शूल आराम होता है।

शम्बुकादि गुडिका—शम्बुक भस्म, शोंठ, पीपल, मिरच, सेंधव, काला, सौवर्च्चल, सामुद्र और औद्भिद लवण प्रत्येक समभाग, कलमीशाक के रसमें खलकर एक आनेभर को गोली बनाना। सवेरे या भोजनके वख्त यह गोली खानेसे परिणाम शूलमें आशु उपकार होता है।

नारिकेल क्षार—पानीभरा नारियलमें सेंधानमक भरकर ऊपरसे मिट्टीका लेपकर सुखा लेना, फिर कण्डेकी आंचमें उसे जला लेना। नारियलके भीतरका नमक और गूदाके बराबर पीपलका चूर्ण एकत्र मिलाकर एक आनाभर मात्रा पानीके साथ लेनेसे परिणाम शूल आराम होता है।

तारामण्डुर गुड—शोधित मण्डूर ८ पल, गोमूत्र १८ पल, गुड ८ पल, उपयुक्त पानीमें औटाना, पाक शेष होनेपर वायबिडङ्ग, चितामूल, चाभ, त्रिफला और त्रिकटु प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल मिलाकर धीमी आंच देना, पानी सूख जानेपर नीचे उतार

स्निग्ध पात्रमें रखना। मात्रा एक तोला भोजनसे पहिले बीचमें या पीछे सेवन करना।

शतावरी मण्डुर—शोधित मण्डूर चूर्ण ८ पल, सतावरका रस ८ पल, दही ८ पल, दूध ८ पल, घी ४ पल, एकत्र यथारीतिसे औटाना तथा पिण्डकी तरह हो जानेपर उतार लेना। भोजनके पहिले मध्य और शेषमें प्रत्येक वार एक आनाभर मात्रा सेवन करनेसे सब प्रकारका शूल दूर होता है।

बृहत् शतावरी मण्डूर।—पहिले मण्डूर गरम कर त्रिफलाके काढेमें डालकर शोधन करना, फिर वही मण्डूर ८ पल, सतावरका रस ८ पल, दही ८ पल, दूध ८ पल, आंवलेका रस ८ पल और घी ४ पल एकत्र औटाना। पाकशेष होनेपर जीरा, धनिया, मोथा, दालचीनी, तेजपत्ता, बडी इलायची, पीपल और बडी हरें, प्रत्येकका चूर्ण आधा तोला मिलाना। शतावरी मण्डूरकी तरह सेवन करनेसे सब प्रकारका शूल और अम्लपित्त आराम होता है।

धात्रीलौह—आंवलेका चूर्ण ८ पल, लौहभस्म ४ पल, मुलेठी का चूर्ण २ पल सबको आंवलेके रस या काढेको सात वार भावना देना, सूख जानेपर चूर्णकर मात्रा चार आनेभर अनुपान घी और मधु भोजनके पहिले, मध्य और अन्तमें सेवन करना।

औटाया हुवा धात्रीलौह।—कुटा हुआ यव तण्डुल ४ पल, पानी १६ पल, शेष ४ सेर, वस्त्रपूत सतावरका रस, आंवरेका रस या काढा, दही और दूध प्रत्येक ८ पल, बिदारीकन्द का रस, घी और इक्षुरस प्रत्येक ४ पल और शोधित मण्डूर चूर्ण ६ पल एकत्र औटाना। पाकशेष होनेपर जीरा, धनिया, दालचिनी, तेजपत्ता, इलायची, गजपीपल, मोथा, बडीहरें, लोहभस्म, अभरख भस्म,

त्रिकटु, रेणुका, त्रिफला, तालीशपत्र, नागेश्वर कुटकी, मुलेठी, रास्ना, असगन्ध और लालचन्दन प्रत्येक का चूर्ण दो दो तोले मिलाना तथा अच्छी तरह चलाकर नीचे उतार लेना। मात्रा चार आनेभर भोजनके पहिले, मध्य और अन्तमें अन्न या दूधके साथ सेवन करना।

आमलकी खण्ड।—उबाला वस्त्र निष्पीडित पक्का भतुवा ५० पल, २ सेर घीमें भून लेना। फिर आंवलेका रस ४ सेर, भतुयेका पानी ४ सेर और चीनी ५० पल एकत्र मिलाकर छान लेना तथा इसी रसमें भुना हुआ भतुवा औटाना। पाकशेष होनेपर उसमें पीपल, जीरा और सोंठ प्रत्येक का चूर्ण दो दो पल, मिरच का चूर्ण १ पल, तालीशपत्र, धनिया, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर और मोथा प्रत्येक का चूर्ण दो दो तोले मिला ठण्ढा होनेपर एक सेर शहद मिलाना। मात्रा आधा तोला अनुपान गरम दूध। इससे सब प्रकारको शूल और अम्लपित्त रोग आराम आराम होता।

नारिकेल खण्ड।—शिलापिष्ट और वस्त्र निष्पीडित पक्के नारियलका गूदा ॥० सेर आध पाव घीमें थोड़ा भून लेना। फिर कच्चे नारियलका पानी ४ सेर, चीनी आधा सेर एकत्र मिलाकर छान लेना। तथा इसी रसमें भूजा हुआ नारियलका गूदा औटाना, पाकशेष होनेपर इसमें धनिया, पीपल, मोथा, वंशलोचन, जीरा और कालाजीरा प्रत्येक आधा तोला, तथा दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची और नागेश्वर प्रत्येक एक एक मासे मिलाना। मात्रा एक तोला अनुपान गरम दूध।

वृहत् नारिकेल खण्ड।—शिलापिष्ट रस निचोड़ा पक्के नारियलका गूदा ८ पल, ५ पल घीमें भूनना। फिर कच्चे नारियलका पानी १६ सेरमें चीनी ८ सेर मिलाकर छान लेना।

इसी रसमें भूना हुआ नारियल और शोंठका चूर्ण ४ पल तथा दूध दो सेर मिलाकर धोमी आचमें औटाना। पाकशेष होनेपर वंशलोचन, त्रिकटु, मोथा, दालचोनो, तेजपत्ता, इलायचो, नागेश्वर, धनिया, पीपल, गजपीपल और जोरा प्रत्येक का चूर्ण ॥ तोले मिलाना। मात्रा आधा तोला, इससे शूल, अम्लपित्त, जोमचलाना और हृद्रोग आदि पीडा दूर हो बल, शुक्र आदि बढता है।

नारिकेलामृत।—पिष्ट और वस्त्र निष्पोडित सुपक्क नारियलका गूदा २ सेर, ४ सेर घोमें भूनना। फिर कच्चे नारियल का पानी ३२ सेर, गायका दूध ३२ सेर, आवलेका रस ॥ सेर, चोनो १२॥ सेर और शोंठका चूर्ण २ सेरके साथ नारियलका गूदा एकत्र औटाना। पाकशेष होनेपर त्रिकटु, दालचोनी, तेजपत्ता, इलायची और नागेश्वर प्रत्येक का चूर्ण एक एक पल, आवला, जीरा, कालाजोरा, धनिया, वंशलोचन और मोथा, प्रत्येक का चूर्ण ६ तोले इसमें मिलाना। ठण्डा होनेपर आधा सेर सहत मिलाना। यह परिणाम शूलका श्रेष्ठ औषध है।

हरीतकी खण्ड—त्रिफला, मोथा, दालचोनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, अजवाईन, त्रिकटु, धनिया, सौफ, सोवा और लौंग प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोला, तेवडो और सनायका चूर्ण दो दो पल, बडोहर्रका चूर्ण ८ पल, चोनो ३२ पल, यथाविधि औटाना। मात्रा आधा तोला अनुपान गरम दूध।

शूलगजकेशरी।—पारा एकभाग और गन्धक २ भाग कज्जली बना, फिर समान वजनके ताम्रपुटमें वह कज्जली बन्द करना, फिर एक हाडोमें पहिले थोडा सेंधानमक देकर उपर वह ताम्रपुट रख उसके उपर भो थोडा सेंधानमक डालकर हाडीका मुह

मिट्टीसे बन्द करना। गजपुटसे फाडी फुकाकर दूसरे दिन ताम्र पुटका चूर्ण करना। इसको ४ रत्ती माता सेवन करनेसे कष्टसाध्य शूलभी आराम होता है। यह औषध सेवन कर हींग, सोंठ, जीरा, वच और गोलमिरचका चूर्ण आधा तोला गरम पानीसे लेना उचित है।

शूलवज्रिणी वटिका—पारा, गंधक और लौहभस्म प्रत्येक चार चार तोले, सोहागा, हींग, सोंठ, त्रिकटु, त्रिफला, शठी, दाल चीनी, इलायची, तेजपत्ता, तालीशपत्र, जायफल, लौंग, अजवाइन, जीरा और धनिया प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला। यह सब द्रव्य बकरीके दूधमें खलकर एक मासा वजनकी गोली बनाना। अनुपान बकरीका दूध या ठण्ढा पानी।

शूलगजेन्द्र तैल—तिलका तैल आठ सेर, एरण्डमूल, दशमूलका प्रत्येक द्रव्य पांच पांच पल, पानी ५५ सेर शेष १३॥ सेर, जौ ८ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, दूध १६ सेर और सोंठ, जीरा, अजवाइन, धनिया, पीपल, वच, सैंधव और वैरका पत्ता प्रत्येक दो दो पलका कल्क यथाविधि औटाकर मालिश करना।

उदावर्त्त और आनाह।

नाराच चूर्ण—चीनी ८ तोले, तेवड़ी चूर्ण २ तोले और पीपल चूर्ण ४ तोले एकत्र मिलाकर आधा तोला माता भोजनके पहिले सहतमें मिलाकर चाटना।

गुडाष्टक—त्रिकटु, पीपलामूल, तेवडोमूल, दन्तीमूल और चीतामूल, प्रत्येक समभाग, तथा समष्टीके बराबर गुडमें मिलाकर आधा तोला मात्रा सवेरे पानीके साथ देना।

वैद्यनाथ वटी—हरीतकी, त्रिकटु और पारा प्रत्येक एक एक भाग और जयपाल बीज दो भाग शङ्खपुष्पीके रसमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना।

बृहत् इच्छाभेदी रस।—पारा, गन्धक, सोहागा, गोलमिरच और तेवडो प्रत्येक समभाग, पारेका दूनी अतीस और जयपाल की बीज पारेका ८ गूना एकत्र मदारके पत्तेके रसमें खलकर कपड़े की आचपर औटा लेना, फिर एक रत्ती बराबर गोली ठण्ढे पानीसे देना। यह दवा सेवन कर जबतक गरम पानी न पीवे तबतक दस्त होगा, तथा गरम पानी पीतेही दस्त बन्द हो जायगा। पथ्य—दही और भात।

शुष्कमूलाद्य घृत—सूखी मूली, अदरख, पुनर्नवा, स्वल्प अथवा बृहत् पञ्चमूल और अमिलतासका फल यह सब द्रव्य मिलाकर ८ सेर ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर पानी रहते उतारकर छान लेना, इस काढ़ेमें ४ सेर घी औटाना। मात्रा एक तोला अनुपान गरम दूध और चीनी। इससे उदावर्त्त आराम होता है।

स्थिराद्य घृत—स्वल्प पञ्चमूल, पुनर्नवा, अमिलतासका फल और नाटाकरञ्ज प्रत्येक दो दो पल समष्टी के चौगूने पानीमें औटाना चतुर्थांश पानी रहते उतार कर छान लेना, इस काढ़ेमें ४ सेर घी औटाना। यह भी पूर्ववत मात्रा प्रयोग करनेसे उदावर्त्त रोग आराम होता है।

गुल्मरोग ।

हिङ्गादि चूर्ण—हींग एक भाग, बच दो भाग, कालानमक ३ भाग, सोंठ ४ भाग, जीरा ५ भाग, हर्रा ६ भाग, पुष्करमूल ७ भाग और कूठ ८ भाग एकत्र मिलाकर चार आने मात्रा गरम पानीसे सेवन कराना।

वचादि चूर्ण—बच, हर्रा, हींग, सैंधानमक, अम्लवेतस, जवाक्षार और अजवाइन, प्रत्येक समभाग एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा गरम पानीसे सेवन करनेसे गुल्मरोग आराम होता है।

वज्रक्षार।—सामुद्रलवण, सैंधव लवण, कटैला नमक, जवाखार, सोवर्चल नमक, सोहागीका लावा और सज्जीखार प्रत्येक समभाग, सोजका दूध और मदारके दूधको तीन तीन दिन भावना देकर सुखा लेना। फिर मदारका पत्ता लपेटकर एक हाडोमें रखना तथा हाडोका मुह बन्दकर चुल्हेपर रख सब द्रव्य अन्तर्धूमसे जलाना। फिर त्रिकटु, त्रिफला, अजवाइन, जीरा और चीतामूल प्रत्येक समभाग तथा समष्टीके समान वजन यह क्षार एकत्र मिलाकर चार आनेभर या आधा तोला मात्रासे वाताधिक्य गुल्ममें गरम पानी, पित्ताधिक्यमें घी, कफाधिक्यमें गोमूत्र, त्रिदोषमें काञ्जी और उदावर्त्त, प्लीहा, अग्निमान्द्य और शोथादि रोगमें ठण्ढे पानीके अनुपानसे प्रयोग करना।

दन्ती हरीतकी।—ढोली पोटलीमें बधा हुआ २५ हर्रा, दन्तीमूल २५ पल, चीतामूल २५ पल, पानी ६४ सेर, शेष ८ सेर, इस काढेमें २५ पल पुराना गुड़ मिलाकर उक्त २५ हर्रा डालकर औटाना। पाक शेष होनेपर तेवडी का चूर्ण ४ पल, तिलका तेल ४ पल, पीपलका चूर्ण ४ तोले और शोंठका चूर्ण ४ तोले मिलाकर उतार लेना ठण्ढा होनेपर मधुत ४ पल, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची और नागेश्वर प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले उसमें मिलाना। मात्रा एक हर्रा और आधातोला गुड सबेरे खिलाना। इससे विरेचन हो गुल्म, प्लीहा, शोथ, अर्श, हृद्रोग आदि पीडा दूर होती है।

काङ्कायन गुडिका।—शठो, कूठ, दन्तीमूल, चीतामूल, अडहर, शोंठ, वच और तेवडीकी जड, प्रत्येक एक एक पल, होग २ पल, जवाक्षार २ पल, अम्लवेतस २ पल, अजवाईन, जीरा, मिरच और धनिया प्रत्येक दो दो तोले तथा काला जीरा और अजमोदा प्रत्येक चार तोला एकत्र नोवूके रसमें खलकर आधा तोला मात्राकी गोली बनाना। अनुपान गरम पानी। कफज गुल्ममें गोमूत्रके साथ, पित्तज गुल्ममें दूधके साथ, वातज गुल्ममें काजीके साथ और रक्तज गुल्ममें ऊटके दूधके साथ सेवन करनेसे विशेष उपकार होता है।

पञ्चानन रस—पारा, गन्धक, तुतियाभस्म, जयपाल बीज, पीपल और अमिलतासका गूदा समभाग सीजके दूधको भावना देकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। आवलेका रस या इमलीके पत्तेके रसके अनुपानमें देनेसे रक्तगुल्म आराम होता है।

गुल्म कालानल रस।—पारा, गन्धक, हरिताल, ताम्रभस्म, सोहागा और जवाक्षार प्रत्येक का चूर्ण दो दो तोले मोथा, पीपल, शोंठ, मिरच, गजपीपल, बडीहर्र, वच और कूठ,

प्रत्येक का चूर्ण एक एक तोला यह सब द्रव्य, दवनपापडा, मोथा, शोंठ, चिरचिरा और अम्बठाक काढेकी भावना दे सुखाकर चूर्ण करना। माता ४ रत्ती बडोहरें भिगोये पानीमें देनेसे सबप्रकार का गुल्म आराम होता है, यह वातगुल्मका उत्कृष्ट औषध है।

वृहत् गुल्मकालानल रस।—अभरख भस्म, लोहाभस्म, पारा, गन्धक, सोहागा, कुटकी, बच, जवाखार, सज्जीखार, सेंधव, कूठ, त्रिकटु, देवदारू, तेजपत्ता, इलायची, दालचीनी, नागेश्वर, और खेर, प्रत्येकका समभाग चूर्ण, जयन्ती, चीता और धतूरेके पत्तेके रसकी भावना दे, ४ रत्ती बराबर गोली बनाना तथा सवेरे एक गोली पानी या दूधमें देनेसे पांच प्रकारका गुल्म, यकृत्, प्लीहा, उदर, कामला, पाण्डु, शोथ, हलीमक, रक्तपित्त, अग्निमान्द्य, अरुचि, ग्रहणी, तथा जीर्ण और विषम ज्वर आदि आराम होता है।

त्र्यूषणाद्य घृत—घी ४ सेर, दूध १६ सेर, त्रिकटु, त्रिफला, धनिया, विडङ्ग, चाभ और चीतामूलका एक सेर कल्क यथाविधि औटाकर आधा तोला माता गरम दूधमें देनेसे वातगुल्म आराम होता है।

नाराच घृत—घी एक सेर, चीतामूल, त्रिफला, दन्तीमूल, तेवडीमूल, कण्टकारी, सीजका दूध और विडङ्ग, प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क और पानी ४ सेर यथाविधि औटाना। गरम पानी या जांगल मासके रसमें सेवन करनेसे वातगुल्म और उदावर्त्त रोग आराम होता है।

त्रायमाणाद्य घृत।—घी एक सेर, त्रायमाणा ४ पल, पानी ४० पल शेष ८ पल, आवलेका रस एक सेर, दूध एक सेर और कुटकी, मोथा, त्रायमाणा, जवासा, भुंई आवला, क्षीर-काकोली, जीवन्ती, लालचन्दन और नीलाकमल प्रत्येक दो दो

तोलेका कल्क यथारीति औटाना। इस घीके सेवन करनेसे पित्तगुल्म, रक्तगुल्म, विसर्प, पित्तज्वर, हृद्रोग और कामला आदि पीडा दूर होती है।

—o—

हृद्रोग।

—o—

ककुभादि चूर्ण—अर्जुन छाल, वच, रास्ना, बरियारा, गुल-शकरी, हर्रा, शठी, कूठ, पीपल और सोंठ, प्रत्येकका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा गायके घीके साथ सेवन करना।

कल्याणसुन्दर रस—रससिन्दूर, अभरख, चांदी, तांबा, सोनाभस्म और हिङ्गुल, प्रत्येक समभाग, एक दिन चीतामूलके रसके और ७ दिन हाथीशुंडाके रसकी भावना दे, एकरत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान गरम दूधमें देनेसे हृदगत रोग आराम होता है।

चिन्तामणि रस—पारा, गन्धक, अभरख, लोहाभस्म, लौह और शिलाजीत प्रत्येक एक एक तोला, सोनाभस्म चार आने और चांदी भस्म आठ आनेभर एकत्र चीताका रस, भङ्गरैयाका रस और अर्जुन छालके काढेको सात सातबार भावना दे एक रत्ती बराबर गोली बना छायामें सुखा लेना। गोमूत्रके साथ देनेसे सब प्रकारके हृद्रोग और प्रमेह रोग आराम होता है।

हृदयार्णव रस—पारा, गन्धक और ताम्रभस्म प्रत्येक सम-भाग, एकत्र त्रिफलाका काढा और काकमाचीके रसको एक

एक दिन भावना दे चना बराबर गोली बनाना अर्ज्जुनछालका रस या काढ़ेमें यह सेवन करनेसे हृद्रोग शान्त होता है।

विश्वेश्वर रस—सोना, अभरख, लोहा, वङ्गभस्म, पारा, गंधक और वैक्रान्तभस्म प्रत्येक एक एक तोला, एकत्र कपूरके पानीकी भावना दे एक रत्ती बराबर गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानके साथ देनेसे हृदय और फुसफुसकी विविध पीड़ा शान्त होती है।

श्वदंष्ट्राद्य घृत।—घी ४ सेर, गोक्षुर, खसकी जड़, मजीठ, बरियारा, गम्भारी की छाल, गंधतृण, कुशमूल, पिठवन, ऋषभक और सरिवन, प्रत्येक एक एक पल, पानी १६ सेर शेष ४ सेर, दुध १६ सेर कवाच बीज, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, जीरा, सतावर, ऋद्धि, मुनक्का, चीनी, सुफ़ड़ी और मृणाल सब मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाना (मात्रा आधा तोला गरम दूधके साथ सेवन करनेसे यावतीय हृद्रोग), उर क्षत, क्षय, क्षीण, प्रमेह और मूत्रकृच्छ्र आदि पीड़ा शान्त होती है।

अर्ज्जुन घृत—घी ४ सेर, अर्ज्जुन छाल ८ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, यह काढ़ा और अर्ज्जुन छालका कल्क एक सेर, यथाविधि औटाकर सब प्रकारके हृद्रोगमें प्रयोग करना।

—*—

मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात।

—०—

एलादि काढ़ा—इलायची, पीपल, मुलेठी, पत्थरचर, रेणुका गोक्षुर, अड़ूसा और एरण्डमूलके काढ़ेमें शिलाजीत और चीनी

मिलाकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्, मूत्राघात और अश्मरी रोग आराम होता है।

वृहत् धात्र्यादि काढा—आवला, मुनक्का, बिदारीकन्द, मुलेठी, गोक्षुर, कुशमूल कालो इक्षुमूल और हर्रोके काढेमें आधा तोला चीनी मिलाकर पिलाना।

धात्र्यादि काढा—आवला, मुनक्का, बिदारीकन्द, मुलेठो और गोक्षुरका काढा ठढा होनेपर चीनी मिलाकर मूत्रकृच्छ्र आदि रोगमें सेवन कराना।

मूत्रकृच्छ्रान्तक रस—पारा, गन्धक और जवाखार एकत्र मिलाकर चीनी और मट्ठेके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका मूत्र-कृच्छ्र आराम होता है।

तारकेश्वर—पारा, गन्धक, लोहा, वङ्ग, अभरख भस्म, जवासा, जवाखार, गोक्षुर बीज और हर्रो समभाग, भतुवेका पानी, तृण पञ्चमूलका काढा और गोक्षुर रसकी एक एक दफे भावना दे, एकरत्ती बरावर गोली बनाना, अनुपान सहत और गुल्लरके बीज का चूर्ण एक आनाभर।

वरुणाद्य लौह।—वरुणछाल १६ तोले, आवला १६ तोले, धवईका फूल ८ तोले, हर्रो ४ तोले, पिठवन २ तोले, लोहाभस्म २ तोले और अभरख भस्म २ तोले एकत्र मिलाकर एक आना मात्रा उपयुक्त अनुपानके साथ प्रयोग करना। यह मूत्रदोष निवारक, बलकारक और पुष्टिकर है।

कुशावलेह।—कुश, काश, खस, काली ऊख और सर-कण्ड प्रत्येककी जड १० पल, पानी ६४ सेर शेष ८ सेर, इस काढेमें २ सेर चीनी मिलाकर औटाना। गाढा होजानेपर नीचे उतारकर मुलेठी, ककडीको बीज, कोहडेको बीज, खीरेको बीज,

वंशलोचन, आवला, तेजपत्ता, दालचीनी, इलायची, नागेश्वर, वरूणछाल, गुरिच और प्रियङ्गु, प्रत्येकका चूर्ण दो दो तोले उसमें मिलाकर हिलाना। मात्रा एक तोला अनुपान पानीके साथ देनेसे सब प्रकारका मूत्रकृच्छ, मूत्राघात अश्मरी और प्रमेह आदि पीडा दूर होती है।

सुकुमार कुमारक घृत।—सफेद पुनर्नवा १२॥ सेर और दशमूल, शतावर, बरियारा, असगन्ध, तृणपञ्चमूल, गोक्षुर, सरिवन, गुलशकरी, गुरिच और सफेद बरियारा, प्रत्येक १० पल, एकत्र १२८ सेर पानीमें औटाना ३२ सेर पानी रहते उतार कर छान लेना, फिर इस काढेमें ३ सेर ३ पाव गुड और रेडीका तेल ४ सेर मिलाना तथा मुलेठी, अदरख, मुनक्का, सेंधानमक और पीपल प्रत्येक १६ तोलेका कल्क और अजवाईन आधा सेरके साथ ८ सेर घी यथाविधि औटाना। भोजनके पहिले आधा तोला मात्रा सेवन करना। इसमे मूत्रकृच्छ, मूत्राघात, कटिस्तम्भ, मलकाठिन्य, लिङ्ग, पट्ठा और योनिशूल, गुल्म, वायु और रक्तदुष्टि जन्य पीडा आदि दूर हो बलवृद्धि और शरीर पुष्ट होता है।

त्रिकण्टकाद्य घृत।—घी ४ सेर, गोक्षुर दो सेर, एरण्डमूल दो सेर, तृणपञ्चमूल २ सेर, प्रत्येकको अलग अलग १६ सेर पानीमें औटाकर ४ सेर रखना। फिर सतावरका रस ४ सेर, भतुवेका रस ४ सेर और इक्षुरस ४ सेरके साथ औटाना। पाक शेष होनेपर गरम रहते ही छानकर उसमे दो सेर गुड मिलाना। मात्रा एक तोला अनुपान गरम दूध, इससे मूत्रकृच्छ्रादि पीडा शान्त होती है।

त्रिलकाद्य घृत।—घी १६ सेर, दूध १६ सेर, पानी ६४ सेर, चीतामूल, अनन्तमूल, बरियारा, तगरपादुका, मुनक्का,

इन्द्रवारुणी, पीपल, चित्रफला, (गुलशकरी) मुलेठी और आवला प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाना। तथा ठण्ढा होनेपर छान लेना। फिर इसके साथ चीनी दो सेर और बंशलोचन दो सेर मिलाना। यह घी आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे सब प्रकारका मूत्रदोष, शुक्रदोष, योनिदोष और रक्तदोष दूर हो शुक्र और आयुकी वृद्धि होती है।

धान्यगोक्षुरक घृत—घी ४ सेर, धनिया और गोक्षुर चार चार सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, यह काढा और गोक्षुर धनिया प्रत्येक आधा सेरका कल्क यथाविधि औटाकर मूत्राघातादि पोडामें प्रयोग करना।

विदारी घृत।—घी ४ सेर, बिदारीकन्द, अडूसा, जूही फल, अम्लवेंती नीबू, गन्धतृण, पाथरचूर, लताकस्तूरी, अकवन, अपामार्ग, चीतामूल, श्वेत पुनर्नवा, बच, रास्ना, बरियारा, गुलशकरी, कसेरू, मृणाल, सिङ्घाडा, भूईआवला, सरिवन, गुलशकरी, वृहती, कण्टकारी, गोक्षुर और शर, इक्षु, दर्भ, कुश और काशकी जड प्रत्येक दो दो पल, पानी ६४ सेरमें औटाना शेष १६ सेर। तथा सतावरका रस ४ सेर, आंवलेका रस ४ सेर, चीनी ६ पल, मुलेठी, पोपल, मुनक्का गम्भारी, फालसा, इलायची, जवासा, रेणुका, केशर, नागेश्वर और जीवनीयगण प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, यथाविधि औटाना। यह मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, हृद्रोग, शुक्रदोष, योनिदोष, रजोदोष और क्षय आदि रोगोंमें प्रयोग करना।

शिलोद्भिदादि तैल—तिलका तैल ॥ सेर पुनर्नवा और सतावरका रस १६ सेर, पाथरचूर, एरण्डमूल और सरिवन मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाना, आधा तोला

मात्रा गरम दूधमें मिलाकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्रादि पीड़ा शान्त होती है।

उशीराद्य तैल।—तिलका तैल ४ सेर, फल, पत्ता और मूल सह गोक्षुर १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, खसकी जड़ १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, मट्ठा ४ सेर, तथा खसकी जड़, तगरपादुका, कूठ, मुलेठी, लालचन्दन, बहेड़ा, हर्रा, कण्टकारी, पद्मकाष्ट, नीलाकमल, अनन्तमूल, बरियारा, असगन्ध, दशमूल, सतावर, बिदारीकन्द, काकोली, गुरिच, गुलशकरी, गोक्षुर, सोवा, सफेद बरियारा और सौंफ प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर मूत्रकृच्छ्रादि रोगमें मर्द्दन करना।

अश्मरी।

शुण्ठ्यादि काढ़ा—शोंठ, गणियारी, पाथरचूर, सेजनछाल, वरुणछाल, गोक्षुर, हर्रा और अमिलतासका फल, इन सबके काढ़ेमें हींग, जवाखार और सेंधानमक मिलाकर पीनेसे अश्मरी और मूत्रकृच्छ्र आदि पीड़ा आराम होता है।

वृहत् वरुणादि—वरुणछाल, शोंठ, गोक्षुर बीज, तालमूली, कुरथी और तृणपञ्चमूल, इन सबके काढ़ेमें चार आनेभर चीनी और चार आनेभर जवाखार मिलाकर पीनेसे अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र, और वस्तिशूल आराम होता है।

पाषाणवज्र रस।—पारा एकभाग और गन्धक दो भाग श्वेतपुनर्नवाके रसमें एक दिन खलकर एक हाडीमें रखना, तथा दूसरी हाडी उपरसे औधेरख मिट्टीसे लेप करना, फिर एक गढेमें हाडीको रख उपर कण्डेकी आच लगाना। पाक शेष होनेपर गुडके साथ खलकर २ रत्ती वरावर गोली बनाना। अनुपान इन्द्रवारुणीके जडका काढा अथवा कुरथीका काढा, अश्मरी और वस्तिशूल रोगमें प्रयोग करना।

पाषाणभिन्न।—पारा एक पल और शिलाजीत एक पल, एकत्र श्वेतपुनर्नवा, अडूसा और श्वेत अपराजिताके रसमें एक एक दिन खलकर सूख जानेपर एक भाण्डमें रख मुह बन्द करना। दूसरी हाडीमें पानी देकर बीचमें वह भाण्ड लटकाकर आगपर रखना। फिर निकालकर भूईआवलेका फल, इन्द्रवारुणीकी जड और दूधके साथ एक एकबार खलकर २ रत्ती वरावर गोली दूध अथवा कुरथीके काढेमें देना।

त्रिविक्रम रस।—शोधित ताम्बा और बकरीका दूध समभाग लेकर एकत्र औटाना, दूध नि शेष होजानेपर ताम्बेके बराबर पारा और गन्धक की कज्जली मिलाना, फिर निर्गुण्डीके पत्तेके रसमें एक दिन खलकर गोला बनाना तथा इस गोलेको एक पहर बालुका यन्त्रमें पाक करना। २ रत्ती मात्रा शर्पती नीवूकी जडका रस या पानीके अनुपानमें सेवन करनेसे अश्मरी शर्करा रोग दूर होता है।

कुलत्थाद्य घृत।—घी ४ सेर, वरुणछाल ८ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर यह काढा और कुरथी, सेधानमक विडङ्ग, चीनी हरसिंगार का पत्ता, जवाखार, कोहडेकी बीज और गोक्षुर,

गोली बनाना। पानका रस अथवा उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे प्रमेह, शुक्रक्षय, लिङ्गशैथिल्य, सन्निपात ज्वर और यावतीय शुक्रज व्याधि निराकृत होती है। मुमूर्षु अवस्थामें जब शरीर शीतल हो जाता है, उस वक्त इस औषध से उपकार होता है।

अष्टावक्र रस।—पारा एक तोला, गंधक २ तोले, सोना भस्म एक तोला, रौप्य आधा तोला, सीसा, ताम्बा, खर्पर और वंग प्रत्येक भस्म चार आनेभर, यह सब द्रव्य एकत्र बटाकुरके रसमें एकपहर, घिकुआरके रसमें एक पहर खलकर मकरध्वजकी तरह पाक करना। पाकशेष होनेपर अनारके फूलकी तरह रंग होता है। २ रत्ती मात्रा पानके रसमें यह औषध सेवन करनेसे शुक्र, बल, पुष्टि, मेधा और कान्तिकी वृद्धि होती है तथा बलिपलित आदि रोग दूर होता है।

मन्मथाभ्र रस।—पारा, गन्धक और अबरख भस्म प्रत्येक ४ तोले, कपूर और वङ्ग प्रत्येक एक एक तोला, ताम्बा आधा तोला, लोहा २ तोले और बिधारेको बीज, जीरा, विदारीकन्द, सतावर, तालमाखाना, बरियारा, कवाच, अतीस, जावित्री, जायफल, लौंग, भांगको बीज, सफेद राल, और अजवाईन प्रत्येक आधा तोला, एकत्र पानीके साथ मर्द्दनकर दो रत्ती बराबर गोली बनाना। यह गरम दूधके साथ सेवन करनेसे ध्वजभङ्गादि रोग आराम होता है।

मकरध्वज रस।—शोधित सोनेका पतला पत्तर एक पल, पारा ८ पल और गन्धक २४ पल, एकत्र लालरंगके कपास फूलके रसमें और घिकुआरके रसमें खलकर मकरध्वजकी तरह फूकना। फिर वही मकरध्वज एक तोला, कपूर, लौंग, मिरच और जायफल प्रत्येक ४ तोले, कस्तूरी ६ मासे एकत्र खलकर २

रत्तो माता पानके रसमें सेवन करनेसे ध्वजभङ्गादि रोग दूर होता है।

अमृतप्राश घृत।—घो ४ सेर, छागमांस १२॥ सेर और असगन्ध १२॥ सेर, अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाकर १६ सेर रहते छान लेना। बकरीका दूध १६ सेर, बरियारेकी जड, गोधूम, असगन्ध, गुरिच, गोक्षुर, कसेरू, त्रिकटु, धनिया, तालाङ्कुर, त्रिफला, कस्तूरी, कवाच बीज, मेद, महामेद, कूठ, जीवक, ऋषभक, शठी, दारुहलदी, प्रियङ्गु, मजीठ, तगरपादुका तालीशपत्र इलायची, तेजपत्ता, दालचीनी, नागेश्वर, जातीपुष्प, रेणुका, सरलकाष्ठ, जावित्री, छोटी इलायची, नीलाकमल, अनन्तमूल, जीवन्ती, ऋद्धि, वृद्धि और गुलर प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, तथा मूर्च्छाके लिये केशर ४ तोले, यथाविधि औटाकर छान लेना फिर एक सेर चीनी मिलाना। आधा तोलासे एक तोला माता गरम दूधके साथ सेवन करनेसे ध्वजभङ्ग, शुक्रहीनता, आर्त्तवहीनता और चीण रोगादि नाश होता है।

वृहत् अश्वगन्धा घृत।—घी ॥ सेर, असगन्ध १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६, छागमांस २५ सेर, पानी १२८ सेर शेष ३२ सेर, दूध १२ सेर, तथा काकोली, चीरकाकोली, ऋद्धि, वृद्धि, मेद, महामेद, जीवक, ऋषभक, कवाच की बीज, इलायची, मुलेठी, मुनक्का, मागोनी, माषोनी, जीवन्ती, पीपल, बरियारा, सतावर और विदारीकन्द सब मिलाकर एक सेरका कल्क, यथा-विधि औटाना पाकशेष होनेके थोडी देर पहिले कल्कद्रव्य छानकर फिर औटाना। पाकशेष तथा ठण्ढा होनेपर आधा सेर चीनी और आधा सेर मधु मिलाना। पूर्व्वोक्त माता सेवन करनेसे उक्त रोग सब आराम होता है।

कामेश्वर मोदक ।—कूठ गुरिच, मेथी, मोचरस, बिदारीकन्द, तालमूली, गोक्षुर, तालमखाना, सतावर, कसेरू, अजवाईन, धनिया, मुलेठी, गुलशकरी, तिल, सौफ, जायफल, सैन्धव, बारंगी, काकडाशिंगी, त्रिकटु, जीरा, कालाजीरा, चीतामूल, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, पुनर्नवा, गजपीपल, मुनक्का, शठी, कायफल, सेमरकी जड, त्रिफला और कवाच की बीज प्रत्येकका समभाग चूर्ण, समष्टीका चौथा हिस्सा अभ्रभस्म तथा समष्टीके दोभागका एकभाग भागका चूर्ण, समष्टीके आठभाग का एकभाग गन्धक और सब समष्टीकी दूनी चीनी, यह सब द्रव्य उपयुक्त घी और सहतमें मिलाकर मोदक बनाना। आधा तोलासे २ तोलेतक मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे वीर्य्य वृद्धि और वीर्य्यस्तम्भ होता है।

कामाग्निसन्दीपन मोदक ।—पारा, गन्धक, अभरख भस्म, जवाखार, सज्जीखार, चीतामूल, पञ्चलवण, शठी, अजवाइन, अजमोदा, वायविडङ्ग और तालीशपत्र प्रत्येक दो दो तोले, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, लौंग और जायफल, प्रत्येक ४ तोले, बिधारेकी बीज और त्रिकटु प्रत्येक ६ तोले, धनिया, अकवन, मुलेठी, सौफ और कसेरू प्रत्येक ८ तोले, सतावर, बिदारीकन्द, त्रिफला, हस्तिकर्ण पलाशकी छाल, गुलशकरी, कवाचकी बीज और गोक्षुर बीज प्रत्येक १० तोले, समष्टीके बराबर सबीज भागका चूर्ण, तथा सर्व समष्टीके बराबर चीनी, उपयुक्त घी और सहत तथा २ तोले कपूर मिलाकर मोदक बनाना। मात्रा चार आनेभरसे १ तोलातक गरम दूधके साथ सेवन करनेसे अपरिमित शुक्र और मैथुनशक्ति वृद्धि होती है तथा मेह, ग्रहणी, कास, अम्लपित्त, शूल, पार्श्वशूल, अग्निमान्द्य और पीनस आदि रोग नाश होता है।

मदनमोदन।—त्रिकटु, त्रिफला, कांकडाशिंगो, कूठ, सेन्धव, धनिया, शठो, तालोशपत्र, कायफल, नागेश्वर, मेथो, थोडा भूना हुआ सफेद और कालाजोरा प्रत्येक समभाग है, सबके बराबर घोमें भूनो सबोज भागका चूर्ण, सब्बे समष्टीके बराबर चोनो एकत्र उपयुक्त घो और सहतमें मिलाना, फिर उसमें थोडो दालचोनो, तेजपत्ता, ईलायचो और कपूर मिलाकर सुगन्धित करना। यह मोदक चार आनेभरसे १ तोला माता गरम पानीके साथ सेवन करनेसे शुक्र और रतिशक्तिको वृद्धि तथा कास, शूल, सग्रहणी और वातश्लेष्मज पीडा शान्त होती है।

श्रीमदनानन्द मोदक।—पारा, गन्धक, लोहाभस्म, प्रत्येक एक एक तोला, अभरख भस्म ३ तोले, कपूर, सेंधव, जटामासी, आवला, इलायचो, शोंठ, पीपल, मिरच, जावित्री, जायफल, तेजपत्ता, लोंग, जोरा, कालाजोरा, मुलेठो, बच, कूठ, हलदो, देवदारु, हिज्जल बोज, सोहागा, बारगो, नागेश्वर, काकडाशिंगो, तालोशपत्र, मुनक्का, चीतामूल, दन्तोबीज, वरियारा, गुलशकरो, दालचोनो, धनिया, गजपोपल, शठो, बाला, मोथा, गन्धाली, विदारोकन्द, सतावर, अकवनको जड, कवाच बोज, गोक्षुर बोज, विधारेको बोज और भागको बीज प्रत्येकका चूर्ण एक एक तोला, यह सब चूर्ण सतावरके रसमें खलकर सुखा लेना, फिर सब चूर्णके चार भागका एकभाग सेमरके मुसरोका चूर्ण, सेमरके मुसरोका चूर्ण मिले हुए सब चूर्णका आधा भागका चूर्ण तथा सब चूर्णको दूनो चोनो। पहिले उपयुक्त बकरोमें दूधमें चीनी मिलाकर औटाना आसन्न पाकमें समस्त चूर्ण मिलाना। पाकशेष होनेपर दालचीनी, तेजपत्ता, इलायचो, नागेश्वर, कपूर, सेंधव और त्रिकटु चूर्ण थोडा थोडा मिलाना। ठण्ढा होनेपर थोडा घी और सहत मिला

रखना। मात्रा चार आनेभरसे आधा तोलातक दूधके साथ। इससे शुक्र और रतिशक्ति वृद्धि हो सूतिका, अग्निमान्द्य और कास आदि विविध रोग आराम होते हैं।

रतिवल्लभ मोदक।—चीनी दो सेर, सतावरका रस ४ सेर, भागका काढा ४ सेर, गायका दूध ४ सेर, बकरीका दूध ४ सेर, घी आधा सेर, भागका चूर्ण ५ पल, आंवला, जीरा, काला जीरा, मोथा, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, नागेश्वर, कवाच बीज, गुलशकरी, तालके गुठलीका अङ्कुर, कसेरू, सिङ्गाडा, त्रिकटु, धनिया, अबरखभस्म, वङ्गभस्म, हर्रा, मुनक्का, काकोली, क्षीरकाकोली, पिण्ड-खजूर, तालमखाना, कुटकी, मुलेठी, कूठ, लौंग, सैंधव, अजवाइन, अजमोदा, जीवन्ती और गजपीपल, प्रत्येक दो दो तोले एकत्र औटाना। पाकशेष तथा ठण्ढा होनेपर सहत दो पल, थोडी कस्तूरी और कपूर मिलाकर मोदक तयार करना। पूर्व्वोक्त मात्रा सेवन करनेसे पूर्व्वोक्त उपकार होता है।

नागवल्लादि चूर्ण—पानकी जड, बरियारेकी जड, मूर्व्वामूल, जावित्री, जायफल, मुरामासी, चिरचिडीकी जड, काकोली, क्षीर-काकोली, कक्कोल खसकी जड, मुलेठी और वच, प्रत्येकका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर चार आनेभर मात्रा सोनेके आधा घण्टा पहिले दूधके साथ सेवन करनेसे वीर्य्यस्तम्भ होता है।

अर्ज्जकादि वटिका।—वनतुलसीकी जड, चोरकण्ठकी जड, निर्गुण्डीकी जड, कसेरू की जड, जायफल, लौंग, विडङ्ग, गज-पीपल, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, वंशलोचन, अनन्त-मूल, तालमूली, सतावर, विदारीकन्द और गोक्षुर बीज, यह सब द्रव्य समभाग बबूलके गोंदमें खलकर एक मासा बराबर गोली

बनाना। दूध अथवा सुरामण्ड अनुपानके साथ सेवन करनेसे वीर्य्यस्तम्भ और शुक्रवृद्धि होता है।

शुक्रवल्लभ रस—पारा, गन्धक, लोहा, अवरख, चांदी, सोना, और स्वर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक आधा तोला, भागके बीज का चूर्ण ८ तोले, एकत्र भागके काढ़ेमें खलकर एक मासे बराबर गोली बनाना। अनुपान दूधके साथ सेवन करनेसे वार्य्यस्तम्भ और रति-शक्ति वृद्धि होती है।

कामिनीविद्रावन रस—अकरकरा, शोंठ, लौंग, केसर, पीपल, जायफल, जावित्री और लालचन्दन प्रत्येक दो दो तोले, हिंगुल और गन्धक प्रत्येक आधा तोला और अफीम ८ तोले, एकत्र पानीके साथ मर्द्दनकर ३ रत्ती बराबर गोली बनाना। सोनेके पहिले आधपाव दूधके साथ एक गोली सेवन करनेसे वीर्य्यस्तम्भ और रतिशक्ति बढ़ती है।

पञ्चसार तैल।—तिलका तेल, त्रिफलाका काढा, शाहका काढा, भगरैया का रस, सतावरका रस, भतुवेका पानी, दूध और काजी प्रत्येक ४ सेर। पीपल, हर्रा, मुनक्का, त्रिफला, नीलाकमल, मुलेठी, चीरकाकोली प्रत्येक एक एक पल का कल्क यथाविधि औटाकर कपूर, नखी, कस्तूरी, गन्धाविरोजा, जावित्री और लौंग प्रत्येक का चूर्ण ४ तोले मिलाना। यह वायु और पित्तजनित विविध रोग और शूल, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र तथा ग्रहणी रोग नाशक है।

श्रीगोपाल तैल।—तिलका तेल १६ सेर, सतावर का रस, भतुवेका पानी और आवलेका रस या काढा प्रत्येक १६ सेर, असगन्ध, कटसरैया और बरियारा प्रत्येक १०० पलका कल्क, अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाकर १६ सेर रखना। वृहत्

पद्ममूल, कण्टकारी, मूर्व्वामूल केवड़ेकी जड़, नाटाकरञ्ज की जड़ और पालिधा छाल प्रत्येक १० पल एकत्र ६४ सेर पानी शेष १६ सेर। असगन्ध, चोरपुष्पी, पद्मकाष्ठ, कण्टकारी, बरियारा, अगरु, मोथा, गन्धतृण, शिलारस, लालचन्दन, सफेद चन्दन, त्रिफला, मूर्व्वामूल, जीवक, ऋषभक, मेद, महामेद, काकोली क्षीरकाकोली, माषोनी, मापोनी, जीवन्ती, मुलेठी, त्रिकटु, केसर, खटासी, कस्तूरी, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, शैलज, नखी, नागरमोथा, मृणाल, नीलाकमल, खसकी जड़, जटामासी, देवदारु, बच, अनारका बीज, धनिया, ऋद्धि, वृद्धि, दौना और छोटी इलायची, प्रत्येक चार चार तोलेका कल्क यथाविधि औटाना। यह तेल मालिश करनेसे यावतीय वायुरोग, प्रमेह, शूल और ध्वजभङ्ग आराम होता है।

मेदोरोग ।

अमृतादि गुग्गुलु—गुरिच एकभाग, छोटी इलायची दो भाग, विड़ङ्ग ३ भाग, कुरैया ४ भाग, इन्द्रयव ५ भाग, हर्रा ६ भाग, आवला ७ भाग और शोधित गुग्गुलु ८ भाग, एकत्र सहतके साथ मर्द्दनकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे मेदोरोग और भगन्दरादि पीड़ा शान्त होती है।

नवकगुग्गुलु—त्रिकटु, चीतामूल, त्रिफला, मोथा, विड़ङ्ग सम-भाग और सबके बराबर शोधित गुग्गुलु एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे मेदोरोग, श्लेष्मादोष और आमवात आराम होता है।

त्र्यूषणादि लौह—त्रिकटु, भाग, चाभ, चीतामूल, काला नमक, औद्भिद लवण, सोमराजी, सैन्धव और सौवर्चल नमक प्रत्येक समभाग और समष्टीके बराबर लौहभस्म एकत्र मिलाकर ४ रत्ती मात्रा घी और सहतके साथ सेवन करनेसे मेदोरोग और प्रमेह आदि पीडा शान्त होती है।

त्रिफलाद्य तैल।—तिलका तैल ४ सेर, सुरसादिगण का काढा १६ सेर, त्रिफला, अतीस, मूर्व्वामूल, त्रिवृत चीतामूल, अडूसेकी छाल, नीमकी छाल, अमिलतासका गूदा, वच, छातिम छाल, हलदी, दारुहलदी, गुरिच, निर्गुण्डी, पीपल, कुठ, सरसों और सोंठ सब मिलाकर एक सेर का कल्क यथाविधि औटाकर पान अभ्यङ्ग, नस्य और वस्तिकार्य्यमें प्रयोग करनेसे शरीर की स्थूलता और कण्डू आदि पीडा दूर होती है।

—०—

उदररोग।

पुनर्नवादि क्वाथ—पुनर्नवा, देवदारु, हल्दी, कुटकी, परवर का पत्ता, हर्रा, नीमकी छाल, मोथा, सोंठ और गुरिच, इस काढेमें गोमूत्र और गुग्गुलु मिलाकर पीनेसे उदर रोग, शोथ, कास, श्वास, शूल और पाडुरोग आराम होता है।

सामुद्राद्य चूर्ण—कटेला, सौवर्च्चल, सैन्धवलवण, जवाक्षार, अजवाईन, अजमोदा, पीपल, चीतामूल, सोंठ, हींग और काला नमक प्रत्येक समभाग, घी मिलाकर चार आनेभर मात्रा भोजन

के पहिले ग्रासमें मिलाकर खानेसे वातोदर, गुल्म, अजीर्ण और ग्रहणी आराम होता है।

नारायण चूर्ण।—अजवाईन, हीवेर, धनिया, त्रिफला, कालाजीरा, सौफ, पीपलामूल, अजमोदा, शठी, बच, सोवा, त्रिकटु, स्वर्णक्षीरी, चीतामूल, जवाखार, सज्जीखार, पुष्करमूल, कुठ, पांचो नमक और वायबिडङ्ग प्रत्येक एक एक भाग, तेवडो २ भाग, दन्तीमूल ३ भाग, इन्द्रायण दो भाग, चर्म्मकषा ४ भाग एकत्र मिलाकर चार आनेभर माला मट्ठेके साथ सेवन करनेसे उदररोग, बेरके काढेसे गुल्म रोग, मलभेदमें दहीके पानीके साथ, अर्शरोग म अनारके रसमें, उदर और मलद्वारके दर्दमें थैकाल भिगोये पानीके साथ तथा अजीर्ण अनाह आदि रोगमें गरम पानीके साथ सेवन करना।

इच्छाभेदी रस—शोंठ, गोलमिरच, पारा, गंधक और सोहागा प्रत्येक एक एक तोला, जयपाल ३ तोले एकत्र पानीके साथ खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान चीनीका शर्बत। जय चुल्लू, चीनीका शर्बत पिलाया जायगा उतनही बार दस्त होगा। पथ्य दहीका मट्ठा और भात।

नाराच रस—पारा, सोहागा, और गोलमिरच, प्रत्येक एक एक तोला, गन्धक, पीपल और शोंठ प्रत्येक दो दो तोले, जयपाल बीज ८ तोले, एकत्र पानीमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। चावल भिगोये पानीके साथ देनेसे उदर और गुल्मरोग आराम होता है।

पिप्पलाद्य लौह—पिपलामूल, चीतामूल, अभ्रक भस्म, त्रिकटु, त्रिफला, त्रिमद, कपूर और सैन्धव प्रत्येक समभाग, और सबके बराबर लौह भस्म एकत्र पानीमें खलकर ३ रत्ती बराबर गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानके साथ सब प्रकारके उदर रोगमें प्रयोग करना।

शोथोदरारि लौह—पुनर्नवा, गुरिच, चीतामूल, गुलशकरी, मानकन्द, सैजनकी जड, हुडहुडकी जड और अकवनकी जड प्रत्येक एक एक सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, इस काढेमें लौहभस्म एक सेर, अकवनका दूध एक पाव, सेहुडका दूध आध सेर, गुग्गुलु एक पाव और पारा ४ तोले, गन्धक ८ तोले की कज्जली मिलाकर औटाना। पाकशेष होनेपर जयपाल बीज, ताम्रभस्म, अभ्रभस्म ककुष्ठ भस्म, चीतामूल, जंगली सूरण, शरपुंखा, पलाशबीज, खीरुई, तालमूली, त्रिफला, विडङ्ग, तिवडीमूल, दन्तीमूल, हुडहुड, गुलशकरीकी जड, पुनर्नवा, हडजोड, इन सबका चूर्ण एक सेर मिलाना। रोग और रोगीकी अवस्थानुसार मात्रा और अनुपान विचारकर प्रयोग करनेसे शोथ, उदर, पाण्डु, कामला, प्लीमक, अर्श, भगन्दर और गुल्म आदि रोग नाश होता है।

महाविन्दु घृत—घी दो सेर, सेहुडका दूध २ पल, कम्पिल्लक १ पल, सेन्धव ४ तोले, तिवडी १ पल, आवलेका रस आधा सेर और पानी ४ सेर, यथाविधि औटाकर उपयुक्त मात्रा सेवन करानेसे उदर और गुल्मरोग आराम होता है।

चित्रक घृत—घी ४ सेर, पानी १६ सेर, गोमूत्र ८ सेर, चीता मूल ८ तोले और जवाखार ८ तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे उदररोग नाश होता है।

रसोन तैल।—तैल ४ सेर, लहसन १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर. त्रिकटु, त्रिफला, दन्ती, हींग, सेंधानमक, चीतामूल, देवदारु, वच, कूठ, लाजसेजन, पुनर्नवा, सौवर्च्चल नमक, विडङ्ग, अजवाईन और गजपीपल प्रत्येक एक एक पल, तिवडीमूल ६ पलका कल्क, यथाविधि औटाकर उपयुक्त मात्रा

सेवन करनेसे सब प्रकार उदर रोग, पार्श्वशूल वायुका दर्द, क्रिमि, अन्त्रवृद्धि, उदावर्त्त और मूत्रकृच्छ्र आदि रोग शान्त होता है।

शोथरोग।

—○—

पथ्यादि काढ़ा—हरीतकी, हलदी, बारंगी, गुरिच, चीतामूल, दारुहल्दी, पुनर्नवा, देवदारु और सोंठका काढ़ा पीनेसे सर्व्वाङ्गगत शोथ नष्ट होता है।

पुनर्नवाष्टक—पुनर्नवा, नीमकी छाल, परवरका पत्ता, सोंठ, कुटकी, गुरिच, दारुहलदी और हरीतकी, इन सबका काढ़ा पीनेसे सर्व्वाङ्गिक शोथ, उदररोग, पार्श्वशूल, श्वास और पाण्डुरोग शान्त होता है।

सिंहास्यादि काढ़ा—अडूसेकी छाल, गुरिच और कण्टकारी, इन सबके काढ़ेमें सहत मिलाकर पीनेसे शोथ, श्वास, कास, ज्वर और वमन दूर होता है।

शोथारि चूर्ण—सूखी मली, चिरचिरा, त्रिकटु, त्रिफला, दन्तीमूल, विडङ्ग, चीतामूल और मोथा, प्रत्येक समभाग, चार आनेभर मात्रा वेलके पत्तेके रसमें सेवन करनेसे शोथ और पाण्डु रोग आराम होता है।

शोथारि मण्डूर।—सातवार गोमूत्रमें शोधा हुआ मण्डूर ७ पलको निर्गुण्डी, माणकन्द, आदरख और जंगल। सूरणके रसके तीन तीनवार भावना दे, ७ सेर गोमूत्रमें औटाना, गाढ़ा

होनेपर त्रिफला, त्रिकटु और चाभ प्रत्येकका चूर्ण चार चार तोले मिलाकर उतार लेना। ठण्ढा होनेपर १६ तोले सहत मिलाना। उपयुक्त मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करनेसे सर्व्वदोषज और सर्व्वांगगत शोथ दूर होता है।

कंस हरीतकी।—मिलित दशमूल ८ सेर। पोटलीमें बधा हुआ हर्रा १००, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, यह काढा छानकर १२॥ सेर गुड मिलाकर छान लेना फिर १०० हर्रा इसमें औटाना। गाढा होनेपर त्रिकटु, जवाखार, दालचोनी, तेजपत्ता और इलायची प्रत्येक दो दो तोले मिलाना। ठण्ढा होनेपर २ सेर सहत मिलाना। मात्रा एक हर्रा और एक तोला अवलेह गरम पानीके साथ सेवन करनेसे शोथ, उदर, प्लोहा, गुल्म और श्वास आदि रोग शान्त होता है।

त्रिकट्वादि लौह—त्रिकटु, त्रिफला, दन्तीमूल, विडंग, कुटकी, चीतामूल, देवदारु, तेवडी और गजपीपल, प्रत्येकका सम-भाग चूर्ण, समष्टिका दूना लौहभस्म, एकत्र दूधमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। दूधके अनुपानमें देनेसे शोथ विनष्ट होता है।

शोथकालानल रस—चीतामूल, इन्द्रयव, गजपीपल, सैंधव, पीपल, लौंग, जायफल, सोहागा, लौहभस्म, अभरख भस्म और पारा गंधक प्रत्येक दो दो तोले, एकत्र पानीमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। अनुपान तालमखानेके जडका रस, इसमें ज्वर, कास, श्वास, शोथ, प्लीहा और प्रमेहरोग आराम होता है।

पञ्चामृत रस।—पारा एक तोला, गंधक एक तोला, सोहागेका लावा २ तोले, मीठाविष ३ तोले और मिरच ३ तोले एकत्र पानीके साथ खलकर गोमूत्र, कसेरूका रस, सफेद पुनर्नवाका रस, भीमराजका रस, निर्गुण्डीका रसकी यथाक्रम १४ बार भावना

दे ४ मासे मात्रा मट्ठेके साथ सेवन करनेसे शोथ, जलोदर, शिर शूल, पोनस, ज्वरातिसार संयुक्त शोथ, गलग्रह और विविध श्लैष्मिक रोग शान्त होता है।

दुग्धवटी।—मोठाविष १२ रत्ती, अफीम १२ रत्ती, लौहभस्म पांच रत्ती और अभरख भस्म ६० रत्ती एकत्र दूधके साथ खलकर दो रत्ती बराबर गोली बनाना, अनुपान दूध। पथ्य—दूधभात। इससे शोथ, ग्रहणी, अग्निमान्द्य और विषम ज्वर आराम होता है। रोग आराम न होनेतक नमक खाना बन्द रखना।

तक्रमण्डूर।—भांगका चूर्ण ४ तोले, लौहचूर्ण ४ तोले, बासकी जड़, कृष्णागुरु, नीमकी छाल, विजताडककी जड़ और समुद्रफेन प्रत्येक दो दो तोले, तेजपत्ता, लौंग, छुलायची, सोवा, सौंफ, मिरच, गुरिच, मुलेठी, जायफल, घी और सेंधानमक, प्रत्येक एक एक तोला, सब एकत्र कर श्वेत पुनर्नवाके रसकी भावना दे बैरकी गुठली बराबर गोली बनाना। केशुरियाका रस या मट्ठेके अनुपानमें सेवन करनेसे शोथ आराम होता है। पथ्य—मट्ठा और भात। नमक और पानी बन्द रखना।

सुधानिधि रस।—धनिया, वाला, मोथा, सोंठ और सेंधव प्रत्येक एक एक तोला, मण्डूर १० तोले, एकत्र मर्दनकर गोमूत्र, केशुरियाका रस, श्वेतपुनर्नवाका रस, भीमराजका रस, निर्गुण्डीका रस और खुलकुडीके रसमें यथाक्रम १४ बार भावना देना। मात्रा ४ मासे, मट्ठा या केशुरियाके रसके अनुपानमें सेवन करनेसे शोथ, ग्रहणी, पाण्डु, कामला, ज्वर और अग्निमान्द्य दूर होता है। पथ्य—मट्ठा और भात। नमक और पानी मना है। प्यास लगेतो मट्ठा पीना।

चित्रकाद्य घृत।—घी ४ सेर, चीतामूल, धनिया, अजवाईन, अम्बष्ठा, जीरा, त्रिकटु, येकल, वेलकीगिरी, अनारकी

फलकी छाल, जवाखार, पीपलामूल और चाभ प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, पानी १६ सेर, यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे शोथ, गुल्म, अर्श और मूत्रकृच्छ्र आदि रोग दूर होता है।

पुनर्नवादि तैल।—तिलका तैल ४ सेर पुनर्नवा १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, त्रिकटु, त्रिफला, काकडाशिंगी, धनिया, कटफल, शठी, दारुहलदी, प्रियङ्गु, पद्मकाष्ठ, रेणुका, कूठ, पुनर्नवा, अजवाईन, कालाजीरा, इलायची, दालचीनी, लोध, तेजपत्ता, नागेश्वर, वच, पीपलामूल, चाभ, चीता मूल, मोथा, वाला, मजीठ, रास्ना और जवासा, प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे शोथ, पाण्डु, कामला, हलीमक, प्लीहा और उदर आदि रोग शान्त होता है।

वृहत् शुष्कमूलाद्य तैल।—तिलका तैल ४ सेर, सूखी मूलीका काढा ४ सेर; मैनफलकी छाल, धतूरेका पत्ता, पालिधाकी छाल, निर्गुण्डी, करञ्ज, और वरुणछाल प्रत्येकका रस ४ सेर दशमूलका काढा ४ सेर और शोठ, मिरच, सैंधव पुनर्नवा, काकमाची, चालताकी छाल, पीपल, गजपीपल, कटफल, काकडाशिंगी, रास्ना, जवासा, कालाजीरा, हलदी, करञ्ज, नाटाकरञ्ज, श्यामालता, और अनन्तमूल प्रत्येक ४ तोलेका कल्क। यथाविधि पाककर मालिश करनेसे सब प्रकारका शोथ, व्रणशोथ, अच्छिशूल श्वास, कामला और यावतीय श्लैष्मिक रोग आराम होता है।

कोषवृद्धिरोग ।

भक्तोत्तरीय ।—अभरख भस्म, गन्धक, पारा, पीपल, पाचीनमक, जवाखार, सज्जीखार, सोहागा, त्रिफला, हरताल, मैनसिल, ऋजवार्द्धन, अजमोदा, सोवा, जीरा, हींग, मेथी, चीतामूल, चाभ, वच, दन्तीमूल, तेवड़ी, मोथा, शिलाजीत, लौहभस्म, रसाजन, नीम बीज, परवरका पत्ती, और बिधारेकी बीज, प्रत्येक दो दो तोले, शोधित धतूरेकी बीज १००, एकत्र चूर्णकर भोजनके बाद दो रत्ती मात्रा सेवन करनेसे यावतीय वृद्धि रोग श्लीपद और आमवात आदि रोग आराम होता है।

वृद्धिबाधिका वटी ।—पारा, गन्धक, लोहा, वङ्ग, ताम्बा, कासाभस्म, हरिताल, तूतिया, शङ्खभस्म, कौडीभस्म, त्रिकटु, चाभ, त्रिफला, विडङ्ग, बिधारेकी बीज, शठी, पिपलामूल, अम्बष्ठा, ह्रीवेर, वच, इलायची, देवदारु और पाचो नमक, प्रत्येक समभाग, हर्रोंके काढेमें खलकर एक मासे बराबर गोली बनाना पानी या हर्रां भिगोया पानीके साथ सेवन करनेसे अन्त्रवृद्धि रोग आराम होता है।

वातारि—पारा दो भाग, गन्धक दो भाग, त्रिफला प्रत्येक तीन भाग, चीतामूल ४ भाग और गुग्गुलु ५ भाग, एकत्र रेंडीके तेलमें मर्द्दनकर आधा तोला मात्राकी गोली बनाना। अदरखका रस या तिलके तेलके साथ सेवन कर एरण्डमूलके काढेमें शोठका चूर्ण मिलाकर पीना। रोगीके पीठमें रेंडीका तेल मालिश कर सेंक देना। विरेचन होनेसे स्निग्ध और उष्ण द्रव्य भोजन कराना। वह अन्त्रवृद्धि का श्रेष्ठ औषध है।

शतपुष्पाद्य घृत।—घी ४ सेर, अडूसा, सुगन्धरी, रेंडकी जड़, बेलका पत्ता और कण्टकारी प्रत्येक का रस चार चार सेर, दूध ४ सेर, सोवा, गुरिच, देवदारू, लालचन्दन, हलदी, दारहलदी, जीरा, कालाजीरा, बच, नागेश्वर, त्रिफला, गुग्गुलु, दालचोनी, जटामासी, कूठ, तेजपत्ता, इलायचो, रास्ना, काकड़ाशिंगी, चीतामूल, विडङ्ग, असगन्ध, श्रेलज, कुटकी, सैन्धव, तगरपादुका, कुरैयाकी छाल और अतीस प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क। यथाविधि श्रौटाकर आधा तोलासे दो तोलेतक मात्रा सेवन करनेसे सब प्रकार वृद्धिरोग और श्लोपद आदि रोग शान्त होताहै।

गन्धर्व्वहस्त तैल—रेंडीका तेल ४ सेर, रेंडका जड़ १२॥ सेर, शोंठ ८ तोले, घी ८ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, दूध १६ सेर, रेंडका जड़ ३२ तोले, अदरख २४ तोलेका कल्क। यथाविधि श्रौटाकर आधा तोलासे दो तोले मात्रा गरम दूधकी साथ पोनेसे अन्त्र वृद्धि रोग आराम होता है। पथ्य—दूध और भात।

सैन्धवाद्य घृत—घोंघाके भीतरका मांस वगैरह निकालकर उसके भीतर गायका घी और घीका चौथा हिस्सा नमक भरकर सात दिनतक धूपमें रखना। यह घी मालिश करनेसे कोषवृद्धि रोग शान्त होता है।

गलगण्ड और गण्डमालारोग।

---o---

काञ्चनार गुग्गुलु।—कचनारकी छाल ५ पल, सोंठ, पीपल और मिरच प्रत्येक एक एक पल, हर्रा, बहेडा और आंवला प्रत्येक आधा पल, वरुणछाल दो तोले, तेजपत्ता, इला-यची और दालचीनी प्रत्येक आधा तोला, तथा सबके बराबर गुग्गुलु एकत्र मर्द्दनकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे गलगण्ड, गण्डमाला, अपची और ग्रन्थि आदि रोग शान्त होता है। अनुपान थोडा गरम मुण्डरीका काढा, खैरका काढा अथवा हरीतकीका काढा।

अमृताद्य तेल—तिलका तेल ४ सेर, गुरिच, नीमकी छाल, खुलकुडो, कुरैयाकी छाल, पीपल, बरियारा, गुलशकरी और देवदारु सब मिलाकर एक सेर इन सब द्रव्योंका काढा १६ सेर, पानी १६ सेर, यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा पीनेसे गलगण्ड रोग आराम होता है।

तुम्बीतेल—सरसोंका तेल ४ सेर, पक्के तितलौकी का रस १६ सेर, विडङ्ग, जवाखार, सैन्धव, बच, रास्ना, चीतामूल, त्रिकटु और हींग सब मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाकर नास लेनेसे गलगण्ड रोग आराम होता है।

छुछुन्दरी तैल—तिल तैल ४ सेर, छुछुन्दर का मास एक सेर, पानी १६ सेर और छुछुन्दरके मासके ४ सेर काढेके साथ यथाविधि पाककर मालिश करनेसे गण्डमाला आराम होता है।

सिन्दूरादि तेल—सरसोंका तेल ४ सेर, केशुरियाका रस १६ सेर, चकवडकी जड आधा सेर, हलकी आंचमें औटाना, पाकशेष

होनेपर मटिया सिन्दूर आधासेर मिलाना। यह तैल मालिश करनेसे गण्डमाला आराम होता है।

बिम्बादि तैल—तेलाकुचाकी जड, करवीर और निर्गुण्डीका कल्क चौगूने पानीके साथ यथाविधि तिलका तैल पाककर नास लेनेसे गण्डमाला शान्त होता है।

निर्गुण्डी तैल—तिल तैल ४ सेर, निर्गुण्डीका रस १६ सेर, ईशलाङ्गलाके जडका कल्क एक सेर, यथाविधि औटाकर नास लेनेसे गण्डमाला दूर होता है।

गुञ्जाद्य तैल—घुघुची की जड, कनेल, बिधारेकी बीज, अकवनका दूध और सरसा इन रुवका कल्क और तेलके चौगूने गोमूत्रमें क्रमश १० बार तैल पाककर उसमें पीपल, पाचोनमक और मिरचका चूर्ण मिलाना। यह तैल मालिश करनेसे अपची अर्बुद, व्रण और नाडोव्रण आदि आराम होता है।

चन्दनादि तैल—तिलका तैल ४ सेर, लालचन्दन, हरीतकी, लाह, बच और कुटकी, सब मिलाकर एक सेरका कल्क, पानी १६ सेर, यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा पीनेसे, अपची रोग आराम होता है।

श्लोपदरोग।

—०—

मदनादि लेप—मयनफल, नीलवृक्ष और सामुद्र लवण, यह सब द्रव्य भसके मकवनमें पीसकर लेप करनेसे दाहयुक्त श्लोपद शान्त होता है।

कणादि चूर्ण—पीपल, बच, देवदारु और बेलकी छाल प्रत्येक समभाग और सबके बराबर बिधारेको बीज, एकत्र चूर्णकर २ रत्ती मात्रा काञ्जीके साथ सेवन करनेसे श्लोपद आराम होता है।

पिप्पल्यादि चूर्ण—पीपल, त्रिफला, देवदारु, शोंठ और पुनर्नवा, प्रत्येक दो दो पल, बिधारेको बीज १४ पल एकत्र मिला कर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे श्लोपद, वातरोग और अग्नि-मान्द्य आराम होता है।

कृष्णादि मोदक—पीपलका चूर्ण दो तोले, चीतामूलका चूर्ण ४ तोले, दन्तीमूल चूर्ण ८ तोले, हरीतकी २० और पुराना गुड़ १६ तोले, उचित मधु मिलाकर यथाविधि मोदक तैयार करना आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे श्लोपदादि रोग शान्त होते हैं।

[illegible]—त्रिकटु, मीठाविष, अजवाइन, पारा, गन्धक, [illegible], सोहागा और जयपाल प्रत्येक समभाग, [illegible] धोतूर, जामीर नीबू और अदरखके रसमें [illegible] गोली बनाना। अनुपान गरम पानीके [illegible]

[illegible] काश्य

[illegible] त्रिकटु,

सौरेश्वर घृत—घी ४ सेर, दशमूलका काढा, काञ्जी और दहीका पानी प्रत्येक चार चार सेर, काली तुलसी, देवदारु, त्रिकटु, त्रिफला, पाचोनमक, विडङ्ग, चीता मूल, चाभ, पीपलामूल, गुग्गुलु, हौवेर, बच, जवाखार, अम्बष्ठा, शठी, इलायची और बिधारा प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, यथाविधि औटाकर आधा तोलासे दो तोलेतक मात्रा सेवन करनेसे श्लीपद और गलगण्ड आदि रोग प्रशमित होता है।

विडङ्गादि तैल—तिलका तैल ४ सेर, विडङ्ग, मिरच, अकवनकी जड, शोठ, चीतामूल, देवदारु, एलवा और पाचो नमक सब मिलाकर एक सेरका कल्क, पानी १६ सेर, यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा पान और शोथ स्थानमें मालिश करनेसे श्लीपदादि रोग शान्त होता है।

—०—

विद्रधि और व्रणरोग।

——०——

वरुणादि घृत—वरुणछाल, झिंटी, सैजन, लालमेजन, जयन्ती, मेषशृङ्गी, डहरकरञ्ज, मूर्व्वा, गणियारी, कटसरैया, तेलाकुचा अकवन, गजपीपल, चीतामूल, शतावर, बेलकी गिरी, मेढाशृङ्गी, कुशमूल, वृहती और कण्टकारी, इन सब द्रव्योंके कल्कके साथ घी औटाकर सवेर भोजनके वखत और शामको आधा तोला मात्रा गरम दूधमें मिलाकर पीनेसे अन्तर्विद्रधि गुल्म, अग्निमान्द्य और उत्कट शिर शूल दूर होता है।

करञ्जाद्य घृत—घी ४ सेर, डहरकरञ्जका कोमल पत्ता और बीज, मालती पत्र, परवरका पत्ता, नीमका पत्ता, हलदी,

दारुहल्दी, मोम, मुलेठी, कुटकी, मजीठ, लालचन्दन, खसकी जड, नीलाकमल, अनन्तमूल और श्यामालता प्रत्येक दो तोले यथाविधि पाककर क्षत स्थानमें प्रयोग करना।

जात्याद्य घृत और तैल—जातीपत्र, नीमपत्ता, परवरका पत्ता, कुटकी, दारुहल्दी, हल्दी, अनन्तमूल, मजीठ, खसकी जड, मोम, तूतिया, मुलेठी और डहरकरञ्जकी बीज मिलाकर एक सेरका कल्क और १६ सेर पानीके साथ ४ सेर घी या तैल यथाविधि औटाकर घावमें लगानेसे घावमेंसे पीप वगैरह निकालकर सुखा देता है।

विपरीतमल्ल तैल—सरसोंका तैल ४ सेर, सिन्दूर, कूठ, मिठाविष, हींग, लहसन, चीतामूल, बालामूल और ईशलाङ्गला प्रत्येक एक एक पल, पानी १६ सेर, यथाविधि औटाकर यावतीय क्षतरोगमें प्रयोग करना।

व्रणराक्षस तैल—सरसोंका तैल आधा सेर, पारा, गन्धक, (कज्जली बना लेना) हरताल, मटिया सिन्दूर, मैनसिल, लहसन, मीठाविष और ताम्र भस्म प्रत्येक दो दो तोले, यह सब तैलके साथ मिलाकर धूपमें पका लेना। इस तैलके लगानेसे नासूर, विस्फोट मासवृद्धि विचर्चिका और दाद आदि रोग शान्त होता है।

सर्जिकाद्य तैल—तैल ४ सेर, सज्जीखार, सधानमक, दन्तीमूल, चीतामूल सफेद अकवनकी जड, नीलवृक्ष, भेलावा और चिरचिरी की बीज सब मिलाकर एक सेरका कल्क गोमूत्र १६ सेर, यथाविधि औटाकर नासूर और खराब घावमें लगाना।

निर्गुण्डी तैल—तैल ४ सेर और निर्गुण्डी की जड, पत्ता और डाल ४ सेर एकत्र औटाकर पान, मर्दन और नास लेनेसे व्रणरोग और पामा, अपची आदि रोग दूर होता है।

समाङ्ग गुग्गुलु—विडङ्ग, त्रिफला और त्रिकट प्रत्येकका चूर्ण समभाग, तथा समष्टीके बराबर गुग्गुलु एकत्र घीके साथ मर्द्दनकर स्निग्धभाण्डमें रखना। आहारके अन्तमें आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे दुष्टव्रण नाड़ीव्रण और कुष्ठादि रोग शान्त होता है।

—०—

भगन्दररोग।

सप्तविंशति गुग्गुलु।—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, विडङ्ग, गुरिच, चितामूल, शठी, इलायची, पीपलामूल, हौवेर, देवदारु, धनिया, भेलावा, चाभ, इन्द्रायण की जड़, हलदी, दारुहलदी, कालानमक, सौवर्चल नमक, सैंधानमक, जवाखार, सज्जीखार और गजपीपल, प्रत्येक समभाग, समष्टीका दूना गुग्गुलु, एकत्र घीके साथ मर्द्दनकर आधा तोला मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करनेसे भगन्दर, अर्श, श्वास, कास, शोथ और प्रमेह आदि रोग शान्त होता है।

नवकार्षिक गुग्गुलु—हरीतकी, आंवला, बहेड़ा और पीपल प्रत्येक दो दो तोले, गुग्गुलु १० तोले, एकत्र घीमें मर्द्दनकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे भगन्दर, अर्श, शोथ गुल्मादि रोग शान्त होता है।

व्रणगजांकुश।—हिंगुल, सौराष्ट्रमृत्तिका, रसाञ्जन, मैनसिल, गुग्गुलु, पारा, गन्धक, ताम्र भस्म लौहभस्म, सेंधानमक, अतीस, चाभ, शरपुंखा, विडङ्ग, अजवाईन, गजपीपल, मिरच, अकवनकी जड़, वरुणकी जड़, सफेद राल और दुर्वा प्रत्येक समभाग उपयुक्त सरसोंके तेलमें मर्द्दनकर मासे बराबर गोली

बनाना। अनुपान सहत, इससे भगन्दर और विविध दुःसाध्य व्रणरोग दूर होता है।

उपदंशरोग।

वरादि गुग्गुलु—त्रिफला, नीम, अर्ज्जुन, पीपर, खैर, शाल और अडूसा, प्रत्येकके छाल का समभाग चूर्ण तथा समष्टीके बराबर गुग्गुलु, एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे उपदंश रक्तदुष्टि और दुष्ट व्रण आराम होता है।

रसशेखर।—पारा २ रत्ती और अफीम १२ रत्ती एकत्र लोहेके पात्रमें तुलसीके पत्तेके रसमें नीमके डण्डेसे खल करना, फिर उसमें दो रत्ती हिंगुल मिलाकर तुलसीके पत्तेका रस मिला उसी डण्डेसे मर्द्दन करना। फिर जावित्री, जायफल, खुरासानी अजवाईन और अकरकरा प्रत्येक ३२ रत्ती और समष्टीका दूना खैर मिलाकर तुलसी पत्तेके रसमें मर्द्दन करना। मटर बराबर गोली बनाना। रोज शामको एक गोली सेवन करनेसे उपदंश, गलित कुष्ट, दुष्टव्रण और सब प्रकारका स्फोटक आराम होता है।

करजाद्य घृत—घी ४ सेर, डहरकरञ्ज बीज, नीमका पत्ता अर्ज्जुनछाल, शालकी छाल, जामुन छाल, वड, गुलर, पीपर, पाकर और वेतसकी छाल सब मिलाकर आठ ८ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, यह काढा यथाविधि औटाकर क्षतस्थानमें लगानेसे उपदंश दाह, घाव, पीब आदिका स्राव और लाली दूर होती है।

भूनिम्बादि घृत—घी ४ सेर, चिरायता, नीमकी छाल, त्रिफला, परवरका पत्ता, डहरकरञ्ज की बीज, जातीपत्र, खैरकी लडकी और आसन छाल प्रत्येक एक एक सेर ६४ सेर पानीमें औटाना शेष १६ सेर रहे काढा, तथा उक्त सब द्रव्य एक सेरका कल्क यथाविधि औटाकर उपदंशमें प्रयोग करना।

गोजी तेल—तिलका तेल ४ सेर, गोजिया, विडङ्ग, मुलेठी, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, नागेश्वर, कपूर, कक्कोल फल, अगरू, कुङ्कम और लौग सब मिलाकर एक सेरका कल्क, पानी १६ सेर, यथाविधि पाककर प्रयोग करनेसे उपदंश आराम होता है।

कुष्ठ और श्वित्ररोग।

—*—

मञ्जिष्ठादि काढा—मजीठ, सोमराजी, चक्रवड बीज, नीम छाल, हरीतकी, हल्दी, आवला, अडूसेका पत्ता, शतावर, बरियारा, गुलशकरी, मुलेठी, खुरका बीज, परवरका पत्ता, खसकी जड, गुरिच और लालचन्दन, इन सबका काढा कुष्ठरोग नाशक है।

अमृतादि—गुरिच, एरण्डमूल, अडूसेकी छाल, सोमराजी और हरीतकी का काढा कुष्ठ और वातरक्त नाशक है।

पञ्च निम्ब—नीमका पत्ता, फूल, छाल, जड और फल इन सबका समभाग चूर्ण मद्दत और घीके साथ चाटनेसे अथवा गोमूत्र या दूधके साथ सेवन करनेसे कुष्ठ, विसर्प और अर्श आराम होता है।

पंचतिक्तघृत गुग्गुलु ।—घी ४ सेर, नीमकी छाल, गुरिच, अडूसेकी छाल, परवरका पत्ता और कण्टकारी प्रत्येक १० पल, पोटलीमें बधा हुआ गुग्गुलु ५ पल. पानी ६४ सेर, शेष ८ सेर इस काढेमें पोटलीका गुग्गुलु मिलाकर घीके साथ औटाना। तथा अम्बष्ठा, विडंग, देवदारु, गजपीपल, जवाखार, सज्जीखार, सोंठ, हलदी, सौंफ, चाभ, कूठ, लताफटकी, मिरच, इन्द्रयव, जीरा, चीतामूल, कुटकी, भेलावा, वच, पीपलामूल, मजीठ, अतीस, त्रिफला और अजमोदा प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाना आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे कुष्ठ, भगन्दर, नाडीव्रण और विषदोष आदि दूर होता है।

अमृतभल्लातक ।—सोधा हुआ भेलावा ८ सेर, दो दो टुकडेकर ३२ सेर पानीमें औटाना ८ सेर पानी रहते छान लेना तथा ८ सेर दुधमें यह काढा औटाकर ४ सेर घीके साथ पाक करना। पाकशेष होनेपर २ सेर चीनी मिला ७ दिन रख छोडना। चार आनेभर से आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे कुष्ठादि रोगोंकी शान्ति और बलवीर्य्य आदि की वृद्धि होती है।

अमृतांकुर लौह ।—पारा एक पल और गन्धक एक पलकी कज्जली बना पत्थरके पात्रमें रखना तथा उसके ऊपर गरम ताम्बेका पत्तर दवाकर पर्प्पटी तयार करना। यह पर्प्पटी और एक तोला सोहागा एकत्र मूषावद्धकर जलाना, गंधक जल जानेपर औषध निकाल लेना फिर वह कज्जली, लौहभस्म, ताम्र भस्म, भेलावेका रस अभरख भस्म और गुग्गुलु प्रत्येक १ पल और घी १६ पल, एकत्र ८ सेर त्रिफलाके काढेमें औटाना। पाकशेष होनेपर हर्रेका चूर्ण ४ तोले, बहेडेका चूर्ण ४ तोले और आवलेका चूर्ण १२ तोले मिलाना। पहिले एक रत्ती मात्रा फिर सहने पर

मात्रा बढाना, यह औषध सेवन करनेसे कुष्ठ आदि रोग दूर होता है, तथा बल, वीर्य्य और आयु बढती है। अनुपान,—घी और सहतमें मिलाकर नारियलका पानी अथवा दूध मिलाकर पीना चाहिये। यह दवा लोहपात्रमें लोहदण्डसे बनाना चाहिये।

तालकेश्वर रस।—दो मासे हरिताल को भतुवेका रस, त्रिफला भिगोया पानी, तिलका तैल, घिकुआरका रस और काञ्जीकी भावना देना। फिर गन्धक २ मासे और पारा दो मासेकी कज्जली उस हरितालमें मिलाना, तथा छाग दूध, नीबूका रस और घिकुआरके रसको तीन तीन दिन भावना देकर छोटी टिकरी बनाना। सूखजानेपर एक हांडीमें पलाशका खार रख उसके भीतर टिकरी रखकर १२ पहर आगमें रख ठण्ढा होनेपर निकाल लेना। दो रत्ती मात्रा उपयुक्त अनुपानके साथ कुष्ठादि रोगोंमें प्रयोग करना।

रसमाणिक्य।—वंशपत्र हरिताल को भतुवेका रस और खट्टी दहीकी ३ बार या ७ बार भावना दे छोटा छोटा टुकरा करना, फिर एक सिकोरेमें नीचे उपर अभरखका पत्तर रख सजा देना तथा दूसरा सिकोरा औंधाढाक बेरका पत्ता और मिट्टीका सन्धिस्थलम लेप करना। फिर एक खाली हाडीके उपर वह सिकोरा रख हाडा चल्हेपर रखना। हाडी लाल होजानेपर औषध बाहर निकाल लेना। इस रीतिसे हरताल माणिक को तरह चमकीला होगा। मात्रा २ रत्ती घी और सहतके साथ सेवन करनेसे वातरक्त, कुष्ठ, उपदंश और भगन्दर आदि रोग शान्त होता है। श्रीमहादेवजी को पूजाकर यह औषध सेवन करना उचित है।

पञ्चतिक्त घृत—घी ४ सेर, नीमकी छाल, परवरका पत्ता,

काटलो, गुरिच और अडूसेको छाल प्रत्येक १० पल, पानो ६४ सेर, शेष १६ सेर यह काढा और त्रिफलाका कल्क एक सेर, यथा विधि औटाकर आधा तोला मात्रा कुष्ठ, वातरक्त, भगन्दर, दुष्टव्रण और क्रिमि आदि रोगोंमें प्रयोग करना ।

महासिन्दूराद्य तैल ।—सरसोका तेल ४ सेर, मटिया सिन्दूर, लालचन्दन, जटामासो, वायविडङ्ग, हल्दो, दारुहल्दो, प्रियगु, पद्मकाष्ठ, कूठ, मजोठ, खदिरकाष्ठ, बच, जातोपत्र, अकवनका पत्ता, तेवडो, नोमकी छाल, डहरकरञ्जको बीज, मिठाविष, लुरक, लोध और चकवडको बोज, सब मिलाकर दो सेरका कल्क, पानो १६ सेर, यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे यावतोय कुष्ठरोग आराम होता है ।

सोमराजी तैल—सरसोका तेल १ सेर, पानो १६ सेर, सोम राजीको बोज, हल्दो, दारुहल्दो, सफेद, सरसों, कूठ, डहरकरञ्ज को बोज, चकवडको जड और अमिलतासका पत्ता सब मिलाकर एक सेरका कल्क, यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे कुष्ठ, वातरक्त, फोडा और नासूर आराम होता है ।

वृहत् सोमराजो तैल ।—सरसोका तेल १६ सेर, सोमराजो और चकवड को बोज प्रत्येक १२॥ सेर अलग अलग ६४ सेर पानोमें औटाकर १६ सेर अवशिष्ट रखना, फिर गोमूत्र १६ सेर, तथा चोतामूल, ईशलाङ्गला, शोठ, कूठ, हल्दो, डहरकरञ्ज को बोज, हरताल, मैनसिल, छापरमालो, अकवन को जड, करवोर का जड, अतिवनको जड, गोबरका रस, खदिरकाष्ठ, नोमका पत्ता, गोलमिरच और कालजासुन्दा प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, यथाविधि औटाकर कुष्ठादि रोगमें मालिश करना ।

मरिचादि तैल—सरसोंका तेल ४ सेर, गोमूत्र १६ सेर, मिरच, हरताल, मैनशिल, मोथा, अकवनका दूध, करवीरकी जड, तेवडीकी जड, गोबरका रस, इन्द्रायणकी जड, कूठ, हल्दी दारुहल्दी, देवदारु और लालचन्दन प्रत्येक चार चार तोलेका कल्क और मीठाविष ८ तोले यथाविधि औटाकर कुष्ठ और श्वित्र आदिमें मालिश करना।

कन्दर्पसार तैल।—सरसोंका तेल ४ सेर, छतिवनकी छाल, खुरक, गुरिच, नीमकी छाल, शिशोकी छाल, घोडनीम, जयन्ती पत्र, तितलौकी, इन्द्रायण और हल्दी प्रत्येक १० पल, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, गोमूत्र १६ सेर, अमिलतासका पत्ता, भङ्गरैया, जयन्तीपत्र, धतूरेका पत्ता, हल्दी, भागका पत्ता, चीताका पत्ता, खजूरका पत्ता, अकवनका पत्ता, सेहुडका पत्ता प्रत्येकका रस चार चार सेर, गोबरका रस ४ सेर, माकाल, बच, ब्रह्मीशाक, तितलौकी, चीतामूल, घिकुआर, कुचिला, परवरका पत्ता, हल्दी, मोथा, पीपलामूल, अमिलतास का गूदा, अकवनका दूध, कालकासुन्दाकी जड, ईशमूल, आचमूल मजीठ, कडवा परवर, इन्द्रायणकी जड, विछाटीका पत्ता, करञ्ज-मूल, श्यामालता, मूर्व्वामूल, छतिवनकी छाल, शिशोकी छाल, कुरैयाकी छाल, नीमकी छाल, घोडनीमकी छाल, गुरिच, हाकुच बीज, सोमराजी, चकवडकी बीज, धनिया, भामराज, मुलेठी, जङ्गली सूरण, कुटकी, शठी, दारुहल्दी, तेवडी की जड, पद्मकाष्ठ, गेठिला, अगरु, कूठ, कपूर, कायफल, जटामासी, सूरामांसी, इलायची, अडूसेकी छाल और खसकी जड प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे यावतीय कुष्ठ, श्वित्र और गलगण्डादि रोग दूर होता है।

शीतपित्तरोग।

— ० —

हरिद्राखण्ड।—हलदी ८ पल, घी ६ पल, गायका दूध १६ सेर, चीनी ६। सवा छ सेर, एकत्र पाक करना, पाकशेषमें त्रिकटु, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, वायविडङ्ग, तेवडीमूल, त्रिफला, नागेश्वर, मोथा और लोहभस्म प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल मिलाना। आधा तोलासे दो तोलेतक मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे शीतपित्त, उदर्द, कोठ और पाण्डु आदि रोग दूर होता है।

वृहत् हरिद्राखण्ड।—हलदीका चूर्ण आधा सेर, तेवडीका चूर्ण ४ पल, हर्रका चूर्ण 8 पल, चीनी ५ सेर, दारु हलदी, मोथा, अजवाइन, अजमोदा, चीता मूल, कुटकी, काला जीरा, पीपल, शोठ, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, वायविडंग, गुरिच, अडूसेकी जडकी छाल, कूठ, हर्र, बहेडा, आवला, चाभ, धनिया, लोह और अभरख भस्म प्रत्येक एक एक तोला, एकत्र हलकी आचमें औटाना, आधा तोलासे एक तोला मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे शीतपित्तादि पीडा और दाह आराम होता है।

आर्द्रकखण्ड—अदरखका रस ४ सेर, गायका घी दो सेर, गायका दूध ८ सेर चीनी ४ सेर, यथाविधि औटाना। आसन्न पाकमें पिपलामूल, पीपल, मिरच, चीतामूल, वायविडंग, मोथा, नागकेशर, दालचीनी, इलायची, तेजपत्ता, शोठ और शठी प्रत्येकका चूर्ण एक एक पल मिलाना। आधा तोलासे दो तोलेतक मात्रा सेवन करनेसे शीतपित्तादि रोग दूर होता है। यह यक्ष्मा और रक्तपित्त रोगमें भी उपकारी है।

अम्लपित्तरोग।

— ० —

अविपत्तिकर चूर्ण—त्रिकट, त्रिफला, मोथा, कालानमक, वाय विडङ्ग, इलायची और तेजपत्ता प्रत्येकका चूर्ण एक एक भाग, लौग चूर्ण ११ भाग, तेवडीमूल चूर्ण ४४ भाग और चीनी ६६ भाग, एकत्र मिलाकर चार आनेभर या आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे अम्लपित्त, मलमूत्र रोध और अग्निमान्द्य आदि रोग दूर होता है।

वृहत् पिप्पलीखण्ड।—पीपलचूर्ण आधा सेर, घी एक सेर, चीनी दो सेर सतावरका रस एक सेर आवलेका रस दो सेर, दूध ८ सेर, एकत्र यथाविधि औटाकर दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, हर, कालाजीरा, धनिया, मोथा, वंशलोचन और आवला प्रत्येक दो दो तोले, तथा जीरा, कूठ, सोंठ और नागेश्वर प्रत्येक एक एक तोला मिलाना, ठण्ढा होनेपर जायफलका चूर्ण मरिचका चूर्ण और सहत प्रत्येक तीन तीन पल मिलाना। आधा तोला मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे अम्लपित्त, वमनवेग, वमि, अरुचि, अग्निमान्द्य और क्षयरोग आराम होता है।

शुण्ठीखण्ड।—सोंठका चूर्ण आधा सेर, चीनी दो सेर, घी एक सेर, दूध ८ सेर, एकत्र यथाविधि औटाकर फिर आवला, धनिया, मोथा, जीरा, पीपल, वंशलोचन, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, कालाजीरा और हर्रा प्रत्येक १॥ तोला, मिरच और नागेश्वर प्रत्येक ॥) आनेभर मिलाना। ठण्ढा होनेपर सहत ३ तीन पल मिलाना। आधा तोला मात्रा गरम दूधके साथ सेवन करनेसे अम्लपित्त, शूल और वमन आराम होता है।

सौभाग्यशुण्ठी मोदक ।—त्रिकटु, त्रिफला, दालचीनी, जीरा, कालाजीरा, धनिया, कूठ, अजवाईन, लौहभस्म, अबरख भस्म, काकडाशिंगी, कायफल, मोथा बडी इलायची, जायफल, जटामासी, तेजपत्ता, तालीशपत्र, नागेश्वर, गन्धमात्रा, शठी, मुलेठी, लौंग और लालचन्दन प्रत्येक समभाग, सबके बराबर शोठका चूर्ण, शोठके चूर्णके साथ सब चूर्ण को दूनी चीनी और सब समष्टीका चौगूना गायका घी यथाविधि औटाकर मोदक बनाना। आधा तोला मात्रा दूध या पानीके साथ सेवन करनेसे अम्लपित्त, शूल, अग्निमान्द्य, अरुचि और दौर्बल्य दूर होता है।

सितामण्डूर ।—पहिले मण्डूर सातबार आगमें गरम कर गोमूत्रमें बुझाकर शोध लेना। शोधा हुआ मण्डूरका चूर्ण १ पल, चीनी ५ पल, पुराना घी ८ पल गायका दूध १६ पल, एकत्र यथाविधि औटाकर त्रिकटु, मुलेठी, बडीइलायची, जवासा, वायविडङ्ग, त्रिफला, कूठ और लौंगका चूर्ण प्रत्येक दो दो तोले मिलाना। ठण्ढा होनेपर २ पल सहत मिलाना। आधा तोला मात्रा भोजनके पहिले दूधके साथ सेवन करनेसे अम्लपित्त, शूल, वमि आनाह और प्रमेह आराम होता है।

पानीयभक्त वटी ।—त्रिकटु, त्रिफला, मोथा, तेवडी और चितामूल प्रत्येक दो दो तोले, लौहभस्म, अभ्रभस्म और विडङ्ग चार चार तोले एकत्र त्रिफलाके काढेमें खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। काजीके अनुपानमें सवेरे सेवन करनेसे शूल, श्वास, कास और ग्रहणी दूर होती है।

क्षुधावती गुड़िका ।—पारा, गन्धक, लौहभस्म, अभ्र भस्म, त्रिकटु, त्रिफला, बच, अजवाईन, सोवा, चाभ, जीरा और कालाजीरा, प्रत्येक एक एक पल, पुनर्नवा, मानकन्द, पीपलामूल,

इन्द्रयव, केशुरिया, पद्मगुरिच, दानकुनीमूल, तेवडो मूल दन्तीमूल छुडछुडमूल, रक्तचन्दन, भीमराज, चिरचिडो की जड, पवरका पत्ता और खुलकुडो, प्रत्येक चार चार तोले, एकत्र अदरखके रसमें खलकर बेरकी गुठली वरावर गोली बनाना। अनुपान काजीके साथ सवेरे सेवन करनेसे, अम्लपित्त अग्निमान्द्य और अजीर्ण आदि रोग आराम होता है।

लोलाविलास रस—पारा, गन्धक, अबरख, ताम्र और लौह भस्म प्रत्येक समभाग, एकत्र आवलेका रस और बहेडाके काढेकी तीन दिन भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना। पुराने भतुवेका पानी, आवलेका रस या दूधके साथ सेवन करनेसे अम्लपित्त, शूल, वमन और छातीको जलन दूर होता है।

अम्लपित्तान्तक लौह—रससिन्दूर, ताम्र और लौहभस्म प्रत्यक एक एक भाग, हर्रेका चर्ण ३ भाग, एकत्र मिलाकर एक मासा अर्थात् दो आनेभर सहतके साथ चाटनेसे अम्लपित्तरोग आराम होता है।

सर्व्वतोभद्र रस।—लोहा, ताम्बा और अबरख भस्म प्रत्येक आठ आठ तोले, पारा दो तोले, गन्धक २ तोले, स्वर्णमाक्षिक भस्म २ तोले, मैनसिल २ तोले, शिलाजीत २ तोले, गुगगुलु दो तोलें, विडङ्ग, भेलावा, चीतामूल, सफेद अकवन की जड, हस्तिकर्ण-पलाश की जड़, तालमूली, पुनर्नवा, मोथा, गुरिच, गुलशकरी, चकवडकी बीज, मडरी, भीमराज, केशुरिया, शतावर, विधारेका बीज, त्रिफला और त्रिकटु प्रत्येक आधा तोला। यह सब द्रव्य एकत्र घी और सहतके साथ खलकर एक आनेभर मात्रा पानीके साथ सेवन करनेसे उपद्रवयुक्त अम्लपित्त, शूल, रक्तपित्त, अर्श, वातरक्त, अग्नि मान्द्य, पाडु, कामला, श्वास, काम प्रभृति रोग शान्त होता है।

पिप्पली घृत—घी ४ सेर, पीपलका काढा १६ सेर और पीपल का कल्क एक सेर, यथाविधि पाककर ठण्ढा होनेपर एक सेर मधुत मिलाना। आधा तोला माता सेवन करनेसे अम्लपित्त आराम होता है।

द्राक्षाद्य घृत—मुनका, गुरिच, इन्द्रयव, परवरका पत्ता, खसकी जड, आवला, मोथा, लालचन्दन, त्रायामाणा, पद्मकाष्ठ, चिरायता और धनिया सब मिलाकर एक सेरका कल्क, तथा १६ सेर पानीके साथ ४ सेर घी यथाविधि औटाकर, आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे अम्लपित्त, अग्निमान्द्य, ग्रहणी और कास आदि रोग दूर होता है।

श्रीविल्व तैल।—तिलका तैल ४ सेर, बेलकी गिरी १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, आवलेका रस ४ सेर, दूध ८ सेर, आवला, लोध, हर्रा, मोथा, लाल चन्दन, वाला, सरलकाष्ठ, देवदारू, मजीठ, तेजपत्ता, प्रियगु, अनन्तमूल, बच, शतावर, असगन्ध, सोवा और पुनर्नवा, सब मिलाकर एक सेरका कल्क, यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे अम्लपित्त, शुल, हाथ पैरकी जलन और सूतिका रोग आराम होता है।

विसर्प और विस्फोटरोग।

अमृतादि कषाय।—गुरिच, अडूसेकी जडकी छाल, परवरका पत्ता, मोथा, छतिवन की छाल, खदिरकाष्ठ, कृष्णवेतस की जड, नीमका पत्ता, हल्दी और दारुहल्दी, इन सबका काढा पीनेसे

विविध विषदोष, विसर्प, कुष्ठ, विस्फोट, कण्डू और मसूरिका दूर होती है।

नवकषाय गुग्गलु—गुरिच, अडूसेके जडको छाल, परवरका पत्ता, नीमका पत्ता, त्रिफला, खदिरसार और अमिलतास सब मिलाकर २ तोला, इस काढेमें आधातोला गुग्गुलु मिलाकर पीनेसे विसर्प और कुष्ठ रोग आराम होता है।

कालाग्निरुद्र रस।—पारा, अभरख भस्म, कान्तलौह भस्म, गन्धक और स्वर्णमाक्षिक भस्म, प्रत्येक समभाग, एकत्र जङ्गली काकरोलके रसमें एक दिन खलकर जगली काकरोलमें भरना, तथा चारो तरफ मिट्टी लपेट सुखाकर एकदिन गजपुटमें फूकना, ठण्ढा होने पर औषध बाहर निकाल लेना तथा उसका दशवा हिस्सा मिठाविषका चूर्ण मिलाना २ रत्ती मात्रा पीपलका चूर्ण और मधुके साथ सेवन करनेसे विसर्प रोग आराम होता है। अवस्थानुसार मात्रा बढा भी सकते है।

वृषाद्य घृत—अडूसेकी छाल, खैरकी लकडी, परवरका पत्ता, नीमकोछाल, गुरिच और आवला इन सबका काढा १६ सेर, और कल्क १ सेरके साथ यथाविधि ४ सेर घी औटना। आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे विसर्प कुष्ठ और गुल्मरोग आराम होता है।

पञ्चतिक्त घृत—परवरका पत्ता, छतिवनकी छाल, नीमकी छाल, अडूसेकी छाल और गुरिच, इन सबका काढा १६ सेर और त्रिफलेका कल्क एक सेरके साथ ४ सेर घी औटाकर पूर्व्ववत् मात्रा सेवन करनेसे विस्फोट विसर्प और कण्डू रोग आराम होता है।

करञ्ज तैल—सरसोंका तेल ४ सेर, डहरकरञ्ज, छतिवनकी छाल, ईशलागला, सेहुड और अकवनका दूध, चीतामूल, भृङ्गराज, हल्दी और मिठाविष मिलाकर एक सेर, गोमूत्र १६ सेर,

यथाविधि औटाकर प्रयोग करनेसे विसर्प, विस्फोट और विचर्चिका रोग दूर होता है।

मसूरिकारोग।

निम्बादि—नीमकी छाल, दवनपापडा, अम्बष्ठा, परवरका पत्ता, कुटकी, अडूसेकी छाल, जवासा, आंवला, खसकी जड़, श्वेत चन्दन और लालचन्दन, इन सबके काढ़ेमें चीनी मिलाकर पीनेसे ज्वर और मसूरिका शान्त होती है तथा जितनी गोटी निकलकर बैठ जाती है वह फिर निकलने लगती है।

ऊषणादि चूर्ण—मिरच, पीपलामूल, कूठ, गजपीपल, मोथा, मुलेठी, मूर्व्वामूल, बारंगी, मोचरस, वंशलोचन, जवाखार, अतीस, अडूसेकी छाल, गोखरू, वृहती और कण्टकारी, प्रत्येकका सम-भाग चूर्ण। दो आनेभर मात्रा सेवन करनेसे मसूरिका रोमान्ती, विस्फोट और ज्वर आराम होता है।

सर्व्वतोभद्र रस—सिन्दूर, अभरख भस्म, रौप्यभस्म, सोनाभस्म और मैनसिल प्रत्येक समभाग, वंशलोचन २ भाग और सबके बराबर गुग्गुलु एकत्र पानीमें खलकरना। दो आनेभर मात्रा सेवन करनेसे मसूरिका आराम होती है।

इन्दुकला वटिका—शिलाजीत, लौहभस्म और स्वर्ण भस्म प्रत्येक समभाग वनतुलसीके रसमें खलकर एक रत्ती बराबर गोली बनाना। यह भी मसूरिका नाशक है।

एलाद्यरिष्ट।—इलायची ५० पल, अडूसेकी छाल २० पल, मजीठ, कुरैयाकी छाल, दन्तीमूल, गुरिच, हलदी, दारुहल्दी,

रास्ना, खसको जड, मुलेठो, सिरोप छाल, खैरको लकडो, अर्ज्जुनछाल, चिरायता, नोमको छाल, घोतामूल, कूठ और सौफ, प्रत्येक दश पल, पानो ५१२ सेर शेष ६४ सेर, यह काढा ठण्ढा होनेपर धवईका फूल १६ पल, सहत ३७॥ सेर, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागेश्वर, सोंठ, पोपल, मिरच, श्वेतचन्दन, लालचन्दन, जटामासो, मूरामासो, शैलज, अनन्तमूल और श्यामालता प्रत्येक आठ आठ तोले मिला मिट्टीके घडेमें मुह बन्दकर एक महीना रख देना। फिर छानकर उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे, रोमान्ति, मसूरिका, शीतपित्त, विस्फोट, भगन्दर, उपदंश और प्रमेह पिडका आदि विविध रोग शान्त होता है।

क्षुद्ररोग।

चांगेरी घृत—घी एक सेर, चांगेरोका रस, सूखो मूलीका काढा और खट्टा दही सब मिलाकर १६ सेर, तथा सोंठ और जवाखार प्रत्येक १० तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर सेवन करनेसे गुदभ्रंशका दर्द दूर होता है।

हरिद्राद्य तैल।—हलदी, दारुहलदो, मुलेठो, लाल-चन्दन, पुण्डरिया काष्ठ, मजीठ, पद्मपुष्प, पद्मकाष्ठ, केशर और कायेथ, गाब, पाकुर और बड इन सबके पत्तेका कल्क और चागूने दूधके साथ यथाविधि तैल पाककर मर्द्दन करनेसे युवानपिडिका व्यङ्ग, नोलिका और तिलकालक आदि रोग दूर होता है।

कुङ्कुमाद्य तैल।—तिलका तेल आधा सेर, क्वाथार्थ—लालचन्दन, लाह, मजीठ, मुलेठी, खसकी जड, पद्मकाष्ठ, नीलोत्पल, वडकी मार, पाकुरका टूसा, पद्मकेशर और दशमूल प्रत्येक एक एक पल, पानी १६ सेर, शेष ४ सेर, मजीठ, महुआ, लाह, लालचन्दन और मुलेठी प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, बकरीका दूध एक सेर, यथाविधि औटाना पाकशेष होनेपर केशर ४ तोले मिलाना। यह तैल मालिश करनेसे पिडिका, नीलिका और व्यङ्ग आदि पीडा दूर हो मुखज्योति बढती है।

हरिद्राद्य तैल।—सरसोंका तेल ४ सेर, हलदी, दारुहलदी, चिरायता, त्रिफला, नीमकी छाल और लालचन्दन प्रत्येक एक एक पलका कल्क, पानी १६ सेर यथाविधि औटाकर मस्तकमें लेप करनेसे अरूंषिका रोग दूर होता है।

त्रिफलाद्य तैल।—तिलका तेल ४ सेर, त्रिफलाचूर्ण, जटामांसी, भगरैया, अनन्तमूल और सैन्धवलवण सब मिलाकर एक सेरका कल्क, पानी १६ सेर यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे रूसी (शिरका रुसी) दूर होता है।

वह्नितैल।—चीतामूल दन्तीमूल और घोषालता यह तीन द्रव्यके कल्कमें तैल पाककर केशदट्टुमें प्रयोग करना।

मालत्याद्य तैल।—तिलका तेल एक सेर, मालतीपत्र, करवीरकी जड, चीतामूल और डहरकरञ्जकी बीज, प्रत्येक चार चार तोलेका कल्क, पानी ४ सेर, यथाविधि औटाकर टाक और दारुणक रोगमें मालिश करना।

गुञ्जाद्य तैल।—सरसोंका तेल ४ सेर कागमूत्र ८ सेर, गोमूत्र ८ सेर, सेहुंडका दूध, अकवनका दूध भगरैया, ईशलांगला, मृणाल, घुंघुची, दन्तरायणकी जड और सफेद सरसों प्रत्येक

एक एक पल, यथाविधि औटाकर टाकमें मालिश करनेसे अति दुःसाध्य टाक भी आराम होता है।

यष्टिमध्वाद्य तैल।—तिलका तेल एक सेर, दूध ४ सेर, मुलेठी ८ तोले और आवला ८ तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर नस्य लेने और मर्द्दन करनेसे केश और श्मश्रु पैदा होता है।

महानील तैल।—बहेडा के बोजका तेल १६ सेर, आवलेका रस ६४ सेर, हुडहुड की जड, कालीभिण्टी तुलसीका पत्ता, कृष्णशणकी जड, भोमराज, काकमाची, मुलेठी और देवदारु, प्रत्येक १० पल, पीपल, त्रिफला, रसाञ्जन, पौण्डरीक, मजीठ, लोध, कृष्णागुरु, नीलोत्पल, आम्रकेशी, कृष्णकर्द्दम, मृणाल, लालचन्दन, नीलकाठ, भेलावा, हीराकस, मल्लिकाफूल, भीमराजी अशनछाल, लौहचूर्ण, कृष्णपुष्प, मदनछाल, चीतामूल, अर्ज्जुनपुष्प, आम्रवीज, जामून बीज प्रत्येक पांच पांच पल, यथाविधि लौहपात्रमें औटाकर थोडे दिन धूपमें रखना फिर छानकर लोहेके पात्रमें रखना। यह तैल नस्य, पान और मर्द्दनार्थ प्रयोग करनेसे शिरोरोग और केशकी अकालपक्वता दूर होती है।

सप्तच्छदादि तैल।—तिल तैल ४ सेर, छतिवनकी छाल अड्सेकी छाल और नीमकी छाल प्रत्येक का काढा १६ सेर, हलदी, दारुहलदी, हर्रा, आवला, बहेडा, शोठ, पीपल, मिरच, इन्द्रयव, मजीठ, खदिरकाठ, जवाखार और सज्जीखार मिलाकर एक सेरका कल्क गोमूत्र १६ सेर, यथाविधि इनको आचमें औटाकर मालिश करनेसे पद्मिनीकण्टक चिप्प, कदर, व्यङ्ग, नीलिका और जालगर्द्दभ आदि पीडा दूर होती है।

कुङ्कमादि घृत।—घी एक सेर, चीतामूलका काढा ४ सेर, केशर, हल्दी, दारुहल्दी और पीपल प्रत्येक ४ तोलेका कल्क

यथाविधि औटाकर पान, नस्य और मालिश करनेसे नीलिका युवानपिडिका सिध्म और शिरोरोग आराम होता है।

सहचर घृत।—घी सेर, पीतझिंटो १२॥ सेर पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, दशमूल सब मिलाकर १२॥ सेर पानी ६४ सेर शेष १६ सेर। शिरीष छाल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल, शोंठ, वायविडंग, पाचीनमक, जवाखार, सज्जीखार, सोहागा, बिछौटी की जड़, मटियासिन्दूर और गेरूमिट्टी मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे न्यच्छ, नीलिका, तिलकालक, अङ्गलिवेष्टक, पाददारी और युवानपिडका दूर होती हैं।

मुखरोग।

दन्तरोगाशनि चूर्ण।—जातीपत्र, पुनर्नवा, तिल, पीपल, झाटीपत्र, मोथा, बच, अजवाईन और हर्रे इन सबके समभाग चूर्णमें घी मिलाकर मुहमें रखनेसे दांतकी क्रिमि, कण्डु, शूल और दुर्गन्ध नष्ट होता है।

दशनसंस्कार चूर्ण।—शोंठ, हर्रो, मोथा, खैर, कपूर, सुपारी भस्म, मिरच, लौंग, दालचीनी प्रत्येक समभाग चूर्ण, तथा सबके बराबर सफेद मिट्टीका चूर्ण एकत्र मिलाकर दांत मलनेसे दन्त और मुखरोग दूर होता है।

कालक चूर्ण।—जाला, जवाखार, अम्बष्ठा, त्रिकटु, रसाञ्जन, चाभ, त्रिफला, लौहचूर्ण या अगरु और चीतामूल एकत्र सहतमें

मिलाकर गोली बना लेना। यह गोली मुहमें रखनेसे गलरोग तथा दन्त, जिह्वा और मुखरोग दूर होता है।

पीतक चूर्ण।—मैनसिल, जवाखार, हरिताल, सेधानमक और और दारहल्दी, इन सबके चूर्णमें सहत मिलाकर मुहमें धारण करनेसे कण्ठरोग दूर होता है।

क्षारगुड़िका।—पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल, शोंठ, तालीशपत्र, इलायची, मिरच, दालचीनी, पलाशका क्षार, घण्टापाटलाका क्षार और जवाखार, यह सब द्रव्य दूने पुराने गुड़में औटाकर बर बराबर गोली बनाना, तथा गोली सात दिन घण्टा-पारूलके क्षारमें रखकर मुहमें धारण करनेसे कण्ठरोग आराम होता है।

यवक्षारादि गुटी—जवाखार, चाभ, अम्बष्ठा, रसाञ्जन, दारहल्दी और पीपल, यह सब द्रव्य सहतमें मिलाकर गुडिका बना मुहमें रखनेसे गलरोग दूर होता है।

सप्तच्छदादि काढा—छतियनकी छाल, खसकी जड, परवर का पत्ता, मोथा, हर्रा, कुटकी, मुलेठी, अमिलतास और लाल-चन्दन, इन सबका काढा पीनेसे मुखके भीतरका घाव आराम होता है।

पटोलादि काढा—परवरका पत्ता, शोंठ, त्रिफला, इन्द्रायण की जड, त्रायमाणा, कुटकी, हल्दी, दारहलदी, और गुरिचके काढेमें सहत मिलाकर पीनेसे या मुहमें धारण करनेसे मुखरोग दूर होता है।

खदिर वटिका—खेर १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष ८ सेर, इस काढेमें जावित्री, कपूर, सुपारी, बबूलका पत्ता और जायफल, प्रत्येक आठ आठ तोले मिलाकर गुडिका बनाना। यह

गुडिका मुहमें धारण करनेसे दन्त, ओष्ठ, जिह्वा, तालु और मुखरोग दूर होता है ।

वृहत् खदिर वटिका ।—खैर १२॥ सेर, बबूलको छाल २५ सेर, पानी २५६ सेर, शेष ६४ सेर, यह काढ़ा छानकर फिर औटाना गाढ़ा होनेपर बड़ो इलायची, खसको जड़, श्वेत चन्दन, लालचन्दन, बाला, पियङ्गु, तमालपत्र, मजीठ, मोथा अगरू, मुलेठी, बशहक्राल्ला, त्रिफला, रसाजन, धवईका फल, नागेश्वर, पुण्डरिया, गेरूमिट्टी, दारुहलदी, कटफल, पद्मकाष्ठ, लोध, बड़कोसार, जवासा, जटामासी, हलदी, रास्ना, दालचीनी प्रत्येक दो दो तोले , कङ्कोलफल, जायफल, जावित्री, और लौंग प्रत्येक का चूर्ण आठ आठ तोले उसमें मिलाना। ठण्ढा होनेपर आधा सेर कपूर मिलाकर मटर बराबर गोली बनाना। यह गोली मुहमें धारण करनेसे ओष्ठ, जिह्वा, दन्त और तालुगत रोग दूर होता है तथा मुख स्वादिष्ट और सुगन्ध, तथा दांत दृढ और जीभ साफ होती है।

बकुलाद्य तैल ।—तिलतैल ४ सेर, मौलसरीका फुल, लोध, हड़जोड़, लालभराटो, अमिलतासका पत्ता, बनतुलसी, आमवृक्षकी छाल और बबूल तथा असनको छाल सब १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर , यह काढा तथा उक्त सब द्रव्य मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाकर मुहमें धारण करनेसे तथा नास लेनेसे हिलता हुआ दांत मजबूत होता है।

कर्णरोग।

भैरव रस।—पारा, गन्धक, मोठाविष, साम्हारीका लावा, कौडी भस्म और गोलमिरच का चर्ण प्रत्येक समभाग अदरखके रसकी भावना दे ॥ रत्ती बराबर गोली बनाना, अनुपान अदरखकी रसमें सेवन करनेसे कर्णरोग और अग्निमान्द्य आराम होता है।

इन्दुवटी—शिलाजीत, अभरख भस्म और लौहभस्म प्रत्येक एक एक भाग, और सोनेका भस्म चौथाई भाग एकत्र काकमाची, शतावर, आंवला और पद्मके रसका भावना दे २ रत्ती बराबर गोली बनाना। आंवलेका रस या काढेके साथ सेवन करनेसे कर्णनादादि वातज पीडा और प्रमेह आराम होता है।

सारिवादि वटी।—अनन्तमूल, मुलेठी, कूठ, दाल चीनी तेजपत्ता, बडी इलायची, नागेश्वर, प्रियगु, नीलोत्पल, गुरिच, लौंग, हर्रा, आंवला और बहेडा प्रत्येक समभाग, समष्टीके बराबर अभरख भस्म और अभरख भस्मके बराबर लौहभस्म एकत्र केशुरियाका रस, अर्जुन छालका काढा जीका काढा, काकमाचीका रस और घघुचीकी जडके काढेको भावना दे ६ रत्ती बराबर गोली बनाना। धारोष्ण दूध, शतावरका रस अथवा सफेद चन्दनके साथ सेवन करनेसे वातज कर्णराग, प्रमेह और रक्तपित्त आराम होता है।

दीपिका तैल—महत् पञ्चमूलको आठ अङ्गुल लकडीमें अथवा देवदारु कूठ और सरलकाष्ठमें तेलसे भिगोय। रेशमी वस्त्र लपेटकर जलाना। उसमें से जो तेलका बद गिरेगा उसीको दीपिका तैल कहते है। यह तैल गरमकर कानमें डालनेसे तुरत कानका दर्द शान्त होता।

दशमूलो तैल—तिल तेल ४ सेर, दशमूल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर यह काढा तथा एक सेर दशमूलका कल्क यथा विधि औटाकर कानमें डालनेसे वहिरापन दूर होता है।

जम्वाद्य तैल—नीम, करञ्ज अथवा सरसोका तैल एक सेर, बकरोका दूध ४ सेर, तथा लहसन, आवला और हरताल सब मिलाकर दो पलका कल्क, यथाविधि औटाकर कानमे डालनेसे कर्णस्राव बन्द होता है।

शम्बूक तैल—सरसोंके तैल १ सेर घोंघेका मास २ पल, पानी ४ सेर यथाविधि औटाकर कानमे डालनेसे कर्णनाली दूर होती है।

निशातैल—सरसोका तैल ४ चार सेर, धतूरेके पत्तेका रस १ एक सेर तथा हलदी ४ तोले और गन्धक ४ तोलेका कल्क औटाकर कानमे देनेसे कर्णनाली दूर होता है।

कुष्टाद्य तैल—तिलका तैल एक सेर, छागमूत्र ४ सेर, और कूठ, हीग बच, देवदारु, सोवा, शोंठ और सेन्धव सब मिलाकर १६ तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर कानमें देनेसे पूतिकर्ण दूर होता है।

नासारोग।

व्योषाद्य चूर्ण—त्रिकटु, चीतामूल, तालीशपत्र, इमली, अम्ल-वेतस, चाभ और कालाजीरा सब मिलाकर दो पल। इलायची, तेजपत्ता और दालचीनी मिलाकर ४ तोले, पुराना गुड ५० पल, एकत्र औटाकर ४ आनेभर मात्रा गरम पानीके साथ सेवन करनेसे पीनस, श्वास, कास, अरुचि और स्वरभङ्ग आराम होता है।

शिग्रुतैल—सेंजनको बोज, हहती बीज, दन्तीबाज, त्रिकटु और सैन्धवका कल्क और बेलके पत्तेके रसके साथ यथाविधि तैल औटाकर नास लेनेसे पूतिनस्य रोग दूर होता है।

व्याघ्रोतैल—सरसोंका तैल १ सेर, पानो ४ सेर, तथा कण्टकारो, दन्तोमूल, बच, सैंजनको छाल, निर्गुण्डो, त्रिकटु और सैन्धव मिलाकर १६ तोलेके कल्क, यथाविधि औटाकर नास लेनेसे पूतिनस्य दूर होता है।

चित्रक हरीतकी।—चीतामूल ५० पचास पल, पानो ५० सेर, शेष १२॥ सेर, गुरिच ५० पचास पल, पानो ५० सेर शेष १२॥ सेर, दशमूल प्रत्येक पाच पाच पल, पानो ५० सेर शेष १२॥ सेर, यह तीनों काढा एकत्र मिलाकर उसमें १२॥ सेर पुराना गुड मिलाना तथा हर्रेका चूर्ण ८ सेर मिलाकर औटाना। पाकशेष में शोठ, पोपल, मिरच, दालचोनी, तेजपत्ता और इलायचो प्रत्येक का चूर्ण दो दो पल और जवाखार ४ तोले मिलाना। तथा दूसरे दिन २ सेर सहत मिलाना। आधा तोला मात्रा गरम पानोके साथ सेवन करनेसे पोनस, नासारोग, कास, क्षय और अग्निमान्द्य शान्त होता है।

लक्ष्मीविलास।—अभरख भस्म ८ तोले, पारा, गन्धक, कपूर, जावित्री और जायफल प्रत्येक चार चार तोले, विधारेको बोज, धतूरेको बोज, भांगको बाज, बिदारोकन्दको जड, सतावर, गुलशकरी को जड, बरियारेको जड गोक्षुर बोज, और (निचुल) ईज्जलको बोज प्रत्येक दो दो तोले, एकत्र पानके रसमें खलकर ३ रत्ती बराबर गोलो बनाना। अनुपान सहत और पानका रसमें यावतोय श्लेष्म विकारमें प्रयोग करना।

करवाराद्य तैल—तिलका तेल एक सेर, लाल कनैलका फूल, जातोपुष्प, अशनपुष्प और मालका पुष्प, प्रत्येक चार चार तोलेका कल्क, पानी ४ सेर, यथाविधि औटाकर नास लेनेसे नासार्श रोग आराम होता है।

दूर्व्वाद्य तैल—१ एक सेर दूर्व्वाघासके रसमें एक पाव तेल औटाकर नास लेनेसे नासारोग और रक्तस्राव बन्द होता है।

चित्रक तैल—तिलका तेल ४ सेर, गोमूत्र १६ सेर, चीतामूल, चाभ, अजवाइन, कण्टकारी, करञ्जबीज, सैन्धानमक और अकवनका दूध सब मिलाकर एकसेर का कल्क, यथाविधि औटाकर नास लेनेसे नासार्श दूर होता है।

नेत्ररोग।

—०—

चन्द्रोदयवर्त्ती।—हरीतकी, वच, कूठ, पीपल, मिरच, बहेड़ेके गुठलीका गूदा, शङ्खनाभि और मनछाल, यह सब द्रव्य बकरीके दूधमें पीसकर बत्ती बनाना। यह बत्ती सहतमें घिसकर आंखमें लगानेसे आंखकी खुजली, तिमिर, फूली, अर्व्वुद, अधिमास, कुसुम (छाली) और रातरन्धता आदि रोग दूर हो दृष्टि प्रसन्न होती है।

वृहत् चन्द्रोदय वर्त्ती—रसवत, इलायची, केशर, मनछाल, शङ्खनाभि, सैजनकी बीज और चीनी, एकत्र पानीके साथ खल-कर बत्ती बनाना। पूर्व्ववत अञ्जन करनेसे पूर्व्वोक्त रोग दूर होता है।

चन्द्रप्रभावर्त्ती—रसाञ्जन, सैजनको बीज, पीपल, मुलेठी, बहेड़ेके बीजका गूदा, शङ्खनाभि और मनशील यह सब द्रव्य बकरीके दूधमें पीसकर बत्ती बनाना, छायामें सुखाकर इस बर्त्तीका अञ्जन करनेसे यावतीय चक्षुरोग आराम होता है।

नागार्जुनाञ्जन।—त्रिफला, त्रिकटु, मुलेठी, तूतिया, रसाञ्जन, पुण्डरिया, बायविडङ्ग, लोध और ताम्रभस्म एकत्र ओसके पानीमें खलकर बत्ती बनाना। यह बर्त्ती स्त्री दूधमें घिसकर अञ्जन करनेसे तिमिर रोग, किंशुक फूलके रसमें घिसकर अञ्जन करनेसे आंखको फूली और छाग दूधमें घिसकर अञ्जन करनेसे माड़ा दूर होता है।

विभीतकादि क्वाथ—बहेड़ा, हर्रा, आंवला, परवरका पत्ता, नीमकी छाल और अडूसेकी छाल, इन सबके काढ़ेमें गूगल मिलाकर पीनेसे चक्षुशूल, शोथ और आंखकी लाली दूर होती है।

वृहत् वासादि।—अडूसेकी छाल, मोथा, नीमकी छाल, परवरका पत्ता, कुटकी, गुरिच, लालचन्दन, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव, दारुहल्दी, चीतामूल, सोंठ, चिरायता, आंवला, हर्रा, बहेड़ा, श्यामालता और जौ सब मिलाकर ४ तोले, पानी एक सेर, शेष आधा पाव, सबेरे यह काढ़ा पीनेसे तिमिर, काच, फूली और अर्बुद आदि नेत्ररोग दूर होता है।

नयनचन्द्र लौह।—त्रिकट, त्रिफला, काकड़ाशिंगी, शठी, रास्ना, सोंठ, मुनक्का, नीलाकमल, काकोली, मुलेठ, अरियारा, नागेश्वर, कण्टकारी और हल्दी सब मिलाकर दो पल, लौहभस्म, अभ्रभस्म एक एक पल एकत्र त्रिफलेका काढ़ा, तिल तेल और भामराजके रसकी भावना दे बेरकी गुठली बराबर गोली बनाना।

त्रिफला भिंगोया पानीके साथ सेवन करनेसे यावतीय नेत्ररोग शान्त होता है।

महात्रिफलाद्य घृत ।—घी ४ सेर, त्रिफला दो सेर, पानी १६ सेर शेष ४ सेर, यह काढा, तथा भगरैयाका रस ४ सेर, अड़ूसेके पत्तेका रस ४ सेर अथवा अड़ूसेके जडका काढा ४ सेर, सतावरका रस ४ सेर, बकरीका दूध ४ सेर, गुरिचका रस या काढा ४ सेर, आवलेका रस ४ सेर, तथा पीपल, चीनी मुनक्का, त्रिफला नीलाकमल, मुलेठी क्षीरकाकोली, गुरिच और कण्टकारी सब मिलाकर एक सेरका कल्क, यथाविधि औटाकर भोजनके पहिले मध्यमें और पीछे आधा तोलासे दो तोलेतक मात्रा सेवन करनेसे सब प्रकारका नेत्ररोग आराम हो बल, वर्ण और अग्निकी वृद्धि होती है।

—०—

शिरोरोग ।

—०—

शिर:शूलाद्रिवज्र रस ।—पारा, गंधक, लौहभस्म और तेवडी प्रत्येक एक एक पल, गूगल ४ पल, त्रिफलाका चूर्ण दो पल, कूठ, मुलेठी, पीपल, शोंठ, गोक्षुर, वायविडङ्ग और दशमूल प्रत्येक एक एक तोला, एकत्र दशमूलके काढेकी भावना देना फिर घीमें खलकर १ मासे बराबर गोली बनाना। बकरीका दूध, पानी या मधुके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका शिररोग दूर होता है।

अर्द्धनाडी नाटकेश्वर—कौडीभस्म ५ भाग, सोहागेका लावा ५ भाग, मिरच ८ भाग, सिठाविष ३ भाग, एकत्र स्तनदूधमें खलकर नाश लेनेसे शिरोरोग शान्त होता है।

चन्द्रकान्त रस—रससिन्दूर, अभरख भस्म, ताम्रभस्म, लौहभस्म और गंधक, प्रत्येक समभाग एकत्र सेहुडके दूधमें लौह पात्रमें एकदिन खलकर मासे बराबर गोली बनाना। सहतके साथ सेवन करनेसे सूर्य्यावर्त्त आदि शिरोरोग दूर होता है।

मयूराद्य घृत।—घी १६ सेर, काढेके लिये एक मोरका मांस ३८ पल दशमूल (प्रत्येक तीन तीन पल) वरियारा, रास्ना और मुलैठी प्रत्येक तीन तीन पल एकत्र ६४ सेर पानीमें औटाना १६ सेर पानी रहते उतार लेना। फिर दूध ४ सेर, तथा पुण्डरिया काष्ठ, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, मुलेठी, मुगानी और मापोणी प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे शिरोरोग आदि ऊर्द्ध्व रोग समूह और अर्दित रोग आराम होता है।

षडविन्दु तैल।—तिल तैल ४ सेर, छागदूध ४ सेर, भगरैयाका रस १६ सेर, तथा रेडकी जड, तगरपादुका, सोवा, जीवन्ती, रास्ना, सैन्धव, दालचीनी, वायविडंग, मुलैठी और सोंठ सब मिलाकर एक सेर का कल्क, यथाविधि औटाकर नास लेनेसे शिरोरोगको शान्ति, तथा शिथिलकेश, दन्तादिकी दृढता और दृष्टिशक्ति की वृद्धि होती है।

महादशमूल तैल।—सरसोंका तैल १६ सेर, दशमूल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर, शेष १६ सेर, नीबूका रस ६ सेर, आदीका रस १६ सेर, धतूरेका रस १६ सेर, तथा पीपल ३ पल गुरिच, दारुहलदी, सोवा, पुनर्नवा, सैजनकी छाल, कुटकी, करञ्ज बीज, कालाजीरा, सफेद सरसों, वच, सोंठ, चीतामूल, शठी, देवदारू, वरियारा, रास्ना, हुडहुड, कटफल, निर्गुण्डीका पत्ता,

चाभ, गेरूमिट्टी, पीपलामूल, सुखीमूली, अजवाईन, जीरा, कूठ, अजमोदा और बिधारको जड प्रत्येक एक एक पल, यथाविधि औटाकर शिरमें मालिश करनेसे कफजन्य शिरोरोग और बदनमें मालिश करनेसे कफजन्य दर्द और शोथ दूर होता है।

वृहत् दशमूल तैल।—सरसोंका तैल १६ सेर, दश मूल, धतूरेका पत्ता, पुनर्नवा और निर्गुण्डीपत्र प्रत्येक १२॥ सेर, अलग अलग ६४ सेर पानीमें औटाकर १६ सेर अवशिष्ट रखना तथा अडूसके जडकी छाल, बच, देवदारु, शठी, रास्ना, मुलेठी, मिरच, पीपल, शोंठ, कालाजीरा, सैजनकी छाल, करञ्ज बीज, कूठ, इमलीकी छाल, जगली सेम और चीतामूल प्रत्येक आठ आठ तोले, यथाविधि औटाकर व्यवहार करनेसे शिरशूल, कर्ण शूल और नेत्रशूल दूर होता है।

अपामार्ग तैल—अपामार्ग बीज, त्रिकटु, हलदी, नकछिकनी का पत्ता, हींग और वायविडग सब मिलाकर एक सेर और १६ सेर गोमूत्रके साथ यथाविधि ४ सेर तिल तैल औटाकर नास लेनेसे शिरकी क्रिमिका नाश होता है।

स्त्रीरोग।

—*—

दार्व्वादि काढ़ा—दारुहलदी, रसवत, अडूसेके जडकी छाल, मोथा, चिरायता, बेलकीगिरी और भेलावा, इन सबके काढ़ेमें सहत मिलाकर पीनेसे प्रदर रोग आराम होता है।

उत्पलादि कल्क—लालकमल की जड, लालकपास की जड, कनैल की जड, लाल ओढउलको जड, मौलसरो को जड, गन्धमात्रा, जोरा और लालचन्दन, यह सब द्रव्य एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा चावल भिगोया पानीसे लेनेसे रक्तमूत्र, योनिशूल, कटिशूल और कुच्चिशूल दूर होता है।

चन्दनादि चूर्ण।—लालचन्दन, जटामासी, लोध, खसकी जड, पद्मकेशर, नागेश्वर बेलकीगिरी, नागरमोथा, चीनी, बाला, अम्बष्ठा, इन्द्रयव, कुरैयाकी छाल, शोंठ, अतीस, धवईका फूल रसाजन, आम्रकेशी, जामुन की गुठली, मोचरस, नीलोत्पल, वराहक्रान्ता, छोटी इलायची, अनार की छाल, प्रत्येकका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर आधा तोला मात्रा सहत और चावल भिगोया पानीके साथ सेवन करनेसे प्रदर, रक्तातिसार, रक्तार्श और रक्तपित्त आराम होता है।

पुष्यानुग चूर्ण।—पाठा, जामुनके गुठलीकी गिरी, आमके गुठली की गिरी, पत्थरचूर, रसांजन, अम्बष्ठा, मोचरस, वराहक्रान्ता, पद्मकेशर, केशर, अतीस, मोथा, बेलकी गिरी, लोध, गेरूमिट्टी, त्रिफला, मिरच, शोंठ, मुनक्का, लालचन्दन, श्योनाक छाल, इन्द्रयव, अनन्तमूल, धवईफूल, मुलेठी और अर्जुन छाल सबका समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर दो आनेभरसे चार आनेभर मात्रा सहत और चावल भिगोया पानीके साथ सेवन करनेसे, प्रदर, योनिदोष, अतिसार और अर्शोरोग आराम होता है। पुष्यानक्षत्र में यह औषध प्रस्तुत और प्रयोग करना चाहिये।

प्रदरारि लौह—कुरैयाकी छाल १२॥ सेर, पानी ६४ सेर शेष ८ सेर, यह काढ़ा छानकर फिर औटाना, गाढ़ा होनेपर वराह-

काञ्चा, मोचरस, बारगो, बेलकी गिरो, मोथा, धवईकाफूल, अतीस, अभ्रभस्म और लौहभस्म प्रत्येक का चूर्ण एक पल उसमें मिलाकर चार आनेभर मात्रा कुशमूल पीसकर पानीमें मिला सेवन करनेसे प्रदर और कुक्षिशूल दूर होती है।

प्रदरान्तक लौह—पारा, गन्धक, वंग, रौप्य, खपरिया और कौडीभस्म प्रत्येक आधा तोला, लौहभस्म तीन तोले, एकत्र घोकुआर के रसमें एकदिन खलकर एक रत्ती वराबर गोली बनाना। उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका प्रदर रोग आराम होता है।

अशोक घृत।—गायका घो ४ सेर, अशोकमूल की छाल २ सेर, पानी १६ सेर शेष ४ सेर, जीरा २ सेर पानी १६ सेर शेष ४ सेर, अरवाचावल भिगोया पानी ४ सेर, बकरीका दूध ४ सेर, केशुरियाका रस ४ सेर, तथा जीवक, ऋषभक, मेद, महामेद, काकोली, क्षीरकाकोली, मागोनी, माषोणी, जीवन्ती, मुलेठी, पियाल सार अथवा पियाल बीज, फालसा, रसाजन (रसवत) अशोकमूल, मुनक्का और सतावर प्रत्येक चार चार तोलेका कल्क यथाविधि औटाकर ठढा होनेपर एक सेर चीनी मिलाना, इससे प्रदर और तज्जनित विविध उपद्रव दूर होता है।

सितकल्याण घृत।—घी ४ सेर, गायका दूध १६ सेर; कुमुदपुष्प, पद्मकाष्ठ, खसकी जड, गोधूम, रक्तशालि धानकी जड, मागोनी, क्षीरकाकोली, गाभारी फल, मुलेठी, बरियारेकी जड, गुलशकरी की जड, नीलाकमल, तालका पानी, विदारीकन्द, सतावर, सरिवन, जीरा, त्रिफला, खीरेकी बीज और केलेकाफूल प्रत्येक चार चार तोले पानी ८ सेर यथाविधि औटाकर श्वेत प्रदर रक्तप्रदर, रजोहीनता, रक्तगुल्म, रक्तपित्त, वातरक्त, कामला, पाडु, जीर्णज्वर, अरुचि आदिमें प्रयोग करना।

फलकल्याण घृत।—गायका घी ४ सेर, सतावरका रस १६ सेर, दूध १६ सेर, मजीठ, मलेठी, कूठ, त्रिफला, चीनी, वरियारेकी जड़, मेदा, बिदारीकन्द, चीरकाकोली, असगन्धकी जड़, अजमोदा, हल्दी, दारुहलदी, हींग, कुटकी, नीलाकमल, कुमदफूल, मनक्का, काकोली, चीरकाकोली, श्वेतचन्दन और लालचन्दन प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि पाककर सेवन करनेसे योनिदोष, गर्भदोष और प्रदरादि रोग शान्त होता है। कल्क द्रव्यमें एक भाग लक्ष्मणामूल देनेका उपदेश चिकित्सक लोग देते हैं।

फलघृत।—घी ४ सेर, दूध १६ सेर, श्वेतभिंटामूल, पीतभिंटामूल, त्रिफला, मुलेठी, पुनर्नवा, शुकनास, हल्दी, दारुहल्दी, रासन, मेदा और सतावर, सब मिलाकर १ सेरका कल्क यथाविधि औटाकर सेवन करनेसे वन्ध्यादोष, मृतवत्सा, योनिदोष और योनिस्राव आदि दूर होता है।

कुमारकल्पद्रुम घृत।—घी ८ सेर, छागमांस ५० पल और दशमूल ५० पल पानी १०० सेर शेष २५ सेर, दूध ८ सेर, सतावरका रस ८ सेर, तथा कूठ, शठी, मेद महामेद, जीवक, ऋषभक, प्रियंगु, त्रिफला, देवदारु, तेजपत्ता, इलायची, सतावर, गम्भारीफल, मुलेठी, चीरकाकोली, मोथा, नीलाकमल, जीवन्ती, लालचन्दन, काकोली, अनन्तमूल, श्यामालता, सफेद वरियारेकी जड़, शरफोका की जड़, कोंहड़ा, बिदारीकन्द, मजीठ, सरिवन, पिठवन, नागेश्वर, दारुहलदी, रेणुका, लताफटकी की जड़, शङ्खपुष्पी, नीलवृक्ष, वच, अगरु, दालचीनी, लौंग और केसर प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क यथाविधि ताम्बा या मिट्टीके पात्रमें औटाना, ठढा होनेपर पारा, गंधक, अभरख भस्म दो दो तोले और

सहत दो सेर मिलाना। आधा तोला मात्रा यह घी पोनेसे विविध स्त्रीरोग और गर्भदोष दूर होता है।

प्रियङ्ग्वादि तैल ।—तिलतैल ४ सेर, बकरीका दूध दहीका पानी और दारुहलदी का काढा प्रत्येक चार चार सेर, प्रियंगु, पद्ममूल, मुलेठी, हर्रा, बहेडा, आवला, रसवत, सफेद चन्दन, लालचन्दन, मजीठ, सोवा, राल, सैन्धव, मोथा, मोचरस, काकमाची, बेलकोगिरी, वाला, गजपीपल, पीपल, काकोली और चीरकाकोली सब मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाकर गन्धपाक करना यह तैल मालिश करनेसे प्रदर योनिव्यापद, ग्रहणी और अतिसार रोग आराम होता है। यह गर्भस्थापक का उत्तम औषध है।

गर्भिणीरोग ।

—०—

एरण्डादि काढा—रेंडकी जड, गुरिच, मजीठ, लालचन्दन, देवदारु और पद्मकाठ, इन सबके काढेसे गर्भिणीका ज्वर दूर होता है।

वृहत् ह्रीवेरादि—बाला, श्योनाक छाल, लालचन्दन, वरियारा, धनिया, गुरिच, मोथा खसकी जड़, जवासा, दवनपापडा और और अतीस इन सबका काढा पीनेसे अतिसार, रक्तस्राव और सूतिका रोग दूर होता है।

लवङ्गादि चूर्ण ।—लौंग, सोहागेका लावा, मोथा, धवईका फूल, बेलकोगिरी, धनिया, जायफल, सफेद राल, सोवा, अनारका छिलका, जीरा, सैन्धव, मोचरस, नीलाकमल, रसवत, अभरख, वगभस्म, वराहक्रान्ता, लालचन्दन, सोंठ, अतीस, काकडा-

भिंगो खैर बाला प्रत्येक का समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर चार आनेभर माता बकरीके दूधके साथ सेवन करनेसे संग्रह ग्रहणी, अतिसार और आमरक्त आराम होता है।

गर्भचिन्तामणि रस—पारा, गन्धक, लौहभस्म प्रत्येक दो दो तोले अभरख भस्म ४ तोले, कपूर, बंग, ताम्बाभस्म जायफल, जावित्री, गोखुर बीज, सतावर, बरियारा और गुलशकरी प्रत्येक एक एक तोला एकत्र पानीके साथ खलकर २ रत्ती बराबर गोली बनाना। इससे गर्भिणीका ज्वर, दाह और प्रदर आदि आराम होता है।

गर्भविलासरस—पारा, गन्धक और तूतिया प्रत्येक समभाग एकत्र नीबूके रसमें खलकर त्रिकटुके काढेकी ३ बार भावना दे ४ रत्ती बराबर गोली बनाना, इसे गर्भिणीके ज्वरादि रोगमें प्रयोग करना।

गर्भपीयूषवल्ली रस—पारा, गन्धक, सोना, लोहा, रौप्य-माक्षिक भस्म, हरताल, बंग और अभरख भस्म प्रत्येक समभाग समभाग एकत्र ब्राह्मी, अडूसा, भगरैया, दवनपापडा और दशमूल, इन सबका रस या काढेकी सातवार भावना दे एक रत्ती बराबर गोली बनाना। यह गर्भिणीके ज्वरादिमें देना।

इन्दुशेखर रस।—शिलाजीत, अभरख भस्म, रससिन्दूर, प्रवाल, लोहा, स्वर्णमाक्षिक भस्म और हरिताल प्रत्येक समभाग एकत्र भगरैया, अर्जुनछाल, निर्गुण्डी, अडूसा, स्थलपद्म और कुरैयाके छालके रसको भावना दे मटर बराबर गोली बनाना। इससे गर्भिणीका ज्वर, कास, श्वास, शिर पीडा, रक्तातिसार, ग्रहणी, वमन अग्निमान्द्य, आलस्य और दौर्बल्य दूर होता है।

गर्भविलास तैल—तिलका तैल एक सेर, बिदारीकन्द, अनार-का पत्ता, कच्ची हलदी, त्रिफला, सिंघाडेका पत्ता, जातीपुष्प,

सतावर, नीलाकमल और पद्म सब मिलाकर १६ तोलेका कल्क, पानी ४ सेर यथाविधि औटाकर मालिश करनेसे गर्भशूल और रक्तस्रावादि दूर हो पतनोन्मुख गर्भभी स्थिर होता है।

—:०:—

सूतिकारोग।

— ० —

सूतिका दशमूल काढा—सरिवन, पिठवन, वृहती, कण्टकारी गोक्षुर, नीलाकमल की जड, गधालीकी जड, शोठ, गुरिच और मोथाका काढा पोनेसे सूतिका ज्वर और दाह दूर होता है।

सहचरादि—पद्ममूल, मोथा, गुरिच, गधाली, शोठ और वाला, इन सबके काढेमें आधा तोला सहत मिलाकर पीनेसे सूतिका ज्वर और वेदना आराम होती है।

सौभाग्यशुण्ठी।—कसेरू, सिंघाडा, पद्मबीज, मोथा, जीरा, कालाजीरा, जायफल, जावित्री, लोंग, शैलज, नागेश्वर, तेजपत्ता, दालचीनी, शठी, धवईफूल, इलायची, सोवा, धनिया, गजपीपल, पीपल, मिरच और सतावर प्रत्येक चार चार तोले, शोठका चूर्ण एक सेर, मिश्री ३० पल, घी एक सेर और दूध ८ सेर, यथाविधि औटाकर आधा तोला मात्रा सेवन करनेसे सूतिका जन्य अतिसार ग्रहणी आदि पीडा शान्त हो अग्निकी वृद्धि होती है।

जीरकाद्य मोदक।—जीरा ८ पल, शोठ ३ पल, धनिया ३ पल, सोवा, अजवाईन और कालाजीरा प्रत्येक १ पल, दूध ८ सेर, चीनी ४० पल, घी ८ पल, यथाविधि औटाकर त्रिकटु, दाल चीनी, तेजपत्ता, इलायची, वायविडंग, चाभ, चीतामूल, मोथा

और लौंग प्रत्येक एक एक पलका चूर्ण उसमे मिलाना। इससे सूतिका और ग्रहणी रोग दूर हो अग्निकी दीप्ति होती है।

सूतिकारि रस—पारा, गन्धक, अभरख, ताम्रभस्म प्रत्येक समभाग एकत्र खुलकुडीके रसमें मर्द्दनकर छायासे सुखा उरद बराबर गोली बनाना। आदीके रसमें यह सेवन करनेसे सूतिकावस्थाका ज्वर, तृष्णा, अरुचि, अग्निमान्द्य और शोथ दूर होता है।

वृहत् सूतिकाविनोद—सोंठ एक भाग, मिरच दो भाग, पीपल ३ भाग, पागा लवण, आधाभाग, जावित्री २ भाग और तूतिया २ भाग, एकत्र निर्गुण्डीके रसमें एक प्रहर खलकर, सहतके साथ सेवन करनेसे विविध सूतिका रोग दूर होता है।

सूतिकान्तक रस—पारा, गन्धक, अभरख भस्म, स्वर्णमाक्षिक भस्म, त्रिकटु और मीठाविष, प्रत्येक समभाग, एकत्र मिलाकर ४ रत्ती मात्रा उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे सूतिकाजन्य ग्रहणी, अग्निमान्द्य, अतिसार, कास और श्वासरोग आराम होता है।

बालरोग।

भद्रमुस्तादि काढा—नागरमोथा, हर्रा, नीम, परवरका पत्ता और मुलेठी, इन सबके काढेमें थोडा सहत मिलाकर पिलानेसे बच्चोंका बुखार आराम होता है।

रामेश्वर—पारा, गन्धक, स्वर्णमाक्षिक भस्म (पारा गन्धककी कज्जली तयारकर स्वर्णमाक्षिक भस्म मिलाना) प्रत्येक आधा तोला यथाक्रम केशुरया, भगरैया, निर्गुण्डी, पान, काकमाची, गिमा, हुडहुड, शालिच और खुलकुडीके रसमें एक एक दिन भावना दे,

उसमें ४ आनेभर गोलमिरच का चूर्ण और ४ आनेभर सफेद अपराजिताका चूर्ण मिलाना। सरसो बराबर गोली बना बालकोंके ज्वरादि रोगोंमें प्रयोग करना।

बालरोगान्तक रस—पारा, गन्धक प्रत्येक आधा तोला, स्वर्ण माक्षिक २ मासे एकत्र लोहेके पात्रमें खलकर केशुरिया, भगरैया, निर्गुण्डी, काकमाची, गिमा, हुडहुड, शालिंच और खुलकुडीके रसको एक एक दिन भावना देना, फिर सफेद अपराजिता को जड दो मासे और मिरच दो मासे मिलाकर सरसो बराबर गोली बनाना। यह बालकके ज्वर और कास आदि रोगोंमें उपयुक्त अनुपानके साथ प्रयोग करना।

कुमारकल्याण रस—रससिन्दूर, मुक्ता, सोना, अभरख, लोहा लोहा और स्वर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक समभाग, घिकुआरके रसमें खलकर मूग बराबर गोली बनाना। बालकके उमरका विचार कर एक या आधी गोली दूध और चीनीमें मिलाकर सेवन करानेसे ज्वर, श्वास, वमन, सुखडी, ग्रहदोष, स्तन नही पीना, कामला, अतिसार और अग्निविकृति आराम होती है।

दन्तोद्भेदगदान्तक।—पीपल, पीपलामूल, चाभ, चीतामूल, सोंठ, अजमोदा, हलदी, मुलेठी, देवदारु, दारुहलदी, बायविडंग, बडी इलायची, नागेश्वर, मोथा, शठी, काकडाशिंगी, कालानमक, अभरख भस्म, शंखभस्म, लोहभस्म और स्वर्णमाक्षिक भस्म प्रत्येक समभाग पानीमें खलकर दो रत्ती बराबर गोली बनाना। यह पानीमें घिसकर दातमें लगानेसे तथा उपयुक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे दन्तोद्गमका ज्वर, अतिसार और आक्षेप आदि रोग आराम हो दात जलदी निकलता है।

लवङ्ग चतुःसम—जायफल, लौंग, जीरा और सोहागीका लावा प्रत्येक समभाग, एकत्र मिलाकर दो रत्ती मात्रा चीनी और सहतके साथ चटानेसे आमातिसार और तज्जनित शूल शान्त होता है।

दाडिम्बचतुःसम—जायफल, लौंग, जीरा और सोहागीका लावाप्रत्येक समभाग, एकत्र अनार फलके भीतर भर मिट्टीका लेपकर पुटपक्क करना। आधी रत्तीसे २ रत्तीतक मात्रा बकरीका दूध या पानीके साथ सेवन करानेसे बालकोंका उदरामय दूर होता है।

धातक्यादि चूर्ण—धवईफूल, बेलकोगिरी, धनिया, लोध, इन्द्रयव और बाला प्रत्येक का समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर दो रत्ती मात्रा सहतके साथ सेवन करानेसे बालकोंका ज्वरातिसार और वमन दूर होता है।

बालचतुर्भद्रिका चूर्ण—मोथा, पीपल, इलायची और काकड़ाशिंगी प्रत्येक का समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर पूर्ववत् मात्रा सहतके साथ सेवन करनेसे ज्वरातिसार, श्वास, कास और वमन दूर होता है।

बालकुटजावलेह—कुरैयाके जड़की छाल ८ तोले, पानी एक सेर, शेष एक पाव, यह काढा छानकर फिर औटाना, गाढा होनेपर अतीस, अम्बष्ठा, जीरा, बेलकोगिरी, आमके गुठलीका गूदा, सोवा, मोथा और जायफल प्रत्येक का चूर्ण चार चार आनेभर उसमें मिलाना। यह उपयुक्त मात्रा चटानेसे बालक का आमशूल और रक्तभेद दूर होता है।

बालचाङ्गेरी घृत।—घी ४ सेर, चोपतियाका रस ४ सेर, बकरीका दूध ४ सेर, तथा कयेथ, त्रिकटु, सैन्धव, वराहक्रान्ता, नीलोत्पल, बाला, बेलकोगिरी, धवईफूल और मोचरस सब मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटाकर उपयुक्त

मात्रा दूधमें मिलाकर पिलानेसे बालक का अतिसार और ग्रहणी रोग दूर होता है।

कण्टकारी घृत।—घी ४ सेर, कटेली, वृहती, वारगी और अडूसेकी छाल प्रत्येक का रस या काढ़ा चार चार सेर, बकरीका दूध ४ सेर, तथा गजपीपल, पीपल, मिरच, मुलेठी, वच, पीपल, जटामांसी, चाभ, चीतामूल, लालचन्दन, मोथा, गुरिच, सफेद चन्दन, अजवाईन, जीरा, बरियारा, शोंठ, मुनक्का, अनारकी छाल और देवदारू सब मिलाकर एक सेरका कल्क, यथाविधि औटाकर उपयुक्त मात्रा दूधके साथ सेवन करानेसे बच्चोंका श्वास, कास, ज्वर, अरूचि, शूल और कफकी शान्ति तथा अग्निकी वृद्धि होती है।

अश्वगन्धा घृत—घी ४ सेर, दूध ४० सेर असगन्धका कल्क एक सेर यथाविधि औटाकर उपयुक्त मात्रा सेवन करानेसे बालक पुष्ट और मोटा होता है।

कुमारकल्याण घृत।—घी ४ सेर, कटेली ८ सेर, पानी ६४ सेर शेष १६ सेर, दूध १६ सेर, शंखपुष्पी, चाभ, ब्राह्मी, कूठ, त्रिफला, मुनक्का, चीनी, शोंठ, जीवन्ती, जीवक, बरियारा, शठी, जवासा, वेलकी गिरि, अनारका छिलका, तुलसी, सरिवन, पुष्करमूल, मोथा अभावमें कूठ, छोटी इलायची, गजपीपल, प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, यथाविधि औटाकर पूर्ववत् मात्रा सेवन करानेसे बालक का देह पुष्ट, अग्निवृद्धि और बल बढ़ती है।

अष्टमङ्गल घृत—घी ४ सेर, तथा वच, कूठ, ब्राह्मीशाक, सफेद सरसों, अनन्तमूल, सैन्धव और पीपल सब मिलाकर एक सेरका कल्क, पानी १६ सेर, यथाविधि औटाकर पूर्व्वोक्त मात्रा सेवन करानेसे ग्रहावेशजनित पीड़ा दूर होती है।

वैद्यक-शिक्षा।

चतुर्थ खण्ड।

विष-चिकित्सा।

विषके प्रकार और भेद—साधारणतः स्थावर और जङ्गम भेदसे विष दो प्रकार का है। उद्भिज विष का मूल, कन्द, पत्र, फूल, फल, छाल, दूध, रस और सार आदि पदार्थको तथा दारमुज और संखिया आदि धातुविष को स्थावर विष और प्राणीविषको जङ्गम विष कहते हैं।

स्थावर विषके भिन्न भिन्न लक्षण।—स्थावर विषमें विषका मूल, अयथा रीतिसे शरीरमें जानेसे शरीरमें लाठीसे मारने की भांति दर्द प्रलाप और मोह उत्पन्न होता है। विषके पत्रसे शरीरमें कम्प और श्वास होता है। फलसे अण्डकोष में शोथ, सर्व्वाङ्गमें जलन और आहार में अरुचि होती है। छाल, रस और सार विष खानेसे मुखमें दुर्गन्ध, शरीरका रूखापन, शिरमें दर्द और कफस्राव होता है। दूधसे मुहसे फेन निकलना, शरीरमें भारी-पन और दस्त होता है। धातुविषसे छातीमें दर्द, मूर्च्छा और तालुसे जलन होता है। ये सब प्रायः जल्दी प्राणनाशक नहीं हैं पर क्रमशः अस्वस्थता पैदाकर कालान्तरमें प्राण लेता है।

जंगम विषके लक्षण ।—जगम विषमें फनवाले सांप का काटा हुआ स्थान कृष्णवर्ण और वह मनुष्य वातजनित विविध पीड़ासे पीड़ित होता है। मडलो सर्प अर्थात् गोहुअन सापका काटा हुआ स्थान पीतवर्ण और कोमल शोथयुक्त तथा पित्तजनित विविध उपद्रव उपस्थित होता है। राजिल अर्थात् रगोन और लम्बी रेखावाला सर्प काटनेसे काटे हुए स्थानमें कठिन, चटाचटा और पाडुवर्ण शोथ पैदा होता है, तथा क्षत स्थानसे स्निग्ध और गाढा रक्तस्राव और नानाप्रकारके कफजनित उपद्रव उपस्थित होते है।

अजीर्ण रोगी, पित्तविकारी, आतपार्त्त, बालक, वृद्ध, क्षुधार्त्त, क्षीण, क्षतरोगी, प्रमेह और कुष्ठरोगी, गर्भिणी, रूक्ष और दुर्वल व्यक्तिको सर्प काटनेसे थोडेही देरमें विपन्न हो जाता है।

सर्पदंशनकी सांघातिक अवस्था ।—पीपल वृक्षके नीचे, श्मशानभूमि में, देवके के टीलेपर, या चौराहेपर साप काटेतो उस रोगीका जीना कठिन है। इसीतरह सवेरे, शामको और भरणी, आर्द्रा, मघा, अश्लेषा, कृत्तिकानक्षत्र में सर्प काटनेसे भी रोगीकी मृत्यु निश्चय जानना। मर्म्मस्थानमें काटनेसे अथवा जिस रोगीके शरीर में अस्त्रसे काटनेपर भी खून नही निकलता अथवा लता आदिसे जोरसे मारनेपर भी दाग नही पडता, किम्बा ठढे पानीका छीटा देनेसे रोमाच नही होता, जिसका मुह टेढा हो गयाहै, केश धरके खीचनेसे केश उठ आता है, गरदन झुक गयी है, हनु अर्थात् चहुआ बैठ गया है, काटे हुए स्थानमें लाल या काले रगका शोथ हो, मुहसे लारकी धार निकलने लगे, अथवा मलद्वार या मुह दोनो रास्तेसे लार या खून निकले,

ऐसे रोगीका चिकित्सा विफल होती है। काटे हुए स्थानमें चार दांत गडे हुए चिन्ह दिखाइ देती वहभी असाध्य जानना।

भिन्न विषप्रकोपकी लक्षण।—बिच्छू काटनेसे अत्यन्त जलन और सूई गडानेकी तरह दर्द होती है। तथा विष अति शीघ्र ऊर्ध्व शरीर में चढकर अन्तमें काटे हुए स्थानमें आकर रहता है। हृदय, नासिका, चक्षु और जिह्वा आदि स्थानोंमें काटनेसे काटे हुए स्थानमें घाव हो क्रमश मांस गलकर गिरता है तथा रोगी दर्दकी तकलोफसे व्याकुल हो मृतुय मुखमें जा गिरता है। मेढक सिर्फ एक दांतसे काटता है, उसकी काटनेसे रोगीको प्यास, निद्रा, वमन, वेदनायुक्त शोथ और फुसरी पैदा होती है। मूषिकके शुक्रमें विष रहता है इससे उसका शुक्र शरीर में लगनेसे विषकी क्रिया प्रकाश होती है। सिवाय इसके अन्य जातिके मुषिकके भी काटनेसे विष फैलता है। मुषिक काटे हुए स्थानसे रक्तस्राव होता है, शरीर में गोल शोथ पैदा होता है तथा ज्वर, चित्तचाञ्चल्य, लोमहर्ष और सर्व्वाङ्ग में जलन होती है। किसी किसी मुषिकके काटनेसे मूर्च्छा, शरीरमें मुषिक की तरह काला शोथ, बधिरता, ज्वर, मस्तक भारी होना, शरीरकी विवर्णता, मुखसे लार और रक्तस्राव होते देखा गया है। ऐसे मुषिक की काटनेसे रोगीका जीना कठिन है। लुता अर्थात् मकडेकी काटे हुए स्थानसे रक्तस्राव और क्लेदयुक्त होता है। तथा त्रिदोषजनित ज्वर, अतिसार, दाह, फुडिया, शरीरमें नील और पीतवर्ण गोल चकता, कोमल स्पर्श और अतिशोल शोथ पैदा होता है। अन्यान्य जीवोंके काटनेसे जलन शोथ और दर्द आदि विषके लक्षण प्रकाशित होता है।

उन्मत्त शृगालादिके काटने का विष।—पागल सियार या कुत्ता आदि जीवके काटनेसे घावसे काले रङ्गका रक्त स्राव और स्पर्शशक्तिको अल्पता होती है। ये विष शरीरमें अधिक दिनतक रहनेसे क्रमशः ज्वर होता है तथा अन्तमें रोगी पागलको तरह होकर काटे हुए जीवको तरह स्वर तथा उसके कार्य्यादिका अनुकरण कर मृत्युको प्राप्त होता है। तथा रोगी पानी या दर्पण में काटे हुए जीवको देखनेसे किम्वा पानी देखनेसे अथवा पानीका नाम सुननेसे भयप्राप्त होता, उसको मृत्यु निश्चय जानना। पागल सियार आदिका विष बहुत दिनतक शरीर में गुप्त रहकर एकाएकी प्रकुपित हो साघातिक हो जाता है, काटनेके एक या दो वर्ष बादभी बहुतोंको उन्माद और जल त्रासादि लक्षण उपस्थित हो मृत्यु होते देखा गया है।

हीनवीर्य्य विष।—हीनवीर्य्य विष शरीरमें जानेसे, एकाएकी प्राणनाश नहीं होता, किन्तु कफके साथ मिलकर शरीर में रहता है तथा क्रमश मलकी तरलता, शरीर विवर्णता, मुखको दार्गन्ध, विरसता, पिपासा, भ्रम, वमन और स्वरको विकृति ये सब लक्षण प्रकाश होते है। यह विष आमाशय में रहनेसे कफ और वातजनित नानाप्रकार के रोग पैदा होता है। पक्काशयमें रहनेसे वायु और पित्तजनित रोग उत्पन्न होता है तथा केश और शरीरके लोम झड़ जाते है। रस धातुगत होनेसे आहार में अरुचि, अग्निमान्द्य, शरीरमें वेदना दुर्व्वलता, ज्वर, वमनवेग, शारीरिक भारबोध, रोमकूप रोग, मुखको विरसता तथा अकालमें, चर्म्मको शिथिलता और केश सफेद होता है। रक्तगत होनेसे कुष्ठ, विसर्प, फुड़िया, प्लीहा, रक्तपित्त, न्यच्छ, व्यङ्ग आदि रोग पैदा होता है। मांसगत विषसे अधिमांस, मांसार्व्वुद, अर्श, अधि-

जिह्व और उपजिह्व आदि पीड़ा होती है। मेदोगत विषसे ग्रन्थि, कोषवृद्धि, मधुमेह, खोल्य और अतिशय पसीना होता है। अस्थिगत होनेसे अध्यस्थि, अधिदन्त, हड्डीमें दर्द और कुनख आदि रोग पैदा होते है। मज्जागत विषमे अन्धकार दर्शन, मूर्च्छा, भ्रम, सन्धिस्थान में भारबोध और नेत्राभिष्यन्द पैदा होता है। शुक्रगत में क्लीवता, शुक्राश्मरी और शुक्रमेह आदि रोग प्रकाश होता है। सिवाय इसके किसी किसीको ऐसे विषसे उन्माद भी होता है।

शरीरस्थित दूषित विष ठण्ढी हवा चलनेसे और बदरीले दिनोंमें प्राय कुपित होता है, उसवक्त पहिले निद्राधिक्य, शारीरिक गुरुता, शिथिलता, जृम्हा रोमाञ्च और अङ्गमर्द्द आदि पूर्व्वरूप प्रकाश हो फिर सुपारी खानेकी तरह मत्तता, अपरिपाक, अरुचि, बदनमें गोल फुडियोंका निकलना, मासक्षय, हाथ, पैरमें शोथ, मूर्च्छा, वमन, अतिसार, श्वास, पिपासा, ज्वर और उदर वृद्धि आदि रोग प्रकाश होता हैं।

अहिफेन विष—अधिक अफीम खानेसे सर्व्वाङ्गमें अत्यन्त जलन, ब्रह्मरन्ध्र फटजानेकी तरह दर्द सर्व्वाङ्गका टूटना उदराध्मान, मोह और भ्रम आदि लक्षण प्रकाशित हो रोगीकी मृत्यु होती है।

सर्पदंशन चिकित्सा।—हाथ या पैरमें साप काटेतो तुरन्त काटे हुए स्थानके चार अङ्गुल उपर मजबूत रस्सीसे कसकर बाधना। इससे रक्त सञ्चालन बन्द हो विष सब शरीरमें नहीं फैलता। फिर काटे हुए स्थानको चीरकर खून निकालना। मुखके किसी स्थानमें कोई प्रकारका घाव न होतो, चुसकर खून निकालना। यह न हो सकेतो शृङ्ग लगाना या एक छोटी कटोरी या गिलास में स्पिरिट जलाकर वह गिलास घावके मुहपर रखकर

दबाना, इससे खून निकल जायगा, फिर आगमें लोहा गरम कर घावको जलाना, हात पैरके सिवाय और स्थानोंमें बाधनेका सूबीता नही है, ऐसे स्थानमें सर्प काटतेही उस स्थानसे खून निकाल कर जलाना चाहिये इससे भी उपकार होनेकी आशा है। विष सब देहमें फैल जाय तो वमन कराना चाहिये, कालिया कडाकी जडका नास लेनेसे विशेष उपकार होता है। ईशलागला की जड पानीमें पीसकर नास देना। नाक, आंख, जीभ और वाठरोध होनेसे वार्ताकू, अब्बंतो नीबू और लताफटकी आदि पीस कर नास देना। दृष्टिरोध होनेसे दारुहलदी, गोलमिरच, पीपल, शोंठ, हलदी, कनेल, करज और तुलसी बकरीके दूधमें पीसकर आखमें अञ्जन करना। जयपाल बीजकी गूदीको नीबूके रसकी २१ बार भावना दे बत्ती बनाना, यह बत्ती मनुष्यके लारमें घिसकर अञ्जन करनेसे सापका काटा मनुष्य बेहोश हो जानेपर भी होशमें आता है। सैजनकी बीज को शिरीष फूलके रसको सात दिन भावना दे नस्य अञ्जन और पानमें प्रयोग करनेसे सर्पविष शान्त होता है। तेवडाकी जड, दन्तीमूल, मुलेठी, हलदी दारुहलदी, मजीठ, असिलतासका गूदा, पाचोनमक और त्रिकटु यह सब द्रव्यका समभाग चूर्ण सहत न मिलाकर १५ दिनतक गौकी सिगमें रखना, फिर बाहर निकाल चार आनेभर अथवा अधिक मात्रा दूध, घी और महुएके साथ सेवन कराना। इसका लेप और नासभी विशेष उपकारी है।

फनवाला साप काटेंतो निर्गुण्डी को जड, अपराजिता और हरफारौडी का काढा पिलाना। मडली सर्प काटे तो सहत मुलेठी, जीवक ऋषभक, चीनो गाम्भारी और बडके टूसेका काढा पिलाना। राजिल सर्प काटे तो मिरच, पीपल, शोंठ

अतीस, कूठ, भील, रेणुक, कुभी और कुटकीके काढ़ेमें सहत मिलाकर पिलाना। गृहधूम, हलदी, दारुहलदी और कटसरैया की जड़के काढ़ेमें घी मिलाकर पीनेसे सबप्रकारका सर्पविष दूर होता है। हुडहुडकी जड, ८।१० गोलमिरच के साथ पानीमें पीसकर पीनेसे सर्पविष दूर होता है, यह दवा पीनेके थोडी देर बाद थोडी फिटकिरी मिलाया पानी पिलाना चाहिये, यदि वमन हो जायती विषका काम नहो हुआ समझना तब फिर वही औषध पिलाना चाहिये। छाग्रीसृड की जड और भुईचम्पेकी जड सेवन करनेसे भी सर्पविष दूर होता है।

वृश्चिक दंशन मे।—बिच्छू काटनेसे काटे हुए स्थानमें बार बार तार्पिनका तेल मालिश करना। किम्वा पत्थरका कोयला घिसकर लेप करना। गायका घी और सैन्धव लवण एकत्र गरम कर लेप करनेसे किम्वा गोमय गरम कर लेप करनेसे भी वृश्चिक विष दूर होता है। काली अरुई का लवाब मालिश करनेसे वृश्चिक विष दूर होता है। गुडका पसीजा हुआ रस लगानेसे भी वृश्चिक काटनेकी जलन दूर होती है। मेंडकाके विषमें पहिले खून निकालकर शिरीष बीज सेहुडके दूधमें पीसकर लेप करना। मूषिकके विषमें भी पहिले खून निकालकर फिर गृहधूम, मजीठ, हलदी और सेंधानमक एकत्र पीस गरमकर लेप करना। अथवा अकवन की जड पीसकर लेप करना, या दालचीनी और सोंठ का समभाग चूर्ण गरम पानीके साथ सेवन करना। मकडके विषम लालचन्दन, पद्मकाष्ठ, खसकी जड, पाटला, निगुण्डी, स्वर्णचोरी, कुभी, शिरीष, बाला और अनन्तमूल, प्रत्येक समभाग, कूठ २ भाग एकत्र लिसोडा वृक्षके रसमें पीसकर लेप करना। अपराजिता, अर्जुनछाल, कूठ, लिसोडा, अश्वत्थ, बड, पाकुर गुल्लर

और वेतसकी छाल, इन सबका काढ़ा पीनेसे मकडा और कोट विष दूर होता है। कच्चे केलेका दूध रोज ३।४ बार लगानेसे मकडेका विष दूर होता है। कच्ची हलदी दूधमें पीसकर मर्दन करनेसे भी गरल दूर होता है। बच, हींग, वायविडंग, सेंधानमक, गजपीपल, पाठा, अतीस, सोंठ, पीपल और मिरच प्रत्येक का समभाग चूर्ण एकत्र मिलाकर चार आनेभर मात्रा सेवन करनेसे यावतीय कीटविष दूर होता है।

पागल कुत्ता और शियार काटेकी दवा।—पागल कुत्ता या शियारका काटा हुआ स्थान चीरकर खून निकालना फिर वह स्थान आग, चार या गरम घीसे जलाना। तथा रोगीको पुराना घी पिलाना अथवा धतुरेकी जड किम्वा कुचिला एक या दो रत्ती वजन खिलाना। श्वेतपुनर्नवा और धतुरेकी जड समभाग एकत्र सेवन कराना उपकारी है। नियमित रूपसे भाग नित्य पीनेसे भी लाभ होता है। पारा, गन्धक, कान्तलौह प्रत्येक एक एक तोला, अवरख दो तोले यथाक्रम इन्द्रायण, हुहुती ब्राह्मी, नीलाकमल, सतावर और कवाचके रसको एक एक बार भावना दे एक रत्ती बराबर गोली बनाकर ठण्डे पानीमें इसे सेवन कराना। कडेकी राख आकवनके दूधमें भिगोकर धूपमें सुखा नास लेनेसे विशेष उपकार होता है। कुत्ता काटे हुए स्थानमें सेंहुडके दूधमें शिरोषकी बीज घिसकर लेप करना। या चावल पीसकर उसके भीतर सेंधलोम भरकर सेवन कराना।

विषाक्तद्रव्य भक्षण चिकित्सा।—विष, विषाक्त द्रव्य या अफीम खानेपर तुरन्त कै कराना चाहिये। तुतिया भिंगोया पानी श्रेष्ठ वमनकारक है। विष कण्ठगत हो तो कच्चा कयेथ, चीनी और सहतके साथ चटाना। आमाशयगत हो तो

कुम्भोका चूर्ण चोनी और सहत मिलाकर चटाना। पक्वाशयगत विषमें पोपल, हल्दो, दारुहल्दो और मजोठ, गोलोचनके साथ पीसकर पिलाना। रक्तगत विषमें लिसोडेको जड, छाल और फुनसो बैरको जड, छाल और फुनसो, किम्वा गुल्लर को जड, छाल और फुनगी अथवा अपराजिताको जड, छाल फुनगो का काढा पिलाना। मांसगत विषमें खदिरारिष्ट सहतके साथ और कुरैया को जड पानोके साथ सेवन कराना। विष सर्व्वदेहगत होनेसे और कफका वेग अधिक हो तो वरियारा, गुलशकरी, सुनेठो, महुयेका फल, कुम्भी, पोपल, सोंठ और जवाखार यह सब द्रव्य मखनमें मिलाकर बदनमें मालिश करना।

दूषित विषार्त्त रोगोको पहिले स्नेहपान करा वमन, विरेचन और शोधन कराना चाहिये। पोपल, खसको जड, जटामासो, लोध, छोटो इलायचो, सौवर्च्चल नमक, मिरच, वाला, वडो इलाईचो और स्वर्णगैरिक, इन सबके काढेमें सहत मिलाकर पिलानेसे दूषित विष शान्त होता है।

शास्त्रोय औषध।—मेनसिल, हरताल, मिरच, दारुसुज, हिंगुल, अपामार्गको जड, धतुरेको जड, कनैलको जड और सिरोषको जड प्रत्येकका समभाग चूर्ण को रुद्राक्ष और अपराजिताके रसमें १०० बार भावना दे मूग बराबर गोलो बनाना। यह गोलो सेवन करनेसे सापके काटेसे या विषपानजनित बेहोशो दूर होतो है। इस औषधिका नाम भोमरुद्र रस है। तालमखाने को जड छतिवनके जडको छाल और कूठ प्रत्येक एक एक तोला, दारसुज दो आनेभर, यह सब द्रव्य अकवनको जडके काढ़ेमे पोसकर सरसो बराबर गोलो बनाना। कुलिशादि नामक इस गोलोको सेवन करनेसे विषसे अधमरा हुआ मनुष्यको

पुनर्जीवन पाता है। इस औषध से दुरारोग्य विषम ज्वरमें भी विशेष उपकार होता है। घी १ सेर, अपामार्गका या चिरचिरी रस ४ सेर तथा अनारका छिलका, कूठ, छोटी इलायची, तथा बडी इलायची, काकडाशिंगी, शिरीषमूलकी छाल, मिठाविष, वच, कौड़ारिया, कडूनिया, पालिधा छाल, लालचन्दन, कुम्भी और सुरामासी सब मिलाकर एक पावका कल्क, पानी न दे खाली कल्क मिला घी औटाकर उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे यावतीय विषदोष दूर होता है। यह भी विषम ज्वर नाशक है। इसको शिखरी घृत कहते हैं। घी ४ सेर, तथा हरीतकी गोलोचन, कूठ, अकवन का पत्ता, कमलकी जड, बेलसमूल, मिठाविष, तुलसी का पत्ता इन्द्रयव, मजीठ, अनन्तमूल, शतमूली, सिंहाडा, बराहक्रान्ता और पद्मकेशर सब मिलाकर एक सेरका कल्क यथाविधि औटा, तथा छानकर ४ सेर सहत मिलाना। मृत्यु पाशच्छेदी नामक यह घृतभी सब प्रकारका विषदोष निवारक है।

शिरीषछाल ६। सेर, पानी १२८ सेर शेष ३२ सेर, इस काढेमें २५ सेर गुड मिलाकर उसमें पीपल, प्रियंगु, कूठ, इलायची नील की जड, नागेश्वर, हलदी दारुहलदी और सोंठ प्रत्येक का आठ आठ तोले चूर्ण मिलाना। एक महीना मुह बन्दकर रखने बाद उपयुक्त मात्रा सेवन करनेसे विषदोष दूर होता है। इसको शिरीषारिष्ट कहते हैं।

विषकी चिकित्सामें जब रोगी के वातादि दोष और रस, रक्तादि धातु प्रकृतिस्थ हो, अन्नमें रुचि हो, स्वाभाविक रातीसे मलमूत्र निकले, वर्ण, इन्द्रिय, चित्त और चेष्टा आदिमें प्रसन्नता दिखाई दे तब रोगी निर्विष हुआ है जानना।

पथ्यापथ्य—विष नष्ट हो जानेपर रोगीको थोडे दिन पथ्यसे रखना अत्यन्त आवश्यक है। विषकी चिकित्साके समय अति लघु

पथ्य खानेको देना। कभी सोने न पावे, निद्रा दूर करनेके लिये चाह काफी आदि पिलाना अच्छा है। पर विष दूर हो जानेपर पुराने चाउलका भात, घीकी तरकारी आदि और दूध खानेको देना। सहनेपर बहती नदीमें स्नान करना अच्छा है। तेल, मछली, कुरथी, खट्टा और विरुद्ध द्रव्य भोजन तथा क्रोध, भय, परिश्रम और मैथुन अनिष्टकारक है।

दुर्गम अन्धकारादि स्थानमें कोई वस्तु गड जानेसे किसी जन्तुके काटनेकी आशंका होती है तथा इस आशंकामें ज्वर, सर्दी, मूर्च्छा, दाह, ग्लानि, मोह और अतिसार आदि उपस्थित होते हैं।

इस शंका विषमें रोगीको सान्त्वनाजनक और आनन्दजनक वाक्यादिसे सन्तुष्ट रखना। पूर्व्वोक्त सुपथ्य भोजन कराना और किसमिस, खीरकाकोली और मलेठी का चूर्ण चीनी और मधुके साथ सेवन कराना। जीवन्ती, वार्त्ताकु, सुषनी, सुहाकानी, पथरी और परवर इन सबकी शाक खानेसे शंकाविषमें विशेष उपकार होता है।

—*—

जलमज्जन और उद्बन्धनसे हुए मुमूर्षुकी चिकित्सा।

—०—

जलमज्जनमें कर्त्तव्य।—पानीमें डूबे हुए व्यक्तिको पानीसे तुरत उठाना तथा उसका शरीर गरम और अंग शिथिल हो तो चिकित्सा करना, नहीतो चिकित्सा वृथा होती है। पहिले रोगीको उलटा टांगकर मुखसे पानी और लार निकालना। फिर श्वास ठीक करनेके लिये रोगीको एकबगल सोलाकर तेज

सघनी सुंघाना, किम्बा नौसादर और चूना एकत्र मिलाकर नाकके पास रखना इससे यदि श्वास प्रवर्त्तित न हो तो अंगुली, पंचोका पख या और कोई वस्तुसे नाकमें सुरसुरी देना, इससे छींक या कै हो श्वास ठिकाने आवेगी। ये सब क्रिया विफल होनेसे रोगी को औंधा सुलाकर छातीके नीचे एक तकिया रख ऊंचा करना तथा फिर एक बगला सुलाना और दोनो पाजर हाथसे दबाकर धरना। इसी तरह एक पल समयमें ७८ बार करना। अथवा रोगीको चित्त सुलाकर पीठके नीचे तकिया रख थोड़ा ऊंचा करना तथा दूसरा आदमी रोगीको जीभ धरकर खींचे और आप रोगीके सिरहाने बैठकर उसके दोनो हाथ बार बार उठाकर छातीपर रख। रोगीको जीभ न खींचकर उसके मुखमें फूंक दिलाना तथा आप वैसही दोनो हाथ बार बार उठाने और छातीपर रखनेसे भी चलेगा। शीघ्र शीघ्र बार बार यह प्रक्रिया करनेसे यदि श्वास चले तो रोगीका हाथ और पैर नीचेसे ऊपरको रखना तथा गरम बालकी पोटलीसे हाथ पैर सेंकना।

उक्त क्रियासे रोगी होशमें आनेपर बहुत कम मात्रा सञ्जीवनी सुरा या ब्राण्डि शराब पानीमें मिलाकर पिलाना तथा जिसमें सुखकी निद्रा हो ऐसा उपाय करना चाहिये। चिकित्साके वख्त रोगीके पास आदमी की भीड़ कदापि न रहे। रोगीके शरीरमें अच्छी तरह हवा लगे ऐसा उपाय करना आवश्यक है। कुछ ताकत और आराम होनेपर थोड़ा गरम दूध पिलाना। फिर ८।१० दिनतक परहेज और सुपथ्यसे रखना।

उद्बन्धनमें कर्त्तव्य।—उद्बन्धनमें हुआ मुमूर्षु व्यक्तिके गलेकी रस्सी जलदी काटकर पूर्व्वोक्त क्रियाओसे श्वास प्रवर्त्तित करना, तथा गलेमें गरम घी आहिस्ते आहिस्ते मालिश करना।

मुख और छातोमें बराबर ताडके पखेसे हवा करना। होशमें आने पर पूर्व्ववत् सुरापान और आहारादि व्यवस्थाकर थोडे दिनतक पथासे रखना।

सर्द्दीगरमीकी चिकित्सा।

कारण और लक्षण।—बहुत देरतक धूपमें या आगके पास बैठना, किम्वा बहुत भीड में रहना अथवा अधिक चलना या मेहनतसे थक जानेके बादही स्नान, जलपान किम्वा और कोई ठंठी क्रिया करनेसे पहिले बहुत प्यास और बार बार पिसाब की इच्छा होती है। फिर क्रमश. शरीर उष्ण आंखें लाल और आंखकी पुतली छोटी हो बडे जोरसे बार बार छाती धडकती है। नाडीका वेग पहिले तेज हो पाछे विषम और दुर्व्वल होता है श्वास जोरसे बार बार चलती है। तथा अन्तमें रोगी वेहोश होजाता है। इसको चलित भाषामें सर्द्दीगरमी कहते है, यह आशु प्राणनाशक है। इससे यह पोडा होतेही चिकित्सा करना चाहिये।

चिकित्सा।—रोगी वेहोश होतेही हवादार घरमें चित्त सुलाना। रोगीके पा बहुत आदमी की भीड होना अच्छा नही। शिर और छाती में ठंढे पानीका छींटा देना। श्वास रोध होनेसे पुर्व्वोक्त उपायसे श्वास प्रवर्त्तित करना। जयपाल घटित औषध या कोई दूसरो तेज विरेचक दवासे विरेचन कराना अच्छा है पर वमनकारक औषध देनेसे अनिष्ट होगा। जलदी होशमे न आनेसे सरसोका तेल, शोठ और लाल मिरचा पानीमें पीसकर उसको पट्टी गरदन पर लगाना। ये सब क्रियाओंसे रोगी होशमें

आनेपर और श्वास प्रवर्त्तित होनेपर ठंढा शर्व्वत और दूध पिलाना उचित है। रोगी दुर्व्वल होतो पानी मिलाकर थोड़ी शराव पिलाकर सुलाना। अच्छीतरह आराम होनेपर हलका आहार खानेको देना। तथा ४।५ दिनतक विशेष सावधानीमें रखना चाहिये।

वृक्ष आदि ऊंचे स्थानसे गिरजानेपर अथवा पासही कहीं बज्रपातसे उसकी तेजी या डरसे अभिभूत हो वेहोश होनेपर भी सर्दीगरमी की तरह चिकित्सा करना।

आतप व्यापद् (धूप के लू) की चिकित्सा।

लक्षण।—बहुत देरतक सूर्य्यकी प्रखर किरण-शरीर में लगनेसे, तृष्णा, बदनका रुखापन, भ्रम, आंखे लाल होना, मूर्च्छा, नाड़ीकी गतिकी विषमता, निश्वास प्रश्वास में कष्टबोध, हाथ पैरका खिंच जाना, वमन और मूत्रवेग आदि लक्षण तथा किसी किसीको बुखार भी होते देखा गया है। चलित भाषामें इसको "लू" लगना कहते है। इस रोगमें यदि रोगी हात पैर पटके, तथा हाथ पर नीला हो जाय और नाड़ीकी गति रुक रहकर लोप हो जाया करे तो उसको जान बचना कठिन है।

कर्त्तव्य।—यह रोग उपस्थित होतेही बदनका कपड़ा तुरत निकाल कर छायायुक्त, जनताशून्य और हवेदार घरमें रोगी को सुलाकर ताड़के पंखेको पानीमें भिगो लेना, इससे हवेके साथ छोटे छोटे पानीके बूंद शरीरमें पड़नेसे अधिक उपकार होता है। चन्दन मिलाया ... थोड़ा पिलाना, एक

मात्रासे अधिक पानी पिलानेसे भी अनिष्ट होता है। एकखण्ड वस्त्र ठण्ढे पानीमें भिगो निचोडकर रोगी को ओढाना। आराम होनेपर सहस्र धार या भरनेके नीचे स्नान कराना। मूर्च्छा होतो एकखण्ड कम्बल या फलालेन गरम पानीमें भिगो निचोडकर उसके उपर तार्पिनके तेलका अच्छी तरह छींटा देना फिर गर्दनमें लपेट कर उसके उपर केलेका पत्ता या सूखा कपडा बांध देना। थोडी देर बाद रोगी होशमें आकर तकलीफ में व्याकुल होगा तब गर्दनकी पट्टा खोल डालना चाहिये। देह शीतल और नाडी व्यतिक्रम होनेसे स्वेद प्रदान और मृतसञ्जीवनी सुरा पिलाना चाहिये।

शास्त्रीय औषध।—चीनी १६ तोले, घिसा श्वेत चन्दन १ तोले, बडे नीबूका रस ८ तोले और सौफका तेल आधा तोला और शतमूलीका रस ८ तोला यह सब द्रव्य दो सेर पानीमें मिलाकर थोडा थोडाकर पिलानेसे तकलीफ दूर होती है। त्रिफलाका पानी, मूर्च्छा रोगोक्त तैलसमूह इस रोगमें व्यवहार करना उचित है।

शरीर अच्छीतरह आराम न होनेतक सावधानीसे रहना चाहिये। बल और पुष्टिकारक स्निग्ध और सारक अन्न पान भोजन करना उचित है।

तत्त्वोन्माद चिकित्सा।

लक्षण।—धर्म्म विषयों में रातदिन निविष्ट मनसे चिन्ता करनेसे वायु प्रकुपित हो एक प्रकार का रोग पैदा होता है उसे

तत्त्वोन्माद कहते है। इस रोगमें मूर्च्छा, मुर्देकी तरह अचल आखें, चक्षु उन्मीलित, स्पर्शज्ञानकी हानि आदि लक्षण उपस्थित हो रोगी मृतवत् गिर पडता है। किसीको वक्तृताशक्ति का प्रकाश, दाम्भिकता, उग्रता, आक्षेप, (हाथ पैर पटकना), हसी, नाच, मत्तता और रोना आदि लक्षण प्रकाशित होता है। नाच गाना आदि चित्तोन्मादकारी घटनाओंसे यह रोग अधिक बढ़ता है।

कर्त्तव्य।—इस रोगमें बेहोश होनेपर मूर्च्छा, अपस्मार रोगोक्त उपायों से होशमें लाना। शतधौत घृत मर्द्दन और मूर्च्छा, वातव्याधि और उन्माद रोगोक्त औषध विचार कर प्रयोग करनेसे रोग शान्त हो जाता है। सफेद चन्दन, अनन्तमूल, श्यामालता तालमूली, मुलेठी, कालानमक, बडी हर, आवला, बहेडा, हलदी दारुहलदी, नीलेकमल की जड़, नागेश्वर, जटामासी, तालमखाना बाला, खसकी जड, गेरूमिट्टी, बरियारा और कुभी प्रत्येक सम-भाग का चूर्ण एकत्र कर आधा तोला मात्रा धारोष्ण दूधकी साथ सेवन करनेसे तत्त्वोन्माद रोग शान्त होता है। सोना, मोती, पारा, गन्धक, शिलाजीत, लोहा, वंशलोचन और कपूर प्रत्येक समभाग, एकत्र त्रिफलेके काढेकी भावना दे, एक रत्ती बराबर गोली बना छायामें सुखाना। इसे पानीमे घिसकर नास लेनेसे बेहोशी दूर होती है। रोज सतावर के रसमें एक गोली सेवन करनेसे क्रमश रोग शान्त हो जाता है।

पथ्यापथ्य।—पुराने चावलका भात, मूग और चनेकी दाल, जौ और गेहूकी रोटी, तिल, धारोष्ण गायका दूध, घी, मखन, मिश्रीका शर्ब्बत, पक्का पपीता, ईख आदि द्रव्य भोजन तथा बहते नदीमें स्नान, तैलमर्द्दन, विलासित, सदहस्त प्रियजन और विश्वस्ता प्रियतमा युवती कामिनी के साथ सर्व्वदा बातचीत

आदि चित्तविनोदक क्रिया इस रोग में उपकारी है। इसके विपरीत आहार विहार अनुपकारक है।

ताण्डव वातव्याधि चिकित्सा।

निदान।—अतिरिक्त भय, क्रोध या हर्ष, आशाभङ्ग, शारीरिक क्षयता कारक क्रिया समूह, निद्रा, विघात, बलक्षय, चोट लगना क्रिमिदोष, मलबद्धता और स्त्रीयोंकि ऋतु विपर्य्यय आदि कारणोंसे वायु कुपित हो ताण्डव रोग उत्पन्न होता है। इससे पहिले अकसर बाय हाथ फिर दहिने हाथ तिसके बाद दोन पैर और फिर क्रमश: सब शरीर कांपता है। यह रोगाक्रान्त व्यक्ति मुट्ठिमे कोई बस्तु अच्छीतरह धर नहो सकता, तथा हाथसे कोई बस्तु उठाकर खा नहो सकता, सर्व्वदा बेचैन रहता है, बार बार अति विक्षत मुखभङ्गी करता है और चनतो वख्त पैर नचाता है। निद्रावस्था में इस रोगका कोई भी लक्षण अनुभव नहो होता है।

कर्त्तव्य।—साधारणत इस रोगमें मल परिष्कारक तथा अग्नि और बल वर्द्धक औषध प्रयोग करना चाहिये। क्रिमिदोष से यह रोग पैदा होनेसे भारी क्रिमिनाशक औषध प्रयोग करना चाहिये। रजोरोध से पीडा होनेपर पहिले रज प्रवर्त्तक औषध देकर फिर रजोदोष निराकृत करना। श्यामालता, अनन्तमूल, मुलेठो, तेवडोमूल, श्वेतचन्दन, छोटो इलायचो और आवला इन सबका काढा पीनेसे ताण्डव रोगमें विशेष उपकार होता है। इसके सिवाय वातव्याधि का वृहत् छागलाद्य घृ आदि औषध

और कुब्जप्रसारणी और महामाष तैल आदि व्यवहार करना चाहिये।

स्निग्ध, पुष्टिकर और बलवर्द्धक आहार इस रोगमें देना उपकारी है। वातव्याधि कथित पथ्य इस रोगमें देना चाहिये। परिश्रम त्याग, बहुत देरतक सोना और बहती नदीमें स्नान इस रोगमें हितकारी है।

—०—

स्नायुशूल चिकित्सा।

—०—

भिन्न भिन्न लक्षण।—छोटी छोटी शिरा समूहों को स्नायु कहते है, उसी स्नायु समूहमें शूलवत् तीव्र वेदना होनेसे उसे स्नायुशूल कहते है। यह रोग वायुजनित एकप्रकार शूल है, इसमें सिवाय दर्दके और कोई लक्षण नही दिखाई देता। मस्तक, बाहु, पैर आदि स्थानोंमें त्वककी (चमडा) नीचे यह दर्द होता है, गरज यह दर्द सर्व्वाङ्ग में होता है। स्थानभेद के अनुसार स्नायुशूल ३ प्रकार का है। मुखमण्डल के स्नायुशूल को अर्द्धभेद, मस्तमण्डलके अर्द्धांशकी शूलको अर्द्धभेद और स्फिच् अर्थात् चूतडमें होनेसे उसे अधोभेद कहते हे। बलक्षय, हृद्दोष, मस्तिष्क दोष, अजीर्ण और विविध दन्तरोगोंसे अर्द्धभेद नामक स्नायुशूल पैदा होता हे, इससे ललाटके नीचेवाला अक्षिपुट, गाल, नासिका, ओष्ठ जीभ, पार्श्व, अधर और दातमें शूल और दाहलिये दर्द होता है। पहिले मुखके एक तरफ से उठकर मुहभर फैल जाता

है। गीले स्थानमें वास, शैत्यसेवन, बलक्षय, तथा विकृत वायु और पानी सेवन आदि कारणोंसे अर्द्धभेद पैदा होता है। इसमें मुखमण्डलके अर्द्धांश में तीव्र दर्द होता है। यह रोग अकसर बाये तरफ होता है। तथा मस्तकमें तीरसे छेदनेकी तरह मालूम होता है। बीच बीचमें आराम हो जानेसे यह रोग देरसे आराम होता है। युवावस्थामें इसका प्रादुर्भाव अधिक होता है, तथा पुरुषकी अपेक्षा स्त्री रोगी अधिक दिखाई देती है। मलरोध, परिश्रम, शीतसेवा, दुर्व्वलता, आमवात रोग, आर्द्रस्थान में वास और गर्भ विकृति आदि कारणोंसे अधोभेद नामक स्नायुशूल पैदा होता है। चूतड, जाघसंधिके पीछे तथा कभी पैर और जघेंमें अधोभेद उपस्थित होता है। यह अकसर एक पैरमें दिखाई देता है। रातको और प्रौढ़ावस्था में इस रोगका प्रकोप अधिक होता है।

चिकित्सा।—वायु अनुलोमक, बलवर्द्धक और अग्नि-जनक औषधादि इस रोग में उपकारी है। वातव्याधि अधिकार का कुब्जप्रसारणी, महामाष तल मालिश, उरद उबालकर उसका सेक, वातज वेदना निवारक प्रलेप और रेंडीके तेलका जुल्लाब इस रोगमें विशेष उपकारी है। वृहत् छागलाद्य घृत भी विशेष उपकारी है। छोटी इलायची, बड़ी इलायची, खसकी जड़, सफेद चन्दन, श्यामालता, अनन्तमूल, मेद, महामेद, हलदी, दारुहलदी, गुरिच, सोंठ, हर्रा, आवला, बहेडा और अजवाईन प्रत्येक समभाग, सबके बराबर चादी; सब एकत्र मिलाकर २ रत्ती मात्रा गायके घीके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारका स्नायु-शूल और वातरोग दूर होता है। स्वर्णमाक्षिक, चादी, लोह और रससिन्दूर प्रत्येक समभाग, एकत्र चिरायता रसकी भावना दे एक रत्ती बराबर गोली बनाना, रोज सवेरे त्रिफला, भिगोया

पानीके साथ सेवन करनेसे भी आराम होता है। वातव्याधि का पथ्यापथ्य इस रोगमें पालन करना चाहिये।

भग्न चिकित्सा।

रोग परीक्षा।—ऊंचे स्थानसे गिर पडना, पीडन और अभिघात आदि नाना कारणोंसे अस्थि और अस्थिसन्धि भग्न होती है। एक सन्धिस्थल से दूसरे सन्धिस्थलके बीचवाले एकखण्ड अस्थिको काण्ड और दो अस्थिके संयोग स्थलको अस्थिसन्धि कहते हैं। ऐसही स्थानभेदके अनुसार काण्डभग्न और अस्थिभग्न नामसे भग्नरोग दो भागमें विभक्त है।

भिन्न भिन्न अवस्था और प्रकारभेद।—सन्धिभग्न छ प्रकार, उत्पिष्ट, विश्लिष्ट, विवर्त्तित, तिर्य्यग्गत, चिप्त और अधोभग्न। साधारणतः यह छ प्रकारके भग्नसे अङ्गका पसारना, आकुञ्चन और परिवर्त्तन के वख्त अत्यन्त दर्द होती है तथा भग्नस्थान छूनेसे भी अत्यन्त दर्द होती है। उत्पिष्ट नामक सन्धिभग्न में दोनो हड्डी उत्पेषित हो जाती है इससे भग्नस्थान के दोनो तरफ शोथ हो जाता है और रातको दर्द अधिक बढता है। विश्लिष्ट सन्धिभग्न में सन्धिस्थल शिथिल हो जाता है तथा सर्व्वदा अत्यन्त दर्द होता है और उत्पिष्ट भग्नको तरह अन्यान्य लक्षण भी दिखाई देते है। सन्धि-विवर्त्तित अर्थात् विपरीत भावसे परिवर्त्तित होनेसे दोनो तरफ तीव्र दर्द होती है। तिर्य्यग्गत अर्थात् सन्धिस्थल टेढो होनेसे भी दर्द होती है। सन्धिस्थानसे

अस्थि विच्छिन्न होनेसे शूलवत् दर्द और अध छिन्न होनेसे दर्द और सन्धिका विघटन अर्थात् अमिलन होता है। कांडभग्न साधारणतः १२ प्रकारका देखनेमें आता है। जैसे कर्कटक, अश्वकर्ण, विचूर्णित, पिच्चित, छल्लित, विश्लिष्ट, अतिपातित, मज्जागत, विस्फूटित, वक्र, और द्विविध छिन्न। अस्थि विश्लिष्ट हो मध्यभाग ऊंचा और पार्श्वद्वय नीचा हो केंकडेके आकार का होता है इससे उसको कर्कटक भग्न कहते हैं। किसी स्थानकी विपुल अस्थि वहिर्गत हो अश्वकर्ण की तरह ऊंची हो जाती है, इसको अश्वकर्ण भग्न कहते हैं। हड्डी चूर हो जानेसे उसे विचूर्णित भग्न कहते है। शब्द और स्पर्शसे हड्डीका चूर्ण होना मालूम होता है। अस्थि पेषित होनेसे उसको पिच्चित कहते है इसमें अत्यन्त शोथ होता है, हड्डीका थोडा अंश विश्लिष्ट अर्थात् छिल जानेसे उसको छल्लित भग्न कहते है। अस्थिमांसादि पदार्थसे सर्व्वदा अलग हो त्वकमें रहनेसे उसे विश्लिष्ट कांडभग्न कहते है। अतिपातित भग्नमें अस्थि छिन्न हो जाती है। अस्थिका अवयव अस्थिमें प्रविष्ट हो मज्जा निकलनेसे मज्जागत भग्न जानना। विस्फूटित भग्नमें अस्थि अल्प विदीर्ण हो जाता है। अस्थि वक्र होनेसे उसे वक्रभग्न कहते हैं। छिन्न दो प्रकार, एक प्रकार के छिन्नसे अस्थि विदीर्ण हो भग्न हो जाती है, दूसरे प्रकारसे विदीर्ण हो दो भागमें विभक्त हो जाती है। ये १२ प्रकारके कांडभग्न से अंगकी शिथिलता, प्रबल शोथ, प्रबल दर्द भग्नस्थान दबानेसे शब्दोत्पत्ति, छूनेसे अत्यन्त दर्द, स्पन्दन, सूचीवेधवत् पीडा, शूलवत् वेदना और बैठने उठने आदि सब अवस्थामें तकलीफ होती है।

अस्थिपरिचय।—इसमें अस्थिभग्न और विभिन्न रहती है। तरुणास्थि मुड जाती है। नलकास्थि विदीर्ण होता है।

कपालास्थि दो भागमें विभक्त होतो है और रुचक तथा वलया नामक अस्थिभी कटजाती है। इसकी प्रत्येक अवस्थाको भग्न कहते हैं। नाक, कान, आंख और गुह्य देशकी अस्थिका नाम तरुणास्थि, जिस अस्थिमें छेद रहता है उसका नाम नलकास्थि; जानु, नितम्ब, स्कन्ध, गंड, तालु, शंख, वङ्क्षण और मस्तक की अस्थिको कपालास्थि, दन्तसमूहको रुचकास्थि तथा दोनो हाथ, पार्श्वद्वय, पृष्ठ, वक्ष, उदर, गुह्य और दोनो पैरकी ठेढी हड्डीयों कोवलयास्थि कहते हैं।

साध्यासाध्य।—कपालास्थि टूटनेसे असाध्य जानना, सन्धिभग्नमें च्छिन्न और उत्पिष्टभग्नभी असाध्य है। असंयुक्त कपालास्थि का चूर्ण तथा छातो, पीठ, शंख और मस्तक के चूडा स्थानका टूटना भी असाध्य है, भग्नाङ्ग व्यक्ति यदि वायु प्रकृतिका हो, रोग प्रतिकारमें यत्नशील न हो, आहार बंद हो गया हो, तथा ज्वर, आध्मान, मूर्च्छा, मूत्राघात और मलबद्धता आदि उपद्रवयुक्त होतो वह भग्न कष्ट साध्य जानना अस्थि एकबार सम्यक योजित होनेपर भी यदि वह अयथारीतिसे स्थापित न हो, सुन्यस्त होनेपर भी यदि यथानियम बाधो न जाय और अच्छी तरह बाधनेपर भी यदि वह अभिघातादि से फिर हिलकर टेढी हो जाय तो फिर यह अवस्था दूर नही हो सकती अर्थात् वैसही रहजाती है।

कर्त्तव्य और चिकित्सा।—भग्नस्थानमें पहिले ठंढे पानीसे सिञ्चनकर अवनत अस्थि उठाना और उन्नत अस्थि दबाकर स्वस्थान में ले जाना। फिर समान दो काठकी तख्ती दोनो तरफ रख कपडेसे न बहुत ढीला न बहुत कसकर बाधना। कारण बंधन ढीला होनेसे संयोग स्थिर नही रहता तथा कसकर बाधनेसे त्वक आदि स्थानोंमें शोथ, दर्द और घाव होता है। बंधन

के उपर बड, गुल्लर, पोपर, पाकड, मुलेठो, अमडा, अर्ज्जुन, आम, कोशाम्र, पिडिशाक, तेजपत्ता, बडा जामुन, छोटा जामुन, पियाल, मडुआ, कुटकी, वेतस, कदम्ब, बैर, रक्तलोध, लोध, याबरलोध, शल्लकी, भेलावा, पलाश और मेडाशृङ्गीके काढ़ेका पानी पीना। अभावमें नौसादर भिगोया पानी किम्वा ठण्ढे पानीसे बन्धनका कपडा तर रखना। अतिरिक्त दर्द होतो स्वल्प पञ्चमूलके साथ दूध औटाकर वही दूध पीना। रोगकी अवस्थाके अनुसार अकसर बन्धन खोलकर फिर बांधना। साधारणत शीत ऋतुमें सातदिनके अन्तर, शीत ग्रीष्म दोनो जब समान अवस्थामें रहता है, तब ५ दिनके अन्तर और ग्रीष्म ऋतुमें तीन दिनके अन्तरपर बन्धन बद लना चाहियें। लहसन, सहत, लाह, घी और चीनी प्रत्येक सम-भाग एकत्र पीसकर आधातोला मात्रा रोज सेवन करना। अथवा बबूलकी छालका चूर्ण चार आनेभर मात्रा सहतके साथ चाटना। किम्वा पीतवर्ण कौडीभस्म २।३ रत्ती कच्चे दूधके साथ सेवन कराना हाडजोड, लाह, गोधूम और अर्ज्जुन छाल प्रत्येक समभाग एकत्र पीसकर आधा तोला मात्रा दूध और घीके साथ सेवन करनेसे अस्थिसंयोगमें विशेष मदद पहुंचती है। अस्थि मिलजाने पर बन्धन खोलकर मजीठ और मधु कांजीमें पीसकर उसका लेप करना। किम्वा शालि तण्डुल पीसकर उसमें घी मिलाकर प्रलेप देना। लाह, हाडजोड, अर्ज्जुनछाल, असगन्ध और गुलशकरी प्रत्येक एक एक तोला, गूगल ५ तोले एकत्र पीसकर लेप करना। अथवा बबूलके जडकी छालका चूर्ण तथा त्रिकटु और त्रिफलाचूर्ण प्रत्येक समभाग सबके बराबर गूगल एकत्र खलकर भग्नस्थानमें लेप करना। पुरानी बिमारी होनेपर माषतैल, कुब्जप्रसारिणी तैल और सूअरकी चर्व्वी मालिश करनेसे विशेष उपकार होता है।

पथ्यापथ्य—इस रोगमें मांस, मांसरस, दूध, घी, मटर और उरदका जूस तथा अन्यान्य पुष्टिकर द्रव्य भोजन उपकारी है। अधिक लवण, कटु, क्षार, खट्टा और रुक्षद्रव्य भोजन, तथा कसरत, धूपमें बैठना और मैथुन भग्नरोगीको अनिष्टकारक है।

शीर्षाम्बु रोग-चिकित्सा।

अधिक शैत्य, संयोगविरुद्ध भोजन, अतिरिक्त मद्यपान, दूषित वायु सेवन, दूषित जलपान, मस्तकमें आघात प्राप्ति और अन्त्रमें क्रिमिसञ्चय आदि कारणोंसे मस्तिष्कके आवरणमें क्रमशः पानी जाकर, शिरोवेदना, आलोक दर्शण और शब्द सुननेसे चमक उठना, अल्पमूत्र आना, कालेरंगका कठिन मल आना, नाड़ी द्रुतगति, त्वक रुखा और गरम, चक्षुके तारेको विकृति, क्रोधशीलता, मुखको विवर्णता, निद्रावस्थामें दांत घिसना, ओष्ठ और नासिकामें कण्डू, हाथ पैर पटकना, पक्षाघात, प्रलाप तथा चक्षु रक्तपूर्ण और रक्तवर्ण आदि नानाप्रकारके उपद्रव उपस्थित होता है। इसीको शीर्षाम्बु रोग कहते है। यह रोग अधिक उमरवालोंकी अपेक्षा बालकों को अधिक होता है। खासकर बच्चोंके दांत निकलती वख्त यह रोग होनेकी सम्भावना रहती है। यह रोग अति कष्टसाध्य है। रोग प्रकाश होनेसे पहिले जिह्वा कफलिप्त, अधिक निद्रा, दुर्ब्बलता, दुर्गन्धयुक्त निश्वास निकलना और मलकी कठिनता आदि लक्षण दिखाई देते है।

कर्त्तव्य और चिकित्सा।—इस रोगमें विरेचक, मूत्रकारक और रक्तपरिष्कारक औषध प्रयोग करना चाहिये। रोगोका शिर मुडाकर सर्व्वदा गरम पकडेसे ढाके रखना उचित है। सेहुडके पत्तेका रस अथवा जयन्ती पत्तेके रसके साथ कालाजोरा, कूठ, गेरूमिट्टी, सफेद मिट्टी, लालचन्दन, समुद्रफेन प्रत्येका समभाग तथा सबके बराबर भूजा हुआ चावल एकत्र पोस तथा थोडा गरमकर, दोपहर को मस्तकमें लेप करना, तथा सूखजानेपर निकाल डालना। दूधके साथ नारियलका तेल थोडा मिलाकर पिलानेसे विशेष उपकार होता है। रेवतचीनो, तेवडो की जड, श्यामालता, हरीतकी, आवला, शठी, अनन्तमूल, मुलेठो, मोथा, धनिया, कुटको, हलदो, दारुहलदो, दालचिनी इलायची और तेजपत्ता, इन सबके काढेमें जवाखार मिलाकर पीनेसे रोग शान्त होता है। गायका घो १ सेर, तथा केशर, अनन्तमूल, मुनक्का, जीवन्ती, हरतकी, कालानमक, तेजपत्ता और परवरकी जड प्रत्येक दो दो तोलेका कल्क, पानो ४ सेर यथाविधि औटा-कर उपयुक्त मात्रा दूधके साथ सेवन करनेसे यह रोग तथा अन्यान्य शिरोरोग भी आराम होता है। महादशमूल तैल, बृहत् शुष्क मूलकादि तैल। और नीचे लिखा तैल शिरमें मालिश करना। सरसो का तेल एक सेर, धतुरेको वोज, धवईका फूल, मूर्व्वामूल, महुये को छाल, मुलेठो, कालानमक, शोंठ, नीलको जड, पीपल, कटफल कुटको और बाला, प्रत्येकका चूर्ण आधा आधा मात्रा मिलाकर एक पात्रमें रख मुह बन्दकर सात दिन रख देना। यह तैल शिरमें मालिश करनेसे शिर्षाम्बु रोग दूर होता है।

ये सब क्रियाओंसे पोडा दूर न होनेपर उपयुक्त चिकित्सक से कपालमें फस्त लेना चाहिये। सातकर्मा चिकित्सक के सिवाय किसो अनाडोसे फस्त लेनेसे अनिष्ट होनेको सम्भावना है।

लघुपाक्य तथा पुष्टिकारक और सात्त्विक अन्नपान भोजन को देना, शीतल द्रव्य या कफवर्द्धक द्रव्य आहार और विहार अनिष्टकारक है।

रसायन विधि।

"यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम्।"

रसायन संज्ञा—जिस औषधिके व्यवहार करनेसे स्वस्थव्यक्ति को बुढापा और कोई रोगके आक्रमणका डर नहीं रहता, उसे रसायन कहते हैं। रसायन सेवन करनेसे आयु, स्मृतिशक्ति, मेधा, कान्ति, बल, स्वर आदि बढता है और एकाएकी कोई रोग आक्रमण नहीं कर सकता है।

प्रकारभेद।—सवेरे पानीका नास लेनेसे रसायन होता है। इससे पीनस, स्वरविकृति और कासरोग दूर होता है। तथा दृष्टिशक्ति बढती है। सूर्योदय से पहिले यथाशक्ति जलपान करनेसे वातज, रोग दूर हो मनुष्य दीर्घायु होता है। नाकसे जलपान करनेसे और भी अधिक उपकार होता है। इसको ऊषापान कहते हैं। अजीर्ण रोगमें ऊषापान विशेष उपकारी है। असगन्धका चूर्ण चार आनेभर मात्रा पित्तप्रधान प्रकृतिमें दूधके साथ, वायुप्रकृतिमें तेलके साथ, वात पैत्तिक प्रकृतिमें घीके साथ और वातकफ प्रकृतिमें गरम पानीके साथ १५ दिनतक सेवन करनेसे रसायन होता है तथा शारीरिक कृशता दूर होती है। विधारेकी जडके चूर्णको सातबार सतावरके रसकी भावना दे आधा तोला मात्रा घीके साथ एक मास सेवन करनेसे,

बुद्धि, मेधा और स्मृतिशक्ति बढ़ती है तथा बलिपलितादि रोग दूर होते हैं। हरीतकी वर्षातमें सैन्धवके साथ, शरत्काल में चीनीके साथ और हेमन्तमें शोंठके साथ, शीतकालमें पीपलके साथ तथा वसन्त ऋतुमें सहतके साथ और ग्रीष्ममें गुडके साथ सेवन करनेसे विविध रोगकी शान्ति हो रसायन होता है। इसका नाम हरीतकी रसायन या ऋतु हरीतकी है। पहिले हरीतकी का चूर्ण चार आनेभर मात्रा सेवन आरम्भ करना फिर सहनेपर २ तोलेतक बढ़ाना चाहिये। सैन्धव, शोंठ और पीपलसे कम मात्रा हरीतकी लेना चाहिये तथा दूसरा अनुपान हरीतकीके बराबर लेना उचित है।

क्रमागत एकवर्षपर्यंतक रोज ५, ६, या १० पीपल, सहत या घीके साथ सेवन करनेसे रसायन होता है। पीपल को पलाशके खारके पानकी भावना दे घीमें भूनकर रोज भोजनके पहिले वही पीपल रोज तीन, घी और सहतके साथ सेवन करनेसे श्वास, कास, क्षय, शोष, हिक्का, अर्श, ग्रहणी, पाडु, शोथ, विषम ज्वर स्वरभग, पीनस और गुल्म आदि पीड़ा दूर हो आयु बढ़ती है। पहिले दिनका आहार पच जानेपर सवेरे एक हरीतकी, भोजनके पहिले २ बहेडा और भोजनके बाद ४ आमला सहत और घीके साथ एकवर्षपर्यंतक सेवन करनेसे मनुष्य निरोग शरीरसे बहुत दिन तक जीवित रहता है। लोहेके नये बरतनमें त्रिफलाका कल्क लेपकर एकदिन रात रखकर फिर वह कल्क निकालकर मधु व जलके साथ सेवन करना उत्तम रसायन है। आमला काली तिल भृंगराज—इन सभोंको समभाग लेकर पीसकर उपयुक्त मात्रा बहुत दिनोंतक नियमसे सेवन करनेपर केश, वर्ण, इन्द्रियविमल, शरीर निरोग और आयु बढ़ती है। हस्तिकर्ण, पलाशके छालका

चूर्ण घी और सहतके साथ रोज सबेरे खानेसे बल, वीर्य्य, इन्द्रियशक्ति और आयु बढ़ती है।

उक्त रोगोंके सिवाय राजयक्ष्मा रोगोक्त "च्यवनप्राश" वसन्त-कुसुमाकर, पूर्णचन्द्र, महालक्ष्मीविलास, अष्टावक्र रस, मकर-ध्वज और चन्द्रोदय मकरध्वज आदि औषध यथाविधि सेवन करनेसे विविध रोगोंकी शान्ति हो उत्तम रसायन होता है।

सुपथ्य भोजन, परिमित निद्रा, उपयुक्त परिश्रम, नियमित स्त्रीसहवास, सद्वृत्त अनुष्ठान, तथा इस पुस्तकके स्वास्थ्यविधि अधिकारोक्त उपदेश पालन करनेसे आजीवन निरोग शरीरसे तथा सुखसे जीवनयात्रा निर्व्वाह हो सकती है। निरोग शरीरके सिवाय धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष यह चतुर्वर्ग मे कोई भी अभीष्ट सिद्ध नही होता, इससे स्वास्थ्यरक्षा विषयमे, मनुष्य मात्रको मनोयोगी होना नितान्त आवश्यक है।

वाजीकरण विधि ।

वाजीकरण संज्ञा ।—आयुर्वेदका आठवा अंग वाजी-करण है। जिस क्रियासे अश्वकी तरह अत्याधिक रतिशक्ति कम है अथवा अतिरिक्त स्त्री सहवास किम्बा अथवा शुक्र क्षयादिसे जिनकी रतिशक्ति कम हो गई है, वाजोकरण औषध ऐसे मनुष्यको अवश्य खाना चाहिये। स्त्री सहवासका मुख्य उद्देश्य--सन्तानोत्पादन, रतिशक्तिकी हीनतासे यह उद्देश्य सफल नही हो सकता, सुतरां पुत्रहीन अवस्थामें विविध असुख भोगना पडता है। तथा शुक्रधातुही शरीरका सार पदार्थ है उससे शुक्र क्षय होनेसे फिर धातुक्षय हो अकालमें शरीर नष्ट होनेकी सम्भा-

बना है। इसलिये बाजीकरण औषध सेवनसे चोण शुक्रका भरना नितान्त प्रयोजनीय है। साधारणत घी, दूध, मास आदि पुष्टिकर भोज्य पदार्थं उपयुक्त परिमाण आहार करनेसे हो बाजीकरण औषधका प्रयोजन कुछ पूरा होता है।

मधुर रस, पुष्टिकारक, बलवर्द्धक और तृप्तिजनक पदार्थको साधारणत वृष्य या बाजीकरण आयुर्वेदमें कहा है। तथा प्रियतमा और अनुरक्ता सुन्दरी युवती स्त्री बाजीकरण का प्रधान उपादान कहकर अभिहित हैं।

शुक्रवृद्धिका उपाय।—उरदको घीमें भूनकर उसको खीर खानेसे शुक्रवृद्धि होती है। गोखुर, ईखरस, उदर कवाचको बीज और सतावर दूधके साथ सेवन करनेसे शुक्र और रतिशक्ति अत्यन्त बढती है। कवाचको बीज या तालमखानाका चूर्ण किम्बा काकडाशिंगीका चूर्ण धारोष्ण दूध और चीनीके साथ सेवन करनेसे शुक्र और रतिशक्ति बढती है। विदारी कन्दका चर्ण विदारी-कदके रसमें अथवा आवलेका चूर्ण आवलेके रसमे बार बार भावित कर घी और सहतके साथ सेवन करनेसे शुक्र बढती है। तोले मुलेठोका चर्ण घो और सहतके साथ सेवन करनेसे भी यथेष्ट शुक्रवृद्धि होती है। टटका मास या मछली घीमें भूनकर खानेसे शुक्र और रतिशक्ति बढती है। गौरइया पचीका मास भरपूर भोजनकर दूध पोनेसे रतिशक्ति अत्यन्त बढता है। बकरेका अडकोष दूधमें औटाना, तथा घ्य दूधमें तिल औटा चीनो मिलाकर सेवन करनेसे मनुष्य बहु स्त्री सहवास कर सकता है। दूध, घी, पीपल और सेन्धानमकके साथ बकरेका अण्डकोष पकाकर खानेसे शुक्र और रतिशक्ति बढती है। मछली, हस, मोर या मूरगी का अण्डा पानी मे उबाल घीमें भूनकर खानेसे

रतिशक्ति और शुक्र बढता है। घीमें भूनी रोहू मछली और अनारके रसमें भिगोया हुआ बकरेका मास औटाकर भोजन करना फिर मास रस पोना, इससे भो शुक्र और रतिशक्ति बढती है। गौरइयाका मास तितरपक्षीके मासके काढेमे, तितिरका मास कुक्कुट मांसके काढेमें, कुक्कुटका मास मयुर मासके काढमें और मयुर मास हस मासके काढेमें औटा तथा घीसे तलकर खट्टा रस विशिष्ट अथवा मधुर द्रव्य द्वारा मधुर रसविशिष्ट तथा एलादि सुगन्धित द्रव्य द्वारा सुगन्धित कर सेवन करनेसे शुक्रका अत्यन्त बल बढता है। इसके सिवाय शुक्रतारल्य और ध्वजभङ्ग रोगाधिकारके औषधादि सेवन करनेसे बाजीकरण क्रिया सम्पन्न होती है।

—०—

विविध "टोटका" चिकित्सा।

—०—

बरैंआदि। भौरा बरैया मधुमक्खी काटेतो पोईशाकका पत्ता, किचुनो गास या हाथीशुडाके पत्तेका रस मर्द्दन करनेसे और पत्थरके कोयलेको पानोमे घिसकर लेप करनेसे भी जलन शान्त होती है। तथा छोटे बेरकी जड या डंटेका रस भौंरेके काटे हुए स्थान पर मर्द्दन करनेसे विशेष उपकार होता है।

शुंआकोट लगनेसे पहिले गुल्लरका पत्ता घिसकर उसका काटा निकाल लेना फिर उस स्थानमें चुना लगाना। अपरिपुष्ट चावल पोसकर उसका लेप करनेसे भी विशेष उपकार होता है। हाथ पेरमें घुशोकोडा लगनेसे तेलाकुचाके पत्तेका रस मर्द्दन करनेसे आराम होता है।

आगसे जलना आदि—कोई स्थान आगसे जलनेपर तुरन्त गुडके चोटेका लेप अथवा घिकुआरका रस, चूनेका पानी और

नारियलका तेल एकत्र मिलाकर लेप करनेसे जलन शान्त होती है तथा फफोला नहो आता। आलु पीसकर उसका पतला लेप करनेसे भो विशेष उपकार होता है। कोई स्थान कट जानेसे या कुचलकर खून जानेसे दन्तोके नरम पत्तेका रस लगाकर बांधनेसे चतस्थान जुट जाता है और खन बन्द होता है तथा पकनेका डर नहो रहता। टटका गोबर बांधनेसे भो खून बन्द होघाव जुट जाता है। विषफोडेमें नोमको सूखी छाल पानीमें चन्दनको तरह घिसकर धतुरे पत्तेमें लगाकर फोडेपर रख बांध देना, लगातार तीन दिन ऐसही बांधनेसे विषफोडा आराम होता है। फोडा होनेसे कदमके पत्तेको शिरा निकालकर फोडे के बराबर तह रख आहिस्तेसे बांध देनेसे फोडा आराम होता है। अच्छी तरह पक जानेपर कदमका पत्ता और सेमलका कांटा एकत्र पीसकर लेप करनेसे आराम होता है। घुरघुरामें कीडा पड जानेसे सडे मानका डण्डा और मखन एकत्र पीसकर लगा धूपमें बैठनेसे कोडा बाहर निकल घाव सूख जाता है। जातोफूलका पत्ता गायके घोमें भूनकर गरम रहते रहते गलेके घावमें, मुखके घावमें और दांतके जडमें लगानेसे तकलोफ दूर होती है। द्रोण फूलकी रसमें सहत और तिल एकत्र मिलाकर कानमें डालनेसे दांतका कोडा दूर होता है। टटके गोमूत्रमें नारियलका फूल पीसकर आंखके चारो तरफ लेप करनेसे आंख आना दूर होता है। रोज सवेरे तुलसीके पत्तेका रस एक तोला पीनेसे जोर्णज्वर, रक्तस्राव, रक्तातिसार और अजोर्ण दोष शान्त होता है। विछोटोका नरम पत्ता रोज सवेरे और तीसरे पहरको टाकमें रगडनेसे टाक दूर होता है। एक छटाक चन्द्रसूर या हालिम दाना आधा सेर पानीमें मिलाकर या औटाकर वह पानी एक

तोला मात्रा आधा घण्टाके अन्तरपर पिलानेसे हुचकी दूर होती है, आकड़ाका पत्ता नमकके साथ रगडकर उसका रस मालिश करनेसे ज्वरके समयको शिर'पोडा और शिरका भारीपन दूर होता है। कालाजीरा मेण्डके पत्तेके रसमें पीसकर लेप करनेसे अथवा कालाजीरा और दालचीनी समभाग पानीमें पीसकर लेप करनेसे ज्वरकी शिर पीडामें विशेष उपकार होता है। शुल्टा का पत्ता नमकके साथ रगड उसका रस मालिश करनेसे भयानक शिर'पीडा दूर होती है। दालचीनी, तेजपत्ता, मूचकुन्द फूल, शुलटा सफेद सरसो, गोलमिरच, सुमव्वर और कालाजीरा प्रत्येक समभाग शुलटाके पत्तेके रसमे पीसकर थोडा गरम लेप करनेसे कष्ट साध्य शिरोरोग दूर होता है। धतूरेके पत्तेके रसमे लालचन्दन घिसकर गाढा होनेपर थोडा अफीम मिला २।३ बार लेप करनेसे शधकपारी दूर होती है। मलमूत्र बन्द होनेसे पथरीका पत्ता और सोरा पानीमें पीस पेड़ूमें लेप करनेसे मलमूत्र निकलता है। किसी स्थानसे गिर जानेसे अथवा पीडनादि कारणोसे हड्डीमे दर्द होनेसे टटका गोबर गरमकर लेप करना, चूना हलदी एकत्र गरम कर लेप करनेसे भी उपकार होता है। हाडजोडका पत्ता पीसकर लेप करनेसे विशेष उपकार होता है।



वैद्यक-शिक्षा।

पञ्चम खण्ड।

शरीरविज्ञान की सारबातें।

शरीरही चिकित्सा कार्य्यका प्रधान अङ्ग है, शारीरतत्त्व नही जाननेसे प्रकृत चिकित्सा नहो हो सकती। इसलिये इस ग्रन्थसे शारीरतत्त्वको आलोचना भी करना उचित है। आयुर्वेद मे शरीरविज्ञानके बारेमे जितने उपदेश पाये गये है, पहिले उन्होंके सार बातोंका आलोचना को जाती है। इसके बाद प्रत्येक अवयवके अवलम्बनसे प्राच्य और प्रतीच्य दोनो मतोंका समन्वय कर।विस्तारसे शारीरतत्त्वको आलोचनाको जावेगो।

पञ्चभूत या पञ्चेन्द्रिय।—आकाश, वायु, तेज, पानी और पृथिवी,—यह पञ्चमहाभूत, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, ये पाच इन्द्रियार्थ, चक्षु, कर्ण नासिका, जिह्वा और त्वक,—यह पाच ज्ञानेन्द्रिय, हाथ पैर, गुह्य, उपस्थ और वागेन्द्रिय,—यह पाच कर्मेन्द्रिय, तथा मन, बुद्धि, अहङ्कार और जीवात्मा—यह चौबीस तत्त्वोंके समष्टिभूत स्थूलपुरुष चिकित्सा कार्य्यका अधिष्ठान है, तथा इसी स्थूलपुरुषके उत्पत्तिके नियम और प्रत्येक अङ्गप्रत्यङ्गका विवरण शारीरतत्त्वका आलोच्य विषय है।

शुक्रशोणित।—जिस स्त्रीका शोणित और गर्भाशय अव्यापन्न है, उसके साथ ऋतुकाल मे अव्यापन्न शुक्र पुरुषके सह वास मे पुरुषका शुक्र स्खलित हो स्त्रोके गर्भाशयमे प्रविष्ट और

* शुक्र स्फटिक की तरह स्वच्छ श्वेतवर्ण द्रव स्निग्ध मधुररस, मधुगन्धयुक्त और मधुवत् हो उसीको अव्यापन्न शुक्र जानना और जो आर्त्तव शोणित शशकके रक्तको तरह किम्वा लाहके रसकी तरह लालरङ्ग[िया ' वस्त्रमें लगनेपर धोनेसे वेदाग छूट जाता उसीको अव्यापन्न शुद्धशोणित कहते हैं।

दोनोका शोणित एकत्र मिलकर गर्भरूप धारण करता है। बारह वर्षसे पचास वर्षतक स्त्रीके योनिद्वारसे प्रत्येक मासमें रज निकलता है। इसी रज स्रुतिकाल और ऋतुके पहिले दिनसे सोलह दिनतक को ऋतुकाल कहते हैं। इसमें प्रथम तीनदिन सहवास करना उचित नहीं है, इससे स्त्रीपुरुष दोनोके अनिष्ट की सम्भावना है, यदि दैवात् उक्त तीनो दिनमें गर्भ धारण हो तो वह नष्ट या विकृत होता है। तीनरातके बाद चतुर्थ आदि युग्मरातको सहवास करनेसे पुत्र और पञ्चमादि अयुग्म रातके सहवाससे कन्या उत्पन्न होती है। वस्तुतः शुक्रभागके आधिक्य से पुत्र और शोणितभागके आधिक्यसे कन्या पैदा होती है, यही पुत्रकन्याके उत्पत्तिका प्रशस्त कारण है। शुक्रशोणित दोनोके समान अंशमें नपुंसक पैदा होता है। स्त्रीपुरुषके विपरीत सह वाससे गर्भमें यदि पुत्र होय तो वह स्त्रीप्रकृति और कन्या हो वह पुरुष-प्रकृति को प्राप्त होती है। शुक्र, शोणित और गर्भाशय को व्यापत्ति रहनेसे अथवा गर्भिणी को मन वाञ्छा पूर्ण न होनेसे किम्वा गर्भ किसी कारणसे आहत होनेसे पुत्रकन्या विकृताङ्ग होती है।

मासभेद से गर्भलक्षण और परिपुष्टि।—

सहवासके बाद यदि स्त्रीके योनिसे शुक्रादि न निकले तथा श्रान्तिबोध, ऊरुद्वय की अवसन्नता, पिपासा, ग्लानि और योनि स्पन्दन आदि लक्षण प्रकाशित हो तो स्त्रीको गर्भ रहा जानना चाहिये। गर्भोत्पत्ति होनेसे क्रमश ऋतुरोध, मुखस्राव, अरुचि सर्व्वदा अकारण वमनवेग, खट्टा खानेको इच्छा, नाना उप-भोग को इच्छा, लोमराजिका ईषत् उद्गम अचि पचका सम्मि लन, शरोर की अवसन्नता, मुखको पाण्डुवर्णता, स्तनाग्र और ओष्ठ

अधरको कृष्णवर्णता, पदद्वयमे शोथ और योनिद्वार की विस्तृति आदि लक्षण प्रकाशित होते है। द्वितीय मासमे मिश्रित शुक्र-शोणित किञ्चित गाढा हो, पिण्डाकार, पेशीकी तरह अथवा अर्ब्बुदाकृति होता है। पिण्डाकार होनेसे पुरुष, पेशी होनेसे स्त्री और अर्ब्बुदाकार होनेसे नपुंसक पैदा होता है। तृतीय मासमें अति सूक्ष्म सब इन्द्रिय और समस्त अङ्गोपाङ्ग अवयवोंके पाच पिण्ड उत्पन्न दोनो पैर और मस्तक यदि प्राच अवयवोंके पाच पिण्ड उत्पन्न होते हैं। चतुर्थ मासमें वही सब पिण्ड परिस्फुट होते हैं तथा गर्भ भी कुछ कठिन होता है, इससे गर्भिणीका शरीर अधिक भारी हो जाता है। पञ्चम मासमें गर्भका मन, मांस और रक्त पैदा होता है इससे गर्भिणी दुर्ब्बल हो जाती है। छठे मासमें गर्भको बुद्धि, बल और वर्ण उत्पन्न होता है इसलिये गर्भिणी का बलवर्ण क्षय होता है, तथा गर्भिणी भी इसवक्त क्लान्त हो जाती है। सप्तम मासमें गर्भका अङ्गप्रत्यङ्ग स्पष्टरूपसे प्रकाशित होता है। गर्भिणी भी इस वक्त अत्यन्त क्लान्त हो जाती है। अष्टम मासमें गर्भ शरीरसे गर्भिणीके शरीरमें और गर्भिणीके शरीरसे गर्भ शरीरमें ओज पदार्थ सर्व्वदा आता जाता करता है, इससे गर्भिणी कभी हृष्ट और कभी ग्लानियुक्त होती है। अष्टम मासमें प्रसव होनेसे गर्भ या गर्भिणीमें से एकको मृत्यु होनेकी सम्भावनाहै। गर्भिणीका ओज गर्भ शरीरमें प्रविष्ट होनेसे यदि प्रसव हो तो गर्भिणीका और गर्भका ओज गर्भ शरीरमें प्रविष्ट होनेसे यदि प्रसव हो तो गर्भको मृत्यु होती है। नवम माससे द्वादश मासतक प्रसवका काल है। गर्भाशय जरायु अर्थात् एकप्रकार पतले चमडेसे आवृत हो गर्भ गर्भिणीके पीठको तरफ सन्मुख ऊर्द्धशिर और सङ्कुचित हो गर्भ रहता है। अमरा नामक गर्भको नाभीनाडी

गर्भिणी के हृदयस्थ रसवाहिनी नाडीके साथ संयुक्त रहनेसे गर्भिणी के आहार का रस उसी नाडीसे गर्भ शरीरमें जाता है। इसीसे गर्भके जीवनकी रक्षा और क्रमशः बढती है। एकप्रकारके आच्छादनसे जरायुका मुख ढका रहने से तथा कफसे उसका कण्ठ भरा रहनेके कारण गर्भस्थ शिशु हास्य रोदनादि नही कर सकता। तथा पक्वाशय में वायु कम रहती है इससे मलमूत्र और अधोवायु निकल नही सकती। गर्भिणीके नश्वास प्रश्वास और निद्रा जागरण आदिके साथही उसकी भी क्रिया सम्पन्न होती है। प्रसवके पहिले जब प्रसव वेदना होती है उसवक्त गर्भस्थ बालक उलटकर उसका शिर योनिद्वार में उपनीत होता है। ऐसा न होनेसे प्रसवमें देर लगता है।

धातु।—सम्पूर्ण चेतनायुक्त देहको शरीर कहते हैं, शरीर रक्षाके लिये जो द्रव्य खाया जाता है वह क्रमश परिपाक हो रस, रक्त, मास, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्रधातु होता है। सुतरा इसीसे शरीरकी रक्षा, वृद्धि, पुष्टि और स्थायित्व होता है। सुतरा भुक्त पदार्थका पहिली पदार्थ रस, रससे रक्त, रक्तसे मास, माससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा और मज्जासे शुक्र उत्पन्न होता है। रससे शुक्रतक एक एक धातुके बादवाला धातु परिणत होनेमें सात दिन लगते हैं। स्त्रीयोंका आर्त्तव रक्तधातु रक्तसे पृथक है, वह रसका भेदमात्र है यह महिनेभर एकत्र हो मासके अन्तमें योनिद्वारसे निकल जाता है। गर्भावस्था में एह धन्द हो स्तनमे आजाता है और यही दूध बनता है। इसीसे गर्भावस्थामें स्तनद्वय पीन और दुग्धयुक्त होते है।

त्वक।—गर्भाशयका शुक्रशोणित जब क्रमश परिपक्व होता है, उसी वक्त दूधमें मलाई की तरह शरीरके त्वक बंधी

उत्पत्ति होती है। त्वकसे शरीर जल वायु आदि शोषण, पसना निकलना और देहके उष्माकी रक्षा होती है। बाहरसे मांसके उपर तक क्रमश सात त्वक है। बाहरका पहिला त्वक एक धानके १८ भागके एक भागकी तरह पतला है, यही शरीरके रङ्गका आश्रय और इसीमें सिध्म और पद्मिनीकण्टक आदि रोग पैदा होते है। द्वितीय त्वक धानके सोलह भागका एक भाग पतला है, इसीमें तिलकालक न्यच्छ और व्यङ्ग आदि पीडाका अधिष्ठान है। तृतीय त्वक धान्यके द्वादशांशका एकांश है, चर्म्मदल अलगल्लिका और मशक आदि रोग इसीके आश्रयसे पैदा होते है। चतुर्थ त्वक धान्यके अष्टमांशका एकांश है, किलास और कुष्ठ आदि पीडाका यही अधिष्ठान है। पञ्चम त्वक धान्यके पांच भागका एक भाग, इसमें भी कुष्ठ और विसर्प रोग पैदा होते है। छठा त्वक धानकी तरह मोटा है, ग्रन्थि, अपची, अर्व्वुद, श्लीपद और गलगण्ड आदि इसीका आश्रय लेते है। सप्तम त्वक दो धानकी तरह मोटा होता है, भगन्दर विद्रधि और अर्श आदि रोग इसीके आश्रय से उत्पन्न होते है। साधारणत त्वकका परिमाण इसी तरह है, पर ललाट और अङ्गुलि आदि स्थानोका त्वक इसीसे भी कम पतला होता है।

एक धातुके बाद दूसरा धातु जहा आरम्भ होता है वहा दोनोके सन्धिमे तन्तुकी तरह कफजडित बहुत पतला एक प्रकारका आवरण रहता है, आयुर्वेदमें उसे कला और भाषामे उसको झिल्लि कहते हैं।

धातुका स्थान।—त्वक, रक्त और मांस शरीरमें सर्व्वत्र रहता है, तथापि यकृत् और प्लीहा रक्तके यही दो प्रधान स्थान है। मेदधातु अन्य स्थानके सिवाय उदर और पतली हड्डीमे

अधिक रहता है। मज्जा मोटी हड्डोमें रहती है। शुक्र सर्व्व-शरीरव्यापी है उसका कोई निर्द्दिष्ट स्थान नही है। कामवेग से सब शरीरसे निकलकर लिङ्गद्वार से जब क्षरित होता है तभी दिखाई देता है। शुक्र पहिले सब शरीरसे निकलकर बस्ति द्वारके नीचे दो अङ्गुलके अन्तर पर दक्षिण भागमें एकत्र होकर फिर निकलता है।

शरीरकी अस्थिसंख्या ।—शरीरकी अस्थिसंख्या चरक ऋषिके मतसे ३६०, सुश्रुतके मतसे ३०० और आधुनिक पाश्चात्य चिकित्सकोंके मतसे २४०। सुश्रुताचार्य्यके मतसे प्रत्येक हाथ पैरकी अङ्गुलियोंमें तीन तीन, पैर या हाथकी तलवों, कूर्च, गुल्फ या मणिबन्ध, प्रत्येक हाथ और पैरके उक्त स्थानोंमें दश दश, पाद, पार्ष्णी और हस्तपृष्ठमें एक एक, जङ्घेमें दो, जानुमें दो, ऊरूमें एक एक, केहुनोंके नोचेसे मणिबन्धतक दो दो, केहुनोंमें एक, बाहमें एक, गुह्यदेशम एक, योनि तथा लिङ्गमें एक, नितम्बमें दो, त्रिकमें एक, प्रत्येक पार्श्वमें ३६ कर ७२ है। पोठमें ३०, छातोमें आठ ८, दोनो चक्षुगोलक में एक एक कर दो २, ग्रोवामें ९ नव, कण्ठमें ४ चार, हनुद्वयमें दो २, दांतमें ३२ बत्तीस, नासिका मे, ३, तालुमे एक, ललाट, कान और शङ्ख—प्रत्येक स्थानमें एक एक और मस्तकमें ६ छ है। अवयव और अवस्थानविशेषानुसार अस्थिमें नानाप्रकारको विभिन्नता है। अस्थीसमूह पाच प्रकारमें विभक्त है—जसेतरूण, कपाल, नलक, वलय और रुचक। नासिका, कर्ण, चक्षु और गुह्य अस्थिको कपालास्थि, जानु, नितम्ब, स्कन्ध, गण्ड, तालु, शङ्ख, वंक्षण और मस्तकके अस्थिको—कपालास्थि, दोनो हाथ, पार्श्वद्वयों पाठ, वक्ष, उदर, गुह्य, तथा पदद्वय को टेढो अस्थिको वलायस्थि, छिद्रवालि अस्थिको नलकास्थि और दन्तसमूह को अस्थिको रूचकास्थि कहते

है। दन्त चार प्रकार—छेदन, शौवन, दाग्र और पेषण। छेदन दन्त ऊपर ४ और नीचे ४, शौवन दन्त दो ऊपर और दो नीचे, दाग्रदन्त ४ ऊपर और ४ नीचे और पेषण दन्त ६ ऊपर और ६ नीचे।

अस्थिसन्धि—अङ्गुली, मणिबन्ध, गुल्फ, जानु, कूर्पर, कक्ष, वङ्क्षण, दन्त, स्कन्ध, योनि, नितम्ब, ग्रीवा, पृष्ठ, मस्तक, ललाट, हनु, ऊरु, कण्ठ, हृदय, नासा और कर्ण आदि स्थानोंकी हड्डी परस्पर मिली हुई रहती है। इससे इसको अस्थिसन्धि कहते है। सन्धिस्थानमें एक चिकना पदार्थ कफ मिला हुआ रहता है, इससे इच्छानुसार सङ्कुचित और विस्तृत होता है।

अस्थिसन्धि सब २१० है, जिसमें अङ्गूठेमें २, तथा अन्यान्य अंगुलियोंमें तीन तीन कर मोट ४८, गुल्फमें एक, जङ्घामें एक, वङ्क्षणमें एक, मणिबन्धमें एक, केहुनीमें एक, कांधेमें एक, कमरमें ३, पीठमें २४, पार्श्वद्वयमें २४. छातीमें ८, गलेमें ८, गलेके नालीमें ३, हृदय, फुसफुस और क्लोम स्थानके निबन्ध नाड़ीमें १८, दन्तमूलमें ३२, कण्ठमें १, नेत्रवर्त्ममें २, प्रत्येक गाल, कान और शङ्खमें एक एक कर ६, हनुद्वयमें २, भौंके ऊपर दो, शङ्खके ऊपर दो, मस्तकके कपालास्थिमें ५ और बीचमें एक अस्थिसन्धि है।

स्नायु, शिरा और धमनी।—सूतकी तरह एक पतला पदार्थ समस्त शरीरमें फैला हुआ है, उसे स्नायु कहते हैं। इन्द्रियोंका अनुभव और अवयवोंका चलाना आदि कार्य्य स्नायुसे होता है। लताकी तरह पदार्थ को शिरा कहते हैं, इसीके भीतरसे रक्तादि प्रवाहित होता है ये सब शिरायें मूल शिरा की शाखा प्रशाखा है। इसके सिवाय ४० मूल शिरा है। इसमें १० शिरा वायु, १० पित्त, १० कफ और १० रक्तवहन करती है। सब

शिराओंका मूलस्थान नाभि है। शिराकी तरह कई स्रोत और है, उसे धमनी कहते हैं। इसमें २ प्राणवहा, २ वातवहा, २ पित्तवहा, २ कफवहा, २ शब्दज्ञानवहा, स्पर्शवहा २, रसस्वाद वहा २, गन्धस्थानवहा २, २ निद्राकारक, २ जागरणकारक, २ अश्रुवहा, २ स्त्रीयोंकी आर्त्तव वहा, २ स्तन्यवहा, २ पुरुषका शुक्रवहा, २ अन्नवहा, २ जलवहा, २ मूत्रवहा, २ मलवहा और बहुतेरी अपरिसंख्येय धमनी स्वेद वमन करती है शरीरके लोमकूप सब धमनीका वहिर्मुख है। प्राणवहा और रसवहा धमनीका मूलभाग हृदय, अन्नवहाका मूलभाग आमाशय, जलवहाका मूलभाग तालू और क्लोम, रक्तवहाका मूल भाग यकृत् और प्लीहा, मूत्रवहाका मूलभाग वस्ति और लिङ्ग, मलवहाका मूलभाग पक्वाशय और गुह्य, शुक्रवहाका मूलभाग स्तन और अण्डकोष तथा आर्त्तववहाका मूलभाग गर्भाशय है।

पेशी।—स्नायु, शिरा और धमनीकी संख्या निर्दिष्ट नहीं हो सकती। कार्य्यानुसार जितनेकी उपलब्धि हुई है, केवल उसीकी संख्या निर्द्देश की गई है। फीतेकी तरह एक प्रकारके पदार्थसे अस्थि, शिरा और स्नायु आदि आच्छादित रहता है, उसको पेशी कहते हैं। यह स्थानभेद के अनुसार मोटी, पतली, सूक्ष्म, विस्तृत, क्षुद्र, दीर्घ, कठिन, कोमल, मृदु, कर्कश आदि नानाप्रकार की होती है। शरीर का जो जो स्थान सङ्कुचित या चलाया जाता है उसी स्थानमे पेशी रहती है, इसकी भी संख्या अपरिमेय है।

कण्डरा—पेशीके प्रान्तभागका नाम कण्डरा है, इससे आकुञ्चन प्रसारणादि कार्य्य सम्पादित होता है। कण्डराकी आकृति रस्सीकी तरह है। कण्डरा १६, इसमें ४ हस्तद्वयमें, ४ पदद्वय में, ४ ग्रीवामें और ४ चार पीठमें है।

जाल—शिरा, स्नायु, मास और हड्डो ये चार पदार्थोंमे कोई एक पदार्थ जालको तरह छिद्रयुक्त रहनेसे उसे जाल कहते हैं। प्रत्येक मणिबन्ध और गुल्फमें ऐसा प्रत्येक का जाल अर्थात् शिराजाल, मासजाल और अस्थिजाल रहता है।

मेरुदण्डके दोनो तरफ दो दो कर जो चार मासमय रस्सोकी तरह पदार्थसे मेरुदण्ड आबद्ध हैं उसे रज्जु कहते हैं।

सेवनी—मस्तकमे पाच लिङ्ग और अण्डकोषमे एक और जोभमे जो एक सिया हुआ स्थान दिखाइ देता है, उसे सेवनो कहते हैं।

मर्म्मस्थान—शिरा, स्नायु, मास, अस्थि और सन्धि ये सब जिस जगह परस्पर मिल जातो हे उसको मर्म्मस्थान कहते हैं। मर्म्मस्थान सब १०७, इसमे शिरामर्म्म ४१, स्नायुमर्म्म २७, मास मर्म्म ११, अस्थिमर्म्म ८, और सन्धिमर्म्म २० वीस है।

मर्म्मस्थानविभाग।—जिस शिरामे नाक, कान, आख और जिह्वा आप्यायित होती है, तथा मस्तक के भीतर जहा ये सब शिरायोंका मुख मिला हुआ है, वहा एक शिरामर्म्म चार अङ्गल लम्बा है, मस्तकके बोचमे केशके आवर्त्तके भीतर शिरा और सधिके सयोगस्थलमे एक सधिमर्म्म है उसका परिमाण आधा अङ्गल। दोनो सोंक प्रान्तभागमें यानि कान और ललाटके बीचमे डेढ अगुलका एक अस्थिमर्म्म हे। गुह्यद्वारके भीतर गुह्यनाडीमें चार अगुलका मर्म्मस्थान है। इसे मासमर्म्म कहते हे। स्तन द्वयके बीच हृदयमे चार अगुलका एक शिरामर्म्म है। नाभि, पृष्ठ, कटि, गुह्य, वङ्क्षण और लिङ्ग इन अङ्गोंके मध्यमे वस्ति है, वस्तिमें एक स्नायुमर्म्म हैं। नाभिके चारो तरफ चार अगुलका एक शिरामर्म्म है। ये सब मर्म्मोंमे छेद करने या जोरसे चोट लगनेसे तुरन्त प्राण नष्ट होता है।

चोट लगनेका फल।—दोनो स्तनके नीचे छातीमें दो अंगुल बराबर दो शिरामर्म्म है, स्तनोंके उपर दो अंगुल बराबर दो मांसमर्म्म है, दोनो स्कन्धकूटके नीचे और पार्श्वद्वयके उपर आधा अंगुल दो शिरामर्म्म और छातीके दोनो बगल की बात वहा नाड़ीमें आधा अंगुल बराबर दो शिरामर्म्म है उक्त मर्म्मोंको वक्षमर्म्म कहते हे। ये सब मर्म्ममे चोट लगनेसे कालान्तरमें मृत्यु होता है। इसमेंसे शेषोक्त मर्म्ममें चोट लगनेसे कोष्ठमें वायुपूर्ण हो श्वास काम रोगहो मृत्यु होती है। मस्तकके पांच अस्थिसंधिको भी सन्धिमर्म्म कहते है। इसमें चोट लगनेसे उन्माद, भय और चित्तविभ्रम उपस्थित हो प्राणनाश होता है। मध्यमांगुली के समसूत्रमें और हाथ परके तलवेके मर्म्मस्थानमें चोट लगनेसे अत्यन्त दर्द हो अन्तमें मृत्यु होती है। अंगूठा और तर्ज्जनीके बीच वाले स्थानके शिरामर्म्ममें चोट लगनेसे कालान्तरमें आक्षेप रोग हो मनुष्य मृत्युको प्राप्त होता है, अकसर इससे जल्दी प्राणनाश होते देखा गयाहै। प्रत्येक प्रकोष्ठ और जङ्घाके बीचवाले दो अंगुलके मर्म्ममें चोट लगनेसे शोणित क्षय हो थोड़े दिनमें मृत्यु होता है। स्तनमूल से मेरुदण्ड तक दोनो तरफ आधा अंगुल बराबर शिरा-मर्म्म विद्ध होनेसे अत्यन्त रक्तस्राव होकर कालान्तरमें मृत्यु होती है। दोनो जघन और दोनो पार्श्वके सन्धिवाले शिरामर्म्ममें चोट लगनेसे कोष्ठरक्तसे पूर्ण होकर कालान्तरमें मृत्यु होती है। मेरु-दण्डके नीचे नितम्बके सन्धिस्थलके दोनो तरफ आधा अंगुल बराबर दो अस्थिमर्म्म है इसमें चोट लगनेसे रक्तक्षय हो रोगीको पाण्डु-वर्ण या विवर्ण कर कालान्तरमें जान लेता है। नितम्बके दोनो तरफ आधा अंगुल बराबर और दो अस्थिमर्म्म है इसमें चोट लगनेसे कमरसे पैरके तलवेतक अर्द्धांगमें शोथ और दौर्व्वल्य उपस्थित होता है।

वक्षण और कन्धेके नीचे भी एक आधे अगुलका शिरामर्म्म है, इसमें चोट लगनेसे पक्षाघात रोग पैदा होता है। जानुद्वय के तीन अगुल उपर आधे अगुल बराबर एक स्नायुमर्म्म है, इसमें चोट लगनेसे अत्यन्त शोथ और दोनो पैर स्तब्ध होते है। जङ्घा और ऊरुकी सन्धिमे दो अगुलका एक सन्धिमर्म्म है इसमे चोट लगने से मनुष्य खञ्ज होता है। ऊरुद्वयके मध्य और केहुनीसे वगल तक बाहुकी मध्यभाग में एक अगुल बराबर एक शिरामर्म्म है, इसमे चोट लगनेसे रक्तक्षय हो दोनो हाथ पैर सूख जाते है। दोनो परका अगुठा और उसकी पासवाली अगुलीके जडके बीचमे अर्थात् पूर्व्वोक्त शिरामर्म्म के किञ्चित् उपर एक एक और उसके नीचे पैरके तलवेकी तरफ एक एक स्नायुमर्म्म है इसीमे चाट लगनेसे पैर घूम-कर कापने लगता है। वक्षण और अण्डकोषके बीचवाले स्थानकी दोनो तरफ एक अगुलका एक एक स्नायुमर्म्म है इससे चोट लगनेसे मनुष्य क्लीव होता है अथवा उसका शुक्र क्षीण हो जाता है। दोनो केहुनोमे दो अगुलका दो सन्धिमर्म्म है इसमे चोट लगनेसे हाथ सिकुड जाता है। कुकुन्दर अर्थात् नितम्ब कूपमे आधे अगुलका सन्धिमर्म्म है इसमें चोट लगनेसे स्पर्शशक्तिका नाश और नीचेवाले अङ्गकी क्रियामे हानि पहुचती है। छाती और बगलके बीचमें एक अगुलका स्नायुमर्म्म है इसके चोट लगनेसे पक्षाघात रोग पैदा होता है। दोनो कानके पीछे नीचेकी तरफ आधे अगुलका एक स्नायुमर्म्म है उसमे चोट लगनेसे मनुष्य बहिरा होता है। मस्तक और ग्रीवाके सन्धिके दोनो तरफ आधे अगुलका दो सन्धिमर्म्म है इसमे चोट लगनेसे शिर कम्प होता है। दोनो स्तनमे आधा अगुलका दो स्नायुमर्म्म है, इसमें चोट लगनेसे दोनो हाथकी क्रिया लोप होती है। पीठके उपर जहा ग्रीवा और मेरुदण्डकी सन्धि है उसके

दोनो तरफ आधे अगुलका एक एक अस्थिमर्म्म है इसमे चोट लगनेसे दोनो हाथ शून्य और शोथ होता है। दोनो आंखके प्रान्तभाग अर्थात् अपागमे आधे अगुलका दो शिरामर्म्म है इसमें चोट लगनेसे मनुष्य अन्धा और क्षीणदृष्टि होता है। कण्ठनालीके दोनो तरफ ४ धमनी है इसमे दोको नोला और दोको मन्या कहते है, अर्थात् कण्ठनालीके दोनो तरफ दो नीला और ग्रोवाके दोनो तरफ दो मन्या है। यह चार धमनीमें चार शिरामर्म्म है प्रत्येकका परिमाण दो दो अङ्गुल है, इसमे चोट लगनेसे मनुष्य गूङ्गा और विकृतस्वर होता है तथा मुहके स्वाद शक्तिका लोप होजाता है।

नाकके छिदके भीतर आधे अगुलका दो शिरामर्म्म है, इसमें चोट लगनेसे घ्राणशक्ति नष्ट होती है। भौके उपर और नोचे आले अगुलका दो सन्धिमर्म्म है इसमे चोट लगनेसे दृष्टि-क्षीणता और अन्ध रोग पैदा होता है। दोनो गुल्फमें दो अगुलका दो सन्धिमर्म्म है इसमे चोट लगनेसे अत्यन्त दर्द और खञ्जता पैदा होतो है, मणिबन्धमे भो वैसहो एक एक सन्धिमर्म्म है इसमें चोट लगनेसे दोनो हाथको क्रिया लोप होतो है। गुल्फ-सन्धिके दोनो तरफ एक एक अगुलका एक एक स्नायुमर्म्म है इसमे चोट लगनेसे अत्यन्त दर्द और शोथ होता है।

दोनो शङ्खके उपर केशतक आधे अगुलका दो स्नायुमर्म्म और भौके बीचमें आधे अंगुलका एक शिरामर्म्म है। इसमें तोर गडानेसे जबतक तोर न निकाला जाय तबतक मनुष्य जोवित रहता है तीर निकालतेही मृत्यु होती है।

उक्त मर्म्मोमें जिसमे चोट लगतेही मृत्यु होना लिखा है, उसमे यदि ठीक बीचमें चोट न लगकर प्रान्तभागमे चोट लगती

कालान्तरमें मृत्यु होता है तथा ठीक बीचमें चोट लगनेसे प्राण-नाश न हो केवल यन्त्रणाप्रद होता है। मर्मस्थान की सारी पीड़ा कष्टसाध्य है। इससे मर्मस्थानों को अच्छी तरह जानना चाहिये।

शरीर-विभाग।—सचेपतः शरीर ६ भागमें विभक्त है, मस्तक, मध्य शरीर दोनो हाथ और दोनोपैर। छातीसे नितम्ब तकका मध्य शरीर कहते हैं। इन्हों अवयवोंमें शरीरके प्रधान यन्त्र हैं। हृदयके बीचमें तीन अङ्गुलका हृदय नामक चेतना स्थान है। यहां शुद्ध रक्त और प्राणरक्त रहता है। इसमें चार गर्भप्रकोष्ठ है,—दो ऊपर और दो नीचे। रक्तवहा शिराद्वय शरीरका सब दूषित रक्त दहिने हृत्प्रमेमें लाती है तथा क्रमश उक्त चार प्रकोष्ठोंमें चालित हो विशुद्ध होता है। हृद्पिण्ड रातदिन आकुञ्चित और प्रसारित होता रहता है, आकुञ्चित होतेही वहाका खून वेगसे धमनीके जड़में जाता है तथा धमनीके रास्तेसे सर्व्वाङ्गमें फिरता है। हृदयको आकुञ्चन और प्रसारण क्रिया बन्द होतेही मृत्यु होती है। हृदयके बाये फुसफुस (श्वासयन्त्र) दहिने क्लोम (पिपासा स्थान) और नीचे हृक्क यहो अश्मास रोग होता है। तथा कण्ठसे गुदामार्गतक ३॥ साढ़े तीन व्यास दीर्घ एक अन्त्रनाड़ी कहो फैली और कहो सिकुड़ी हुई है। स्त्रियोंका अन्त्र ३ व्याम लम्बा है। उसीके कण्ठमें पहिला आमाशय फिर पित्ताशय या ग्रहणी तथा फिर पक्काशय है इसका दूसरा नाम मलाशय या उण्डुक। इसके नीचे गुह्यनाड़ी है, उदरके दहिने और बाये तरफ यकृत और प्लीहा—यही दो रक्ताशय है, लिङ्गके ऊपर वस्ति और मूत्राशय है। स्त्रियोंके योनिमें शङ्खावर्त्तकी तरह तीन आवर्त्त है, तथा इसीके तीसरे आवर्त्तमें गर्भाशय

है। गर्भाशयको आकृति रोहित मछलीके मुखको तरह अर्थात् बाहर सूक्ष्म और भीतर विस्तृत है।

वायुके कार्य्य।—यही सब आशयोंमें आमाशय कफका, पित्ताशय पित्तका और पक्वाशय वायुका अवस्थिति स्थान है। यह तीन दोष शरीरमें सर्व्वत्र और सर्व्वदा रहते है ये तीन दोषोमें वायु शरीरके यावतीय धातु और मलादि पदार्थको चलाता है। तथा वायुहीसे उत्साह, श्वास, प्रश्वास, चेष्टा, वेगप्रवृत्ति और इन्द्रिय समूहोंके कार्य्य सम्पादन होते है। वायु स्वभावत रुक्ष, सूक्ष्म, शीतल, लघु, गतिशील, आशुकारी, खर, मृदु और योगवाही है। सन्धिभ्रंश, अङ्गप्रत्यङ्गादि विक्षेप, मुदगलादिसे मारनेकी तरह या शूलको तरह अथवा सूई गडानेकी तरह दर्द, स्पर्शाज्ञता अङ्गको अवसन्नता, मलमूत्रादिका अनिर्गम और शोषण, अङ्गभङ्ग, शिरादिका संकोच, रोमाच, कम्प, कर्कशता, अस्थिरता, सच्छिद्रता, रसादिका शोषण, स्पन्दन, स्तम्भ, कषायस्वाद और श्याव या अरुणवर्णता वायुके कार्य्य है। वायु प्रकुपित होनेसे यही सब लक्षण प्रकाश होते है।

पित्तके कार्य्य।—पित्त स्वभावत' द्रव, तीक्ष्ण, पूति अपक्वावस्थामें नोलवर्ण पक्वावस्थामे पोतवर्ण, उष्ण और कटुरसपर विदग्ध होनेसे अम्लरस। सन्ताप, दाह, रक्त, पाण्ड या पीतवर्णता, उष्णता, पाक, स्वेद, क्लेद, पचन, स्राव, अवसाद, मूर्च्छा और मदरोग आदि पित्तके काय्य है। पित्तप्रकुपित होनेसे रोग विशेषानु-सार यह सब लक्षण प्रकाशित होते है।

कफके कार्य्य।—कफ स्वभावत श्वेतवर्ण, शीतल, गुरु, स्निग्ध, पिच्छिल विलम्ब से कार्य्यकारी और मधुर रस, पर विकृत होनेसे लवणस्वाद होता हैं। स्निग्धता, काठिनता, शैत्य,

श्वेतवर्णता, गौरव, कण्डू, स्रोतसमूहोंका रोध, स्निग्धता, स्तैमित्य, शोथ, अपरिपाक, अग्निमान्द्य और अतिनिद्रा आदि कफके कार्य्य हैं। कफ कुपित होनेसे रोगविशेष में यह सब लक्षण प्रकाशित होते हैं।

वायुप्रकोप शान्ति।—बलवान जीवके साथ मल्लयुद्ध, अतिरिक्त व्यायाम। अधिक मैथुन, अत्यन्त अध्ययन, ऊंचे स्थानसे गिरना, तेज चलना, पीडन या आघातप्राप्ति, लङ्घन, सन्तरण, रात्रि जागरण, भारवहन, पर्य्यटन या अश्वादि यानमें अतिरिक्त गमन, मलमूत्र अधोवायु, शुक्र, वमन, उद्गार, छींक और अश्रुवेग धारण, कटु, तिक्त, कषाय, रुक्ष, लघु और शीतल द्रव्य, शुष्कशाक, शुष्क मांस, मडुआ, कोदो, सामा और नीवार धान्य, मूग, मसूर, अडहर, मटर और सेम आदि द्रव्य भोजन, उपवास, विषमाशन, अजीर्ण रहते भोजन और वर्षाऋतु, मेघागमकाल, भुक्तान्नके परिपाक का काल, अपराह्नकाल वायु प्रवाहका समय, यहो सब वायुप्रकोप के कारण है। घृत तैलादि स्नेहपान, स्वेदप्रयोग, अल्प वमन, विरेचन, अनुवासन, (स्नेह पिचकारी), मधुर, अम्ल, लवण और उष्णद्रव्य भोजन, तैलाभ्यङ्ग, वस्त्रादि द्वारा वेष्टन, भयप्रदर्शन, दशमूल—क्काथ का प्रसेक, पैष्टिक और गौडिक मद्यपान, परिपुष्ट मांसका रस पान और सुखस्वच्छन्दता आदि कारणोंसे वायु शान्त होता है।

पित्तप्रकोप शान्ति।—क्रोध, शोक, भय और श्रमजनक कार्य्य, उपवास, मैथुन, कटु, अम्ल, लवण, तीक्ष्ण, लघु और विदाही द्रव्य, तिलतैल तिलकल्क, कुरथी, सरसों, तीसी, शाक, मछली, छागमांस, दही, दहीका पानी, तक्रकुर्च्चिका, सौवीर, सुरा, अम्लफल और माखनयुक्त दहीका मट्ठा आदि द्रव्य भोजन तथा शरत्

काल, मध्याह्न, आधीरात और भुक्तद्रव्यके परिपाकके वक्तमें पित्त प्रकुपित होता है। घृतपान मधुर और शीतल द्रव्य द्वारा विरेचन, मधुर, तिक्त और कषाय रसयुक्तभोज्य औषध सेवन, सुगन्ध, शीतल गन्ध सुङ्घना, कर्पूर, चन्दन, और खसका अनुलेपन, चन्द्र-किरण सेवन, सुधाधवलित गृहमें वास, शीतल वायु सेवन, मधुर गानवाद्य और वाक्य श्रवण, प्रियतम स्त्रीपुत्रके साथ कथोपकथन और आलिङ्गन तथा उपवन और पद्म कुमुदादि शोभित सरोवर तीरमें भ्रमण आदिसे पित्त शान्त होता है। इन्हीं सब कारणोंसे रक्तका भी प्रकोप और शमन होता है।

कफप्रकोप शान्ति।—दिवानिद्रा, परिश्रम शून्यता, अधिक भोजन, अजीर्ण भोजन, मधुर, अम्ल, लवण, शीतल, स्निग्ध, गुरु, चिकना, क्लेदजनक, यव, गेहूं हायन और नैषध धान्य, उरद, वर्व्वटा, तिलपिष्टक, दही, दूध, पायस, खिचडी, गुड, आनूप और जलचर जीवका मांस, चर्व्वी, मृणाल, पद्मफूल, सिङ्घाडा, ताड, मधुर फल, लौकी, कच्चा भतुवा, पक्का केला आदि द्रव्य भोजन तथा शीतल द्रव्य सेवन, शीतकाल वसन्तकाल, पूर्व्वाह्न, प्रदोष और आहारके बाद आदि कफ प्रकोपके कारण है। तीक्ष्ण वमन और विरेचन, मैथुन, शीत, जागरण, धूमपान, गण्डूष धारण, चिन्ता, परिश्रम, व्यायाम, पुराना मद्यपान, तथा रुक्ष, उष्ण, मधुर, कटु, तिक्त और कषाय रसयुक्त द्रव्य भोजन आदि कारणोंसे कफ शान्त होता है।

गर्भधारण के समय पिता माताका शुक्रशोणित आदि वायु प्रभृति तीन दोषोंमें से जिस दोषका अनुबन्ध अधिक रहता है, मनुष्य स्वभावत उसी प्रकृतिका होता है। तीनों दोष समान रहनेसे समप्रकृतिका होता है। वातप्रकृति के मनुष्यगण रुक्ष, कृश, भग्न-

वयव, अव्यक्तावयव, अगम्भीर स्वर, जागरूक, चञ्चलगति, शीघ्र कार्य्यकारी, वहुप्रलापी, बहुशराहृत, थोडो देरमें सामान्य कारणसे क्रोध आना, भीत, अनुरागी या विरागी, शीतसहन में असमर्थ, रूक्ष कर्कश केश, कर्कश श्मश्रु, कर्कश लोम, कर्कश नख, कर्कश दन्त, और कर्कशाश होते हे। तथा चलती वख्त सन्धियोंमें चट चट आवाज होती है और बार बार आखका निमेष गिरता है। पित्तप्रकृतिगण गरम सहने से असमर्थ, शुक्ल और सुकुमार गात्र, गौरवर्ण मृदु और कपिलवर्ण, केशश्मश्रु और लोमयुक्त, ताम्रनख, रक्तनेत्र, तीक्ष्ण पराक्रम, तीक्ष्णाग्नि, अधिक भोजनशील क्लेश सहनेमें अक्षम, द्वेषी, अल्प शुक्र, अल्प मैथुन और अल्प सन्तान-जनक होते है। तथा मुख, आख मस्तक और अन्यान्य अवयवो में गन्ध रहती है सर्व्वागमें तिल, मेहुआ, खुजली आदि पैदा होते है, वलिपालित्य और टाक भी पित्तप्रकृतिवालेको शीघ्र पडता है। कफप्रकृतिगण स्निग्धाग, सुकुमार शरीर, उज्ज्वल श्याम या गौरवर्ण, स्थिर शरीर, पुष्टाग, विलम्ब में कार्य्यकारक, प्रसन्न मुख, प्रसन्न दृष्टि, स्निग्ध स्वर, वलवान, तेजस्वी, दीर्घजीवी और अल्प क्षुधायुक्त होते है, तथा थोडेही कारण से क्रोधित नही होते है, शुक्र मैथुनशक्ति और सन्तति अधिक होती है। समधातु व्यक्तिगणोंके यह सब लक्षण मिले हुए होते है। इन सर्व मनुष्योंके समधातुका मनुष्य प्रशसनीय है।



वैद्यक-शिक्षा।

छठा खण्ड।

नरदेह-तत्त्व और जीव-विज्ञान।

—o—

ANATOMY & PHYSIOLOGY

जिस शास्त्रमें जीवित अवस्थामें प्राणीयोंके शरीरका यन्त्र और धातु समूहोंको क्रिया अथवा प्रवर्त्तनादि जाना जाता है उसको जीव विज्ञान कहते है। सामान्य तृणसे असामान्य मनुष्य तक सब इस विज्ञान जीव जगतके अन्तर्गत है। कारण देहको सृष्टि, पुष्टि और क्षय आदि सभी कारण एकही प्रक्रियासे, होती है। किन्तु उन सब विषयोंकी आलोचना करना इस पुस्तक का उद्देश्य नहीं है, यहा केवल मनुष्य जातिका शरीरतत्त्व और जीवविज्ञान सम्बन्धीय प्रयोजनीय व्यापार समूहोंका अनुशीलन करते है, इस लिये इस ग्रन्थको मानवशरीरतत्व और जीव-विज्ञान कहा जा सकता है।

प्राण क्या है।—प्राण क्या है? यह एक कठिन प्रश्न है। जीवसृष्टिके आदिकालसे वर्त्तमान समय तक इस प्रश्नका उपयुक्त उत्तर नहीं मिला है। भिन्न भिन्न कालोंमें भिन्न भिन्न वैज्ञानिक पण्डितोंने जीवतत्त्वकी आलोचनाकर इस कठोर प्रश्नके बारेमें जो सब प्रकाश कर गये है उससे यह जाना जाता है

कि मस्तिष्क, हृत्पिण्ड और श्वास यन्त्रके अप्रतिहत स्वाभाविक कार्य्यहो का नाम प्राण है। इस लिये उक्त तीन यन्त्रको "त्रिपाद" कहते है। किन्तु अधिक सूक्ष्म विश्लेषणसे जाना जाता है कि जीवन के सिर्फ दो पैर फुसफुस और हृत्पिण्ड है, कारण केवल मस्तिष्कमे आघात अथवा उसके विक्रियासे मृत्यु कभी नही होती पर वही चोट अथवा विक्रिया फुसफुस या हृत्पिण्डमें होनेसे मृत्यु होती है।

हृत्पिण्डका कार्य्य—शोणित सञ्चालन और फुस्फुसका प्रधान कार्य्य श्वास प्रश्वास है। शोणित सञ्चालन और श्वास प्रश्वास यह दोमे एक भी रहित होनेमे मस्तिष्क को क्रिया रहित होती है। किन्तु यदि किसी कृत्रिम उपायसे हृत्पिण्ड और फुसफुसका कार्य्य ठीक रखकर मस्तिष्का बाहर निकाल लिया जायतो जीव की मृत्यु नही होती है।

जीव क्या है ?—ऊपर कह आए है कि सामान्य तृणसे असामान्य मनुष्य तक सभी जीवपदवाच्य है। जीव जड और जङ्गम ऐसे दो श्रेणीमे विभक्त है। उद्भिदादि जड तथा चक्षुके अगोचर चलच्छक्तिविशिष्ट जीवानुसे पूर्ण मनुष्य तक को जङ्गम कह सकते है। यही दो प्रकारके जीवोंकी सृष्टि, पुष्टि और नाश प्राय एकही क्रियासे होता है।

कोष वा सेल (CELL)।—जीव विज्ञानवित् पण्डितोने बहुत खोजकर स्थिर किया है, कि जीवमात्रके देहमें असख्य कोषों (CELL) का एक समष्टि है। यह सब कोष अति सूक्ष्म रीतिमे जीवनी शक्तिका एक एक आधार है। इन सबका आकार इतना छोटा है कि विना अणुवीक्षण यन्त्रसे दिखाई नही देता। आधुनिक वैज्ञानिकोने इसका व्यास एक

इञ्चका ६००० वां अंश स्थिर किया है। हड्डी, मज्जा, मांस मेद, शोणित आदि शरीरके सब धातु इसी कोषसे बनाया गया है।

पलल या "प्रटोप्लाजम्" (Protoplasm)।—नयनके अगोचर अति सूक्ष्म जीवाणुरूप जीव जो जननीके जठरमें जन्म लेता है वह भी ऐसही एक कोषके सिवाय और कुछ नहीं है। परीक्षा करनेसे उक्त कोषमें एक प्रकार अर्द्धतरल पदार्थ दिखाई देता है उसका पलल या "प्रटोप्लाज्म्" कहते हैं। पलल स्वच्छ और वर्णविहीन क्षारमय पदार्थ जीवमात्रकी अनुप्राणनीशक्ति इस पललमें निहित है।

मृत्यु क्या है।—जड या जङ्गम जीवमात्रका शरीर असंख्य कोषोंकी समष्टि तथा उक्त कोषोंमें पलल नामक एकप्रकार अर्द्धतरल स्वच्छ पदार्थ और यह पलल जीवनीशक्तिका आधार स्थिर हुआ है। ऐसही शरीर उपकरणमें असंख्य जीवनीशक्ति है। जीवका देह जैसे असंख्य कोषकी समष्टी है वैसही जीवका जीवन भी क्षुद्र क्षुद्र पलल अर्थात् जीवनीशक्ति की समष्टी है। पहले कह आए हैं कि हृत्पिण्ड, फुसफुस् और मस्तिष्कका अप्रतिहत स्वाभाविक कार्य्यही जीवन भी है। जबतक यह कार्य्य होता रहता है तभीतक जीवन भी रहता है तथा इस कार्य्यकी निवृत्ति होनेसे मृत्यु होती है।

मृत्यु दो प्रकार।—साधारणकी धारणासे मृत्यु एकप्रकार, किन्तु वास्तवमें मृत्यु नानाप्रकार है। यही सब मृत्यु, स्थानिक (Local) और सार्व्वाङ्गिक (General) भेदसे दो भागमें विभक्त है। जीवदेहमें प्राय सर्व्वत्र प्रतिक्षणमें स्थानिक मृत्यु होती है। शरीरके भीतर और बाहरी त्वकमें सर्व्वदा असंख्य

सेल अर्थात् कोष विनाश होते हैं तथा नये नये कोष पैदा होकर स्थान अधिकार करता है। शोणितके लालकणा समूहोंमें भी सर्व्वदा ऐसाही परिवर्त्तन हुआ करता है। स्थानिक मृत्यु मनुष्यको सर्व्वदा दिखाई नहीं देती है तथा यह प्राणरक्षा में विशेष उपयोगी है।

स्थानिक मृत्यु (Local Death)।—कभी कभी स्थानिक मृत्यु विस्तृत स्थानमें फैलकर होते दिखाई देता है, किसी प्रकारकी क्षयकारी पीड़ा अथवा आघात लगनेसे शरीरके प्रभूत अंशकी मृत्यु होते देखते है। शरीरका कोई अंश जल जानेसे अथवा किसी स्थानमें फोड़ा होनेसे शरीरका चमड़ा अल्प या अधिक नष्ट हो जाता है। स्नायु, पेशी, हड्डी, चमड़ा आदि शरीर उपादान की मृत्यु होनेसे वह फिर पैदा होता है।

सार्व्वाङ्गिक मृत्यु (General Death)।—सार्व्वांगिक मृत्यु, दो प्रकार, समग्र शरीर की मृत्यु और शरीरके उपादान समूहों की मृत्यु प्रथमोक्त मृत्युसे हृत्पिण्ड फुसफुस और मस्तिष्कके सम्पूर्ण कार्य्य की निवृत्ति को कहते हैं। दूसरी मृत्यु शरीरके समस्त विधान उपादान अर्थात् समस्त कोष समूहोंका जीवन-शक्तिके सम्पूर्ण अपगम को कहते हैं। जीवकी मृत्यु होनेसे उसका समस्त शरीर पहिले मरता है, किन्तु शरीरके उपादान समूह शरीरके साथही नहीं मरते अकसर बहुत देरके बाद समस्त उपादानोंकी मृत्यु होता है। इसलिये फांसी आदि प्राणदण्डसे दण्डित व्यक्तिगण की मृत्यु होनेके थोड़ा देर बाद भी उपयुक्त उत्तेजक पदार्थके संयोगसे उसके पेशीमण्डलमें सङ्कोच होता है, इस अवस्थामें मनुष्य मर जानेपर भी पेशीसमूह बहुत देरतक जीवित रहती है।

मौलिक उपादान।

ELEMENTARY TISSUES

जीव शरीर को अच्छीतरह परीचा करनेपर उसके मौलिक उपादान समूह दिखाई देते है। जिसकी सख्या चार प्रकार (१) कौषिक, (२) सयोजक, (३) पैशिक और (४) स्नायविक, कोई २ शोणित और लसिका कोभी इसके साथ मिलाकर सब समेत पाच प्रकारके उपादान उल्लेख कर गये है।

पहले कह आये है कि जीव देहमें असंख्य कोशकी सख्यामात्र है। जो सब कोष त्वक, कफज और रसवाही झिल्लीको ढाके रखता है तथा जिसमे शरीरके अपरापर अङ्गोकी आवृत्ति होती है उसीको कौशिककला कहते है। शरीरके ऊपरवाले चमडेका कौशिककला प्रधान उपादान है। यहातक कि नख और केश त्वक्‌में भी कौशिक उपादान दिखाई देता है। इसके सिवाय नासारन्ध्र, मुखगह्वर, मलमार्ग और मूत्रमार्ग आदि प्रधान २ रन्ध्र तथा श्वासमण्डल, अन्त्रमण्डल, मूत्रण और जनन मण्डल के भीतर की गन्थी समूहोके नलमे भी यह भरपूर विद्यमान है।

सयोजक उपादान।

(CONNECTIVE TISSUES)

प्रकृति और कार्य्य।—जिसमे हड्डी, उपहड्डी बन्धन, आदि शरीरके अंगोंको अपने २ स्थानमें निबद्दकर कङ्काल बनावे तथा स्नायु, पेशी और ग्रन्थि यन्त्रोके गठन और आवरण कार्य्यमें सहायता करे उसको संयोजक उपादान कहते है। शरीरके सब अंग अपने २ स्थानसे अलग न होय अर्थात् उचित स्थानमें रहकर जीवनका उद्देश्य साधन करना ही सयोजक उपा-

दानका प्रधान कार्य्य है। यह सब कार्य्यसाधन के लिये यह शरीर के सब धातुओंसे मिला हुआ रहता है।

संयोजक उपादान कठिन और कोमलभेदसे दो प्रकार का है। किन्तु श्रेणीविभाग के लिये सचराचर तीन प्रधान विभागमें विभक्त है। तान्तव संयोजक उपादान, उपास्थि और अस्थि।

तान्तवसंयोजक उपादान।

यह विधानोपादान शरीरके प्राय: सभी कोमल अङ्गोंमें है। धमनी, पेशी, बन्धनी, रज्जू या अध: त्वक्, श्लैष्मिक झिल्लि, स्नायु और ग्रन्थि आदि आवरण, झिल्लि, तथा मस्तिष्क, प्लीहा और यकृत् आदि जो सब तन्तुवत् कर्द्दमसदृश, श्वेत, पीत और रक्तवर्ण पदार्थ दिखाई देते हैं, उसीको तान्तव संयोजक उपादान कहते हैं।

उपास्थि। (CARTILEGE)

पक्के नारियलके गरीकी तरह जो सब अर्द्धकठिन, अर्द्धकोमल पदार्थ नाक, कान, अस्थिका प्रान्त, श्वासनाली आदि स्थानोंमें दिखाई देता है, उसको उपास्थि कहते हैं। महर्षि सुश्रुत उपास्थि को तरुणास्थि कहते हैं। उपास्थि हड्डीकी तरह कठिन नहीं होती। उपास्थि नानाप्रकार तथा श्वेत, पीत और स्थितिस्थापक है। पीत उपास्थि मूषिक, चमगीदड़ आदि प्राणियोंके कानमें दिखाई देती है।

अस्थि। (BONE)

उपादान।—जीवदेह के कठिन पदार्थ को अस्थि कहते हैं। उपास्थिमें दो चार पार्थिव पदार्थ मिलानेसे हड्डी होती

है। लवणका चूर्ण इसका प्रधान उपादान है। यह दो उपादान निकाललेनेसे हड्डोमें कठिनता नही रहती और अति कोमल हो जाती है।

संख्या।—मनुष्यदेहमें दोसौ से अधिक अलग अलग हड्डी दिखाई देती है, किन्तु विशेष विचार कर देखनेसे जीवके सर्व्व अवस्था में अस्थिसख्या बराबर नही रहती। बाल्यावस्थामें बहुतेरी हड्डिया अलग अलग रहती है, वह फिर वार्डक्यमें एकत्र मिलजाती है। देखिये, मेरुदण्डमें पहिले ३३ अलग अलग कशेरुका रहती है, इससे ऊर्डांशको २४ कशेरुका जन्मभर वैसही अलग अलग देखनेमें आती है, बाकी ८ में ५ एकत्र मिलकर पृष्ठवंश मूलमें मिलजाती है। शेष ४ की एक हड्डी की जाती है, इसीको शङ्खावर्त्त काहते है। लडकापनमें करोटीमें २२ अलग अलग हड्डो रहता है, तथा जवानीमें इसकी संख्या और भी बढजाती है तथा बुढौतीमें फिर कम हो जाती है। छातीके दोनो तरफ १२ बारह कर २४ पर्शुका यानि पञ्जरी है। इससे अधिकाश उपास्थिसे छातीके हड्डोका सम्बन्ध है। यह सब पर्शुका पृष्टवंश अर्थात् मेरुदण्डसे आरम्भ हो धनुष की तरह टेढी हो छातीके हड्डोमे मिली हुई है। छातीके हड्डोके उपर कांधेके सामने और पाछे चक्र और अस फलकास्थि नामसे दो दो कर चार हड्डियां है।

करोटीमें ८ हड्डी है, यथा—ललाटमें १ और दोनो पार्श्वके उपरकी तरफ २ पार्श्वास्थि है। यह दोनो उपरकी तरफ परस्पर मिली हुई है। ऊर्द्ध शिर दोनों पार्श्वास्थिके नीचे दोनो पार्श्वमें दो शङ्खास्थि है। करोटीके जडमें और आगे एक शीर्षास्थि है। बाकी दो करोटीके पीछे पार्श्वमें है।

अस्थिके कार्य्य।—शरीरके अवयवोंमें हड्डो हो प्रधान उपादान है। हड्डो कठिन और हलको अथच लघु है, इसोलिये उक्त कार्य्योंमें यह विशेष उपयोगो है। हड्डो जैसो कठिन और हलको है वसहो यदि भारो होतो तो शरोरीगणोंका चलना फिरना एक तरहसे रहित हो जाता। हड्डो भीतरो कोमल यन्त्र समूहोंको (मस्तिष्क, हृत्पिण्ड, यकृत् आदि) बाहरो आघातादि से रक्षा करता है। करोटो और पर्शुका आदि यदि कठिन न हो कोमल होतो तो सामान्य चोटसे हो जोवका प्राण-नाश होता। हड्डो कठिन होनेके सिवाय किसोकदर इसमें स्थितिस्थापकता भो है। इसोलिये सहजमें नहो टूटतो, इसके सिवाय हड्डोसे भारो वस्तु उठाना, चलना, सिकोडना आदिमें भो विशेष सहायता मिलता है। *

दन्त।

दांत जिस उपादानसे बनाया गया है उसका नाम रद है। वही एक पदार्थ हड्डोको तरह कठिन है, इसोलिये दांतको अस्थि और संयोजक तन्तुको समश्रेणो कहकर एकत्र वर्णित किया है, दांतके अन्यान्य उपादान भी हड्डो हीको तरह है, इसालिये यहा

* हिन्दू आयुर्व्वेद के मतसे नरकङ्कालमें सब २४६ हड्डियां है।

सक्थिद्वय (दोनो निम्नशाखा)	६२	वदनमण्डल	१४
बाहुद्वय (ऊर्द्धशाखा)	६४	दोनो कान	६
छाती	२	जिह्वामूल	१
पृष्ठदेश	२६	अणुमण्डलास्थि	८
पर्शुका (पंजरी)	३२	दन्त	२
करोटोमें	८	मोट	२४६

दातके विषयमें भी कुछ कहना है। हिन्दू आयुर्वेद शास्त्रमें दातको रुचकास्थि नामकी आख्या है।

स्तनपायी अन्यान्य प्राणियोंकी तरह मनुष्य भी जीवनके दो निर्द्दिष्ट समयोमें दोवार दातमे सजाया जाता है,—प्रथम जब दात निकलते है उसको अस्थाई या दूधके दात कहते है। दूधके दात टूटकर फिर दूसरे दात जब आते है उसे स्थायी दन्त कहते है। स्थायी दात टूटनेपर फिर नही आते है।

दात चार प्रकार,—छेदन, शोवन, द्वाग्र और पेषण। ऊपर की पातीमें ४ और नीचेकी पातीमें ४ को छेदन दन्त, शोवन दन्त ऊपर दो और नीचे दो, द्वाग्रदन्त ऊपर ४ और नीचे ४, और पेषण दन्त ऊपर छ और नीचे छ, इसी तरह कुल ३२ दात हैं।

दात ठीक कौन वख्त निकलता है, इस विषयमें कुछ मतभेद दिखाई देता है, किसी बालक को छ मास होनेसे पहिले ही दात निकलता है, किसीको नवे महीने और किसीको १०वे महीने निकलता है। गरज मोटा ताजा सबल बालक को छठे महीने दात निकलता है। इसीलिये हमारे देशमें छठे महीने अन्नप्राशन करनेकी विधि है। पूतना आदि पीडासे हड्डीके पुष्ट होनेमें वाधा पडनेसे दात निकलनेमें देर होती है।

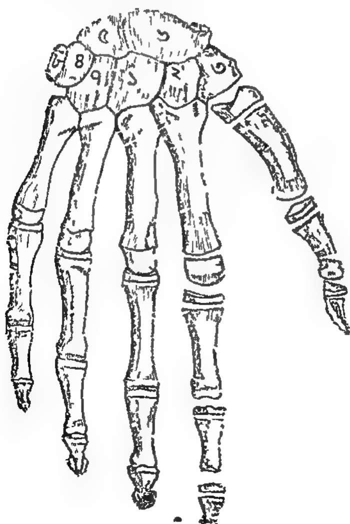
प्रत्येक दातमें सचराचर तीनभाग है, यथा—अग्र, ग्रीवा और मूल। बाहर निकले हुए भागको अग्र, इसके नीचेवाले भागको ग्रीवा तथा इसके नीचेवालेको मूल कहते है। दातका प्रधान उपादान रद नामक पदार्थ है। इसमें हड्डीकी अपेक्षा थोडा तान्तव पदार्थ भी है। यह रद एकप्रकार अस्थिमय पदार्थसे मण्डित है, दातकी उज्वलता और मसृणता इसीसे साधित होती है। रदका जो अग्र दन्तवेष्टके बाहर है उसीसे यह उज्वल पदार्थ दिखाई देता

२। खर्व्वास्थि—सब समेत ३० हैं, देहके जिस अंगमें अधिक बल किन्तु कम सञ्चालन क्रिया की जरूरत है, यह हड्डी इन्हीं सब स्थानोंमें रहती है।

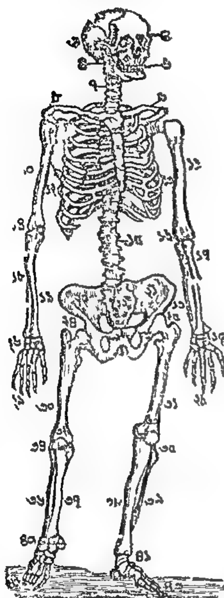
३। प्रशस्त अस्थि—की संख्या ३८ है। यह भीतरी यन्त्र समूहों के चारो तरफ दीवालकी तरह घेरकर चोटसे रक्षा करती है।

४। विविधाकार अस्थिसमूह—की संख्या ३९ है। यह पृष्ठ-वंशास्थि, शङ्खावर्त्त शङ्खास्थि, शीर्षपरास्थि, कोन्नकास्थि और कशेरुका हड्डीयोंकी श्रेणीके अन्तर्गत है।

हाथ और पांच अङ्गुली।



नरकङ्काल।



तालु, शङ्ख, और मस्तक मे कपोल नामक हड्डिया है। दातको रुचक अस्थि कहते है। नासिका, कर्ण, ग्रीवा और आखके दोनो कोनोंमे तरुण अस्थि रहती है। तरुण हड्डियोंको अङ्गरेजोमें कार्टिलेज (Cartilege) अर्थात् अधुना उपास्थि कहते है। वलय नामक हड्डिया पाणि, पाद, पार्श्व, पृष्ठ, उदर और छातोमें दिखाई देती है। अवशिष्ट स्थानो में नलक नामक हड्डिया रहती है। सुश्रुतोक्त तरुण हड्डी अर्थात् कार्टिलेज को छोड देनेसे केवल चारही प्रकार बाकी रहता है। सुतरा डाक्तरी शास्त्रोक्त चार प्रकार की हड्डी योंके साथ इसकी समानता हो सकती है। किन्तु इसमें कौन दीर्घ और छोटी तथा कौन विविधाकार है इसका निर्णय करना कठिन है।

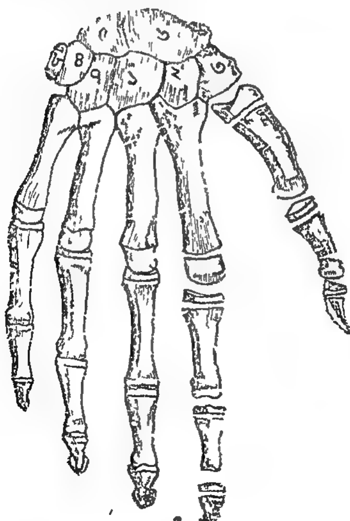
१। दीर्घास्थि—मनुष्य शरीरमे सब समेत ८० दीर्घास्थि है। इन्हीं सब हड्डीयोंसे देहकी रक्षा होती है, तथा चलना फिरना, भारी वस्तु उठाना और उठना बैठना कार्य्य इसीसे होता है। इसमे प्रत्येक के मध्यमें अस्थिमज्जानाली और एक एक काण्ड है।

२। खर्व्वास्थि—सब समेत ३० है, देहके जिस अंशमें अधिक बल किन्तु कम सञ्चालन क्रिया की जरूरत है, यह हड्डी इन्हीं सब स्थानोंमें रहती है।

३। प्रशस्त अस्थि—की सख्या ३८ है। यह भीतरी यन्त्र समूहों के चारो तरफ दीवालकी तरह घेरकर चोटसे रक्षा करती है।

४। विविधाकार अस्थिसमूह—की सख्या ३८ है। यह पृष्ठ वंशास्थि, शङ्खावर्त्त शङ्खास्थि, ग्रीविरास्थि, कोलकास्थि और कसे-रुका हड्डीयोंकी श्रेणीके अन्तगत हैं।

हाथ और पाच अङ्गुली।



अस्थिसन्धि या जएण्टस्। (Joints)

उत्थान, गमनागमन, भारोत्तोलन आदि क्रिया जिससे वेखटके होती है उसको अस्थिसन्धि कहते हैं। अस्थिसन्धि तीन प्रकार में विभक्त की जाती है। (१) अचलसंधि, (२) आंशिक चलत् संधि, और (३) चलत् संधि।

अचलसन्धि और उसके भाग।—१। केवल नीचे वाली हनुसंधिके सिवाय बाकी करोटी और मुखमण्डल तथा और सब संधिको अचल सन्धि कहते हैं। यह अचलसंधि ३ उपश्रेणीमें विभक्त है तथा इसमें सेवनी संधि ही प्रधान है। २ आरोके दांत परस्पर मिलानेसे जैसा दिखाई देता है, सेवनीसंधि भी ठीक वैसही दिखाई देती है। करोटीकी संधि भी ऐसही है।

२। आंशिक चलत् सन्धि—थोड़ी सञ्चलनशील है। कशेरुका और वस्तिके अधिकांश सन्धि इसी श्रेणीके अन्तर्गत है।

३। चलत् सन्धि—की चार प्रकार उपश्रेणी है, (क) कई चारो तरफ सञ्चलनशील सन्धि, यह सन्धि सब तरफ आवर्त्तित होती है। (ख) उदूखल सन्धि, यह सन्धि सब ऊखल की तरह गह्वरमें दूसरी हड्डीका गोलमुख प्रविष्ट हुआ रहता है। स्कन्धसन्धि और ऊरुसन्धि इसी श्रेणीके अन्तर्गत है। (ग) जानु-

---

महर्षि सुश्रुत कहते हैं।

सन्धयस्तु द्विविधाश्चेष्टावन्तः स्थिराश्च।
शाखासु हन्वोः कट्याञ्च चेष्टावन्तस्तु सन्धयः।
शेषास्तु सन्धयः सर्व्वे विज्ञेया हि स्थिरा बुधैः॥

अर्थात् सन्धि दो प्रकार, चेष्टावान और स्थिर। हाथ, पैर हनु और कमरकी सन्धि चेष्टावान अर्थात् सचल, अवशिष्ट सन्धि को अचल जानना। हजारों वर्ष पहिले महर्षि सुश्रुत जो कहगये है, आधुनिक डाक्टरी मतके साथ उसका कितना सादृश्य है देखिये।

सन्धि, गुल्फसन्धि और कफोणिसन्धि दूसरे श्रेणीके अन्तर्निविष्ट है। (घ) आवर्त्तनशील सन्धि। इसके सिवाय प्रकोष्ठ और कौदन्त संधि भी इसी श्रेणीके अन्तगत है।

देहकाण्ड के अस्थिसमूह।

१। पृष्ठवंशको अस्थिसंधि। यह संधि कशेरुका समूह के अस्थिका कोई अंश और प्रवर्द्धनासे बनी है।

२। पार्श्वकपाल अस्थिकासंयोग।

३। पार्श्व कपालके साथ आखका संयोग।

४। हनुसंधि।

५। कशेरुका समूहके साथ पर्शुका का संयोग। यह सब अचलसंधिकी बन्धनी इतनी दृढ़ है कि सहजमें उसको अलग नहीं किया जा सकता है।

६। उरोऽस्थिके साथ पर्शुका का संयोग। इसमें एक अर्द्ध चलत् और ६ चलत् संधि है, पर्शुका उपास्थि और वक्ष अस्थिके किनारे की संधि।

७। वस्तिके साथ पृष्ठवंशास्थिका संयोग। यह सात प्रकारकी सन्धिके सिवाय कायमें और एक प्रकार संधि है।

ऊर्द्ध शाखा की सन्धिसमूह।

१। उरःअस्थिके साथ जत्रु अस्थिका संयोग। जत्रुका आभ्यन्तरिक प्रान्त, छाती और प्रथम पर्शुका के उपास्थिके साथ यह सन्धि निर्मित है।

२। अंशफलकास्थि के साथ जत्रु अस्थिकी संधि।
३। अंशफलकास्थि को प्रकृत सन्धियां।
४। स्कन्धसंधि।
५। कफोणिसंधि।
६। कोदण्डास्थिके साथ प्रकोष्ठास्थिका संयोग।
७। मणिबंधसंधि।
८। मणिबंधमें पङ्क्तिवत् अस्थिसमूहोंका संयोग।

निम्नशाखाकी संधिसमूह।

१। ऊरुसंधि।
२। जानुसंधि।
३। अग्रजङ्घास्थिके साथ अनुजङ्घास्थिका संयोग।
४। गुल्फसंधि।
५। प्रपदास्थिसमूहोंका संयोग।
६। अङ्गुलिसमूहोंका संयोग।

द्विविध सन्धि।—महर्षि सुश्रुत ने क्रियाविशिष्ट और स्थिर ऐसे दो भागोंमें संधियों को विभक्त किया है। हाथ पैर हनु, और कमर इन स्थानोंकी संधिको क्रियाविशिष्ट तथा बाकी को स्थिर कहते हैं। सब समेत २१० संधि हैं। जिसमें हाथ पैर में ६८, कोष्ठमें ५९, ग्रीवाके ऊपर ८३, प्रत्येक पदाङ्गुलिमें तीन तीन कर १२ और अङ्गूठेमें २ सब समेत १४, जानु, गुल्फ और वङ्क्षण में एक एक। प्रत्येक पैरमें १७ कर ३४, इसी प्रकार दोनों हाथों में भी ३४ संधि हैं। कमर और कपालमें ३, पृष्ठमें २४, दोनो पार्श्वमें २४, छातीमें ८, गरदनमें ८ और कण्ठमें ३ संधि हैं। नाड़ी, हृदय और क्लोममें १८ तथा दांतमें जितने दांत उतनीही संधि हैं। कण्ठमें एक,

नाकमें एक नेत्रमें दो, गाल, कान और शङ्खमें एक एक, हनुमें दो, भौंके उपर दो, दोनो शङ्खमें दो, सिरके खोपडोमें ५ और मूर्द्धमें एक।

सन्धि आठ प्रकार।—उपरोक्त सन्धियां ८ प्रकार, यथा कोर, प्रतर, उदूखल, सामुद्र, तुन्नसेवनो, वायसतुण्ड, मण्डल और शङ्खावर्त्त। अगुलि, मणिवध, जानु, गुल्फ और कूर्पर इन सब स्थानोंको सधिको कोरसधि कहते है। कान्ख वन्नण और दांतके सधिको उदूखल, कधा, मलद्वार, योनि और नितम्बके सधिको सामुद्र, गरदन और पोठके सधिको प्रतर, मस्तक, कमर और कपालके संधिको तुन्नसेवनो, तथा दोनो हनुके सधियोंको वायसतुण्ड कहते है। कण्ठ, हृदय, नेत्र, क्लोम और नाडो की सधि, मण्डल नामसे अभिहित है।

पेशोसमूह। (Muscles)

प्रकृति और विभाग।—पेशियोंसे देह और अन्य सब सञ्चालित होते हे। स्थितिस्थापक, किञ्चित् लालरगके पतले तन्तुमय पदार्थ को पेशो कहते हैं। इसमें बहुत पानो रहता है। पेशो दो श्रेणीमें विभक्त है। (१) इच्छानुग, और (२) स्वाधीन। अन्नवहा नाला, मूत्राशय, जननेन्द्रिय, धमनोको दोवाल, विशेषकर शिरा और लसिका नाम्नो सम्रूहो की दीवाल आदि स्थानोमें स्वाधोन पेशो देखाइ देतो है। बाको स्थानोमें इच्छानुग पेशो है।

पेशीसंख्या।—मनुष्यके देहमें प्राय चार सौ पेशी है, जिसमें करोटीके पेशोके बारेमें पहिले लिखता हू। (१) ललाट और कपालके पोछेको पेशोसे भी, ललाट और मुखमण्डल की क्रिया प्रकाश होतो है। (२) अक्षिपुट सम्मिलक पेशो, इससे अक्षिपुट बन्द होता है। (३) भ्रूसङ्कोचक पेशो, इससे भी नोचे

और भीतरके तरफ आकृष्ट होता है। (४) अचिपुटाग्र—आकर्षक पेशी, यह अचिगोलक के उपर अश्रुग्रन्थिका छिद्र और अश्रुग्यानी को दबा रखती है। (५) एक पेशी उपर के अचिपञ्जर को उठाती है। (६) और एक पेशी अचिगोलक के उपर है। (७) एक पेशी नीचेकी तरफ है। (८) एक पेशी भीतरकी तरफ। (९) एक पेशी बाहरकी तरफ। (१०) अपर एक पेशी सामने और पीछे अचरिखामें घूमती है। (११) एक पेशी अचिगोलक के पीछे और बाहर घूमती है, तथा यानोनिका को अचिकोटर के बाहरी और उपरवाले कोनेमें ले जाती है।

इसके सिवाय नासिकामें तीन, जहँ ओष्ठमें छः, अधरमें चार, हनुमें पांच, कानमें तीन, कानके भीतर चार, ग्रीवाके सर्व्वत्र तैतीस, तालुमें आठ, पीठमें सब समेत सात, छातीमें पांच, उदरमें छः, विटपमें आठ किन्तु स्त्रीके विटपमें सात, कधके ऊर्ध्वशाखा और प्रगण्डमें पदरह, प्रकोष्ठमें इक्कीस, हाथमें एगारह और सक्थि अर्थात् निम्नशाखामें बावन यही सब प्रधान पेशी हैं। इसके सिवाय और भी दोसौ छोटी शाखाप्रशाखा पेशी हैं।

स्नायुसमूह। (Nerves)

पेशी और स्नायु।—स्नायु क्या है?—पेशी समूहोंसे शरीर अथवा शरीर के अङ्गप्रत्यङ्ग सञ्चालित होते हैं, किम्बा अपने अपने कार्य्यसाधनमें समर्थ होते हैं। यह शक्ति स्नायुमण्डलसे पेशीको मिलती है। अर्थात् स्नायुके सहायतासे पेशी अपना काम करती है तथा हमलोग जैसे चलते, फिरते, उठते, बैठते और काम कर सकते हैं। क्षुधा, तृष्णा, काम, क्रोध आदि वृत्ति और प्रवृत्ति आदि सब स्नायुके कार्य्य हैं। रूपदर्शन, शब्द

मस्तिष्कके झिल्लोसे मिलो हुई है। मेरुमज्जासे ३१ युग्म स्नायु उत्पन्न हुई है, इसोलिये यह स्नायु सब मेरुमज्जाजात स्नायु नामसे अभिहित है। कसेरुकाकेपाससे जो जो स्नायु निकाला है, कसेरुका उसी उसी नामसे प्रसिद्ध है।

गरदनमें ८ स्नायु है। यह स्नायु जितनी नोचे गई है, आकार भी उसका उतनाही बढता गया है।

पोठमें १२ स्नायु है। इसमे प्रथम स्नायु पोठके प्रथम और द्वितीय कसेरुका के मध्यभागसे और शेष स्नायु द्वादश सख्यक पृष्ठावलम्बो और प्रथम सख्यक कामरको कसेरुका से उत्पन्न हुई है।

कामरमें स्नायु १० दश,—प्रत्येक पार्श्वमें पाच करके है। इसमें बहुतेरो नोचे वर्द्धितायतन हो साहानुभूतिक स्नायुसे मिला हुआ है।

पूर्व्वोक्त विविध स्नायुके सिवाय पृष्ठवंशमूलमें पाच और शङ्खावर्त्तमें एक स्नायु और है। यही दो प्रकार स्नायु यथाक्रम पृष्ठवंशमूलोय और शङ्खावर्त्तोय स्नायु नामसे अभिहित है। ऊपर जितनी स्नायुका नाम कहा गया है, इन स्नायुओंके सिवाय क्षुद्र और वृहत् बहुतेरो स्नायु तथा साहानुभूतिक स्नायु नामसे और एक स्नायु है।

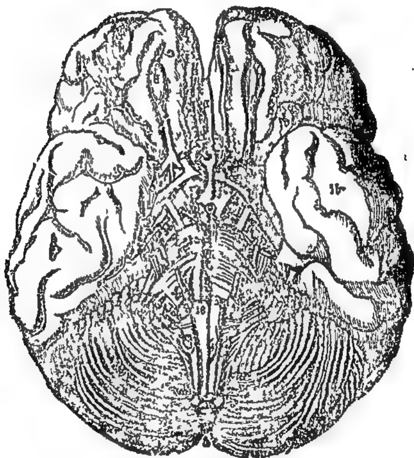
स्नायुसमूह।

—०—

(क) मस्तिष्कका सामना। (ख) मुखमण्डलको स्नायु। (ग) पश्चात् मस्तिष्क और मातृका। (घ) कशेरुका मज्जा। (ङ) ऊर्द्ध

मस्तिष्कके चार भागोमें वृहत् मस्तिष्क ही सबसे बडा है इसका वजन ४३से ५३ औंस है। करोटी गह्वरके उपरि अग्रमें इसका स्थान है। यह स्नायुमय पिण्डपदार्थ अंडेकी तरह होताहै।

मस्तिष्क की तस्वीर।



मेरुरज्जु ।

झिल्ली और स्नायु ।—कसेरूका प्रणालीके भीतरवाली स्नायुकी पोली नलीके पिण्डको मेरुरज्जु कहते है। यह तीन मज्जामय झिल्लीसे आच्छादित है, तथा वही तीन झिल्ली अनेक अंशोंमें

मस्तिष्कको झिल्लोसे मिलो हुई है। मेरुमज्जासे ३१ युग्म स्नायु उत्पन्न हुई है, इसोलिये यह स्नायु सब मेरुमज्जाजात स्नायु नामसे अभिहित है। कसेरुकाकेपाससे जो जो स्नायु निकाला है, कसेरुका उसी उसी नामसे प्रसिद्ध है।

गरदनमें ८ स्नायु है। यह स्नायु जितनी नोचे गई है, आकार भो उसका उतनाही बढता गया है।

पोठमें १२ स्नायु है। इसमें प्रथम स्नायु पोठको प्रथम और द्वितीय कसेरुका के मध्यभागसे और शेष स्नायु द्वादश सख्यक पृष्ठावलम्बो और प्रथम सख्यक कामरको कसेरुका से उत्पन्न हुई है।

कमरमें स्नायु १० दश,—प्रत्येक पार्श्वमें पाच करके है। इसमें बहुतेरो नोचे वर्द्धितायतन हो साहानुभूतिक स्नायुसे मिला हुआ है।

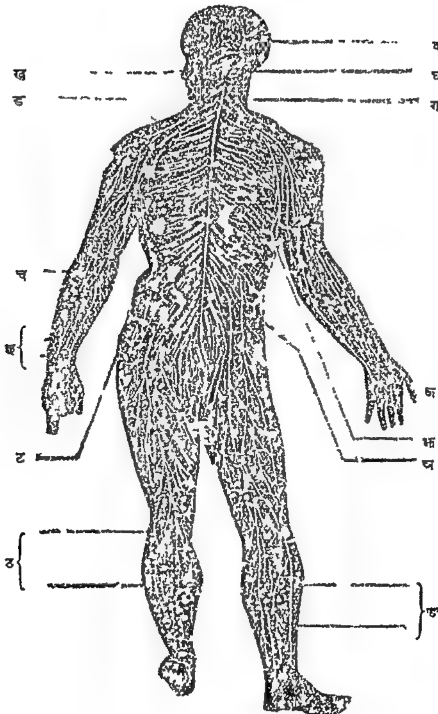
पूर्व्वोक्त विविध स्नायुके सिवाय पृष्ठवंशमूलमें पांच और प्रज्ञावर्त्तमे एक स्नायु और है। यहो दो प्रकार स्नायु यथाक्रम पृष्ठवंश-मूलोय और प्रज्ञावर्त्तीय स्नायु नामसे अभिहित है। ऊपर जितनी स्नायुका नाम कहा गया है, इन स्नायुओंके सिवाय क्षुद्र और वृहत् बहुतेरो स्नायु तथा साहानुभूतिक स्नायु नामसे और एक स्नायु है।

स्नायुसमूह।

— ० —

(क) मस्तिष्कका सामना। (ख) मुखमण्डलको स्नायु। (ग) पश्चात् मस्तिष्क और मातृका। (घ) कशेरुका मज्जा। (ङ) ऊर्द्ध

शाखाका स्नायु। (च) प्रकोष्ठका स्नायु। (छ) मणिबन्ध और हाथ का स्नायु। (ज) अङ्गुली का स्नायु। (झ) छाती और पीठका



स्नायु। (ञ) निम्न शाखा को स्नायु। (ट) ऊरुकी स्नायु। (ठ) जानु और पैर को स्नायु।

बगल को तस्वोरमें शरीरके समस्त स्नायुविधान दिखाये गये है। मस्तिष्क के सम्मुख अग्रमें मात्रका मूलाधार और कशेरुका-मज्जा दिखाई देती है, तथा मस्तिष्क और कशेरुका मज्जा से जितनी स्नायु निकल कर शरीर के नानास्थानों मे व्याप्त हुई है, वह दिखाया गया है।

शरीर और मन।

दोनोंमे प्रभेद।—पहिले कह आए है कि, शत मत्त-मातङ्ग के तुल्य बलवान व्यक्तिके मस्तिष्क मे सामान्य चोट लगनेसे वह निर्जीव जड मांसपिण्डकी तरह जमोनपर गिरपडता है। इस अवस्थामें वह मुर्देको तरह हो जाता है, पर सेवा करनेसे तुरन्त ही जाग उठता है, मानो उसको किसी तरह की कोई तकलोफ नही हुई थी। उत्कट मनोवेग अथवा विकट दुर्गन्धसे भी कोई कोई स्नायविक प्रकृतिवाले मनुष्य को ऐसही अवस्था हो जाया करता है। मनके साथ शरीरका कितना घना सम्बन्ध है, यह इससे जाना जाता है। तथा इससे यह भी स्पष्ट है कि शरीर अर्थात् पेशो सब मनके सम्पूर्ण आधीन है। पर थोडा विचार करनेहा से यह बात भूल मालूम होगी। इसका कारण यह है कि मानलो कि किसीके पृष्ठवंश या पीठमें किसीने छूरी मारा अथवा गोली किया, इससे उसका मेरुदण्ड दो टूकडे हो गया और बाकी यन्त्र सब ज्योंके त्यों है। तुम समझोगे कि वह अब नही बचेगा। यह न हो वह बच गया और उसके बाकी सब

यन्त्र ठोकहै। उसका मनभी पूर्व्ववत् है सिर्फ मेरुदण्ड कट जानेसे सीधा खडा होनेकी शक्ति लोप हो गई है। सिर्फ यही नही उसके दोनो पैरकी अनुभूति शक्ति भी नष्ट हो गई है, इसलिये वह इच्छानुसार नीचेका अङ्ग चलाने अथवा वहांकी पेशी समूहोंका सङ्कोच और विस्तार नही कर सकता है। इससे मालूम होता है कि उक्त अवस्थामें नीचेके अङ्गोंके उपर मनकी क्षमता नही रहती है।

मन कहां है।—विचारकर देखनेसे मालूम होता है कि मस्तिष्क ही सब प्रकार की अनुभूति शक्ति और मानसिक कार्य्य का आधार है तथा सब स्वेच्छानुग पेशी प्राय सर्व्वतोभावसे इसी मस्तिष्क के आधीन हैं। सुतरां मस्तिष्क ही मनका आधार है।

—०—

शोणितसञ्चालन प्रणाली।

कार्य्य और अपचय।—जीवदेह कभी भी निष्क्रिय नही रहता, जीव खुद क्रियाशून्य और निश्चिन्त मनसे बैठा रहने-पर भी शरीरयन्त्रके भीतर उसके नानाप्रकारके कार्य्य हरवक्त जारी है,—हृत्पिण्ड, फुसफुस, धमनी, शिरा, पाकस्थली, प्लीहा, यकृत आदि अपने अपने कार्य्यमें लगातार लगे हुए हैं। इन सब के कार्य्य क्रमश. दिखाये जायगे। पर इन सबके परिश्रम से प्रत्येक की सञ्चित शक्ति क्रमश अपचय हो जाती है, कारण कार्य्यके होनेसे उसकी शक्तिका भी थोडा अपचय होता ही है।

शक्ति-सञ्चय।—जिस शक्तिका एक दफे अपचय या क्षय हुआ, वह फिर शरीर यन्त्रमें पूर्ण नहो होता। उसे बाहरी द्रव्यसे पूरा करना पड़ता है. बाहरी द्रव्यका नाम है भोजन। हमलोग जो कुछ खाते हैं वह, पाकस्थली में जाकर शोणित, मलमूत्र आदिमें क्रमश. परिणत होता है। इसी शोणित से क्षय हुई शक्तिका फिर सञ्चय होता है तथा मलमूत्रादि शरीरके दूषित पदार्थोंको बाहर निकालते हैं। अतएव शोणित ही जीवकी शक्ति है। इसका रङ्ग लाल है, इससे सचराचर इसे रक्त कहते हैं।

शोणित क्या है?—शोणित क्या है? शोणित एक खारा और पतला पदार्थ है। इसमें जलीय. कठिन और वायव पदार्थभी मिला है। स्त्री और पुरुष तथा उमर और अवस्था भेदसे वही सब पदार्थ के परिमाण में प्रभेद हो जाता है। अर्थात् शोणित के १०० भागमें ७९ भाग पानी और २१ भाग सूखा कठिन द्रव्य दिखाई देता है। वायुमें यवाक्षार और खट्टा जितना है, ठीक उतनाही शोणित में पानी और कठिन पदार्थ है। अर्थात् शोणित में चार आने कठिन पदार्थ और बारह आने केवल पानी है, तथा इक्कीस भाग कठिन पदार्थ में १२ भाग सफेद और लाल कणिका है बाकी ९ भागमें ६ भाग एलुविडमेन नामक पदार्थ और तीन भाग लवण, वसा और शर्करा है। इसके सिवाय शरीरके भीतरकी शक्तिका क्षय हो जो सब पदार्थ शरीरके बाहर निकलते हैं, उसका कुछ अंश और फाइब्रिन नामक एक प्रकार तन्तु सदृश पदार्थका कुछ कुछ अंश शोणित में दिखाई देता है।

वायव पदार्थ।—शोणितका प्राय आधा हिस्सा वायव

पदार्थ इसमें है, अर्थात् प्रति १०० इञ्चा गाढे खूनमें कुछ कम ५० इञ्चो गाढा वायव पदार्थ है। यह वायव पदार्थ को अङ्गाराम्ल, अम्लजान और जवाखारजान कहते है। यही वायव पदार्थ बाहरी हवामें भी है। बाहरी वायुमें बारह आने यवाखार जान, चौथाई अम्लजान और अङ्गाराम्लका बहुत सामान्य लेशमात्र दिखाई देता है। पर शोणितमें वायव पदार्थ का परिमाण ऐसा नहीं है, शोणित में प्राय दश आने अङ्गाराम्ल और कुछ कम छ आने अम्लजान और बहुत कम जवाखारजान है।

पहिले कह आए है कि उमर, आहार, धातुप्रकृति, और स्त्री पुरुष भेदसे स्वस्थ्य अवस्था में भी शोणितके उपकरण समूहोंमें तारतम्य दिखाई देता है।

१। स्त्री पुरुष भेद। स्त्री जातिको अपेक्षा पुरुषके शोणितमें लाल कणाका परिमाण बहुत वेशी है, इससे स्त्रीका अपेक्षा पुरुषमें गुरुत्व भी अधिक है।

२। ससत्त्वावस्था। गर्भिणीके शोणितमें लाल कणाका परिमाण कम रहता है, इसीलिये ससत्त्वावस्था की अपेक्षा शोणित में गुरुत्व भी कम है।

३। वयस। गर्भस्थ बालक से दो महीनेतक के बालकके शोणित मे कठिन पदार्थ विशेषकर लालकणाका परिमाण बहुत अधिक है। लडकपन मे यह कठिन पदार्थ नीचे बैठजाता है तथा यौवन और प्रवीण अवस्था में फिर उपरको उठ आता है। तथा बुढोता मे यह कम हो जाता है।

४। धातुप्रकृति। तामसिक प्रकृति या क्रोधी स्वभाववालेके शोणित मे कठिन द्रव्य अर्थात् लालकणिका का परिमाण अधिकतर रहता है।

५। खाद्य। मांसाहारी की अपेक्षा शाकभोजीके शोणित में कम कठिन द्रव्य दिखाई देता है।

६। शोणित मोक्षण। फस्द लेनेसे शोणितकी लालकणिका का परिमाण कम हो जाता है।

वर्ण और विभिन्नता।—शरीरके सब स्थानोंके, शोणित का रङ्ग एकसा नहो है, धमनीका रक्त शिराके रक्तकी तरह नहो होता, तथा शिरामण्डल में भो सब जगह एकसा रक्त नहो है। धमनीके शोणितका रङ्ग उज्वल लाल, कारण इससे अम्लजान अधिक है, शिरा मण्डलका शोणित बैंगनी रङ्ग कारण उसमें अम्लजान कम है। इसके सिवाय धमनीका शोणित जितना जल्दी जम जाता है उतना जल्दी शिराका शोणित नहो जमता। तथा फुसफुस, यकृत् और प्लीहाकी शिरायोंका शोणित भी और शिरायोंके शोणित से भिन्न प्रकार है।

रक्तका परिमाण।—जीव शरीर में कितना रक्त है, इसका अभ्रान्त निर्णय करना अति कठिन है, तथापि बहुत विचार करने पर स्थिर हुआ है कि जीवकी शारीरिक बोझके साथ रक्तका भी अनेक सम्बन्ध है। पण्डितगणोंने अनेक परिक्षा-कर निर्णय किया है कि शरीरके समग्र भागके प्राय १।१२ से १।१४ भाग शोणित जीवके शरीरमें रहता है। मनुष्यका भी ठीक ऐसही है। पर अवस्था भेदसे कुछ तारतम्य दिखाई देता है। भरपूर भोजनके थोडी देर बाद शरीरके रक्तका जो परिमाण रहता है उपवास से उससे कुछ कम हो जाता है।

रक्तका उपादान।—रासायनिक उपकरणके सिवाय बाकी शोणितके जो सब प्रधान उपादान है, यहा उसका सक्षेप से और लिखा जाता है। शोणित के चार प्रधान उपादान है।

जैसे (१) रस, (२) कस, (३) कणिका और (४) तन्तु। शोणित के पतले अंशमें जो कणिका सब तैरतो है उसको रस कहते है। शोणितसे खूनका गाढापन निकाल लेनेपर जो मैला पतला पदार्थ बाको रहता है वही उसका कस है। कणिका दो प्रकार (१) श्वेत अथवा वर्णहोन (२) और लाल कणिका। स्वस्थ शरोर मे खूनको सफेद कणिका को अपेक्षा लाल कणिका अधिक रहतो है, कारण वही कणिका रक्तका सार पदार्थ है और इसीकी सत्तासे शोणित का रङ्ग लाल होता है।

रक्तका उद्भव।—लाल कणिका ही जब रक्तका प्रधान सार पदार्थ है, तब उसको उत्पत्ति निर्णीत होनेही से रक्तका उद्भव स्थिरीकृत हो सकता है। कोई कोई कहते है, जीवकी पर्शुका अर्थात् पञ्जरास्थि समूहो के भीतर जो लाल रङ्गको मज्जा है उसीमे से खूनके लालकण उद्गत और परिपुष्ट होते है। कोई कहते है, प्लोहाके उपादानमें लाल और वर्णहीन दोनो कणिका पैदा होती है। किसीका मत यों है कि सफेद कणिका सब दिन पाकर लाल कणिका का रूप धारण करती हैं। गरज इस विषय में अबतक कोई अभ्रान्त मत प्रचार नहो हुआ है।

शोणित की क्रिया।—शोणित जैसा जीवका प्रधान साधन है, वैसाही यह शरीर के बाहरी और भीतरी सब यन्त्रोंका जीवन स्वरूप है। कारण इससे सब क्रिया को कुशलता साधित होती है। जो स्नेह पदार्थ मस्तिष्क का प्रधान उपादान है वह शोणित से उत्पन्न होता है। शोणित छातीका गह्वर, अस्थिका झिल्लीजाल और मज्जा, मज्जाकी कोमलता, पेशोका तन्तु, पाकस्थली की पाचकाग्नि, मुखकी लार, यकृत् का पित्त, त्वक्में

मूत्र, आखमें आसु, त्वकमें पसीना, मस्तकमें केश, और अङ्गुलियोंमें नख की योजना कर सबको परिपुष्ट भी रखता है।

शोणित-सञ्चालन।

शोणितका चलाचल।—पहिले कह आये हैं कि शोणित ही जीवका मूल आधार है खाया हुआ अन्न परिपाक हो शोणित होता है। तथा यह सारे शरीरमें व्याप्त हो रहता है और इसके चलाचल के लिये शरीरके समस्त अङ्गो में रास्ता या नाली हैं। वही नाली धमनी, शिरा आदि नामसे प्रसिद्ध है। वृक्षादि स्थावर जीव जैसे पृथिवी से रस आकर्षण कर जीवित रहते हैं, जङ्गम जीवगण जैसे पाकस्थलीके अन्नसे रक्त सग्रह कर जीवन की रक्षा करते हैं। धमनी और शिरायें भी वैसही शरीरकी सब अङ्गोंमें शोणित लेजाकर शरीरको सजीव रखती है। इस नालीका शोणित शरीरके सब अङ्गोमें पानीकी तरह व्याप्त है।

सच पूछिये तो हृत्पिण्डही शोणितका प्रधान आधार है। हृत्पिण्ड से धमनी और धमनी से शिरामण्डलमें प्रवाहित होता हैं। यहासे फिर शोणित फुसफुससे होते हुए हृत्पिण्डमें लौट आता है और हृत्पिण्ड से फिर धमनी और शिरामें जाता है। इसी तरह शरीर यन्त्रमे शोणित बराबर चलता रहता है। शोणित की नाली में कोई द्रव्य रहनेसे शोणित प्रवाह में वह भी डोलता फिरता है। यदि वह पदार्थ दूषित हो तो मुहुर्त्तभर में सारे शरीर को दूषित कर डालता है। इसीलिये शरीर के चाहे जिस प्रान्तमे साप काटनेसे थोडेही देरमें शोणित मण्डल विषाक्त हो मृत्यु आ घेरती है।

नाडो।—हृत्पिण्डमें शोणित बराबर चलता रहता है। इसके खुलनेसे शोणित इसमें सञ्चय होता है, और प्रत्येक सङ्कोचनसे शरीरमें सर्व्वत्र चलता है। हृत्पिण्डके प्रतिसङ्कोचन से शोणितपूर्ण धमनीमें जो शोणित तरङ्ग उत्पादित होता है उसीको नाडी कहते हैं।



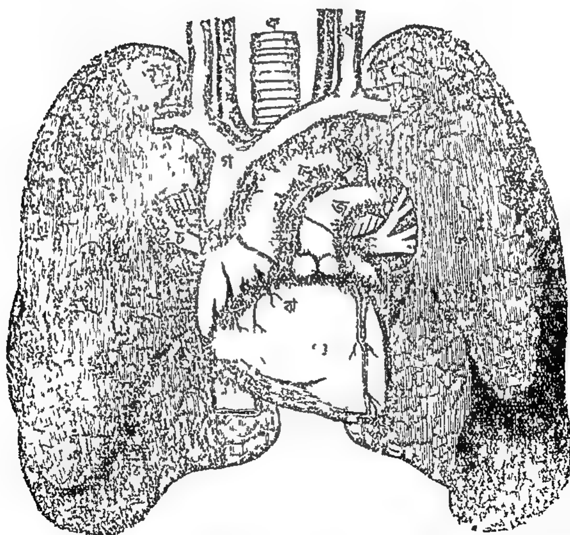
हृत्पिण्ड और वृहत् रक्तनाली समूह

हृत्पिण्ड।—हृत्पिण्ड एक शून्य गर्भ अर्थात् पोल पेशिक यन्त्र है। यह छाती गह्वर के बायें और दहिने फुसफुस के मध्यमें स्थित है। इसके ऊपर झिल्लीका एक आवरण है, उसको हृदावरण कहते हैं। हृत्पिण्ड चार कक्षामें विभक्त है,—दक्षिण और वामकोष्ठ तथा दक्षिण और वाम उदर हैं। दक्षिण तरफ जो कोष्ठ हैं उसके पास और उदरके साथ उसका सयोग है तथा वाम उदरके साथ वाम कोष्ठका सयोग दिखाई देता है, किन्तु बायें तरफके दोनो कक्षमें दहिने तरफवाले दोनो कक्षसे प्रत्यक्ष सयोग नहो है। बायें कक्षके धमनीसे शोणित प्रवाहित हो दक्षिण कक्षमें लौट आता है। शरीरके ऊर्द्ध और अधोदेशके कौशिक नाली नामक अति छोटी छोटी शिराओंसे परस्पर मिला हुआ है।

आकार और वजन।—मनुष्य हृत्पिण्डकी लम्बाई प्राय ५ इञ्च, चौड़ाई साढे तीन ३॥ इञ्च और मोटाई दो इञ्च है। जवान मनुष्यका हृत्पिण्ड ८ से १० औंस भारी है। प्रौढावस्था तक इसका वजन बढ़ताही जाता है तथा बुढ़ौती में कमना शुरू होता है।

शोणितसञ्चालन।—हृत्पिण्डके दहिने तरफ के फुसफुस धमनीसे शोणित फुसफुस में प्रवाहित होता है। तथा फिर फुसफुसके कौशिक नाली और शिरा समूहोंसे हृत्पिण्डके बायें तरफ लौट आता है। अतएव इससे स्पष्ट जाना जाता है कि शोणित दो रास्तेसे प्रवाहित होता है। इससे एक छोटा और दूसरा बड़ा रास्ता है। हृत्पिण्डके दहिने तरफ से फुसफुसमें और वहांसे हृत्पिण्डके बायें तरफका छोटा रास्ता है। दूसरा हृत्पिण्डके बायें तरफ से प्रवाहित हो शोणित सारे शरीरमें

सञ्चालित हो हृदयके दहिने तरफ लौट आता है—इसको बड़ा रास्ता कहते हैं। पर विशेष विचार कर देखनेसे शोणित सञ्चालन प्रणाली केवल एकही है, कारण समग्र शोणित प्रवाह एक वख्त फुसफुस के भीतर से प्रवाहित होता है।



फुसफुस और हृत्पिण्ड।

हृत्कोष्ठ के शोणितका परिमाण।—पहिले कह आए है कि शोणित वामकोष्ठसे वाम उदरमे और वाम उदरसे सारे शरीरमें व्याप्त होता है। परीक्षासे जाना गया है कि प्रत्येक हृदयसे प्राय ४से ६ औंस तक शोणित रहता है। हृत्कोष्ठमें इससे काम रहता है। हृत्पिण्डके प्रत्येक सङ्कोचन में भी वही परिमाण अर्थात् ४ से ६ औंस तक शोणित शरीरमें सञ्चालित होता है। इसी तरह हृत्पिण्डके प्रत्येक विस्फारण में उसी परिमाण मे शोणित इसके कक्षमें आकर प्रवेश होता है।

शोणित-संकोच।—इसी तरह शोणित वार वार सङ्कुचित और विस्फारित होता रहता है। इसी बार बार विस्फारण और सङ्कोचनसे शरीर की कण्डरा, धमनी और शिरा प्रभृति शोणित नाली सब सर्व्वदा शोणितपूर्ण रहती है। इसी परिपूर्ण नालीसे हृत्पिण्ड जोरसे बार बार शोणित सञ्चालन करनेके सबब उसकी दिवाल आहत और विस्फारित होती है। इसीको शोणित सञ्चाप कहते है।

धमनी या आर्टारि।

जो सब नलाकार प्रणालीके भीतरसे होतेहुए हृत्पिण्डके उदर से शोणित सारे शरीरमें सञ्चालित होता है, उसको धमनी या आर्टारि कहते है।

आदि काण्डरा।—शरीर की प्राय सब धमनी दो प्रधान धमनीकी शाखा प्रशाखा है। यह दोमें एकका नाम

आदिकण्डरा है, यह हृत्पिण्ड के वाम उदरसे उत्पन्न हुई है इसके उत्पत्ति स्थानके पाससे २ शाखा धमनी उत्पन्न हो मस्तक ग्रीवा और ऊर्द्ध अङ्गोमें फैला है। तथा इसकी बाद आदि कण्डरा छाती और उदर में प्रवेश हुई है। उदरसे इसकी दो शाखा उत्पन्न हो दोनों सक्थि तक फैली है। इसी दो धमनीसे दोनों सक्थिका पोषण होता है।

फुसफुस धमनी।—दूसरी सबसे बड़ी धमनीका नाम फुसफुस धमनी है। यह हृत्पिण्डके दक्षिण उदरसे उत्पन्न हुई है। सिर्फ इसी एक धमनी से शैरिक रक्त प्रवाहित होता है। यह धमनी प्राय २ इञ्च लम्बी है। इससे शोणित हृत्पिण्डकी दाहिने तरफसे फुसफुस में जाता है। यह दक्षिण हृदय के एक विशेष अंशसे उत्पन्न हो ऊर्द्धगामी कण्डराके सामनेसे होते हुए उपर और पीछेकी तरफ गई है, और कण्डराके नीचे दो भागमें विभक्त हुई है। वही दो शाखाका नाम वाम और दक्षिण फुसफुस धमनी है।

वाम।—बाये तरफ की फुसफुस धमनी दहिने तरफ से छोटी है। यह नीचेवाली कण्डराको अतिक्रम कर बाये फुसफुस के जड़तक गई है, फिर दो प्रशाखामें विभक्त हो फुसफुस के दो अंशोमें छितर गई है।

दक्षिण।—दाहिनी फुसफुस धमनी बाये धमनीसे अधिक स्थूल और बड़ा है। यह ऊर्द्धगामी कण्डरा और महाशिरा के पीछे दक्षिण फुसफुस के जड़में जाकर दो प्रशाखा में विभक्त हुई है। यह दो प्रशाखामें एक नीचे और दूसरी उपर की गई है। नीचेवाली शाखा फुसफुसके निम्न प्रान्त में और ऊर्द्धशाखा उसकी बीचमें फैली हुई है।

धमनीका मिलन ।—कण्डरा सर्व्वदा साफ खूनसे पूर्ण रहता है और यही रक्त सारे शरीरमें सञ्चालित हो स्वास्थ्यको अव्याहत रखता है। धमनियोंका मूल अलग होने पर भी परस्पर मिला हुआ है। इसका यही मिलन विशेष मङ्गलकर है ;" कारण किसी पीड़ाके सबब एक धमनी काटनेसे अथवा कोई कारण से वह बन्द हो जानेमें उसी मिलन पथमें शोणित स्रोत प्रवाहित होता है। इसका औपान्तिक सञ्चालन कहते हैं।

संस्थिति ।—धमनी सब प्राय शरीरके गभीर निरापद अंशमें रहती है। इन सब स्थानोंमें एकाएकी दाब या चोट नहीं लगता। इन सबकी गति प्राय सीधी और सर्व्वदा परस्पर मिली हुई है। प्राय सब धमनी साहानुभूतिक स्नायुमें वेष्टित है। यह सब स्नायु जालकी तरह धमनी से लिपटी हुई है। अति सूक्ष्म धमनी और वैशिक नाली भी इसी तरह स्नायुजाल में वेष्टित है।

आदिकण्डरा।

उत्पत्ति और भाग ।—आदि-कण्डरा ही वैधानिक धमनी की जड़ है, इसलिये इस को मूल धमनी भी कहते हैं। इसका कुछ अंश छातीके गह्वर में और कुछ उदर गह्वर में है। यह हृत्पिण्डके बायें उदर से उत्पन्न हो बायें फुसफुस तक फैला है। फिर मूल धमनी कशेरुका—स्तम्भके सामने निम्नगामी हो उदर गह्वर तक नीचे उतर गई है। और चौथी कमर की कशेरुका के सामने दो भागमे विभक्त हुई है।

आदि काण्डराको गोलाई।—यह तीन अंशमें विभक्त है। यह तीन अंशके गति अनुसार उसका नामकरण हुआ है यथा ऊर्द्धगामी, अनुप्रस्थ और निम्नगामी, गोलार्द्धके न्युज अंशमें बांये फुसफुसका मूल और फुसफुस धमनी में शाखा भेद आदि दिखाई देते है।

ऊर्द्धगामी अंश।—प्राय दो इञ्च दीर्घ है। वक्षास्थिके मध्यभागके पीछेके अंशमें तृतीय पञ्जर वक्षास्थि के बराबर उठकर उपर को तरफ तीर्य्यक भावसे दक्षिण की तरफ गई है। और द्वितीय दक्षिण पञ्जर उपास्थि के ऊर्द्धप्रान्तके वक्षास्थिके वाम खतम हुई है। शाखा दक्षिण और वाम हृदय धमनी हृत्पिण्ड में व्याप्त है।

अनुप्रस्थ अंश।—द्वितीय दक्षिण पञ्जर उपास्थिके ऊर्द्ध प्रान्तसे आरम्भ हो फुसफुस मूलके उपर होते हुए पीछेको तरफ कोर भावसे पीठका कशेरुकातक गई है। इसको दो शाखा है। प्रथम शाखाका कोई विशेष नाम नहो है, इसलिये इसको अनामिका कहते है। अनामिका १॥ डेढसे २ इञ्च लम्बी है। यह अनुप्रस्थ अंशके आरम्भ स्थानसे उठी है और दक्षिण तरफ को गई है। इसको दो प्रशाखा है।

निम्नगामी अंश।—चतुर्थसे पञ्चम पीठकी कशेरुका तक फैली है।

शोणित शोधन।—इसके पहिले प्रमाणित हो चुका है कि, हृत्पिण्डसे रस बाहर हो धमनीके रास्तेसे सर्व्वांगमें फिरता है, और शिराके रास्तेसे हृत्पिण्डमें लौट आता है। यह शोणितका सञ्चालन हुआ। समस्त शरीर में भ्रमण करनेसे रक्त दूषित हो जाता है, तथा दूषित अवस्थाहो में बृहत् शिरासे हृत्पिण्डके दक्षिण कोष्ठमें उपस्थित होता है। वहांसे दक्षिण हृदुदरमें आता है।

तथा दक्षिण हृदुदरसे फुसफुस धमनी द्वारा फुसफुस में प्रवेश करता है। यहां अम्लजान वाष्प ग्रहण कर दूषित रक्तको साफ कर निर्दोष करता है। फुसफुसका शुद्ध शोणित फुसफुस के शिरासे हृत्पिण्डके वाम कोष्ठमें आता है। वाम कोष्ठ में वाम उदर में और वहांसे आदि काण्डरा द्वारा सर्वत्र शरीर में सञ्चालित होता है। यह वृहत् धमनी व क्षुद्र धमनी समूहोंमें, धमनीसे छोटे छोटे कोषिक नालो में कौशिकनालो से शिरा समूहमें और वहां सब शिरासे दूषित अवस्था में शोणित फिर हृत्पिण्ड में लौट आता है। जन्मसे मृत्युतक हृत्पिण्डके सञ्चालन और विस्तारण से शोणित का यह चलाचल होता रहता है।

कपाट।—यहां यह प्रश्न उपस्थित होता है कि रक्त हृत्पिण्ड के दक्षिण कोष्ठ से वाम कोष्ठहो में और धमनी से शिराही में प्रवेश करता है इसका क्या कारण? क्यों वह दक्षिण हृदुदर से वाम कोष्ठमें और शिरासे धमनी में जाता है? इसका विशेष कारण है। हृत्पिण्ड का कोष्ठ और उदरके मध्यभागमें एक एक कार दरवाजा है तथा इस दरवाजे में एक एक जोड़ा पेशीका किवाड़ है। यह किवाड़ इस ढङ्गसे बना है कि हृत्कोष्ठसे हृदुदर में रक्त जातीवख्त खुल जाता है तथा तुरन्त ही ऐसा बंद हो जाता है कि हृदुदर से शोणित किसी तरह हृत्कोष्ठ में नहीं आसकता। इसी तरह हृदुदरमें भी किवाड़ रहनेसे रक्त हृदुदर से फुसफुस धमनी में जातेही किवाड़ बन्द हो जाता है, तब रक्त किसी तरह धमनी से फुसफुस में नहीं आसकता है। प्राय वाम हृत्कोष्ठ, तथा वाम हृदुदर और आदि काण्डरा में इसी तरहका किवाड़ दिखाई देता है। शिरा समूहों भी किवाड़ है। यह

किवाड़ ऐसे कौशलसे बनाया गया है कि रक्तशिरासे हृत्पिण्ड की तरफ आसके किन्तु हृत्पिण्ड से शिरामें किसी तरह न आसके।

—०—

कौशिक रक्तनाली और शिरासमूह।

—०):०(०—

कौशिक नाली।—पहिले कह आए हैं कि धमनीके छोटे छोटे शाखाग्रसे कौशिक नाली द्वारा शोणित शिरा समूहों में प्रवाहित होता है। केवल शिश्नकी रक्तनाली और जरायुका परिस्रव या फूलके सिवाय प्राय सर्व्वत्र ही यह वैचित्र दिखाई देता है। कहा किस अंशमें धमनीका शेष और कहा छोटी छोटी शिरायें आरम्भ हुई हैं, यह ठीक नहीं जाना जाता है। कारण यह शोणित नालीका व्यास सर्व्वत्र समान नहीं है, किन्तु कौशिक नालीमें ऐसा नहीं दिखाई देता,—इसमें आरम्भसे लेकर अवसान तक का व्यास एक समान है। यह एक इञ्ची का १००० का भाग होगा।

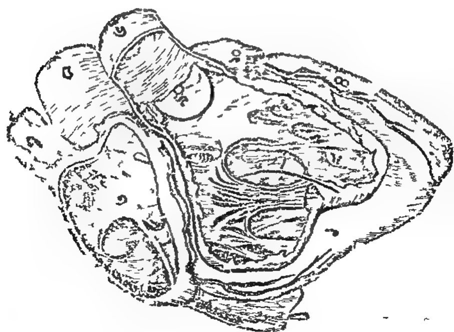
शरीरके प्राय सब अंश में कौशिक रक्तनाली दिखाई देती है, पर जितने यन्त्र अधिक सक्रिय हैं उनमे अधिक और जितने यन्त्र अल्प क्रियाविशिष्ट है उसमें कम देखनेमें आती है।

शिरायें सब।—शिरायें सब कौशिक नालीसे उत्पन्न हुई है। इसका आकार पहिले बहुत पतली होता है पर कौशिक नालीसे पतला नहीं है। कौशिक नाली इससे भी पतली होती है। शिरायोंकी जड़ सकीर्ण होनेपर भी मूल शिराद्वय और हृदयके शिरायोंकी तरफ जैसे जैसे अग्रसर हुई है आकार भी उतनाही बढ़ता गया है।

कपाट।—पहिले कह चुके हैं कि, हृत्पिण्डके कोटरको तरह शिरायोंमें भो किवाड है, इसके रहनेसे रक्त विपरोत तरफ नहो जासकता। निम्नशाखाको शिरा समूहोंमें कपाटको सख्या सबसे अधिक है। कपाट का आकार अर्द्ध चन्द्राकार है। इसका न्युब्ज अग्र शोणितस्रोतके प्रतिकूलमें है। कइ शिरायोंमें कपाट नहो है।

श्वासक्रिया।

पूर्व्व अध्यायमें शोणित सञ्चालन प्रणालो सम्बन्धोय समस्त प्रयोजनोय बाते कह चुके हैं। यह शोणित क्या है, किस उपायसे कौन कौन यन्त्र या कौन कौन स्थानमें उत्पन्न होता है, तथा सारे शरोरमें प्रवाहित होते होते क्योंकर दूषित होता है, तथा वह दूषित रक्त फुसफुसमें आकर कैसे विशोधित होता है, इस विषय को आलाचना को गई है। अब यह देखना चाहिये श्वास कार्य्य जिस तरह होता है, श्वासकार्य्यका प्रधान यन्त्र फुसफुस कैसे बनाया गया है, उक्त कार्य्यमें यह कैसे मदद करता है, और कौन उपाय से फुसफुस शोणितको साफ करता है।



हृत्पिण्ड छेदित।

हृत्पिण्ड छेदित।

दक्षिण हृत्कोष्ठ और हृदुदर उन्मुक्त और अभ्यन्तर भाग प्रकाशकर दक्षिण और सम्मुख प्राचीरका कियदंश अन्तरित है।

१, दक्षिण हृदुदरका बाहरी अंश। २, उसका अभ्यन्तर। ३, दक्षिण हृत्कोष्ठका अभ्यन्तर। ४, वाम हृदुदरका वहिरंश। ५, आदि कंडराका मूल। ६, फुसफुस धमनी। ७, प्रधान मूल शिरा। ८, अप्रधान मूल शिरा। ९, फुसफुस धमनीका अर्द्ध चन्द्राकार कपाट। १०, वाम हृत्कोष्ठका एकांश।

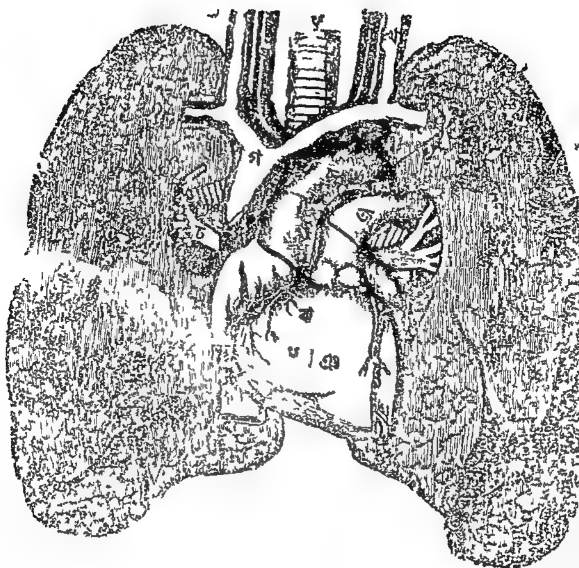
दोनो फुसफुस।—दोनो फुसफुस स्पञ्जकी तरह सछिद्र तथा वक्ष गह्वर को ढांके हुए है। दोनोके मध्यमें हृत्पिण्ड और हरक फुसफुस एक एक स्वतन्त्र गह्वर में स्थित और श्लैष्मिक झिल्लीसे आच्छादित है। इस झिल्लीको फुसफुसावरण कहते हैं। प्रत्येक फुसफुस देखनेमें शुडाकार है।

वजन और वढ़न।—बांये फुसफुस की अपेक्षा दहिने फुसफुस की लम्बाई कम है। किन्तु यह कुछ चौडा तथा वजनसे भारी है। फुसफुसका विधानोपादान स्पञ्जकी तरह शिथिल है। दोना फुसफुस का वजन साधारणत २॥ अढाई पौंडसे कुछ बेशी है। औरतोंका फुसफुस पुरुषकी अपेक्षा वजन में थोड़ा हिस्सा कम होता है।

श्वासनाली।—मुख गह्वरके भीतर पीछेकी तरफ दो छिद्र है, उसमें एकमें से खाया हुआ अन्न पाकस्थालीसे जाता है। उसको अन्नवहानाली कहते हैं और दूसरे से वायु फुसफुसमें प्रवेश करता है इसको श्वासनाली कहते है। इस नालीके मुखपर एक आच्छादन है, भोजनके वखत यह श्वासनालीका मुंह बन्दकर

रखता है। इसीलिये खाया हुआ द्रव्य उसमें नहीं जाकर अन्न-वहा नालीमें जाता है। नासारन्ध्र भी ईस छिद्रके पास तक फैला है इसलिये मुखरन्ध्र और नासारन्ध्र दोनों छिद्रोंसे कोई वस्तु श्वासनाली में नहीं जाती है।

लम्बाई और गढ़न।—श्वासनालीका अग्रभाग और सब स्थानोंकी अपेक्षा बड़ा है। इसमें पांच उपास्थि हैं, यहींसे कण्ठस्वर उत्पन्न होता है। मुखके पिछेसे आरम्भ हो गरदनके भीतर से होते हुए श्वासनाली वक्षगह्वर में प्रविष्ट हुई है। गलेके सामने हाथ लगानेसे श्वासनाली का अनुभव होता है। किसी पीड़ाके सबब श्वासरोध होनेसे शल्य चिकित्सक गलेके श्वासनालीमें छेद करदेते हैं, तथा इस छेदसे वायु प्रविष्ट हो श्वासकार्य्य सम्पन्न होता है। उपास्थि निर्मित अग्रभाग कण्ठ और तत्परवर्त्ती अंशको गलनाली कहते हैं। गलनाली ४से ४॥ इञ्च लम्बी है। यह स्थितिस्थापक पेशी और १६से २० तक उपास्थिसे बनी है। यह उपास्थि ठीक अंगूठी की तरह है। गलनाली छाती में जाकर दो भागोंमें विभक्त हो दोनों फुसफुसमें प्रवेश हुई है। इसको वायु नाली भी कह सकते हैं। यह वायुनाली पहिले दो भाग फिर चार भाग तथा क्रमशः आठ भाग इसी तरह अगण्य छोटी छोटी शाखा प्रशाखामें विभक्त हो फुसफुसके सर्वत्र छितराई हुई है। यह वायुनालीके सब स्थूल अंश उपास्थिसे बने हुए हैं, यह क्रमशः जैसे पतली होती गयी है वैसेही इसके गढ़नमें पेशीने आकर उपास्थिका स्थान अधिकार किया है। गलनालीकी परिधि प्रायः एक इञ्च, किन्तु यह विभक्त हो वायुनाली आकार में क्रमशः छोटेसे छोटे आकारमें जब फुसफुसमें विस्तृत हुई तब इसकी परिधि एक इञ्चके चालीस भागका एक भाग हुआ है।



फुसफुस और हृत्पिण्ड।

शिरा और नाली।—पहिले कह आये है, कि फुसफुसमें असंख्य वायुकोष हैं तथा उसके बीचवाले स्थानोंमें शिरा, कौशिक नाली, स्नायु और स्थितिस्थापक तन्तु है। दो वायुकोषके बीचमे कौशिक धमनी भी दिखाई देती है। कौशिकनालीके भीतर शोणित के दोनों तरफ वायु भरा हुआ वायुकोष है।

शोणित शोधन।—बाहरी वायुमें अम्लजान नामक जो वायव पदार्थ है, वही हम लोगोंका जीवन स्वरुप है, कारण इसी अम्लजान से शोणितका दोष दूरीकृत होता है। अम्लजान प्रश्वास द्वारा फुसफुस में जाकर उसके असंख्य वायुकोषों में प्रविष्ट हो खूनमें मिलजाता है। खूनकी लाल कणिका अम्लजान शोषण करलेती है, फिर खून शरीरमें प्रवाहित हो दूषित होता है, तब उसमें द्वयम्ल अङ्गार वाम्पका परिमाण अधिक मिल जाता है। यह दूषित रक्त फुसफुस में फिर लौट आनेसे उसमेंका द्वयम्ल अङ्गार वाम्पका परिमाण अधिक होनेसे वह निश्वास से निकल जाता है, इसलिये रक्तमें अम्लजानका भाग अधिक रहता है।

श्वासमसंख्या।—मचराचर युवावस्था में एक मिनिट में १४से १८ दफे श्वास चलती है। प्रत्येक निश्वास में हम लोग प्राय ३० घन इञ्च वायु ग्रहण करते हैं, अतएव सारे दिन रात अर्थात् २४ घण्टेमें ५८६००० घन इञ्च वायु फुसफुस में प्रविष्ट होता है और वहांसे निकलता है, प्रत्येक घण्टेमें १५८४ घन इञ्च वायु ग्रहण और १३८६ घन इञ्च द्वयम्ल अङ्गार वायुका परित्याग किया जाता है। युवाकी अपेक्षा बालक अधिक बार श्वास ग्रहण करता है। परिश्रम और आहारके बाद श्वासकार्य्य किञ्चित् तेज हो जाता है।

खाद्य और परिपाक।

खाद्य और क्षुधा क्यों?—जीवन धारण करने लिये किसी तरहका कुछ खाद्य अवश्य चाहिये। पहिले कह आए हैं कि जीव देहमें प्रतिनियतही शक्तिका क्षय होता है। कोई काम न कर केवल आलसी की तरह निश्चिन्त मनसे रातदिन सोकर बितानेवालेको भी शरीरके भीतरी शक्तिका क्षय होता रहता है। यही क्षय हुई शक्तिका अभाव पूरा करनेके लिये आहार की जरूरत पड़ता है।

क्षुधा क्या?—भोजनका प्रधान उद्देश्य—शरीर पोषण और शरीर पोषणका अर्थ—शरीर की क्षय हुई शक्तिका पूरण कर नई शक्तिका साधन है। अतएव शरीर पोषण के निमित्त क्षुधा चाहिये, और क्षुधाकी निवृत्तिके लिये पुष्टिकर खाद्य आवश्यक है। पुष्टिकर खाद्यके अभाव से पाकाशय मे प्रबल वेगसे शोणित सञ्चारित होता रहता है, इससे उसका गात्रे फूल उठती है। साहानुभूतिक स्नायुमण्डलको ऐसी चेष्टासे मनमे जो उद्वेग होता है वही क्षुधा है। पाकस्थाली में खाद्यद्रव्य प्रविष्ट होतेही उसके ग्रन्थियोंमेंसे एक प्रकारका पाचक रस निकलता रहता है। इसी रसके सहारे भुक्तद्रव्य जीर्ण होता है।

तृष्णा क्यों।—सभी जानते है कि पाकाशय मे क्षुधा और कण्ठनाली मे तृष्णा का उद्रेक होता है। पहिले कह आए है कि हम लोगोंके शोणितमे चार प्रधान उपादान है जिसमें पानी-

का परिमाण सबसे अधिक है। परिश्रमादि से पानीका परिमाण कम होता है तब उस कमी को पूरी करनेके लिये मनमें जो उद्वेग होता है, वही तृष्णा है। शरीर रक्षाके लिये खाद्य जैसा आवश्यक है पानी भी वैसाही प्रयोजनीय है। इसीलिये हिन्दूशास्त्रमें पानीको जीवन कहा है।

क्षुधा और पाकाशय।—पीड़ा किम्वा और किसी कारणसे शरीरका बल अधिक कम हो जानेसे आहार की उत्कट इच्छा होती है, इसीलिये बहुमूत्र रोगीको क्षुधा अकसर प्रबल रहती है। क्षुधाके समय पाकाशय खाद्यद्रव्यसे पूर्ण होते ही क्षुधाकी शान्ति होती है। इससे स्पष्ट जाना जाता है कि पाकाशयके साथ क्षुधाका अति घनिष्ट सम्बन्ध है, किन्तु हरवक्त यह सम्बन्ध नहीं रहता है कारण पाकाशयमें खाद्यद्रव्य रहनेपर भी बहुतोंको अकसर क्षुधा लगती है। भुक्तद्रव्य जीर्ण हो शोणित न होनेतक अथवा कच्चा रहनेपर भी पाकस्थली में रहता है। सुतरां इससे शरीरकी शक्तिका पूरण नहीं होता इसी तरह पाकस्थली पूर्ण रहनेपर भी कई रोगीमें क्षुधा लगते देखा है।

परिपाक।—अन्न मुखमें जातेही चहुन। उसको चर्वन करता है। इस विषय में जीभही प्रधान सहायक है। अन्न दांत से पिस जानेपर लारसे पिण्डाकार होता है, फिर वह पिण्ड गले-की नालीसे पाकस्थली में जाता है तथा यहां पाचक रसके सहा-यतासे परिपक्व होता है, जिसके बाद अन्त्रमें प्रवेश होता है। यहां पित्त, क्लोमरस और आन्त्रिक रस उसके साथ मिलकर परि-पाक होता है। यहां यह कहना जरूरी है कि पाकस्थली में जो अन्न परिपाक होता है वह प्राय शरीरके सब अंशोंमें शोषित

हो शक्ति वृद्धि करता है। बाकी अन्न अन्त्रमें शोषित हो जाता है। इसके बाद जो बाकी बचता है वह पूरीषही स्लात्र से शरीरके बाहर निकलता है। ऊपर जो कहा है इससे स्पष्ट प्रतीत होगा कि सब समेत पाच रसोंसे भुक्त अन्नका परिपाक होता है। यथा लार, पाचक रस, पित्त, क्लोमरस और आन्त्रिक रस। यही पाच रसके अभाव, आधिक्य अथवा और कोई विक्रिया होनेसे परिपाक में वाधा होती है।

लाला रस।—लार निःसारक ग्रन्थियोंसे लार निकलता है। यह सब ग्रन्थि नानाप्रकार की है। तथा ओष्ठाधर, गण्ड, कोमलतालु, और जिह्वामूल की श्लैष्मिक झिल्लीके निम्नभाग में उक्त ग्रन्थि सब रहती है। दो स्नायु शाखा, यह सब ग्रन्थियों पर फैली है इसी दो स्नायुसे इस सबका कार्य्य उत्तेजित होता है, इसीलिये कोई खट्टा पदार्थ देखनेसे मुहसे लार निकलती है।

पाचक रस।—पाकस्थलीके भीतरी भागसे पाचक रस निकलता है। भुक्त अन्न पाकाशयमें जातेही यह रस बाहर निकलता है। यह रस पानीकी तरह पतला, अर्द्ध स्वच्छ, गन्ध हीन और अम्लस्वाद विशिष्ट होता है। इसका आपेक्षिक गुरुत्व १००२ से १०११ तक है। सन्दर्शन से स्थिरीकृत हुआ है कि सारे दिनरात अर्थात् २४ घण्टे में एक स्वच्छ युवा पुरुषको १० से २० पाइट तक पाचक रस निकलता है। इसमें खट्टापन रहनेके सबब ईसका स्वाद खट्टा होता है।

पहिले जो पाच प्रकारके पाचक रसके [illegible] आए है उसमें अविकाशके निकलने मे [illegible]
निम्नलिखित पाच यन्त्रवि[illegible]

पाकाशय, क्षुद्रान्त्र, बृहदन्त्र, क्लोमग्रन्थि और यकृत्। इन सबका ब्योरा क्रमश दिया जाता है।

पाकस्थाली।

—०—

स्थिति, भार और प्रसार।—पाकस्थली अन्नवहा नालियोंमें सबसे अधिक प्रशस्त है। यह उदर गह्वर में संस्थित है। इसका आकार सब जगह एकसा नहीं है। जो व्यक्ति जितना अधिक आहार करता है पाकस्थली भी उसकी उतनी ही बड़ी होती है, पर मोटामोटी परिमाण करनेसे पाकस्थली वायुसे विस्फारित करना पड़ता है। वायुसे विस्फारित पाकस्थली को लम्बाई १०।११ इञ्च गभीरता प्राय ४ इञ्च और इसका वजन ४॥ औंस होता है। इसका आकार ठीक शूण्डको तरह है। बांया अंश स्फीत और दक्षिण अंश क्षुद्र और संकुचित है, तथा सम्मुख प्रदेश न्यक और ऊर्द्धाभिमुख है। यह यकृत् का निम्नप्रदेश और उदरप्राचीरके साथ मिला हुआ है। इसका पश्चात् प्रदेश निम्नाभिमुख है। यह प्रदेश अनुप्रस्थ बृहदन्त्रके ऊर्द्ध और सम्मुख से अवस्थित है। इसके पीछे क्लोमग्रन्थि, वामवृक्क या मूत्रग्रन्थि और प्लीहा आदि अंश तथा मेरुदण्ड और सम्मुखस्थ बृहत् रक्तनाली सब संस्थित है।



पाकस्थाली।

क्रिया।—पहिले कह चुके है, कि पाकाशयसे पाचक रस निकलता है। पाकस्थाली जब शून्य अथवा निष्क्रिय रहती है, तब उससे रस नहो निकलता तब केवल कफसे इसकी भीतर की प्राचीर आहत रहती है। पर इसमें अन्न अथवा और कोई द्रव्य प्रविष्ट होतेही पाकस्थाली का शोणित नाली वेगसे चलने लगती है तथा इस प्रकार शोणित संस्पर्शसे कफकी झिल्ली लाल होजाती है। पाकस्थाली की ग्रन्थि सब साथही बहुत वेगसे रस देने लागती है। पाचक रस बाहर निकलतेही पाक स्थाली हिलने लगती है, इसी तरह ३।४ घण्टेमें भुक्त अन्न हजम होता है।

अन्त्रमण्डल।

—०—

प्रकार।—अन्त्रमण्डल क्षुद्र और वृहत् भेदसे दो प्रकारका है। यह दो भागों के भिन्न भिन्न दो अंश हैं यह केवल व्यास

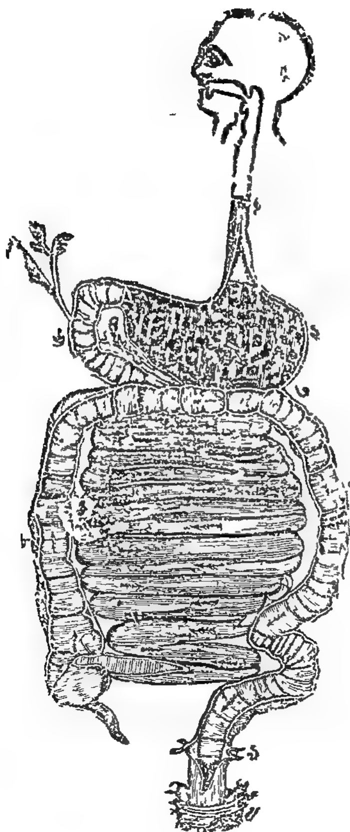
की विभिन्नता से दो भागमें विभक्त है। जहां क्षुद्र अन्त्रका शेष और वृहदन्त्रका आरम्भ हुआ है, वहां एक किवाड़ है। यह किवाढ़ इस ढङ्गसे बना है कि क्षुद्र अन्त्रसे अन्न विपाक का अवशेष वृहदन्त्र में जा सके पर वृहदन्त्रसे क्षुद्रान्त्र में न आसके।

क्षुद्रान्त्र। वर्णन करनेके सुबोतेके लिये यह तीन अङ्गोंमें विभक्त है। पूरी उमरवाले व्यक्तिका क्षुद्रान्त्र २० फोट लम्बा होता है।

वृहदन्त्र। पूरी उमरवाले व्यक्तिका वृहदन्त्र ४ से ६ फोट लम्बा रहता है। वर्णनके सुबोतेके लिये इसेभी तीन अङ्गोंमें विभक्त किया है,—यथा ऊर्द्धगामी, अनुप्रस्थ और निम्नगामी। सरलान्त्र अपने निम्नाग्र में विस्फारित हो फिर सङ्कोच भाव धारण करता है तथा फिर विस्फारित हो मलद्वार में पर्य्यवसित हुआ है।

अन्त्रमें परिपाक।—दोनों प्रकारके अन्त्रोंमें कई ग्रन्थि हैं। पहिले जिस आन्त्रिक रसकी बात कह आए हैं, वह इसी ग्रन्थियोंसे निकलता है। पाकस्थाली में परिपाक और शोषणके बाद जो भुक्तद्रव्य बचता है वही अन्त्रमूल में जाता है। वहां क्लोमग्रन्थि और यकृत्का रस तथा क्षुद्रान्त्रके रसमें परिपाक होता रहता है। घृत और चर्बी आदिका अधिकांश अन्त्रमूल में परिपाक होता है।

स्थिति और विस्तार।—क्लोमग्रन्थि। क्लोमयन्त्र देखने से एक गांठकी तरह है यह अन्त्रमूल के कोर अंशमें अवस्थित है। इसका एक सूक्ष्म नलाकार अन्त्रमूलके साथ मिला हुआ है। इसी नलसे इसका रस अन्त्रके उक्त अंशमें जाता है। यह पाकाशयके पीछे और वृहत् रक्तनालियोंके सामने मेरुदण्डके ऊपर न्यस्त है।



पाकप्रणाली और मलवहा नाली।

है और आकार के बाद परिमाण अधिक हो जाता है। पित्तकोष में पथरो पैदा होनेसे अथवा और कोई कारण से पित्त यन्त्र से न निकले तो यह खूनको सुखाता है पित्तमिला शोणित शरीरमें फैलनेसे पाण्डुरोग होते देखा गया है।

क्रिया।—पित्तका प्रधान कार्य्य अन्नको परिपाक करना है, किस उपायसे यह कार्य्य सम्पन्न होता है इस विषय में बहुत कुछ कह आये हैं। यहा सक्षेप में यही कहा जाता है कि पित्त भुक्तद्रव्यके साथ मिलो हुई चर्व्वी आदि पदार्थ को गलाकर छोटा छोटा कण करता है। इसमें वह पदार्थ बहुत जल्दी शरीर में शोषित हो जाता है। पाकाशयके पाचक रसको तरह इसमें भो पचननिवारणो शक्ति है, उस शक्तिके प्रभावसे यन्त्रस्थ भुक्तद्रव्य समूह नहीं सडता। इसके सिवाय पित्तमें विरेचन शक्तिभो है।

प्लीहा।

—०—

वजन और आकार।—प्लीहा एक वृहत् यन्त्र है। यह उदर गह्वर के वाम पश्चात् अंश में अवस्थित है। उसके दहिने पाकाशय का प्रशस्त अंश है। साधारणत इसका आकार पिष्टका कार रङ्ग घोर बैंगनी इसका आकार हरवखत एकसा नहीं रहता, इसके भीतर खूनकी कमो वेशीसे आकार भी घटता बढता रहता है। साधारणत इसकी लम्बाई ५ इञ्च चौडाई ३।४ इञ्च और मोटाई १॥ इञ्च और वजन ६।० औंस होगा। बुढौती में इसका आकार और वजन कम हो जाता है तथा सविरामें और कम्पज्वर

खण्ड कहते हैं ये दोनो खण्ड परस्पर अविच्छिन्न भावसे सबद्द है। इसके सामने और पीछे एक छेद है, उपर एक ओर बन्धनोके नीचे अनुलम्ब विदार है। पित्तका निकालनाही यकृत् का प्रधान कार्य्य है इससे पित्तको परिपाक कार्य्यमे सहायता मिलता है।

यकृत्।—पित्त, बक्राभपोत या पीत अथवा सबुज रङ्गके पतले पदार्थ को कहते है। इसका स्वाद उत्कट तिक्त, गन्धहीन, इसका आपेक्षिक गुरुत्व १०२०, क्षारगुणविशिष्ट तथा हवा लगनेसे हरा रङ्ग होता है। मांसाहारी जीवका पित्त पीतवर्ण और मांसभोजी का पित्त हरिद्वर्ण होता है। यह एक यौगिक पदार्थ है। पित्त यकृत् से उत्पन्न हो अन्त्रमे जाता है, अथवा परिपाक कार्य्य बन्द रहता है तब वहासे पित्तकोषमे आता है वहा क्रमश सञ्चित होता रहता है और जरुरत होनेपर वहासे निकल जाता है।

पित्तकोष।—ठीक अमरूद फलकी तरह है यह यकृत् के नीचे लगा हुआ तथा उपर द्रुत्ति को धरे हुए रहता है। यह सामने और पीछे तीर्य्यकभावसे स्थित तथा इसका प्रशस्त अंश सामने, नीचे और दहिने तरफ है तथा सकीर्ण अंश अर्थात् ग्रीवा नीचेवाली दूसरी नालीमे शेष हुई है। इसकी लम्बाई ३।४ इञ्च, इसका प्रशस्त अंश प्राय १॥ इञ्च प्रशस्त है। पित्तकोष में प्राय २॥ औंस पित्त रहता है।

पित्तका परिमाण।—यकृत् मे दिनरातमे कितना पित्त निकलता है यह नीचे लिखे अनुसार स्थिर हुआ है। यकृत् का वजन जितना रहता है २४ घण्टेमें उतना ही पित्त निकलता है। पित्त बराबर निकलता रहता है। उपवास में बन्द रहता

है और आकार के बाद परिमाण अधिक हो जाता है। पित्तकोष में पथरी पैदा होनेसे अथवा और कोई कारण से पित्त यन्त्र में न निकले तो वह खूनको सुखाता है पित्तमिला शोणित शरीरमें फलनेसे पाण्डुरोग होते देखा गया है।

क्रिया।—पित्तका प्रधान कार्य्य अन्नको परिपाक करना है, किस उपायसे यह कार्य्य सम्पन्न होता है इस विषय में बहुत कुछ कह आये हैं। यहा सचेप में यही कहा जाता है कि पित्त भुक्तद्रव्यके साथ मिलो हुए चर्व्वी आदि पदार्थ को गलाकर छोटा छोटा कण करता है। इससे वह पदार्थ बहुत जल्दी शरीर में शोषित हो जाता है। पाकाशयके पाचक रसकी तरह इसमें भी पचननिवारणी शक्ति है, उस शक्तिके प्रभावसे यन्त्रस्थ भुक्तद्रव्य समूह नहीं सड़ता। इसके सिवाय पित्तमें विरेचन शक्तिभी है।

प्लीहा।

वजन और आकार।—प्लीहा एक वृहत् यन्त्र है। यह उदर गह्वर के वाम पश्चात् अंश में अवस्थित है। उसके दहिने पाकाशय का प्रशस्त अंश है। साधारणतः इसका आकार पिष्टकाकार रहा और वेगनी इसका आकार हरवखत एकसा नहीं रहता, इसके भीतर खूनकी कमी वेशीसे आकार भी घटता बढ़ता रहता है। साधारणतः इसकी लम्बाई ५ इञ्च चौडाई ३।४ इञ्च और मोटाई १॥ इञ्च और वजन ६।० औंस होगा। बुढ़ौती में इसका आकार और वजन कम हो जाता है तथा सविरामें और कम्पज्वर

में अधिक बढता है यहांतक कि कभी कभी कई पौंडतक बढ़ जाता है।

संख्या।—प्राय मनुष्यकी एक प्लीहा रहती है किन्तु किसी २ समय एक से अधिक अर्थात् छोटी छोटी कई प्लीहा मूल प्लीहाके नीचेकी तरफ लगी हुई रहती है। इसका आकार मटर सेलेकर अखरोट की तरह तक होता है।

क्रिया।—प्लीहाका प्रकृत कार्य्य अभीतक स्थिर नहीं हुआ है। पर विशेष मन्दर्शन से स्थिर हुआ है कि भुक्त अन्नका परिपाक जैसे जैसे शेष रहता है प्लीहाका आकार भी उसी हिसाब से बढता रहता है। थोडी देरके बाद फिर घटने लगता है। इसलिये बहुतेरे लोग अनुमान करते हैं कि भुक्तद्रव्य में अण्डलाल नामक जो पदार्थ रहता है वह अन्न परिपाक के वक्त वहांसे अन्तरित हो प्लीहामें सचित होता है। इससे प्लीहा बढती है तथा फिर शोणित में मिलनेसे प्लीहा कमहो जाती है। इसके सिवाय प्लीहासे रक्तकी श्वेत और लाल कणिकाकी उत्पत्ति होती है।

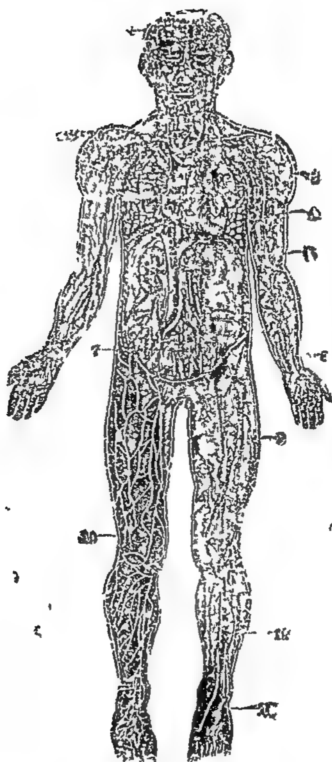
वृक्कद्वय (किडनिस्।)

वजन और आकार।—वृक्ककी संख्या दो। यह ग्रन्थिमय यन्त्र देखने में ठीक बहुत बडी सेमके बीजकी तरह है। यह कमरके भीतर मेरुदण्डके दोनो तरफ रहता है। इसका रङ्ग गुलाबी, लम्बाई ४ इञ्च, चौडाई २॥ इञ्च और मोटाई

१। इञ्च। पुरुषके वृक्कका वजन प्राय ४॥ औंस, स्त्रीके वृक्कका वजन पुरुषसे कुछ कम होता है।

क्रिया।—वृक्क या मूत्रपिण्ड से मूत्र उत्पन्न होता है। यह ऐसे कौशल से बना है कि, शोणित का जलीय अंश इससे परिस्रुत और इसमें आकर सञ्चित हो फिर मूत्राशय में जाता है। मूत्राशय मूत्रपूर्ण होते ही पिशाब की हाजत होती हैं।

परिमाण।—सारे दिनरात में एक सबल मनुष्य ५२॥ औंस अर्थात् प्राय डेढ़ सेर मूत्रत्याग करता है। अवस्था भेदसे इसमे तारतम्य दिखाई देता है। मूत्रसे रक्तका दूषित पदार्थ बाहर निकल जाता है, पसीनेसे भी यह कार्य्य साधित होता है। ग्रीष्मकाल में पसीना अधिक आता है इससे मूत्रका परिमाण कम हो जाता है, तथा फिर शीतकालमें पसीना कम होनेसे मूत्रका परिमाण बढ़जाता हैं।



शरीरके भीतरी यन्त्र और शोणितनाली समूह।

5, 6, हृत्‌हृदय 7 मूत्राशय। बाकीके बारेमें पहिले कहचुके है।

वैद्यक-शिक्षा।

सप्तम खण्ड।

—०—

धात्री-विद्या।

—०):॰:(०—

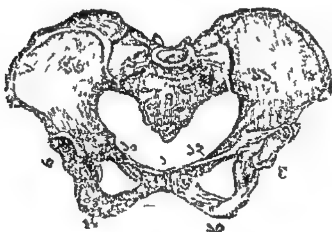
MIDWIFERY

धात्रीविद्या क्या है?—जिस विज्ञान और शिल्पशास्त्र की सहायता से सगर्भावस्था या प्रसव के पहिले और प्रसवके वक्त तथा सूतिकावस्था में जननी और सन्तान के विषय की शिक्षा और उसके चिकित्सा कार्य्यमें पारदर्शिता लाभ होती है उसको धात्री विद्या कहते हैं। प्रसवकाल में धात्रीकी सहायता एकान्त आवश्यक है, इसलिये इसका नाम धात्रीविद्या रखा गया है।

त्रिकास्थि या वस्ति।—धात्रीविद्या मे ज्ञानलाभ करने वालों को पहिले वस्तिगह्वर और जननेन्द्रिय विषयों को सीखना चाहिये। इसीलिये यहां पहले दो विषयों की आलोचना की जाती है। मेरुदण्ड और दोनो सक्थि अर्थात् दोनो अधःशाखाके बीचमें जो हड्डीका गह्वर है उसको त्रिकास्थि या वस्ति कहते हैं। यह चार हड्डियोंमें बनी है। यह चार हड्डी पृष्ठवंशमूलीय अस्थि और दो अनामिका है। पहिली दो हड्डी वस्तिके पीछे और दो अनामिका हड्डी इसके सामने और बगलमें है।

माप और परिमाण।—वस्तिके दो दरवाजे है, एक प्रवेश द्वार और दूसरा निर्गम द्वार। प्रवेश द्वार इसके उपरी अग्रमें है इसको परिधि प्राय. १६ इञ्च होगा। सन्तान भूमिष्ठ होनेसे पहिले इसी द्वारसे वस्तिगह्वर मे जाता है। इसके तीन व्यास है, (क) सामने और पीछे, इसको लम्बाई ४। इञ्च, (ख) अनुप्रस्थ, इसको लम्बाई ५। इञ्च, और (ग) तिर्य्यक, इसको लम्बाई ५ है। वस्तिके निम्नाग्र को इसका निर्गम द्वार कहते हैं। इसका दो व्यास सामने और पीछे अनुप्रस्थ। पहिले की लम्बाई ५ इञ्च और दूसरे को ५। इञ्च होगी।

स्त्री वस्ति।



१, २, ३, ४, और ५, ६, वस्तिके भागत्रय, ७ पृष्ठवंशमूलीय अस्थि, इसके नीचेवाली चूडा मज्जावर्त्त, ८ और १०—११, वाम तिर्य्यक व्यास, १२—१३ दक्षिण तिर्य्यक व्यास, दोनो व्यासके संयोगविन्दु से वाम और दक्षिण सूत्रपात में एक सीधो लकीर खींचने से अनुप्रस्थ व्यास होगा।

जननेन्द्रिय।

—०—

विवरण।—धात्री विद्याका मुख्य आधार जननेन्द्रिय है, तथा जीव सृष्टिका प्रधान कारण भी इन्द्रियही है। जिसके उपयुक्त कार्य्यके अभाव से जीवकी सृष्टि नहीं होती उसको जननेन्द्रिय कहते हैं। जननेन्द्रिय का दूसरा नाम उपस्थ है। जननेन्द्रिय के सिवाय जीवोत्पत्तिका दूसरा उपाय नहीं है। जननेन्द्रिय का सङ्ग प्रतिज्ञा पूर्व्वक परित्याग करने से जीवोत्पत्ति बन्द होती है। इस यन्त्रको बनावट अति विचित्र है, यह कैसे अपूर्व्व कौशल से बना है और इसके अङ्ग प्रत्यङ्गोका परस्पर सम्बन्ध और क्रियाविशेषकारिता शक्ति कैसी अनिर्व्वचनीय है कि जिसकी शक्तिमें ब्रह्माण्डके जीव सब अवश और मुग्धमानस हो पाशबद्ध बन्दर की तरह निरन्तर नाचता फिरता है। तथा इसीके प्रभाव से आनन्दप्रवाह, कर्म्मोत्साह, दया, क्षमा, शान्ति, दाक्षिण्य, आस्तिक्य और मैत्री इस भूमण्डलमें नित्य विराजमान है। जननेन्द्रिय पुरुष और स्त्रीभेद से दो प्रकार है।

मेढ्र और मेढ्रभूमि।—वस्तिको दोनो अनामिका जहां परस्पर मिली हैं उसके उपर के प्रशस्त अंशको मेढ्रभूमि कहते हैं। शिश्न इसी स्थानमें अवस्थित है। यही सङ्गम साधन की प्रधान इन्द्रिय है। मूल, देह और मुण्ड ऐसे इसके तीन अंश हैं। मूलभाग दो प्रवर्द्धन से दोनो शाखा और एक बन्धनी से वस्तिके साथ संयुक्त है। उपरवाले भागको लिङ्ग मुण्ड तथा मुण्ड और मूलके बीचवाले को लिङ्ग शरीर कहते हैं। शिश्न कई उत्थानशील तन्तुओंसे बना है। इस तन्तुके भीतर बहुतेरी

छोटी छोटी रक्तनाली है। चैतन्य होतेही इन सब रक्तनालियों में शोणित बड़े वेगसे धावमान होता है, इसीसे शिश्न उत्तेजित होता है। लिङ्ग मुण्डवाला अनुप्रस्थ छिद्र प्रस्राव द्वार है। मूत्रनाली मूत्राशय से आरम्भ हो यहीं आकर खतम हुई है।

अण्डकोष।—अण्ड दो ग्रन्थिमय यन्त्र है। यही दो यन्त्रोंसे पुरुष का शुक्र बनता है। यह मुष्क नामक दो चमड़े की थैलोमें निहित और वस्तिप्रदेश से रेतोरज्जु नामक दो रज्जु से लम्बित है। साधारणतः प्रत्येक अण्ड प्राय १॥ इञ्च दीर्घ है। इसका सम्मुख पश्चात् भाग १। इञ्च और अनुप्रस्थ अंश ३।४ से ? इञ्च होगा। वजन ३।४ से १ औंस। दो अण्डके बीचमें सचराचर एककी अपेक्षा दूसरा कुछबड़ा होता है।

शुक्रकोष।—अण्डकोष में पुरुष का शुक्र बनता है, पाश्चात्य शरीरतत्त्ववित् पण्डित यह कहते है कि शुक्र यहांसे दोनो अण्डकोष के ऊपरवाली दो थैलोमें जाता है, यही दो थैली को शुक्रकोष कहते है, तथा इन्हो दो कोषोमें पुरुषका शुक्र संग्रहीत होता है। शुक्र उज्वल श्वेतवर्ण तरल पदार्थ तथा लसदार और इससे एक प्रकार विचित्र गन्ध होती है। शुक्रमें एक प्रकार अगण्य सूक्ष्म जीव विद्यमान है। वह जीव प्राय १।५००० इञ्च लम्बा है। मैथुन कालमें शुक्रकोष से शुक्र प्रक्षेपक नालीसे यह निक्षिप्त होता है।

—०—

स्त्री-जननेन्द्रिय।

—०—

भग, भगांकुर, योनि, भगोष्ठ, जरायु, अण्डाधार आदि को समष्टी को जननेन्द्रिय कहते है। यह अन्तः और वाह्य ऐसे दो

भागों मे विभक्त है। इसमे भग भगांकुर बृहदोष्ठद्वय, क्षुद्रोष्ठद्वय कामाद्रि, प्रस्राव द्वार, सतोच्छद, योनि आदि बाह्य जननेन्द्रिय तथा अण्डाधार, डिम्बवाही दो नाली और जरायु यह तीन को अन्तर्जननेन्द्रिय कहते है। दोनो स्तनोंके साथ यद्यपि जननेन्द्रिय का अत्यन्त घनिष्ट सम्बन्ध है, तथापि यह दो उसके अन्तर्गत नहीहै।

कामाद्रि। भगके ऊर्द्धांश को कहते है। युवावस्था में यहां लोम पैदा होता है।

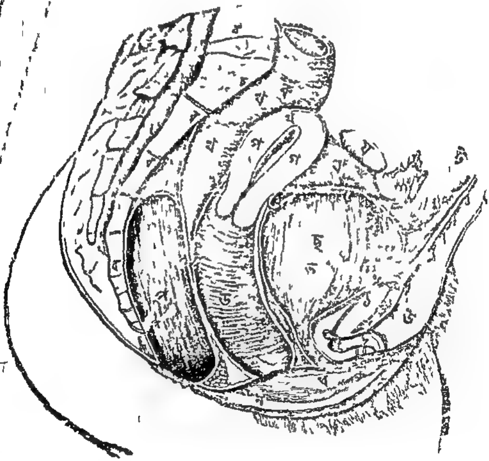
योनि। यह एक नलाकार गह्वर है। यह जरायुसे भगतक फैला है। इसका निम्नांश सकीर्ण और ऊर्द्धप्रसारित है। योनिके सामने मूत्राशय और प्रसव द्वार, पीछे सरलान्त्र और विटप, दोनो तरफ प्रशस्त दो बन्धनो ओर उपर यह जरायुसे सयुक्त है।

बृहदोष्ठद्वय।—दोनो बृहदोष्ठ योनिमुख के दोनो तरफ स्थित है। इसका वहिर्देश त्वक और अभ्यन्तर भाग श्लैष्मिक भिल्लिसे आवृत है। शैशवावस्था मे यह दो ओष्ठका भीतरी अश परस्पर मिला रहता है। फिर पुरुष सङ्ग और सन्तान पैदा होनेसे अलग हो जाता है।

क्षुद्रोष्ठद्वय।—बृहदोष्ठद्वय के भीतर दोनो क्षुद्रोष्ठ है। दोनो तरफ के क्षुद्र ओष्ठ भगाकुर के पास आकर दो भाग में विभक्त हुआ है।

भगांकुर। उपर दोनो बृहदोष्ठका जहां सम्मिलन हुआ है उसके प्राय आध इञ्च नीचे भगाकुर है। यह शिश्नकीतरह उत्थान शील तन्तुओं से बना है तथा रतिकाल में उत्तेजित होता है।

सतोच्छद।—प्रस्राव द्वारके नीचे योनिमुख है। शैशवा वस्था मे वह एक पतली भिल्लि में आवृत रहता है, उसको सतो-च्छद कहते है। पुरुष सगसे सतोच्छद कट जाता है, किसी २



म, स, ख, प, सरलांत्र। प, थ, ग, जरायु। ड योनि नाली। ध, प्रस्राव द्वार। न, क्षुद्रौष्ठ। ठ, भगाङ्कुर। ट, मूत्रप्रणाली। छ, ड, मूत्राशय। भ, प्रशस्त बन्धनी। य, अण्डाधार। क, व, क, व, शङ्खावर्त्त।

जरायु। यह ठीक बड़े अमरूद की तरह है। सामने और पीछेका अंश थोड़ा चिपटा तथा भीतर पोला है, इसीको गर्भाशय कहते हैं, पुरुष का शुक्र और स्त्रीके अण्डसयोगसे इस यन्त्रमें भ्रुण उत्पन्न और क्रमश पुष्ट हो प्रसवकालमें यहींसे बाहर निकलताहै।

विभाग और विस्तार।—जरायु तीन अंश में विभक्त है—ऊर्द्ध, मध्य और निम्न। इसका ऊर्द्धांश मुण्ड, मध्यांश देह और निम्नांश ग्रीवा नामसे अभिहित है। जरायु वस्तिगह्वर में योनिके ऊर्द्धांश में अवस्थित है तथा इसके दोनो तरफ दो बन्धनो इसको आबद्ध किये हुए हैं। इसके सामने मूत्राशय और पीछे सरलान्त्र है। कुमारियों का जरायु १॥ इञ्च लम्बा तथा जिन्हे एकबार सन्तान प्रसव हुआ है उनका जरायु ३ इञ्च लम्बा होताहै।

डिम्बवाही नाली। जरायुके उपरवाले दो कोनेसे यह दो नाली उत्पन्न हो किञ्चित् वक्रभावसे अण्डाधार तक विस्तृत है। हरेक नालीकी लम्बाई ३।४ इञ्च होगी। इसका भीतरी भाग पोला तथा नालीका शेषांश जालकी तरह बना हुआ है।

अण्डाधार। जरायुके दोनो पार्श्वको प्रशस्त दोनो बन्धनोंके पीछे दो अण्डाधार है। यह देखनेसे ठीक अण्डेकी तरहहै। प्रत्येक अण्डाधार प्राय दो इञ्च लम्बा पौन इञ्च चौड़ा आध इञ्च मोटा है। ऋतुकाल में इसका आकार बढ़जाता है और गर्भावस्थामें दूना आकार हो जाता है। अण्डाधारके भीतर असंख्य अण्ड निहित है।

स्तनद्वय।—दोनो स्तन जननेन्द्रियके अन्तर्गत न होनेपर भी इन दोनोंका घनिष्ट सम्बन्ध देखनेमें आता है, इसी लिये यहां उसके बारेमें थोड़ा लिखते हैं। दोनो स्तन अर्द्ध गोलाकार, इसके उपरीभागमें क्षुद्र वर्त्तुलाकार दो पदार्थ है, इसीको चुची कहते

है। दोनो स्तन छातीके दोनो तरफ तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम और षष्ट पञ्जरास्थि आवरणकर उत्पन्न होता है। इसके भीतर बहुतेरो दूध निकालनेवाली ग्रन्थि है। यौवनके प्रारम्भमें दोनो स्तन कठिन और छोटा रहता है, फिर उमर वृद्धिके साथ साथ इसका भी आकार बढता रहता है, तथा गर्भावस्थामें अत्यन्त स्फारित और पीनोन्नत हो जाता है। प्रसवके बाद स्तन सिथिल और झुक जाता है।

ऋतु और गर्भाधान।

हिन्दू और पाश्चात्य मत।—ऋतु और गर्भाधान सम्बन्ध में हिन्दू और पाश्चात्य चिकित्सा शास्त्रसे भिन्न प्रकार विवरण दिखाई देता है। यह विवरण भिन्न होनेपर भी मूल विषय में दोनोका सादृश्य है। इसीलिये यहा दोनो मतोंका आलोचना करते है। हिन्दू आयुर्वेदकारोंमें सबसे अधिक इस विषयकी आलोचना महर्षि चरक और सुश्रुतने की है। यहा उनके ग्रन्थका वही अंश संग्रह किया जाता है।

शुक्र। जो पदार्थ स्त्रीसे समाहित हो गर्भ पैदा करता है उसे पण्डितगण शुक्र कहते है। शुक्रमें वायु, अग्नि, भूमि और पानी यह चार महाभूतका अंश विद्यमान है तथा यह मधुरादि छ रसोंसे उत्पन्न होता है।

शुक्र, शोणित और जीव कुक्षिगत हो संयुक्त होनेहीसे उसको गर्भ कहते है। अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, पानी और भूमिके

विकृतिको गर्भ कहते हैं, यही गर्भ चेतनाका अधिष्ठान है। इसी चेतनाको गर्भको छठी धातु कहते है। बाल्यवस्था अतिक्रम कर युवावस्था मे स्त्रियोंके अनेक भावोंमें परिवर्त्तन दिखाई देता है। युवावस्थामें दोनो स्तन पीनोन्नत योनि विवर्धित और वस्ति-लोमसे व्याप्त होती है। जरायु कोषसे पतला और साफ रक्त निकलता है। इसी रक्तको आर्तव या पुष्प कहते है, चलित भाषामें इसको स्त्रीधर्म्म कहते हैं।

स्त्रीधर्म्म।—प्रति मासमें यह रक्त निकलता। रक्त यदि शश रक्त या लाहके पानीकी तरह हो और वस्त्रादि में दाग न लगे तो निर्दोष रक्त जानना, यह रक्त ४।५ दिनतक स्थायी रहता है। इन सब नियमोंका व्यतिक्रम होनेसे रजोदुष्टि स्थिर करना। रोग शोक वर्जित परिपुष्टाङ्गी स्त्री को प्राय बारह वर्ष अतिक्रम होनेसे रज प्रवृत्ति होता है तथा यह पचास वर्षके बाद बन्द होता है। शरीरमें खराबी होनेसे पचास वर्षके भीतर ही रजो निवृत्ति हो जाती है। रज.प्रवृत्तिके पहिले दिनसे सोलहवें दिनतक को ऋतुकाल कहते हैं। यही काल गर्भ ग्रहणका उपयुक्त काल है। प्रकृतिभेदसे स्त्रियोंके ऋतुकालमे भी हेरफेर होता है अर्थात् किसी किसी स्त्रीको सोलह दिनतक गर्भ ग्रहण की शक्ति नही रहती है। सूर्य्य अस्त होनेसे जिस तरह पद्मिनी मूद्रित होती है, वैसही ऋतु-काल अतीत होनेसे नारीका जरायु सङ्कुचित हो जानेसे गर्भ ग्रहण को शक्ति नही रहती। ऋतुकालमें स्त्रीगण अपेक्षाकृत अधिक सम्भो गाभिलाषिणी होती हैं, यह वक्त प्रकृत रतिकाल है। उसर भूमिमें बीज डालनेकी तरह और वक्तका शृङ्गार निरर्थक होता है।

ऋतुमती।—शुद्ध आर्तवारम्भणीको ऋतुके पहिलेही दिनसे ब्रह्मचर्य्य रहना चाहिये। दिवानिद्रा, अञ्जन, अश्रुपात,

स्नान, अनुलेपन, तैलादि मर्द्दन, नखच्छेदन, धावन, अतिशय हसना, बहुत बोलना, तेज आवाज सुनना, अवलेखन, वायु सेवन, और परिश्रम उनको त्यागना चाहिये। यह सब विधि पालन न करनेसे गर्भ नानाप्रकारसे दूषित हो जाता है तथा उस गर्भमें सन्तान पैदा होनेसे वह नानाप्रकारके रोगोंसे पीड़ित रहती। जिसका ब्यौरा नीचे सचेपमें दिया जाता है।

विशेष विशेष रोग।—ऋतुमतीके दिवानिद्रासे भावी सन्तान निद्राशील, अञ्जन लगानेसे अन्धा, अश्रुपातसे विकृति दृष्टि, स्नानानुलेपनसे दुःखशील, तैलादि मर्द्दनसे कुष्ठी, नख छेदनसे कुनखो, धावनसे चञ्चल, अधिक बोलनेसे प्रलापी ऊंचा शब्द सुननेसे वधिर, अवलेखनसे खल्वमति, वायुसेवन और श्रमसे उन्मत्त तथा अधिक हसनेसे सन्तानको दांत, औष्ठ, तालू और जीभ श्यामवर्ण होते हैं। अतएव ऋतुमती स्त्री सर्वतोभावसे यह सब त्याग दें। ऋतुके तीन दिन उनको कुशासनपर सोना, करतल अथवा पत्तलमें हविष्यान्न भोजन और स्वामी सहवास बन्द करना चाहिये।

ऋतुस्नाता।—ऋतुमती स्त्री चौथे दिन स्नानकर सुन्दर और पवित्र वस्त्रालङ्कार धारण और स्वस्तिवाचन पूर्व्वक सबसे पहिले भर्त्ताका दर्शण करे। स्वामी न उपस्थित होतो सूर्य्यको देखना, इसका तात्पर्य्य यह है कि ऋतुस्नानकर रमणी जैसे पुरुषको देखेगी वैसेही सन्तान होगी। इसके बाद अब गर्भाधान।

गर्भाधान।—भर्त्ता एकमास ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन कर भार्य्याके ऋतुकालके चौथे दिन घी दूध और शालिधान्यका भात भोजन करे तथा भार्य्या एक मास ब्रह्मचर्य्य अवलम्बन कर उस दिन तैल मर्द्दन अधिक उरदका द्रव्य भोजन करे, फिर भर्त्ता वेदादिमें विश्वास कर पुत्रकामी हो उसी रातको अथवा षष्ठ, अष्टम

दशम या द्वादश दिनको भार्य्यासे उपगत होवे। ऋतुकालके चौथे दिन से बारवें दिन उत्तरोत्तर जितने दिन पर समागम हो सन्तान उतनीहो सौभाग्यशाली, ऐश्वय्यशाली और बलशाली होती है। कन्याकी इच्छा हो तो पञ्चम, सप्तम, नवम या एकादश दिन गमन करना चाहिये। तेरहवें दिनसे समागम अवैध है यहां यह याद रखना आवश्यक है कि पुरुषाभिलाषिणी कामातुरा व्याधिहीना स्त्रीके साथ सञ्जात हय, व्याधिहीन रतिज्ञ पुरुषका ऋतुकालमें संसर्ग होनेसे अपत्योत्पादन इच्छाफलवती होता है। स्पष्ट जल-सिक्त उपयुक्त गुणसम्पन्न क्षेत्रमें यथासमय में निर्द्दोष बीज बपन करनेसे जैसे उसमेंसे अङ्कुर निकलता है, वैसही अदोष योनिमें यथासमय अदोष शुक्र आहित होनेसे गर्भोत्पत्ति अवश्य होती है।

अभिगमन ।—ऋतुकालका संसर्ग नानाप्रकारके अनर्थका निदान है। ऋतुके पहिले दिन गमन करनेसे पुरुषका आयु क्षय होता है। उसमे यदि गर्भ हो तो गर्भस्राव हो जाता है। दूसरे दिन गमन करनेसे भी वसही फल होता है, अथवा सूतिका गृहमें ही सन्तान मरजाती है। तीसरे दिन गमन करनेसे वही फल अथवा सन्तान अपूर्णाङ्ग या अल्पायु होती है। चौथे दिन गमन करनेसे सन्तान सम्पूर्णाङ्ग और दीर्घायु होती है। पर जबतक शोणित स्राव होता रहे तबतक बीज प्रविष्ट होनेमें कोई फल नही होता। जैसे नदीके स्रोतमें कोई द्रव्य डालनेसे वह जाता है, बीजभी वसेही गर्भकोषमें न जाकर प्रत्याहृत्य होता है। अतएव ऋतुकालके तीन दिन गमन नही करना चाहिये। ऋतुका १२ वां दिन बीत जानेसे फिर एक महीनेके बाद गमन करना उचित है। इस नियममें सन्तान पैदा हो तो वह सन्तान

रूपवान, महा बलवान, बुद्धिमान, आयुष्मान, पितृपरायन, धनवान और सत्पुत्र होता है।

वर्ण और चक्षु।—गर्भोत्पत्ति कालमें तेजोधातु अधिकांश जलधातुके साथ मिलनेसे गर्भ गौर वर्ण होता है, अधिकांश पार्थिव धातुके साथ मिलनेसे गर्भ कृष्णवर्ण होता है। अधिकांश पृथिवी और आकाश धातुके साथ मिलनेसे कृष्ण श्याम और अधिकांश जलीय और आकाश धातुके साथ मिलनेसे गौर श्याम होता है। कोई कोई कहते हैं कि गर्भावस्थामें गर्भिणी जिस रङ्गका द्रव्य आहार करती है, सन्तान भी वही रङ्गकी होती है। तेजदृष्टि शक्तिके साथ न मिलनेसे सन्तान जन्मान्ध होती है। तेज शोणितका आश्रय ले तो सन्तान रक्ताक्ष होती है। पित्तका आश्रय ले तो चक्षु पीतवर्ण, कफका आश्रय ले तो शुक्लाक्ष और वायुका आश्रय ले तो विकृताक्ष (टेरा) होती है।

गर्भस्राव और अकाल प्रसव।—जिस गर्भका शुक्र और शोणित, आत्मा, आशय अर्थात् भ्रूणोत्पत्ति स्थान (जरायु क्षेत्र) और काल यह सब दोष वर्जित हो तथा गर्भिणीके आहार विहार मे कोई दोष न होतो वह अदुष्ट शुक्र शोणित सम्भूत गर्भ सर्व्वतोभावसे सब अवयव सम्पन्न हो प्रसूत होता है। समजा अर्थात् अवन्ध्या स्त्रीकी योनि या जरायु का दोष, मानसिक विविध अशान्ति या क्लेश, शुक्र या शोणितकी खराबी, आहारादि का अत्याचार अकाल योग किम्वा व्याधि आदिसे देरमें गर्भ-धारण होता है। गर्भस्रावका विषय अति भयानक है, इससे एक रहस्य है। रूक्षान्न पानादिसे गर्भाशय की वायु कुपित हो किसी किसी स्त्रीका ऋतुशोणित बन्द हो ठीक गर्भका लक्षण प्रकाश होता है। बहुतेरे लोग उसे गर्भ स्थिर करते है, पर थोड़े दिन बाद जब

शोणित अधिक सञ्चय होनेसे स्राव अथवा अग्नि या सूर्य्य ताप, श्रम, क्रोध, शोक, अथवा उष्ण अन्नपानसे परिस्रुत हो जाता है।

पुत्र कन्या और बहु सन्तान।—यदि बीज अर्थात् मिलित शुक्र शोणित में रक्तका भाग अधिक होतो कन्या और शुक्रका भाग अधिक होतो पुत्र पैदा होता है कोई कोई कहते हैं कि चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम आदि युग्म दिनोंमें गमन करनेसे पुत्र और पञ्चम, सप्तम नवम आदि अयुग्म दिवसमें कन्या पैदा होती है। वायु कुपित हो बीजको दो भागमें विभक्त कर तो यमज सन्तान होती है। इस दो भागमें यदि एक भागमें रक्त अधिक होतो कन्या और दूसरे भागमें शुक्र अधिक होतो पुत्र जन्मता है या दोनो भागो मे रक्तका भाग अधिक होतो दो कन्या और शुक्रका भाग अधिक होतो दो पुत्र होता है। अति प्रबल वायु जब बीजको कई विभागोंमें विभक्त करेतो बहु सन्तान प्रसव होती है। प्रकुपित वायु कर्तृक यदि बीज विषमांशसे विभक्त हो अर्थात् एक अंशमें अधिक बीज और दूसरे अंशमें कम तथा गर्भिणी यदि उपयुक्त आहार प्राप्त न हो और उसका कोई धातुका क्षय या अधिक स्राव होतो गर्भ सूखजाता है,—इससे प्रसवके निर्द्दिष्ट समयसे अधिक दिनपर प्रसव होता है।

नपुंसक।—अब नपुंसकादिके जन्मका कारण लिखता हूं। उपरोक्त बीज में शुक्र और शोणितका भाग बराबर हो तो स्त्री या पुरुष चिह्नयुक्त सन्तान होती है। वायु कुपित हो गर्भस्थ प्राणीका शुक्राशय नष्ट करनेसे वह प्राणी-पवनेन्द्रिय होता है। वायुकर्तृक गर्भस्थ प्राणीका शुक्राशय द्वार विघटित होनेसे मस्कारवाही सन्तान पैदा होती है। यदि पितामाता हीन बीज या अल्प बीज विशिष्ट दुर्व्वल और अहृष

अर्थात् मैथुनमें अल्प हर्ष-विशिष्ट होनो वह पुत्र या कन्या नरषण्ड या नारीषण्ड होते है। माताको मैथुनकी अनिच्छा और पिताका बीज दुर्व्वल होनो सन्तान टेढो (वक्र) होती है। पितामाता ईर्षाभिभूत वा मैथुनमें मन्द हय होनो सन्तान ईर्षापरतन्त्र होती है। जिस पुरुषका दोनो कोष वायु और अग्निदोषसे नष्ट हो जाता है उसको वातिक षण्ड कहते है।

विशेष इन्द्रिय।—गर्भका शरीर माता आदिसे उत्पन्न होनेपर भी वह पांच महाभूतका विकार है, कारण जीवदेह पंच महाभूतात्मक है। किस महाभूतसे क्या उत्पन्न होता है, वह क्रमश विहत होगा। शब्द, शोत, लघुता, रुक्षता, और छिद्र यह सब आकाशसे उत्पन्न होता है। स्पर्शेन्द्रिय, रुक्षता, श्वासप्रश्वास क्रिया, धातु और शारीरिक चेष्टा वायुसे उत्पन्न होता है। रूप दर्शेन्द्रिय प्रकाश, परिपाक और उष्णता यह सब अग्निसे उत्पन्न है। रस, रसेन्द्रिय, शैत्य, मृदुता, स्नेह, और क्लेद पानीसे उत्पन्न है। गन्ध, घ्राणेन्द्रिय, गुरुत्व, स्थैर्य्य, और मूर्त्ती यह सब पृथिवीसे उत्पन्न है। जगतमें जितने भाव है पुरुषमें वही सब भाव दिखाई देते है। पण्डितगण जगत् और पुरुषके भावका एकही रूप बताते है। इसी तरह तृतीय मासमें गर्भ औरभी कई अङ्ग और अङ्गावयव एकहीबार उत्पन्न होतेहो। इसके सिवाय कालान्तरमें और भी कई भाव उत्पन्न होते है। दांत, स्तनोन्नति अधोलोम, श्मश्रु और कक्षलोम काल-विशेषमें उत्पन्न होते है। बुद्धि, रूप, वाक्शक्ति, शुक्र और गमन धावनादि भावोंकी उत्पत्ति भी क्रमश होती है।

भ्रूणका क्रमस्फुरण।

गर्भको सब इन्द्रियां उत्पन्न होनेपर शिशुको अन्तःकरण का दर्द अनुभव करनेको शक्तिका सञ्चार होताहै। इन्हो सबसे गर्भ स्पन्दित होता रहता है। इसको लोग सचराचर गर्भ यन्त्रणा कहते हे। वास्तवमे इस दर्दकी तरह भयङ्कर दर्द दूसरा नही है। इसवक्त जोव गर्भ यातनासे व्याकुल हो भगवानको स्तुति करता है। गर्भस्थ शिशुका हृदय माताका और माताके हृदयके साथ शिशुका घना सम्बन्ध है इसोलिये वृद्धगण गर्भको दैहृद्य कहते हैं। इसवक्त गर्भिणोको गर्भके प्रतिकूल आहार विहारादि त्याग करना चाहिये कारण इसवक्त गर्भके प्रतिकूल कार्य्यादिसे गर्भका नाश या विकृति होनेका डर है।

इसवक्त इन्द्रियोंको कोई कोई विषय भोगकी इच्छा होती है। यह इच्छा पूर्ण होनेसे सन्तान गुणवान और आयुष्मान होतो है। किन्तु माताको यह इच्छा यदि पुरो न होतो गर्भस्थ सन्तान कुब्ज, खञ्ज, वामन, विकृताङ्ग अथवा अन्ध होती है। अतएव गर्भावस्थामें स्त्रियोंको अभिलषित द्रव्य अवश्य देना उचित है।

चौथे महीनेमें गर्भ स्थिर होता है, इससे गर्भिणोका शरीर इसवक्त भारो हो जाता है। पाचवे महोने गर्भका मांस और शोणित कुछ बढता है। इसोलिये गर्भिणो पाचवे महीने बहुत दुबलो हो जाता है। छठे महीने और महोनेकी अपेक्षा भ्रूणका बल और वर्णका ह्रास होता है। सातवें महोने गर्भके सब भावोंको वृद्धि हो गर्भिणोके आकारमें क्लान्ति दिखाई देतो

है। आठवें महीने गर्भ और माता रसवाहिनी शिरा समूहोंसे परस्परका ओज ग्रहण करते हैं। इसवक्त गर्भिणी वारवार ग्लानि युक्त मोटो ताजी होती है। ओजोधातुके अनवास्थतत्वसे यह विपद होनेकी सम्भावना है। इसीसे पण्डितगण अष्टम मासको गर्भका अहितकर निर्देश करते हैं। आठवां महीना पूरा हो नवें महीनेके पहिले दिनसे दशवें महीने तक प्रसवका मुख्यकाल है। इससे अन्यथा होतो विकृति स्थिर करना।

गर्भस्राव और अकाल प्रसव।

गर्भस्राव।—पहिले कह आए हैं कि किसी तरह की साघातिक पीडा होनेसे अकसर गर्भस्राव हो जाता है। गर्भाधानके बाद २८ हप्ता पूर्ण होनेके पहिले भ्रूण निकलेतो उसे गर्भस्राव कहते हैं। इसके बाद शिशु भूमिष्ठ होनेसे प्राय शिशु मरता नहीं है, इसे अकाल प्रसव कहते हैं। बहु प्रसविनी स्त्रीको गर्भस्राव अधिक होता है।

कारण।—गर्भस्राव नाना कारणोंसे होता है, जरायुके भीतरका रक्तस्राव होतो गर्भ नहीं ठहरता। भ्रूणकी मृत्युभी गर्भस्रावका अन्यतम प्रधान कारण है। उपदंश, चेचक आदि पीडामें भी गर्भस्राव होता है। उत्कट परिश्रम या मानसिक अवसाद, अत्यधिक रमण, अधिक सुरापान, विषद्रव्य सेवन, गर्भके उपर अकस्मात् गुरुतर आघात, जरायु प्रदाह किम्वा स्थानच्युति आदि कारणोंसे भी गर्भस्राव की सम्भावना है।

उपर जितने कारणोंका उल्लेख किया गया है, उनमेंसे कोई कोई पूर्व्वप्रवर्त्तक और कोई कोई उत्तेजक कारण हो जाते हैं। पहिलेहीसे गर्भस्रावकी लक्षण जिसमें रहते हैं, उसको थोडेही कारणसे गर्भस्राव हो जाता है। पर पूर्व्व प्रवणता न रहनेसे गर्भ सहजमें नष्ट नहो होता।

लक्षण।— गर्भस्राव होनेसे पहिले जरायु सङ्कुचित होता है, तब गर्भिणीके तल पेटमें उत्कट दर्द होता है साथही इसके अथवा थोडो देर बाद जरायुसे शोणितस्राव होना आरम्भ होता है। शोणित कभो थोडा थोडा निकलता है इस दशामें गर्भिणोको अवस्था सङ्कटापन्न हो जातो है। कभो पहिले दो तोन दिन थोडा थोडा शोणित निकलकर क्रमश कमही बन्द होजाता है। तब लोग समझते हैं कि गर्भिणो आराम हो गई, फिर एकाएको शोणित दिखाई देता है। फलत शोणितस्राव और दर्द यह दोनो गर्भस्रावके प्रधान लक्षण है। इन दो लक्षणोंमें एक भो दिखाई देनेसे चिकित्सा करना उचित है।

माता और शिशु।—गर्भावस्था गर्भिणोके हकमें बडा विषम काल है। भ्रूणका जन्म और क्रमस्फुरणसे लेकर जबतक भूमिष्ठ न हो तबतक गर्भिणोको विशेष सावधानोसे रहना चाहिये। सामान्य त्रुटि या अनियम अथवा थोडा अत्याचारभो गर्भिणो और साथही गर्भस्थ शिशुका स्वास्थ्य नष्ट कर सकता है। इसोलिये इस वक्त गर्भिणोका स्वास्थ्य ठोक रहे इस विषयमें विशेष दृष्टि रखना चाहिये। इससे केवल गर्भिणोका मङ्गल है सो नहो गर्भस्थ शिशुका भो स्वास्थ्य अच्छा रहता है। शिशु जबतक गर्भमें रहता है तबतक माताके शोणितसे हो उसका पोषण होत है, अर्थात् शोणित माताके शरीरसे सन्तानके शरीरमें जाकर उसको

जीवन रक्षा होती है। सुतरां इससे स्पष्ट जाना जाता है कि माताका शोणितही शिशुकी जीवनशक्तिका एकमात्र प्रस्रवण है। वही प्रस्रवण दूषित होनेसे शिशुका स्वास्थ्य नष्ट और कहांतककि जीवन विपन्न होनेकी सम्भावना है इससे स्पष्ट जाना जाता है कि गर्भावस्थामें गर्भिणीका स्वास्थ्य ठीक रहनेसे गर्भस्थ शिशुका स्वास्थ्य ठीक रहेगा और उसके क्रमस्फुरणमें कोई तरहकी बाधा नहीं होगा। गर्भिणीका स्वास्थ्य ठीक रहने में पथ्य, परिश्रम, निद्रा आदि कई एक विषयमें ध्यान रखना उचित है।

भोज्य।—पहिले आहारके सम्बन्धमें कहते हैं,—गर्भावस्थामें हलका और पुष्टिकर द्रव्य आहार करना उचित है। गर्भिणीका पथ्य जितना सुपाच्य और पुष्टिकर हो उतनाही अच्छा है मासमें टटका पक्का फलमूलसे विशेष उपकार होता है, हमारे देशमें सचराचर जो सब कन्दमूल मिलते हैं उसमें आलू, गोभी, बैंगन, मटरकी छीमी, बोट और केला, अमलानीबू, तरबूज, शरीफा, अमरूद आम, जामुन आदि व्यवहार किया जा सकता है। मछली कम आहार करनेमें बाधा नहीं है, यदि कोई खास बिना खाये न रहसके उनको थोडा मांस भी देना चाहिये। मांसाहारसे गर्भिणीका स्वास्थ्य नष्ट होनेकी सम्भावना है, इससे जहांतक बने मांस न खानाही अच्छा है। मरे प्राणीके मांससे गर्भस्थ शिशुका कोमल शरीर नहीं बन सकता, इसलिये शरीरतत्त्ववित् पण्डितोंने गर्भावस्थामें मांसाहार मना किया है। बहुतेरी स्त्रियां गर्भावस्थामें अधिक खट्टा खाती है, यह सर्व्वथा बन्द करना चाहिये। यदि बिना खट्टा खाये न रहसके तो थोडी पुरानी इमली आदि खट्टा खानेको देना चाहिये। पीनेके द्रव्यमें शुद्ध पानी और दूध पीना चाहिये। सब प्रकारका उत्तेजक

पेय बन्ध रखना, यहातक कि यदि किसोको चाह पोनेका अभ्यास हो तो वहभी त्यागना चाहिये।

लघु आहार।—बहुतेरोंका यह ख्याल है कि गर्भिणोको जब अपने शरोरके सारांशसे गर्भस्थ शिशुको रक्षा और पोषण करना पडता है तब उसका आहार बढाना चाहिये। बहुतेरे इसके अनुसार काम कर भ्रूण और माताका नाना प्रकार अमङ्गल कर बैठते हैं। यह धारणा जैसी भ्रमसङ्कुल है वैसही अनिष्टकर है। इसोलिये गर्भावस्थामें परिमित आहार आवश्यक है, इससे माता और शिशु दोनोके शरोरको रक्षा और भ्रूणके स्फूर्त्ती साधनोपयोगो सब प्रयोजन सिद्ध होते हैं। अतएव गर्भिणोको लघु पुष्टिकर और परिमित द्रव्य भोजन देना चाहिये।

पेय।—हमारे देशमें गृहस्थके स्त्रियोमें सुरा आदि मादक द्रव्य सेवन को प्रथा नहो है। पर पाश्चात्य देशोय बहुतेरो कुल-कामिनो हरवख्त और कहानक कि गर्भावस्थामें भो सुरापान करतो है। इसोसे उनको सन्तान प्राय उन्मत्त और दुर्नीत परायण होतो है। अतएव गर्भावस्थामें किसो तरहका मादक द्रव्य सेवन करना उचित नहो है, और कहातक कि चाह काफोतक पोना मना है। शुद्ध पानो और दूधहो गर्भिणोका एकमात्र पेय है।

कदर्य्य रुचि।—हमारे देश और विलायतमें भो बहुतेरो गर्भिणोको जघन्य द्रव्यादि सेवनको इच्छा बलवतो होतो है। कोई नन्नो हुई मिट्टो, कोई राख आदि पदार्थ बडो रुचिसे खातो है। यह बडा अन्याय है, कारण ऐसे द्रव्य आहार करनेसे गर्भिणी पाण्डु, कामला और अजोर्ण आदि पोडासे पोडित होतो है।

शौचाचार।—गर्भावस्थामें शौचाचारके विषयमें विशेष ध्यान रखना आवश्यक है, कारण इस दशामें शौचाचार का सामान्य व्यतिक्रम होनेसे गर्भिणीको नानाप्रकारकी पीडा होनेकी सम्भावना है। इस देशकी औरतें शौचाचार में जैसी सावधान हैं, अन्य देशकी औरतें वैसी सावधान देखनेमें नहीं आती। यहाकी औरतें आशौच अत्यन्त दूषणीय मानती हैं। शौचाचार में स्नानही प्रधान है। इससे त्वक और लोमकूप रोज साफ होनेसे शोणित भी साफ रहता है। स्वस्थ्य शरीरमें रोज स्नान करनेसे स्वास्थ्य ठीक रहता है। पर अस्वस्थ्य शरीरमें विशेषकर मलेरियाके विषसे जिनका शोणित दूषित हो गया है उनको रोज स्नान करना उचित नहीं है। अवस्था और सहने पर हफ्तेमें दो दिन या तीन दिन स्नान करना अच्छा है।

वायु और परिश्रम।—गर्भावस्थामें अपना और शिशुका शोणित शुद्ध रखनेके लिये साफ हवा सेवन करना उचित है। स्वास्थ्यरक्षाके हकमें यही जीवनका प्रधान उपाय है। आहार न कर आदमी २१४ दिनतक रह सकता है पर साफ वायुके बिना एक मूहूर्त्त भी नहीं बच सकता। अतएव रहनेके घरमें सर्वत्र साफ हवाका चलाचल हो इस विषयमें विशेष दृष्टि रखना उचित है। मकानके सब घरोंकी अपेक्षा सोनेके घरमें साफ हवाका ख्याल रखना आवश्यक है। मकानमें सर्व्वत्र साफ हवा सञ्चालित होनेसे शिर पीडा, अजीर्ण, दृष्टिदौर्बल्य और नानाविध स्नायविक पीडा नहीं होती। हम लोगोके सहज शरीर में जब साफ वायु इतनी उपकारी है तब गर्भिणीके हकमें वह तो अधिक आवश्यक है इसमें विन्दूमात्र भी सन्देह नहीं है। अतएव क्या दिन क्या रात, क्या जाग्रत, क्या निद्रित हरवक्त और सब अवस्थामें गर्भिणीको साफ हवामें रखना चाहिये।

व्यायामादि।—जीवका जीवन धारणके निमित्त किसी तरहका परिश्रम या व्यायाम आवश्यक है, इससे शरीरके अङ्ग प्रत्यङ्ग और यन्त्र समूहों की उन्नति और स्फूर्त्ती होती है और साथही स्वास्थ्य भी ठीक रहता है अतएव परिश्रम सुख स्वास्थ्य और स्वच्छन्दता में विशेष उपयोगी है। जो परिश्रम न कर आलसीकी तरह बैठे रहते हैं उनका जीवनही वृथा है। सहज शरीरमें सब प्रकारका व्यायाम करना चाहिये, पर गर्भिणीको यथसाध्य गृहस्थीका काम अवश्य करना चाहिये। इस देशमें गवई गावकी औरतें स्नान शौचकर्म्मके लिये मैदानमें जो जाया करती हैं यह अच्छी प्रथा है। इससे विशुद्ध वायु सेवन और सामान्य परिश्रम दोनों उद्देश्य साधित होते हैं।

विश्राम और निद्रा।—विश्रामविशेषकर निद्रा स्वास्थ्यरक्षाका एक प्रधान उपाय है। मस्तिष्क और शरीरके सब यन्त्रोंको दिन रातमें एक दफे विश्राम आवश्यक है। परिश्रमके अनुसार विश्राम भी स्थिर करना चाहिये अर्थात् परिश्रमके परिमाणसे उसका उतनाही विश्राम चाहिये। कोई रात दिनमें ६ घण्टा कोई ८ घण्टासोनेसे अपनेको स्वस्थ मानतेहैं। सहज शरीरमें अनिद्रा और अतिनिद्रा दोनोंही जैसी अनिष्टकर है, गर्भावस्थामें यह और भी अनिष्टकर है। सचराचर ६ से ८ घण्टातक सुनिद्रा होनेसे ही स्वास्थ्य ठीक रहता है, इससे अधिक निद्रासे शरीर खराब होनेका डर है।

मानसिक अवस्था।—निद्रा, आहार आदि व्यापारसे गर्भिणीका जैसा विशेष सतर्क रहना आवश्यक है, मानसिक अवस्थाकी तरफ भी उनकी वैसही दृष्टि रखना चाहिये। सबसे अधिक मानसिक शान्तिके लिये एकान्त आवश्यक है। चित्त स्थिर और

मन सर्व्वदा शान्तिमय रहनेसे गर्भिणी और गर्भस्थ शिशु दोनोंका स्वास्थ्य ठीक रहता है। इसलिये भावी जननीको सर्व्वदा क्रोधादि रिपु और जिस कार्य्य या दृश्यसे मानसिक उद्वेग और उत्तेजना हो उससे दूर रहना चाहिये। गर्भिणीका आतंक उद्वेग और उत्ते-जनासे अकसर शिशुका विशेष अनिष्ट होता है। इन सब व्यापारसे माताके स्नायुमण्डल में हटात् प्रचण्ड विप्लव होता है, तथा साथही शिशुके स्नायुमण्डलमें भी उत्पन्न होता है इसवक्त शिशुका मस्तिष्क और स्नायुमण्डल इतने जोरसे परिस्फुरण होने लगता है कि कोई प्रकारका इसमें विकार होनेसे कोई कोई वक्त उसका प्रतिविधान भी नहीं सकता है गर्भिणीके अकस्मात् आतङ्क, क्रोध या और कोई रिपुके उत्कट उत्तेजनासे अकसर गर्भस्थ शिशुको मृगी और उन्माद आदि पीड़ा होते देखा गया है। अतएव गर्भावस्थामें रमणीको सर्व्वदा शान्त और निरुद्वेग रहना चाहिये। धर्म्मचिन्ता, धर्म्मकर्म्मका अनुष्ठान और आलोचना, अथवा धर्म्म पुस्तकादि पाठ करनेसे गर्भिणीका मन सर्व्वदा शान्ति-रससे आप्लुत रहता है और उसके साथही गर्भस्थ शिशुके मस्तिष्क में भी धर्म्मचिन्ताका बीज धीरे धीरे अंकुरित होता है। इसके सिवाय सुन्दर आलेख्य सन्दर्शन श्रुतिसुखकर मनोहर सङ्गीत या स्वरलहरी श्रवण आदि कार्य्यभी गर्भिणीके हकमें विशेष हितकर है।

प्रसव-प्रक्रिया।

द्विविध प्रसव।—प्रसव दो प्रकार,—स्वाभाविक और अस्वाभाविक। सर्वाङ्गमें मस्तक स्वभावत: भारी है इससे प्रसव

कालमें सचराचर पहिले वही बाहर आता है। इसको स्वाभाविक प्रसव कहते हैं। यह २४ घण्टेमें सम्पन्न होता है। शिशुका माथा नीचे रहनेपर भी प्रसवको २४ घण्टासे अधिक समय लगेतो उसे विलम्बित प्रसव जानना। तथा २४ घण्टेके पहिले प्रसव होनेसे उसे द्रुतप्रसव कहते हैं।

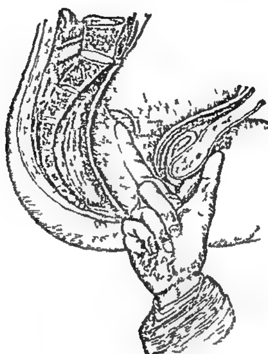
वेदना।—प्रसवकार्य्यमें जरायुका सङ्कोचन एकान्त आवश्यक है, जरायु सङ्कुचित न होनेसे गर्भस्थ सन्तान भूमिष्ठ नहीं होती। जरायुके सङ्कोचनसे जो एक प्रकारकी दर्द होती है उसको प्रसव वेदना कहते हैं। प्रसव वेदना रह रहकर उठती है तिसपर भी माताको जितनी तकलीफ होती है, यदि वह दर्द लगातार निरवच्छिन्न होता रहता तो माता और गर्भस्थ शिशुका दोनोंका जीवन सङ्कटापन्न होजाता कारण प्रसवमें विलम्ब होनेसे प्राय ऐसाही अनिष्ट होता है।

द्विविध वेदना।—प्रसवके पहिले कभी दो प्रकारका दर्द होता है, जरायु आपही सङ्कुचित होनेसे जैसा दर्द होता है और जो जरायुके आधेयको क्रमश प्रसव पथमें ले आता है, उसको प्रकृत वेदना कहते हैं। प्रकृत वेदनाका आरम्भ पहिले धीरे धीरे मृदुभावसे होता है। फिर बढते बढते कुछ काम हो अन्तमें थोड़ी देरके लिये बन्द हो जाता है। इसके बाद फिर दर्द तेज हो काम हो जाता है। जैसे जैसे दर्द उठताहै वैसही इसका निर्दिष्ट क्रमभी दिखाई देता है। पर अप्रकृत वेदना ऐसी नहीं है,—इसका कोई निर्दिष्ट क्रमभी नहीं है। इससे जरायुका समस्त अंग सङ्कुचित न हो उसका एक अंश मात्र सङ्कुचित होता है। जरायुके किसी अंगमें घाव या रक्ताधिक्य होनेसे अथवा पाकस्थाली या यन्त्रके उत्तेजनासे जरायुका कोई अंग उत्तेजित

होनेसे वहा भी यही अप्रकृत वेदना उठती है। पूर्ण गर्भमें सन्तान भूमिष्ठ होनेके कई दिन पहिले अप्रकृत वेदना सचराचर उठती है।

उपक्रम।—प्रकृत प्रसव वेदना प्रकाश होनेसे कई दिन पहिलेहो से गर्भिणीके शरीरमें कई एक लक्षण प्रतीयमान होने लगते है। इस समयसे जरायु अल्प अल्प संकुचित होने लगता है। प्रसव पथके कोमल तन्तु सब शिथिल होने लगते है और जरायु इसी रास्तेसे आहिस्ते आहिस्ते नीचे आने लगता है। इस अवस्थाको प्रसवका उपक्रम कहते है।

तीन क्रम।—सचराचर प्रसवके तीन क्रम है, पहिले क्रममें जरायुका मुख बड़ा हो साथही सकोचन आरम्भ होता है तथा जरायुके उर्द्धभागमें सकोचन आरम्भ हो क्रमशः नीचे आताहै। द्वितीय क्रममें शिशु भूमिष्ठ होता है। जरायु मुखका पूरा बिस्फारण इसी क्रममें आरम्भ हो शिशु निकलने पर उसको समाप्ति होती है। इस क्रमके पहिले भिल्ली फटकर पतला फेनकी तरह एक प्रकार पदार्थ निकलता है इसवक्त जरायुका आकार कम हो जाता है। शिशु भूमिष्ठ होनेपर तीसरा क्रम आरम्भ होता है और खेरी बाहर होनेसे उसका शेष होजाताहै। शिशु प्रसूत होनेके आधा घण्टा बाद खेरी निकलती है, किसी वक्त दूसरा क्रम शेष होतेहो बाहर निकलती है।



अपत्यपथमें सन्तान परीक्षा ।

उत्तर वेदना ।—शिशु भूमिष्ठ और खेरी निकल जानेसे जरायु सकुचित होता है, इस सकोचनसे अकसर दर्द होता है। इसीलिये इसको उत्तर वेदना कहते है। इस देशकी औरतें इसे पोतनहर का फिरना कहती हैं। यदि दर्द अकसर प्रसवके कई घण्टे बाद उठता है, कभी यह क्रमागत २।३ दिनतक रहता है, इस दर्दसे प्रसूतीका अच्छा है, कारण प्रसवके बाद भी जरायुके भीतरका जमा हुआ रक्त आदि जो कुछ रहता है यह इस दर्दसे निकल जाता है।

विविध प्रसव ।—पहिले कहचुके हैं, कि शिशुका मस्तकही अकसर पहिले प्रसव पथमें आता है। यह सहज प्रसव है कारण इसमे माता या शिशुको क्वचित् कोई कष्ट होता है। अर्थात् शिशुका मस्तक माताके वस्तितटके तिर्य्यक व्यास



पार्श्वप्रागवतरण ।

१। शिशुका दहिना हाथ। २। मातृवस्तिको दक्षिण बाहु। ३। वस्तिको बाहुसन्धि।

चिकित्सा ।

ऊपर जितने प्रकारके प्रसव कष्ट आए हैं उसमें वस्ति और पार्श्व प्रागवतरण में विपद की सम्भावना है। बाकी दो प्रागवतरण की अपेक्षा पार्श्व-प्रागवतरण में शिशुका विपद अधिक होते देखा गया है। यहां शेषोक्त द्विविध प्रसवको चिकित्साविधि लिखते हैं।

निर्णय।—शिशुकी वस्ति पहिले प्रसव पथमें आती है वा नहीं सबसे पहिले इसका निर्णय करना चाहिये। उसका श्रोणिद्वय, उपस्थ आदि वाह्य जननेन्द्रिय अङ्गुलिसे मालूम होतो

समझना कि वस्ति पहिले उतर रही है। इस तरह उसका प्रागवतोर्गं अंश निर्णीत होनेसे चिकित्सा करना चाहिये।

नाभिरज्जु रक्षा।—जिसवक्त शिशुका वस्ति पहिले निकले तथा प्रसव द्वारमें दिखाई देतेही चिकित्सक उसे अपने हाथसे धर ले। यदि पहिले पैर बाहर आवे तो चिकित्सक को सावधान होना चाहिये कारण इस अवस्थामें प्रसव पथ अच्छी तरह विस्फारित नहीं होने पाता और इसीसे शिशुका शिर जल्दी नहीं निकलता इसीलिये अवसर जानपर कौशल आती है। इस दशामें शिशुके नाभिरज्जुमें दाब न पडे इस विषयमें दृष्टि रखना आवश्यक है। शिशुके नाभिस्थलतक बाहर आनेपर मातृ-वस्ति जहां अधिक चौडी है वहां रज्जु रखना।

हस्तद्वय।—नाभिस्थल बाहर होनेके बादही दोनो हाथ बाहर दिखाई देते हैं। यह न हो यदि शिशुके दोनो हाथ माथेपर उठ जाय तो भी सामनेसे शिशुका हाथधर नीचे उतारना। दोनो हाथ एक दफे न धर पिछला हाथ पहिले निकालना, फिर सामनेका हाथ निकालना चाहिये।

मस्तक निर्गमन।—यदि सर्व्वाङ्ग निकलकर मस्तक अडजायतो शिशुको तकलीफ अधिक बढजाती है। इस अवस्थामें शिशुके मुखमें हवा लगे इसीलिये अङ्गुलीसे योनि को पश्चात् प्राचीर थोडा हटाकर मुह बाहर करना तथा उदर प्राचीरमें हाथ रख जरायुको दबाना। इससेभी यदि जल्दी शिशुका माथा न निकले तो जरायु पर दाब दूसरेसे दिलाकर चिकित्सक शिशुके कपालके पीछे अङ्गुलीसे दबावे तो मस्तक जल्दी निकल आवेगा।

—*—



जानु प्रागवतरण ।

दोनो जंघा आगे आता है फिर छाती विवर्त्तित होती है ।

पार्श्वप्रागवतरण ।—पार्श्वप्रागवतरण में अर्थात् जब शिशुका एक हाथ निकल आवे तब, बाहरी उपायोंसे शिशुका मस्तक या वस्ति प्रसवपथ में घुमाकर लाना चाहिये। इससे कृतकार्य्य न होनेसे चिकित्सक जरायुके भीतर एक हाथ डालकर शिशुका पैर निकालनेकी चेष्टा करे। यदि इससे भी भ्रूण बाहर न निकले तो शस्त्रसे काटकर प्रसवकार्य्य सम्पादन करना चाहिये ।

प्रसवमें बाधा।

—०—

जरायुका दोष।—नानाकारणोंसे प्रसवमें बाधा होती है, इन बाधाओंमें से कई प्रधान बाधाके बारेमें यहां लिखते हैं। जरायुकी ग्रीवा अत्यन्त दृढ होनेसे या उसका बाहरी मुख दृढ हो जानेसे, किम्वा जरायु ग्रीवामें किसी सबबसे घट्टा पडनेसे अथवा जरायु मुखमें खराबघाव होवे तो जरायुका मुख सहजमें नही खुलता। तथा जरायुका मुख न खुलनेसे सन्तान अपत्य पथमें नही आसकती। इस अवस्थामें माता और शिशु दोनोका जीवन विपन्न हो जाता है।

योनिका दोष।—जरायुमें किसी प्रकारका दोष न हो तो शिशु उसके मुखसे निकलकर योनिमें आता है। इस अवस्थामें योनिमें कोई दोष हो तो उसमें से भी शिशु निकल नही सकता। अन्यान्य दोषोंसे योनिकी दृढता अधिक विपज्जनक है। योनि नानाकारणोंसे दृढ होती है, उपदंशसे अथवा और कोई कारणसे घाव होनेपर योनि दृढ हो जाती है, तथा किसीके योनिकी प्राचीर स्वभावतः इतनी दृढ होती है कि सहजमें नही फैलती, इसीसे बालक निकल नही सकता।

अन्यान्य दोष।—इसी तरह योनिद्वार और उसके पासवाले तन्तु समूहोंके विकृत अवस्थामें प्रसवमें प्रबल बाधा हो सकती है। वस्तिका विटप दृढ और भगप्रष्ठमें शोथ होनेसे भी प्रसव प्रतिरुद्ध होनेकी सम्भावना है। इसके सिवाय माताकी वस्ति विकृत, सकीर्ण अथवा टेढी होनेसे किम्वा वस्तिमें अर्व्वुद पैदा होनेसे भी प्रसव मे बाधा होती हैं। मूत्राशय मूत्रपूर्ण और

सरलान्त्र मलपूर्ण रहनेसे भी कभी कभी प्रसव प्रतिरुद्ध हो जाता है। पर शेषोक्त दो बाधा बहुत सामान्य है। बाकी बाधायें बडी विषम है कारण सहज में उन सबका प्रतिकार नही होसकता।

शीर्षाम्बु ।—कभी कभी भ्रूणके स्वाभाविक अवस्था दोषसे भी प्रसवमें घोर बाधा हो जाती है। इस प्रकारकी बाधा ओंमें शीर्षाम्बुहीका उल्लेख करने योग्य है। भ्रूणके शिरमें अधिक पानी जमकर कभी कभी उसका आकार इतना बडा हो जाता है कि वह विकृत मस्तक किसी तरहसे जननीके प्रसव पथसे बाहर नही आसकता।

चिकित्सा ।

योनिनालीमें घट्टा पडेतो उसे छूरीसे काटना चाहिये। विटप अत्यन्त दृढ हो तो उसके उपर सेंक देना उचित है। यदि इससे भी नरम न हो तो स्नेह द्रव्य मालिश कर अन्तमें छूरीसे कई जगह चीरदेना चाहिये। भगपृष्ठ में शोथ हो तो उसमे कई एक छेद करना और उसमें अर्व्बूद हो तो पहिले उसे वस्तितटके उपर उठानेकी चेष्टा करना, तथा इससेभी कृतकार्य्य न होनेसे शङ्कु-यन्त्रसे शिशुको बाहर निकाल लेना। यह कोशिश भी व्यर्थ हो जाय तो शस्त्रसे शिशुको काटकर प्रसव कार्य्यपूरा करना। वस्तिकी विकृति या सङ्कीर्णता के सबब प्रसवमें बाधा हो तो, शङ्कुयन्त्र, विवर्त्तन, अकाल प्रसवसाधन किम्वा मातृगर्भ विदारण

करना चाहिये। शिशुके माथेमे पानी जमकर प्रसवमें बाधा होनेसे त्रिकूर्चक अस्त्रसे उसके माथेमें होशियारीसे छेदकर पानी बाहर निकालना अथवा शस्त्र प्रयोग से उसे तोडकर प्रसव कार्य्य पूरा करना चाहिये।

अकालमे प्रसव।—जिसकी वस्ति विकृत अथवा सकोर्ण है उसको गर्भोत्पत्ति होना विशेष अमङ्गलका निदान है। इस लिये इस विषयमें पहिलेहीसे सतर्क होना चाहिये। गर्भ होतेही उसे अकालहीमें प्रसव कराना उचित है। इससे माता और शिशु दोनोंके जानकी रक्षा होती है, यदि यह काम असाध्य मालूम होतो गर्भके तरुण अवस्थाहीमें उसको नष्ट करना उचित है।

शंकुयंत्र या फर्सेप्स।—शङ्कु बेडीकी तरह एकप्रकार के यन्त्रको कहते है महात्मा सुश्रुतने मूढगर्भ को चिकित्सामें शङ्कुनामक यन्त्रके बारेमें जो लिखा है वह प्राय इसी प्रकारका था। आजकल जो शङ्कुयन्त्र व्यवहृत होता है वह विलायती है, विलायती शङ्कु दो प्रकार, छोटा और बडा। इसके प्रत्येक में एक एक फलक और मुठो है। फलक लोहेका और मुठो काठको है। मुठोके उपर एक खोल है वही खोल दो फलक को आबद्ध करनेसे एक जोडा शङ्कुयन्त्र होता है। इसे बडो होशियारोसे प्रयोग करना चाहिये।

शङ्कुयत्न या फर्सेप्स।

(क) अधुना प्रचलित सिसमनका फर्सेप्स।
(ख) „ „ सिंगलका फर्सेप्स।

विकृत वस्ति।

जननोको वस्ति नानाप्रकार से विकृत होती है। उसमेंसे कई एकके बारेमें नीचे लिखा जाता है।

(१) सकुचित वस्ति।—खर्व्वाकृति (नाटी) स्त्रोको वस्ति



(क)



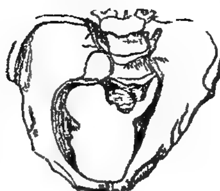
(ख)

सचराचर ऐसही देखनेमें आती है शंकुचित वस्तिसे प्रसव में बाधा होती है तथा सन्तान सहजमें नहो निकलता।

(२) विस्तृत वस्ति।—इस वस्तिका सर्व्वांश साधारण वस्ति की अपेक्षा बडा होता हे, इसलिये प्रसव बहुत जल्दो होता है।

(३) शैशव वस्ति।—जिस स्त्रीकी वस्ति थोडेही उमरसे कठिन हो जाती है और अधिक उमरमें भी नही बढती उसको शैशव वस्ति कहते हैं। इस तरह को वस्तिमे प्रसवमें विघ्न होता हे।

(४) पौरुष वस्ति।—इस वस्तिका तट सचराचर स्वाभाविक, किन्तु इसका गह्वर गभीर और सकोर्ण तथा निर्गम पथका व्यास छोटा होता हे।



रिकेट या पूतनाग्रस्त वस्ति ।

(५) पूतनाग्रस्त वस्ति ।—रिकेट या पूतना रोगसे वस्तिमे एक प्रकार विकृति होती है। इसलिये वस्तितटका सम्मुख पश्चात् व्यास छोटा होता है। पृष्ठवंशमूलीय का कोरभाव बढ जानेसे और विटप शाखा पीछे हटजानेसे वस्तितटका आकार अङ्गरेजीके "8" अङ्ककी तरह हो जाता है।

(६) भङ्गर विकृत वस्ति। अस्थिका लवणांश कम हो जानेसे हड्डी कोमल और बेदम हो जाती है। अङ्गरेजोमें इसीको "अष्टीयो मेलेकिया" रोग कहते हैं। इस रोगके आक्रमणसे वस्ति बहुत विकृत हो जाती है।

(७) माकुवत् वस्ति ।—हड्डीके कोइ कोई रोगसे पञ्चम कशेरुका अस्थि स्थानच्युत होती सामनेको तरफ झुक जाती है। इससे वस्तितट का सम्मुख पश्चात् व्यास छोटा होजानेसे माकु के आकारके तरह हो जाता है।

(८) संकीर्ण वस्ति ।—इस प्रकारकी वस्ति दोनो पार्श्वकी वस्तिबाहु भीतर के तरफ आजानेसे निर्गम पथका अनुप्रस्थ व्यास छोटा हो जाता है। इस तरहकी विकृतिसे प्रसवमें भयानक बाधा होती।

इसके सिवाय वस्तिप्राचीरमें अर्व्वुद होनेसे, अथवा वस्ति-तिर्य्यकभावसे संकुचित हो तो उसेभी विकृत वस्ति जानना।

चिकित्सा ।

वस्तिकी सामान्य विकृतिमें केवल स्वभावके उद्यमसे ही प्रसव कराना, यदि विकृति अधिक और घोरतर हो तो कृत्रिम उपायसे प्रसव कार्य्य सम्पादन करना चाहिये। इस दशामें अवस्थाभेदके अनुसार शंकुप्रयोग, विवर्त्तन, अकाल प्रसव साधन, अथवा कुचि-पाटन (सिजारियन् सेक्शन) यही चार प्रकारके उपायोंमें से कोई एक अवलम्बन करना चाहिये। चारो उपायोंको क्रमश. लिखते हैं। पाश्चात्य जगतके सुप्रसिद्ध प्रसव चिकित्सक लिश् मैन, विकृत वस्तिके किस अवस्थामें कौन उपाय अवलम्बन करना चाहिये, इस बारेमे जो सचिस नियम प्रगट कर गये है यहा वहभी उद्धृत किया जाता है।

अनुप्रस्थ व्यास ४ इंचसे ३। इच होनेसे शकुप्रयोग आवश्यक।
„ ३॥ „ २॥ „ „ विवर्त्तन „
„ ३ „ १॥ „ „ छेदन भेदन
„ १॥ या इससे कममे कुचिपाटन „

शकु प्रयोग ।

शकुप्रयोग के पहिले नीचे लिखी बातों पर दृष्टि रखना उचित है। शलाका और पिचकारीसे गर्भिणीका मूत्राशय तथा निम्नयन्त्र साफ करना चाहिये। जलथाली न फटे तो उसे फाड डालना और भ्रूणके माथे की सियन सब परिचा-कर शिशुका आसन निर्णय करना। शकुप्रयोग करती वक्त अकसर वेहोश करना पडता है। इस विषयमें एक नियम पर दृष्टि रखनेसे सन्देह दूर होता है। भ्रूणका मस्तक वस्तिके

उपर हो तो बेहोश करना चाहिये, यदि वह नीचे उतर आवे तो बेहोश करने को जरूरत नहीं है।

प्रयोग मे शयन।—शङ्कुप्रयोगके समय प्रसूती की बायें तरफ सुलाना अच्छा है, तथा उसका दोनो जंघा समेट पेटके उपर रख चौकी या उसके उपरवाले कठिन बिछौने के दक्षिण किनारेपर सुलाना। प्रसव सङ्कटापन्न होनेसे गर्भिणी को उतानी सुलानेसे सुबीता होता है।

शङ्कुके दोनो फलक गरम पानीमे तपाकर उसमें कार्ब्बलिक तेल अथवा कार्ब्बलिक भेसिलिन लगाकर प्रसवपथमें प्रवेश करना।

प्रवेशन।—शङ्कुके दो फलो में से एक को ऊर्द्ध और दुसरे को निम्न फलक कहते हैं। बडा यन्त्र का निम्न फलक पहिले और ऊर्द्धफलक पीछे से प्रवेश करना चाहिये। छोटे शङ्कुका दो में चाहे जो फलक प्रवेश कर सकते हैं। पीडा कम होनेपर ही शंकु धीरे धीरे प्रवेश करना उचित है तथा प्रसव पथके किसी स्थानमें अड जानेसे तुरन्त फलक निकाल लेना चाहिये, तथा थोडी देर बाद फिर प्रवेश करना। दोनो फलक प्रविष्ट होजाने पर दोनो एकत्र कर सावधानी से खोल बन्द करना उचित है और खोल बन्द होनेपर आकर्षण और सञ्चालन आदि कार्य्य करना।

आकर्षण।—खींचनाही शङ्कुका प्रधान कार्य्य है। सिर्फ दर्दके समय अपत्य पथके अक्षरेखा में भ्रूणका मस्तक धीरे धीरे खीचना चाहिये। जबतक शिशुका माथा वस्तितटके उपर रहे तबतक उसे नीचे और पीछे की तरफ खींचना। तथा वह नीचे आतेही तुरन्त पीछेकी तरफ से सामने की खीचना, अन्तमें जब निर्गम द्वारके पास आवे तब शङ्कु उपर और सामने को खीचना

चाहिये। इसी तरह शिशुका मस्तक शङ्कुसे विटपमें आजाने पर यदि देखे को दर्द जोरसे और नियमित हो रहा है तो खींचना बन्द कर प्रकृतिके ऊपर निर्भर करनेसे प्रसव आपही हो जाता है।

प्रसव कार्य्यके सुबीते के लिये विलायत में नाना प्रकारके फर्सेप्स बनाया गया है, जिसमे डेनमैन्, जिग्लर और सिम्सन्—यही तीन प्रसव चिकित्सक के बनाये फर्सेप्स अधिक प्रचलित है। यह त्रिविध शङ्कुमें जिगलरका अधिक और सिमसन् का अधिकतर व्यवहृत होता है।

फर्सेप्स आविष्कार होनेसे पहिले युरोप मे मेकटिस् और फिलेट नामके दो प्रकारका यन्त्र व्यवहृत होता था। आजकल इन दोनो का प्रयोग प्रायः उठगया है कहनेमे भी अत्युक्ति नही होगी।

मूढ़गर्भ चिकित्सा

और

भ्रूणहन्तारक शस्त्रोपचार।

गर्भ और प्रसव सम्बन्धीय समस्त प्रयोजनीय विषय आर्य्य ऋषिगणोंको विदित था। किस किस कारणोंसे गर्भ नष्ट होता है या प्रसवमें बाधा हो सकती है, बाधा कितने प्रकारकी है और बाधा विपत्ति होनेसे कौन उपायसे उन सब का प्रतिकार होता है, महर्षि सुश्रुत ने इसकी विस्तृत आलोचना की है। यहा उसे भी उद्धृत किया जाता है।

निर्व्वचन।—गर्भ नष्ट हो प्रसव मे वाधा होनेसे उसे मूढगर्भ कहते है।

प्रकार।—मूढ़गर्भ चार प्रकार,—कील, प्रतिखुर, बोजक, और परिघ। बाहु, मस्तक और पैर उपरको तरफ तथा बाकी शरीर नीचेकी तरफ गठरोके आकारसे योनिमुखको रोध कर रखे तो उसे कोल कहते हैं। एक हाथ, एक पैर और माथा निकलकर बाकी शरीर अटका रहनेसे प्रतिखुर कहते हैं। केवल एक हाथ और माथा निकले तो उसे बोजक जानना, और भ्रूण परिघ को तरह योनिमुख आवृत किये रहे तो उसे परिघ कहते है।

निदान।—ग्राम्यधर्म्म, सवारोका पथश्रम, ठोकर लगना, गिरना, किसोतरह से चोट लगना, विपरीत भावसे शयन और उपवेशन, उपधात, मलमूत्र वेगधारण, रुच, कटु और तिक्त भोजन, शाक या अतिशय चार भोजन, अतिशय वमन, विरेचन, दोलन, और गर्भपातन आदि कारणोंसे गर्भ नष्ट होता है।

निर्णय।—गर्भका स्पन्दन आदि लक्षण लक्षित न होनेसे गर्भिणी का सब शरीर श्याम या पाण्डुवर्ण तथा श्वास में दुर्गन्ध और गर्भसे शूलवत् वेदना होनेसे गर्भस्थ सन्तान गर्भ में मरगयी है जानना।

चिकित्सा।—मूढगर्भ रूप शल्यका उद्धार करना अति कठिन है। इसमें सचरासर उत्कर्षण, आकर्षण, स्थानापवर्त्तन, उत्कर्त्तन, भेदन, छेदन, पोडन, ऋजुकरण और दारण,—यही नौ प्रक्रियाओं में से एक को जरूरत पडती है। इनमे से भेदन, छेदन, और दारण यह त्रिविध कार्य्य से भ्रूणके अङ्गप्रत्यङ्गोंका छेदन करना पडता है, बाकी ६ प्रक्रिया कर कौशल से सम्पादित होता है।

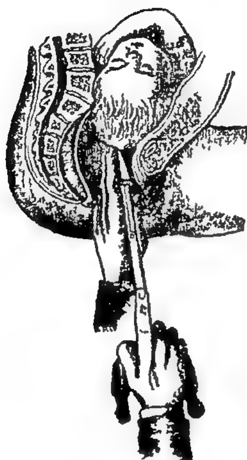
महर्षि सुश्रुत कहते हैं कि गर्भस्थ शिशु जीवित रहनेसे कदापि यन्त्रसे टारण नहीं करना। कारण इससे जननी और सन्तान दोनोंके प्राण नाश होते हैं। सुश्रुत यन्त्र प्रयोग के पक्षपाती नहीं हैं। उनका मत यह है कि पहिले कर कौशल या औषधादि से मूढगर्भ निकालने को कोशिश करना, इस में कार्य्यसिद्धि न होनेसे यन्त्र प्रयोग उचित है। अन्तर्मृत शिशुके अङ्गप्रत्यङ्गादि को छेदने के लिये सुश्रुत मण्डलाग्र * और वृद्धिपत्र यही दो प्रकार के यन्त्रको काममें लाने को कहते हैं। इसमें से मण्डलाग्र नामक यन्त्रका व्यवहार उनके मतसे प्रशस्त है, कारण तीक्ष्णाग्र वृद्धिपत्र द्वारा जननीके अपत्यपथमें आघात लगने का डर है।

पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञान में मूढगर्भ या सङ्कटापन्न प्रसव के चिकित्साके बारे में प्राय इसीतरह का उपदेश है। इनके मतसे भ्रूणहन्तारक शस्त्रोपचार चार प्रकारका है, जैसे क्रेनियटमी, सिफाकोट्रिपसि, डिक्यापिटेशन और एभिसारेशन।

छेदन भेदन।—इस प्रक्रियासे भ्रूणका मस्तक और कर उसी छिद्रमें मस्तिष्क बाहर निकालना। मस्तिष्क निकाल लेने से मस्तक का आकार छोटा हो जायगा तब क्रोचेट और हुक आदि यन्त्र से सन्तान को बाहर निकालना चाहिये। भ्रूण हन्तारक शस्त्रोपचार में सचराचर पाच यन्त्र व्यवहृत होते हैं; जैसे पार्फोरेटर, क्रोचेट, भाटिब्रेलहुक, क्रेनियटमी, फर्सेप्स् और सिफेलोट्राइब।

---

* मण्डलाग्रेण कर्त्तव्य छेद्यमन्तर्विजानता।
वृद्धिपत्र हि तीक्ष्णाग्र नारी हिंस्यात् कदाचन॥
सुश्रुत—चिकित्सास्थान, १५ अध्याय।

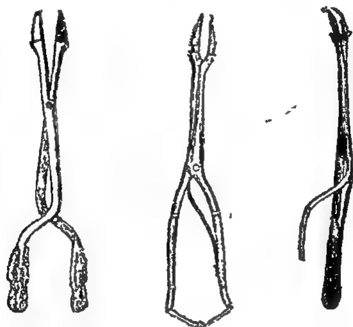


भेदन और छेदन प्रक्रिया।

पार्फोरेटर से भ्रूणको करोटी काटी जाती है।

पार्फोरेटर।—पार्फोरेटर यन्त्र में दो धार [illegible] है। इससे करोटी विदारित होती है। इसो [illegible] पार्फोरेटर कहते हैं। इसे क्रेनियटमी—सिजार्स भी कहा जा सकता है। इसके दो फलक का बाहरी हिस्सा धार [illegible] करोटी को का[illegible] कर दोनों तरफ फैला देता है।

क्रोचेट।—क्रोचेट देखने में ठीक शडसी की तरह है। पर यह खुब मजबूत और तीक्ष्णाग्र है। करोटीके बाहरी या भीतरी किसी कठिन अंशमें हुक लगाकर वेंट धर कर खींचना पडता है। इस यन्त्रका व्यवहार बहुत कम है। मेटिवेलहुक प्राय क्रोचेट की तरह होता है।



नानाप्रकारके पार्फोरेटर।

क्रेनियटमी फर्सेप्स।—क्रेनियटमी फर्सेप्स दो फलक से बनता है। तथा दोनों फलक के भीतरी तरफ आरी की तरह दांत रहता है। ऐसा दांत रहनेसे भ्रूणका मस्तक मजबूत धरने में आता है।

सिफालोट्राइव।—सिफालोट्राइव भी दो कठिन फलकसे बनता है। इससे माथे का कई टुकडा कर सहज में बाहर किया जा सकता है। सिफालोट्राइव से जो काम होता है उसे सिफालोट्रिपसि कहते हैं।

किसवक्त क्रनियटमो प्रयोग करना चाहिये, इसबारे मे मत-भेद दिखाई देता है। पर भिन्न भिन्न मत का समन्वय साधन कर नेसे केवल यहो जाना जाता है कि साधारणत जहा वस्तिका व्यास तोन इच से लगा १॥ इचसे भो कुछ अधिक है वहा क्रेमियट को जरूरत है। ठोक १॥ इञ्च हो तो सिजारियन सेकशन अर्थात् कुक्षिपाटन करना चाहिये।

अस्वाभाविक गर्भ।

एकसे अधिक भ्रूणका उद्भव, विकृत भ्रूणोत्पत्ति, अथवा जरायुके सिवाय अन्य स्थानमे गर्भोत्पत्ति होनेसे उसे अस्वाभाविक गर्भ कहते है।

एकाधिक भ्रूणोत्पत्ति।

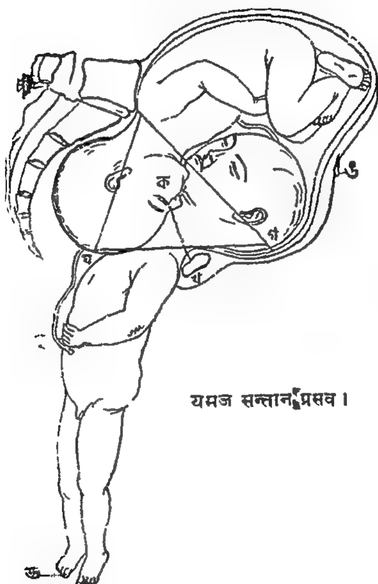
दो, तोन, चार और कभी कभो पाच भ्रूण पैदा होता है। पर ऐसो घटना बहुत कम देखने में आती है। गढ मे ८० गर्भमें एक यमज सन्तान होता है, ७००० गर्भमें एक, तोन सन्तान उद्भूत होतो है, चार या पाच सन्तानको सम्भावना इससे भो कम है।

वहिर्जरायुज गर्भाधान।

[Extra Uterine Gestation]

जरायु गह्वर के सिवाय अन्य स्थानमें भो अण्ड अनुप्राणित और परिस्फुरित हो सकता है। पर इस तरह का गर्भाधान क्वचित

देखने में आता है। पर सभ्यजगत में आजतक कितने अस्वाभाविक गर्भ हुए हैं उसका श्रेणी विभाग नीचे लिखा जाता है।



यमज सन्तान प्रसव।

१। नालीय या टिउव्याल,—अण्डवहा (फेलोपियन) नली में अण्ड अनुप्राणित और परिस्फुरित होता है। तथा इसके दो प्रकार है। (क) जरायुप्राचीर और नलीके संयोग स्थल में अण्डकी

सस्थिति। (ख) अण्डवहा नाली का झालरवाला मुख और अण्डाधार के भीतर अण्डको संस्थिति।

२। औदरीय या एब्डोमिनेल,—उदर गह्वरमें अण्डका निवेशन। इसके दो प्रकार। (क) प्राथमिक अनुप्राण के आरम्भसे उदर में निवेशन तक। (ख) द्वैतीयक अर्थात् नालीगर्भ नालीविदीर्ण हो जानेसे अण्डवहा से गर्भमें जाकर रहता है।

३। अण्डाधारीय वा आभेरियान,—ओभेरी अर्थात् अण्डाधार के भीतर अण्डका अनुप्राण, परिस्फुरण और निवेशन। इसके सिवाय द्विखण्डित जरायुके अपरिस्फुट शृङ्गमें अथवा किसी स्थानीमें अण्ड जानेके अनुप्राणित और परिस्फुरित होता है।

केवल एकके पैरसे छातीतक बाहर आया है, दोनोंका मस्तक प्रसवपथमें अटका है।

ये तिन प्रकारके अस्वाभाविक गर्भमें भी गर्भसूचक प्राय सब लक्षण दिखाई देते है, पर ऐसे गर्भका निर्णय और चिकित्सा करना कठिन है। इस दशामें गर्भिणी और गर्भस्थ शिशुकी अवस्था अत्यन्त सङ्कटापन्न हो जाती है। इस लिये अस्वाभाविक गर्भ निर्णित् होते ही भ्रूणका प्राणनाश करना उचित है। पर इस समयका शस्त्रोपचार बहुत कठिन है, बहुदर्शी प्रसव चिकित्सकके सिवाय और किसीका ऐसे कठोर कार्य्यसे हाथ लगाना उचित नहीं है, कारण ऐसा करनेसे भ्रूणहत्या और स्त्रीहत्याके पापसे लिप्त होना पडता है।

कुक्षिपाटन।—उपर कहे हुए उपाय समूहोंसे प्रसव साधन असम्भव जान पडे तो कुक्षिपाटन या सिजारियान् सेक्सन करना चाहिये। किसी वक्त यह प्रक्रिया बडी विपज्जनक थी, किन्तु आजकलके पाश्चात्य शस्त्र चिकित्सासे बहुत सहज और

निरापद जान पडती है। ऐसे प्रक्रियासे गर्भिणीका उदर विदीर्ण कर, इसी पथसे भ्रूण निकालना चाहिये, इस उपायसे सजीव भ्रूण भी निकल सकता है, किन्तु इसमें माताको बडी विपदमें पडना पडता है। पहिले जमानेमें यही शस्त्र चिकित्साका प्रचार भारतमें था। सुश्रुत आदि कह गये है कि मूढगर्भ जीवित रहते हुताश हाथ योनिमें डालकर धात्री सन्तानको निकाले, गर्भ नष्ट होनेसे शस्त्रपण्डिता भयशून्या और लघुहस्ता धात्रीको योनिके भीतर शस्त्र प्रवेश करानेको कहना। सजीव गर्भमें शस्त्र प्रयोग करना चाहिये। भ्रूणका जो जो अङ्ग योनिसे ससत्य हो उसी अङ्गोमें शस्त्र लगाकर निकालना चाहिये। शङ्कु अथवा युग्म शङ्कुसे मूढगर्भ खोचना चाहिये। आसन्न प्रसवा गर्भिणी वस्तमासे विपन्न हो यदि उसकी कुक्षि स्पन्दित होतो चिकित्सक को गर्भ विदारकर सन्तानका उद्धार करना चाहिये।



संक्रामक रोग-परिचय।

विउबोनिक प्लेग।—युरोप के अनुग्रह से हमलोग अच्छे बुरे सब विषयमें शामिल हो चुके है और हो रहे है। इस प्लेग को इस देशमें युरोप से नई आमदनी हुई है। प्लेग के ऐसा सत्यानाशी रोग का इतना अधिक विस्तार और सालाना बढन्ती भारतवर्षमें किसी कालमें नही था। प्लेग के इन सब विषयमें अधिक विचार करना इस स्थान पर उचित नही है। इस रोग से हमलोगों के साथ इतना अधिक सम्बन्ध हो गया है कि इसका विशेष परिचय देना जरुरो नही है।

प्लेग तीन भागमे विभक्त है।—जैसे विउबोनिक, निउमोनिक और डायारिक। इन सबमें विउमोनिक प्लेग का आक्रमण कुछ अधिक है, इस लिये हम यहा इस विउबोनिक प्लेगका विवरण सच्चेपमे देते है। प्लेग में सेवा और जीवन रक्षा करने के विषय में जो मुख्य बातें है, उसे मनुष्य मात्रको जानना बहुत जरुरो है। क्यो कि समय समय पर उसको जरुरत पड़ सकती है।

प्रदेश।—कलकत्ता, बम्बई, पूना, इलाहाबाद, पश्चिमोत्तर और मध्य भारत के बहुतेरे प्रधान प्रधान शहरों और नगरोंमें, प्लेग हर वर्ष फैलकर आदमियों का सत्यानाश करता है, लेकिन पहिले लोग प्लेग के नामसे डरतेथे, और प्लेगाक्रान्त रोगी का सत्कार करनेमें कोई भी सहजमे राजी

नही होता था और रोगियोंके साथ शामिल होने और उन लोगों को सेवा करने में कोई भी अग्रसर नही होता था। लेकिन अब वैसो डरावनो अवस्था न रही। आगे यूरोप मे प्लेग के फैलने के समय बहुतेरे प्लेगाक्रान्त रोगी बिना दवा और चिकित्साके ही मृत्युप्राप्तहोतेथे। प्लेग को कोई निर्दिष्ट चिकित्सा भी नही थी और कोई चिकित्सक भी प्लेगाक्रान्त रोगी को छुते नही थे। तब प्लेग असाध्य रोगों में गिना जाताथा। मगर अब चिकित्सा और स्वास्थ्य विज्ञान के मददसे यह (Preventible Disease) याने साध्य रोगो में गिनाजाता है।

बनिस्वत और सब प्लेग के विभाग से विऊबोनिक का ज्यादा विस्तार है।—क्योंकि बहुतेरे आदमी इसी रोग से आक्रान्त होते है। राजधानी और बड़े बड़े शहरों में प्लेग के फिहरिश्त में जिन सब प्लेगाक्रान्त रोगियो की मृत्युखबर प्रचारित होती है उसमें ज्यादातर विऊबोनिक का ही नाम रहता है। म्युनिसिपलटी रोजाना और हफ्तावारी जो सब प्लेग सम्बन्धि तालिका निकाला करती है, उसमें कितने आदमी प्लेग आक्रान्त हुये है कितनेको मृत्यु हुई है वह सब उस फिहरिश्त से हमलोग जान सकते है।

आजकल कलकत्ता, बम्बई आदि बड़े बड़े शहरों में स्वास्थ्य विधानानुमोदित उपायसे प्लेग के प्रतिकार और फलाव का निवारण करने के लिये कई प्रकार की सुव्यवस्था हो रही है। इसलिये शाही और म्युनिसिपलटोके खजानोंमे अगणित रुपये व्यय होरहे है। इससे जो सुफल नही होता है सो नही। कई वर्ष पहिले बम्बई और कलकत्तेमें प्लेग का जोर जितना था उतना अब नही है।

सम्भवत: बहुतोंने सुना होगा कि अस्वास्थ्यकर स्थानमें ही प्लेगकी अधिक प्रबलता देखी जाती है। बम्बईकी बस्तीकी अवस्था बड़ी शोचनीय है हर वर्ष किसी एक निर्दिष्ट समयमें उस स्थानोंमें प्लेगकी बढ़न्ती होती है। कलकत्ते में कोलुटोला, जोड़ाबगान, बड़ाबाजार, आदि कई निर्दिष्ट स्थानों में हरवर्ष प्लेगकी मृत्युसंख्या का आधिक्य देखाई पड़ता है। अगर यह सब स्थानोंमें उपयुक्त ड्रेन और नाली वगैरह बनाई जावेतो प्लेग का नाम निशान भी न रहे। स्वास्थ्यकर स्थानमें रहना उत्तम खाद्य वस्तु भोजन करना और खुब सफाई के साथ रहनेसे प्लेग का डर उतना नहीं होता। इसके सिवाय सब शरीरमें सरसोंके तेल का मालिश करना सफाईके साथ देह धोना हरवक्त पुष्टि-कर द्रव्य खाना आदि स्वास्थ्य रक्षक नीति अवलम्बन करना चाहिये।

प्लेगकी कीड़े ही प्लेगकी बढ़न्तीकी कारण है।

अन्यान्य संक्रामक रोगोंकी तरह प्लेगमें भी विभिन्नता है। प्लेगाक्रान्त रोगी के साथ बात करनेसे या उसके पास बैठनेसे ही जो प्लेग होता हैं यह बेजड़ की बात है। जबतक प्लेग विष किसी सुस्थ शरीरमें नहीं घुसता है तबतक अपना असर नहीं दिखा सकता। प्लेगके कीड़े के विषयमें डाक्टर कियासेटो और डाक्टर हाफ्‌किन् आदि वैज्ञानिक पण्डित लोग आजतक कई प्रकारका अनुसन्धान यानी खोजकर रहे है। वैजिक तत्त्व-वित् डाक्टर हाफ्‌किन् को आजकल प्लेग सम्बन्ध में खोजाखोजी के लिये भारत सरकारने नियुक्त किया है। हाफ्‌किन् के मतसे प्लेग कीड़ेसे पैदा हुआ रोग है। वसन्तका टीका जैसे लगाया जाता है वैसे ही प्लेग में भी टीका लगाया जाता है।

जिन रोगियो को टीका लगा रहता है उन लोगोंको प्लेग होने से मरनेका सम्भावना नहीं रहती। तथा शरीर प्लेगके आक्रमण से सम्पूर्णरूपसे विमुक्त रहता है। हाफ्किन् का यह सिद्धान्त अभीतक सर्व्वसाधारणमें परिग्टहीत नहीं हुआ है।

१८९४ सालमें चीन देशके हङ्क शहर म प्लेगका बडा जोर हुआ था, उस समय कियासेटो नामक वैजिक तत्त्ववित् कई एक चिकित्सकोंने प्लेगसे मरे हुवे एक रोगीके शरीर को चीरा था। दुरवीनसे उसके भीतरी पोष रक्तादि परीचा कर उन्होंने उसके भीतर एक लाठी के तरह एक प्रकार का छोटा कीडावो देखाया। इसी कीडेके मददसे सर्व्वप्रकार परीचाकर यह स्थिर किया कि यही प्लेगका कीडा प्लेगरोग को बढाने वाला है। किन्तु बढनेके वक्त मदद न पानेसे यह दुसरे शरीरमें नहीं पैठ सकता। डाक्टर कियासेटो के दिखाये हुये रास्तेसे और कई एक युरोपीय वैज्ञानिक पण्डितोंने इस विषय में बहुत दिन तक खोजाखोजी के बाद सर्व्वप्रकार यन्त्र और दैहिक परीचाके बाद यह सिद्धान्त किया है कि मरेहुवे आदमियों के शरीरके भीतरसे जो कीडे निकलते हैं, उसीसे प्लेग पैदा होता है। इस प्रकारका लाठी के तरह कीडेका आकार और मलेरिया रोगके कीडेके आकारमे बहुत फर्क है। और सुस्थ शरीरमें यह कभी भी नहीं दिखाई पडता, यदि चूहा खरगोश आदि छोटे छोटे जानवरोंके शरीरमे यह वीज प्रवेश करे तो उस शरीरमें भी प्लेग उत्पादन करसकता है यही उनलोगो का सिद्धान्त है।

डाक्टर कियासेटो की निकाली हुई प्रथासे प्लेगी कीडेके बारेमे बहुत कुछ परीचा हुई है। प्लेगाक्रान्त स्थान में

रह कर इस विषय में बहुत कुछ खोजाखोजो करने को इच्छा से १८९७ सालमें कई एक जोवानुतत्त्ववित युरोपीय पडित बम्बइमें आयेथे। वेलोग कोडे की परीक्षा करनेके लिये थोडेसे कोडोको अपने देश लेगयेथे। यह कोडा चूहे और खरगोश के शरीरमें प्रवेशकर कैसा असरदिखाता है, इनको परोक्षा करनेके लिये वेलोग एक वर्ष बाद इन कोडोंको कइ एक चूहे के शरोरमें प्रवेश कराया था। जो नौकर उन चूहों को खाना वगैरह देता था पहिले उसोपर प्लेगने अपना असर दिखाया। खोज खबर लेनेके बाद मालूम हुवा कि उस नौकरका हुक्का चूहोके पिजरे के पास रखा था। कोडा चूहेके के देहसे निकल नलमें नौकर के शरोरमें प्रवेश हुआथा। उसी बेचारे नौकर के मुह से निकले हुये फेनमें किटासेटोके उद्भावित किये हुवे लोडे उसमें देखाई पडे इससे यह प्रमाण हुआ कि यह निउमोनिक प्लेगसे मारागया है। केवल मात्र वह नोकरहो नहो बल्कि वह चिकित्सक जो उसकी चिकित्सा करताथा तथा सेविका जो उसके बिनानेके पास बैठो रहतो थी उनदोनोको भो प्लेगने धरदबाया। लेकिन दोनों को वहासे खसका देनेके कारण रोग ज्यादा बढ नहो सका। इससे प्रमाणित हुवा कि प्लेगका कोडा एक सालतक मनुष्य के शरोरमें रह कर रोग उत्पन्न करता है।

बिना दुरबोनके मददसे प्लेगका कोडा या माइक्रोव देखाई नहो पडता माठ कोडो को इकट्ठा करने पर एक गुच्छा बाल के तरह मोटा होता है यानहो सन्देह है। प्लेगाक्रान्त रोगोके गाठ को चोरनेसे उसमें यह कोडे देखाई पडता है। इसोलिये नस्तर देनेके समय डाक्टरलोग जिस छूरी को इस्तामाल

करते हैं फिर उसे इस्तामाल नहो करते मरने के थोडो देर पहिले प्लेगरोगोके खूनको परोक्षा करने से भो उसमे कोडे नजर आते है। मनुष्यके शरीरके सिवाय रोगाक्रान्त जगहपर भो कोडे नजर आते हैं। सूर्य्यके तापसे, गरमपानो और प्रतिशोधक रासायनिक द्रव्य आदिसे यह कोडे मरजाते हैं।

कईसौ वर्ष पहिले इङ्गलण्ड में एकबार प्लेगका खूब प्रकोप हुया था लण्डन शहरमें हो बहुतेरे गरोब आदमियो इसो रोगसे आक्रान्त हो दुनिया से चलबसे। इसलिये लण्डनके प्रधान प्रधान अधिवासियोंने इसका नाम "गरीबोंका रोग" रखाहै। भूखे रहना, गरोबो, पुष्टीकोकमो, अस्वास्थ्य कर घर और ठंढो जगहमे रहना, बराबर परिश्रम करना आदि तथा कुसमय खाना, धूप और हवा विहीन दुर्गन्ध जगहमें रहना आदि कारणोंसे प्लेगका प्रकोप वृद्धिपाता है। इस कलकत्ता शहरमें साहबो के रहनेको जगह चौरंगो, प्लेग प्रकोप विहोन स्थान है। ऐसा क्या साहबोंके इस देशोय नोकर भी रोगाक्रान्त जल्दो नहो होते। लेकिन जोडाबागान, कुमारटोली, चितपुर, कलुटोला, आदि देशोय स्थानों में उन्नत मारवाडोयोंमें भो प्लेगका प्रकोप देखा जाता है।

संक्रामन का रास्ता।—निश्वाससे या चमडेके उपर का कोई भो फोडा या घावसे प्लेगका कोडा मनुष्य के शरीरमें घुसता है। प्लेगाक्रान्त स्थान के मट्टो पर जो धुला रहता है वह भो प्लेगके कोडोंसे भरा रहता है। सम्भवत वह हवेके सहारे उडकर दुसरोंके नाक और मुहमें घुस प्लेग उत्पादन कर सकता है। प्लेग रोगोके साथ मिलनेसे और उसके बिछौनेको इस्तामाल करनेसे (बिछौने पर सोनेसे) यह रोग हो सकता है। विउबोनिक प्लेगके रोगोके कोषको चीरनेसे जो पोप निकलता है या निक

मोनिक प्लेगके आक्रान्त रोगी के मुखसे निकला हुवा कफ और डायरिक प्लेगाक्रान्त रोगियो के दूषित मल मूत्रके दुर्गन्धसे भी यह रोग उत्पन्न होता है। आधुनिक मतसे आसपाससे चूहे के मरनेसे वहा प्लेगका प्रारम्भ देखाइ पडता है। प्लेगके विषसे मट्टी खराव होनेसे ही चूहे लदालद मरतें है। इसीलिये कलकत्ते के म्युनिसिपल डाक्टर प्लेगाक्रान्त रोगीको देखने जातें है तब पूछते है कि आसपास कही चूहा तो नही मरा है। आजकल के स्वास्थ्य रक्षकों के मतसे चूहेसे ही प्लेग एक जगह से दूसरे जगह पहुचाया जाता है। चूहे प्लेगाक्रान्त हो इधर उधर दौडादौडी कर प्लेग चारोतरफ फैला देते है। प्लेगाक्रान्त रोगीको एक स्थानसे दुसरे स्थानमें लेजानेसे वहा भी प्लेग फैल जाता है।

प्लेगके लक्षण विकाश।—रोगके अन्त स्फुरण काल (Inculation Period) कई सख्या दसदिन तक है। कोई सुस्थ आदमी के शरीरमें प्लेग घुसनेहीसे उसी वक्त रोग फैल नही जाता दसदिनके भीतर रोगबीज देह में घुसकर आस्ते आस्ते अपनी शक्ति विस्तारकर रोग के लक्षण समूह देखाई देते है। इसलिये रोगी प्लेगाक्रान्त है या नही इसका सन्देह होतेहो, उस रोगीको प्लेग परीक्षा के स्थान में लेजाकर १० दिन तक रोक रखनेका नियम प्रचलित है।

प्लेगका प्रधान लक्षण।—खुब जोरसे बोखार आना पड़ा और बगलमें गाठ होना। किसीके बगलमें और गर्दन पर गाठ दिखाई देती है। इस गांठमें असह्य दर्द होता है। रोग प्रकाश होनेके पहिले ही से गांठका जलना और रोगी का

वृथा बोलना बढ जाता है। कोई कोई रोगीको बोखारके साथ खासी और साथही साथ बहुत कफ गिरता है। यह कफ युक्त प्लेग हो निऊमोनिक प्लेग है। निऊमोनिया और इनफ्लुएञ्जा के साथ इसका बहुत सादृश्य है। रोगीके मुहंसे निकले हुवे कफ में यह कीडा दिखाई दे तो उस रोग को प्लेग समझना चाहिये प्लेग विष रक्तके साथ न मिलने तक कोई प्रकारकी तकलीफ नहीं मालूम होती। रोगके लक्षण विकाश के साथ ही साथ रोगी अगर चार या पाच दिन बच जायतो उसके जोनेको आशा की जासकतीहै। बहुत स्थानोंमे देखा जाताहै कि २४ घण्टेके ज्वर भोग के बाद ही रोगी मरजाता है। प्लेगरोग मात्रही साघातिक हैं। बहुत स्थानोंमें रोगीकी दवादारु करनेका भी मौका नहीं मिलता। और और रोगके तरह प्लेगको कोई स्थिर चिकित्सा भी नहीं है। उपसर्ग वगैरहका उपशम होने से ही रोगको शान्ति होती है।

सेवा व चिकित्सा।—घरमें किसीको प्लेग हुवा हो तो किसीको डरना नहीं चाहिये। सक्रामक रोगमें साहस और निडरता की जरूरत है। प्लेग होनेहोसे मृत्यु निश्चित है इसका कोइ माने नहीं है। प्लेग रोग के होतेही रोगीको एक अलग कमरेमे रखना चाहिये। उस कमरेमें धूप व साफ हवाका सचाल्न होना चाहिये। (धूप आने वाला व हवादार कमरा होना चाहिये) चिकित्सकको खबर देनेपर जैसा वह कहे वैसाही करना चाहिये। कोई निर्दिष्ट नियमसे प्लेगको चिकित्सा करने की व्यवस्था न होनेसे भी चिकित्सक रोगीको तकलीफ और उपसर्ग देखने पर उसे आराम कर सकते है। प्लेग रोगीकी सेवा वगैरहमें बहुत सावधानी आवश्यकता है। रोगी के अवस्था में कोइ तरह का अदल बदल होनेसे या कोई नया

उपसर्ग वगैरह दिखाई पडने से चिकित्सक को उसी वक्त खबर भेजना चाहिये। रोगीके दवा देने में व खाने पीनेमें जो कुछ कहे जायगे उसे प्रतिपालन करना चाहिये। रोगीके याद के झोंक व बेहोशीके वक्त किसीको भी रोगीका साथ नही छोडना चाहिये। प्लेग रोगमें रोगी पुरेतौरसे कमजोर हो जाता है। इसलिये मलमुत्रादि त्याग व और कोई प्रयोजनमें रोगीको शय्या त्याग करने देना न चाहिये। "बेड प्यान" वगैरहमें रोगी का मलमुत्र धारण करना। उसी मल-मुत्रको शुद्ध द्रव्योंसे शुद्धकर पायखानामें डालदेना चाहिये। रोगीके मुहसे निकले हुवे कफ व कै वगैरह को कपडेसे पोंछ कर शुद्ध द्रव्योंसे शुद्ध करना चाहिये। रोगीका बिछौना व तकियाको रोज धूपमें रखना चाहिये। प्रचण्ड धूपसे प्लेगके कीडो को मृत्यु होती है। रोगीके घरसे ज्यादे भीड न करना चाहिये। रोगी के कमरेकी जमीन रोज शुद्ध द्रव्य में कपडा भींगो अच्छी तरह पोछना चाहिये। घरके भीतर फजूल असबाब रखनेकी कोई जरूरत नही है। पथ्यादि विषयमें चिकित्सक जैसा कहे वैसाही करना चाहिये इस रोगमें ज्वर के साथ गाठ भी आराम होती है। दवा के सेवनसे धीरे धीरे सब उपसग भी कम होजाता है। रोगी इस समयमें बहुत दुर्ब्बल होजाता है। यहा तक कि थोडेही मेहनत से उसे मूर्च्छा आजाती है। इसलिये रोगी इस बिछौने से उस बिछौने एक कमरेसे दुसरे कमरेमे लेजानेमे बहुत सावधानी की जरूरत है अपने ख्याल और लज्जावश बहुत रोगी बिछौने पर मल मूत्र नही करते है। ऐसा न करना चाहिये प्लेग रोगीकि सेवाके समय सेविकाओंको बहुत सावधानीसे चलना चाहिये सेविका जिस कपडे को पहिन कर रोगीको सेवा करती है उस

कपडे को पहिन कर खाना पीना न चाहिये और उस कपडे को शुद्ध करना चाहिये। विशोधक द्रव्य न कार्व्वलिक साबुनमें हाथ व पाव दो तीन बार धोकर खानेको बैठना चाहिये। रोगी परित्यक्त मल मूत्र कफ, या नस्तर करनेके बाद पट्टीमेंसे निकला हुवा पीप उसके बिछौनेमें या बिछानेसे किसी कपडेमें या घरके और कोई कपडेमें लगना न चाहिये। बहुतेरे रोगियों के पहले नस्तर देना पडता है, ऐसे मौकेपर चिकित्सक जैसा कहैं वैसा एक एक कर सब करनेसे खाल न आना चाहिये रोगीका व्याण्डेज कपडा वगैरह रोज गरम पानीमें औटाकर धूपमें सुखा लेना चाहिये। जो लोग रोज एक एक नया व्याण्डेज व्यवहार करसकते हैं उन्हे यह उच्छिष्ट कपडा व्यवहार न करना चाहिये। परन्तु उस कपडेको आगमें जलादेनेसे सब तरह को डर दूर हो जाता है।

प्लेग निवारक व्यवस्था।—प्लेगके कीडेसे प्लेग होता है सही, लेकिन यह कीडो को बढन्ती व बचावाने का कारण न होनेसे देहके भीतर ताकत नही दिखा सकता। इसीलिये रोग के बढन्ती को आशा कम रहती है। देह अगर ताकत वर व नीरोग रहे और रहने को जगह धूप और हवादार हो घर व आसपास के मकानो के नाला नहँमा वगैरह साफ रहे तब कीडे देहमें घुसने परभी कोई नुकसान नही पहचा सकता है लेकिन अगर घर और असपास के मकान वगैरह बहुत गन्दे होवें और चारों तरफ मोरी नरदमासे दुर्गन्ध निकलती हों ऐसे मौकेपर प्लेग के कीडे आदमियोंके शरीर के भीतर घुसने लग जाते हैं। प्लेगके प्रकोपमें अपनी गली वो महल्लेको बचानेके लिये

प्रधानत दो विषयमे ध्यान रखना चाहिये प्रथमत रोगोके साथ घरके और कोई आदमीको मिश्रित न होना चाहिये दूसरे अपने और पडोसियोके मकान के चारों तरफ खूब सफाई रखना चाहिये। मैलेहासे प्लेग का उत्पत्ति होती है यह कहना फजूल नहीं है। इसीलिये घरके चारो तरफ या कोनेमे डून या पैखाना कही भी किसी प्रकारका मैल जमने देना नही चाहिये। बहुत आदमी एक घरमे नहीं रहना चाहिये और खाने पीनेमे भी सावधानी रखना चाहिये धनी भले आदमियों के मकानके आसपास नीच जाति का बस्ती रहती है स्वाभाविक इच्छा के अनुसार यह लोग प्राय हा अपरिच्छन्न अवस्थामे रहते है बहुतेरे इनलोगो में भुख व आधा पेट खा कर समय बिताते है महल्ले के अवस्थापन्न आदमी अगर ऐसे मौके पर उन गरीबोंको धनसे मदद करे जिससे वेलोग सफाई रख सके अपना खाना पीना सावधानी से करे। किसी महल्लेमे यदि प्लेग की उत्पत्ति होने की सम्भावना होवे तो अमीरो को दरिद्र व निसहाय आदमियों के लिये थोडा बहुत जितना होसके चन्दाकर उनलोगोका दुःख निवारण करना चाहिये।

प्लेगके फैलाव के निवारण के लिये खास सर्कार और म्युनिसिपल्टीके पक्षसे नानाप्रकारके नियम प्रचलित हुये है और होरहे है। पाठको को जाननेके लिये उसका विवरण थोडासा नीचे दिया जाता है। उसके अनुसार चलने से आसपास के मकान व पडोस प्लेगसे बच सकते है।

(१) महल्लेमें किसी के घरमें प्लेग होनेसे उस गल्ली को छोड देना चाहिये, ऐसा करनेमे वह गल्ली प्लेगके उत्पात से बच सकती है। रोग की पहिली अवस्थामे कोई स्वास्थ्यकर

घरके एक कमरेके चार या पाच आदमो मोते है, नाना स्थानसे पाहुने भी आकर कुछ दिन के लिये आकर रह जाते है। एक घरमें अधिक आदमो के रहनेसे प्लेगका असर बार्कोयों परभो पड सकता है।

(११) प्लेगके के समय हर घरवालेको चाहिये कि अपने घरके चारोतरफ की मोरी नर्दमा वगरैह को फिनाईल और विशोधक चोजसे सफाई करना चाहिये। रोगके वढ़नेके वक्त हररोज ऐसा करनेमें बहुत अच्छा है। लेकिन अवस्था के अनुकूल न होनेसे हफ्तेमें काम से काम तोन दिन इस तरफ ध्यान रखना चाहिये।

(१२) सिर्फ अपनेहो सफाई के साथ रहनेसे नहो चलेगा पडोसी को भो सफाई रखनेकी जरूरत समझाकर उसको समय के माफिक कर्त्तव्य पालन करनेमे वाध्य करना चाहिये। हरेक गलीके पढे लिखे आदमो यदि अज्ञ और निरक्षर आदमियो को घर वगैरह और उसके चारोतरफ सफाई रखनेकी आवश्यकता समझा काम करानेसे गली प्लेग मुक्त हालतमे रह सकती है।

(१३) नीचेके कमरेमें प्लेग ज्यादातर हुवा करता है। उपर के घरमे धप और हवैका वन्दोवस्त रहने से रोगके वढन्तो की उमेद काम रहती है जिन लोगों का पक्का मकान है उन लोगोंको प्लेग के समय दोतल्ले पर रहना चाहिये।

(१४) जो लोग नीचेके घरमे रहते है और जिनलोगोंको कच्चे मकान के सिवाय रहनेका और कोई उपाय नही है। वेलोग रहनेकी जगह खुब साफ और परिच्छन्न रखें। हर रोज बराबर सवेरे खिडकी खोल शुद्ध हवा और धूप पहुचना चाहिये।

तथा हररोज सवेरे किवाडो और खिडकी खोलकर धूप और हवा का निकास कर देना चाहिये।

(१५) बहु तेरोंका मत है कि प्लेग बहुत सङ्क्रामक होने परभी प्लेग रोगीके शरीरमें सङ्क्रामकत्व नही रहता रोगीके घरका मैला, कतवार अशुद्ध हवा, गन्दा कपडा आदि सङ्क्रामक है। यथासाध्य उन सबोंको त्याग करना चाहिये।

(१६) चेचक रोगी का विष हवेसे चारो तरफ फैलता है। लेकिन प्लेग का विष जमीन मे ही रहता है (यानी एक जगह से दुसरे जगह नही जाता) प्लेग दुषित जमीन पर ही चूहे मरते है। जिस विषसे चूहे आक्रान्त होते है। उस विषसे बच जाना मनुष्य के लिये असम्भव है। इसोलिये उस जमीनको अच्छी तरह से पारक्लोराइड अफ मार्कारि द्रव्यसे विशोधन करलेना चाहिये।

(१७) किसी जगह में ज्यादा चूहा मरता होवेतो वहा समझना चाहिये कि यह जगह पुरे तौर से विषाक्त होगयो है जोतें चूहे को ढगसे मार डालना चाहिये। अगर किसी घरमें चूहा मरेतो उसे चिमटा व शडसो से पकड किरोसिन तेलमें भिगो कर जला देना चाहिये। मरे चूहेको हाथसे छूना बडा विष जनक है।

(१८) ऐसे वक्त चूहा अगर काटे तो उसीवक्त डाक्टर खानासे कार्व्वोलिक लोशन या और कोई विशोधक चोज मगाकर काटे हुवे स्थानको धो डालना चाहिये।

(१९) प्लेग के समय व्यर्थ धुपमे न फिरना चाहिये, भुखे न रहना चाहिये, रातभर जागना और ज्यादा मेहनत

करना मना है। इन सब कामोंसे देहमें कान्ति और ताकतकी कमी होती है।

(२०) हरवक्त बुरे ख्याल न करना चाहिये, घरमें व घरके पास प्लेग हुवा है सुनकर अपने आपेसे बाहर न होइयेगा। विपद के समय चित्तकी दृढता होना अत्यावश्यक है।

(२१) घरके सामने महीन चूना छितरा देना चाहिये। नंगे पांव कभी घुमना नहीं चाहिये। भूखे कभी भी किसी रोगी के पास न जाना चाहिये।

(२२) धूप, शुद्ध हवा और अग्नि यही तिन प्रकृत प्रदत्त दवा हे। घर को साफ और उजियाला रखना ही सक्रामकता के नाशका प्रधान उपाय है।

(२३) प्लेग के प्रकोप के वक्त देह को हर तरह से साफ रखना चाहिये। रोज सबेरे प्रात.कृत्य समापन कर शरीर का धूला व काटेका अच्छी तरह से दूर करना चाहिये। नहानेके वक्त बहुतसा कड़ुवा तेल बदनमें मलकर नहाना चाहिये। जो लोग साबुन इस्तमाल करते है। उन लोगों का इस मौके पर साबुन इस्तमाल न करना चाहिये। शुद्ध सरसोंका तेल शरीरके छिद्र को कार्य्यशील करता है। इसीलिये उसके भीतर की मैल वगैरह चमडे के साथ बाहर निकल आती है।

(२४) कामकाल के अनुरोधसे सबको बाहर जाना पडता है। हर बार बाहर से भीतर आनेके वक्त मुंह नाक अच्छी तरह से साफ करलेना चाहिये।

(२५) दुर्गन्धमय मोरी व नर्दमा के पाससे जाना पडे तो नाक अच्छीतरह बन्द कर जाना चाहिये। एक रुमाल इत्र वगैरह लगा सूंघना चाहिये।

(२६) सवेरे और शामको भींगे कपडेसे बदनको अच्छी तरह पोंछलेना चाहिये। नहानिसे आगे या बाद इसके सिवाय शरीर के लोमकूप साफ और कार्य्यक्षम रखने का उपाय दूसरा नहीं है।

(२७) हाथ या पावका नाखून बडा होनेसे उसके भीतर मैला जमता है। इस मैले मे नाना प्रकार के नुक्सान करनेवाली चीजें रहती है। महामारी प्रकोपके समय हफ्तेमें दो दिन नाखून कटवा देना चाहिये। इस वक्त चित्तको धर्म्मबलसे बलीयान करना चाहिये क्योंकि चित्तबल ही श्रेष्ठ बल है।

(२८) हररोज दोनो वक्त खाना खाने के पेश्तर हाथ, पाव के नाखून को अच्छी तरहसे साफ करलेना चाहिये। हिन्दु लोग अंगुली की मददसे खाना खाते है। ऐसा करनेसे खानेकी चीजमें नाखून का मयला मिलजाने का डर नहीं रहता।

(२९) हिन्दु मात्र ही सवेरे प्रातःकृत्यसे छुटी पा रातके कपड को बदल देते है। प्लेग के प्रकोपके समय दिनभर जिस कपडे को इस्तमाल करेंगे उसे रातको इस्तमाल न करना भीतरके कपडेमे शरीर का मयला जमजाता है। इसलिये इसे दो एक दिन में साफ करलेना चाहिये।

(३०) जो लोग घरके अच्छे है और घरमें गोशाला अस्तबल रखते हैं। घरकी सफाई के साथ साथ अस्तबल वगैरह कीभी सफाई की तरफ ध्यान रखना चाहिये। घरमें पाले हुवे पक्षी और जानवर रहे तो उन्हे उसे दूसरे जगह हटा देना चाहिये। कारण पशु पक्षी प्लेग के प्रकोप को बढानेमें मदद करते है।

(३१) पायखाना, ड्रेन, नाला मोरी वगैरह को साफ रखनेकी बात पहिले ही कहा जा चुकी है। फेनाइल बाजारमें

बनिया व डाक्टरखाने मे मिलता है। दामभी कम है। अगर कोई नाली व मोरी मे से दुर्गन्ध निकले, तब समझना चाहिये कि वह अच्छी तरह से साफ नही है। एक बालटी व लोटा में थोडासा फेनाइल के साथ चौगुना पानी मिला इन सब स्थानोंमे रोज डाल देना चाहिये। सामान्य दो चार आने को किफायत कर फिर सैंकडो रुपये डाक्टर बुलाने में खर्च करना बुद्धिमानी का काम नही है।

(३२) बजार की मिठाई का खाना एकदम निषिद्ध है अपने घरमेही जलपानका बन्दोबस्त करलेना चाहिये। इसमे खर्च कम होता है और साथही साथ रोगाक्रमण का डर नही रहता दुकान की मिठाई हरवक्त धूला मखी मैला आदि सब चीज पडी रहती है। बाजार से तरकारी वगेरई भी घर लेजानेसे पहिले अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिये।

(३३) मखी व मच्छडसे खाद्य द्रव्यमें रोग बीज संचारित हो सकता है। इसलिये खाने के चीजोंको हरवक्त ढाक रखना चाहिये। जिस खानेकी चीज में मखी व मच्छड पड जाय तो उसे न खाना चाहिये।

(३४) १ आउन्स कार्वलिक एसिड् १८ आउन्स गरम पानी के साथ मिलानेसे कार्वलिक लोशन तैयार होता है। फिनाईल लोसन भी ऐसे हो तेयार होता है। Chloride of lime (Bleaching powder) का दाम कम है। एक छटाक Chloride of lime तीन सेर पानी मे मिलानेसे लोशन तैयार होता है। ब्लिचि पाउडर व कार्वलिक पाउडर को छितरा देनेसे संक्रामता को नाश व भूमिकी शुद्धता होती है। प्लेग के समय इन सब की सहायता से खूब सफाई चारोतरफ रखना चाहिये।

प्लेग बीज के नाश करनेका उपाय।—

आगे कहा गया है कि स्वास्थ विधानानुमोदित थोडेसे रासायनिक द्रव्य के मददसे रोगके गिल्टो व माइक्रोब नष्ट हो सकता है। यह रसायन चीजे कलकत्ते के हरदवाखानेमे मिलतीहै मफस्सिल के वडे वडे डाक्टरखानो मे भी मिलती है। इसका दाम भी इतना थोडा है कि भवि सैकडो रुपये चिकित्सा के लिये खर्च करने के सामने यह कुछ नहो है। रोग होने पर उसे आराम करनेके लिये चिन्ता न कर धैर्य धारण करना चाहिय और जिससे घरमें रोग अपना असर न जमा सके वैसी कोशिश करना चाहिये। आजकल कलकत्ते व और और जगहों मे लोग3 वड वडे ड ाक्टरखानोंसे डिसइनफेक्टान्ट या विशोधक द्रव्य खरीद कर रोज अपने मकान को सफाई किया करते है। इसे समयोचित शुभ चिह्न बोलना चाहिये। विशेषत प्लेग के फैलनेके समय ऐसी व्यवस्थासे यथेष्ट लाभ होसकता है। जो सब दवायें गिल्टो नाशक और जीव के जीवन रक्षामे मदद पहुचाती है, तथा जो सब हालत मनुष्योंके आयत्ताधीन है हम यहा उसके कई एक सहज उपाय का उल्लेख करते हैं।

जिस रो पर प्लेग के कीडे फैले और जिस वायुके झोंकसे कीडे इधर उधर फिरते है तथा जिस सूर्यकिरण से रोग जीवाणु पना अस्तित्व स्थाई न रख सके। उसी जमीन पर हवा और धप सर्वश्रेष्ठ विशोधक पदार्थ है। घरको खिडकी व किवाड खोलदेनेसे या घरक भीतर अग्निजलाने से सहजहो मे कीडे मर जाते है। इङ्गलण्ड वगैरह देशमे कमरेके भीतर अग्नि जलानेका नियम है। शीत प्रधान देशमे गरम हवा के लिये जीतव कमरे १ यार होते है। वे सब विशेष प्रक्रियासे बने रहते है। लेकिन

हमारे गरम देशमें इन सबका प्रयोजन नहो है। दोपहर के वक्त ३।४ घण्टा घर के किवाड व खिडको खोल दिया जाय तो सहजही में कीडे मर जाते है। २४० से २५० डिग्री फारेनहिट तापसे कीडे नष्ट हो जाते है। सूर्य्य किरणसे यह ताप सग्रह करना बहुत कठिन है। घरके सब जगह में व उसके भीतर वाली चीजोंमें जिसमे खूब ज्यादा सूर्य्य किरण पडे ऐसी व्यवस्था करना। इसके बाद फिर पानी। दुषित जलको अच्छी तरह गरम करने होसे रोग बीज नष्ट होता है। रासायनिक विशोधक द्रव्यको उस गरम जलमें मिला रोगीके कपडेको धोना चाहिये। धोनेसे कपडा निर्दोष होजाता है, और उसके भीतर वाले कोडे भी नष्ट होजाते है।

इस देशके राजधानियोंमें म्युनिसिपल्टी के परिशोधक वाष्पा गार या Disinfecting chamber है। इङ्गलण्डमें ऐसी कोई म्युनिसिपल्टी नहो है जहा यह न हो। गृहस्थ के घरमे इसका बन्दोवस्त होना बहुत कठिन है। गद्दी, गलीचा, तकिया, कम्बल वगैरह जिसे घरमें गरम पानीसे धोने लायक नहो है ऐसी चीजो को म्युनिसिपल्टी के वाष्पागारमें भेजना चाहिये।

कार्ब्बलिक एसिड से भी रोगबीज नष्ट होता है। लेकिन यह बहुत तीव्र विष है। इसको घरमें खूब सावधानी से रखना चाहिये। लडके वाले इसके पास न जासके वैसी व्यवस्था करना चाहिये। कालभर्टका आसिड सबसे बढिया विशोधक पदार्थ है। आजकल इस देशमें रासायनिक पदार्थ बनानेके जगहमें भी कार्ब्बलिक आसिड बनता है। यह लोशन की तरह व्यवहार होता है। एक आउंस आसिड व ३९ आउंस गरम पानी मिलानेसे जो लोशन तैयार होता है उससे बदन का चमडा व दुषित कपडे बीज शून्य

किये जा सकते है। रोगी को पिकदानी मे इस विशोधक, द्रव्यको डाल देना चाहिये। एक आउंस कार्व्वलिक आसिड का दश गुने पानीके साथ मिला घरका कपडा मैला पिसाव वगैरह सब चीजों को सफाई करना चाहिये। कार्व्वलिक लोशन हाथ पाव वगैरह धोनेसे भी व्यवहृत होता है। कार्व्वलिक पाउडर बाजार में मिलता है। लेकिन जहापर ऐसे सुबोते का अभाव है। वहा पर एक आउंस कार्व्वलिक आसिड् के साथ आधासेर बालु मिलाकर पाउडर बनाया जा सकता है। इसे ड्रेन मोरी व नालोमें देनेसे प्लेगके कीडे नष्ट होते है।

क्लोराइड अफ लाइम एक दामी चीज है, यह आध सेर ३ सेर पानी के साथ मिलाकर जो मिश्र बनता है उससे ड्रेन, पायखाना वगैरह साफ हो सकता है। यह एक छटाक तीन सेर पानी के साथ मिला घरके असबाव वगैरह विशोधित हो सकतें है। किरोसिन् सब्लिमेट या रस कपुर बडा विषाक्त पदार्थ है। इसको मिलानेसे थोडी नैपुण्यता की जरूरत है। इससे डाक्टर खाने से इसको बनवा लेना चाहिये। इसे खुब सावधानी से रखना चाहिये। रोगीका मयला व मयलायुक्त कपडा घरकी दिवाल वगैरह इसीसे धो लेना चाहिये सलफेट अफ आइरन या ह्वीराकस डेढ सेर १ सेर पानीके साथ मिलानेसे लोशन तैयार होता है। ड्रेन व रोगी के मलपात्रको विशोधन करनेसे इसकी बहुत आवश्यकता है। पायखाने के लिये भी यह इस्तमाल किया जा सकता है, बजार में (Condy's flucd) नामक एक प्रकार का लोशन बिकता है। यह पार्म्याङ्गानेट अफ पटास का मत् है। एक छटाक Condy's flucd को तीनसेर पानीके साथ मिलानेसे जो लोशन तैयार होता है। उसे सविका व घर

के और लोगो के हाथपाव धोनेमें जरुरत पड सकता है। वौ वगैरह भी इसी से धोया जाता है। गन्धक जलाने से जो भाप निकलता है उसे सालफुरिक आसिड ग्यास कहते हैं। घर साफ करने में यह इस्तमाल होता है। किवाट व खिडकी अच्छी तरह से बन्दकर शोधन करने लायक कापडोको रस्सी के उपर फुला रखना घरको दीवाल, छत् वगैरह को अच्छीतरसे पानी से तर करना। १८०० फिट स्थान को विशोधन करने वक्त निम्न-लिखित उपाय अवलम्बन करना चाहिये। एक सेर गन्धक तोडकर छोटा छोटा टुकडा करना फिर एक मिट्टीके वर्त्तन में मिथिलेटेड् स्पिरिट को एक वाल्टी पानी के उपर रखना चाहिये। उसके बाद स्पिरिट को जला घरको चारो तरफ से बन्द करदेना चाहिये। २४ घण्टे ऐसा करने के बाद किवाड खिड्को को खोल -निदेना चाहिये। स्पिरिट के अभाव में मिट्टी का पात्रमें भी गन्धक को जलादेने पर भी काम चल सकता है।



प्लीहा।

प्रस्तावना।

आयुर्वेद-चिकित्सापर जो साधारणका मनोयोग दिन पर दिन बढता हो जाता है, यह अवश्य बडे आनन्दका विषय है। जिन सब असाधारण गुणोंके बलसे आयुर्वेद चिकित्सा सब चिकित्सासे श्रेष्ठ है, वही सब रहस्य जाननेके लिये लोग व्यग्र हो रहे हैं। पर आयुर्वेद शास्त्रके सब ग्रन्थ संस्कृत भाषामें रहनेके सबब दरिद्र भारतवासीको अर्थकरी विद्या अंगरेजी आदि सीखनेके बाद संस्कृत पढनेका अवसर नहीं मिलता, सुतरां लोग अपना मनोरथ पूरा करनेमें समर्थ नहीं होते हैं। साधारणके सुबीतेके लिये कई महात्माओंने कई एक सानुवाद आयुर्वेद ग्रन्थको प्रचारकर संस्कृत न जाननेवालोंको आयुर्वेद शिक्षाका सुबीता किया है। तथापि वर्त्तमान समयमें विविध ग्रन्थ अनुशीलनके लिये चाहिये जैसा अवकाश न रहनेके सबब उक्त ग्रन्थोंसे लोगोंका मनोरथ पूरा नहीं हो सकता। इधर बहुतेरे लोग हिन्दी भाषाके केवल एक ग्रन्थसे चिकित्सा शास्त्रकी सब बातें जानना चाहते हैं, ऐसी पुस्तकके अभावसे लोगोंकी प्रबल इच्छा चिकित्साशास्त्र जाननेकी पूरी न होनेसे दुःखित हो रहे हैं। तथा रोग-प्रवण भारतवासी प्रत्येक गृहस्थको चिकित्सा विषयमें व्युत्पत्ति होना भी एकान्त आवश्यक हो रही है, कारण बहुतेरे चिकित्सकशून्य स्थानवासीयोंको उपयुक्त चिकित्सकका अभाव और दरिद्रोंको चिकित्सापयोगी अर्थके अभावसे दारुण रोग यन्त्रणा भोगकर अकालमें कालके कवलमें पडते दिखाई देता है।

मैंने यही सब बातें विचारकर प्रत्येक मनुष्य सहजमें चिकित्सा कर सके इस आशासे "वैद्यक-शिक्षा" नामक यह पुस्तक तयार किया है। इसमें यथाक्रम स्वास्थ्यरक्षा, रोगपरीक्षा, सब रोगोंका निदान, लक्षण और पथ्यापथ्य, रोग विशेषमें औषध प्रयोग तथा पथ्यापथ्य, काढा, औषध, तैल, घृत, मोदक, मकरध्वज आदि बनानेकी विधि और धातु आदिका शोधन, मारण आदि विषय इसमें सन्निवेशित किया गया है। आयुर्वेद शास्त्रके भिन्न भिन्न ग्रन्थोंमें हरेक रोगोंपर बहुतेरा दवायें लिखा है, उनमें से जो जो दवायें प्राय सब चिकित्सकोंके द्वारा व्यवहृत होता है, तथा जो सब दवायें हमारे कुलपरम्परासे व्यवहार कर हजार रोगीयोंपर परिक्षाकर अव्यर्थ स्थिर हुई है, इस ग्रन्थमें वही सब परीक्षित दवायें सन्निवेशित की गई है। अव्यवहृत या कदाचित व्यवहृत दवायें जान बूझकर त्याग की गई है, और कहातकको साधारण व्यक्तिमात्र जिसमें केवल इसी पुस्तकके सहायतासे बिना किसीका उपदेश लिये चिकित्सा कर सके, तदुपयुक्त यह पुस्तक बनानेकी चेष्टा की गई है। अब गृहस्थ मात्र यदि चिकित्सामें व्युत्पत्ति लाभकर परिवारवर्ग और अपने शरीरको निरोग रख सके तब यह परिश्रम सफल हुआ समझूंगा।

संवत् १९०५, श्रावण। } श्रीनगेन्द्रनाथ सेन कविराज।
कलकत्ता।

हृद्रोग।

मूत्रकृच्छ्र और मूत्राघात।

अश्मरी।

प्रमेह।

सोमरोग।

शुक्रतारल्य और ध्वजभङ्ग।

मेदो रोग।

उदर रोग।

शोथ रोग।

कोषवृद्धि।

गलगण्ड और गण्डमाला।

श्लीपद।

विद्रधि व्रण।

भगन्दर।

उपदंश और व्रध्न।

कुष्ठ और श्वित्र।

शीतपित्त।

अम्लपित्त।

विसर्प और विस्फोट।

रोमान्ती और मसूरिका।

क्षुद्ररोग।

मुखरोग।

कर्णरोग।

नासारोग।

धातु आदिको शोधन और मारण विधि।

पथ्यप्रस्तुत विधि।

ज्वराधिकार

वातज्वर में।

पित्तज्वरमें।

श्लेष्मज्वरमें।

वातपित्त ज्वरमें।

वातश्लेष्म ज्वरमें।

जीर्ण और विषम ज्वरमें।

प्लीहा और यकृत्।

अर्श (बवासीर)

रक्तपित्त।

राजयक्ष्मा।

कास।

कोषवृद्धि।

गलगण्ड और गण्डमाला

श्लीपद।

विद्रधि और व्रण।

भगन्दर।

उपदंश।

कुष्ठ और श्वित्र।

चतुर्थ खण्ड।

विष चिकित्सा।

चतुर्थ खण्ड।

विष चिकित्सा।

वैद्यक-शिक्षा

पञ्चम खण्ड।

शारीर विज्ञानको सारबाते।

वैद्यक-शिक्षा

षष्ठ खण्ड ।

नरदेहतत्त्व और जीवविज्ञान ।

अस्थि ।

पेशीसमूह ।

वैद्यक-शिक्षा ।

सप्तम खण्ड ।

धात्री विद्या ।

२॥/०

प्रसवमें बाधा।

चिकित्सा।

मूढगर्भ चिकित्सा।

सूचीपत्र सम्पूर्ण।

वर्णानुक्रमिक निर्घण्ट ।

फ ।

शास्त्रीय औषध ।

व ।

भ।

शास्त्रीय औषध।

शास्त्रीय औषध।

सूचीपत्र सम्पूर्ण ।